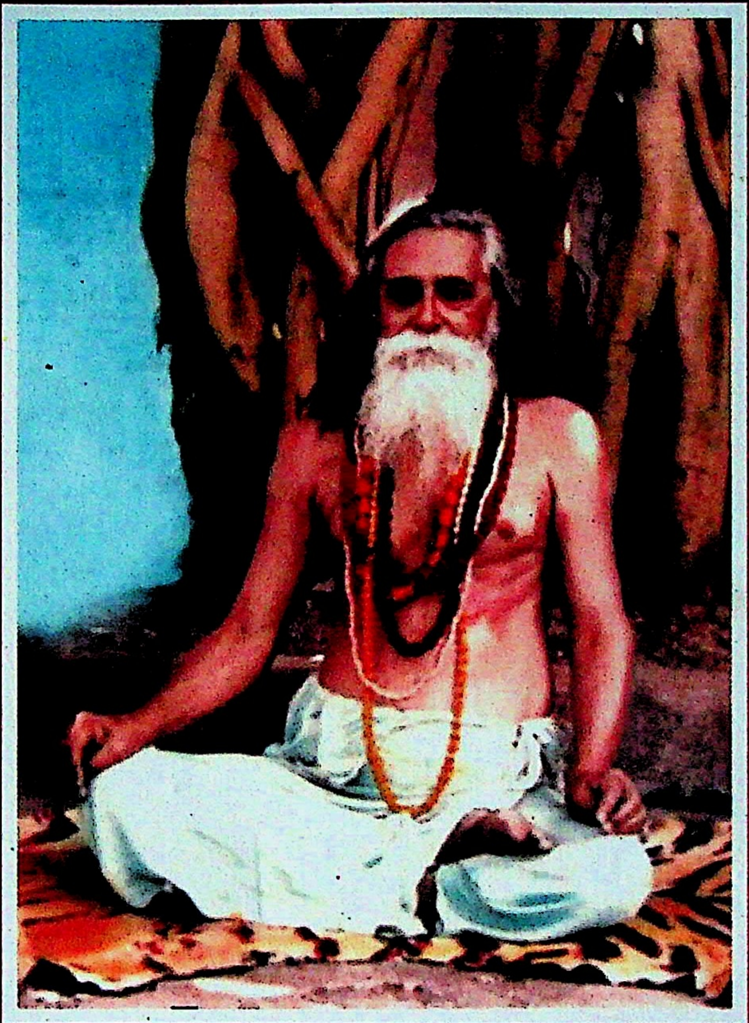

सद्गुरु स्वामी असीमानन्द लीला प्रसंग

॥ ॐ ॥

सद्गुरु स्वामी असीमानन्द लीला प्रसंग

(जीवन चरित एवं उपदेश)

स्वामी अमलानन्द सरस्वती

श्री श्री विजय कृष्ण भक्त संघ
स्टेशन रोड
पोस्ट : रघुनाथपुर
जिला : पुरुलिया (प०बंगाल)
पिन : ७२३१३३

सद्गुरु स्वामी असीमानन्द लीला प्रसंग

(जीवन चरित एवं उपदेश)

प्रथम संस्करण : १ मार्च, २००३ ई० - शिव चतुर्दशी

NO COPY RIGHT

सूचना - धर्म प्रचार के लिए ग्रन्थ के प्रेरक प्रसंगों को प्रकाशित किया जा सकता है।

प्रकाशक :

स्वामी आलोकानन्द सरस्वती

श्री श्री विजयकृष्ण भक्त संघ

पोस्ट : रघुनाथपुर
जिला : पुरूलिया (प०बंगाल)
पिन : ७२३१३३

मुद्रक :
ईमप्रिन्टा
२४३/२बि, ए.पि.सि. रोड,
कोलकाता-७०० ००६
फोन : २३५४ ३४२४

प्रचार सामग्री

सहयोग राशि : पचहत्तर रूपये

विक्रय लब्ध राशि नर-नारायण सेवा में व्यय किया जायेगा।

ग्रन्थ परिचय

बंगाल के प्रसिद्ध संत एवं सद्गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी की परम्परा में सद्गुरु के रूप में जो महापुरूष हुए, उनमें श्रीमत् स्वामी असीमानन्द सरस्वती महाराज का एक विशिष्ट स्थान है।

हिन्दी भाषा में, पूज्य स्वामी जी के सम्बन्ध में बहुत ही कम लिखा गया है। हिन्दी भाषी भक्तगण जिससे, पूज्य स्वामी जी के जीवन-कथा, प्रेरक प्रसंग एवं उपदेशों से लाभान्वित हो, इस उद्धेश्य से इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया जा रहा है। इस ग्रन्थ में दो खण्ड हैं—

प्रथम खण्ड में, स्वामी जी महाराज के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं का संकलन मिलेगा। इसके साथ उनके कुछ प्रेरक उपदेश एवं प्रवचनों को संयोजित किया गया है।

द्वितीय खण्ड में, लेखक के व्यक्तिगत संस्मरण प्राप्त होंगे। उल्लेखनीय है कि सौभाग्यवश लेखक एवं उनके अग्रज स्वामी आलोकानन्द को, सन् १९६२ से १९६८ ई. तक, स्वामी जी का किंचित् सान्निध्य प्राप्त हुआ। स्वामी जी के संस्पर्श में आने के पश्चात् जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे उनकी महानता को अनुभव कर वे विस्मित एवं मुग्ध हो गए।

लेखक की दृढ़ धारणा है कि पूज्य स्वामी जी की सम्पूर्ण जीवनी, कभी भी प्रकाशित नहीं हो सकती। स्वामी जी के पावन-जीवन में घटित असंख्य घटनाओं में से, केवल कुछ घटनाओं का इस ग्रन्थ में उल्लेख मिलेगा।

पूज्य स्वामी जी की जन्म-शत्वार्षिकी में इस ग्रन्थ के माध्यम से उनके स्मरण-मनन द्वारा, उन्हें श्रद्धांजली अर्पित की गई है।

ग्रन्थ को पढ़कर प्रो. द्वारका प्रसाद शर्मा—पूर्व उप कुलपति, बरकत्तुल्ला विश्व विद्यालय भोपाल (म०प्र०) ने, अपने विचारों को भूमिका में व्यक्त करते हुए अपनी श्रद्धा-सुमन अर्पित किया है।

आशा है कि सुसंस्कृत समाज में इस ग्रन्थ का आदर होगा।

लेखक का निवेदन

सनातन धर्म के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने के लिये वेद, रामायण, महाभारत, स्मृति, तंत्र, पुराण आदि को प्रमुख अवलम्बन माना जाता है। संत या सिद्ध महात्माओं के जीवन का अध्ययन एवं सत्संग के बिना केवल ग्रन्थ पाठ से सनातन धर्म के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। श्रद्धा, त्याग, विवेक, वैराग्य, ईश्वर पर निर्भरता, विश्वास आदि सम्पत्तियों के अर्जन के बिना किसी भी धर्म में प्रविष्ट होने पर विशेष कुछ भी प्राप्त नहीं होता। धर्म जब तक मनुष्य के आचरण एवं स्वभाव में प्रस्फुटित न हो तब तक वह किसी विशेष सम्प्रदाय के रूढ़िवाद या खण्डन-मण्डन में भटकता रह जाएगा। इसी कारण असम्प्रदायिक सनातन धर्म में शाक्त, वैष्णव, शैव आदि विभिन्न साधनाएं दृष्टिगोचर होती है। विभिन्न देवताओं के अनेक रूप दिखलाई पड़ने पर भी स्वरूपतः वह एक ही हैं। इस तरह विभिन्न नामों में, मूर्तियों में एवं सगुण-निर्गुण आदि असंख्य रूपों में, उसी एक अद्वय परम तत्व की उपासना उदार सनातन धर्म में देखी जाती है।

आदिकाल से भारत भूमि में असंख्य अवतार, सिद्ध संत, योगी आदि महामानव अवतीर्ण हुए हैं। जब भी धर्म की ग्लानि या अधर्म का अभ्युत्थान हुआ, मानव समाज को ग्लानिमुक्त करने के लिये, अपने अनुपम चरित्र द्वारा महान्-पुरुषों ने आदर्श की स्थापना की। इन महामानवों के आविर्भाव से दुःखी, तापी, शोक-संतप्त मानव एक नई आलोकित दिशा प्राप्त कर, सत्य की प्राप्ति के लिये एक नई प्रेरणा पाता रहा है। इन महामानवों के समय-समय पर आविर्भूत होने से अखण्ड भारत की सांस्कृतिक अखण्डता आज भी विनष्ट नहीं होने पाई है।

प्राचीनकाल में राम, कृष्ण आदि जिस तरह अवतीर्ण हुए, उसी तरह विगत् पाँच-छः सौ वर्ष पूर्व श्री चैतन्य महाप्रभु, गुरू नानक, संत कबीर, संत नरसी मेहता आदि असंख्य महान् पुरूषों ने विभिन्न स्थानों में प्रकट होकर मानव समाज को परा-शान्ति का मार्ग दिखलाया। उनके कृपा प्राप्त संतो की अपनी-अपनी परम्परा ने भारत के विभिन्न प्रान्तों में विशेष कार्य किया था, जिसका प्रभाव आज भी देखा जा रहा है।

बंगाल में श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रमुख पार्षद अद्वैताचार्य एवं श्री नित्यानंद जी माने जाते हैं। श्री अद्वैताचार्य की दसवीं पीढ़ी में सद्‌गुरु श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी का आविर्भाव हुआ। सद्‌गुरु विजयकृष्ण जी जिस समय आए, उस समय श्री रामकृष्ण परमहंस, श्री लोकनाथ ब्रह्मचारी, श्री तैलंग स्वामी, श्री गम्भीरनाथ जी, श्री रामदास काठियाबाबा, श्री भोलानन्द गिरि आदि महात्माओं ने सनातन धर्म के पुनर्जागरण के लिये जो कार्य किया, उसका प्रभाव आज भी दिखाई पड़ता है। सद्‌गुरु विजयकृष्णजी के साथ

इन सब महात्माओं का अन्तरंग सम्बन्ध था। सद्‌गुरू विजयकृष्ण जी की परम्परा गंगा की तरह व्यापक रूप से असंख्य लोगों को पाप-ताप से मुक्त करती, अग्रसर हुई।

सद्‌गुरु विजयकृष्ण गोस्वामी जी २ अगस्त, सन् १८४१ ई०, श्रावण पूर्णिमा तिथि (रक्षा बंधन) में आर्विभूत हुए। शान्तिपुर (जिला–नदीया) के ब्राह्मण समाज, कोलकाता के ब्राह्म समाज इत्यादि कई सम्प्रदाय में 'सत्य' की प्राप्ति के लिये उन्होंने प्रवेश किया, परन्तु उन्हें यहाँ पर शान्ति की प्राप्ति नहीं हुई। सन् १८८३ ई० के अगस्त महिने में, गया जी में, जब वे आकाश-गंगा पहाड़ पर रघुवरदास बाबा जी के आश्रम में व्याकुल भाव से सद्‌गुरु की प्राप्ति के लिये तपस्या कर रहे थे, उस समय अचानक हिमालय मानस-सरोवर वासी **स्वामी ब्रह्मानन्द परमहंस जी** से उन्हें दीक्षा प्राप्त हुई। दीक्षा प्राप्ति के बाद ग्यारह दिन तक वे समाधिस्थ होकर एक गुफा में पड़े रहे। उस समय रघुवरदास जी ने उनके शरीर की रक्षा की थी। अपने गुरूदेव का परिचय देते हुए सद्‌गुरु श्री विजयकृष्ण जी ने कहा था कि पंजाब के ब्राह्मण वंश में उन्होंने जन्म लिया है। संन्यास लेकर उन्होंने नानक पंथ में रहकर कुछ दिन साधना की। बाद में वैदिक साधना पद्धति से साधना की तथा श्री चैतन्य महाप्रभु की कृपा से उन्होंने भगवत्प्रेम प्राप्त किया। उनका शरीर बहुत प्राचीन है। मानस-सरोवर से, वे अपने शरीर के पंचभूत को पंचभूत में लय करके, केवल चैतन्य शक्ति के सहारे गया जी में आए थे एवं पुनः स्थूल शरीर धारण कर लिया था।

श्री विजयकष्ण जी द्वारा, अपने गुरूदेव स्वामी ब्रह्मानंद परमहंस जी से, उनके साथ रहकर सेवा करने की प्रार्थना करने पर, परमहंसजी ने कहा–**''मेरे साथ तुम्हारा रहना कभी भी नहीं होगा। मैंने तुममें जो शक्ति संचार किया है,उसे त्रितापग्रस्त नर-नारियों में वितरण करना पड़ेगा । तुम अद्वैत वंश की सन्तान हो, यह कार्य तुम्हें ही करना पड़ेगा। धर्म की दुर्दशा को दूर करने के लिये केवल प्रवचन देने से कुछ नहीं होगा–शक्ति संचार करके उन्हें दीक्षा प्रदान करनी पड़ेगी। तुम जब चाहोगे मुझे देख सकोगे।''**

सद्‌गुरु विजयकृष्ण जी की परम्परा में कई सिद्ध साधक, देश भक्त, दार्शनिक आदि प्रकट हुए। इन सभी लोगों ने, पाशबद्ध जीव को पाशमुक्त शिव बनाने के लिये विभिन्न क्षेत्रों में काम किये। इनके जीवन का अध्ययन करने पर पता चलता है कि परम सत्य को लक्ष्य रखकर 'नाम-साधन' (अजपा-जप) के द्वारा वे अपने-अपने क्षेत्र में अग्रसर हुए। ईश्वर के ऊपर पूर्ण रूप से निर्भर रहकर, गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी किस तरह संन्यास के महान् आदर्श की रक्षा की जा सकती है–इसका प्रमाण, इनका अपना जीवन है।

सद्‌गुरु श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी ने कहा है–**''इस अजपा-जप साधन की प्राप्ति के लिये विशेष अधिकार आवश्यक है। प्रथम सूर्य, गणेश, शिव, शक्ति एवं विष्णु–इनकी उपासना अर्थात् पंच-उपासना के पश्चात् इस साधन पद्धति की प्राप्ति होती है। यह साधन श्री नारायण ने ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने नारदजी को–इस तरह गुरू-शिष्य परम्परा में यह प्रणाली गुप्त रूप से चली आ रही है। माधवेन्द्र पुरी से ईश्वर पुरी एवं ईश्वर**

पुरी से चैतन्य महाप्रभु ने इसे प्राप्त किया था। श्री चैतन्य महाप्रभु ने केवल साढ़े तीन व्यक्तियों को यह शक्ति प्रदान किया था–स्वरूप दामोदर, राय रामानन्द, शिखि माइती और उनकी बहन माधवी। (माधवी देवी स्त्री देह थी, इस कारण आधा माना गया है।)

जिन्हें भी यह साधन प्राप्त हुआ है, वे सब चैतन्य महाप्रभु के समय थे। उस समय जिन्हें यह शक्ति प्राप्त नहीं हुई थी, उन्हें इस बार प्रदान की गई।"

(स० ग्रन्थ–श्री श्री विजय मंगल' (पृ० १६९) –श्री वरदाकान्त बन्दोपाध्याय)

सद्गुरू विजयकृष्ण जी की गुरू-परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। यथा, श्री नारायण - ब्रह्मा - नारद - व्यासदेव - मध्वाचार्य - पद्मनाभाचार्य - नरहरि - द्विज माधव - अक्षोभ-जयतीर्थक - ज्ञानसिन्धु - महानिधि -विद्यानिधि - राजेन्द्र - जयधर्ममुनि - विष्णुपुरी एवं पुरूषोत्तम।

पुरूषोत्तम - व्यासतीर्थ - लक्ष्मीपति - श्री माधवेन्द्र पुरी - ईश्वरपुरी - श्री चैतन्यमहाप्रभु (गौरांग महाप्रभु)। (स० ग्रन्थ–'सार संग्रह मधुरिमा'–माँ मणि एवं 'श्री श्री विजयकृष्ण कथामृत')

वैष्णव ग्रन्थों में उल्लेख है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने केवल चार व्यक्तियों को 'विशेष दीक्षा' प्रदान किया था। इसके अतिरिक्त चैतन्य महाप्रभु ने गुप्त रूप से जिन्हें 'विशेष दीक्षा' प्रदान किया था, उनकी परम्परा में हैं – परमहंस स्वामी ब्रह्मानन्द जी (मानस सरोवर वासी) – महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी – किरणचन्द्र दरवेश जी – स्वामी असीमानन्द सरस्वती।

महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी जी के कुछ अन्य शिष्यों ने भी यह दीक्षा प्रदान किया था। लेकिन यहाँ केवल स्वामी असीमानन्द जी की गुरू-परम्परा का वर्णन किया गया है।

'अजपा' रहस्य के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए महामहोपाध्याय डा. गोपीनाथ कविराज ने लिखा है– **कुछ लोगों का मत है कि महाप्रभु चैतन्यदेव ने स्वरूप दामोदर, राय रामानन्द, शिखी माइती एवं उनकी बहन माधवी देवी को अर्थात् अपने साढ़े तीन अन्तरंग भक्तों को, इस साधना का गुह्य उपदेश दिया था।**

वर्तमान युग में योगी गम्भीरनाथ, महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी, महात्मा रामठाकुर आदि विशिष्ट साधकों ने इस साधन की महिमा गाई है।

यह साधना अनादिकाल से प्रचलित है। सदाशिव, ब्रह्मा, नारद, वशिष्ठ, ध्रुव, प्रह्लाद आदि को भी यही साधना प्राप्त हुई थी। वास्तविक बात यह है कि अन्यान्य सब प्रकार की साधनाओं के तुल्य इस साधना के भी आदिगुरू साक्षात् भगवान हैं, इस विषय में लेश मात्र भी संदेह नहीं है। ('भारतीय संस्कृति और साधना'–प्रथम खण्ड, प्रथम संस्करण, पृ. ३४२)

महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी जी के सम्बन्ध में डा० गोपीनाथ कविराज ने कहा है– **विजयकृष्ण गोस्वामी जी का धर्म-जीवन, समग्र भारत वर्ष के लिये अध्ययन का विषय है। क्रमशः सर्वत्र उसकी चर्चा होगी। ब्रह्मज्ञान, योग एवं भक्ति-साधना के मध्य से मनुष्य जीवन किस प्रकार पूर्णता प्राप्त करता है, इसका उज्ज्वल दृष्टांत उनका अपना जीवन है।**

('मन्दिर' पत्रिका १५ वर्ष)

गोस्वामी जी जीवन में आरम्भ से ही धर्म-पिपासु और सरल प्रकृति के थे। इसी से विभिन्न अवस्थाओं के भीतर होकर श्री भगवान ने उन्हें अलौकिक रूप से पूर्ण सत्य में प्रतिष्ठित कर दिया था। वर्तमान जगत् के जीवों के लिये गोस्वामी जी की जीवन-कथा अनुशीलन करने की बड़ी आवश्यकता है। दु:ख-कातर जीव का हृदय गोस्वामी जी के जीवन के महान् आदर्श से नवीन बल प्राप्त करेगा और श्री भगवान की अपरिसीम करूणा का जाज्वल्यमान उदाहरण देखकर उनकी ओर लक्ष्य स्थापन करना सीखेगा।

[—पं० गोपीनाथ कविराज (प्राक्कथन, श्री श्री सद्‌गुरू संग—प्रथम खण्ड पृ० ३)—हिन्दी संस्करण से]

श्री विजयकृष्ण जी की परम्परा में, सद्‌गुरू के रूप मे श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी, श्री वरदाकान्त, श्री जगद्‌बन्धु मैत्र, श्री योगजीवन गोस्वामी, श्री किरणचन्द्र दरवेश जी,श्री शान्तिसुधा देवी, श्री सरोज बाला देवी, श्री कुमुद बान्धव आदि ने कार्य किया। मातृ-भूमि की सेवा के क्षेत्र में विपिनचन्द्र पाल, अश्वनी कुमार दत्त, सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय, मनोरंजन गुह ठाकुरता आदि प्रसिद्ध हुए। दर्शन तथा शिक्षा के क्षेत्र में हाराणचन्द्र चाकलादार, माखन गांगूली, द्वारकानाथ राय आदि प्रमुख थे। विगत् शताब्दि में लाल-बाल-पाल का नाम स्वाधीनता संग्राम में सर्वप्रथम लिया जाता है। इसमें 'पाल' का पूरा नाम विपिनचन्द्र पाल है। सदगुरू विजयकृष्ण गोस्वामी जी से दीक्षा प्राप्त होने के बाद विपिनचन्द्र पाल ने एक विशेष शक्ति प्राप्त कर, आदर्श की स्थापना के लिये संघर्ष प्रारम्भ किया। आचार्य सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय ने कोलकाता में 'डान-सोसाईटी' की स्थापना कर, छात्रों को आध्यात्मिक शिक्षा के आधार पर स्वदेश सेवा की शिक्षा दी। इनके गुण-मुग्ध छात्रों में डा० राजेन्द्रप्रसाद, डा० गोपीनाथ कविराज, विनयकुमार, आर. के. दास गुप्ता, डा० भगवान दास, प्रो. मलानी, आचार्य कृपलानी आदि असंख्य लोग थे जो उनके प्रति श्रद्धा भाव रखते थे। महात्मा गांधी जी भी डा० राजेन्द्र प्रसाद से सतीशचन्द्र के विषय में सुनकर प्राय: विभिन्न प्रसंगों पर उनसे विचार-विमर्श करते थे। (Ref. Selected works of Satish Chandra Mukherjee, Vol-1,2,3, Jadavpur University, Kolkata)

श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी के अनन्य शिष्य श्री किरणचन्द्र चट्टोपाध्याय बाल्यावस्था से ही उनके सम्पर्क में आए एवं दीक्षा प्राप्ति के बाद आध्यात्मिक साधना में जिस तरह उन्होंने उन्नति प्राप्त की, वैसा दृष्टांत बहुत कम दिखलाई पड़ता है। दीक्षा के तीन वर्ष पश्चात् श्वास-प्रश्वास में उनका 'अजपा-जप' शुरू हो गया तथा बारह वर्ष पश्चात् उन्होंने सद्‌गुरु विजयकृष्ण गोस्वामी जी का प्रत्यक्ष दर्शन पाकर, उनके निर्देशानुसार गृहस्थ आश्रम त्याग कर संन्यास ग्रहण किया एवं साधना में तल्लीन हो गए। यद्यपि संन्यास लेने पर उनका नाम स्वामी कैशोरानन्द सरस्वती हुआ परन्तु वे 'किरणचन्द्र दरवेश' नाम से प्रसिद्ध हुए। वाराणसी में उनके द्वारा स्थापित श्री विजयकृष्ण मठ (५-ए, औधगरवी), आज भी श्री दरवेश जी द्वारा प्रचलित नियमों का जिस निष्ठा के साथ पालन करता चल रहा है, वह अनुपम है।

श्री किरणचन्द्र दरवेश जी और उनके अनन्यतम शिष्य **स्वामी असीमानन्द**

सरस्वती जी का जन्म-जन्मान्तर से सम्बन्ध था। स्वामी जी के चरित चित्रण करते समय, प्राप्त कुछ-कुछ घटनाओं का उल्लेख किया गया है, जिससे प्रमाणित होता है कि शैशव काल से ही स्वामी जी के भीतर दो विभिन्न सत्ता का सुस्पष्ट विकास देखा गया। **प्रथमतः** संसार के सुख-ऐश्वर्य, आत्मिय स्वजन के स्नेह बन्धन के बीच रहते हुए भी वे कभी इसमें बद्ध नहीं हुए। एक अज्ञात शक्ति की सहायता और उसके आकर्षण ने शिशुकाल से उन्हें परिचालित किया। इस कारण वे कभी भी माया-बद्ध नहीं हुए। **द्वितीयतः**, प्रतिकूल परिस्थितियों के मध्य में भी उनका जीवन हर समय बहुमूल्य हीरे की तरह चमकता रहा। विभिन्न समय कठिन से कठिन समस्याओं के मध्य उनके सद्‌गुरु सर्वदा, कभी प्रत्यक्ष होकर तो कभी अप्रत्यक्ष रूप से, शक्ति एवं सहायता प्रदान करते रहे। इन सब घटनाओं से प्रमाणित होता है कि जन्म-जन्मान्तर के संस्कार किस तरह मनुष्य को असत् से सत्य की ओर, तामसिक अंधकार से आलोक की ओर ले चलता है।

स्वामी असीमानन्द सरस्वती जी के पूर्वाश्रम का नाम अन्नदा कुमार (अथवा अन्नदा प्रसाद) चकवर्ती था। उनके जीवन-चरित का विश्लेषण करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि एक विशेष आदर्श की स्थापना के उद्देश्य से सद्‌गुरु ने उन्हें परिचालित किया। संसार के विभिन्न घात-प्रतिघात में, देश की स्वाधीनता के संग्राम में सर्वत्र उन्हें सद्‌गुरु की प्रेरणा एवं निर्दश प्राप्त होते रहे। ऐसा दृष्टांत क्वचित् दिखलाई पड़ता है।

आज उनकी जन्म-शतवार्षिकी में उनके जीवन की कुछ घटनाओं का उल्लेख करते हुए हम अपनी श्रद्धांजली अर्पित करते हैं। इस ग्रन्थ में सद्‌गुरु स्वामी असीमानन्द सरस्वती जी का जीवन-चरित एवं उपदेश **प्रथम खण्ड** में वर्णित है। **द्वितीय खण्ड**, बंगला भाषा की 'स्मृति कुसुमांजली' ग्रन्थ का संशोधित अनुवाद है। इसमें पूज्य स्वामी जी के सम्बन्ध में 'लेखक के संस्मरण' प्राप्त होंगे।

इस ग्रन्थ को लिखते समय 'मन्दिर' पत्रिका एवं कुछ ग्रन्थों से सहायता ली गई है। कुछ चित्र भी विभिन्न ग्रन्थों से संग्रहित किया गया है। अतः 'मन्दिर' पत्रिका के सम्पादक एवं विभिन्न ग्रन्थों के प्रकाशकों को अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

आशा है इस ग्रन्थ के अध्ययन से हिन्दी भाषी भक्तगण सद्‌गुरु स्वामी असीमानन्द जी के पावन चरित्र के सम्बन्ध में सम्यक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। इस ग्रन्थ के बंगला भाषा में प्राप्त तथ्यों के अनुवाद कार्य तथा इसे प्रकाशित करने में कई व्यक्तियों ने आन्तरिक रूप से सहयोग प्रदान किया है। श्रीश्री सद्‌गुरु के चरणों में सभी की मंगल प्रार्थना करता हूँ।

ग्रन्थ के उत्कर्ष साधन के लिए उदार सुझावों का सदैव स्वागत है।

सकृतज्ञ धन्यवाद

जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई है—

	ग्रन्थ का नाम		लेखक अथवा प्रकाशक
(१)	श्रीमद् भागवत पुराण	—	गीता प्रेस—गोरखपुर
(२)	श्रीमद् भगवद् गीता	—	,, ,,
(३)	श्री चैतन्य चरितामृत	—	"इस्कान"
(४)	श्री श्री रामकृष्ण कथामृत	—	श्री रामकृष्ण मिशन
(५)	प्रेमयोग	—	श्री रामकृष्ण मिशन
(६)	भारतेर साधक	—	श्री शंकरनाथ
(७)	श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी के सम्बन्ध में बंगला तथा हिन्दी में प्रकाशित जीवनी तथा उपदेश ग्रन्थों से।		
(८)	श्री श्री सद्‌गुरु संग	—	ब्रह्मचारी कुलदानन्द
(९)	दरवेश दर्शन	—	श्री श्री विजयकृष्ण मठ—वाराणसी
(१०)	आमार जीवन	—	'सदग्रन्थ प्रकाशनी' — श्री श्री विजयकृष्ण आश्रम—रामचन्द्रपुर। जिला—पुरुलिया (प. बंगाल)
(११)	अजपा साधन तत्व	—	,,
(१२)	चलार पथे	—	,,
(१३)	अमृत वाणी	—	,,
(१४)	कुछेक दिनों के संस्मरण	—	,,
(१५)	असीमानन्देर पत्रावली	—	,,
(१६)	"मन्दिर" मासिक पत्रिका के अंक	—	,,
(१७)	"संगठन" पत्रिका के अंक	—	,,
(१८)	वृन्दावन पदयात्रा	—	,,
(१९)	पुरी पदयात्रा	—	,,
(२०)	श्रीधाम नवद्वीप पदयात्रा	—	,,
(२१)	महायोगी असीमानन्द	—	,,
(२२)	महाज्ञानी असीमानन्द	—	,,
(२३)	स्वामी असीमानन्द एवं अलौकिक योगैश्वर्य		,,
(२४)	असीमानन्देर पथे	—	स्वामी निर्मलानन्द सरस्वती
(२५)	प्रसंग स्वामी असीमानन्द	—	डा. व्रज दुलाल चक्रवर्ती

मुद्रक का निवेदन–

ग्रन्थ के उत्कर्ष साधन के लिए प्रूफ़ संशोधन यथासाध्य किया गया है, पर 'कम्पूटर यंत्र' की यांत्रिक त्रुटि के लिए कई स्थानों पर मात्राओं की त्रुटियाँ (यथा–ै, ा,ो, आदि) अनिच्छाकृत हो गई। इस कारण हम क्षमाप्रार्थी हैं। पाठकों से अनुरोध है कि ग्रन्थ की त्रुटियों का संशोधन करते हुए, परम पुज्य स्वामी असीमानन्द सरस्वती महाराज की पावन लीला एवं उपदेशों से लाभ उठावें।

भूमिका

इतिहास साक्षी है कि हर युग में समय-समय पर मानवता की उन्नति हेतु महापुरूषों का इस संसार में आविर्भाव होता आया है। वे अपने उद्धेश्य, कार्यों, लीलाओं एवं साधना और भक्ति से प्राप्त दिव्यता तथा सेवा कार्यों से, समस्त मानव जाति को आत्मिक उत्थान के लिये अनुप्रेरित करते रहे हैं।

ऐसे महापुरुष भी हुए हैं, जिनकी दिव्यता का दर्शन बहुत कम लोगों को या उनके जीवनकाल के उत्तरार्ध में ही संभव हो सका है। वे अपने साधारण वेश में अपने चारों ओर के मनुष्यों से सम्बद्ध रहे हैं–उनके दु:ख-सुख के साथी रहे हैं किन्तु उनकी दिव्यता और अलौकिकता हम उनके लौकिक व्यवहार को परिलक्षित करके ही देख और समझ पाए हैं। साधारण मनुष्यों की दु:खों और कष्टों से जो व्याकुल हुए दिखे हैं–धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक अनुष्ठानों में जिन्होंने पूरी शक्ति एवं निष्ठा से भाग लिया है किन्तु जो इस संसार की असारता से भी पूर्णतः भिज्ञ रहे हैं। स्वामी असीमानन्द सरस्वती जी ऐसे ही महापुरुष और संत शिरोमणि हैं।

स्वामी असीमानन्द जी, सद्‌गुरु स्वामी किरणचन्द्र दरवेश जी के परम् प्रिय शिष्य थे, जो श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी की भक्ति एवं साधना परम्परा में दीक्षित थे।

श्री चैतन्य महाप्रभु के समकालीन भक्तों में श्री अद्वैताचार्य प्रधान भक्त थे। उन्हीं के वंश में दसवीं पीढ़ी में सन् १८४१ ई० में श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी का जन्म हुआ था। भक्ति और साधना के क्षेत्र में, विशेषकर ऐसे समय जब विदेशी पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते प्रवाह से लोग विभ्रांत थे, धार्मिक एवं सांस्कृतिक नवजाग्रण का श्रेय उन्हें ही है। पूज्य श्री गोस्वामी जी की भक्ति परम्परा में अनेक संत और महापुरुष हुए जो धर्म साधना के साथ-साथ सामाजिक उन्नति, राजनैतिक नवजागरण तथा शिक्षा के क्षेत्र में, इतिहास में अपनी विशेष पहचान छोड़ गए हैं। भक्ति और साधना पथ में पूज्य दरवेश जी उसके बाद स्वामी असीमानन्द जी का योगदान सभी भक्तों और साधारण के लिये प्रेरणादायी है। प्रस्तुत ग्रन्थ स्वामी असीमानंन्द सरस्वती जी के जीवन चरित, उपदेशों और गुरू-शिष्य के बीच भक्ति और प्रेम के अनेकानेक आख्यानों से परिपूर्ण है।

एक प्रश्न जो प्रायः हम सभी के विचार में आता है कि क्या साधना, भक्ति और लौकिक कार्यों का निर्वाह, साथ-साथ एक ही समय संभव है? स्वामी जी के जीवन में हमें हमारी इस तरह की सभी शंकाओं का समाधान मिल जाता है। स्वामी जी गृहस्थ धर्म के पालन के साथ समाज, देश तथा सम्पूर्ण मानवता के प्रति समर्पित

थे। संवेदनशीलता, प्रेम, त्याग, सत्य के प्रति प्रतिबद्धता, कर्म निष्ठा, गुरू भक्ति एवं समर्पण का जैसा अद्भुत समन्वय उनके जीवन में मिलता है, वैसा अद्भुत समन्वय किसी भी भाषा के किसी भी संत की जीवनी में पढ़ने को नहीं मिलता।

ज्ञान, भक्ति, साधना, सेवा, गुरू प्रेम एवं गुरू के प्रति समर्पण केवल संतों और भक्तों के लिये ही नहीं, वरन् जनसाधारण के लिये भी प्रेरणास्पद एवं अनुकरणीय है।

स्वामी जी का सम्पूर्ण जीवन संघर्षमय रहा। दीन-हीन के प्रति उनकी संवेदनशीलता, अन्याय के विरूद्ध प्रतिबद्धता, समाजोन्नति के लिये प्रयत्नशीलता तथा धर्म परिपालन में संलग्नता ने उन्हें जीवन भर व्यस्त रखा है।

सन् १९४३ ई० में जब सम्पूर्ण बंगाल अकाल की चपेट में था, स्वामी जी व्याकुल थे। बार-बार ईश्वर से एवं गुरू से अश्रुपूर्ण नेत्रों से प्रार्थना वे करते थे—"प्रभु इनके दुःख दूर करो!" उस समय उनके समक्ष केवल एक ही उद्देश्य था कि वे भूख से व्याकुल दीन-दुःखियों को इस संताप से बचा पाएँ और उनका संकल्प पूरा हुआ। उनके आश्रम में वृहत् आयोजन हुआ। विशाल अन्नक्षेत्र प्रारम्भ हुआ जिसमें चार माह तक चौबीसों घण्टे भोजन एवं खाद्यान्न वितरण का काम चला। यह सब सामग्री कहाँ से एवं कैसे प्राप्त हुई, यह कभी पूरी तरह स्पष्ट न हो सका। ईश्वर और सद्गुरु की अनुकंपा के बिना क्या यह संभव था!

पूज्य स्वामी असीमानन्द जी के जीवनवृत्त से, धर्म में, गुरूभक्ति में और सत्कर्म में हमारी आस्था और भी अधिक पुष्ट होती है तथा सद्विचार और सत्कर्म में हमारा विश्वास दृढ़ होता है, साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि श्रद्धा, भक्ति और साधना से रहस्यमय दिव्य अनुभूति संभव है।

ऐसे समय में जब मनुष्य ने वैज्ञानिक उपलब्धियों के द्वारा इतनी उन्नति कर ली है कि आकाश की सीमा भी दूर नहीं लगती, जब इस उन्नति और प्रगति के बाद भी मानव जाति एक अज्ञात भय से आकांत है—भयभीत है, निरन्तर शान्ति की खोज में है, डर यह है कि कहीं यही उन्नति और प्रगति मानव के विनाश का कारण न बन जाए, स्वामी असीमानन्द जी की यह जीवन-कथा शक्तिदायनी, शान्ति प्रदायनी एवं प्रेरणास्पद हो सकती है।

"मानस भज रे गुरूचरणम्, दुस्तर भव-सागर तरणम्।"

प्रो. द्वारकाप्रसाद शर्मा

Formerly Vice-Chancellor, Barkatulla University
BHOPAL (M.P.)
Secretary World University Services,
South Eastern Region.

सूची पत्र

प्रथम खण्ड :– पृष्ठ

१. वंश परिचय एवं जन्म कथा १-५
२. पाठशाला में अध्ययन एवं बाल-लीला ६-१३
३. वर्द्धमान में छात्र-जीवन एवं कान्तिकारी दलों से परिचय १४-२४
४. पिता की आकस्मिक मृत्यु एवं वर्द्धमान में छात्र-जीवन की समाप्ति २५-२७
५. रामचन्द्रपुर में वापस आना एवं स्वदेशी आन्दोलन में योगदान २८-३६
६. देश की स्वाधीनता के लिये तीव्र आन्दोलन का शुभारम्भ ३७-४०
७. रामचन्द्रपुर आश्रम के राजनैतिक सम्मेलन में नेताजी का आगमन ४१-४४
८ स्वाधीनता संग्राम–'करेंगे या मरेंगे' ४५-५१
९. अन्नदा कुमार का विवाह ५२-५६
१०. देवी का दर्शन एवं पुरूलिया में 'भारती प्रेस' की स्थापना ५७-६१
११. आकस्मिक दुर्घटना एवं राजा ज्योति प्रसाद का वाराणसी में देह-त्याग ६२-६४
१२. नेताजी का 'फारवर्ड ब्लाक' गठन एवं विदेश गमन ६५-७०
१३. अन्नदा कुमार का आकस्मिक रूप से दरवेश जी का दर्शन पाना एवं दीक्षा प्राप्ति ७१-७८
१४. गोस्वामी जी के जन्मशती महोत्सव में दरवेश जी का रामचन्द्रपुर आगमन एवं अन्नदा कुमार का व्रत पालन ७९-८५
१५. 'मन्दिर' पत्रिका का शुभारम्भ एवं वाराणसी में जन्मशती महोत्सव की समाप्ति ८६-९१
१६. शान्तिपुर एवं प्रयाग कुम्भ मेला दर्शन ९२-९५
१७. रामचन्द्रपुर आश्रम में परिवार को ले आना, व्रत पालन एवं दरवेश जी का आगमन ९६-१०१
१८. रामचन्द्रपुर में अकाल के समय अन्न-क्षेत्र प्रारम्भ १०२-१०९
१९. पुत्र की दीक्षा एवं अन्नदा कुमार को गोसाँई जी का प्रत्यक्ष निर्देश ११०-११४
२०. व्रत पालन एवं राजा कल्याणी प्रसाद को अन्नदा कुमार का दीक्षा प्रदान ११५-१२२

२१. गुरू के साथ एकात्मता एवं दरवेश जी से अन्तिम निर्देश प्राप्ति १२३-१३२
२२. त्रिवेणी संगम में संन्यास ग्रहण एवं परिव्राजन १३३-१४३
२३. देश की स्वाधीनता प्राप्ति एवं स्वामीजी का पूर्वी बंगाल भ्रमण १४४-१५३
२४. बिहार प्रान्त के विधान सभा में स्वामीजी का प्रवेश १५४-१५८
२५. श्री वृन्दावन धाम की पदयात्रा १५९-१८२
२६. पुरी .एवं नवद्वीप की पदयात्रा १८३-१९१
२७. विभिन्न स्थानों का भ्रमण एवं धर्म प्रचार १९२-२२०
२८. स्वामीजी की विभिन्न प्रतिभाएं २२१-२४१
२९. स्वामीजी का महाप्रयाण २४२-२४८
३०. माता श्री शैलबाला देवी का सद्‌गुरु रूप में प्रकाश २४९-२६३
३१. उपदेश संग्रह एवं प्रश्नोत्तर २६४-३०४
३२. स्वामीजी के प्रवचन ३०५-३२०

द्वितीय खण्ड :–

लेखक के संस्मरण १-१५१

चित्र-सूची

प्रथम खण्ड में :–

१. श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी
२. श्री श्री दरवेश जी महाराज
३. स्वामीजी एवं श्री शैलबाला देवी
४. श्रीश्री गोपाल जी
५. श्री माँ मणि
६. छात्र अन्नदा कुमार
७. कान्तिकारी अन्नदा कुमार
८. स्वामी असीमानन्द सरस्वती
(अन्नदा कुमार संन्यास लेने के पश्चात्)
९. गुरुमाता श्री शैलबाला देवी

द्वितीय खण्ड में :–

१०. स्वामी असीमानन्द जी महाराज
११. स्वामीजी के साथ आलोकानन्द एवं अमंलानन्द

सद्गुरु स्वामी असीमानन्द जी की संक्षिप्त जीवन-पंजी

१. आविर्भाव – १५ फरवरी, सन् १९०४ ई०
(बंगला सन् १३१०, ३ फाल्गुन, शिवरात्रि प्रातः ४-०४ बजे)

२. जन्म स्थान – पैत्रिक निवास रामचन्द्रपुर, जिला:पुरूलिया (प० बंगाल) में।

३. वंश परिचय – पितामह–नीलकण्ठ चकवर्ती।
पिता – युगल किशोर।
माता – रजनी देवी।

४. पितामह का अप्रकट होना १९१०ई० –(बंगला सन् १३१६, शरद पूर्णिमा के दूसरे दिन, अन्नदा कुमार की उम्र ५ वर्ष, ८ महिने)।

५. पंचम जार्ज के भारत आगमन पर गांव में अनुष्ठित अभिनन्दन समारोह का बहिष्कार एवं प्रथम कविता लेखन–१२ दिसम्बर, १९११ ई०।

६. उपनयन संस्कार –१९१२-१३ ई० (अनुमित) बैद्यनाथ धाम में।

७. प्राथमिक शाला में अध्ययन –रामचन्द्रपुर एवं मुराडी में, तीन से ग्यारह वर्ष की उम्र तक।

८. माता की मृत्यु –सन् १९१६ ई० (अनुमित)।

९. वर्द्धमान में छात्र-जीवन –सन् १९१७ से १९२५ ई० तक।

१०. दुर्गाशप्तशती एवं गीता की व्यांख्या पूर्ण करना –सन् १९१९ ई०

११. पिता की मृत्यु –सन् १९२० ई० (अनुमित)।

१२. राजनैतिक आन्दोलन में सकिय योगदान –सन् १९२६ ई०।

१३. प्रथम पत्रिका 'तरूण शक्ति' का प्रकाशन –जुलाई, १९२७ ई०।

१४. मानभूम जिला राजनैतिक सम्मेलन में, रामचन्द्रपुर आश्रम में नेताजी सुभाषचन्द्र का आगमन –सन् १९२८ ई० (फाल्गुन पूर्णिमा में)।

१५. एक वर्ष का कारावास ('तरूण शक्ति' पत्रिका तथा 'गीता में कर्मयोग' के कारण) –९ अप्रेल, १९२९ ई० (पहले चाईबासा फिर हजारीबाग जेल में।)

१६. टेलर एवं चार्चर (अंग्रेजों) द्वारा रामचन्द्रपुर में अन्नदा कुमार पर अत्याचार –१४ अगस्त, १९३० ई०।

१७. रघुनाथपुर में गिरफ्तार एवं दो वर्ष का कारावास दण्ड –१७ दिसम्बर, १९३० ई० (पहले पुरूलिया में फिर फुलवारी शरीफ, बिहार में)।

१८. गांधी–इरविन पेक्ट के कारण राजनैतिक बंदियों की मुक्ति –सन् १९३१ ई०।

१९. नजरबन्द (मुराडी स्टेशन के पास) –सन् १९३२-३३ ई०

२०. विवाह –(पत्नी–शैलबाला देवी) –६ जून, १९३२ ई०।

२१. गृहस्थ आश्रम में –चार पुत्र एवं चार कन्या।

२२. 'मानभूम समिति' पत्रिका का प्रथम प्रकाशन –८ मई, १९३५ ई०

२३. 'संगठन' पत्रिका का प्रकाशन (भारती प्रेस, पुरूलिया से) –१७ मई, १९३७ ई०।

२४. कार दुर्घटना (रघुनाथपुर में, पुल के पास) –२० फरवरी, १९३८ ई०।

२५. त्रिपुरी कांग्रेस में योगदान एवं नेताजी का निर्वाचित होना –सन् १९३९ ई०।

२६. नेताजी का पद त्याग एवं फारवर्ड ब्लाक गठन के बाद पुरूलिया आगमन –९ दिसम्बर, १९३९ ई०।

२७. 'नेताजी' का विदेश गमन (कोलकाता में नजरबंद के समय) –१७ जनवरी, १९४१ ई०।

२८. अन्नदा कुमार की आकस्मिक दीक्षा –१३ मार्च, १९४१ ई० (फाल्गुन पूर्णिमा को धनबाद में)।

२९. दरवेश जी का रामचन्द्रपुर में प्रथम आगमन एवं आश्रम का नाम 'श्री श्री विजयकृष्ण आश्रम' रखना–३ मई, १९४१ ई०।

३०. गोसाँई जी के जन्मशती महोत्सव का 'श्रीश्री विजयकृष्ण मठ', काशी में प्रारम्भ एवं 'मन्दिर' पत्रिका का प्रकाशन–२ अगस्त, १९४१ ई० (झूलन पूर्णिमा के समय)।

३१. 'कुम्भ मेला' गमन –जनवरी, १९४२ ई०।

३२. (क) दरवेश जी का रामचन्द्रपुर में द्वितीय बार आगमन –बंगला सन् १३४९, २६ वैशाख (सन् १९४२ ई०) ।

(ख) माता शैलबाला देवी को दीक्षा प्रदान –२६ वैशाख से ५ ज्येष्ठ के मध्य (सन् १९४२ ई०)।

३३. अकाल के समय आश्रम में अन्नक्षेत्र प्रारम्भ–सन् १९४३ ई०।

३४. पुत्र नन्ददुलाल की काशी मठ में दीक्षा एवं अन्नदा कुमार को गोसाँई जी का प्रत्यक्ष दर्शन एवं निर्देश प्राप्ति –अप्रेल, १९४४ ई०।

३५. दरवेश जी द्वारा अन्नदा कुमार को वर प्रदान एवं दरवेश जी का महाप्रयाण –सन् १९४६ ई० (बंगला सन् १३५३, १७ आषाढ़)।

३६. त्रिवेणी संगम में संन्यास ग्रहण (संन्यास का नाम स्वामी असीमानन्द सरस्वती) –जनवरी, १९४७ ई० (माघ सप्तमी को)।

३७. स्वामीजी का प्रथम बार पूर्वी बंगाल भ्रमण –जनवरी, १९४८ ई०।

३८. नेताजी नेत्र चिकित्सालय की स्थापना –सन् १९५३ ई०।

३९. बिहार विधानसभा की सदस्यता –सन् १९५२ से १९५७ ई० तक।

४०. राजनीति से अवकाश एवं वृन्दावन धाम की पदयात्रा –२१ अक्टूबर, १९५७ ई०।

४१. जगन्नाथ पुरी धाम की पदयात्रा –६ नवम्बर, १९६१ ई० ।

४२. नवद्वीप धाम की पदयात्रा –६ नवम्बर, १९६४ ई०।

४३. रामचन्द्रपुर में अन्तिम साहित्य सम्मेलन –६-७ जनवरी, १९६८ ई०।

४४. दरवेश जी की मूर्ति प्रतिष्ठा (रामचन्द्रपुर आश्रम में) –सन् १९६८ ई० को शिवरात्रि में (बंगला सन् १३७४, १३ फाल्गुन)।

४५. केदार-बद्रीनाथ धाम गमन –जून, १९६८ ई०।

४६. सद्‌गुरु स्वामी असीमानन्द द्वारा :–

(क) लगभग पाँच हजार नर-नारियों को पूर्ण दीक्षा प्रदान की गई।

(ख) अनेक नर-नारियों को 'नाम' प्रदान किया गया।

(ग) जिन्हें दीक्षा एवं संन्यास दिया गया है, उनके नाम, इस प्रकार हैं– स्वामी हरानन्द जी, स्वामी आत्मानन्द जी, स्वामी निर्मलानन्द जी, स्वामी सम्बुद्धानन्द जी, स्वामी वासुदेवानन्द जी, स्वामी शंकरानन्द जी, स्वामी विनयानन्द जी, स्वामी चिदानन्द जी, स्वामी ब्रह्मानन्द जी, स्वामी आलोकानन्द जी, स्वामी अमलानन्द जी, स्वामी द्विजेशानन्द जी एवं स्वामी श्रीदामानन्द जी।

(घ) दीक्षा प्राप्त कुछ शिष्यों ने अन्यत्र संन्यास ग्रहण किया है जिनकी सम्पूर्ण सूची अप्राप्त है।

(ङ) अन्यत्र दीक्षा प्राप्त कुछ लोगों को भी संन्यास दिया गया।

४७. स्वामीजी का महाप्रयाण – १३ अगस्त, १९६८ ई. को रात्रि ११-१८ बजे (बंगला सन् १३७५, २८ श्रावण, कृष्ण पक्ष षष्ठी)।

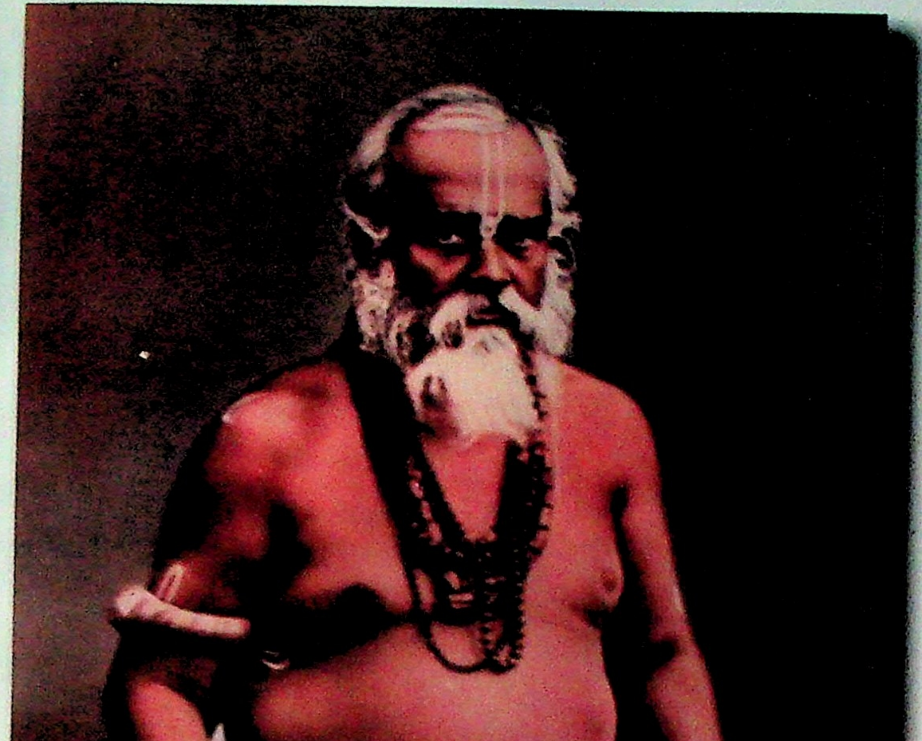

श्री श्री दरवेश जी

स्वामी असीमानन्द जी एवं श्री शैलबाला देवी

श्री श्री गोपाल जी

श्री माँ मणि

छात्र अन्नदा कुमार

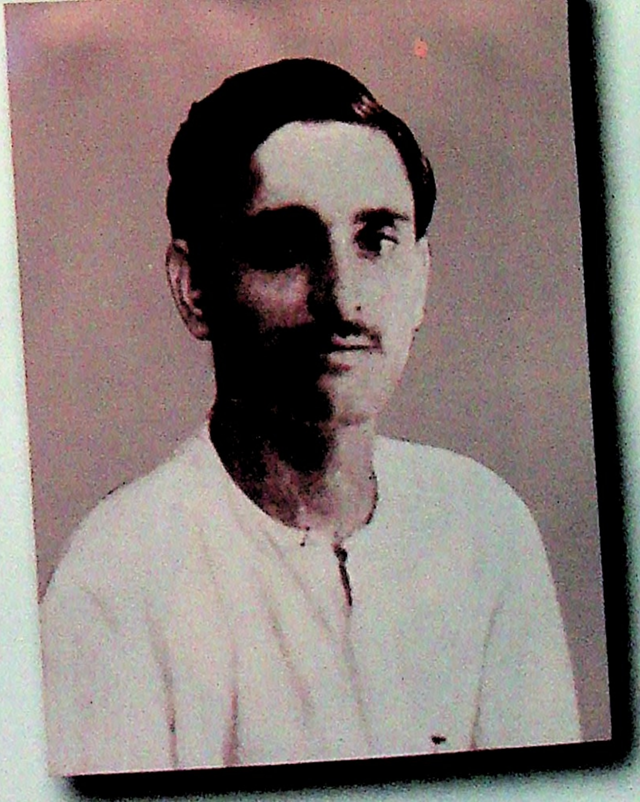

क्रान्तिकारी अन्नदा कुमार

स्वामी असीमानन्द सरस्वती
(संन्यास लेने के पश्चात्)

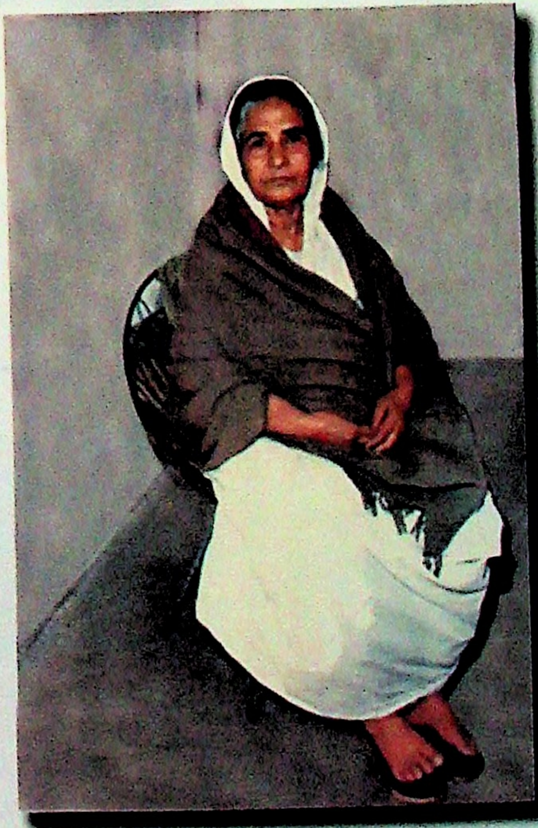

गुरु माता श्री शैलबाला देवी

अध्याय १ : वंश परिचय एवं जन्म कथा

पश्चिम बंगाल का एक छोटा सा जिला पुरुलिया है। स्वाधीनता के पूर्व यह मानभूम जिला था एवं बिहार प्रान्त के अन्तर्गत था। पंचकोट पर्वत के नाम पर यहाँ के राजा 'पंचकोट' राजा के नाम से प्रसिद्ध हुए। राजा के पुरोहित तथा गुरू के रूप में चक्रवर्ती परिवार मध्यप्रदेश के धार (इंदौर के निकट) से यहाँ आये थे । क्रमशः इनकी शाखा-प्रशाखा बढ़ती गई तथा यह 'सार्ध-सप्तशत' कान्यकुब्ज ब्राह्मण समाज के नाम से प्रसिद्ध हुआ । चक्रवर्ती परिवार से वनमाली पण्डित पंचकोट राजा जगद्देव के साथ यहाँ सर्वप्रथम आये थे। उन्हें ही पंचकोट राजवंश का प्रतिष्ठाता कहा जाता हैं। वनमाली पण्डित अन्नदा कुमार चक्रवर्ती के अस्सी पुरखे (पीढ़ी) पहले हुए।

स्वामी असीमानन्द सरस्वती के पूर्वाश्रम का नाम अन्नदा कुमार चक्रवर्ती था। इनके पितामह का नाम नीलकण्ठ चकवर्ती था। वे पुरुलिया जिले के रामचन्द्रपुर ग्राम में रहते थे। अपने पितामह के संबंध में 'आमार जीवन' नामक आत्मकथा ग्रन्थ में स्वामीजी ने जो लिखा है उसका सारांश यहाँ दिया जा रहा है–

मेरे पितामह नीलकण्ठ चक्रवर्ती अत्यन्त तेजस्वी व्यक्ति थे। प्रातः आठ बजे तक शिव पूजा करने के पश्चात् वे बाहर आते थे। वे सत्यवादी थे। वे जो कहते थे हमेशा सत्य होता था। मेरे पिताजी युगल किशोर उनके एकमात्र पुत्र थे। वे भी बहुत उदार थे। मेरी मातृदेवी का नाम रजनी देवी था। वे गोस्वामी परिवार की थीं। अपनी उदारता एवं सरलता के कारण गाँव के सभी इन्हें श्रद्धा करते थे। विवाह के समय मेरे पिता की उम्र ग्यारह वर्ष और माता की उम्र नौ वर्ष थी।

बचपन से ही पितामह के प्रभाव से माताजी भी शिवजी की भक्त हो गयीं। ग्यारह वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी उन्हें कोई सन्तान प्राप्ति नहीं हुई थी। परिजनवर्ग पिता के द्वितीय विवाह के लिए चेष्टा करने लगे। पितामह एवं पिताजी उस समय निर्विकार थे। उस दिन शिवरात्रि था। पितामह घर के आंगन में बैठे हुए थे। उस दिन उन्होंने उपवास रखा था। मेरे माता व पिताजी ने भी व्रत रखा था। उस समय अचानक कुछ कुटुम्बजन आ गये। उनकी यथायोग्य सेवा की गयी। कुछ देर बातचीत के बाद उन्होंने मेरे पिता के पुनर्विवाह का प्रस्ताव रखा। पितामह ने विस्मय प्रकाश करते हुए कहा–"आप लोग पुनर्विवाह की बात क्यों कर रहे हैं? मेरी पुत्रवधू अभी जीवित है"। उन लोगों ने पितामह को समझाते हुए कहा कि आपके समान सम्माननीय लोगों को अपनी वंश-रक्षा करना आवश्यक है। अब तक आपको पौत्र का मुख दर्शन नहीं हुआ है और भविष्य में सन्तानादि की संभावना भी दिखलाई नही

देती। बीस वर्ष की उम्र में भी आपके पुत्रवधू की सन्तान नहीं है। उन लोगो की बात सुनकर पितामह ने कहा–''आप सब मुझे माफ करेंगे। मैं किसी नारी की आँखों के अश्रु के विनिमय में पौत्र के मुख का दर्शन नही करना चाहता। एक निरपराध नारी की आँखों से अश्रु गिरेंगे और मैं अपने पुत्र का पुनर्विवाह कर पौत्र का मुँह दर्शन करूँगा, ऐसे वंश की आवश्यकता मुझे नहीं है''। इसके पश्चात् उन्होंने अपनी पुत्रवधू को बुलाकर कहा–''बेटी ! मैं जानता हूँ तुम्हारी संन्तान क्यों नहीं हो रही है। तुम लोग आज ही तीर्थ यात्रा पर निकल पड़ो। भारत के सभी प्रमुख तीर्थों का दर्शन करते हुए उसकी धूलि लेकर आओ। मैं सत्य कहता हूँ तुम अवश्य पुत्र लाभ करोगी। आज से ठीक दो वर्ष पश्चात् शिव चतुर्दशी के दिन तुम्हारे पुत्र का जन्म होगा। यदि मैं ब्राह्मण हूँ और संपूर्ण जीवन शिव जी की ठीक-ठीक उपासना की हो तो मेरी वाणी मिथ्या नहीं होगी।'' इस प्रकार कहकर अपने कुटुम्बजनों से उन्होने कहा–''मुझे माफ कीजियेगा। अपने पुत्र का मैं पुनर्विवाह नहीं कर सकता। स्त्री के जीवित रहते पुरुष के द्वितीय विवाह को मैं पाप समझता हूँ''। कुटुम्ब के लोगो ने पितामह के निर्णय की सराहना करते हुए अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करते हुए प्रस्थान किया।

पितामह के निर्देशानुसार मेरे पिता एवं माताजी उसी दिन तीर्थ भ्रमण में निकल पड़े। तीर्थ भ्रमण में जाते समय पितामह ने उन्हें निम्न निर्देश दिये–

(१) सर्वदा इष्ट-मंत्र का जप करते हुए पथ में चलना।

(२) हविष्यान्न भोजन करना।

(३) चारों धाम के दर्शन के पश्चात् वाराणसी में विश्वनाथ-अन्नपूर्णा की पूजा करना।

(४) वाराणसी से 'गया जी' आकर 'विष्णु पाद-पद्म' की पूजा करने के पश्चात् बैद्यनाथ धाम आकर विश्राम करना। इसके बाद घर लौट आना।

(५) सर्वप्रथम श्रीजगन्नाथ पुरी का दर्शन करना।

उपरोक्त निर्देश देने के पश्चात् उन्होंने कहा–''भगवान सर्वत्र हैं। घर-घर में उन्हो का अधिष्ठान है। उनके निकट कोई विशेष सम्प्रदाय नही है। शक्ति-विष्णु-शिव सब उसी एक का प्रकाश है। महावैष्णव ही महाशक्तिवान एवं महाशैव है। शक्ति के बिना शिव का अस्तित्व नही है और शिव के बिना शक्ति का अस्तित्व नही है। शैव और वैष्णव में कोई भेद नही है। यह बात सर्वदा याद रखना। तीर्थयात्रा के समय अनाथ-आर्त व्यक्ति की यथायोग्य सेवा करना कभी मत भूलना।''

पिता के निर्देशानुसार सन् १९०२ ई., शिवरात्रि के पश्चात् युगल किशोर और रजनी देवी पहले जगन्नाथ पुरी गये। इस तीर्थ में उन्होंने सद्‌गुरु विजयकृष्ण गोस्वामी जी की कृपा से स्वप्न में दीक्षा प्राप्त की। गोस्वामी जी का एक चित्र यहाँ से प्राप्त कर वे प्रतिदिन उनकी पूजा किया करते थे। उल्लेखनीय है कि इसके पूर्व

गोस्वामी जी ने पुरी में ५ जून, सन् १८९९ ई. में ही शरीर त्याग दिया था। पुरी में उनकी समाधि स्थान 'जटिया बाबा मठ' नाम से प्रसिद्ध है। पुरी धाम में रहते समय उस दम्पति का गोस्वामीजी के अनन्यतम् प्रमुख शिष्य श्री किरणचन्द्र दरवेश जी के साथ परिचय हुआ। दरवेशजी के साथ इनका बराबर पत्र व्यवहार होता रहा। गोस्वामी जी का चित्र व दरवेश जी के सभी पत्र अन्नदा कुमार ने अपने पास अच्छी तरह से रखा था, परन्तु स्वाधीनता संग्राम के समय पुलिस ने जब इनके आश्रम में आग लगा दी थी तब यह सब नष्ट हो गया। स्वामी असीमानन्द जी कहा करते थे–"**मैंने जो अमूल्य सम्पदा खो दिया है उसे कहा नही जा सकता । वह मेरे समग्र जीवन का दुर्लभ दस्तावेज था। मेरे संवंध में गुरूजी (दरवेशजी) की भविष्यवाणी उन पत्रों में थी। आज वह अक्षरशः सत्य होती जा रही है।**"

अन्नदा कुमार के पितामह, पिता व माता गोस्वामी जी के परम् भक्त बन गये। अन्नदा कुमार के साथ दरवेश जी का साक्षात्कार सन् १९४२ ई. में हुआ। इस प्रकार सन् १९०२ ई. से अन्नदा कुमार के माता-पिता का दरवेशजी के साथ अन्तरंग संबंध मानो दैव निर्दिष्ट एवं पूर्व-निर्धारित था। अन्नदा कुमार बाल्यकाल से एक महात्मा का दर्शन सर्वदा पाते रहते थे। सन् १९४२ ई. में दरवेश जी के साथ साक्षात् परिचय होने पर उन्होंने देखा कि वे महात्मा दरवेशजी ही हैं। इस प्रकार गोस्वामीजी तथा दरवेशजी की विशेष कृपा इस परिवार पर सर्वदा रही।

युगल किशोर एवं रजनी देवी ने हिमालय भ्रमण के समय ऋषिकेश के नीलकण्ठ पर्वत पर रहने वाले एक महात्मा का आशीर्वाद विशेष रूप से प्राप्त किया था। चारधाम के भ्रमण के पश्चात् ठीक शिव चतुर्दशी के दिन उन्होंने वाराणसी में विश्वनाथ जी की पूजा सम्पन्न की। यहाँ उनका कुछ दिन और रहने का विचार था, परन्तु एक सन्त के निर्देशानुसार वे 'गया जी' में 'विष्णु पादपद्म' का दर्शन करने आये। एक दिन वे 'बोध गया' पहुँचे। वहाँ बुद्धदेव का दर्शन करते हुए रजनी देवी अचानक भावमग्न होकर अचेत सी हो गयी। यहाँ से भ्रमण करते हुए दोनों बैद्यनाथ धाम पहुँचे। यहाँ आने के पश्चात्, अन्तःकरण में एक विशेष प्रेरणा पाकर उन्होंने एक व्रत प्रारम्भ किया। वे अधिकांश समय मंदिर प्रांगण में भगवत् चिन्तन करते हुए समय व्यतीत करते थे। दिन में केवल एक बार एक केला व पेड़ा इनका उस समय आहार था। एक दिन अचानक प्रातःकाल मन्दिर के दरवाजे के पास उन्होंने एक अतिसुन्दर बालक को देखा। बालक ने रजनी देवी के पास आकर कहा– "मुझे बहुत भूख लगी है, कुछ खाने को दो।" युगल किशोर ने तुरन्त दुकान से पेड़ा खरीदकर उसे बालक के हाथ में दिया। हाथ में पेड़ा लेते ही बालक अदृश्य हो गया। उन्हें यह सब स्वप्नवत् लगा। अचानक उन्होंने एक पेड़ा पास में, जहाँ बालक खड़ा था, पड़ा हुआ देखा। आनन्दपूर्वक उन्होंने इसे बैद्यनाथजी का प्रसाद मानकर ग्रहण किया। प्रसाद ग्रहण

करने के साथ ही उनके मन और शरीर में एक विशेष प्रफुल्लता अनुभव हुई। शरीर की क्लांति तथा थकान सब दूर हो गयी। उनका शरीर रोमांचित हो उठा। आँखों से अश्रु स्वतः निकलने लगा। वे बार-बार मंदिर प्रांगण में साष्टांग कर लोट-पोट होने लगे । पंडो ने सब विवरण सुनने के बाद उनके भाग्य की सराहना करते हुए दो प्रसादी माला उन्हें पहना दिया।

सन् १९०३ ई. के मई माह मे वे वापस घर आ गये। अन्नदा कुमार के पितामह ने इन्हें देखकर कहा–''मैं जब आसन पर बैठा था उस समय देखा कि तुम लोग आज आ रहे हो।'' अश्रुयुक्त नयनों से उन्होंने पुत्र व पुत्रवधू को आशीर्वाद दिया एवं रजनी देवी से कहा– **''बेटी! तुम घर की लक्ष्मी हो । मैं और थोड़े दिन ही रहूँगा। तुम्हें कुछ निर्देश दे रहा हूँ। इसे सर्वदा स्मरण रखना–**

(१) सहन करना अर्थात् धैर्य रखना ही शक्ति है।

(२) सत्य की सेवा ही ईश्वर की सेवा है। सत्य ही धर्म है। सत्य का पालन करने से सभी कुछ प्राप्त किया जा सकता है।

(३) ईश्वर सर्वत्र हैं। अपना सुख ही सब कुछ नही है। अनाथ-आर्त लोगों की सेवा ही भगवत् सेवा है।

(४) आज इस बंगला नये वर्ष के आरम्भ में तुम्हें एक व्रत के पालन का निर्देश दे रहा हूँ। जितने दिन जीवित रहो नित्य कम से कम एक अभ्यागत अतिथि को भगवान समझ कर भोजन कराना।

रजनी देवी अपने अन्तिम दिन तक इस व्रत का पालन करती रहीं। तीर्थ से वापस आने के पश्चात् वे नित्य गोस्वामी जी के चित्रपट की सेवा-पूजा करती थीं । इस तरह की नियमित पूजा से वह पट जागृत हो गया। रजनी देवी उनके साथ बातचीत करती तथा हर कार्य में उनकी अनुमति लेकर अग्रसर होतीं। चित्रपट को वे सदा छिपा कर रखती थीं । अपने दीक्षा प्राप्ति की घटना की भी किसी से चर्चा नही करती थीं। उनके कुलगुरु शाक्त थे इसलिए वैष्णव गुरू से दीक्षा लेने की बात उन्होंने गुप्त रखी।

सन् १९०४ ई. की शिवचतुर्दशी के दिन सभी ने उपवास किया था। अन्नदा कुमार के पितामह चार प्रहर में चार बार शिवपूजा करते थे। व्रत लेने वाले सभी रात्रि जागरण करते थे। तृतीय प्रहर की पूजा समाप्त हो गयी। उसी समय अचानक रजनी देवी के शरीर में कम्पन्न दिखलाई पड़ने लगा। अपने श्वसुर के निर्देशानुसार गोस्वामी जी के चित्रपट को अपने साथ लेकर रजनी देवी प्रसूतिगृह में प्रविष्ट हुई। कुछ समय के भीतर अन्नदा कुमार का जन्म हुआ। इस तरह १५ फरवरी, सन् १९०४ ई. (बंगाब्द १३१० - ३ फाल्गुन) में प्रातः ४ बज कर ४ मिनट पर अन्नदा कुमार का जन्म हुआ। उस समय पितामह एवं उनके मित्र ज्योतिषी हर्ष आचार्य जैसे ही सूतिकागृह में प्रविष्ट हुए गोस्वामी जी को प्रत्यक्ष दर्शन कर उन्होंने प्रणाम किया। रजनी देवी ने

कहा–पिताजी, ये चित्रपट के साधु सर्वदा मेरे निकट हैं। मैंने उनके चरणों में अपने पुत्र को उत्सर्ग कर दिया है। उन्होने रजनी देवी से पूछा–'तुम्हारे पुत्र को हम लोग क्या आशीर्वाद दें?' रजनी देवी ने कहा–'**मेरा पुत्र गरीब रहे पर उसका मन कभी भी छोटा न हो। विषय का विष उसे स्पर्श न करे। यही मेरी प्रार्थना है।**' बालक को आशीर्वाद देते हुए पितामह ने रजनी देवी से कहा–''**ऐसा ही होगा । मेरे शिव भी भिखारी हैं, तुम्हारा पुत्र भी भिखारी होगा**''।

अन्नदा कुमार के जन्म के पश्चात् धीरे-धीरे जमीन आदि सभी सम्पत्तियाँ नष्ट होने लगी। पितामह ने जब शरीर त्यागा उस समय अन्नदा कुमार की उम्र छैः वर्ष थी। मृत्यु के पूर्व रजनी देवी से उन्होंने कहा था–''**कल प्रातः मैं शरीर त्याग दूँगा। तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण होगी। ऐश्वर्य के भीतर रहकर तुम्हारा पुत्र कभी भी उसमें मग्न नहो होगा। कुछ वषो के भीतर सभी सम्पत्ति समाप्त हो जायेगी । पर चिन्ता की कोई बात नहो, जिस महात्मा के चरणों का आश्रय लेकर तुम पड़ी हो उन्ह्ये के ऊपर इस परिवार का भार मैंने अर्पण कर दिया है। आशीर्वाद करता हूँ दरिद्रता के भीतर रहकर तुम्हारी जय हो**''। इनकी मृत्यु के पूर्व घर एवं पड़ोस के सभी लोग मौजूद थे। रजनी देवी के पास जो महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी जी का पट था उसे प्रणाम करने के उपरान्त उन्होंने तीन बार 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का उच्चारण करते हुए शरीर त्याग दिया। इनकी मृत्यु के पश्चात् दो-तीन वर्षों में ही धन, पशु एवं जमीन आदि सम्पत्तियाँ नष्ट होने लगी। पहले जहाँ कुटुम्बजनों का सर्वदा आना-जाना लगा रहता था, वह गृह सूना सा हो गया।

अन्नदा कुमार के पिता भी उदार हृदय के एवं सत्यवादी थे। अन्याय कार्यों का वे दृढ़तापूर्वक प्रतिवाद करते थे। सभी की मंगल कामना करते हुए वे निरपेक्ष रहते थे। इस कारण गाँव के लोग उन्हें श्रद्धा करते थे। अपने उदार स्वभाव वश, कर्ज रहते हुए भी गरीब लोगों की गुप्त रूप से सहायता किया करते थे।

* * *

अध्याय २ : पाठशाला में अध्ययन एवं बाल-लीला

पिता एवं पितामह के सभी सद्गुण अन्नदा कुमार के भीतर छुटपन से देखा गया। तीन वर्ष की उम्र में अन्नदा कुमार ग्राम की पाठशाला में भर्ती किये गये। सात वर्ष की उम्र में वे प्राथमिक शाला की परीक्षा में अच्छी तरह उत्तीर्ण हुए। उस समय के पाठशाला की शिक्षा व्यवस्था का मनोरम वर्णन अन्नदा प्रसाद द्वारा रचित ग्रन्थ–'आमार जीवन' में मिलता है। यहाँ संक्षेप में उसका उल्लेख किया जा रहा है–

"उस समय पाठशाला में दो शिक्षक थे। प्रधान शिक्षक को बड़े पण्डित एवं सहायक शिक्षक को छोटा पण्डित कहा जाता था। बड़े पण्डित का वेतन छः रूपये व छोटे पण्डित का वेतन तीन रूपये मासिक था। शिक्षक गांव में किसी के घर पर रहते थे। वे पाठशाला जाते समय अपने छात्रों को घर से बुलाकर ले जाते थे। उस समय शिक्षकों का छात्रों के प्रति अत्यन्त प्रेमभाव तथा कड़ा अनुशासन भी था। थोडा भी गलत काम करने पर या पढाई में उदासीन रहने पर पण्डित जी अपनी मर्जी के अनुसार अपराध का मूल्यांकन कर कठोर दण्ड देते थे। यथा वेत्राघात, छोटे-छोटे पत्थरो के ऊपर घुटना टिकाना, एक पैर पर खड़ा करना, कान पकड़ कर उठक-बैठक करवाना, नाक के बल शरीर को घसीटना, रस्सी से लटकाकर चाबुक का प्रहार आदि। ये सभी दण्ड छात्रों को चरित्रवान बनाने में सहायक थे। छात्र भी उधम मचाने में प्रतिस्पर्धा किया करते थे यथा वृक्ष से तालाब में कुदना, तम्बाखु सेवन, पण्डित जी के बैठने के आसन पर केवाच चूर्ण छिड़क देना, कक्षा में निद्रामग्न पण्डितजी की शिखा काटना इत्यादि। इन सब उपद्रव को पण्डित जी कठोरता से दमन करते थे। इन अपराधों को करने के बावजूद यदि छात्र पण्डित जी के चरणों में क्षमा मांग लेता तथा सत्य बात कहता तो उन्हें पण्डितजी तुरन्त क्षमा भी कर देते थे। किसी छात्र के अस्वस्थता का समाचार मिलने पर जब तक वह छात्र स्वस्थ नही हो जाता, पण्डित जी नियमित उसके घर जाकर पथ्य एवं चिकित्सा की आवश्यक व्यवस्था उसे प्रदान करते थे। इस तरह कठोर अनुशासन एवं छात्रों के प्रति प्रेमभाव शिक्षकों में देखा जाता था। शिक्षकों का आचार-विचार सात्विक एवं जीवन संयमित था। इस प्रकार आदर्श शिक्षक अपने स्नेहमय, करूणा भावना तथा सहानुभूति के कारण कठोर शासन करने के बावजूद छात्रों की श्रद्धा प्राप्त करते थे।"

अन्नदा कुमार अपने प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने वाले पण्डितजी श्री ब्रजनाथ सरकार के प्रति आजीवन कृतज्ञता व्यक्त करते रहे। उस समय के छात्र एवं शिक्षक दोनों की तुलना करते हुए अन्नदा कुमार ने कहा है–"पण्डितजी हमारे ग्राम के

सम्माननीय व्यक्ति माने जाते थे। गृहस्थ के किसी अनुष्ठान में उन्हें सम्मानपूर्वक आमंत्रित किया जाता था तथा दक्षिणा के रूप में कपड़ा, चादर आदि दिया जाता था। यदि पण्डित जी को कोई अपमानित करे, तो समाज की तरफ से उस व्यक्ति को सजा दी जाती थी। शिक्षक पढ़ाई के साथ छात्रों को सत्यवादी एवं चरित्रवान बनाने में विशेष ध्यान देते थे। लेकिन आज शिक्षक का स्थान कृतदास की तरह है। अन्याय या गलत कार्य करने पर यदि शिक्षक छात्र को कुछ कहे तो उन्हें अपमानित किया जाता है। शिक्षक भी आदर्श से भ्रष्ट देखे जाते हैं। उस समय छात्र साधारण वेशभूषा में रहते थे। विलासिता का प्रभाव उन पर नहो था। गाँव में उच्च-नीच, धनी-गरीब सभी छात्र एक साथ पढ़ते थे। गाँव में दुर्गापूजा, कालीपूजा, सरस्वती पूजा आदि तथा अखंड नाम-संकीर्तन के कार्यकम में सभी ग्रामवासी सहयोग देते थे।''

१२ दिसम्बर, सन् १९११ ई. में पंचम जार्ज के भारत आगमन पर सभी शहर एवं गाँव में आनन्द उत्सव का आयोजन किया गया । हर विद्यालय को फूलों से सजाया गया। रास्तों को तोरण एवं अभिनन्दन द्वारों से सजाया गया। पंचम जार्ज के सम्मान में उस दिन पाठशाला के छात्रों द्वारा रास्ते में सम्राट की जयध्वनि के साथ जुलूस निकाला गया । उस समय अन्नदा कुमार प्रायः आठ वर्ष के थे। उन्होंने सम्राट की जयध्वनि देना अस्वीकार कर दिया। शिक्षकों ने पहले उन्हें समझाने की कोशिश की, न मानने पर उन पर कठोर प्रहार भी किया गया, पर उस विद्रोही बालक ने विदेशी शासक की जयध्वनि नही दी। उन्होंने पाठशाला जाना बन्द कर दिया। उस समय माता-पिता ने उनके साहसिक कार्य की सराहना की। पुलिस के दरोगा ने भी आकर बालक को डर दिखाया, पर बालक को अपने संकल्प से विच्युत न कर सके। उस समय इस विद्रोही बालक अन्नदा कुमार ने बंगला भाषा में एक कविता लिखी, जिसका सारांश अनुवाद इस प्रकार है–''**जिन्होंने हमारे गरीब जुलाहों की अंगुलिया काट दी उन हत्यारों की जयध्वनि मैं प्राण निकलने पर भी नही दूँगा। तुम लोग किसके लिए रास्तों को सजाकर और वाद्य वजा कर आनन्द कर रहे हो? पंचम जार्ज विदेशी राजा है, उनकी जय देने की क्या आवश्यकता है? दूसरे देश के राजा की जयध्वनि देने में तुम्ह लज्जा आनी चाहिए । आज का दिन हमारे लिए आनन्द का नही वरन् शोक दिवस है । मेरी माँ ने मुझे कहा है वे हमारे देश के बन्धु नह्ले शत्रु ह । हमारे देश में विदेशी लोग शासन करेंगे, इस अपमान को हम कैसे सहन करें? तुम लोगों के साथ जुलूस में जाना मुझे लज्जाजनक कार्य लगता है। अपने देश के लोग जब राजा बनेंगे तभी हमारी शाभा बढ़गी। जव हमारा देश स्वाधीन होगा तभी हम उत्सव का आयोजन करेंगे। माँ ने मुझे कहा है जिस दिन देश स्वाधीन होगा उस दिन हम अच्छे वस्त्रादि पहनेंगे।''**

माँ ने अंग्रेजों के अत्याचार की जो कहानी सुनाई थी उसका प्रभाव बालक पर

पड़ा। बालक के मन में देश-मातृका के प्रति श्रद्धा एवं गरीबो के प्रति जो सहानुभूति जागी थी वह इस प्रथम कविता के रूप में प्रकाशित हुई। अन्नदा कुमार के कोमल मन पर इस घटना की स्थाई छाप पड़ गयी। पाठशाला निरीक्षक की मध्यस्थता से यह घटना और आगे नहीं बढ़ी एवं बालक ने पुनः पाठशाला जाना आरम्भ किया। परन्तु अन्नदा कुमार का मन अब पढ़ाई मे उदासीन रहने लगा। उपरोक्त कविता लिखने के बाद से अन्नदा कुमार की काव्य-प्रतिभा जाग गयी। वे प्रायः कुछ न कुछ कविता लिखने लगे।

एक दिन अपने मित्रों के साथ पहाड़ पर चढ़ते समय अन्नदा कुमार अचानक काफी ऊँचाई से फिसलकर गिर पड़े। सौभाग्यवश वे गिरते-गिरते एक पेड़ पर फस गये और बेहोश हो गये। उनके साथियों ने उन्हें खोजकर किसी प्रकार वहाँ से निकाला एवं घर पहुँचाया। लगभग एक महिने वे बिस्तर पर पड़े रहे। उस समय वे सर्वदा एक अस्पष्ट मूर्ति को अपने पास बैठे हुए देखा करते थे। जब शरीर में ज्यादा दर्द होता, उस मूर्ति के स्नेह स्पर्श से वे शारीरिक कष्ट भूलकर निद्रामग्न हो जाते थे। इस दुर्घटना में उन्हें दाहिने पैर पर चोट लगी थी। इस समय उनके संथाल मित्रों ने इनकी बहुत सेवा की थी।

रामचन्द्रपुर ग्राम के आसपास पहाड़ एवं जंगल था। यहाँ संथाल जाति के लोग रहते थे । गांव के कृषि कार्य की देख-रेख ये लोग करते थे। संथाल लोग निडर स्पष्टवादी, स्वास्थ्यवान एवं सरल स्वभाव के थे। अन्नदा कुमार की संथाल परिवारों के साथ घनिष्टता बाल्यकाल से ही देखी गयी। अपने मित्र शंभू संथाल एवं उनकी माँ का उल्लेख अन्नदा कुमार ने 'आमार जीवन' ग्रन्थ में श्रद्धा पूर्वक की है। उन्हो लोगों के पास से उन्होंने तीर चलाने की शिक्षा प्राप्त की थी। स्वाधीनता संग्राम के समय संथालों की जो सहायता उन्होंने प्राप्त की थी उसका उल्लेख यथास्थान किया जायेगा।

रामचन्द्रपुर के एक छोर पर श्मशान है। वहाँ एक प्राचीन एवं विशाल पीपल वृक्ष के नीचे अन्नदा कुमार प्रायः जाकर बैठे रहते थे। गॉव के लोग जहाँ श्मशान भूमि में जाने से डरते थे वहाँ बालक अन्नदा कुमार भावविभोर होकर घंटों बैठे रहते थे। वहाँ बैठने के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के दृश्य उनके समक्ष प्रकट होते थे। इन दृश्यों में एक संन्यासी की मूर्ति कभी-कभी दिखलाई पड़ती थी। एक दिन इसी तरह एकांत में जब वे भाव मग्न बैठे हुए थे अचानक उस संन्यासी का आविर्भाव हुआ एवं उन्होंने कहा–'यहाँ से यथाशीघ्र भाग जाओ।' अन्नदा कुमार ने पूछा–कहाँ जाऊँ? संन्यासी ने कहा–'यह भी क्या तुम्हें कहना पड़ेगा?' इन सब बातों को सुनकर अन्नदा कुमार मानो एक दूसरे जगत् में चले गये। जब वे सचेत हुए तब सन्ध्या हो गयी थी एवं वहाँ कोई भी नहो था। घर आकर उन्होंने अपनी माँ से सब बातें कही। माँ ने कहा– ''तुम घर पर नही रहोगे यह मुझे ज्ञात है। मैं तुम्हें कोई भी बाधा नही दूँगी लेकिन घर

छोड़कर चले जाने के लिए भी नही कहूँगी। जिनके हाथों में मैंने तुम्हारा भार दिया है वे ही तुम्हारी आवश्यक व्यवस्था करेंगे।''

अपने अन्तरंग मित्र मोतीलाल को जब यह सब घटना बतलाई तब उन्होंने अन्नदा कुमार को बार-बार सावधान करते हुए, श्मशान भूमि में जाने के लिए मना किया एवं कहा कि यह सब किसी भूत का कार्य है। किसी दिन वह भूत गला दबाकर तुम्हें मार डालेगा और हम सब तुम्हारे लिए रोते रहेंगे। मित्र के निषेध करने पर भी अन्नदा कुमार वहाँ जाते रहे। एक दिन मित्र मोतीलाल के साथ अन्नदा कुमार ने घर से भागने की योजना बनाई। अपनी ही जमीन से कुछ धान संग्रह कर उसे बेचने पर उन्हें सात आना मिला। उस समय एक पैसे में दो सेर धान मिलता था । दूसरे दिन दोनो मित्र मुराडी स्टेशन पहुँचे। मोतीलाल के बड़े भाई को इनके भागने की खबर कहो से मिल गयी। उन्होंने मोतीलाल को डरा-धमका कर घर वापस ले आया। अन्नदा कुमार आद्रा स्टेशन की टिकिट लेकर अकेले ही ट्रेन पर चढ़ गये। इसके पूर्व केवल एक बार वे ट्रेन पर चढ़े थे। आद्रा स्टेशन पर उतरने के बाद वे सोचने लगे कि अब कहाँ जायें? अचानक उनके फ़फाजी शान्तिराम गोस्वामी ने उन्हें अकेला यहाँ देखकर पूछा–'तुम यहाँ कैसे आ गये? मेरे घर चलो'। वहाँ से दो किलोमीटर दूर अपने गाँव में अन्नदा कुमार को वे ले गये। अन्नदा कुमार कुछ भी नहो कह सके ।

रात्रि के समय अन्नदा कुमार ने फिर से उस संन्यासी को प्रत्यक्ष देखा एवं उनके निर्देशानुसार वहाँ से वे मंत्रमुग्धवत् निकल पड़े। सुबह जब उन्हें होश आया तो अपने को काशीपुर नामक स्थान के एक भैरव मन्दिर में लेटे हुए पाया । वे सोचने लगे कि मैं यहाँ किस प्रकार आया? तभी अपने परिचित पुजारी कालीपद शान्तिकारी को वहाँ देखा। पुजारी उन्हें काशीपुर राजा के प्रधान पुरोहित एवं सभा पण्डित राखाल चन्द्र विद्यारत्न के पास ले गये। काशीपुर उस समय पंचकोट राज्य की राजधानी थी। यह आद्रा स्टेशन से पांच किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। अन्नदा कुमार से सब घटना सुनने के बाद विद्यारत्नजी ने कहा–'अबसे अकेले कहीं मत जाना, यहो पर रहो।' दूसरे दिन अन्नदा कुमार के पिता को इनका समाचार मिल गया। वे काशीपुर आकर पण्डित जी के पास से अन्नदा कुमार को वापस घर ले आये।

अन्नदा कुमार ने पुनः प्राचीन पीपल वृक्ष के नीचे आकार बैठना शुरू किया। उस समय वहाँ दिखने वाले दृश्यों का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा था–'मुझे वहाँ बैठने पर ऐसा लगता था मानो मैं किसी विशाल पर्वत की गुफा में बैठा हुआ हूँ। सामने धूनि जल रही है। चारों तरफ अनेक संन्यासी बैठे हुए है। कभी-कभी संन्यासियों के सहित विभिन्न पर्वतों पर हम भ्रमण करते रहते थे। वृक्ष के नीचे बैठने पर एक मंत्र भी आँखों के सामने स्वर्णाक्षरों में स्वतः प्रकट होता था। कभी-कभी मंत्र के अक्षरों के भीतर से स्वर्णमय ज्योति प्रकाशित होने पर सब दिशा आलोकित हो

उठती। मेरे गुरूदेव दरवेशजी जब यहाँ पर आये थे तब उन्होने बतलाया था कि यह सब तुम्हारे पूर्व जन्म का स्मृतिचित्र है। यह स्थान उनको अत्यन्त परिचित सा लगा। उन्हें ऐसा लग रहा था कि वे वहो रह जायें।'

एक दिन इसी स्थान पर अन्नदा कुमार ने मनोहर वंशीधारी ग्वालबाल के रूप मे भगवान कृष्ण का दर्शन किया। अपनी माँ को सब घटना बतलाने पर वे हँसते हुए बोलो–'तू क्या पढाई-लिखाई नही करेगा?' अन्नदा कुमार ने जवाब दिया–'क्या होगा पढ़ाई करने से? इससे तो ग्वालो के साथ गाये चराना अच्छा है।' माँ हँसते हुए बोलो–'ऐसा लगता है अन्त मे तुझे गाये चराना ही पड़गा।' इस तरह अनेक छोटी-छोटी घटनाएं बाल्यकाल से ही अन्नदा कुमार के समक्ष प्रकट होती रहती थी।

रामचन्द्रपुर गाँव की पाठशाला की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अन्नदा कुमार मुराडी के स्कूल मे भर्ती किये गये। यह स्कूल रामचन्द्रपुर से चार किलोमीटर की दूरी पर है। मुराडी स्कूल मे अध्ययन के समय अन्नदा कुमार ने वहाँ के ग्रन्थागार की प्रायः सभी पुस्तकों को धीरे-धीरे पढ लिया। उस समय बंगला भाषा मे 'प्रवासी' एवं 'भारतवर्ष' नामक मासिक पत्रिका बहुत प्रसिद्ध थी। इन पत्रिकाओ में बंगाल के विशिष्ट विद्वानों के लेख एवं रविन्द्रनाथ, कुमुदरंजन मल्लिक, कालीदास राय आदि की कविताएं प्रकाशित होती थी। इन कविताओं एवं लेखों से वे विशेष प्रभावित हुए। वे कहते थे–'मेरे साहित्यिक, सांवादिकता तथा राजनैतिक जीवन के प्रमुख सहायक, स्कूल के प्रधान पंडित पशुपति मंडल थे। एक साधारण स्कूल शिक्षक के भीतर जो निर्भिकता, ईश्वर के प्रति निर्भरता एवं सत्य के प्रति दृढ़ अनुराग था वैसा बहुत कम दिखलाई पड़ता है।' एक बार जब अचानक अन्नदा कुमार का स्वास्थ्य खराब हो गया था और वे दवाई एवं आवश्यक पथ्य आदि न लेने के कारण बहुत कमजोर हो गये थे तब वे शिक्षक महोदय उनके घर आए एवं अन्नदा कुमार को समझाया–''इस तरह बिस्तर पर पड़े हुए तुम्हें मरना न पड़े। अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह करते हुए तुम्हे युद्ध करना होगा। मरना है तो मनुष्य की तरह मरो। म तुम्हें यही आशीर्वाद दे रहा हूँ।'' अपने प्रिय शिक्षक की बातों को सुनकर अन्नदा कुमार के शरीर में विशेष शक्ति का संचार हुआ। उन्होंने शिक्षक के चरणों में प्रणाम करते हुए प्रतिज्ञा की–''पण्डित जी, भारतवर्ष जब तक स्वाधीन न हो जाए, मैं कभी नही मरूँगा। आज से अंग्रेजों की शासन व्यवस्था को समाप्त करने के लिए अपने जीवन मे कार्य शुरू करूँगा''। भविष्य में स्वाधीनता के आन्दोलन के समय जब उनके आश्रम की प्रतिष्ठा हुई उस समय उन्होंने एक तख्ता (साइनबोर्ड) लगाया जिस पर लिखा था–**''अंग्रेज शासन का उच्छेद करना ही मेरे जीवन का लक्ष्य एवं उद्देश्य है।''** उस तरह अपने श्रद्धेय पण्डित जी की प्रेरणा और आशीर्वाद उनके संघर्षमय जीवन के दिशा-निर्देश में अत्यन्त सहायक रहे।

मुराडी ग्राम के स्कूल की पढ़ाई के समय एक ओर तो इनकी काव्य एवं साहित्य के प्रति रूचि दिनों-दिन बढ़ती गयी और दूसरी और ग्राम के लोगों की सहज-सरल , रहन-सहन एवं प्रेमभावना द्वारा इनके मन में यह सत्य प्रकट हुआ कि अपने कुटुम्ब या परिवार के लोग ही केवल अपने नहो है। आन्तरिक प्रेम भावना दूर के व्यक्ति को निकट एवं अनात्मीय को अपना अंतरंग आत्मीय कर देती है। मुराडी में पढते समय घर के साथ इनका सम्बन्ध स्वतः कम हो गया। रविवार के दिन वे अपनी मॉ के पास आते थे एवं छैः दिनों की खाद्य सामग्री लेकर वापस मुराडी चले जाते थे। मुराडी गाँव के लोगों का उन्होंने जो स्नेह प्राप्त किया था उसका उल्लेख अपने 'आमार जीवन' ग्रन्थ में किया है। साधक चण्डीदास के दोहे–**''सबार ऊपर मानुष सत्य ताहार ऊपरे नाई''**–की पुनरावृत्ति शिक्षक पशुपति मंडल हमेशा करते रहते थे। उनका कहना था–**''ईश्वर क्या केवल मन्दिर में रहते हैं? जाओ घर-घर में जाकर देखो–कितने रूपों में–कितने प्रकार की भावनाओ में 'वे' सर्वत्र विराजित हैं । यदि चेतना युक्त मानव के भीतर तुम 'उन्हें' नही खोज पाते हो तो पत्थर में भी 'उन्हें' नही पाओगे।''** उस समय मुराडी ग्राम में ज्योतिष, आयुर्वेद, संस्कृत आदि सभी विषयों के विशिष्ट विद्वान मिलते थे। दूर-दूर से छात्र इस ग्राम में शिक्षा प्राप्त करने आते थे। उनके रहने एवं भोजन की व्यवस्था ग्राम के लोग आनन्दपूर्वक करते थे। मुराडी में पूर्व माध्यमिक विद्यालय (Middle School) आज यद्यपि उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में परिवर्तित हो गया है तथा बड़े-बड़े कमरों से युक्त विद्यालय बन गये हैं पर वह अपने आदर्श से भ्रष्ट हो गया है। आज न तो उस तरह के आदर्श शिक्षक हैं और न ही छात्रों में त्याग एवं संयम की भावना है। काल के प्रभाव से आधुनिक शिक्षा के नाम पर विलासिता तथा असहिष्णुता ने सभी को ग्रास लिया है।

यहाँ पढ़ते समय अन्नदा कुमार के उत्तेजक लेख एवं कविता से सरकार की दृष्टि इन पर पड़ गई। स्कूल के परिचालक एवं निरीक्षक (Inspector) ने अन्नदा कुमार को एकांत में बुलाकर उनसे पूछताछ किया। निर्भिक बालक के उत्तरों को सुनकर वे भी प्रभावित हो गये। दो बार इनके घर की तलाशी भी ली गई किन्तु आपत्तिजनक कुछ भी न मिलने पर उन्हें सजा नहीं मिली। इस तरह लगभग ग्यारह वर्ष की उम्र में अन्नदा कुमार ने मुराडी की पढ़ाई समाप्त कर पूर्व माध्यमिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर लिया।

इस समय अचानक इनके छः वर्षीय भाई का देहान्त हो गया। अब केवल सात वर्षीय छोटी बहन बीना रह गयी। घर पर इनके माता-पिता कठिन आर्थिक परिस्थिति के भीतर रहते हुए संघर्षमय जीवन व्यतीत कर रहे थे। इस वर्ष अन्नदा कुमार का उपनयन संस्कार (यज्ञोपवित) बैद्यनाथधाम में सम्पन्न हुआ। मुराडी स्कूल की पढ़ाई के बाद ये रांची में बंगला भाषा के शिक्षकों के प्रशिक्षण स्कूल में भर्ती हुए। **यहाँ रहते**

समय अन्नदा कुमार के पूर्व संस्कार वश प्राप्त मंत्र का जप अपने आप होता रहता था। कभी-कभी जप के समय अस्पष्ट छाया-मूर्ति भी दिखलाई पड़ती थी और कभी-कभी जप करते हुए सारी रात बीत जाती थी। इस प्रकार दो महिने बीत जाने पर स्कूल में गर्मी की छुट्टियाँ प्रारम्भ हो गयी। सभी छात्र अपने-अपने घर की ओर प्रस्थान किये। उस समय अन्नदा कुमार अचानक अपनी माँ के लिए व्याकुल हो गये। घर पहुँचने पर उन्होंने देखा कि मॉ मृत्यु-शय्या पर पड़ी है। पिताजी किसी कार्य वश बाहर गये हुए थे, उन्हें खबर भेजी गई। माँ के सिरहाने के पास महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी का चित्रपट टंगा हुआ था। माता सर्वदा उनके ध्यान में तल्लीन रहती थी। पिताजी के आने के बाद माँ ने एक बार उनकी तरफ देखकर प्रणाम किया एवं अपने इष्ट सद्‌गुरू का चिन्तन करते हुए महाप्रस्थान किया। माँ का पारलौकिक कृत्य यथाविधि सम्पन्न हुआ। अन्नदा कुमार अपनी माँ के विरह में अपने प्रिय स्थान में, श्मशान के पीपल वृक्ष के नीचे, जाकर मन्त्र जप में लीन रहते। एक दिन माँ का चिन्तन करते हुए वे बिस्तर पर लेटे हुए थे। माँ के विरह में उन्हें निद्रा नहीं आ रही थी। अचानक उन्होंने अपनी मॉ को प्रत्यक्ष देखा। उन्हें देखते ही अन्नदा कुमार जोर से 'माँ' कहकर चींख उठे। पिताजी पास में सोए हुए थे। उन्होंने पूछा 'क्या हुआ? डर लग रहा है?' अन्नदा कुमार उस समय भी मॅा का प्रत्यक्ष दर्शन पा रहे थे। उन्होंने पिताजी को सब बतलाया परन्तु और किसी को यह दर्शन नही मिला। इस घटना के पश्चात् अन्नदा कुमार नित्य रात्रि बारह बजे से प्रातःकाल तक अपनी माँ का दर्शन प्राप्त कर उनसे बातचीत करते रहते थे। मॉ शरीर में नहीं है यह विचार उनके मन से लुप्त हो गया। मॉ उन्हें सर्वदा मत्र जप करने के लिए उत्साहित करतो।

ग्रीष्म अवकाश के बाद अन्नदा कुमार रांची आ गये। यहाँ उनका शरीर अस्वस्थ हो गया। अतः पढ़ाई छोड़कर उन्हें वापस पिता के पास रामचन्द्रपुर आना पड़ा। अब वे अपने पुराने शिक्षक पशुपति मंडल के पास प्रायः जाने लगे। पशुपति मंडल उन्हें भारतवर्ष के राजनैतिक संघर्ष की कहानी सुनाते थे। उस समय उनसे सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय, विपिनचन्द्र पाल, मनोरंजन गुह ठाकुरता, अश्वनीकुमार दत्त आदि के विषय में उनकी स्वदेश सेवा एवं साधना के सम्बन्ध में अन्नदा कुमार ने बहुत कुछ सुना। उन्हें यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि इन सभी के गुरू, जिनकी वे बचपन से कृपा प्राप्त कर रहे हैं, सद्‌गुरू विजयकृष्ण गोस्वामी जी ही हैं। इस प्रकार राजनैतिक चेतना का उन्मेष बाल्यकाल से उन्हें देश की सेवा में प्रबोधित किया। इस समय उनकी उम्र बारह वर्ष थी। इस अल्प आयु में उन्होंने जिन 'सत्य' की उपलब्धि, की उसका उल्लेख अपने 'आमार जीवन' ग्रन्थ में किया। यथा—

(१) पार्थिव विषय सम्पत्ति का कोई मूल्य नहो है अर्थात सभी नश्वर हैं।

(२) देश की सेवा करने से ही भगवान् की सेवा सम्पन्न होगी।

(३)-माता-पिता, रोगी, दुःखी, अनाथ तथा आर्त की सेवा और भगवान् की सेवा में कोई अन्तर नहो है।

(४) ब्राह्मण के घर जन्म लेने से ही कोई ब्राह्मण नही हो जाता। संथाल घर या निम्न कुल में भी ब्राह्मण का जन्म हो सकता है। अपने प्रिय संथाल मित्र के भीतर इसका प्रभाव उन्हें मिला था।

(५) मातृ जाति की सेवा द्वारा उनके आशीर्वाद को प्राप्त कर वास्तव में शक्ति प्राप्त की जा सकती है।

(६) महात्मा लोग हमारे कल्याण के लिए उच्चलोक से अवतरण करते हैं।

(७) पशु के मध्य भी पूर्व संस्कार कार्यरत है। पशुयोनि में भी कर्म वश महान् आत्मा जन्म ग्रहण करती है।

अध्याय ३ : वर्द्धमान में छात्र-जीवन एवं कान्तिकारी दलों से परिचय

पिताजी की आर्थिक स्थिति खराब होने से अन्नदा कुमार ने अब वर्द्धमान जाकर अध्ययन के साथ-साथ कुछ कार्य करने का विचार किया। उस समय वर्द्धमान में उनके परिचित कई लोग रहते थे। इनके पिता ने इच्छा न रहने पर भी पुत्र के भविष्य की चिन्ता कर उन्हें वर्द्धमान भेजना स्थिर किया। अन्नदा कुमार गाँव के विभिन्न मन्दिरों एवं गुरूजनों को प्रणाम कर रामचन्द्रपुर से वर्द्धमान के लिए रवाना हुए। इस समय उनकी उम्र तेरह वर्ष थी। यथा समय स्टेशन में पिता एवं मित्रगण अन्नदा कुमार को ट्रेन में चढ़ाने आये। उन्होंने पिता को प्रणाम किया। उस समय पिता की आँखों से अश्रु निकल पड़े। इसी समय अचानक अपनी परलोकगत माँ का अन्नदा कुमार ने प्रत्यक्ष दर्शन किया। माँ ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा–''**कोई डर नही है, तुम वर्द्धमान जाओ। वहाँ तुम्हारे लिए सभी व्यवस्था तैयार है।**'' माँ का आश्वासन पाकर अन्नदा कुमार निश्चिंत हो गये। जाते समय पिता ने उनसे कहा–''**बेटा, सामने जो भी कार्य मिले उसे करना । सर्वदा याद रखना अब तुम धनी व्यक्ति की संतान नही हो।**'' गाँव के एक परिचित व्यक्ति युगल के साथ अन्नदा कुमार निकल पड़े। अपने गाँव के लोगों का स्नेह, पिता एवं छोटी बहन का आर्थिक कष्ट तथा अन्य विभिन्न प्रकार की चिन्ताओं से उनका मन उदास हो गया एवं आँखों से अपने आप अश्रु आने लगे। साथी युगल ने उन्हें सांत्वना दी।

रास्ते में जब अन्डाल स्टेशन आया तब एक पगली सी स्त्री ट्रेन में चढी और अन्नदा कुमार के निकट बैठकर परिचित व्यक्ति की तरह बात करने लगी। उसने कहा–''तुमने मुझे इतना घुमाया! क्यों, अब वर्द्धमान जा रहे हो? क्या मुझे पहचाना नही? मुझे क्यों पहचानोगे, अब तुम बहुत बड़े व्यक्ति बन गये हो ना!" ऐसा कहकर वह अन्नदा कुमार के और निकट आकर स्नेह प्रकाश करती हुई बोली–''अब अच्छी तरह मुझे देख! क्या मुझे पहचानता है?'' इस तरह पगली स्त्री के आचरण देखकर ट्रेन के लोग तमाशा देखने लगे। अन्नदा कुमार के सिर पर उसने अचानक अपना हाथ रखा। उसके स्पर्श मात्र से अन्नदा कुमार के समक्ष विभिन्न दृश्य दिखलाई पड़ने लगे। पगली स्नेह प्रदर्शित करते हुए 'फिर मुलाकात होगी' ऐसा कहकर अचानक चली गयी। यह पगली स्त्री कौन है? यह सोचते-सोचते अन्नदा कुमार सन्ध्या के समय वर्द्धमान पहुँचे। वहाँ अपने एक परिचित व्यक्ति के घर पर गये। मित्र युगल ने घर के सभी लोगों को पगली स्त्री के बारे में बतलाया। सभी ने कहा–'शायद कोई

देवी ने पगली के रूप में दर्शन दिया है।' इस तरह एक विचित्र अभिज्ञता को लेकर चिन्तामग्न अन्नदा कुमार निद्रित हो गये। उन्हें स्वप्न में माँ ने प्रकाशित होकर कहा–'पगली स्त्री को क्या तूने पहचाना?' अन्नदा कुमार ने कहा–'नहीं'। माँ ने कहा–'तब देख वह कौन है।' उस समय पगली स्त्री के विगत जन्मों के दृश्य अन्नदा कुमार के सामने प्रकट होने लगे। इस तरह के दृश्य देखते हुए सुबह हो गई। सुबह युगल अन्नदा कुमार को चचेरे भाई के पास ले गये, जो ननी बाबू के घर पर रहते थे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि पगली वहाँ उपस्थित है एवं अनाप-सनाप बहुत कुछ कहती जा रही है। थोड़ी देर बाद उसने अन्नदा कुमार से कहा–'कांचन नगर के जंगल मे फिर मुलाकात होगी, समझे ! वहाँ अपने 'प्रिय मित्र' को भी साथ लेते आना।' ऐसा कहकर वह चली गयी ।

ननी बाबू (ननीगोपाल बन्दोपाध्याय), जो वर्द्धमान राज कॉलेज में न्यायशास्त्र के अध्यापक थे, ने कहा–''**आनन्द! तुम चाहो तो यहाँ भी रह सकते हो। तुम्हारा संस्कृत पढ़ना आवश्यक है। आज के युग में थोड़ा अंग्रेजी का ज्ञान भी आवश्यक है। इसके बाद उन्होंने अन्नदा कुमार का आलिंगन करते हुए कहा–''मेरे गुरूजी स्वामी शिवराम किंकर योगत्रयानन्दजी ने तुम्हारी सब बातें मुझसे कही है। मेरे पास से तुम्हें आवश्यक सभी सहायता मिलेगी, पर मैं तुम्हारी इच्छा के विरूद्ध कोई कार्य नही करूँगा। मेरी प्रार्थना है–तुम हमारे निकट रहो।''** उन्होंने अन्नदा कुमार को 'आनन्द' नाम से सम्बोधित किया। अन्नदा कुमार के चचेरे भाई के बचपन में ही माता-पिता का देहांत हो गया था तब अन्नदा कुमार के माता-पिता ने उनका पालन-पोषण किया। वे उम्र में अन्नदा कुमार से छः वर्ष बड़े थे। यहाँ ननी बाबू के पास रहकर वे अध्ययन करते थे।

अन्नदा कुमार को यहाँ सब कुछ अद्‌भुत सा लग रहा था। ननी बाबू ने अन्नदा कुमार से पूछा कि वे क्या पगली को पहचानते हैं? अन्नदा कुमार ने कहा–'मुझे ऐसा लगता है कि कभी उसे देखा है, पर कब-कहाँ देखा है कुछ याद नहो आता।' ननी बाबू ने कहा–''मैं पूजा के समय काशी अपने गुरू जी के पास गया था तब इन्हें वहां देखा था। गुरूजी इनकी अत्यन्त श्रद्धा करते हैं। गुरूजी ने मुझसे कहा कि इस पगली को अपने साथ ले जाओ । आठ महिने पश्चात् एक बालक तुम्हारे पास आएगा तब पगली उसे ले जाएगी। पगली ने मुझसे कहा है कि तुम्हारे साथ उसका जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है। वह उच्च स्तर की साधिका है एवं गुप्त रूप से पगली के वेश में विचरण करती रहती है।'' उल्लेखनीय है, ननी बाबू के गुरू स्वामी शिवराम किंकर योगत्रयानन्द उस समय के विख्यात योगी थे। अधिकतर वे काशी में रहते थे। 'भारत के महान साधक' ग्रन्थ में इनकी जीवनी मिलती है।

ननी बाबू के यहाँ एक बालक के साथ अन्नदा कुमार का परिचय हुआ। पगली

ने अन्नदा कुमार से इसी 'प्रिय मित्र' को कंचन नगर के जंगल में साथ लाने के लिए कहा था। प्रथम मुलाकात में उस मित्र ने अन्नदा कुमार को 'संन्यासी ठाकुर' कहकर सम्बोधन किया एवं कहा कि 'पहले भी संन्यासी थे बाद में भी संन्यासी बनोगे। कुछ दिनों के लिए हम दोनों को गृहस्थ होना पड़ेगा।'

संध्या के समय ननी बाबू के घर से अन्नदा कुमार निकल पड़े। एक अज्ञात शक्ति की प्रेरणा से वे यंत्रवत् राजपथ पर अग्रसर होते गये। मन में विचार चल रहा था कि यह सब क्या हो रहा है? एक स्थान पर एक पागल के निकट काफी भीड़ जमी हुई थी। अन्नदा कुमार पागल को देखने के लिए थोड़ा रूके। अचानक अन्नदा कुमार को देखते ही पागल ने दौडकर उसे आलिंगन बद्ध किया एवं कहा–'तू आया है! चल हम लोग जंगल की तरफ चलेंगे।' अन्नदा कुमार ने निर्वाक रहकर देखा, पागल के सिर में बड़ी जटाएँ हैं। अपने काले शरीर पर एक कमीज जैसा कम्बल पहन रखा है। साथ में एक गठरी भी थी। लोगों की भीड़ बढ़ रही थी और पागल प्रलाप बकता हुआ गाली दे रहा था । पागल अपनी गठरी वहीं छोड़ कर अन्नदा कुमार को अपने साथ ले गया। लोग कहने लगे–'देखो! पगले ने इसे अपना चेला बनाया है। यह भी एक दिन पागल बनेगा।' चलते हुए दोनों एक जंगल के पास पहुँचे। पागल ने कहा, यह स्थान वर्द्धमान के राजा की प्राचीन राजधानी थी अब जंगल हो गया है। एक टूटे-फ्टे मकान के पास वह अन्नदा कुमार को ले गया। थोड़ी देर में पगली भी एक संन्यासी को लेकर वहाँ आ गई । यहाँ एक वृक्ष के नीचे प्रज्वलित धूनि के निकट चारों तरफ सब बैठ गये । पगली ने कहा– ''**लोगों की इतनी दुर्दशा और कष्ट देखकर तुम लोग चुपचाप बैठे हो–यह तुम्हारी कैसी धर्म साधना है? चारा ओर अग्नि प्रज्वलित करना होगा। असत्य, अन्याय, अनाचार को भस्म करना पड़ेगा । इस कार्य में संलग्न करने के लिए तुम्हें यहाँ लाया गया है।**'' अभी तक अन्नदा कुमार ने पगली का जो रूप देखा था, यहाँ उससे एकदम दूसरा रूप देखकर वे आश्चर्य चकित हो गये। पगली ने संकल्प करवाया–''**आज से जगत् के कल्याण में अपना जीवन उत्सर्ग करूँगा।**'' अन्नदा कुमार ने भावमग्न होकर प्रज्वलित धूनि के निकट संकल्प ग्रहण किया। सारी रात बीत गई। पगली जिस तरह आयी थी सूर्योदय के पहले उसी तरह संन्यासी को लेकर अचानक कहीं चली गई। अन्नदा कुमार को पागल अपने साथ ले गया। अन्नदा कुमार सोचने लगे पागलों के वेश में कितने महापुरूष कार्य कर रहे हैं। इन्हें साधारण लोग पहचान नहीं सकते। कोई उन्हें पत्थर मारता है तो कोई धूल फेंकता है। विश्व कल्याण के लिए इस तरह छद्म वेश में न जाने कितने महात्मा लोग प्रयास कर रहें हैं।

इस तरह पागल के साथ चलते हुए अन्नदा कुमार राजपथ पर स्थित बड़ा बाजार में पहुँचे। पागल झाड़ू लेकर रास्ता साफ करने लगा। अन्नदा कुमार को भी

उसने रास्ते पर झाड़ू लगाने का निर्देश देते हुए कहा–''**रास्ता साफ करने का कार्य तो आज आरम्भ हुआ। इसके बाद न जाने कितने लोगों का रास्ता साफ करना होगा, मल-मूत्र साफ करना होगा। इस प्रकार के कार्य से अहं भावना नष्ट होती है। देह-मन शुद्ध होता है।''** अन्नदा कुमार पागल के निर्देशानुसार रास्ता साफ करने लगे। थोड़ी देर बाद रास्ता साफ करने वाले झाड़ूदार आ गये। एक झाड़ूदार ने इनसे कहा–'यह सब क्या कर रहे हो बाबा?' पागल कपट कोध प्रदर्शित करते हुए गाली बकने लगा–'यह क्या तेरे बाप का रास्ता है?.....इत्यादि। सुबह का समय इस तरह व्यतीत हो गया। थोड़ी देर बाद पागल ने अन्नदा कुमार को कही से कुछ भोजन लाकर दिया और कहीं चला गया।

वहां से अन्नदा कुमार अपने पुराने मित्र मोतीलाल की खोज करते हुए उसके पास पहुँचे। मोतीलाल गोकुलचाँद नामक मन्दिर मे काम करते थे। अन्नदा कुमार ने वहां भोजन व विश्राम किया। अचानक वहाँ पगली फिर आ गयी और बोली–'मैं कल बहुत दूर जा रही हूँ। बाद में मुलाकात होगी। सामने जो कार्य आ जाये उसे करते रहना। मैं सर्वदा तुम्हारे साथ हूँ, यह हमेशा याद रखना।' ऐसा कहकर वह चली गयी। मोतीलाल ने पगली का परिचय पूछा । अन्नदा कुमार ने कहा–'यह पगली मुझे बहुत प्यार करती है। अचानक कभी-कभी आती है।' मोतीलाल ने अन्नदा कुमार को सावधान करते हुए कहा–''वहाँ गाँव में तुम्हें श्मशान में एक संन्यासी प्रायः दिखा करते थे, यहाँ भी पगली तुम्हारे पीछे लगी है। एक दिन तुम मरोगे। यह सब छोड़ो।'' मित्र की यह बात अन्नदा कुमार ने हँस कर टाल दी। रात्रि वहीं बिता कर सुबह पुनः पागल के निकट अन्नदा कुमार बड़ा बाजार पहुँचे । उस दिन भी पूर्व की तरह रास्ते मे झाड़ू लगाया। दो-तीन दिन इसी तरह व्यतीत हो गये। एक दिन शाम को पागल फिर उसी जंगल में अन्नदा कुमार को ले आये। पगली वहाँ पहले से उपस्थित थी। उसने अन्नदा कुमार को 'आनन्द' कह कर सम्बोधन किया। अन्नदा कुमार ने उसे अपना नाम बतलाया तो वह हँसकर बोली–**'सब भूल गये हो। पिछले जन्म में तुम्हारा नाम 'आनन्द' था।'** उसके निर्देशानुसार अन्नदा कुमार आसन में बैठकर ध्यान करने लगे। थोड़ी देर में उन्हें अनुभव हुआ कि मूलाधार से एक शक्ति की तरंग ऊपर की ओर चढ़ रही है। शरीर में कम्पन शुरू हो गया। नाभि मंडल को भेद करते हुए जब वह शक्ति हृदय के पास आयी तब असंख्य वीणा, बंशी आदि की मधुर ध्वनि सुनकर अन्नदा कुमार आनन्द में मग्न हो गये। शक्ति कमशः कण्ठ के पास पहुँची तब केवल ओम-ओम ध्वनि अपने आप होने लगी। इसके पश्चात् एक ज्योति के शुभ्र प्रकाश से सभी दिशा आलोकित हो उठी। इसी समय अन्नदा कुमार को लगा कि कोई मेरूदण्ड में ऊपर से नीचे की ओर घर्षण कर रहा है। बाह्यज्ञान होने पर देखा कि पगली यह कार्य करते हुए कह रही है–**'इस तरह डूब जाने से क्या काम चलेगा? अभी तो अग्नि**

प्रज्वलित की गयी है, कार्य शुरू हुआ है।' अन्नदा कुमार को वह सब आश्चर्यजनक लगा। उनका शरीर जड़वत् हो गया । मन एवं आंखों में विस्मय प्रकट हो रहा था–यह सब क्या हो रहा है? यह प्रश्न उनके मन में स्वतः आने लगा। पागल एवं पगली ने अब अन्नदा कुमार को प्रणाम किया। अन्नदा कुमार को इसमें कोई संकोच नही हुआ वरन् उनके सिर पर हाथ रखकर उन्होने आशीर्वाद दिया। सुबह जब सम्पूर्ण चेतना लौटी तब पगली ने उनसे कहा–**'इस तरह ज्योति का राज्य, आनन्द का राज्य तुम्हारे लिए समय की प्रतीक्षा कर रहा है।'**

सुबह पूर्ववत् अन्नदा कुमार बड़ा बाजार के पथ पर झाड़ू लगाने पागल के निकट पहुँचे। उस दिन पागल ने कहा–'सामने जो व्यक्ति आ रहा है उसे नौकर की आवश्यकता है। जो भी वेतन मिले, तुम उसके यहाँ कार्य करना। जरूरत पडने पर बाद में तुमसे फिर मुलाकात होगी।' उसके निकट आने पर अन्नदा कुमार ने उससे बातचीत की। वास्तव में उसे नौकर की आवश्यकता थी। अन्नदा कुमार ने उनके घर काम करना शुरू किया। यह व्यक्ति शराबी एवं चरित्रहीन था। अन्नदा कुमार की दिनचर्या इस प्रकार थी–

सुबह ४ बजे उठकर स्नानादि कर ६ बजे तक पूजा, जप आदि वे करते थे। सुबह ६ बजे से दोपहर दो बजे तक बाबू के घर का काम यथा झाडू लगाना, बर्तन साफ करना, बाजार से सब्जी लाना इत्यादि कार्यों के साथ शराबी बाबू की वेश्या को नित्य एक रूपया देकर आना पड़ता था। दोपहर दो बजे से ४ बजे तक वे ननी बाबू के पास अध्ययन करते थे। शाम ४ बजे से रात्रि १० बजे तक शराबी बाबू के घर के अन्य कायो को करना तथा रात्रि १० बजे के बाद भोजन फिर शयन। इस तरह उनका दिन व्यतीत हो रहा था। उनका मन जप तथा ध्यान में सदा तल्लीन रहना चाहता था। कभी-कभी स्वतः जप होने लगता और मन एक दिव्य आनन्द में डूब जाता था। किन्तु दैनन्दिन कार्य की चिन्ता उन्हें फिर से काम में संलग्न कर देती। उस तरह कर्म करते कुछ दिन व्यतीत हो गये। एक दिन शराबी बाबू अपने दोस्त के साथ शराब पी रहे थे। शराब कम पड़ जाने पर उसने अन्नदा कुमार को बार-बार बुलाया। अन्नदा कुमार उस व्यक्ति के आचरण से पहले ही विरक्त हो चुके थे। उस दिन उन्होंने क्रुद्ध होकर दोनो शराबियों को जोर से थप्पड़ मारकर कार्य का परित्याग कर दिया। उस समय मित्र मोतीलाल ने गोकुल चाँद मन्दिर में उनकी, सफाई आदि कार्य के बदले में भोजन की व्यवस्था कर दी। रात्रि के समय वे ननी बाबू के यहाँ शयन करते थे।

इस तरह कठिन परिस्थितियों एवं संघर्ष के भीतर रहकर बालक अन्नदा कुमार ने अपनी साधना एवं अध्ययन दोनों चालू रखा। उस समय ननी बाबू के सान्निध्य में उन्होंने सनातन धर्म साधना के विभिन्न ग्रन्थों का अध्ययन किया। यहाँ

उन्हें सर्वप्रथम महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी की जीवनी पढ़ने का सौभाग्य मिला। ननी बाबू अन्नदा कुमार को अध्ययन के साथ-साथ कर्म करने के लिए भी प्रोत्साहित करते थे। उनका निर्देश था–''जीवन में आनन्द या मौज करने का बहुत समय मिलेगा। तुम्हें विराट कर्म प्रवाह के भीतर रहकर अपना जीवन व्यतीत करना है। तुम्हारे जीवन में विश्राम का स्थान नहीं है। कर्म के भीतर ही तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा और तुम्हारे कर्म-त्यागी मन का विकास होगा।'' ननी बाबू का निर्देश उनके जीवन में अक्षरशः सत्य हुआ। कर्म और साधना दोनों एक साथ करते हुए अन्नदा कुमार अग्रसर हुए। उस समय अपना खर्च एवं पिताजी की सहायता के लिए, कागज का ठोंगा बनाकर बेचते थे एवं पिता को हर माह कुछ रूपये भेजा करते थे।

एक दिन ननी बाबू ने अपने गुरूदेव का एक पत्र उन्हें दिखलाया, जिसमें इनके भविष्य जीवन के बारे में उल्लेख था। अन्नदा कुमार के साथ ननी बाबू के गुरूदेव का परिचय न रहने पर भी उनके सम्बन्ध में इस तरह की भविष्यवाणी देखकर वे विस्मित हो गये। ननी बाबू ने कहा–''**सिद्ध महापुरूष लोग सब जानते हैं । वे त्रिकालज्ञ होते हैं । तुम्हारा अतीत, वर्तमान एवं भविष्य मेरे गुरूजी जानते हैं ।**''उसी समय संयोगवश वर्द्धमान के महाराज बिजयचन्द्र से अन्नदा कुमार का परिचय हो गया। उन्होंने उनके पढ़ने की व्यवस्था कर दी। अन्नदा कुमार लगभग चार महिने यहाँ रहने के पश्चात् दुर्गापूजा की छुटियों में अपने पिता के पास आ गये। उस समय उन्होंने अनुभव किया कि, **नियमित साधना के द्वारा जो शक्ति अर्जित की जाती है उससे चार घंटे का कार्य एक घंटे में हो जाता है। इसके अतिरिक्त नियमित साधना से शरीर स्वस्थ, मन संयत एवं प्रफुल्लित रहता है।** छुटी के बाद वे पुनः वर्द्धमान आ गये एवं अपनी साधना व अध्ययन शुरू किया।

बंगाल में क़ान्तिकारी दलों ने अंग्रेजों के विरूद्ध सशस्त्र संग्राम शुरू किया था। ये दल, सन् १९१४ से १९१६ ई. में विशेष रूप से वर्द्धमान में सकिय थे। इस समय क़ान्तिकारी दल के कुछ लोगों के साथ अन्नदा कुमार का परिचय हुआ। ये लोग अपना परिचय सर्वदा गुप्त रखते थे क्योंकि पुलिस सदा उनके पीछे लगी रहती थी। सभी क़ान्तिकारी निःस्वार्थ थे। इनका विश्वास था कि दुष्ट अंग्रेजों पर सशस्त्र संग्राम द्वारा ही विजय प्राप्त की जा सकती है। ये लोग अस्त्र, बम आदि बनाकर अंग्रेजों की हत्या, इनके कोषागार, अस्त्रागार आदि को लुटना अपने युद्ध का अंग समझते थे। अंग्रेज इन क़ान्तिकारियों के प्रति अत्यन्त कठोर थे। उस समय अधिकांश भारतवासी इन क्रान्तिकारियों के प्रति श्रद्धा भावना रखते थे एवं गुप्त रूप से इनकी आर्थिक सहायता एवं सेवा भी प्रदान करते थे। ननी बाबू ने, धर्म और राजनीति का समन्वय किस प्रकार रखना चाहिए, उस विषय में अन्नदा कुमार को समझाया । उनका कहना था–''**कापुरूषता धर्म नहो है। पराधीन व्यक्ति धर्म की साधना नहीं कर सकता। अपने**

को स्वाधीन करना होगा, बन्धनों से मुक्त करना होगा। साथ ही स्वदेशवासियों पर जो अत्याचार हो रहा है उससे उनका उद्धार करना होगा। इनकी सेवा से ही भगवान् की ठीक-ठीक सेवा सम्पन्न होगी । देश के प्रति प्रेम रखो। देश के लिए आत्म-बलिदान देना होगा। ऐसा करने पर तुम्हारी क्षुद्र सत्ता विश्व की विराट सत्ता को उपलब्ध कर सकेगी।'' इस प्रकार पशुपति मंडल, ननी बाबू, क्रान्तिकारी दल के अज्ञात लोग एवं परिव्राजक कमलानन्द के पास से अन्नदा कुमार ने स्वदेश सेवा एवं देश मातृका की पूजा की शिक्षा प्राप्त की। परिव्राजक कमलानन्द की तरह कई संन्यासी त्याग, ब्रह्मचर्य की शिक्षा के साथ स्वदेश को 'माँ' के समान मानकर उसकी सेवा-पूजा की शिक्षा भी प्रदान करते थे। पगली एवं पागल महात्मा ने भी अन्नदा कुमार को स्वदेश सेवा में आत्म-विसर्जन करने के लिए प्रेरणा देकर शपथ दिलवायी थी।

इस समय वर्द्धमान में ननी बाबू के सभापतित्व में 'हितैषिनी सभा' की स्थापना की गई। शहर के कई विशिष्ट लोगों ने एवं छात्रो ने इसमें योगदान दिया। अन्नदा कुमार इस सभा के संचालक बने। इस सभा का प्रमुख कार्य था–

(१) साम्प्रदायिक भाव को नष्ट करना।
(२) शवदाह में सहायता करना।
(३) निर्धन छात्रों की सहायता।
(४) रोगी की सेवा।
(५) देश सेवा के लिए आवश्यक पुस्तक का प्रकाशन।
(६) ग्राम संगठन।
(७) असहाय महिलाओं की सहायता करना।
(८) पतिता नारियों का नैतिक शिक्षा द्वारा उत्थान।
(९) देश सेवा के लिए आवश्यक सेवक संग्रह।
(१०) इन कार्यों के लिए अर्थ भंडार की स्थापना।

इस प्रकार अन्नदा कुमार ने समाज सेवा के माध्यम से भगवत् सेवा प्रारम्भ की। ग्रीष्म अवकाश पर अन्नदा कुमार अपने गांव में आये। गांव में उस वर्ष हैजे के प्रकोप से लोग मरने लगे। अपने कुछ मित्र के साथ अन्नदा कुमार सेवा कार्य एवं मृतकों के दाह संस्कार के कार्य में लग गये। फिर छुट्टी समाप्त हो जाने पर वे वापस वर्द्धमान आ गये। इस बार उन्होंने बंगला भाषा में गीता एवं दुर्गा सप्तशती का अनुवाद प्रारम्भ किया। १५ वर्ष की अल्प आयु में उन्होंने गीता एवं दुर्गा सप्तसती का बंगला अनुवाद सम्पन्न किया। ननी बाबू ने इस कार्य में विशेष रूप से उन्हें सहायता दी एवं उत्साहित किया था। यहाँ रहते समय बंगला भाषा के प्रख्यात कवि कमुद रंजन मल्लिक एवं बंगला साहित्यकार शैलबाला घोष, निरूपमा देवी, अनुरूपा देवी आदि से अन्नदा कुमार का घनिष्ट परिचय हुआ। अन्नदा कुमार अपने स्वतःस्फूर्त कविता

एवं साहित्य लेखन द्वारा कुछ-कुछ पुरस्कार भी पाने लगे।

इस वर्ष ग्रीष्म अवकाश के समय अन्नदा कुमार ने रामचन्द्रपुर आकर आसपास के कई गांवों में पाठशाला खोलने एवं ग्राम की उन्नति के लिए कार्य प्रारम्भ किया। रामचन्द्रपुर में 'आर्य आश्रम' नामक सेवाश्रम की स्थापना की गई। इन्होंने अपने पास संग्रहित १००० पुस्तकों की एक लायब्रेरी भी प्रारम्भ की। इसके बाद कुछ दिन के लिए उन्होंने कोलकाता एवं उसके आसपास कई स्थानों का भ्रमण किया। कोलकाता में रहते समय कई कान्तिकारियों से इनका परिचय हुआ। ये क़ान्तिकारी कर्मयोग के माध्यम से भगवत् सेवा करते थे। यहाँ विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द घोष, खुदीराम, प्रफुल्ल चाकी आदि कई लोगों के आत्मत्याग के सम्बन्ध में अन्नदा कुमार को विशेष जानकारी मिली।

वर्द्धमान में वे अध्ययन की अपेक्षा समाज सेवा के कायो में अत्यधिक व्यस्त हो गये । यह सब कार्य करते हुए उनके अन्तःकरण मे विचार आया कि इस तरह अपने को भूलकर कर्म में डूबना क्या ठीक है। उसी समय पंचकोट राजा के राजपण्डित राखालचन्द्र विद्यारत्न ने उन्हे काशी चले आने के लिए कहा। वे अन्नदा कुमार को पुत्रवत् स्नेह करते थे। काशी जाकर अन्नपूर्णा एवं विश्वनाथ जी का दर्शन कर अन्नदा कुमार अत्यन्त आनन्दित हुए। यहाँ राखालचन्द्र उन्हें एक अच्छे ज्योतिषी के पास ले गये। ज्योतिषी ने जो जन्म पत्रिका बनायी वह अन्नदा कुमार के संन्यास लेने के पूर्व तक पूर्णतः सत्य प्रमाणित हुई।

वर्द्धमान में अन्नदा कुमार ब्रह्मसमाज के कुछ लोगों से मिलकर विशेष प्रभावित हुए। उस समय अफवाह फैल गयी कि उन्होंने ब्राह्म धर्म ग्रहण कर लिया है। इस सम्बन्ध में पूछने पर अपने प्रिय शिक्षक से उन्होंने कहा–''**मैंने ब्राह्म धर्म ग्रहण नहो किया है। पर उनके आदर्श मुझे अच्छे लगते हैं। इस विषय में महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी जी के आदर्श का मैं अनुसरण करता हूँ। मैं मन्दिर, मस्जिद, गिर्जाघर, ब्राह्म समाज आदि स्थानों पर गया हूँ पर इसके साथ हिन्दू देवी-देवताओं की उपासना भी करता हूँ। मैं सर्वत्र इस भावना से प्रणाम करता हूँ कि मेरे ईश्वर सर्वत्र विराजित हैं। सभी अवस्थाओं में सभी चिन्ता या भावनाओं में, सभी रूपों में वे विराजित हैं। मुझे आशीर्वाद कीजिये की मैं संकीर्णता के घेरे में फसकर सर्वव्यापी ईश्वर को न भूल जाउँ।**'' शिक्षक, अन्नदा कुमार की बातों को सुनकर विशेष प्रभावित हुए।

सेवा तथा राजनीतिक कार्यों में संलग्न रहते हुए भी वे नियमित रूप से नाम-जप, प्राणायाम आदि करते थे। एक दिन भावमग्न अवस्था में उन्हें अनुभव हुआ कि शरीर का ज्ञान लुप्त हो गया है और वे अपने शरीर के सामने बैठकर स्वयं नाम-जप कर रहे है। अपना रूप मानों स्वयं देख रहे हैं। एक दिन जप करते समय 'नाम' के अक्षर ज्योतिर्मय हो गये एवं अंत में वे सब प्रणव (ओंकार) में लय हो गये। ओंकार

ज्योतिर्मय होकर समग्र विश्व में विस्तृत हो गया। उस समय केवल 'ओम' शब्द सुनाई पड़ रहा था। इस ओंकार के शब्द के मध्य असंख्य प्रकार के नाम सुनाई पड़ने लगे। इन शब्दों के बीच अन्नदा कुमार की 'अहं' भावना लुप्त हो गई। इस तरह सम्पूर्ण देह ज्ञान से रहित वे उस दिन बहुत देर तक पड़े रहे। घर के लोग इन्हें मूर्च्छित समझ कर चिकित्सक को दिखलाया। आध्यात्म विद्या से अपरिचित चिकित्सक ने मिर्गी का रोग बतलाकर सावधान रहने का निर्देश दिया। इस समय इष्ट नाम का जप अपने आप हो रहा है, ऐसा अनुभव अन्नदा कुमार को हुआ।

इसी प्रकार एक दिन रास्ते में भावमग्न होकर वे अचेत हो गये। एक तान्त्रिक साधू उन्हें उठाकर अपने ग्राम ले गये। चेतना लौटने पर अपने को अपरिचित स्थान में देखकर उन्होंने तान्त्रिक साधू से पूछा कि मुझे यहाँ क्यों लाया गया है। तान्त्रिक ने उन्हें धमकाते हुए कहा–'अब तुम्हें यहीं रहना होगा। तुम्हारी क्या क्षमता है? यहाँ से अब तुम कहीं भी नही जा सकते।' तान्त्रिक ने सम्मोहन शक्ति से अन्नदा कुमार को आबद्ध कर लिया था। अचानक अन्नदा कुमार के मन मे इष्ट मन्त्र का जप अपने आप होने लगा एवं तांन्त्रिक की सम्मोहन शक्ति लुप्त हो गयी। किसी तरह उससे पीछा छुड़ाने के लिए अन्नदा कुमार वहां से भागे। तान्त्रिक भी डंडे से प्रहार करने की चेष्टा करते हुए उनके पीछे दौड़ने लगे। थोड़ी दूर तक दौड़ने के पश्चात् एक साधू की कटिया देखकर अन्नदा कुमार वहाँ पहुँचे। उन्हें घबराया हुआ देखकर साधू ने उनसे सब जानकारी लो। साधू के आश्वासन देने पर अन्नदा कुमार निश्चित हुए। तान्त्रिक ने भी उनका पीछा करना छोड़ दिया। कुटिया म रहने वाले ये साधू सिद्ध महात्मा के रूप में बहुत प्रसिद्ध थे। इनका नाम तिब्बती बाबा था। **इस घटना क पश्चात् तिब्बती बाबा से उनका अन्तरंग सम्बन्ध हो गया** । रात्रि यहीं व्यतीत कर सुबह अन्नदा कुमार वर्द्धमान वापस आ गये।

इस वर्ष गर्मी की छुट्टी उन्होंने कोलकाता, मंगलगंज आदि स्थानों पर रहकर बिताया। फिर कुछ दिनों के लिए वर्द्धमान छोड़कर वे शान्तिनिकेतन में आ गये। यहाँ कुछ विशिष्ट विद्वान लोगों यथा अध्यापक प्रमथनाथ विशी, विभूतिभूषण गुप्त, पं. क्षितिन्द्र मोहन सेन आदि से इनका परिचय हुआ। इन्ही लोगों के माध्यम से कवि रविन्द्रनाथ टैगोर से उनका परिचय हुआ। कवि रविन्द्रनाथ अन्नदा कुमार के जीवन की घटनाओं को सुनकर बहुत प्रभावित हुए और उनके वहीं शान्तिनिकेतन में रहने की व्यवस्था भी कर दी। परन्तु अन्नदा कुमार यहाँ दीर्घकाल न रह सके। वर्द्धमान आकर उन्होंने परीक्षा पास की।

इन तीन वर्षों में अन्नदा कुमार अनेक परिवारों के भीतर रह चुके थे। विभिन्न परिवारों के साथ रहने पर उन्होंने अनुभव किया कि बाहर शान्ति एवं आनन्दमय वातावरण दिखाई पड़ने पर भी जब परिवार के विभिन्न लोगों से अन्तरंग भाव से

मिलना-जुलना बढ़ा तब इनमें आपस की हिंसा भावना देखकर वे दंग रह गये। उन्हें ऐसा लगा कि ये लोग अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी कर सकते हैं। तब उन्होंने विचार किया कि किसी परिवार के साथ न रहकर एकान्त में रहना शान्तिप्रद होगा। लेकिन परिस्थितियाँ स्वतः उन्हे अपने संकल्प से च्युत करने लगी।

अब वे, छात्रों को पढ़ाकर प्रतिमाह पचास रूपये घर भेजने और स्वयं सादा भोजन करते हुए सादी वेशभूषा में रहते। इस समय उन्होंने अनुभव किया कि दिन में एक बार स्वपाक भोजन करना साधना में अत्यन्त सहायक है।

सन् १९२० ई. से असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। 'जलियँावाला बाग हत्याकाण्ड' ने सभी लोगों को अंग्रेजों की दमन नीति के विरूद्ध आन्दोलन करने के लिए प्रेरित किया। इस हत्याकांड के प्रतिफल स्वरूप सर्वत्र प्रतिवाद सभा होने लगी। अन्नदा कुमार ने बंगाल के प्ररिद्ध राजनैतिक नेताओं का भाषण सुना एवं इस कार्य में यथाशक्ति योगदान भी किया। उस समय अंग्रेज पशु के चार पैर तोड़ डालने के लिए क्रान्तिकारियों ने संकल्प लिया। ये चार पैर थे–(१) अदालत वर्जन, (२) स्कूल-कालेज वर्जन, (३) आबकारी विभाग बन्द करना, (४) सभी प्रकार के कर (Tax) एवं विदेशी वस्तुओं का वर्जन। सारे देश में इस आन्दोलन का प्रभाव पड़ा । इसी समय अचानक लोकमान्य तिलक की मृत्यु हो गई। अन्नदा कुमार उनके द्वारा लिखित गीता की व्याख्या एवं कर्म पद्धति से बहुत प्रभावित हुए थे।

देशबन्धु चितरंजन दास उस समय बंगाल के श्रद्धेय नेता थे। उन्होंने स्कूल-कालेज का बहिष्कार करने का निर्देश दिया। अन्नदा कुमार के मन का झुकाव पहले से ही पढ़ाई की अपेक्षा सेवा कार्य एवं स्वदेशी आन्दोलन की तरफ अधिक था। अब वे पूरी तरह इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। इसी समय वर्द्धमान में इन्होंने महात्मा गांधीजी का भी दर्शन किया। गांधीजी के असहयोग आंदोलन के प्रमुख स्तम्भ थे–सत्य, प्रेम, एवं अहिंसा। इस सम्बन्ध में अन्नदा कुमार ने अनुभव किया कि **'अहिंसा की नीति' एवं 'अहिंसा आन्दोलन' अलग वस्तु है। विश्व के सभी प्राणियों के भीतर एक ही प्रकार की भावना द्वारा प्रेमभाव रखना ही 'अहिंसा की नीति' है। इसमें देश-काल-पात्र का विचार नही है। ऋषियों की 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' की साधना यही थी। गांधीजी का 'अहिंसा आन्दोलन' इस आदर्श से विच्युत हो गया था । इसमें एक नीति या आदर्श का अवलम्बन कर दूसरे देश की अत्याचार या नीति का प्रतिवाद करना कर्त्तव्य माना जाता था। लेकिन जब चित्त में 'अहिंसा-भावना' आएगी तब मेरा देश, तुम्हारा देश इस तरह की हीन भावना नही रहेगी। रूपं-रूपं-प्रतिरूपं–सभी समान है–सब ईश्वर का रूप है, ऐसा प्रतीत होगा । इस प्रकार राजनैतिक रूप से किया गया 'अहिंसा आन्दोलन' को परिपूर्ण अहिंसा भावना का प्रथम सोपान कहा जा सकता है। उपरोक्त कारणों से गांधीजी द्वारा कथित अहिंसा को क्रान्तिकारी लोग**

'राजनैतिक अहिंसा' कहा करते थे।

अन्नदा कुमार ने स्कूल की पढ़ाई छोड़कर विभिन्न स्थानो में सभा का आयोजन एवं प्रवचन देना आरम्भ किया। वे लगातार दो-तीन घंटों तक प्रवचन दे सकते थे। रामचन्द्रपुर में इसी समय कांग्रेस कार्यालय खोला गया। अन्नदा कुमार ने इस कार्य को बडे उत्साह के साथ आसपास के कई स्थानों में फैलाया। चरखा-तकली का घर-घर में प्रचार किया गया। स्वदेशी कपड़ों की दुकान भी खोली गयी। इस समय अन्नदा कुमार के कई शुभचिन्तको ने उन्हे पहले स्कूल की परीक्षा देने का सुझाव दिया। पढ़ाई की तैयारी पूरी न होने पर भी उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा दी और उसमें आशातीत सफलता भी प्राप्त की। वे प्रथम श्रेणी में पास हुए तथा चार विषयों में विशेष योग्यता (Letter) भी मिली। मित्रों के अनुरोध से उन्होंने महाविद्यालय मे प्रवेश ले लिया । किन्तु पढाई की तरफ उनका मन नहीं लगा ।

देश सेवा के कार्यों में संलग्न रहने के कारण पुलिस की दृष्टि उन पर पडी। वर्द्धमान में एक गांजे की दुकान बन्द करवाने के कारण पुलिस उन्हें पकड कर थाने में ले गई। यहॉ से एक दिन में छुट्टी मिलने के पश्चात् वे पुनः गिरफ्तार कर लिए गये एवं सात दिन उन्हें जेल में रखा गया। उनके घर की तलाशी भी कई बार पुलिस द्वारा ली गयी ।

इस समय रामचन्द्रपुर में 'ग्राम संगठन' का कार्य काफी अच्छी तरह चलने लगा। सशस्त्र क्रान्तिकारियों की तरह अन्नदा कुमार ऊपरी तौर से गांधीजी के 'अहिंसा आन्दोलन' का समर्थन एवं प्रचार कार्य करते थे और भीतर ही भीतर उन्होंने सशस्त्र संग्राम करने की योजना बनायी । इस कार्य में निःस्वार्थ एवं विश्वासी लोग बहुत कम मिलते थे। अधिकांश लोग पुलिस के डर से उन क्रान्तिकारियो से सम्बन्ध रखने में घबराते थे। तब अन्नदा कुमार ने विचार किया, यदि संथाल लोगों को उचित रूप से प्रशिक्षण देकर तैयार किया जाये तो सशस्त्र संग्राम सफल होगा। इस कार्य में महेन्द्र चक्रवर्ती, सुराई माझी तथा गुमान माझी ने विशेष सहयोग दिया। इन लोगों की सहायता से कमशः 'संथाल संगठन' पुरूलिया जिले के कई स्थानों में फल गया। गुप्त रूप से लाठी, तीर आदि विभिन्न स्थानों में भेजा जाता था। कई बार इन वस्तुओं को पकड़ने के बावजूद प्रेरक या प्राप्तकर्ता का सही पता नही मिलने से पुलिस कुछ भी नहो कर पाती थी। थाने के दरोगा इन लोगों से घबराते थे। कुछ थानेदार इनसे मिलकर इनकी सहायता भी करते थे। एक बार मुराडी स्टेशन में पुलिस ने दो हजार लाठियां जप्त की और आसनसोल में तीरों का पार्सल भी पकड़ा गया परन्तु प्रेरक व प्राप्तकर्ता का सही पता न रहने से पुलिस कुछ भी न कर सकी। इस तरह अपनी क्षुद्र शक्ति के द्वारा अन्नदा कुमार यथा साध्य स्वाधीनता आन्दोलन में अग्रसर हुए।

अध्याय ४ : पिता की आकस्मिक मृत्यु एवं वर्द्धमान में छात्र-जीवन की समाप्ति

दुर्गा पूजा की छुटटी के पश्चात् अन्नदा कुमार कालेज की पढ़ाई के लिए पुनः वर्द्धमान आये। यहाँ आते ही, पिताजी के अस्वस्थता का समाचार मिलने पर, वे यथाशीघ्र रामचन्द्रपुर लौट आये। पिताजी की तबियत कुछ दिनों से खराब चल रही थी लेकिन इस बार वे अत्यन्त अस्वस्थ हो गये। अन्नदा कुमार के लिए अब कठिन परीक्षा का समय आ गया। पिताजी की चिकित्सा का खर्च तथा घर में भोजनादि का खर्च किस प्रकार चलेगा? यह सोचकर अन्नदा कुमार चिन्तित हो उठे क्योंकि उस समय इनके पास एक रूपया भी नहीं था। परिचित वैद्य काली कविराज बिना मूल्य दवाई एवं चिकित्सा करने राजी हो गये। उस दिन सुबह से घर में न भोजन है न रोगी के लिए पथ्य। छोटी बहन बीना भूखी पड़ी है। सन्ध्या के समय अचानक एक साधू ने आकर कहा कि वे आज यहाँ प्रसाद ग्रहण करेंगे। अब अन्नदा कुमार मन में भगवान से, व्याकुल होकर प्रार्थना करने लगे–'हे ईश्वर! इस परीक्षा से तुम उद्धार करो।' इसी समय अचानक उन्होने देखा कि एक बालक सिर पर टोकरी लेकर आया और सामान उतार लेने को कहा। अन्नदा कुमार ने आश्चर्यवत् देखा कि टोकरी में आटा, घी, चीनी, सावूदाना, बार्ली, मिश्री एवं फल आदि अन्य पदार्थ हैं। इसे किसने भेजा है? पूछने पर बालक ने कहा–'एक बूढ़े ने यह सब भेजा है।' अन्नदा कुमार सोचने लगे, 'कौन है यह दयालु बूढ़ा व्यक्ति ! जिसने सभी आवश्यक सामान भेजा है।' इस प्रकार की चिन्ता करते हुए उन्होंने अचानक देखा वहाँ न तो वह साधू है और न ही सामान लाने वाला बालक। आसपास सभी तरफ उन्हें ढूँढ़ा, पर कुछ पता न चला। पिताजी के पास आकर अन्नदा कुमार ने यह घटना बतलायी। पिताजी के आँखों में अश्रु आ गये, वे कहने लगे–"**आज मेरा घर पवित्र हो गया ! वे आये थे !! जिन्होंने कहा है–योगक्षेम् बहाम्यहम !!! उन्होंने मुझसे कहा है, पौष महिने की छः तारीख को मुझे लेने के लिए गोस्वामी जी आयेंगे !!! तुम मुझे छोड़कर और कहीं मत जाना।**" अन्नदा कुमार के आँखों में अश्रु की धारा बह चली–एक ओर पिता के अश्रु एवं कन्दनरता छोटी बहन बीना और दूसरी तरफ ईश्वर की करूणा का दान। इस समय मृत्युशय्या पर पड़े हुए पिता ने अन्नदा कुमार से कहा–"**मेरी एक भिक्षा है–विवाह करना–जहाँ भी तुम्हारी इच्छा हो । तुम्हारे लिए ईश्वर ने सब कुछ पहले से स्थिर कर रखा है ।**" अन्नदा कुमार ने पिता के चरणों में प्रणाम करते हुए शपथ लिया कि वे विवाह करेंगे।

इस घटना के बाद से अयाचित रूप से अपने आप विभिन्न स्थानों से सहायता आने लगी। अन्नदा कुमार अधिकांश समय पिता के पास रहते थे। सारी रात जाग कर उनकी सेवा करते थे। इस समय उन्होने अपनी माँ, पितामह एवं गोस्वामी प्रभु की वहाँ उपस्थिति अनुभव किया। पिता को यह सब बतलाने पर उन्होने ये सब बाते गुप्त रखने को कहा। उनके कुलगुरू शाक्त परिवार के थे। इस कारण, गुरू के अभिशाप के डर से वैष्णव गुरू की बात उन्होने सर्वदा गुप्त रखी। क्रमशः पौष महिने की छः तारीख आ गयी। उस दिन अन्नदा कुमार सर्वदा गीता के अध्यायो का पाठ करते रहे। पिताजी 'विश्वरूप दर्शन' ग्यारवा अध्याय पसंद करते थे। अन्नदा कुमार ने इसी अध्याय को कई बार सुनाया। अन्त में उन्होने 'तारक ब्रह्म'–'हरे कृष्ण.....हरे राम' मंत्र का संकीर्तन प्रारम्भ किया। उस दिन पिताजी काफी प्रफुल्लित थे। अचानक वे कहने लगे–''**तुम आये हो प्रभु! सारा जीवन अपने को छिपाकर रखा, पर अब अपने को नही छिपा सके !! अपने चरणों में मुझे स्थान दो !!! इसके बाद तीन बार 'ॐ नमः शिवाय' का उच्चारण करते हुए उन्होंने महाप्रयाण किया। इस समय भावमग्न अन्नदा कुमार ने देखा कि गोस्वामी जी अपने दाहिने चरण द्वारा पिताजी को स्पर्श कर रहे हैं।** ''

यथा विधि पूर्व पुरूषों के श्मशान में पिता का दाह संस्कार सम्पन्न हुआ। जिस समय उनका शरीर छुटा था, उस समय वहाँ घर पर दिव्य सुगंध का अनुभव किया गया। रात के समय अन्नदा कुमार, भविष्य में अब क्या होगा? किस प्रकार रहेगे? यह चिन्ता करते-करते सो गये। स्वप्न में उन्होंने माँ एवं पिताजी दोनों का ज्योतिर्मय रूप देखा। माँ सांत्वना देते हुए कह रही है –''तुम चिन्ता मत करो हमलोग सदा तुम्हारे निकट हैं। जो सर्वदा तुम्हारी चिन्ता करते ह, वे ही तुम्हारी सभी उचित व्यवस्था कर रहे हैं।''

पिताजी के श्राद्धादि कार्य में बिना मांगे ही इतनी सामग्री एकत्रित हो गयी कि सभी कार्य अच्छी तरह हो जाने के बाद भी, चार-पाँच दिन तक अनेक लोग भोजन करते रहे। पिताजी के श्राद्ध के पश्चात् छोटी बहन बीना को अपनी बुआजी के पास रखकर अन्नदा कुमार वर्द्धमान आ गये। मित्रों ने उन्हें कालेज में पढ़ने का सुझाव दिया, परन्तु पढ़ाई में मन न लगने के कारण उनकी पढाई यही समाप्त हो गयी। इस समय सर्वदा नाम-जप में उनका मन तल्लीन हो जाता था।

एक दिन अचानक एक परिचित साधू ने आकर अन्नदा कुमार से कहा–'तुम अभी देवघर चले जाओ, वहाँ पगली माँ शरीर छोड़ने के लिए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।' पगली माँ का पता लेकर अन्नदा कुमार उसी समय देवघर के लिए रवाना हुए। एक परिचित सज्जन ने उनके टिकिट की व्यवस्था कर दी। देवघर स्टेशन से बाहर आकर वे मन्त्रमुग्ध होकर लगातार तीन घण्टे तक चलकर पहाड़ के नीचे एक कुटिया के पास पहुँचे। वहाँ एक नागा साधू धूनी जलाकर बैठे हुए थे। अन्नदा कुमार को देखकर उन्होंने कहा–'पगली माँ उस कुटिया के भीतर है।' अन्नदा कुमार कुटिया

के भीतर गये। वहाँ पगली माँ ध्यानस्थ बैठी थी। अन्नदा कुमार को देखकर उसने प्रणाम किया और कहा—''तुम्हारे लिए ही मैं प्रतीक्षा कर रही थी। मैं संन्यासिनी हूँ। मेरे शरीर छोड़ने के पश्चात् उस वृक्ष के निकट मेरे शरीर की समाधि देना।'' अन्नदा कुमार को पगली माँ ने भोजन कराया। उसके पश्चात् दोनों नागा बाबा की धूनी के पास जाकर बैठ गये। सारी रात तन्मयभाव के साथ बीत गई। सुबह अन्नदा कुमार ने देखा कि पगली माँ गेरूआ वस्त्र पहनी हुई है और उनके गले व हाथ में रूद्राक्ष की माला है। वे निर्दिष्ट वृक्ष के नीचे एक गढ्ढे में जाकर पद्मासन लगाकर बैठ गयी। नागाबाबा और अन्नदा कुमार सामने जाकर खड़े हो गये। पगली माँ ने दोनों को प्रणाम किया एवं स्थिर भाव से बैठे हुए, शरीर त्याग दिया। नागा बाबा ने कहा—'पगली माँ ने शरीर त्याग दिया है, मेरा कर्तव्य अब पूर्ण हो गया है।' ऐसा कहकर वे तीव्र गति से चले गये। अन्नदा कुमार पगली माँ के शरीर को समाधि देकर वहीं बैठ गये। उनका मन विभिन्न प्रकार की चिन्ताओं से परिपूर्ण हो गया। यह समाधि स्थान देवघर में त्रिकुट पर्वत पर है। अन्नदा कुमार ने अपने ग्रन्थ 'आमार जीवन' में लिखा है कि नागा बाबा, पगली के दीक्षा गुरू थे। इनका दर्शन मैंने बाद में भी कई बार किया। वे कभी भी मेरा प्रणाम स्वीकार नही करते थे वरन् मुझे ही प्रणाम करते थे। रामचन्द्रपुर आश्रम में भी वे एक बार आये थे। अन्नदा कुमार बैद्यनाथ धाम का दर्शन कर वर्द्धमान वापस आ गये। इस समय वे अधिकांशतः ध्यानस्थ रहते थे।

अन्नदा कुमार को मित्रगण प्रायः देश सेवा के कार्यों तथा सभा-समिति में प्रवचन आदि देने के लिए ले जाते थे। उन्होंने आत्मविचार करके देखा कि उनके भीतर अभी भी कर्म के संस्कार तीव्र है। इसलिए कर्म करना आवश्यक है। साधन-भजन निर्दिष्ट समय में करने के पश्चात् वे अपने को पुनः कर्म जगत् में ले आये। इस समय परिव्राजक कमलानन्द ने उन्हें यथा योग्य उपदेश देकर कहा—''**कर्म भी भगवान् का है और कर्मफल भी भगवान का है। जो सामने आ जाए करते रहो। भगवान का नाम लेकर, भगवान का काम कर रहा हूँ—इस भावना से कर्म करते रहो। तुम्हारे भीतर जो भगवान हैं, वे ही सभी के भीतर भी हैं। सभी की सेवा को त्याग कर, भगवान की सेवा की कल्पना मत करो।**'' उनके उपदेशानुसार अन्नदा कुमार कर्मक्षेत्र में अग्रसर हुए। इस तरह १९२५ ई. तक अन्नदा कुमार वर्द्धमान में रहे। इसके पश्चात् १९२६ ई. में वर्द्धमान त्याग कर वे रामचन्द्रपुर आ गये।

अध्याय ५ : रामचन्द्रपुर में वापस आना एवं स्वदेशी आन्दोलन म योगदान

वर्द्धमान में जिस स्वाधीनता आन्दोलन में अन्नदा कुमार ने योगदान दिया था, उसी कार्य को उन्होंने रामचन्द्रपुर में भी विस्तृत रूप से प्रारम्भ किया। वर्द्धमान में रहते समय अनिल वरण राय, प्रफुल्ल घोष, कवि काजी नजरूल इस्लाम, वारीन्द्र नाथ घोष आदि क्रान्तिकारियों से उनका आन्तरिक सम्बन्ध था। इन क्रान्तिकारियो के सिद्धांत का प्रयोग रामचन्द्रपुर में करने का अवसर अन्नदा कुमार को मिला।

उस समय गाँव की दुर्दशा का अन्त नही था। वहाँ न चिकित्सा की कोई व्यवस्था थी न अध्ययन के लिए पाठशाला थी। हैजा, चेचक आदि महामारी होने से गाँव के असहाय लोगों के पास मृत्यु के सिवाय कोई रास्ता नही था।

रामचन्द्रपुर आश्रम में पुस्तकालय एवं चरखे का कार्य पहले ही प्रारम्भ किया गया था। अब उसे और अधिक विस्तृत किया गया। आश्रम में करघा बैठाकर, चरखे से प्राप्त धागों से, कपड़ा बनाना आरम्भ किया गया। रात्रि के समय नैश विद्यालय भी आरम्भ किया गया। गाँव के लोगों की इन कार्यों में रूचि एवं सहयोगिता प्राप्त हुई। पुरूलिया जिले में कुष्ठ रोग की चिकित्सा केवल जिला अस्पताल में ही होती थी। गरीब लोगों की चिकित्सा की सुविधा के लिए अन्नदा कुमार ने आश्रम में एक कुष्ठ चिकित्सा केन्द्र खोला। वर्द्धमान से परिचित चिकित्सक सप्ताह में एक बार आकर इन्जेक्शन एवं दवाई दिया करते थे। अन्नदा कुमार ने चिकित्सक के पास से इन्जेक्शन लगाना सीख लिया। अब वे स्वयं इन्जेक्शन एवं दवाई आदि देने लगे। यह केन्द्र १९२८ ई. तक चला। बाद में जिला बोर्ड की तरफ से कई स्थानो पर चिकित्सा केन्द्र खोलने पर अन्नदा कुमार ने यह केन्द्र बन्द कर दिया।

गाँव के लोगों में स्वदेशी भावना को बढाने के लिए अन्नदा कुमार छोटी-छोटी प्रचार पुस्तिका प्रकाशित करते थे। वर्द्धमान एवं कोलकाता से प्रकाशित स्वदेशी भावना से सम्बन्धित कई साप्ताहिक एवं मासिक पत्रिकाओं की अधिक प्रतियाँ खरीदकर उसका वे प्रचार करते थे। **इस तरह बाहरी तौर पर सेवा कायो की आड़ लेकर वे कमशः लोगों को अंग्रेजा के विरूद्ध आन्दोलन करने के लिए प्रेरणाजनक कार्य किया करते थे।**

उस समय किसी कार्यवश वे कुछ दिनों के लिए वर्द्धमान गये। एक दिन उनके मित्र चलचित्र-परिचालक देवकी वसु से, महात्मा अन्नदा ठाकुर के वर्द्धमान आगमन का संवाद मिला। अन्नदा ठाकुर द्वारा लिखित ग्रन्थ 'स्वप्न जीवन' बहुत प्रसिद्ध है। स्वप्न में आदिष्ट निर्देशों के अनुसार उन्होंने दक्षिणेश्वर में 'आद्यापीठ' की स्थापना

की थी। वे श्रीरामकृष्ण देव के अनन्य भक्त थे। अन्नदा कुमार उनसे मिलने जब वहां पहुँचे, उस समय वहां संकीर्तन चल रहा था एवं भावस्थ महात्मा अन्नदा ठाकुर मधुर नृत्य कर रहे थे। वहाँ जाकर अन्नदा कुमार मुग्ध हो गये। उन्हें अपने शरीर का बोध नही रहा। वे एक चरम आनन्द में डूब गये। जब उनकी चेतना लौटी तब वहाँ से प्रायः सभी लोग जा चुके थे। इस दिन महात्मा जी से मुलाकात न हो सकी। दूसरे दिन एक अज्ञात आकर्षण से वे पुनः वहाँ गये। महात्मा अन्नदा ठाकुर ने उन्हें देखते ही आलिंगनबद्ध कर लिया। कुछ देर बातचीत होने के पश्चात् वे वापस आ गये।

अन्नदा ठाकुर से मिलने के बाद से उनका मन फिर साधना के भीतर डूबने लगा। एक ओर राजनैतिक कर्मों का आकर्षण और दूसरी तरफ अन्तर्मुख होकर साधना का आनन्द। इन दोनों का सामंजस्य किस प्रकार किया जाये? इस प्रश्न ने उन्हें चिन्ता में डाल दिया। कभी मन में विचार आता कि इस तरह दुनिया भर के हजारों दुःख एवं संघर्ष के भीतर में अपने को लिप्त रखकर क्या फायदा? इससे तो भगवान् का नाम-जप, स्मरण-मनन करते हुए निश्चिन्त जीवन व्यतीत करना श्रेष्ठ है। कभी अन्तःकरण से आवाज आती कि अपनी आँखों के सामने असंख्य मानव दुःख, कष्ट पा रहे हैं, उन पीडित लोगों का करुण क्रन्दन क्या तुम्हें आन्दोलित नही करता? सुप्त जड वस्तु की तरह निष्क्रिय रहना क्या ठीक है? यदि तुम हर प्राणी में शिवजी को प्रत्यक्ष देखकर सेवा न कर सको, सभी के भीतर अपने इष्ट भगवान को न देख सको तो तुम्हारे साधन-भजन का क्या मूल्य है? इस प्रकार के द्वन्द में पड़कर अन्नदा कुमार का मन जब चंचल हो उठा तब परिव्राजक कमलानन्द के उपदेशों का वे स्मरण करने लगे। अचानक उसी समय परिव्राजक कमलानन्द ने उन्हें पुकारा। अन्नदा कुमार ने उन्हें देखकर कहा कि मैं अभी-अभी आपको ही याद कर रहा था। अन्नदा कुमार ने अपने मन का द्वन्द उनके सामने प्रकट किया। तब कमलानन्द ने स्नेहपूर्वक उन्हें कर्म एवं साधना दोनों का रहस्य समझाते हुए कहा–''**तुम्हारा कर्म बाकी है, तुम्हें कर्म करना ही पड़ेगा। मैं दूर-दृष्टि से स्पष्ट देख रहा हूँ कि तुम्हें अपने मृत्यु पर्यन्त कर्म करते रहना पड़ेगा।**''

इसी समय एक दिन अन्नदा कुमार तिब्बती बाबा की कुटिया पर उनसे मुलाकात करने गये। बातचीत के समय उन्होंने अन्नदा कुमार से उनके भविष्य के सम्बन्ध में जो बात कही, वह इस प्रकार है–

(१) तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है।

(२) तुम्हारे सहकर्मी तुम्हें अपमानित करेंगे। उनके दुष्टकर्मों के कारण तुम्हें निन्दा सहन करनी पड़ेगी।

(३) तुम्हें गृहस्थ होना पड़ेगा। गृहस्थी में कोई बाधा न होने पर भी तुम्हें शान्ति नही मिलेगी। अन्त में तुम्हारा संन्यास होगा।

(४) तुम्हारे गुरूदेव काशी में है। यहाँ-वहाँ घूमने से कोई लाभ नही होगा। यथा समय सद्गुरू की प्राप्ति एवं दीक्षा होगी।

(५) तुम्हारे जीवन में राजनैतिक एवं धार्मिक भावनाओं का संघर्ष होगा। अन्त में तुम्ह राजनैतिक जीवन से अवकाश ग्रहण करना पड़ेगा। तुम्हें अनेक वार मिथ्या निन्दा, ग्लानि एवं अपप्रचार का सामना करना पड़ेगा। गुरू शक्ति सर्वदा सहायक रहने के कारण कोई कुछ भी नही कर पायेगा। देवगुरू एवं दैत्यगुरू अर्थात् बृहस्पति एवं शुक्र दोनों तुम्हारे सहायक हैं।

(६) तुम्हारा कर्म प्रधान मन राजनैतिक कायो में वार-वार लिप्त होगा परन्तु धार्मिक प्रेरणा तुम्हें अनासक्ति की ओर आकृष्ट करेगी। अभी काफी दिनों तक तुम्हें राजनैतिक कायो में संलग्न रहना पड़ेगा।

(७) क्रमशः राजनैतिक भावनाएं अपने आप परिवर्तित हो जायेगी। तुम्हारे धार्मिक जीवन में अचानक ऐसा परिवर्तन आयेगा जिससे तुम्हारे जीवन में सब विपर्यस्त (उथल-पुथल) हो जाएगा।

(८) तुम्हारे सम्पूर्णतः धर्मजीवन व्यतीत करने पर भी दीर्घकालीन गृहस्थ एवं राजनैतिक कमो का प्रभाव तुम्हें उसके भीतर रखने की चेष्टा करेगा ।

(९) वाद में सर्प की केंचुली की तरह सव विलग हो जाएगा। तुम्ह आचार्य (सद्गुरू) का आसन ग्रहण करना पड़ेगा। तुम्हारे गुरू तुम्हें सब शक्ति अर्पित करेंगे।

(१०) बाद में तुम्हें राजनैतिक वातावरण में आना पड़ेगा परन्तु तुम मौन हो जाओगे। राजनैतिक कर्म अब तुम्हें असह्य लगेगा, उसमें ज्वलन का वोध होगा।

(११) तुम्हारी मौन भावना जन-समुदाय के क्षोभ का कारण बनेगी और यही तुम्हारे लिए वरदान सा होगा। तुम सब छोड़कर मुक्त हो जाओगे एवं वृन्दावन के पथ में तुम्हारी शुभ यात्रा होगी।

(१२) कुटुम्ब के सबसे घनिष्ठ (निकटतम) लोग तुम्हारी मनोवेदना के कारण होंगे।

यह भविष्यवाणी अन्नदा कुमार के जीवन में अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुई।

इसी समय ननी बाबू का अचानक देहान्त हो गया। अपने प्रिय शिक्षक ननी बाबू के देहांत का समाचार पाकर वे कॉलेज की शोकसभा में गये। वहाँ से वे अपने एक मित्र के घर पहुँचे। वहॉ रहते समय एक घटना ने उनके मन में गम्भीर आघात किया। एक दिन उनके एक शिक्षक प्रबोध बाबू ने आकर कहा कि छात्रावास में एक छात्र कालीपद अत्यन्त अस्वस्थ है। उसकी सेवा का भार यदि तुम लो तो हमलोग निश्चिन्त होंगे। अन्नदा कुमार की आन्तरिक सेवा भावना से वहाँ शिक्षक आदि सभी परिचित थे। अन्नदा कुमार तुरन्त शिक्षक के साथ छात्रावास में आये। कालीपद की हालत नाजुक देखकर उन्होंने उसके पिता को खबर भेजी। पिताजी किसी गांव में खेती का काम करते थे। उनके पिताजी छात्रावास में आये। गाँव के लोगों की तरह

उनकी साधारण वेश-भूषा थी। अन्नदा कुमार ने पहली बार उन्हें देखा था इसलिए उन्हे पहचाना नही। कालीपद से उस व्यक्ति का परिचय पूछा, परन्तु वह मौन रहा। बाद में उस व्यक्ति ने अपने को कालीपद के पिता के रूप में परिचय दिया, तब अन्नदा कुमार को अनुभव हुआ कि कालीपद थोड़ी सी शिक्षा पाकर घमंड से अपने पिता को अनपढ़ समझता है एवं उनका परिचय देने मे उसे शर्म आ रही है। अपने पिता को एक बार प्रणाम तक उसने नही किया। इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने का क्या मूल्य है? इस प्रकार की आधुनिक सभ्यता का क्या मूल्य है? कुछ दिन सेवा करने के बाद कालीपद स्वस्थ हो गया एवं पिता के साथ अपने गाँव चला गया।

ननी बाबू एवं कुछ हिताकांक्षी मित्रों के देहान्त का अन्नदा कुमार के कोमल मन पर विशेष प्रभाव पड़ा। कुछ दिनो के लिए उन्होंने कोलकाता, भाटपाड़ा, त्रिवेणी, जयनगर आदि कई स्थानों का भ्रमण किया। वहाँ बंगाल के कुछ विशिष्ट पण्डित लोगों के साथ उनका परिचय हुआ। भारत विख्यात पण्डित श्री पंचानन तर्करत्न एवं उनके पुत्र श्रीजीव न्यायतीर्थ के साथ भाटपाड़ा में परिचय हुआ। वृन्दावन के महात्मा धनंजय दास काठियाबाबा के साथ इसी समय से उनकी मित्रता हुई।

वर्द्धमान में रहते समय एक दिन एक महिला ने दो गेरूआ वस्त्र देकर अन्नदा कुमार को प्रणाम किया और कहा–'मेरा पुत्र अत्यन्त बीमार है। मैंने इसके लिए बैद्यनाथ धाम मे शिवजी के निकट अनशन किया था। बाबा ने स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि तुम्हारे पुत्र की दवा अन्नदा कुमार के पास है। उसे लेने से तुम्हारा पुत्र व्याधि से मुक्त हो जाएगा।' अन्नदा कुमार को वंश परम्परा से एक ताबीज बनाना मालूम था। उसे धारण करने से कई प्रकार की बीमारी अच्छी हो जाती थी परन्तु उसे बनाने के नियम बहुत कठिन थे। यथाविधि ताबीज बनाकर उन्होंने उस स्त्री को दे दिया। ताबीज धारण करने से उसका पुत्र तो ठीक हो गया परन्तु अन्नदा कुमार को रक्त वमन होने लगा और लगभग एक माह के बाद वे अपने आप ठीक हो गये।

कोलकाता में रहते समय वे प्रायः दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण परमहंस द्वारा पूजित काली मन्दिर एवं पंचवटी में जाकर नाम-जप एवं ध्यान करते थे। उस समय सद्गुरू की प्राप्ति के लिए उनका मन व्याकुल हो गया था। एक दिन स्वप्न में एक महात्मा ने कहा कि 'अभी सद्गुरु पाने में विलम्ब है।' तिब्बती बाबा ने भी यही बात कही थी। अब अन्नदा कुमार को कई अच्छे स्वप्न एवं ध्यान में दर्शन मिलने लगे। नाम-जप करते समय उनका बाह्य ज्ञान विलुप्त हो जाता था। अपने मित्र को उन्होंने एक दिन ये सब बातें कही। इसी दिन से उनके दर्शन आदि सब बन्द हो गये एवं मन शुष्क रहने लगा। अब वे व्याकुल होकर कई दिन तक इसके लिए प्रार्थना करते रहे। एक दिन दोपहर में, स्वप्न में उनकी माँ ने दर्शन देकर कहा–''**साधना के पथ में जो भी दर्शन या अनुभव होता है, इसकी चर्चा किसी से नहीं करना चाहिए। इसकी**

चर्चा करने से वह अवस्था बन्द हो जाती है। तुम्हारा भी यही हुआ है। साधन-भजन गुप्त रखना चाहिए। इसे समझने वाला कोई नहीं है। तुम श्रीमद्भागवत का पाठ आरम्भ करो इससे तुम्हारी शुष्क अवस्था नष्ट हो जायेगी ।'' दूसरे दिन से उन्होंने श्रीमद्भागवत का पाठ शुरू किया एवं उनके मन की शुष्कता नष्ट हो गयी, मन शान्त हो गया।

कोलकाता में रहते समय सशस्त्र क्रान्तिकारियों के साथ उनका अन्तरंग परिचय हुआ। वे अपने सिद्धांतों का पत्रिका के माध्यम से प्रचार किया करते थे। बाद में कई बार रामचन्द्रपुर आश्रम में ये क्रान्तिकारी लोग रहते भी थे। यह आश्रम बिहार एवं बंगाल की सीमा से संलग्न होने से, पुलिस जब इनका पीछा करती थी तब वे यहाँ से भागकर जंगल या पहाड़ी में छिप जाते थे। काशीपुर के तत्कालीन राजा ज्योतिप्रसाद, गुप्त रूप से इन क्रान्तिकारियों की सहायता करते थे। राजा के पितामह ने सिपाही विद्रोह के समय अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ाई के समय पुरूलिया जिले का खजाना लूट लिया था एवं अदालत जला दिया था। अंग्रेजों ने परिणाम स्वरूप उन्हें जेल में कई दिनों तक बन्द रखा। इन घटनाओं के कारण पंचकोट राजाओं की अंग्रेजों के प्रति तीव्र घृणा थी।

इस समय 'शक्ति', 'आत्मशक्ति', 'आर्यावर्त', 'सर्वेन्ट', 'भारती' आदि पत्रिकाओं में अन्नदा कुमार के लेख एवं कविता प्रकाशित होते थे। यद्यपि रामचन्द्रपुर उनका प्रधान केन्द्र रहा, पर वे विभिन्न स्थानों का भ्रमण भी करते रहते थे। आश्रम की तरफ से खादी प्रचार, ग्राम-संगठन, दातव्य चिकित्सालय आदि कार्यों को करने से लोगो की श्रद्धा उनके ऊपर बहुत बढ़ गयी। वे सभी कार्य 'ईश्वर की सेवा भावना' से करते थे। इन सेवा कार्यों में उनका अपना कुछ भी स्वार्थ नहो था। कभी-कभी अपने घर के जमीन, बर्तन, आदि गिरवी रखकर या बेचकर वे सेवा कार्य चलाते थे। उस समय उनका आदर्श था–**''तुम विश्व की सेवा में अपने को जितना अधिक लगा दोगे उतना अधिक तुम्हें विश्व का स्नेह प्राप्त होगा। लोगों की सेवा में सोलह आना (सम्पूर्ण) लगाने पर तुम्हें भी सोलह आना (सम्पूर्ण आनन्द) मिलेगा।''** ग्राम के लोगों को जागृत करना होगा, मालगुजार और धनी लोगों के अत्याचार से उनकी रक्षा करनी होगी–यह सब विचार अन्नदा कुमार के मन में सर्वदा आते रहते थे। इस कारण अनेक मालगुजारों के साथ अन्नदा कुमार को संघर्ष भी करना पड़ा। गांव में हैजा फैल गया है, कहीं पीने का पानी नहो है। एकमात्र मालगुजार के कएं में पानी है, उसे जानकर अन्नदा कुमार समष्टि के कल्याण के लिए, मालगुजार से झगड़ा कर वहाँ से लोगों को पानी वितरण करवाया। कई मालगुजार एवं धनी लोग, गरीबों से काम लेने के बाद, उचित मजदूरी नहीं देते थे। इसका उन्होंने विरोध किया एवं गरीब लोगो को मजदूरी दिलवाई। वर्द्धमान शहर में भी इनका संगठन मूलक कार्य उस समय काफी

विस्तृत हो गया था। अन्नदा कुमार, अन्याय कार्यों का किस प्रकार दृढ़ता पूर्वक प्रतिवाद किया करते थे, निम्न दृष्टांत से इसका पता चलता है–

अन्नदा कुमार जिस समय वर्द्धमान आये थे, उस समय अधिकांश शिक्षित एवं समाज के प्रतिष्ठित धनी लोग शराब, वेश्यागमन आदि कार्यों में आसक्त थे। रात्रि ८ बजे से १२ बजे तक विभिन्न स्थानों में शराबियों के अड्डों में अश्लील संगीत आदि प्रायः होते रहते थे। साधारण भद्र गृहस्थ लोग इनके अत्याचार से तंग आ गये थे, परन्तु इसका प्रतिवाद करने का किसी में साहस नहीं था। अन्नदा कुमार ने अपने कुछ मित्रों की सहायता से इस अन्याय कार्य का प्रतिरोध करने की योजना बनाई। पहले सभी लोगों को सूचना भेजी गई कि रात नौ बजे के बाद कहीं भी इस तरह की हुल्लडबाजी नहीं चलेगी। शराब की भट्टी एवं वेश्याओं को भी सूचित किया गया। लेकिन उन लोगों ने अपना कार्य यथावत् चालू रखा। पुलिस विभाग के कई लोगों का भी उन अड्डों में आना-जाना था। जब युवकों की टोली ने देखा कि इन्हें समझाने से कोई काम नहीं हो रहा है तब उन्होंने शराबियों को पकड़-पकड़कर पीटना चालू किया। इसमें संलग्न पुलिस के लोगों को भी कई बार रंगे हाथ पकड़ कर अच्छी तरह पिटाई की गयी एवं उनके सम्बन्ध में थाने में रिपोर्ट की गयी। रात आठ बजे पहले घण्टी बजा दी जाती थी एवं नौ बजे के बाद युवकों की टोली सर्वत्र घूमती रहती थी। दो-चार दिन इस तरह करने के बाद अधिकांश अड्डे बन्द हो गये। किन्तु दो-चार स्थानों में कुछ प्रभावशाली धनी लोगों ने अपना यह धन्धा चालू रखा। अन्नदा कुमार की टोली ने एक दिन इस तरह के अड्डे में पहुँचकर पहले उन्हें हुल्लड़बाजी करने से मना किया, लेकिन उन्होंने इनकी बात अनसुनी कर दी। अब टोली के लड़कों ने दरवाजा तोड़कर वहाँ प्रवेश किया और उन लोगों को हन्टर से बेदम पीटा। प्रभावशाली लोगों ने पैसे के बल पर कुछ गुण्डों को लाकर इन लड़कों को पिटवाने की चेष्टा की परन्तु वे सफल न हो सके। पुलिस तथा कोर्ट में भी इस घटना की रिपोर्ट की गई एवं मामला चला। लड़कों ने रातों-रात विज्ञापन छपवा कर, रास्ते के प्रमुख स्थानों में उसे लगाकर उन विशिष्ट लोगों के काले कारनामों का भण्डा-फोड़ किया। अन्त में उन्हें लड़कों के समक्ष माफी मांगनी पड़ी। एक दिन इन वित्तशाली व्यक्तियों में से एक व्यक्ति को शराब पीकर रास्ते में हुल्लड़ करते देखकर, इन लड़कों ने उसके मुख पर कालिख पोतकर एवं सिर का आधा बाल मूड़वाकर रास्ते में घुमाया। लड़कों के इस तरह क कठोर प्रतिवाद से शहर के भीतर हुल्लड़बाजी काफी दिनों तक बन्द रही। उस समय इन लड़कों का ध्येय समाज की बुराईयों को दूर करना था। एक आर अत्याचार के विरूद्ध संग्राम और दसरी तरफ अनाथ एवं आर्त लोगों की जो सेवा कार्य इन युवकों ने उस समय किया था, उसकी प्रशंसा सभी लोग किया करते थे।

इस समय अन्नदा कुमार के सामने संसार का स्वरूप प्रकट हुआ। उन्होंने अनुभव

किया कि मनुष्य, निःस्वार्थ होने से जिस तरह देवता बन सकता है उसी तरह असत् लोगों की संगत से कोई भी पाप कर्म कर सकता है। उन्होंने देखा, पुत्र अच्छी तरह उपार्जन करने के बावजूद अपने वृद्ध माता-पिता को ठीक से भोजन तक नहीं देता है। दुरारोग्य व्याधि से अपनी माँ की मृत्यु होने पर उनके शव को श्मशान ले जाने पर वह साथ में नहीं जाना चाहता। अधिकांश गृहस्थ लोगों के भीतर, धन-सम्पत्ति आदि को लेकर जिस तरह प्रतिहिंसा की भावना उन्होंने देखा, उससे उनके मन में विचार आया कि इतनी अशान्ति रहने पर भी लोग क्यों गृहस्थ या संसार के चक्कर मे पडते है ।

इसी समय की एक घटना ने उनकी, हिन्दूधर्म के श्राद्धादि कायो के प्रति श्रद्धा बढा दी। बालिकाओं के विद्यालय मे एक नौकरानी काम करती थी। उसका भाई गाँव में रहता था। एक दिन अचानक अपने भाई की छायामूर्ति देखकर वह चिल्ला उठी। छायामूर्ति उसी समय लुप्त हो गयी। इसके पश्चात् लगातार तीन दिन तक उसने अपने भाई के करूण कण्ठ से आवाज सुनी, जो कह रहा था "मुझे बहुत भूख एवं प्यास लगी है।" उस नौकरानी ने जब अन्नदा कुमार को यह घटना बतलाई तब गाँव में खबर लेने पर पता चला कि कुछ दिन पूर्व उसके भाई का देहांत हो गया है। **अन्नदा कुमार उस नौकरानी को लेकर त्रिवेणी के गंगा किनारे गये एवं विधि पूर्वक श्राद्धादि कार्य उससे करवाया। उसके बाद रात्रि के समय नौकरानी को फिर भाई दिखलाई पड़ा जो कह रहा था, "उसकी क्षुधा एवं तृष्णा अव मिट गयी है।" यह घटना सभी के लिए शिक्षाप्रद है। आजकल लोग अपने माँ-बाप की सम्पत्ति लेने के लिए तत्पर रहते हैं और उनके मृत्यु के पश्चात् श्राद्धादि कार्य करने में पैसे का हिसाब जोड़ते हैं। श्राद्धादि से मृत आत्मा को तृप्त कर उनका आशीर्वाद प्राप्त किया जा सकता है।**

इस समय वर्द्धमान में देशबंधु चितरंजन दास एवं महात्मा गांधीजी आये थे। अन्नदा कुमार को सौभाग्यवश इन लोगों की थोड़ी बहुत सेवा का अवसर मिला। उस समारोह में कविता पाठ कर अन्नदा कुमार ने उनका अभिनन्दन किया। इसके बाद कई बार उन महात्माओं से उनकी भेंट हुई थी। देशबन्धु चितरंजन दास ने उन्हें अपने ही गांव में रहकर सेवा कार्य करने के लिए उत्साहित किया। महात्मा गांधीजी ने भी पत्र में इन्हें लिखा कि ग्राम की सेवा करने से मैं अधिक संतुष्ट होऊँगा।

अन्नदा कुमार अपनी छोटी बहन बीना को लेकर काफी चिन्तित थे। अपने पास रखना संभव नही था और रिश्तेदारों के पास रखने पर कुछ दिनों के बाद उन लोगों में उचित व्यवहार की कमी दिखलाई पड़ती थी। सौभाग्य वश बीना का विवाह आद्रा के पास एक गांव में खुदीराम गोस्वामी के साथ सम्पन्न हुआ। बीना के विवाह के बाद वे निश्चिन्त हो गये।

समाज के कल्याण एवं उन्नति के लिए अन्नदा कुमार ने सर्वदा चेष्टा की, पर उसके परिणाम देखकर वे सन्तुष्ट नहीं हुए। समाज के संस्कार एवं संगठन मूलक

कार्य करने के लिए युवको एवं समाजपति लोगों को जो त्याग स्वीकार करना चाहिए, इसके लिए वे राजी नहीं होते थे। जो निर्भिकता एवं उदारता अन्नदा कुमार ने उन लोगो से आशा की थी, वह उन्हें कहीं भी नहीं मिली। अन्नदा कुमार का सिद्धांत था–''भ्रष्ट मनुष्य को वर्जन की अपेक्षा उसके भूल-त्रुटि का संशोधन करते हुए, उसे फिर से समाज में ग्रहण करना चाहिए। इस तरह का उदार मनोभाव न रखने पर कोई भी समाज नही टिक सकता।'' समाज के अनेक समारोह में प्रवचन एवं कार्यों द्वारा अपने इस सिद्धांत की स्थापना करने की चेष्टा उन्होंने की, परन्तु रूढ़ीवादी सिद्धांत पर चलने वाले लोगों ने इस सिद्धांत का ही वर्जन कर दिया। समाज का एक सामान्य अंश ने ही इस तरह की उदार विचारधारा को अपनाया।

स्वाधीनता के पूर्व पुरूलिया जिला, बिहार प्रान्त के अन्तर्गत मानभूम जिला कहलाता था। उस समय निवारणचन्द्र, पुरूलिया के शिल्पाश्रम में रहते थे। वे मानभूम जिला के संगठन कायो के एवं सभी प्रकार के आन्दोलन के प्रमुख नेता माने जाते थे। निःस्वार्थ भावना एवं सद्अनुष्ठानों के प्रति आन्तरिक सहयोगिता के कारण लोग इन्हें ऋषि निवारणचन्द्र कहकर अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करते थे। उस समय ऋषि निवारणचन्द्र के आदेश एवं उपदेश को सभी मानते थे। अन्नदा कुमार के साथ उनका पहले से परिचय था। उन्होंने भी अन्नदा कुमार से, रामचन्द्रपुर आश्रम को केन्द्र बनाकर, देश की सेवा करने के लिए कहा। अन्नदा कुमार ने अब सेवा कार्यों के साथ कांग्रेस कमेटी की स्थापना, जिले के हर थाने में शुरू की। रघुनाथपुर, सांतुड़ी, नेतुड़िया, काशीपुर आदि कई स्थानों में कांग्रेस कमेटी ने अच्छा कार्य शुरू किया। अन्नदा कुमार की इस निःस्वार्थ सेवा एवं संगठन शक्ति से ऋषि निवारणचन्द्र बहुत प्रभावित हुए। अन्नदा कुमार भी उनके साथ रहकर विभिन्न कार्यों का सुचारू रूप से करने के लिए उनके उपदेशों का सर्वदा पालन करते थे। उस समय श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी के शिष्य श्री वरदाकान्त बन्दोपाध्याय के साथ अन्नदा कुमार का परिचय हुआ। उनके प्रयास से रघुनाथपुर में 'हरिसभा' की स्थापना की गयी। उस कार्य में कुमारेन्द्रनाथ घोष, वरदाकान्त जी के शिष्य मुन्सेफ अवनीबाबू एवं रघुनाथपुर की भक्त मंडली ने विशेष सहयोग दिया।

रामचन्द्रपुर आश्रम में बाँकुड़ा, वर्द्धमान एवं आसपास के जिले से बड़ी संख्या में सेवाकर्मी लोग आते रहते थे। आश्रम की कोई निर्दिष्ट आय नहो थी। जमीन,बर्तन आदि बेचकर जो कुछ मिला था उसे पहले ही अन्नदा कुमार ने सेवा कार्यों में लगा दिया था। उन्होंने आश्रम का खर्च चलाने के लिए कभी भी चन्दा वसूल नहो किया। **''स्वयं अपने परिश्रम द्वारा एवं विलासिता त्याग कर सादा जीवन अपनाने से आवश्यक सभी खर्च चलाया जा सकता है।''** इस सिद्धांत को अन्नदा कुमार ने अपने जीवन में प्रमाणित किया। चरखा, करघा द्वारा कपड़े बनाकर एवं सब्जी आदि की

खेती द्वारा वे अपने आश्रम का अधिकांश खर्च चला लेते थे। आश्रम के कुछ शुभचिन्तक उनके निःस्वार्थ कार्यों से प्रभावित होकर, स्वतः प्रवृत्त होकर हर कार्यो में सहायता प्रदान करते थे। अन्नदा कुमार सर्वदा कहा करते थे–''**मैंने देखा है निःस्वार्थ भावना से कार्य करने पर अर्थ का कभी अभाव नहीं होता है। अर्थ इतना अधिक आता है कि कार्य सम्पूर्ण होने पर भी वह बच जाता है। तुम लोग निःस्वार्थ भावना से कार्य करो अर्थ की वर्षा होगी।**'' रामचन्द्रपुर आश्रम में रहते समय अन्नदा कुमार अपना अधिकांश समय साधन-भजन में लगाते थे। भोजन मे अधिकतर चावल-दाल के साथ थोड़ी सब्जी उबाल कर वे ग्रहण करते थे। यह उनका प्रिय भोजन था। इस कार्य में उनका सेवक राखाल बुनकर, प्रमुख सहायक था। वह आश्रम मे रहकर करघा चलाया करता था एवं यथा साध्य सभी की सेवा में सर्वदा लगा रहता था।

ऋषि निवारणचन्द्र द्वारा सम्पादित 'मुक्ति' पत्रिका के प्रचार एवं प्रसार कार्य मे अब अन्नदा कुमार लग गये। इस पत्रिका में उनके लेख एवं कविताए प्रायः प्रकाशित होते थे। ऋषि निवारणचन्द्र के साथ विभिन्न ग्रामो मे भ्रमण एवं स्वदेशी भावना का प्रचार कार्य से अन्नदा कुमार के जीवन मे मानो एक नव-जीवन की शुरूवात हुई। उस समय के विभिन्न मधुर प्रसंगो का विस्तृत वर्णन उनके 'आमार जीवन' ग्रन्थ में मिलता है।

अध्याय ६ : देश की स्वाधीनता के लिए तीव्र आन्दोलन का शुभारंभ

ऐसा देखा जाता है कि किसी भी कार्य को करने के पीछे कोई कारण या प्रेरणा सर्वदा रहती है। अंग्रेजों ने जब स्वदेशी आन्दोलन को समाप्त करने के लिए कठोर दमन नीति प्रारम्भ की तब अनेक लोगो के मन में विद्रोह की भावना जाग गई। लोगो की सुप्त शक्ति को जागृत करने के लिए २१ फरवरी को श्री किरणचन्द्र दरवेशजी द्वारा 'मुक्ति' नामक पत्रिका में एक बंगला कविता प्रकाशित हुई। इस कविता को दरवेशजी ने काशी के मयदागीन (स्थान का नाम) की बृहत सभा में पाठ किया था। पण्डित जवाहरलाल नेहरू आदि कई नेता इस सभा में उपस्थित थे। उस समय दरवेशजी काशी के बंगाली टोला कांग्रेस कमेटी के सभापति थे। दरवेश जी कवि के रूप में प्रसिद्ध थे। उनके द्वारा बंगला भाषा में लिखित काव्यग्रन्थ 'मन्दिर', उस समय कई विश्वविद्यालय में बी. ए. एवं एम. ए. की पाठ्य पुस्तक तालिका में थी। रविन्द्रनाथ ठाकुर ने भी इस ग्रन्थ की उच्च प्रशंसा की थी। विभिन्न क्रान्तिकारियों से उनका सम्पर्क था। ऐतिहासिक 'काकोरी हत्याकाण्ड' के अनन्यतम क्रान्तिकारी राजेन लाहिड़ी, जिन्हें प्राणदण्ड मिला था, दरवेशजी के पास प्रायः जाते थे। यद्यपि दरवेश जी के साथ उस समय अन्नदा कुमार का साक्षात् परिचय नहीं था परन्तु राजेन लाहिड़ी के साथ परिचय रहने से दरवेशजी की कविता एवं साहित्य से वे बहुत प्रभावित थे। सभा में दरवेशजी द्वारा पठित कविता का सारांश यहाँ प्रस्तुत है–

कविता का शीर्षक–''घुम पाड़ानिया गान'', अर्थात् लोगों को निद्रित करने वाला गाना।

हमारे महान् भारत के लोगो के साठ करोड़ आँखों में जल्दी निद्रा आवे!
हमलोग सभी की तुलना में श्रेष्ठ हैं!
हमारे वेद पुराण हमें बतलाते हैं कि हम क्या थे? पर क्या हुए हैं–
इसे तुम भूल जाओ–इन धार्मिक ग्रन्थों का तकिया बनाकर सो जाओ!
पुस्तक कीटों के लिए इतना अधिक खुराक और कहाँ मिलेगा?
भविष्य में देश का क्या होगा? इस व्यर्थ चिन्ता से क्या लाभ?
हे देशवासियों तुम आराम से निद्रित हो जाओ !!....(१)
हे तीस करोड़ देशवासियों–चिन्ता की क्या बात है?
हमारा भोजन धान तो जमीन में उत्पन्न होता रहता है !
हमारे कृषक भाई लोग कितने निश्चिन्त हैं,

भूखे रहने पर भी उनमें कोई कोलाहल नही है!
हमारा देश दूसरे देशों की तुलना मे कितना अच्छा है!
हम यहाँ आराम से पैर पसारकर बिस्तर में सोते हैं!
हे देशवासियों तुम आराम से निद्रित हो जाओ!!.....(२)

हे देशवासियों वस्त्र की चिन्ता क्यों करते हो?
कपास की खेती तो होती है–बुनकर भी ह!
पर हम रूई नहीं बनाते क्योंकि
विदेशों से इतना बारीक-अच्छा कपड़ा जब जहाजों में भरकर आता रहता है
तब यहाँ के मोटे वस्त्र को हम क्यों पहनें?
हमारे कुछ बुनकर भूखे मर गये तो उससे हमारी क्या हानि होगी?
हे निद्रा, तुम जल्दी आ जाओ!!.....(३)

हे निद्रा तुम आ जाओ–इस बाबू (Clerk) जाति के आँखो में!
चाहे मजदूरी करते या मलेरिया से हमारे कुछ लोग मर जाएँ,
यदि कुछ तरूण युवको को अज्ञात स्थानों में बिना कहे वे ले जाएँ!
इससे कितने लोग मरते ह? उनके लिए क्यों शोक करते हो?
इस तरह पाँच-दस व्यक्तियों के मरने से राज्य लुप्त नही होगा!
हे देशवासियों तुम आराम से निद्रित हो जाओ!!......(४)

हे निद्रा तुम आ जाओ–इस भारत के युवकों की आँखो मे!
शेरो के दहाड़ने की आवाज से, जिनके नासिका गर्जन बन्द नहीं होते हैं!
गाँव में सीमा की रक्षा के लिए लाठी भी नहीं है, पर उससे क्या होगा?
शेर और कितना खाएगा? उसे जो मिलेगा वह ले जाएगा–
इस तरह जीव सेवा में क्या कुछ हानि होती है?
ब्रह्म जगत्मय है–यह वेद पुरान ने कहा है!
शास्त्रों के रहते अस्त्र को कौन चाहेगा?
तुम आराम से निद्रित हो जाओ!!.........(५)

हे निद्रा तुम आ जाओ–भारत के इन बधिरों (बहरे लोगों) की आँखो में!
विदेश में दासों को तो पदाघात किया जाता है–वे ही आते-जाते हैं!
जब जहाज में चढ़ते हो तब तुम्हारे मजदूरी से तुम्हें वे क्या वंचित रखते है?
कितने इस तरह नित्य आते-जाते रहते हैं? कौन इसकी खबर रखे?
तुम आराम से बिस्तर में सो जाओ!!............(६)

हे निद्रा तुम आ जाओ–तुम्हारा दरवाजा बन्द है–कोई आवाज भीतर नही आ रही है!
आराम से धूम्रपान करो–छपी पुस्तकों में पढ़ो–कौन कहाँ मरा है ?

उसके बाद गले की आवाज थोड़ा ऊंचा करते हुए–
लाट साहब के दरबार में थोडा चिल्लाओ!
देश मे अभाव के दुःख में थोड़ा प्रवचन देने के लिए यह (पुस्तक पाठ) अच्छा खुराक है!
हे निद्रा तुम आ जाओ!!...........(७)

हे निद्रा तुम आ जाओ–गहरी नींद में तुम डूब जाओ!
अपने को कर्ता समझ कर साँड़ की तरह (अपने घर में) चिल्लाओ ! और
पत्रिकाओं में लेख लिखने (में) अपना दिमाग लगाओ! यदि
कभी (विदेशी प्रभुओ की) थोडी दृष्टि पड़ जाये तो
उसी वक्त चिल्लाना-लिखना सब बन्द कर चुप हो जाओ!
कहीं वे हमारे दामाद की नौकरी न खालें?
इन सब व्यर्थ कार्यो से, बिस्तर में मुर्दे की तरह पड़े रहो।
हे निद्रा तुम आ जाओ!!.......(८)

हे निद्रा तुम आ जाओ–समझ में नही आता लोग जागना क्यों चाहते हैं?
मैं हूँ–मेरा परिवार है–पुत्र-कन्या आनन्द मे हैं।
कौन मर रहा है या जिन्दा है उसकी खबर रखने से क्या लाभ?
मैं कितना स्वाधीन हूँ–आराम से खाता-पीता हूँ।
पडोसियो के घरों में घूम-फिर आता हूँ–यह काफी है!
इससे अधिक चाह पागलों को होती है!
शान्ति-शान्ति से रहो–व्यर्थ क्यों कोलाहल (हल्ला) करते हो?
सोते हुए सपना देखो और पोथी के पन्नों में स्वप्न विचार पढ़ो!
हे भारत वासियों तुम्हारी आँखो में जल्दी निद्रा आए!!..........(९)

दरवेश जी ने उपरोक्त कविता में देश के लोगों को जागृत करने के लिए जो चेष्टा की थी, उसकी उस समय अनेक लोगों ने प्रशंसा की एवं कई पत्रिकाओं के सम्पादकों ने इसे छापा।

सन् १९२७ ई., भारत के स्वाधीनता आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक वर्ष है। २६ दिसम्बर, १९२६ ई. को गौहाटी (आसाम) में श्री निवास आयंगर के सभापतित्व में अखिल भारतीय कांग्रेस का जो महासम्मेलन हुआ उसके प्रभाव से विभिन्न राजनैतिक दलों ने एक साथ कार्य एवं आन्दोलन करने की योजना बनाई। सारे भारत में स्वराज्य के लिए जोर-शोर से कार्य शुरू हुआ।

२३ दिसम्बर, १९२६ ई. को भारत के प्रसिद्ध नेता एवं गुरूकुल विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठाता स्वामी श्रद्धानन्दजी की एक मुसलमान ने गोली मारकर हत्या कर दी। उनके लिए सारे भारत में शोक दिवस मनाया गया। इस समय राजबन्दियों को कैद

से मुक्त कराने के लिए विभिन्न स्थानो में प्रतिवाद सभा होने लगी। इस वर्ष नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को जेल से मुक्त कराने के लिए आन्दोलन एवं 'काकोरी' षड्यन्त्र मामले में राजेन लाहिड़ी की फाँसी ने लोगों की सुप्त चेतना को जागृत कर दिया। उपन्यास सम्राट शरत्चन्द्र के प्रसिद्ध उपन्यास 'पथेर दाबी' (बंगला) को निषिद्ध घोषित किया गया। राजनैतिक वातावरण कमशः गरम होने लगा। बाध्य होकर सुभाषचन्द्र बोस को बिना शर्त मुक्त करना पडा। मुक्ति के पश्चात् वे बंगीय प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी के सभापति चुने गये। सुभाषचन्द्र की क्रान्तिकारी विचारधारा ने सभी आन्दोलनकारियों के मन मे विशेष शक्ति का संचार किया था। अन्नदा कुमार ने समकालीन सभी प्रकार के आन्दोलनों में सकिय रूप से भाग लिया। इस समय देश व्यापी 'शिवाजी उत्सव' ने भी युवकों के मन मे उत्साह का संचार किया। ऋषि निवारणचन्द्र के नेतृत्व मे मानभूम जिले में अस्पृश्यता (छुआ-छूत) दूर करने के लिए बड़े पैमाने में सम्मेलन का आयोजन किया गया। चारण विद्रोही कवि मुकुन्ददास ने उस समय बंगाल के गाँव-गाँव में भ्रमण करते हुए, अपने ओजस्वी गानों के द्वारा अंग्रेज साम्राज्य एवं समाज में अत्याचार के विरूद्ध, लोगों के मन में एक विशेष चेतना का उन्मेष किया। अन्नदा कुमार के साथ उनका आन्तरिक सम्बन्ध था। मानभूम एवं आसपास के कई जिलो में उनके गानों का अद्भूत प्रभाव देखा गया। वे रामचन्द्रपुर आश्रम में भी आये थे।

इस वर्ष पुरूलिया शहर के प्रमुख चौकबाजार मे 'हरिनाम संकीर्तन' की शोभायात्रा में मुसलमानों ने बाधा उत्पन्न की। इस अन्याय कार्य के प्रतिवाद स्वरूप शासन की अनुमति लिए बिना संकीर्तन की शोभायात्रा, सफलता पूर्वक निकाली गयी। राजशक्ति का इस तरह पराजित होने से लोगों के मन में साहस का संचार हुआ।

जुलाई, सन् १९२७ ई. में 'तरूण शक्ति' नामक पत्रिका रामचन्द्रपुर से प्रकाशित की गई। पत्रिका में ब्रिटिश शासन के विरोध में विभिन्न लेख एवं कविताएं प्रकाशित हुए । इस समय मानभूम जिले में आदिवासी संथाल एवं निम्न जाति के 'बावरी' लोग काफी संख्या में रहते थे। समाज के द्वारा शोषित इन लोगों की उन्नति एवं शिक्षा के लिए अन्नदा कुमार ने 'बावरी' लोगों को लेकर रामचन्द्रपुर आश्रम में विशाल सम्मेलन किया। उन लोगो की शिक्षा के लिए चालीस नैश विद्यालय (रात्रिकालीन विद्यालय) खोले गये। परन्तु अंग्रेजों की दमन नीति के कारण कुछ दिनों के पश्चात् लोगों ने डर के कारण स्कूल आना बन्द कर दिया। परिणामतः सभी स्कूल बन्द हो गये।

अध्याय ७ : रामचन्द्रपुर आश्रम के राजनैतिक सम्मेलन में नेताजी का आगमन

सन् १९२८ ई. में अन्नदा कुमार ने मानभूम जिला राजनैतिक सम्मेलन की सफलता के लिए ऋषि निवारणचन्द्र के सहयोग से कार्य प्रारम्भ किया। उस समय उन्हें अत्यधिक परिश्रम करना पड़ा। प्रचार के लिए नित्य ३०-४० किलोमीटर पैदल चलकर मानभूम के अनेक ग्रामो का भ्रमण उन्होंने किया। अन्नदा कुमार यद्यपि अहिंसा नीति के समर्थक ऋषि निवारणचन्द्र के साथ कार्य करते थे, परन्तु उनका अहिंसा आन्दोलन की अपेक्षा सशस्त्र आन्दोलन में कहीं अधिक विश्वास था। एक दिन इस विषय को लेकर अन्नदा कुमार का ऋषि निवारणचन्द्र के साथ तीव्र तर्क-वितर्क हुआ। ऋषि निवारणचन्द्र ने अन्त मे हँसते हुए कहा–''**तुम्हारा सभी मत एवं पथ पूर्णतः विपरीत हो जाएगा एवं सभी के चरणों में लोटते हुए तुम्हें आनन्द मिलेगा और इसके सहारे तुम सभी के चित्त को जय करोगे।**'' ऋषि निवारणचन्द्र की भविष्यवाणी अन्नदा कुमार के जीवन मे सफल हुई। जिन लोगों ने अन्नदा कुमार को पहले और परिवर्तिकाल में स्वामी असीमानन्द सरस्वती होने के बाद देखा है, उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अन्नदा कुमार की सभी कर्म प्रवणता मानों श्रीमद्भागवत में वर्णित 'नाम एवं प्रणाम' में लीन हो गयी है। 'ईश्वर सभी जगह हैं–ऐसा देखते हुए सभी को प्रणाम करो एवं नाम-जप करो'–यही भागवत का निर्देश है।

विभिन्न स्थानों में सम्मेलन का कार्य करते हुए उन्हें एक ओर पुलिस का अत्याचार सहन करना पड़ा और दूसरी तरफ अपने ही कर्मी लोग मान-अभिमान के चक्कर में पड़कर संगठन के कार्यों में बाधा डालने लगे। अधिकांश लोगों को उन्होंने केवल ऊपरी तौर से ही काम करते हुए देखा। जहाँ आन्तरिक भावना की कमी हो जाती है वहाँ पर सेवा कार्य कम हो जाता है। इन सब कारणों से मानभूम की उन्नति के लिए जितना प्रयास किया गया उसमें आंशिक सफलता ही मिली। रामचन्द्रपुर के सम्मेलन में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने आना स्वीकार किया। होली (फाल्गुन पूर्णिमा) के दिन सम्मेलन का होना तय हुआ। जेल से मुक्त होने के पश्चात् नेताजी का यह पहला दौरा था। बाँकुड़ा से उन्हें मोटरकार द्वारा पहले रघुनाथपुर लाया गया। यहाँ विशाल अभ्यर्थना-सभा का आयोजन किया गया था। सरकार ने पुलिस की सहायता से इस सभा को नष्ट करने का प्रयास भी किया, परन्तु वह सफल न हो सकी। रामचन्द्रपुर आश्रम में उस समय बंगाल एवं बिहार के अधिकांश राजनैतिक नेताओं सहित बीस हजार लोगों ने सम्मेलन में भाग लिया। नेताजी के आगमन के पूर्व, ग्राम

के असंख्य बालको ने 'वन्देमातरम्' ध्वनि देते हुए आसपास के सभी ग्रामों में भ्रमण किया। सम्मेलन के उपलक्ष्य में स्वदेशी वस्तुओ का यहॉं मेला लग गया। सम्मेलन को सफल बनाने के लिए अन्नदा कुमार को दिन-रात कठिन परिश्रम करना पड़ा था। जिस दिन नेताजी आये उस दिन अन्नदा कुमार को १०३ डिग्री बुखार था। इसके पूर्व तक वे जूता व कमीज नहीं पहनते थे। नेताजी ने उन्हें खादी की कमीज एवं अपना नया जूता दिया।

सम्मेलन में निम्न जाति के लोगो के बैठने की व्यवस्था नेताजी के पास की गयी थी। हरिजन जाति के एक बालक द्वारा उन्हें माल्यार्पण किया गया। उस समय रक्षणशील समाज के उच्चजाति के कुछ लोगो ने इसे अपना अपमान समझा और सम्मेलन का बहिष्कार करने का प्रयास किया, किन्तु वे इसमें सफल नही हो सके। सम्मेलन में प्रथम दिन की अपेक्षा दूसरे दिन और अधिक लोग सम्मिलित हुए। **इसी सम्मेलन में अन्नदा कुमार ने मानभूम जिले को बंगाल प्रान्त के अन्तर्गत लाने का सुझाव पेश किया था।** इस सम्मेलन की सफलता के लिये गॉंव के युवकों ने भी आन्तरिक सहायता की थी। इसे देखकर बालकों एवं युवकों के कई अभिभावकों ने क्रुद्ध होकर अन्नदा कुमार के विरूद्ध पुलिस में रिपार्ट भी लिखवाई। सम्मेलन के पश्चात् पुलिस ने वहॉं के लिए कुछ लोगो को गुप्तचर के रूप में नियुक्त किया। नेताजी ने रामचन्द्रपुर आश्रम का नाम **'मानभूम कर्मी संसद'** रखा। इस संसद के सभापति नेताजी स्वयं हुए।

रामचन्द्रपुर आश्रम में आकर नेताजी ने कहा था कि यह स्थान अत्यन्त शान्तिपूर्ण है। एक दिन अन्नदा कुमार के साथ वे जंगल की तरफ भ्रमण करने निकले। जंगल के पास एक स्थान पर वे ध्यानमग्न हो गये। अन्नदा कुमार ने आश्चर्य चकित होकर अवलोकन किया कि नेताजी योगासन में समाधिस्थ होकर बैठे हैं। काफी देर बाद वे ध्यान से उठे। नेताजी सुभाषचन्द्र के नाम पर तथा उनके चरित्र को लेकर जो अफवाह तथा प्रचार हुआ था उस पर (अन्नदा कुमार परवर्ती काल मे) स्वामी असीमानन्द सरस्वती जी ने कभी भी विश्वास नही किया।

रामचन्द्रपुर सम्मेलन सफल होने के बाद से पुलिस अन्नदा कुमार के पीछे पड़ गयी। आश्रम द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'तरूण शक्ति' तथा 'गीता में कर्मयोग' इन दोनों पर राजद्रोह का मामला चला। अन्नदा कुमार ने काफी प्रयास से आपत्तिजनक कागजातों को पहले ही हटा लिया था। इस कारण उन्हें सजा कम मिली। 'तरूण शक्ति' पत्रिका के कारण एक वर्ष एवं 'गीता मे कर्मयोग' के कारण छः महिने कारावास का दण्ड मिला। दोनों दण्डादेश एक साथ लागू होने से अन्नदा कुमार को कुल एक वर्ष की सजा मिली। अन्य कई सहायकों को भी तीन माह की सजा मिली। इस तरह १ जुलाई, १९२९ ई. में पहले उन्हें चाईबासा तथा बाद में हजारीबाग जेल

में भेजा गया। उस समय राजद्रोह के अपराध में ऋषि निवारणचन्द्र भी यहीं पर बन्द थे। विभिन्न स्थानो से कैद किये गये अनेक क्रान्तिकारियों को भी यहाँ रखा गया था। जेल के कुछ अफसर इन लोगों के प्रति सहानुभूति रखते थे।

जेल में अन्नदा कुमार ने अपना अधिकांश समय, गीतापाठ, नामजप, कविता एवं साहित्य लेखन, राजबन्दियों से देश की चर्चा आदि विभिन्न कार्यों में लगा लिया। यहाँ उन्हें आत्मविश्लेषण करने का अवसर मिला। मैंने क्या किया है? क्या करना उचित था? आगे क्या करना है? ये सब प्रश्न उनके मन में स्वतः उठते थे। अपने जीवन का विश्लेषण करते हुए रात्रि में जब वे सो जाते थे तब अपने माता-पिता को प्रायः देखा करते थे। ऋषि निवारणचन्द्र को स्वप्न दर्शन के सम्बन्ध में बतलाने पर उन्होंने नित्य जल तर्पण करने का उपदेश दिया। फिर भी ये दर्शन नित्य होते रहे। एक दिन उन्होंने श्री विजयकृष्ण गोस्वामी एवं श्री किरणचन्द्र दरवेश जी को देखा। एक और दिन उन्होंने देखा कि त्रिवेणी संगम में उनका संन्यास हो रहा है, यहाँ गोस्वामी जी एवं दरवेश जी उपस्थित हैं। वहाँ से वे वृन्दावन जा रहे हैं और साथ में अनेक नर-नारियाँ व एक संन्यासी भी है। एक दिन उन्होंने देखा कि संकीर्तन करते हुए वे पैदल वृन्दावन जा रहे हैं। ऋषि निवारणचन्द्र से इन दर्शनों की चर्चा वे किया करते थे। उन्होंने कहा–**''यह सब तुम्हारे जीवन में सत्य हो, मैं ऐसी प्रार्थना करता हूँ।'' अन्नदा कुमार के जीवन में ये सभी स्वप्न सत्य सावित हुए।** जेल में विभिन्न चोर-डकैत आदि लोगों से भी उनका परिचय हुआ। उनमें से कई लोगों ने जेल से छूटने के बाद चोरी आदि करना छोड़ दिया। कैदियों के जीवन की कथा सुनकर अन्नदा कुमार ने देखा इनमें से अधिकांश लोगों को मिथ्या साक्षी एवं मामलों में फँसाया गया है। जिन्हें दीर्घकाल कैद की सजा मिली है, वे अब बाहर जाना नहीं चाहते। जेल से छूटने पर वे कुछ अपराधजनक कार्य कर फिर से जेल में चले आते हैं। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ के जेल के जीवन के साथ उन लोगों ने अपने जीवन का अद्भूत सामंजस्य कर लिया है।

अपने 'आमार जीवन' ग्रन्थ में अन्नदा कुमार ने जेल जीवन के समय का विश्लेषण करते हुए लिखा है–**''अंग्रेजों ने जेल भेजकर मेरा उपकार किया है। कारावास के समय आत्मविश्लेषण करते हुए अपने भीतर की त्रुटियों के संशोधन करने का मुझे अवसर मिला।''**

जेल में रहते समय विभिन्न क्रान्तिकारियों ने देश को स्वाधीन करने के पश्चात् देश के गरीब, अनाथ एवं कमजोर वर्ग के लिए आवश्यक कार्य करने का संकल्प लिया। कालान्तर में अन्नदा कुमार ने अत्यन्त दुःख के साथ लिखा है–**''आज देश स्वाधीन हो गया है, अंग्रेज चले गये हैं पर क्या इससे वास्तविक स्वाधीनता प्राप्त की है? समाज के अधिकांश उच्च वर्ग एवं धनी लोगों ने अंग्रेजों का आसन ग्रहण कर**

लिया है और सभी तरह के अत्याचार, शोषण तथा अन्याय कार्य करने पर भी समाज में उन्हो का उच्च स्थान है। जिन नेताओं को देश की स्वाधीनता के पूर्व निःस्वार्थ भावना से कार्य करते देखा गया था, यही लोग स्वाधीनता के बाद 'पद' की प्राप्ति कर, सम्पूर्ण विपरीत आचरण करने लगे। स्वाधीन देश में बाहरी ठाट-बाठ बढ़ गया है और मनुष्य के नैतिक चरित्र का पतन हो गया है। आज सत्य की शिक्षा, ऋषि-मुनियों के आदर्श पर आश्रम की स्थापना उपहास की वस्तु हो गयी है। इस धर्मनिरपेक्ष देश में नीति शिक्षा एवं धर्मशिक्षा देने का अधिकार नहीं रहा। देश में धर्म के अनुशासन एवं नैतिक चरित्र की उन्नति केलिए यदि सत्य एवं नीति पर शिक्षा न दी जाये तो यह देश कैसे टिक सकेगा।''

जेल से छूटने के पश्चात् अन्नदा कुमार नवीन प्रेरणा एवं उत्साह से अपने कर्म-क्षेत्र में पुनः प्रविष्ट हुए। जेल से छूटकर जिस दिन वे रामचन्द्रपुर के रेलवे स्टेशन मुराडी में दिन के बारह बजे ट्रेन से उतरे तब उन्हें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि लगभग दस हजार लोग उन्हें अभ्यर्थना प्रदान करने के लिए स्टेशन पर उपस्थित हैं। लोगों के भीतर क्रान्तिकारियों के प्रति श्रद्धा देखकर वे विस्मित हुए। आश्रम में आकर इस बार उन्होंने स्वयं-सेवको के सहित अपने-अपने शरीर के रक्त की स्याही से प्रतिज्ञा पत्र पर, देश की सेवा के लिए एवं अंग्रेजी शासन के विरुद्ध मर-मिटने का संकल्प लेकर, हस्ताक्षर किया। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के सिद्धांत को क्रियान्वित करने के लिए अन्नदा कुमार ने संकल्प लिया। आश्रम के सामने लिखा गया–''**भारतवर्ष से ब्रिटिश राजशक्ति का उच्छेद करना हम लोगों का लक्ष्य है।''**

अध्याय ८ : स्वाधीनता संग्राम – 'करेंगे या मरेंगे'

देश को स्वाधीन करने के लिए युवको में जो चेतना उस समय देखी गयी उससे अंग्रेज घबरा गये। सारे भारत से **'करेंगे या मरेंगे'** यही मन्त्र सर्वत्र ध्वनित हो रहा था। अंग्रेजों केअत्याचार द्वारा असंख्य लोगों के रक्त से भारत भूमि लाल हो उठी। अन्नदा कुमार ने नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के साथ चर्चा कर नई कान्तिकारिक कर्म-सूची ग्रहण किया। नेताजी का कहना था–**''सम्पूर्ण भारत में एक ऐसी 'कान्ति' उत्पन्न करनी होगी जिससे भारत के भीतर एवं बाहर दोनों ओर से एक साथ संग्राम प्रारम्भ हो जाये। इस तरह से युद्ध करके ब्रिटिश शक्ति को देश से उन्मूलन किया जा सकता है। इसे क्रियान्वित करने के लिए–(१) आबकारी विभाग सम्पूर्ण रूप से बन्द करना होगा, (२) अंग्रेजों की खुशामद करने वाले एवं सहायता करने वाले मालगुजारों आदि लोगों को निष्क्रिय करना होगा, (३) अंग्रेजों के प्रधान अस्त्र पुलिस को किसी भी तरह हैरान करना होगा। (४) लगान एवं कर (Tax) देना बन्द करना होगा।''**

मानभूम जिले में इन चारों कायो पर तीव्र आन्दोलन शुरू किया गया। थोड़े दिनों के भीतर ही आसपास के सभी थानों के आबकारी दुकानें बन्द कर दी गयी। कई स्थानों में शराब भट्टी जला दी गई। इस डर से अनेक शराब ठेकेदार अपनी दुकान बन्द कर अन्यत्र भाग गये। आन्दोलन की तीव्रता को कुचलने के लिए पुलिस ने जो अत्याचार शुरू किया वह अवर्णनीय है। जहाँ भी सम्मिलित होने का प्रयास किया जाता था, पुलिस के घुडसवार उन्हें कुचल देने का प्रयास करते थे। लाठी और गोलियों से कितने नवयुवकों ने प्राण दिया उसका कोई हिसाब नहीं। कई स्थानों में पुलिस अफसरों के साथ इन युवकों ने तीव्र संघर्ष भी किया ।

६ अप्रेल, सन् १९३० ई. को 'नमक सत्याग्रह' प्रारम्भ हुआ। महात्मा गांधी के 'नवजीवन प्रेस' को बन्द कर दिया गया। उस समय 'यंग इंडिया' नाम से एक नई पत्रिका प्रकाशित हुई । ४ मई को महात्मा गांधी गिरफ्तार किये गये। इसके प्रभाव से जो देशव्यापी आन्दोलन शुरू हुआ, वह अहिंसात्मक न रहा। सर्वत्र कानून भंग करते हुए युवकगण प्रतिवाद करने लगे। अन्नदा कुमार के संगठन शक्ति के प्रभाव से मानभूम अंचल में पांच हजार संथालों की सशस्त्र वाहिनी तैयार हो गयी। स्थानीय कुछ लोगों ने इस कार्य का पूरा समाचार अंग्रेज सरकार को गुप्त रूप से देना प्रारम्भ किया। उस समय मानभूम जिले के आन्दोलन से घबराकर, अंग्रेजों ने कमिश्नर की सहायता के लिए जायेन्ट मजिस्ट्रेट टेलर साहब एवं पुलिस सार्जेण्ट चार्चर साहब

को, एक अश्वारोही पठान सैन्य के साथ इस आन्दोलन का दमन करने के लिए भेजा। इन लोगों के अत्याचार की कथा मानभूम के इतिहास में कभी भी भूली नही जा सकती।

१३ अगस्त को सन्ध्या के समय अन्नदा कुमार को सूचना मिली कि उन्हें कल गिरफ्तार किया जा सकता है। रात्रि के समय प्रमुख संथालो ने आकर उनसे कहा–'**तुम चाहो तो यह स्थान छोड़कर अन्यत्र भाग जाओ या फिर हमें आदेश दो–हम इन दुष्ट लोगों को सजा देंगे।' उत्तेजित संथालों को अन्नदा कुमार ने किसी प्रकार शान्त किया। अन्नदा कुमार को मालूम था कि उत्तेजनावश संथाल लोग अंग्रेजों के इस पठान सैन्य को खत्म कर सकते हैं, परन्तु इसका प्रभाव सुदूरप्रसारी होगा। अंग्रेज इसका बदला लेने जब अपने पूरे सैन्यवाहिनी को भेज देंगे तब वे गरीब संथालों के गांव में आग लगा देंगे, लोगों की हत्या करने लगेंगे। अन्नदा कुमार ने उस समय जो निर्णय लिया, उसके प्रभाव से संथाल लोग बच गये।**

१४ अगस्त को प्रातःकाल अन्नदा कुमार ने देखा कि पुलिस ने आश्रम को चारों तरफ से घेर लिया है। टेलर एवं चार्चर साहब के नेतृत्व में आठ अश्वारोही पठान सैनिक आकर पीपल वृक्ष के पास एकत्रित हो गये। अन्नदा कुमार ने बाहर निकलकर पूछा–''आप क्या चाहते हैं।'' टेलर साहब ने पूछा कि अन्नदा कुमार कौन है? अन्नदा कुमार ने जब अपना परिचय दिया तब टेलर ने कहा कि तुम्हे गिरफ्तार किया जाता है। अन्नदा कुमार ने पूछा–'वारण्ट कहाँ है?' टेलर ने कहा–'मैं डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट हूँ।' ऐसा कहते हुए वे लोग घर के भीतर घुस गये। कई स्थानों को खोदा गया, टिन के छप्पर के नीचे कपड़े की छावनी को फाड़कर वहाँ देखा गया, घर मे रखी गयी शीशी-बोतल आदि की परीक्षा की गई–कहीं इसमें विस्फोटक पदार्थ न हो। इसके बाद लायब्रेरी की पुस्तकों को उन्होंने देखना शुरु किया। अचानक उसमे से 'सिपाही विद्रोह का इतिहास' नामक पुस्तक देखकर, उन लोगों ने क्रोधित होकर आलमारियों में आग लगा दी और अन्नदा कुमार को पकड़कर पीपल वृक्ष के नीचे ले आये। छप्पर के ऊपर जातीय पताका लहरा रहा था। उसे पठान सैनिक ने उतार कर लाया। टेलर ने उसे पैरों द्वारा रौंदना शुरु किया। यह देखकर अन्नदा कुमार क्रोधित होकर टेलर को इतनी जोर से धक्का मारा कि वह गिर पड़ा। उस समय क्रोधित चार्चर, पठानो के सहयोग से अन्नदा कुमार को निर्वस्त्र कर चाबुक से प्रहार करने लगा। कुछ संथाल आसपास छिपे थे, उन्होंने चिल्लाकर अन्नदा कुमार से कहा–'हमें आदेश दीजिये–इन सभी को अभी खत्म कर देते हैं।' अन्नदा कुमार ने हाथ के इशारे से उन्हें ऐसा करने से मना किया। इस समय की अपनी अवस्था का वर्णन करते हुए अन्नदा कुमार ने 'आमार जीवन' ग्रन्थ में लिखा ह–''**मैंने आँख बन्द कर लिया और अपने मन को 'नाम-जप' में लगा दिया। मेरे शरीर में एक के बाद एक चाबुक की मार पड़ने लगी।**

लेकिन मुझे कुछ भी अनुभव नही हुआ। किसी अदृश्य शक्ति के स्पर्श से मैं सभी प्रकार की अनुभव शक्ति खो बैठा। मेरे पीठ और कमर, पचास से अधिक चाबुक की मार से लहू-लूहान हो गया। उसी अवस्था में मुझे घसीटते हुए लगभग तीन किलोमीटर दूर यशपुर ग्राम ले जाया गया। वहां संथाल वाहिनी के परिचालक महेन्द्र चक्रवर्ती रहते थे, उनके घर की तलाशी ली गयी एवं गुप्त बातें निकलवाने के लिए फिर से चाबुक का प्रहार शुरू हुआ। महेन्द्र बाबू वहाँ नही थे। उनका पता लगाने के लिए मेरे अंगुलियों म नाखून के नीचे चार्चर, पिन घुसाने लगे। सिर एवं पीठ पर बन्दूक की नोक (संगीन) द्वारा आघात किया गया। पर मुझे उसका कुछ भी अनुभव नहीं हुआ। मेरा मन एक दूसरे राज्य में पहुँच कर अमृत के आस्वादन में तन्मय सा हो गया। इसके पश्चात् उन्होंने कागज पर यह लिखने के लिए मुझ पर दबाव डाला कि मैं भविष्य में किसी भी प्रकार के राजनैतिक कायो में लिप्त नहो रहूँगा। मेरे दृढ़तापूर्वक प्रतिवाद करने पर चार्चर ने लात मारकर मुझे जमीन में गिरा दिया। टेलर, जूता पहने मेरे छाती पर चढ़कर कूदने लगा। मेरे मुख से खून की उल्टी शुरू हो गयी। इस अवस्था में मुझे टेलर ने घोड़े से बांधकर घोड़े को दौड़ाया। मैं जमीन में गिरता-पड़ता घोड़े के पीछे घिसटता गया। संथाल लोग अब तक गुप्त रूप से पीछा कर रहे थे, यह दृश्य देखकर वे शान्त न रह सके। टेलर को लक्ष्य कर उन्होंने तीर मारा। तीर घोड़े के शरीर में लगा। टेलर का घोड़ा विचककर मुझे लेकर एक छोटे से तालाब में उतर गया। टेलर और चार्चर घबड़ा गये और मुझे वहीं तालाब के पास फेंककर भाग गये।

संथालों ने अन्नदा कुमार को उठाकर पहले महेन्द्र चक्रवर्ती के घर पर लाये एवं वहाँ से पालकी में लिटाकर रामचन्द्रपुर ले आये। उस दिन रामचन्द्रपुर ग्राम में एवं आसपास के गाँवों में किसी ने न तो विग्रहों की पूजा की और न ही चूल्हा जलाया। अन्नदा कुमार को आश्रम में लाने के पश्चात् गाँवों में भोग एवं सन्ध्या आरती को गयी। मुराडी गाँव में जिला बोर्ड द्वारा संचालित दातव्य चिकित्सालय के चिकित्सक पुलिस के डर से नहो आये। संथालों ने उस समय जड़ी-बूटी द्वारा उनकी चिकित्सा शुरू किया। उनके लहू-लूहान शरीर से असंख्य काटों को उन्होंने धीरे-धीरे निकाला। सारे शरीर पर गेन्दा फ़ूल के पत्तियों के रस का लेपन किया गया। तीन दिन बेहोश रहने के बाद, थोड़ा सा होश आने के बाद वे फिर बेहोश हो जाते। उस समय की अपनी मानसिक अवस्था का वर्णन करते हुए उन्होंने 'आमार जीवन' ग्रन्थ में लिखा है–''**उस समय किसी के कोमल स्पर्श से मेरी सब व्यथा दूर हो जाती थी। अपने माता-पिता, गोस्वामी जी एवं दरवेश जी को प्रायः वहाँ उपस्थित देखता था। वास्तव में उन्होंने मेरी सभी शारीरिक व्यथा को हरण कर लिया था।**'' उस समय अचानक हजारीबाग कॉलेज के प्राध्यापक शरत्चन्द्र ने आकर अन्नदा कुमार से कहा–''**गोस्वामी जी ने मुझे स्वप्न में निर्देश दिया है। आपको ले जाने के लिए मैं**

आया हूँ।'' शरत्चन्द्र यहां आश्रम में पहले कभी नही आये थे। उस समय गाँव में चिकित्सा की कोई अच्छी व्यवस्था नही थी। लोग इस घटना के बाद पुलिस के डर से घर के बाहर निकलने में भी घबड़ाते थे। अन्नदा कुमार शरत्चन्द्र के साथ हजारीबाग चले आये। शरतबाबू के घर अन्नदा कुमार एक माह रहे। उनके जाने के बाद पुलिस आश्रम में तलाशी के लिए कई बार आयी और सब सामान आदि उठाकर ले गयी। इसके पहले ही अन्नदा कुमार अपने मित्रों की सहायता से अस्त्रादि आश्रम से अन्यत्र भेजने में सफल हो गये थे।

हजारीबाग से १६ सितम्बर को वे आसनसोल आये। वहाँ अपने क्रान्तिकारी मित्र कुमारेन्द्र घोष को देखकर वे चकित् हो गये। प्रसिद्ध कान्तिकारी कुमारेन्द्र घोष उसी दिन आरा जेल से मुक्त होकर आसनसोल आये थे। उन्हें साथ लेकर अन्नदा कुमार पहले जयचण्डी पहाड़ स्टेशन पर उतरे। वहाँ से शोभायात्रा (जुलूस) द्वारा वे लोग रघुनाथपुर पहुँचे । रघुनाथपुर थाना के पास पहुँचते ही अन्नदा कुमार गिरफ्तार कर लिए गये। रात्रि वही थाने में रखकर उन्हें प्रातःकाल पुरुलिया ले जाया गया। १८ सितम्बर को उन्हें दो वर्ष का सश्रम कारावास दिया गया। इसके पश्चात् उन्हें फूलबारी शरीफ (बिहार) के केम्प जेल में लाया गया। यहाँ के अस्वास्थ्यकर जलवायु से उनका शरीर बहुत कमजोर हो गया, परन्तु मन नाम-जप में और अधिक तन्मय होने लगा। स्वप्न में गोस्वामी जी, दरवेश जी आदि को प्रायः वे देखा करते थे। एक दिन स्वप्न में गोस्वामी जी ने उनसे कहा–**''धर्म की नीव पर यदि कर्म प्रतिष्ठित न हो, तब न तो अपना उपकार होगा न ही देश का कल्याण होगा। देश के सेवाकार्य, अहं शून्य होकर भगवान की सेवा ज्ञान से करो। इससे देश की सेवा एवं भगवत् सेवा दोनों होगी।''**

बाद में (अन्नदा कुमार परवर्ती काल में) स्वामी असीमानन्द सरस्वती जी से जब पूछा गया कि पहले आपके साथ गोस्वामी जी एवं दरवेश जी की मुलाकात न होने पर भी आप उनका दर्शन किस तरह पा जाते थे? उन्होंने इस प्रश्न के उत्तर में कहा–''तुम लोगों को मैंने पहले ही कहा है कि मेरे जन्म के पूर्व से मेरे पितामह, माता एवं पिताजी के साथ गोस्वामी जी का सम्पर्क था। दरवेश जी महाराज के साथ पिताजी का पत्राचार होता था। गोस्वामी जी का चित्रपट तो मैंने पहले से देखा था। बाद में दरवेश जी के हस्ताक्षर एवं चित्र देखकर फिर उनका साक्षात् दर्शन कर मैं समझ गया कि जिन महात्मा का दर्शन मैं बचपन से ही पाया करता था, वे मेरे गुरूदेव किरणचन्द्र दरवेश जी महाराज ही थे। दरवेश जी जब रामचन्द्रपुर आश्रम में आये थे तब प्रफुल्ल पाठक नामक एक व्यक्ति के प्रश्न के उत्तर में अनेक लोगों के समक्ष दरवेश जी ने कहा था– **''अन्नदा के ऊपर जिस समय पुलिस का अत्याचार हुआ था और जब वह बचपन में पहाड़ से गिर पड़ा था, उस समय उसकी रक्षा नही**

करने से मानभूम (वर्तमान में पुरूलिया) उन्हें आज कभी भी प्राप्त नही कर पाता।''

इस प्रसंग में कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक रहस्य का भेद करना साधारण स्थूल बुद्धि के अगोचर है। मनुष्य के जन्म-जन्मान्तर के संस्कार उसे लोक-लोकान्तर एवं विभिन्न योनियों में ले जाते हैं। शास्त्र में उल्लेखित अनेक रहस्य साधारण मनुष्य के सोचसमझ के बाहर है। इसी कारण महात्माओं का निर्देश है–शास्त्र या महात्माओं की कोई घटना का रहस्य समझ में न आने पर उसे अपनी अज्ञता या कमजोरी समझना चाहिए। अपने विवेक या सिद्धांत के विरूद्ध कोई निर्देश पालन करने में या न करने में मनुष्य स्वतंत्र है, परन्तु जिस विषय पर अपना सम्यक ज्ञान नही है उस सम्बन्ध में अपना मत प्रकाश करना केवल अज्ञानता का लक्षण है। इस सम्बन्ध मे सद्गुरू विजयकृष्ण गोस्वामी जी ने कहा है–

''धर्म के सम्बन्ध में नई वाणियों को देने की शक्ति प्राचीन ऋषियों में ही थी। यदि शास्त्रों की कोई वात असंभव या अप्रमाणिक जान पड़े, तो मन में विचार करो कि तुम अपनी अज्ञानता के कारण शास्त्र का यथार्थ मर्म नही समझ पा रहे हो। स्वयं न समझ सकने पर भी शास्त्र के विरूद्ध कदापि तर्क मत करो। मंत्र दृष्टा ऋषियों के साथ किसी साधू-महात्मा की तुलना मत करो।''

अन्नदा कुमार का गोस्वामी जी एवं दरवेश जी के साथ जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध था। इस सम्बन्ध में कुछ तथ्यादि जो प्राप्त होते हैं, उसका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है–

(१) अन्नदा कुमार के माता-पिता जब तीर्थ भ्रमण करते हुए ऋषिकेश के नीलकण्ठ पर्वत मे पहुँचे तब एक महात्मा के प्रति वे विशेष आकृष्ट हुए थे। महात्मा ने उन्हें पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद प्रदान किया था। अन्नदा कुमार का असली स्वरूप क्या था यह उनके पितामह एवं पिता अच्छी तरह जानते थे। अन्नदा कुमार के पिता जुगल किशोर जी के पास दरवेश जी के कई पत्र थे जिसमें अन्नदा कुमार के सम्पूर्ण जीवन का पूर्ण विवरण था। नीलकण्ठ पर्वत के उपरोक्त महात्मा का नाम 'आनन्द' था। वे स्वयं जुगल किशोर के पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए थे। इस कारण दरवेश जी ने अन्नदा कुमार को जो पत्र लिखा था, उसे गुप्त रखने का विशेष निर्देश देते हुए लिखा था–**''मेरे पत्र के कुछ अंश किसी तरह भी प्रकाशित न हो सके, इसका विशेष स्मरण रखना। प्रकाशित होने पर सभी तुम्हें एवं मुझे पकड़ लगे, हैरान करेंगे।''**

[द्रष्टव्य : 'असीमायन' (बंगला) प्रथम संस्करण, पृ. ३०-३१, –लेखकः विभूपद कीर्ति]

अन्नदा कुमार के पिताजी के पास दरवेश जी के जो पत्र थे वे सब, पुलिस ने जब आश्रम में आग लगा दी थी तब, नष्ट हो गये।

(२) अन्नदा कुमार को 'आनन्द' नाम से सम्बोधन पगली माँ, योगी शिवराम किंकर योगत्रयानन्द, दरवेश जी आदि कई लोगों ने किया था। आनन्द का, नीलकण्ठ

पर्वत में रहने के समय से ही, गोस्वामी जी एवं दरवेश जी के साथ सम्बन्ध था।

(३) किरणचन्द्र चट्टोपाध्याय (दरवेश जी महाराज)सद्गुरू विजयकृष्ण गोस्वामी के शिष्य थे। गोस्वामी जी के, जगन्नाथ पुरी में, शरीर त्याग देने के पश्चात् अपने गुरू के विरह में किरणचन्द्र बहुत विचलित हो गये। गोस्वामी जी का दर्शन अब किस तरह होगा? इस चिन्ता में वे व्याकल हो उठे। इस समय किरणचन्द्र की उम्र केवल पच्चीस वर्ष थी। एक दिन रात्रि के समय उन्होंने स्वप्न देखा कि गोरवामी जी उन्हें बुला रहे हैं। दूसरे दिन उसी स्वप्न का चिन्तन करते-करते वे निद्रित हो गये, तब स्वप्न में गोस्वामी जी ने उनसे कहा– ''आगामी शिवचतुर्दशी को नीलकण्ठ पर्वत, ऋषिकेश पर मुझसे मुलाकात होगी ।'' इसके बाद किरणचन्द्र व्याकुल होकर शिवरात्रि की प्रतीक्षा करने लगे। माघ महिने में वे काशी, इलाहाबाद, हरिद्वार होकर ऋषिकेश मे लक्ष्मनझूला पहुँचे। गंगा के दूसरी ओर स्वर्गद्वार की ओर का पर्वत, नीलकण्ठ पर्वत कहलाता है। इसके बाद का विवरण (दरवेशजी द्वारा स्वकथित) 'मन्दिर' पत्रिका (१९३८वर्ष) से यहाँ दिया जा रहा है–''**लक्ष्मनझूला पहुँचा । सन्ध्या का समय हो रहा था, मैंने सोचा अब कहाँ जाऊँ? कल-कल नाद करती हुई गंगा की धारा प्रवाहित हो रही थी। उसके निकट खड़े होकर सोचने लगा–गुरूदेव तुम कहाँ हो? किस प्रकार तुम्हारे पास जाऊँगा? चारों तरफ अंधकार होने लगा। मैं गंगा के किनारे बैठ गया। बैठे-बैठे विभिन्न चिन्ताओं में तन्मय सा हो गया। फिर गोस्वामी जी का ध्यान करते हुए मेरा मन एक अज्ञात लोक में चला गया। अचानक किसी के स्पर्श से मैं चमक उठा–यह क्या! गुरूदेव तुम!! उन्हें प्रत्यक्ष देखकर उनके चरणों में प्रणाम किया। गोस्वामी जी ने हाथ से संकेत द्वारा मुझे अनुसरण करने के लिए कहा। कोई बातचीत नहीं हुई। मैंने उनका अनुसरण किया। मैं जड़ हूँ या चैतन्य, इसका ज्ञान नहीं रहा। कहाँ जा रहा हूँ–किस तरह चल रहा हूँ–वह भी समझ नहीं पा रहा था। यंत्रवत् मैं अग्रसर हुआ। इस तरह उनका अनुसरण करते हुए एक गुफा में पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मुझे बैठ जाने के लिए इशारा (संकेत) किया। गुफा में कई साधू बैठे थे। वे सभी नग्न अवस्था में थे। गोस्वामी जी को भी मैंने नग्न देखा। गोस्वामी जी ने मुझसे कहा–'बैजवाड़ा के पश्चात् तुम्हारा यह स्थान था–तुम्हारी पूर्व स्मृति जागृत हो!' अचानक मेरी पूर्व स्मृति जागृत हो उठी। सामने मेरे विगत जन्मों के चित्र प्रकट होने लगे, मानो मैं चलचित्र देख रहा हूँ। गोस्वामी जी ने कहा–यह तुम्हारा भविष्यत् है! उनके कहने के साथ ही मेरे सामने एक दूसरा दृश्य प्रकाशित हो गया।''**

कुछ देर बाद वह गुफा और उसके सामने का आंगन अनेक साधुओं से परिपूर्ण हो गया। गोस्वामी जी ने मुझसे कहा–''विशेष उद्देश्य के लिए हमलोग अन्यत्र जा रहे हैं, तुम्ह भी हमारे साथ चलना होगा।'' मैं परम आनन्द से उनके साथ जाने के लिए प्रस्तुत हुआ। गोस्वामी जी ने कहा–''इस स्थूल शरीर से वहाँ जाना सम्भव नहीं

है। तुम्हारी देह यहीं गुफा में रहेगी। यदि यह देह नष्ट हो जायेगी तो फिर इस मृत्यजगत् में न आ सकोगे।" मैंने कहा–'गुरूदेव! तुम्हारे साथ-साथ रहूँगा तब इस मृत्यजगत् में और न आने से क्या होगा!!' गोस्वामी जी ने तीन बार मुझे शरीर से बाहर आने के लिए कहा। मैंने अनुभव किया कि मैं शरीर से बाहर निकल आया हूँ और उनके साथ जाने लगा। जहाँ गया एवं जो कुछ हुआ उसे गुरूदेव ने प्रकाश करने के लिए मना किया। जब मैं चैतन्य हुआ तब अकेला गुफा में पड़ा था।

उल्लेखनीय है कि 'आनन्द' नामक तपस्वी नीलकण्ठ पर्वत पर उस समय तपस्या कर रहे थे। गोस्वामी जी के निर्देशानुसार किरणचन्द्र (दरवेशजी) की उपस्थिति में आनन्द ने अपना शरीर त्याग कर रामचन्द्रपुर में अन्नदा कुमार के रूप में जन्म लिया। [द्रष्टव्य : श्रीश्रीविजयकृष्ण परिजन–द्वितीय खण्ड, (बंगला) प्रकाशक–श्रीश्रीविजयकृष्ण, भक्तसघ, रघुनाथपुर, जिला–पुरुलिया।]

सन् १८३१ ई. मे गान्धी-इरविन पैक्ट (समझौता) होने पर आन्दोलन बन्द हो गये एवं सभी राजनैतिक बन्दियों को मुक्त कर दिया गया। जेल से छूटने के बाद अन्नदा कुमार ने रामचन्द्रपुर आकर देखा कि आश्रम लगभग ध्वंस हो गया है। अपने अस्वस्थ शरीर के साथ वे यहीं रहने लगे। इस समय अचानक एक हिमालयवासी साधु इनके पास आये। पहले भी कई बार वे यहाँ आ चुके थे। अन्नदा कुमार को वे बन्धु (मित्र) कहकर सम्बोधन करते थे। उन्होंने अन्नदा कुमार को थोड़े शहद के साथ एक चम्मच तुलसी का रस दिन मे दो बार तथा सादे पानी की जगह, तुलसी पत्ते को ऊबालकर चाय की तरह थोड़ा दूध व शक्कर मिलाकर दिन में पाँच-छः बार लेने के लिए कहा। इसके सेवन से अन्नदा कुमार की शारीरिक कमजोरी दूर हो गई।

अन्नदा कुमार ने यहॉ पहले की तरह सेवाकार्य प्रारम्भ कर दिया। हैजे के प्रकोप से आसपास के कई गाँव प्रभावित हो रहे थे। अपने साथियों के साथ मिलकर वे, लोगों की सेवा में लग गये। उनके अथक प्रयास से हैजा फैल न सका। काबुलिवाले (अफगानी लोग) गरीबों को रूपया कर्ज में देकर सूद वसूल करते समय उन पर अत्याचार करते थे। अन्नदा कुमार के विशेष प्रयास से यह अत्याचार भी बन्द हो गया। आश्रम में तीन दिन का अखण्ड नाम-संकीर्तन का आयोजन समय-समय पर किया जाता था। इसमें हजारों की संख्या में लोग आते थे। इस कार्यक्रम को आयोजित करने का मुख्य उद्देश्य था–अपना जीवन उत्सर्ग करने वाले निःस्वार्थ सेवकों को एकत्रित कर, उन्हें देश की सेवा में लगाना। अंग्रेजों से युद्ध करने के लिए आश्रम के पीछे घने जंगल में 'बम' बनाने का विचार भी किया गया।

अध्याय ९ : अन्नदा कुमार का विवाह

सन् १९३२-३३ ई. का समय, महात्मा गान्धी एवं सरदार वल्लभ भाई पटेल के गिरफ्तार होने पर, देश पूर्व की तरह अशान्त हो उठा। भारत के सभी प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी, उसके अन्तर्गत कांग्रेस के सभी प्रतिष्ठान तथा सभी आश्रमों को गैर कानूनी घोषित किया गया। इसके विरोध में सभी जगह सत्याग्रह एवं गिरफ्तारियां शुरू हुई। अन्नदा कुमार को पकड़ने के लिए पुलिस पीछे लग गयी। अन्नदा कुमार अपने सहयोगियो के साथ छिप गये। पुलिस ने रामचन्द्रपुर आश्रम को क्षतिग्रस्त कर दिया एवं सभी वस्तुएं उठा कर ले गये। बहुत प्रयास के बाद पुलिस ने अन्नदा कुमार को गिरफ्तार किया एवं मुराडी स्टेशन के पास एक पीपल वृक्ष के नीचे उन्हें नजरबन्द रखा गया। पुलिस ने आदेश जारी कर दिया कि अन्नदा कुमार को किसी भी तरह की सहायता देने वाले को गिरफ्तार कर लिया जाऐगा। अन्नदा कुमार ने अपनी प्रचेष्टा से वहाँ एक छोटी सी कुटिया बना ली। दिन के समय वे वहाँ रहते थे और रात्रि के अधेरे में आसपास १०-१२ किलोमीटर की दूरी के ग्रामों में जाकर ग्राम संगठन एवं सेवाकार्यो के लिए अपने अनुचरों को उत्साहित कर एवं आवश्यक निर्देश देकर, प्रातःकाल पुनः अपनी कुटिया मे आ जाते थे। उस समय नेताजी सुभाषचन्द्र के निर्देशानुसार हिन्दू पुलिस लोगों के भीतर भी कार्य शुरू किया गया। कुछ पुलिस एवं उनके अफसर इन क्रान्तिकारियों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए कहते थे–'आप ऐसा कुछ मत करिये जिससे हमारी नौकरी चली जाये और हमें परिवार सहित भूखा मरना पड़े।' अंग्रेजों ने उस समय कुछ पठानों को विद्रोह दमन के कार्य में लगाया था।

नजरबन्द के समय अन्नदा कुमार ने यहाँ एक दिन स्वप्न में देखा कि वे माँ काली की पूजा कर रहे हैं। आसपास खबर लेने पर पता चला कि यह स्थान बहुत पहले श्मशान था एवं यहाँ किसी तांत्रिक ने काली जी की पूजा की थी। अन्नदा कुमार के मन में विचार आया कि यहाँ माँ काली की प्रतिमा स्थापित कर मन्दिर का निर्माण किया जाये तो अच्छा होगा। परन्तु उस समय वे कुछ भी न कर पाये।

चार-पाँच महिने यहाँ रहने के बाद एक दिन वे कोलकाता भाग गये। यहाँ उनके एक मित्र ने अन्नदा कुमार को विवाह करने का सुझाव दिया। विवाह के लिए पत्रिका में विज्ञापन दिया गया एवं ६ जून, १९३२ ई. को उनका विवाह हो गया। इस विवाह प्रसंग का मनोरम वर्णन अन्नदा कुमार की सहधर्मिणी शैलबाला देवी ने 'असीमानन्देर पत्र' (बंगला) पुस्तक में दिया है। इस पुस्तक से संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है–

''बचपन में माँ का देहान्त हो जाने के बाद दादी ने मेरा पालन-पोषण किया। दादी, पिताजी, मैं और मेरे चार भाई, यह हमारा परिवार था। मंझले भाई की मृत्यु के कुछ दिनों बाद हमलोग नारायणगंज (ढाका) से कोलकाता आ गये। बचपन से ही विभिन्न प्रकार के स्वप्न मुझे दिखा करते थे। उसमें प्रायः एक साधु महात्मा का दर्शन होता था। एक दिन स्वप्न में वे महात्मा एक लड़के को दिखलाकर कहा कि यही तुम्हारा पति है। इसके साथ २१ जेष्ठ (६ जून, १९३२ ई.) को तुम्हारा विवाह होगा। दादी एवं पिताजी को स्वप्न के बारे में बतलाकर मैंने कहा कि इसके सिवाय अन्यत्र मैं विवाह नहीं करूँगी। बंगला 'आनन्द बाजार पत्रिका' में विज्ञापन दिया गया। कुछ दिनों बाद फोटो के साथ एक पत्र आया। फोटो देखते ही मैंने पहचान लिया कि यही मेरे स्वप्न में दृष्ट पति हैं। मैंने पिताजी को बतला दिया। स्वप्न निर्दिष्ट समय में ही विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह के समय मेरी उम्र १५ वर्ष थी। विवाह के तीन दिन पूर्व से विभिन्न प्रकार के स्वप्न एवं उक्त महात्मा का दर्शन कई बार मिला।

विवाह अत्यन्त साधारण तरीके से हुआ । रात्रि के समय हमें एक कमरे में रखकर सब चले गये। उस समय हमने किसी को भी स्पर्श नहीं किया और दोनों ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की–

(१) देश के लिए जरूरत पड़ने पर हम प्राण दने के लिए सर्वदा तैयार रहेंगे।

(२) भोग विलास आदि के लिए हम कभी भी प्रार्थना नहीं करेंगे।

(३) एकदूसरे का व्रत हम कभी भी भंग नहो करेंगे।

इसके बाद इन्होंने मुझे एक मंत्र बतलाकर सर्वदा उसका जप करने के लिए कहा। मैंने इनका चरण छूकर प्रतिज्ञा ली–''मैं तुम्हारे पथ में कभी भी बाधा उत्पन्न नहीं करूँगी।'' इन्होंने सात कविताएं लिखकर मुझे देते हुए कहा कि यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है, लेकिन मुझे और आना पड़ेगा। स्वप्नों के सम्बन्ध में इन्होंने कहा कि ये सब तुम्हारे पूर्व जन्म के दृश्य हैं। उन स्वप्नों में मैंने इनके साथ विरह का दृश्य देखा था। मैं रोने लगी। इन्होंने सांत्वना देते हुए कहा–**''इस जन्म में हम साथ रहेंगे। विवाह की आज रात्रि हम भगवान का नाम-जप करते हुए व्यतीत करेंगे।'' हमलोग नाम-जप करने लगे। उस समय अचानक स्वप्न में दिखलाई पड़ने वाले महात्मा जी को हम दोनों ने प्रत्यक्ष देखा । उनका इस तरह प्रत्यक्ष दर्शन पाकर हमने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। प्रणाम करने के साथ-साथ वे अदृश्य हो गये।**

यथा समय पुरूलिया में जब मैंने सर्वप्रथम किरणचन्द्र दरवेश जी महाराज को देखा तब मैं आश्चर्य चकित हो गयी, इसी महात्मा जी का मैं बचपन से सर्वदा दर्शन पाती थी। मैंने दरवेश जी से कहा–''मैं आपको कितने दिनों से स्वप्न में देख रही हूँ और आज इतने दिनों बाद आपने प्रत्यक्ष दर्शन दिया।'' दरवेश जी ने हँसते हुए कहा–**''बेटी, तुम लोगों के लिए भी मुझे क्या कम हैरान होना पड़ा है? तुम लोग**

जन्म-जन्मान्तर से मेरे हो! एकांत रूप से मेरे अपने हो!!''

दरवेश जी महाराज से दीक्षा प्राप्ति के पहले तथा बाद में इनको (अन्नदा कुमार को) मैंने अपने विलास या आराम के लिए कुछ भी कार्य करते कभी नहीं देखा। वे सर्वदा ग्राम की सेवा तथा देश की सेवा के कुछ न कुछ कार्य में लगे रहते थे।

विवाह के पश्चात् दो वर्ष तक हम लोगों ने संयम पालन करते हुए निर्लिप्त जीवन व्यतीत किया। हमलोग दरवेश जी का प्रायः स्वप्न में दर्शन एवं निर्देश प्राप्त करते रहते थे। दीक्षा प्राप्ति के कितने पहले से दरवेश जी हम लोगों को नियंत्रित व परिचालित कर रहे थे, यह सोचने पर आश्चर्य होता है। एक दिन इन्होंने कहा–''स्वप्न में महात्मा जी ने कहा है कि विवाहित व्यक्ति को अपनी पत्नी के ऋतुकाल में स्त्री-गमन न करने से अपराध होता है। शास्त्र में कथित निर्देशानुसार स्त्री संग करना। उन्होंने यह भी कहा कि तुम्हारी आठ सन्तानें होगी, उनमें से एक सन्तान नहीं रहेगी।'' [नोट - यहां ऋतुकाल का अर्थ है चौथे दिन के स्नान के पश्चात् अर्थात ऋतुस्नान के पश्चात् का समय। शास्त्र में अष्टमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, पूर्णिमा एवं अमावस्या, संक्रान्ति एवं विशेष पर्व के दिनों में स्त्री-गमन निषिद्ध माना गया है। इन दिनो में स्त्री-गमन से उत्पन्न सन्तान अपंग अथवा विभिन्न रोगों से ग्रस्त्र रहता है तथा सन्तान के साथ-साथ, माता-पिता भी आजीवन कष्ट पाते रहते हैं। [अमृतवाणी' बगला ग्रन्थ, लेखक–स्वामी असीमानन्द सरस्वती] उल्लेखनीय है कि शास्त्र में उपरोक्त नियमों को पालन करने वाले संयमित गृहस्थ व्यक्ति को 'ब्रह्मचारी' कहा गया है।]

हम एक ही शय्या पर शयन करते थे परन्तु किसी का व्रत भंग नहीं किया। एक दिन मेरे मन में चंचलता आ गयी। व्रत भंग की अपेक्षा मैंने आत्महत्या करना श्रेष्ठ समझकर, माचीस लेकर बाहर निकल पड़ी। इन्होंने मेरा उद्देश्य समझ लिया और मुझे शान्त किया। इसके पश्चात् हमारी आठ सन्तानें कमशः हुई। प्रथम कन्या लगभग दो वर्ष की उम्र में चल बसी। उसकी मृत्यु होगी यह हमे पहले से मालूम था।

तुम लोगों को यह सब बताने में मुझे लज्जा नही है। तुम लोग यह सब जान सको, इसी कारण यह कह रही हूँ–''ऋतुकाल में महात्माजी (दरवेशजी) के निर्देशानुसार तुम्हारे गुरूदेव (अन्नदा कुमार) निर्दिष्ट दिनों में तथा निर्दिष्ट समय में प्रथम महिने में छः दिन मेरे निकट आते थे। एक महिने के पश्चात् मैं गर्भधारण करती। विवाहित जीवन में तुम्हारे गुरूदेव इसी तरह मेरे निकट आये थे। गर्भावस्था में तथा सन्तान जन्म के बाद ऋतु न होने तक वे कभी नही आये। सन्तान जन्म के बाद वे स्वतंत्र रहा करते थे। मेरे भीतर कई बार चंचलता आयी, परन्तु महात्मा जी की कृपा से तुरन्त ही वह नष्ट हो गयी।''

''मैं जानती हूँ वे कौन हैं? उनका स्वरूप क्या है? परन्तु कहना निषेध है। इस कारण नही कह सकती। उनके निकट सभी समान हैं। छोटा-बड़ा, धनी-दरिद्र सभी के प्रति उनकी समान भावना है।''

अपने गुरूदेव दरवेश जी महाराज के सम्बन्ध में उन्होने लिखा है– गुरूदेव ने हम लोगों के विगत जन्म की सभी बातें हमसे कही है। स्वप्न मे पहले ही हमने यह सब देखा था। एक दिन गुरूदेव ने हम दोनों को परीक्षा लेते हुए कहा–''मेरे सामने क्या तुम लोग वस्त्रहीन हो सकते हो?'' उनके ऐसा कहने के साथ ही हम लोग अपने वस्त्र खोलकर फेंक दिये। वे कहने लगे–''माँ! तुमने यह क्या किया?'' ऐसा कहकर उन्होंने हमें साष्टांग प्रणाम किया। उस समय हमें शरीर का बोध नहीं था। हमने शिशु की तरह उन्हें जकड़कर पकड लिया। हमारे संयम की परीक्षा लेकर उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा–''तुम लोगों की परीक्षा लेने आकर मेरी ही परीक्षा हो गई।''

एक दिन दरवेश जी को देखा कि नीचे पहली मंजिल में वे सभी लोगों के साथ बातचीत कर रहे है। इसी समय उन्हें अचानक ऊपर के कमरे में अपने निकट बैठे हुए भी देखा। इस तरह के अनेक योगैश्वर्य हम लोगों ने देखा है।

दरवेश जी ने जिस दिन मुझे दीक्षा प्रदान किया उस दिन मेरे सिर में बहुत दर्द था। दरवेश जी ने कहा–''गोस्वामी जी का आदेश है आज इसी समय तुम्हारी दीक्षा होगी।'' दीक्षा के बाद उन्होंने तुम्हारे गुरूदेव से कहा–''गोस्वामी जी के आदेश से मैंने दीक्षा दिया है, परन्तु इसकी शिक्षा का सब भार तुम्हारे ऊपर है। जो आवश्यक हो, इसे बतला देना।'' तुम्हारे गुरूदेव ने विवाह के समय मुझे जो मंत्र दिया था, वही मंत्र दरवेश जी ने भी दिया। उन्होंने मुझसे कहा था–''इनकी (अन्नदा कुमार की) सेवा करने से ही तुम्हारा सब कुछ हो जायेगा।''

अन्नदा कुमार की सहधर्मिणी की 'स्वकथित आत्मकथा ' से स्पष्ट हो जाता है कि वे दोनों पूर्व जन्म की साधना में कितना अधिक अग्रसर हुए थे। गृहस्थ जीवन में रहकर इस प्रकार संयमित जीवन व्यतीत करना निःसन्देह कितना कठिन है। जन्म-जन्मान्तर की तपस्या से दोनों का मन एक ऐसे उच्च स्तर पर था, जहां सर्वदा उनके गुरूदेव का निर्देश वे प्राप्त करते रहे। सद्गुरू किस तरह जन्म-जन्मान्तर में सर्वदा साथ रहकर शिष्यों को परिचालित करते हैं, इसका अद्भुत प्रमाण इस जीवनी में मिलता है।

विवाह के पश्चात् जहाँ लोग भोग-विलास में अपने दिन व्यतीत करते ह वहाँ इस दम्पति को त्याग, संयम एवं देश की सेवा करते हुए कठोर संग्राम के मध्य से गुजरना पड़ा। विवाह के पश्चात् पत्नी को कहाँ रखा जाये, इसे लेकर अन्नदा कुमार चिन्तित हो गये। पुलिस इन्हें पकड़ने के लिए सर्वदा प्रयासरत् थी। उस समय तिलूड़ी नामक ग्राम के एक परिचित सज्जन ने अत्यन्त आग्रहपूर्वक उन्हें अपने पास रखा।

यद्यपि उनकी पत्नी इस तरह अन्यत्र नहीं रहना चाहती थी, परन्तु परिस्थिति ऐसी थी कि इसके अतिरिक्त और कोई उपाय भी न था। उस समय अन्नदा कुमार ने एक पत्र में उन्हें लिखा–''**मैं तुम्हारे पिता के पास तुम्हें रखना नहो चाहता। अपने सभी प्रकार की अवस्थाओं के भीतर तुम्हें सहायक के रूप में देखना चाहता हूँ। हमारे भीतर स्वार्थ, लोभ, आराम व सुख की आकांक्षा या कल्पना तक न आवे। तुम्हें निष्काम कर्मी के रूप में मेरे जीवन के यात्रा पथ में सहधर्मिणी के रूप में पांकर, मैं कृतार्थ हो जाऊँगा । तुम इसी आदर्श को सामने रखकर अपने को तैयार कर सको–यही इच्छा है। इस संग्राम में तुम्हारी जय हो।**''

शैलबाला देवी अपने पति के आदर्श को सामने रखकर अग्रसर होने लगीं। भ्राम्यमान पति को पकड़ने के लिए पुलिस सर्वदा पीछे लगी रहती थी। कुछ दिनों के पश्चात् अन्नदा कुमार ने रामचन्द्रपुर में अपने पैत्रिक मकान पर, स्त्री को रखने का प्रबन्ध किया और घर का खर्च चलाने के लिए, खादी वस्त्रों का विकय एवं खेती-बाड़ी का कार्य प्रारम्भ किया। इस कार्य में इनके सहायक कर्मियो ने भी सहायता की। स्त्री शैलबाला देवी को इस तरह काफी संघर्षमय परिस्थितियों से होकर गुजरना पड़ा। अन्नदा कुमार छिपकर घर आया करते थे। एक बार इसकी सूचना, पुलिस द्वारा नियुक्त गाँव के कतिपय गुप्तचरों ने थाने में दे दी। पुलिस के आने के पूर्व ही अन्नदा कुमार जंगल में छिप गये। घर की तलाशी ली गयी। शैलबाला देवी पुलिस के इस कार्य से भयभीत न होकर, और अधिक उत्साह से अपने को विभिन्न सेवा कार्यो में नियोजित करने लगी। १९३३ ई. का समय संगठन मूलक कार्यो के साथ-साथ राजनैतिक कर्मधारा भी अच्छी तरह चली। उस समय शैलबाला देवी को, आने-जाने वाले स्वदेशी कर्मियों के भोजनादि की व्यवस्था स्वयं करनी पड़ती थी। अन्नदा कुमार की अनुपस्थिति में कोई समस्या आने पर कर्मी लोग शैलबाला देवी के पास आकर अपनी समस्याओं को सुलझाते थे।

३१ मार्च, १९३३ ई. को कोलकाता में कांग्रेस अधिवेशन करने की प्रचेष्टा की गयी। सम्मेलन में योगदान के लिए, नेता लोग आने लगे। अंग्रेजों ने इस सभा को नष्ट करने के लिए वहां लाठी चार्ज किया तथा नेता आदि लोगों को गिरफ्तार किया। बाद में अधिकांश लोगों को छोड़ दिया गया। मई माह में गाँधीजी ने आत्मशुद्धि के लिए २१ दिन का अनशन व्रत किया। इसके बाद उन्होंने 'हरिजन आन्दोलन' शुरू किया। इसके कारण राजनैतिक आन्दोलन का कार्य थोड़ा धीमा पड़ गया। इससे सरकार का मनोभाव भी थोड़ा परिवर्तित हो गया एवं पुलिस की दमननीति व अत्याचार भी काफी कम हो गया। इस समय अन्नदा कुमार ने विभिन्न ग्रामों में भ्रमण करते हुए प्रचार कार्य किया ।

अध्याय १० : देवी का दर्शन एवं पुरूलिया में 'भारती प्रेस' की स्थापना

दुर्गा पूजा के पूर्व, एक दिन अन्नदा कुमार ने रात्रि के समय जागृत अवस्था में एक देवी का दर्शन पाया। देवी ने कहा–''मैं तुम्हारे पास आ रही हूँ। राजा ज्योतिप्रसाद तुम्हें कुछ धन प्रदान करेंगे। उसे असहाय लोगों की सेवा में लगा देना।'' अन्नदा कुमार को बाद में यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उनकी स्त्री एवं राजा ज्योतिप्रसाद ने भी उसी दिन देवी का दर्शन पाया है। यथा समय राजा ने स्वप्न में प्राप्त निर्देशानुसार कुछ धन अन्नदा कुमार को प्रदान किया। १६ जनवरी, १९३४ ई. को उत्तर बिहार मे जो भयानक भूकम्प हुआ था, उसमें कम्बल, वस्त्रादि भेजकर असहाय लोगों की सहायता में उन्होंने उस धन को लगा दिया।

इसी वर्ष राधाष्टमी के दिन शैलबाला देवी को कन्या रत्न की प्राप्ति हुई। इसके साथ ही कालीपूजा के पूर्व, किसी गांव के कुछ लोगों ने एक काली मूर्ति लाकर इन्हें दिया। इसे देवी कृपा मानकर मुराडी स्टेशन के पास, जहाँ अन्नदा कुमार को 'नजरबन्द' रखा गया था, स्थापित कर यथाविधि पूजा की गयी। पूजा के समय देवी के जागृत होने के लक्षण कई लोगों ने अनुभव किया। काली प्रतिमा के विसर्जन के बाद, उस स्थान को खोदकर देखा गया तो वहाँ पंचमुंडी आसन दिखा। फिर उस स्थान पर सीमेन्ट से वेदी बना दी गयी। बाद में वहाँ शैलबाला देवी की प्रचेष्टा से पत्थर की माता काली जी की मूर्ति स्थापित कर मन्दिर बनाया गया।

सन् १९३५ ई. में 'मानभूम समिति' पत्रिका प्रकाशित की गई। इस पत्रिका के माध्यम से अन्नदा कुमार ने मानभूम जिले की उन्नति का कार्य किया। उन्होंने मालगुजारों की सहायता से तालाबों का जीर्णोद्धार, पीने के पानी के लिए कुआँ खुदवाना एवं ग्रामों में पाठशाला खोलना आदि अनेक कार्य किये। इस वर्ष समिति का कार्य बहुत अच्छी तरह चला। पुरूलिया जिले के सज्जन डिप्टी कमिश्नर ने भी इनके सेवा कार्यों में काफी सहायता की। इस वर्ष ऋषि निवारणचन्द्र ने देहत्याग किया। इससे मानभूम जिला एक आदर्श निःस्वार्थ नेता को खो बैठा। उल्लेखनीय है ऋषि निवारणचन्द्र एवं दरवेशजी सहपाठी थे एवं गोस्वामी जी के शिष्य बरिशाल जिला (पूर्व बंगाल) वासी अश्विनी कुमार दत्त के छात्र थे।

'मानभूम समिति' की कर्मधारा, संगठन शक्ति एवं जनप्रियता बहुत बढ़ गई। अन्नदा कुमार ने अपनी कार्य-पद्धति को 'आमार जीवन' ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णित किया है–

मैंने अपने जीवन में, जिस कार्य से देश का कल्याण हो उसे दृढ़ता पूर्वक किया है। अभी भी मैं इसी नीति का पालन करता हूँ। जो 'सत्य' समझा जाये उसे ही करूँगा, बाद में यदि पता चले कि मैंने गलत समझा था, तब निष्कपट भाव से उसे स्वीकार करूँगा। मैंने किसी विशेष दल, सम्प्रदाय, जाति, वर्ण, उच्च-नीच आदि किसी को अधिक महत्व न पहले दिया था और न आज देता हूँ। मैं एक मात्र मानव जाति को मानता हूँ। कवि चण्डीदास कथित ''सबार ऊपर मानुष सत्य ताहार ऊपरे नाहि'' इसी वाक्य को आदर्श मानकर हम मानव मात्र में ईश्वर की पूजा कर सकें। आज भारतवर्ष की साधना होगी– सभी जाति को किस तरह सच्चे ब्राह्मणत्व में लाया जाए। अपने जीवन में इसी कारण मैंने मनुष्य मात्र की सेवा को आदर्श एवं सबसे बड़ी सेवा माना है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि ''अनेक रूपों में तुम्हारे सामने ईश्वर हैं, इन्हें छोड़कर ईश्वर को कहाँ ढूंढ रहे हो? प्राणिमात्र से जो प्रेम करता है, वही ईश्वर की सेवा कर रहा है।''

इस कार्य पद्धति के सभी लक्षणो का विकास अन्नदा कुमार (परवर्ती काल में स्वामी असीमानन्द जी) मे पूर्ण रूप से प्रकटित देखा गया है। जिन्होंने भी इनका थोड़ा बहुत संग किया है, वे इनके मधुर व्यवहार एवं आन्तरिकता से मुग्ध हो गये।

इस वर्ष अन्नदा कुमार सेवा कार्यों में और अधिक व्यस्त हो गये। एक दिन अचानक जसीडीह से महात्मा 'हंस बाबा' का पत्र पाकर, वे उनके पास पहुँचे। हंस बाबा उस समय प्राचीन सिद्ध महात्मा के रूप मे प्रसिद्ध थे। उन्होंने १२० वर्ष की उम्र में अपना नश्वर शरीर छोड़ा था। अन्नदा कुमार के साथ उनका पूर्व परिचय था। इस बार महात्मा हंस बाबा ने अन्नदा कुमार को कई बहुमूल्य उपदेश दिया, जो उनके जीवन गठन में अत्यन्त सहायक रहा–

(१) जिसे 'सत्य' समझोगे उसे ही करना, बाद में यदि पता चले कि तुम्हारा समझना गलत है, तो उसे स्वीकार कर लेना।

(२) जो व्यक्ति अपनी त्रुटियों को जितना अधिक स्वीकार कर लेगा उसके भीतर मानवता का विकास उतना अधिक होगा।

(३) किसी के भी साथ अधिक घनिष्टता मत रखना।

(४) अपने साधन-भजन की बातें किसी के समक्ष प्रकट मत करना।

(५) भोजन तथा वस्त्र यथा सम्भव कम उपयोग करना।

(६) कभी-कभी बेल पत्ते का रस लेते रहना, इससे उत्तेजना कम होती है।

(७) जो प्रवृत्ति (काम, क्रोधादि) बढ़ेगी उसके उत्पत्ति स्थल में मन को रख कर थोड़ी देर नाम-जप करना।

(८) राजनीति का कार्य करो, परन्तु अपने यश के लिए अथवा दल के स्वार्थ के लिए 'असत्य' का समर्थन मत करना।

(९) चिन्ता मत करो, शीघ्र तुम्हें सद्गुरू की प्राप्ति होगी।

(१०) 'भगवान की सेवा कर रहा हूँ,' इस भावना से कार्य करो।

(११) किसी को भी पराया मत समझो। सभी तुम्हारे अपने हैं। सभी उसी 'एक' के भिन्न-भिन्न रूप हैं।

उपरोक्त उपदेशो को अन्नदा कुमार सर्वदा आदर्श मानकर चलते थे। दूसरों को भी इसके लिए उत्साहित करते थे।

एक दिन अन्नदा कुमार ने स्वप्न में देखा कि उनकी कन्या का देहांत हो गया है एवं श्मशान मे उसे ले जाया गया है। स्वप्न की चिन्ता कर, वे पुरूलिया आ गये। उस समय उनकी स्त्री एवं सन्तानादि कुछ दिनों के लिए पुरूलिया आये थे एवं किराये के मकान में रहते थे। यहाँ आने पर अन्नदा कुमार ने अपनी कन्या को अत्यन्त अस्वस्थ हालत मे देखा। तुरन्त यथा साध्य चिकित्सा की व्यवस्था की गई परन्तु उसे बचाया नहीं जा सका। इस कन्या में जन्म के बाद से ही अनेक प्रकार के सुलक्षण देखे गये थे। कीर्तन सुनने पर वह तन्मय हो जाती थी। उसका बाह्य ज्ञान लुप्त हो जाता था। उच्छिष्ट वस्तु वह कभी नहीं खाती थी। उसका शरीर इतना ज्योतिर्मय था कि कैमरे में उसकी फोटो नहीं उतरती थी। जमीन पर उसके शरीर की परछाई नहीं पड़ती थी। ऐसी महान् आत्माएं क्यो आती हैं एवं ज्यादा दिनों तक क्यों नहीं रहती हैं? इस सम्बन्ध में शास्त्रों में उल्लेखित है–''योगभ्रष्ट तथा शापग्रस्त महान् आत्माएं कर्म वश इस तरह आते-जाते हैं।''

अन्नदा कुमार की संगठन शक्ति के प्रभाव से जिला कांग्रेस के नेतागण अपने स्वार्थ के लिए उनके कार्य में विघ्न डालने लगे। अन्नदा कुमार ने आपसी मतभेद से दूर रहना अच्छा समझा एवं 'मानभूम समिति' का कार्यभार त्यागकर कोलकाता चले गये। तब उनके गुणमुग्ध डिप्टी कमिश्नर श्री सेनापति ने उनसे पुरुलिया आकर अपना प्रेस व नई पत्रिका शीघ्र आरम्भ करने का अनुरोध किया तथा सभी प्रकार की सहयोगिता का वचन दिया। कोलकाता में अन्नदा कुमार के मित्रों ने भी उन्हें पुरूलिया में रहकर पुनः पत्रिका प्रारम्भ करने का सुझाव दिया। नेताजी सुभांषचन्द्र बोस ने भी उन्हें यही निर्देश दिया।

नई पत्रिका 'संगठन' नाम से कोलकाता से छपवाकर तथा नये प्रेस के लिए आवश्यक वस्तुएं लेकर अन्नदा कुमार पुरूलिया आ गये। इस कार्य में उनकी कई लोगों ने सहायता की। पुरुलिया के डिप्टी कमिश्नर ने अन्नदा प्रसाद को प्रेस अपने नाम पर करने से मना किया क्योंकि वे किसी भी समय गिरफ्तार किये जा सकते हैं। अतः परिचालक का नाम शैलबाला देवी रखकर 'भारती प्रेस' नामक प्रेस खोला गया। 'संगठन' पत्रिका थोड़े ही दिनों में बहुत प्रचारित हो गयी। 'भारती प्रेस' का नाम भी बहुत फैल गया। पुरूलिया में जो भी नेता आते वे यहाँ अवश्य जाते थे।

इस समय कुष्ठ रोगियों के लिए 'नवकुष्ठ निवास' नाम से एक कुष्ठ आश्रम की प्रतिष्ठा पुरूलिया के पास बलरामपुर में की गई। इस कार्य के लिए डिप्टी कमिश्नर श्री सेनापति ने उन्हें विशेष सहायता प्रदान की। इनके कार्यक्षेत्र के प्रमुख बिन्दु थे–(१) मानभूम में कुष्ठ रोग का प्रतिकार, (२) ग्राम की उन्नति के लिए विभिन्न कार्य, (३) मानभूम वासियों के लिए कर्म संस्थान तथा (४) मानभूम में शिक्षा का विस्तार।

सन् १९३५ ई. में ऋषि निवारणचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् मानभूम कांग्रेस में योग्य नेता का अभाव हो गया। पण्डित जवाहरलाल नेहरू पुरूलिया आए थे, उन्होंने 'भारती प्रेस' में आकर अन्नदा कुमार के कार्यों की सराहना की। मानभूम जिले में बंगालियों की संख्या अधिक थी। इसलिए इसे बंगाल में शामिल करने का प्रयास चल रहा था। बिहार प्रान्त के नेताओं ने डा. राजेन्द्र प्रसाद के नेतृत्व में हिन्दी भाषा का प्रचार कार्य शुरू किया एवं 'बिहार समिति' के नाम पर पुरूलिया एवं अन्य स्थानों मे कई हिन्दी स्कूल खोले। 'बिहार समिति' का उद्देश्य था–हिन्दी भाषी लोगों की जनसंख्या किसी तरह अधिक दिखलाया जाए तो मानभूम जिला बिहार के अन्तर्गत ही रहेगा। मानभूम के बंगला भाषी लोगों ने इस कार्य का विरोध करते हुए 'बंगला समिति' की स्थापना की एवं बंगला भाषा का प्रचार शुरू किया। उस समय ''डोमीसाइल्ड रूल'' नाम से जो कार्य किया गया था उससे हिन्दी भाषी एवं बंगला भाषी लोगों में तीव्र मतभेद उत्पन्न हो गया। बंगला भाषा का प्रचार कार्य एवं मानभूम जिले को बंगाल प्रान्त के अन्तर्गत लाने के लिए अन्नदा कुमार ने सकिय आन्दोलन प्रारम्भ किया। 'संगठन' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने सरकार की नीति का तीव्र प्रतिवाद किया था। अन्ततः पुरूलिया एवं उसके आसपास का क्षेत्र, पुरूलिया जिले के नाम से पश्चिम बंगाल के अन्तर्गत हो गया। मानभूम का शेष हिस्सा बिहार प्रान्त में सम्मिलित हुआ।

२६ सितम्बर, १९३७ ई. को डा. राजेन्द्र प्रसाद एवं काका कालेलकर जब पुरूलिया आए तब अन्नदा कुमार उन्हें 'भारती प्रेस' में लाये। यहाँ संगठन पत्रिका का उद्देश्य एवं अन्नदा कुमार के ग्राम संगठन के कार्यों से वे बहुत प्रभावित हुए।

इसी वर्ष जन्माष्टमी के दिन अन्नदा कुमार बेरो नामक ग्राम में केशव जी के मन्दिर में थे। रात्रि के समय उन्होंने स्वप्न देखा कि उनके घर में पुत्र का जन्म हुआ है एवं कीर्तन चल रहा है। दूसरे ही दिन उन्हें पुत्र जन्म का समाचार मिला। अन्नदा कुमार के जीवन के घटनाओं की आलोचना करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि **अपने भावी जीवन की अधिकांश घटनाओं का पूर्वाभास उन्हें स्वप्न के माध्यम से हो जाता था।**

अन्नदा कुमार ने देखा कि शिक्षा द्वारा आत्मशक्ति के विकास के लिए गांव के बच्चों के भीतर यदि त्याग एवं संयम के साथ स्वदेश के प्रति श्रद्धा विकसित न की जा सके तो उस शिक्षा से भविष्य में देश की उन्नति नहीं हो सकती। इसी उद्देश्य से

अन्नदा कुमार के प्रयास से 'मानभूम प्राथमिक शिक्षा संघ' की स्थापना की गई। इस संघ के माध्यम से प्राथमिक शिक्षकों द्वारा ग्राम संगठन के साथ-साथ बालकों को आवश्यक एवं उचित शिक्षा प्रदान करने का प्रयास किया गया । १६ मार्च से २३ मार्च तक रामचन्द्रपुर आश्रम में प्राथमिक शिक्षकों के सम्मेलन का भी सफलता पूर्वक आयोजन किया गया। इसमें विशिष्ट लेखक, नेता सहित चार हजार लोग सम्मिलित हुए। पुरुलिया के डिप्टी कमिश्नर सेनापति ने इस कार्य में भी पूर्ण सहयोग दिया।

अध्याय ११ : आकस्मिक दुर्घटना तथा राजा ज्योतिप्रसाद का वाराणसी में देह-त्याग

सन् १९३८ ई० में २० फरवरी को रामचन्द्रपुर आश्रम के 'युवा सम्मेलन' में सम्मिलित होने के लिए अन्नदा कुमार अपने कुछ सहयोगियों के साथ पुरुलिया से निकले। उनके मन में उस दिन वहाँ न जाने का विचार कई बार आया, परन्तु उनके सहयोगी डा. खुदीराम के आग्रह को वे टाल न सके। पुरुलिया से लगभग ४० किलोमीटर की दूरी पर रघुनाथपुर के पश्चात् रामचन्द्रपुर के रास्ते में बुंदला नामक ग्राम के पास, एक सकरे पुल के बीच में साइकल पर सवार दो लडके गाडी के सामने आ गये। अन्नदा कुमार ने गाडी चालक से कहा कि किसी भी तरह लड़कों को बचाना होगा। चालक ने ब्रेक लगाया, परन्तु ऐन-मौके पर ब्रेक फेल हो जाने से गाड़ी पुल से नीचे नदी में गिर पड़ी। चालक तथा डा. खुदीराम को थोडी चोट लगी परन्तु अन्नदा कुमार बेहोश हो गये। बाकी लोगों को भी काफी चोट लगी। पुरुलिया के डिप्टी कमिश्नर सेनापति किसी कार्यवश रघुनाथपुर में थे, खबर मिलते ही वे घटना स्थल में पहुँचे। यह स्थान रघुनाथपुर के नजदीक होने के कारण कई परिचित लोग भी वहाँ पहुँच गये। दुर्घटना दिन क लगभग १२ बजे हुई। अन्नदा कुमार की हालत नाजुक देखकर लोगों ने उनके जीवन की आशा त्याग दी। उन्हें खाट पर लिटाकर, रघुनाथपुर अस्पताल में लाया गया। चारो तरफ खबर फैल गयी थी कि अन्नदा कुमार का देहान्त हो गया है। अस्पताल में असंख्य लोगों की भीड़ को सम्हालने के लिए पुलिस की सहायता ली गई। रात्रि लगभग ८ बजे उन्हें होश आया। अचेतन अवस्था में अन्नदाकुमार ने अपने को एक ज्योतिर्मय लोक की तरफ ले जाते हुए अनुभव किया था।

बीस दिन अस्पताल में रहने के बाद, उन्हें राजा ज्योतिप्रसाद अपने पास ले आये। अन्नदा कुमार के पूर्वज पंचकोट राजवंश के प्रतिष्ठाता, गुरु एवं पुरोहित थे। इस कारण राजा, अन्नदा कुमार की बहुत श्रद्धा करते थे। बातचीत के दौरान राजा ज्योतिप्रसाद ने उनसे कहा- ''भाई, यह राज्य-सम्पद् आदि में अग्नि के समान ज्वाला का मैं अनुभव करता हूँ। पुत्रों के व्यवहार से मेरी शान्ति नष्ट हो गयी है।'' बाद में राजा ज्योतिप्रसाद के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है–'राजा बहुत उदार प्रकति के थे एवं गुप्त रूप से कान्तिकारियों की मदद किया करते थे।' अन्नदा कुमार की व्यक्तिगत रुप से राजा ने कई बार सहायता करने का प्रयास किया, किन्तु अन्नदा कुमार ने इसे कभी भी स्वीकार नहीं किया। अन्नदा कुमार ने अपने छात्र-जीवन में प्रतिज्ञा लिया था कि 'व्यक्तिगत आवश्यकता के लिये किसी से दान या सहायता नहीं

मांगूँगा। उस संकल्प का उन्होंने आजीवन पालन किया । एक दिन राजा ने उनसे कहा कि तुम्हें मेरा दान लेना चाहिए, क्योंकि हमारे दान द्वारा ही तुम लोगों का सब कुछ हुआ है। राजा की बात सुनकर अन्नदा कुमार ने उत्तेजित होकर कहा– **''इस तरह की बात कहते हुए तुम्हें लज्जा आनी चाहिए। हमारे पुर्वजों ने ही तुम लोगों का राजतिलक कर, राजगद्दी में बैठाया है । तुम्हारे दान पर हमलोग जीवित नहीं हैं। हमारे आशीर्वाद से ही तुम लोग राजवैभव भोग रहे हो ।'' इनकी तेजपुर्ण युक्ति से राजा नें क्षमा** मांगते हुए कहा– **''आज तक इस तरह की बातें किसी ने मुझसे कहने का साहस नहीं किया । तुम असली नाग सांप के बच्चे के समान हो । तुम्हारे अभिशाप से मैं डरता हू।''**

राजा ज्योतिप्रसाद की मृत्यु की अद्भुत घटना का वर्णन करते हुए अन्नदा कुमार ने लिखा है– ''कोलकाता में राजा बहुत अस्वस्थ थे । उनकी अत्यन्त खराब हालत देखकर चिकित्सकों ने चौबीस घंटे के भीतर उनकी मृत्यु की घोषणा कर दी। उनके परिवार के लोगों ने मृत्यु पूर्व प्रायश्चित करने के उद्देश्य से उन्हें जमीन पर लेटा दिया । राजा ने पूछा कि यह सब क्या हो रहा हैं ? पुरोहितों ने उन्हें चिकित्सकों की घोषणा की बात बता दी । तब राजा ने कहा–'ये लोग कुछ नहीं जानते हैं, मेरी मृत्यु काशी में होगी ! अभी स्पेशल ट्रेन की व्यवस्था करो !!' चिकित्सकों ने कहा कि इस तरह के रोग मे चौबीस घण्टे के भीतर रोगी की मृत्यु हो जाती है । इनके पीछे इतना खर्च करना व्यर्थ है।

राजा ने सभी लोगों से क्षमा मांगकर प्रार्थना किया, जिससे काशी में उनकी मृत्यु हा । यथा शीघ्र उन्हें काशी लाया गया । काशी में उन्होंने ब्राह्मण भोज, दरिद्र नारायण सेवा आदि दान-यज्ञ प्रारम्भ किया । सात दिन बाद उन्होंने कहा किं 'आज मैं चला जाऊँगा, मेरे जाने का समय हो गया है । मेरे साथ राज-लक्ष्मी भी चली जाएगी । मैं अन्तिम राजा हूँ । मेरे पौत्र तक थोड़ा बहुत रहेगा, उसके बाद सब ध्वंस हो जाएगा ।' इसके बाद उन्होंने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया ।

राजा के शव को जब मणिकर्णिका घाट ले जाया गया, उस समय अलंकारों से विभुषित देवी जैसी अपूर्व सुन्दरी एक नारी को शव के आगे-आगे जाते हुए अनेक लोगों ने देखा । फिर वह गंगाजी में अदृश्य हो गयी । राजधानी काशीपुर में देवी के मन्दिर का विग्रह भी राजा की मृत्यु के बाद अदृश्य हो गया । यद्यपि मन्दिर के दरवाजे पर ताला बन्द था । बाद में वहाँ पुत्र कल्याणी प्रसाद ने नये विग्रह की स्थापना की ।

राजा ज्योतिप्रसाद की मृत्यु के बाद कल्याणी प्रसाद राजा हुआ । वह अनाचारी व अत्याचारी था । कुछ दिन राज्य करने के बाद दुरारोग्य व्याधि से उसकी

मृत्यु हो गई । इसका विस्तृत विवरण आगे यथा स्थान दिया जायेगा । इसके बाद कछ दिनों के लिए शंकरी प्रसाद राजा हुए । फिर पूरा स्टेट सरकार ने ग्रहण कर लिया । इस तरह राजा ज्योतिप्रसाद की मृत्यु के साथ-साथ राज्य-लक्ष्मी भी चली गयी ।

सन् १९२१ ई. से राजा ज्योतिप्रसाद के साथ अन्नदा कुमार का सम्बन्ध रहा । **'विषय विष है ' इस सत्य का उन्होंने राजा के महल में जितना अनुभव किया, उतना कहीं नहीं किया । पिता पुत्र में 'प्रेम नहों', स्वामी स्त्री में विभेद, कुटुम्ब एवं परिवार के व्यक्तियों के साथ अविश्वास, इस तरह सर्वदा अशान्ति की ज्वाला उन्होनें यहां देखा ।**

अध्याय १२ : नेताजी का 'फारवर्ड ब्लाक' गठन एवं विदेश गमन

सन् १९३८ ई. हरिपुरा कांग्रेस के लिए नेताजी सुभाषचन्द्र बोस निर्वाचित हुए। कोलकाता म्यूनिसिपल बोर्ड की व्यवस्था का भार भी सुभाषचन्द्र पर था। इस वर्ष कांग्रेस ने, स्वायत्व शासन विभाग के प्रतिष्ठानों में भारत का जातीय पताका लगाने का आदेश प्रदान किया। मानभूम जिले के सभी प्रतिष्ठानों में जातीय पताका लगाया गया।

इसी वर्ष १६ मई को, अन्नदा कुमार के सभी कार्यों में सहायक डिप्टी कमिश्नर सेनापति का स्थानान्तरण हो गया। उनके स्थान पर आमिन अहमद नामक एक अत्याचारी एवं हिन्दू विद्वेषी डिप्टी कमिश्नर आये।

सन् १९३९ ई. में, महात्मा गांधी के विरोध के बावजूद सुभाषचन्द्र बोस त्रिपुरी कांग्रेस में सभापति निर्वाचित हुए। यद्यपि हरिपुरा कांग्रेस के निर्वाचन के समय गांधी जी एवं सुभाषचन्द्र के मतो में समानता थी। बाद में कमशः दोनों के मत-विरोध ने प्रबल आकार धारण कर लिया। इसीलिए त्रिपुरी कांग्रेस के निर्वाचन में गांधी जी पट्टामि सीतारमैया जी के पक्ष में थे। नेताजी सुभाषचन्द्र, अंग्रेजों के साथ किसी प्रकार का समझौता करने के विरोधी थे। उन्होंने कहा था–''**अंग्रेजों के साथ संग्राम में जयी होने के पूर्व गद्दी प्राप्त करने पर, कांग्रेस के साथ देश का भी सर्वनाश होगा। थोड़ी बहुत क्षमता (Power) पाकर मन्त्रीमण्डल के सदस्यों के साथ कांग्रेस में दुर्नीति फैल जाएगी। अंग्रेजों को भारत से निकालने के पश्चात् भारतीय गण-परिषद् ही भारत का नवीन संविधान तैयार करेंगे।**'' नेताजी की इस विजय से गांधी जी ने दुःखित होकर कहा था–''पट्टामि सीतारामैया की हार –मेरी हार है।" डा. राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल आदि प्रमुख नेताओं ने सुभाषचन्द्र को सहयोग देना अस्वीकार कर दिया। उस समय सुभाषचन्द्र द्वारा प्रस्तावित योजना, वोट में हार जाने के कारण गोविन्द वल्लभ पंथ का प्रस्ताव ग्रहण किया गया। यहाँ से कोलकाता जाने के पूर्व नेताजी ने अन्नदा कुमार एवं अन्य कार्यकर्ताओं को कोलकाता में मुलाकात करने का निर्देश दिया।

नेताजी के अनुरागी सभी लोग कोलकाता में सम्मिलित हुए। गांधीवादी नेताओं के विरोध से स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस वर्किंग कमेटी का गठन नेताजी सुभाषचन्द्र की अध्यक्षता में नही हो सकेगा। गांधीजी अनुमोदित नेताओं द्वारा वकिंग कमेटी का गठन करना, नेताजी ने अनुचित समझा तथा नेताजी द्वारा मनोनीत व्यक्ति के साथ गांधीवादी लोगों ने सहयोग देना अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार आपसी मतभेद देख कर नेताजी ने पद त्याग देने का निर्णय लिया। कोलकाता के वेलिंगटन स्क्वायर के सम्मेलन में उन्होंने पदत्याग पत्र पर हस्ताक्षर किया। इस

घटना के परिणाम स्वरूप जो उत्तेजना कोलकाता में देखी गयी, उसमें गांधीवादी नेताओं को अपनी जान बचाकर भागने में नेताजी की सहायता लेनी पडी। उसी समय नेताजी ने 'फारवर्ड ब्लाक' का गठन किया। अन्नदा कुमार को उन्होंने छोटा नागपुर विभाग का कार्य भार सौंपा।

इस समय को एक छोटी सी घटना से नेताजी सुभाषचन्द्र की महान्ता का परिचय मिलता है। नेताजी उस समय बहुत अस्वस्थ थे। अन्नदा कुमार के साथ उनके कुछ सहयोगी कर्मी भी नेताजी का दर्शन करने गये परन्तु उनमें केवल अन्नदा कुमार ही पहले से अनुमति प्राप्त थे, इसलिए केवल उन्हें ही मिलने दिया गया। यथा समय जब नेताजी के साथ अन्नदा कुमार की भेंट हुई एवं आवश्यक बातचीत समाप्त हुई तब अन्नदा कुमार ने उनसे निवेदन किया कि वे थोड़ी देर के लिए खिडकी के पास खडे हो जायें तो बहुत अच्छा होगा। नेताजी ने विस्मित होकर इसका कारण पूछा तो अन्नदा कुमार ने अपने सहयोगी कर्मियों के विषय मे कहा कि वे लोग आपका दर्शन करना चाहते हैं। अभी तक नेताजी अस्वस्थता के कारण बिस्तर में लेटे हुए बातचीत कर रहे थे, अन्नदा कुमार की बात सुनकर वे उठकर बैठ गये। उन्होंने अपने प्रमुख अनुचर सत्य बक्शी को बुलाया। उनके साथ दो-चार लोग भी भीतर आ गये। नेताजी ने गंभीर स्वर में कहा–''**देखो! आज मैं कांग्रेस का सभापति हूँ। मुझे कितना सम्मान मिल रहा है। मैंने सम्पन्न घर म जन्म लिया है, रूपयों की कमी मुझे कभी नही हुई। विदेश जाकर मैंने I.C.S. पास किया एवं नौकरी भी नही की। इससे मेरा नाम सर्वत्र फैल गया। अब इन लड़कों की ओर देखो! ये किसी अख्यात ग्राम में रहते हैं। इनमें से कई लोगों के घर में दो-वक्त का भोजन भो नही होगा। हम लोगों के बुलाने पर ये तुरन्त आ जाते हैं। पुलिस इन पर कठोर अत्याचार करती है, जेल में इन्हें भरा जाता है। जेल से छुटकर जब ये घर आते हैं तब देखते हैं किसी के पिता या माता, किसी के स्त्री या पुत्र की मृत्यु हो चुकी है, किसी की जमीन-सम्पत्ति नष्ट हो गई है, परन्तु ये कभी कोई शिकायत नहीं करते हैं। हमारे बुलाने पर फिर से देश की सेवा में कूद पड़ते हैं। इनको लेकर ही हम लोगों की नेतागिरी चल रही है! आज यही लोग थोड़ी देर के लिए हमसे मुलाकात करने कई घण्टों से बाहर खड़े हैं ! यह कितनें लज्ञा की बात है ! अपने गले में रस्सी का फंदा डालकर मरना इससे अच्छा है!! अभी इन्हें हमारे पास लाओ !!!** सत्य बक्शी ने बाहर खड़े हुए सभी लोगों को भीतर ले आया। नेताजी ने सभी का आलिंगन करके, हाथ जोड़कर कहा–'**तुम लोग मुझे क्षमा कर दो।' नेताजी के इस तरह के व्यवहार से अन्नदा कुमार मुग्ध हो गये। उन्होंने तुरन्त नेताजी के चरणों में माथा टेककर प्रणाम किया। जाते समय नेताजी ने अन्नदा कुमार से पूछा–'तुम मुझे क्या दे सकते हो?' अन्नदा कुमार ने कहा–'आप क्या चाहते हैं?' नेताजी ने कहा–'तुम्हारे जीवन की आहूति।' अन्नदा कुमार ने अपनें**

को कृतार्थ मानते हुए कहा–'मैंने अपना जीवन अर्पण किया।'

'फारवर्ड ब्लाक' के कार्य में क्रान्तिकारियों ने सहयोग देना आरम्भ किया। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस अपने फौजी अनुशासन द्वारा संगठन को तैयार करने में लग गये। कांग्रेस ने उन्हें पार्टी से तीन वर्ष के लिए निष्काषित किया। नेताजी ने सारे भारत में 'फारवर्ड ब्लाक' का कार्य विस्तृत किया। इस समय द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। नेताजी का कहना था–**'अंग्रेजों से हमें स्वाधीनता छीन कर लेना होगा। भीख मांगने से स्वाधीनता नहीं मिल सकती। स्वाधीनता अर्जित करना पड़ता है।' वे अंग्रेजो के साथ किसी भी प्रकार के समझौते के कट्टर विरोधी थे।**

९ दिसम्बर, १९३९ ई. को नेताजी सुभाषचन्द्र, पुरूलिया आए। इसके पूर्व जब वे टाटानगर आये थे तब अन्नदाकुमार के द्वारा उनसे पुरूलिया आने का निवेदन करने पर उन्होंने कहा था कि–'एक दिन का पूरा समय मैं तुम्हें दूँगा, चिन्ता मत करो।' नेताजी अस्वस्थ हैं, ऐसा समाचार ८ दिसम्बर को मिला। इससे अन्नदा कुमार चिन्तित हो उठे। नेताजी ने उन्हें फोन पर कहा–"मैं जरूर आऊँगा, तुम कार्यकम स्थगित मत करना।"

दूसरे दिन जब वे पुरूलिया स्टेशन पर उतरे तब उन्हें १०३ डिग्री बुखार था। अन्नदा कुमार ने उनकी शारीरिक हालत देखकर उनसे कहा कि आपका आगे का कार्यकम रद्द कर देने से अच्छा होगा। इस तरह अस्वस्थ शरीर को लेकर आप कैसे भ्रमण करेंगे? नेताजी ने कहा–"ऐसा कभी मत करना। अभी यदि कार्यकम रद्द कर दोगे तो भविष्य में तुम्हें यहाँ काम करने में अत्यन्त असुविधा होगी। सभी कार्यकम जैसा है, वैसा ही होगा।"

पुरूलिया में इस समय कांग्रेस का बोलबाला था। नेताजी के कार्यकम को नष्ट करने के लिए उन्होंने प्राणपण कोशिश की परन्तु सफल न हो सके। शहर में अनेक परिचित लोगों के पास गाड़ियाँ थी, परन्तु किसी ने अपनी गाड़ी इन्हें भ्रमण के लिए नहीं दिया। किसी तरह किराये में गाड़ी की व्यवस्था की गई। इसे भी पुलिस ने जप्त कर लिया। अचानक पंचकोट राजवंश के प्रकृतिश्वर सिंह देव ने अपनी नई गाड़ी इन्हें भ्रमण के लिए प्रदान किया। नेताजी ने बुखार की हालत में दिन भर लगभग तीस स्थानों का भ्रमण किया एवं वहां भाषण दिया। पुरूलिया शहर में उनका अन्तिम कार्यकम था। उनका भाषण सुनने के लिए इतना अधिक जन समागम हुआ कि विशाल मैदान पूरा भर गया। यहाँ का कार्यकम समाप्त कर वे आद्रा रेलवे स्टेशन में जब ट्रेन पकड़ने पहुँचे तब उन्हें १०४ डिग्री बुखार था। **अपने सहयोगी कर्मियों के निकट दिये हुए वचन को पूर्ण करने में तथा एक साधारण कर्मी के प्रति वे कितने सहानुभूतिशील व तत्पर थे, उपरोक्त घटना इसका प्रमाण है। नेताजी की उस तरह की आन्तरिकता एवं सहृदयता के कारण उनके अनुगामी उनके निर्देश पर अपनी जान देने को तैयार रहते थे।**

सन् १९४० ई. मे रामगढ में 'समझौता' के विरोध मे सम्मेलन का आयोजन किया गया। पहले रामगढ़ मे कांग्रेस अधिवेशन के समय भी, अंग्रेजो के साथ किसी प्रकार के समझौते के विरोध में नेताजी ने सम्मेलन किया था। नेताजी के प्रस्ताव का जन-समुदाय ने अभूतपूर्व समर्थन किया।

पुरूलिया वापस आने के पश्चात् अन्नदा कुमार एक दूसरे संग्राम में लिप्त हो गये। पुरूलिया चौकबाजार में प्रतिवर्ष नवरात्रि के समय नौ दिन अखण्ड नाम-संकीर्तन एवं दसवें दिन नगर-संकीर्तन का जो आयोजन होता था, उसे सौ वर्ष से भी अधिक हो गया था। इस वर्ष नगर-संकीर्तन के लिए पहले से प्रशासन की अनुमति लेने के बाद भी मुसलमान डिप्टी कमिश्नर के सहयोग से कुछ गुण्डे प्रवृत्ति के मुसलमानों द्वारा, मस्जिद के सामने से संकीर्तन की विशाल शोभायात्रा के निकलने पर बाधा उत्पन्न किया गया। डिप्टी कमिश्नर अमीन अहमद की उपस्थिति मे पुलिस वाहिनी निष्क्रिय दर्शक बन गयी। उन गुण्डों ने महिलाओं से छेड़छाड़ करने की चेष्टा भी की। इस घटना से सभी उत्तेजित हो उठे। अन्नदा कुमार ने मस्जिद के भीतर जाकर, अमीन अहमद को धमकाते हुए तीव्र स्वर में इस घटना का प्रतिवाद करते हुए कहा—"हम पाँच मिनट का समय आपको दे रहे हैं! यदि समस्या का समाधान नहीं हुआ तो हम आवश्यक कार्यवाही अभी शुरू करेंगे!!" अन्नदा कुमार की बातों को सुनकर एवं उत्तेजित जनता के सम्मुख अमीन अहमद को झुकना पड़ा । शोभायात्रा अपने निर्दिष्ट पथ से गुजरी। इस घटना को देखते हुए प्रशासन की तरफ से शहर में कर्फ्यू लगा दिया गया। इसका प्रतिवाद करते हुए अन्नदा कुमार ने प्रशासन को सूचित किया कि 'इस तरह अन्यायपूर्ण कर्फ्यू को हम नहीं मानेंगे। अभी शोभायात्रा का दर्शन करने के लिये बाहर से असंख्य लोग शहर में आये हैं, जब तक वे शान्तिपूर्वक अपने घर वापस नहीं चले जाते तब तक प्रशासन का आदेश हम नहीं मानेंगे।'

दूसरे दिन 'संगठन' पत्रिका के दैनिक बुलेटिन में इस घटना का पूरा विवरण देकर सर्वत्र प्रचार किया गया। लगातार सात दिन 'संगठन' में प्रचारित विशेष बुलेटिन से, बिहार सरकार की उपदेष्टा मंडली एवं छोटा नागपुर के कमिश्नर, सर्किट हाऊस में विचार करने आये। वहाँ अमीन अहमद के काले कारनामों को प्रमाणित किया गया। परिणाम स्वरूप उत्तेजित जनता से बचने के लिए डिप्टी कमिश्नर अमीन अहमद को सर्किट हाऊस के पीछे के दरवाजे से भागना पड़ा। सरकार द्वारा उन्हें स्थानान्तरण का आदेश दिया गया एवं एस. डी. ओ. के पद में अपसारित किया गया। इस घटना के बारह वर्ष पश्चात् संन्यास लिए हुए अन्नदा कुमार (स्वामी असीमानन्द सरस्वती) कहीं जा रहे थे तब अचानक अमीन अहमद से उनकी भेंट हो गई। स्वामी असीमानन्द जी ने उनको आलिंगन बद्ध किया। अमीन अहमद ने अन्नदा कुमार को संन्यासी के रूप में देख कर कहा—"आप भी बदल गये, मैं भी बदल गया हूँ।"

इस तरह अरांख्य अन्याय कार्यों का प्रतिवाद अन्नदा कुमार ने अपने जीवन में किया। ऋषि निवारणचन्द्र के देहांत के पश्चात् नेताजी सुभाषचन्द्र ने एक मुलाकात के समय अन्नदा कुमार से कहा था–''**सर्वदा याद रखना, सत्य से कभी भी विच्युत मत होना। अन्याय का समर्थन कभी मत करना। जो अन्याय करता है, चाहे वह कोई भी हो, उसके विरूद्ध संग्राम करने में कभी आगा-पीछा मत करना।''** अन्नदा कुमार ने सर्वदा इस आदर्श को सामने रखकर अपनी कार्य प्रणाली को संचालित किया।

नेताजी सुभाषचन्द्र के सम्बन्ध में एक छोटी सी घटना से मालूम पड़ता है कि 'सत्य' का अनुसरण करने वालों के साहस को देखकर वे किस प्रकार आनन्दित होते थे– रामगढ़ के सम्मेलन में उपस्थित लोगों के भोजन की व्यवस्था एक भोजनालय मे की गई थी। नेताजी के लिए भोजन की जब विशेष व्यवस्था की जा रही थी तब नेताजी ने कहा–''सभी लोगो के लिए जिस भोजनालय में व्यवस्था की गयी है मेरा भोजन भी वहीं से आएगा। मेरे लिए पृथक व्यवस्था मत करना।'' भोजनालय से ८-१० वर्ष का एक ब्राह्मण बालक नेताजी के लिए चाय लेकर आया। चाय पीने के पश्चात् नेताजी ने जब बालक को कप वापस दिया तो उसने कहा–'मैं ब्राह्मण हूँ–तुम झूठा कप पहले धोकर लाओ फिर मुझे दो।' नेताजी ने स्वयं कप धोकर बालक को दे दिया। जब अन्नदा कुमार वहां आये तो नेताजी ने उन्हें हँसते हुए इस घटना का विवरण बतलाया। अन्नदा कुमार ने भोजनालय के मालिक को जब इस घटना के बारे मे बतलाया तो वह नेताजी के चरणों मे गिरकर मॉफी मांगने लगा। तब नेताजी ने उससे कहा–''**उस बालक को दस रूपये पुरस्कार दे दो। उसके स्पष्ट कथन एवं तेजस्विता देखकर मैं मुग्ध हो गया हूँ। इसे ठीक से ट्रेनिंग देने पर यह एक अच्छा नागरिक बन सकता है।''**

'फारवर्ड ब्लाक' के गठन से कांग्रेस के साथ जो मतभेद उत्पन्न हुआ उससे नेताजी ने अनुभव किया कि इस तरह आपसी मतभेद से देश और अधिक कमजोर हो जाएगा। उन्होंने विदेश जाकर अंग्रेजों के विरूद्ध संग्राम करने की योजना बनायी। कोलकाता के डलहौजी स्क्वायर में ब्लेकहोल नामक एक स्मारक था। अंग्रेजों का कहना था कि १८५६ ई. में सिपाही विद्रोह के समय, भारतीयों ने बहुत से अंग्रेज पुरूष, स्त्री और बच्चों को उस अन्धकूप में ठुंसकर उसमें आग लगा कर हत्या की थी। परन्तु यह भारतीयों पर झूठा कलंक था।

नेताजी के नेतृत्व में इसे हटाने के लिए तीव्र आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। इसके कारण २ जुलाई, १९४० ई. को उन्हें गिरफ्तार किया गया। २९ दिसम्बर को जेल से बाहर आने पर उन्हें अपने ही घर पर नजरबन्द रखा गया। नेताजी ने देश की परिस्थिति एवं फैली हुई अशांति के लिए, बड़े लाट साहब को एक विस्तृत पत्र दिया

एवं एकान्त वास शुरू किया। उस समय वे अपनी भावी योजनाओं के लिए आवश्यक कार्य गुप्त रूप से करने लगे। १६ जनवरी, १९४१ ई. को नेताजी ने कुछ विशेष लोगों से मुलाकात की एवं १७ जनवरी को अंग्रेजों की चंगुल से छुटकर, वे विदेश चले गये।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जब विदेशियों की मदद से भारत विजय के लिए सशस्त्र संग्राम हेतु बर्मा (म्यान्मार) की ओर अग्रसर हुए तब अनेक नेताओं ने उनकी कटु आलोचना की।

१५ अगस्त, सन् १९४५ ई. को जापान की पराजय होने के पश्चात् २३ अगस्त को समाचार मिला कि विमान दुर्घटना में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु हो गई। इस समाचार से सारा भारत 'जयहिन्द' एवं 'नेताजी जिन्दाबाद' की ध्वनि से गूंज उठा। लोगों ने नेताजी के कार्यों पर एक नये दृष्टिकोण से विचार करना प्रारम्भ किया। नेताजी के क्षत्रिय तेज एवं वीरता से कायर लोगों के हृदय में भी शक्ति संचारित हुई। उनके I. N. A. के योद्धाओं के प्रति जन-साधारण की अद्‌भूत श्रद्धा देखकर कांग्रेस नेताओं को अपने विचार में परिवर्तन करना पड़ा। गांधी जी ने कहा–"The hypnotism of the I.N.A. has cast spell on us. Netaji's name is one of to conjure with (I use the present tense intentionally). His bravery shines through all his action."

बल्लभ भाई पटेल ने कहा– "Oh God ! Give back our Netaji."

१९३९ ई. त्रिपुरी कांग्रेस के नेताजी विरोधी 'पन्थ प्रस्ताव' के नायक, गोविन्द बल्लभ पंथ ने कहा– "Subhas babu was one of the greatest patriots and revolutionary leaders ever born. His memory will never fade and his name will remain enshrined in letters of gold in the history of Indian Freedom."

साधु टी. एल. भास्वानी ने नेताजी के कार्यों की प्रशंसा करते हुये कहा–"He (Netaji) realised that the immortal destiny of India was rooted in her part. Subhas's militant nationalism was inspired by an idealism which was filled with love of India's Rishis and Indian Ideals."

"I believe he will be greated by millions of men and women as indeed a patriot and a prophet of Resistance and Revolution!"

[Ref. from : 'द्रष्टव्य : नेताजी स्वप्न और साधना' (Page 6-7) (बंगला भाषा)–प्रो. समर गुह]

आज महात्मा गांधी जी के जीवन एवं जीवन-दर्शन के सम्बन्ध में सरकारी और गैरसरकारी प्रयास से अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं एवं अनेक प्रतिष्ठान बन गये हैं। परन्तु नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के जीवन और जीवन-दर्शन पर आज तक विशेष कुछ भी न प्रकाशित हुआ है न कोई बड़ा प्रतिष्ठान बना है।

अध्याय १३ : अन्नदा कुमार का आकस्मिक रूप से दरवेश जी का दर्शन पाना एवं दीक्षा प्राप्ति

अन्नदा कुमार ने 'भारती प्रेस', पुरूलिया मे रहते हुए मानभूम छात्र समिति, मानभूम जिला प्राथमिक शिक्षक संघ, निखिल भारत बंगाली भाषा एवं साहित्य प्रसार समिति तथा फारवर्ड ब्लाक के संगठन कार्य को यथा शक्ति चालू रखा। इस समय विभिन्न ग्रामों में आपसी कलह को सुलझाने के लिए उन्हें प्रायः वहाँ जाना पड़ता था। अतः दैनन्दिन कार्यों में वे इतना अधिक व्यस्त हो गये कि दिन व रात में उन्हें दो-तीन घंटा भी पूरा विश्राम नहीं मिल पाता था। इस समय अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में रहकर संघर्ष करते हुए उन्हें अग्रसर होना पड़ा। कांग्रेस के पुराने लोग अन्नदा कुमार के कार्यों का विरोध करते थे। अंग्रेज सरकार उनके प्रत्येक कार्यों पर तीव्र अनुसंधानिक दृष्टि रखती थी। अन्नदा कुमार ने इस समय की घटनाओं का विश्लेषण करते हुए 'आमार जीवन' ग्रन्थ में लिखा है–

'आज विचार करना आवश्यक है कि सत्य और अहिंसा के नाम पर हम लोगों ने इस आदर्श की कितनी पूजा की है और कर रहे हैं! आज प्रायश्चित करने का समय आ गया है अपने कृत अपराध का!! हमने अपने दुर्विनीत, अंहकार, स्वार्थपरता तथा शक्ति लोलुपता की आड़ में अमृत की जगह विष का वितरण, निरक्षर एवं निर्वोध लोगों में किया है !!!

प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण अपने उद्देश्य को पूर्ण करने में जब उन्हें सफलता नहीं मिलती तब उनका आत्म-विचार प्रबल हो उठता था। कभी-कभी अवसाद या क्लांति आने पर अन्तरात्मा से आवाज आती कि अभी देश स्वाधीन नही हआ है–विश्राम का अवसर नहीं है। वे फिर से अपने निर्दिष्ट कर्मो मे लग जाते थे। सद्गुरू कब मिलेंगे–यह चिन्ता कभी-कभी उन्हे व्याकुल कर देती थी। फिर विभिन्न महात्माओं की वाणी का स्मरण कर वे आश्वस्त होते थे। जिन्होंने कहा था–**''तुम्हारे गुरू निर्दिष्ट ह, समय होने पर तुम्हें अवश्य सद्गुरू की प्राप्ति होगी।''**

नेताजी के चले जाने के पश्चात् उनके शताधिक पत्रों की अन्नदा कुमार के पास जो फाइल थी, वह अन्नदा कुमार के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण थी। एक दिन अचानक वह फाइल गुम हो गयी जिससे अन्नदा कुमार को बहुत मानसिक कष्ट हुआ। उस रात स्वप्न में एक महात्मा जी (जो प्रायः अन्नदा कुमार को स्वप्न में दिखा करते थे) ने कहा–''सामने बहुत कष्ट है। दीर्घकाल अनिर्दिष्ट स्थान में कैद रहकर क्या फायदा होगा? इन सबकी माया छोड़नी होगी।'' अन्नदा कुमार ने उनसे पूछा–''पत्रों

की फाइल कहां है?'' महात्मा जी ने कहा–''उसे तुम्हारे एक निकटतम् मित्र ने पुलिस के हाथों में दे दिया है, परन्तु चिन्ता की कोई बात नही है। तुम्हें अभी बाहर ही रहना है।'' इस अमूल्य धन को खोकर विषादग्रस्त अन्नदा कुमार सुबह सोचने लगे कि पुलिस की हिफाजत से किस प्रकार फाइल का उद्धार किया जावे।

सन् १९४१ ई. में १२ फरवरी से १० मार्च तक पुलिस बार-बार 'भारती प्रेस' में आकर अन्नदा कुमार को तंग करने लगी। अमीन अहमद के बाद डी. पी. शर्मा नये डिप्टी कमिश्नर आये थे। उन्होने अचानक एक दिन अन्नदा कुमार को ऑफीस में बुलवाकर श्रद्धापूर्वक अपने कमरे में ले जाकर कहा–'नेताजी के पत्रों की यह फाइल आपके एक मित्र ने पुलिस को दे दिया था। इसे देखकर आप पर मुकदमा चलाने का प्रयास किया जा रहा है। इससे बचने का एकमात्र उपाय है–इन पत्रो को जलाकर नष्ट .कर देना। इसे नष्ट न करने पर भी यह फाइल आपको मिलेगी नहीं बल्कि दीर्घकाल के लिए सजा मिल सकती है।' ऐसा कहकर उन्होंने अन्नदा कुमार की अनुमति लिए बिना पत्रों की फाईल को जला कर नष्ट कर दिया और एक रिपोर्ट तैयार किया–''**अन्नदा कुमार चकवर्ती एक समय तीव्र आतंकी कान्तिकारी थे, परन्तु अब वे एक अहिंसावादी एवं धर्म साधना-लिप्त एक महान् व्यक्ति हैं। उनके विरूद्ध किसी प्रकार का मुकदमा चलाने की आवश्यकता नही है–ऐसा मेरा विचार है। मेरे अपने दायित्व पर उन्हें सभी प्रकार के अभियोग से मुक्त करने के लिए मैं सिफारिश करता हूँ।''**

फाइल के नष्ट होने पर अन्नदा कुमार के ह्दय में बड़ा धक्का लगा, परन्तु दूसरा कुछ उपाय भी नही था। नेताजी के इन पत्रो में अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र संग्राम करने की रूपरेखा थी। डिप्टी कमिश्नर डी. पी. शर्मा के इस तरह के प्रयास से अन्नदा कुमार कड़ी सजा से बच गये। वे अन्नदा कुमार के निःस्वार्थ कार्य से बहुत प्रभावित थे एवं व्यक्तिगत रूप से उनकी श्रद्धा करते थे। उन्होंने अन्नदा कुमार को जाते समय प्रंणाम करते हुए प्रार्थना किया जिससे धर्म-मय जीवन हो सके। इस घटना के छः महिने बाद उन्होंने अवकाश ले लिया।

सद्‌गुरू की दीक्षा के लिए व्याकुल अन्नदा कुमार ने एक दिन अद्‌भूत स्वप्न देखा। स्त्री शैलबाला देवी को पत्र द्वारा स्वप्न का विवरण दिया, जिसे 'असीमानन्देर पत्र' नामक बंगला ग्रन्थ से यहाँ दिया जा रहा है–

''गोसांइ जी (श्री विजयकृष्ण गोस्वामी) के साथ उस महात्मा को फिर से देखा। वे मेरे सिराहने (पास) आकर बैठ गए। कई वर्ष पूर्व देवघर से वापस आते समय आसनसोल स्टेशन में मैंने उस महापुरूष का दर्शन पाया था। तुमने और मैंने विवाह के पूर्व एवं वाद में उस महात्मा को अनेक बार स्वप्न में देखा है। गोसांई जी थोड़ी देर पश्चात् अदृश्य हो गये। उस महात्मा ने मुझसे कहा कि फाल्गुन पूर्णिमा

(सन् १९४१ ई., बंगला सन् १३४७) के दिन तुम्हारी प्रार्थना पूर्ण होगी। तुम जानती हो कि सद्‌गुरू पाने के लिए कितनी व्याकुलता से मैं दिन व्यतीत कर रहा हूँ। ऐसा लगता है कि इसी महात्मा से मैं अपनी प्रार्थित दीक्षा पाऊँगा । ये महात्मा सम्भवतः काशी में रहते हैं। कई बार मेरी इच्छा होती है कि काशी जा कर उनकी खोज करूँ, परन्तु काशी में उन्हें कहाँ देखूँगा? ऐसा लगता है महात्मा जी की कृपा प्राप्त करने के लिए जब मैं योग्य हो जाऊँगा तब वे मुझे अवश्य दीक्षा देंगे। शायद अभी मेरा दीक्षा पाने का समय नही हुआ है।''

सद्‌गुरू विजयकृष्ण गोस्वामी जी के जन्मशतवार्षिकी महोत्सव उस समय विभिन्न स्थानों में चल रहा था । धानबाद में शतवार्षिकी महोत्सव में योगदान के लिए आमंत्रण पाकर अन्नदा कुमार अपने दो मित्रो के साथ वहाँ गये। उन्हें मालूम पड़ा कि दरवेश जी महाराज इस महोत्सव में आएंगे। कुछ पाने की तीव्र आकांक्षा से जिन्होंने अपना समय व्यतीत किया है उन्हें ही मालूम है कि पाने के पूर्व तक, न पाने का दुःख कितना अधिक होता है। अन्नदा कुमार दीक्षा के लिए व्याकल तो थे परन्तु उसे व्यक्त नही किया। कई मित्रों ने उन्हे दीक्षा लेने का सुझाव दिया, किसी ने पहले से पत्र लिखकर अनुमति लेने को कहा, तब उनके अन्तःकरण में आवाज उठी कि 'जो तुम्हारे गुरू होंगे वे तुम्हें अवश्य पहचान लेंगे।'

११ मार्च, १९४१ ई. को अन्नदा कुमार संध्या के समय धानबाद में क्षितिज चन्द्र बाबू के घर पहुँचे। वहाँ कीर्तन चल रहा था। कीर्तन में दूर से उन्होंने एक वृद्ध महात्मा जी को बैठे देखा, उनका चेहरा स्पष्ट दिखलाई नही पडा। दीवाल पर लगा एक चित्र को देखकर अन्नदा कुमार चौंक उठे। यह उन्हें स्वप्न में दिखलाई पड़ने वाले महात्मा जी का ही चित्र है। उस दिन वृद्ध महात्मा से भेंट न हो सकी। दूसरे दिन सुबह जब महात्मा जी का दर्शन किया तब वे आश्चार्यचकित हो उठे। दीवाल पर इन्ही का चित्र लगा था, स्वप्न में इन्हीं का दर्शन मिलता था। महात्मा दरवेश जी महाराज को प्रणाम करने के बाद, वहाँ बैठकर उन्हें वे अपलक दृष्टि से देखने लगे। किसी ने कहा कि अन्नदा बाबू भी दीक्षा लेंगे। तब दरवेश जी ने हँसकर कहा–''अन्नदा बाबू, क्या आप दीक्षा लेंगे? आपके सम्बन्ध में बहुत सुना है, अखबार में भी देखा है। आपके आने से मुझे खुशी हुई है। शतवार्षिकी उत्सव में गोसाँईजी के सम्बन्ध में हम आपके विचार सुनेगे।''

दरवेश जी ने पुरूलिया के शतवार्षिकी महोत्राव के सम्बन्ध में पूछा तो अन्नदा कुमार ने कहा–''पुरूलिया में योगेश ब्रह्मचारी जी आये थे। उन्होंने शहर के कुछ प्रसिद्ध धनी लोगों को लेकर कमेटी बनाया। जब मैं उन लोगों के पास पहुँचा तब उन्होंने कहा कि हमारे पास समय कहाँ है? हमारा नाम आप लोग चाहें तो दे सकते हो। इस तरह धनी व्यक्तियों को लेकर तुम लोग कैसे गोसाँई जी का उत्सव करते

हो, मुझे समझ मे नहीं आता। इसकी अपेक्षा रामचन्द्रपुर में उत्सव करो–हजारों लोग आएँगे और भक्तिभाव से गोसाँई जी के सम्बन्ध में सुनेंगे। धनी एवं प्रसिद्ध लोगों की चाटुकारी कर उस हाथों से मैं गोसाँई जी की पूजा नहीं करना चाहता।" अन्नदा कुमार की स्पष्ट बातें सुनकर दरवेश जी ने कहा–"तुमने ठीक कहा है बेटा ! तुमने जैसा कहा है, उसी तरह रामचन्द्रपुर में शतवार्षिकी महोत्सव होगा ।"

अन्नदा कुमार ने शुरू से दरवेश जी को 'तुम' कह कर सम्बोधन किया और दरवेश जी उन्हें शुरू में 'आप' कहकर, बाद में 'तुम' कहकर सम्बोधन किया। रामचन्द्रपुर आश्रम में एक मई को महोत्सव का दिन तय हुआ। सभी दरवेश जी को प्रणाम कर, कमरे से बाहर निकल रहे थे। अन्नदा कुमार ने जब उनके चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया तब एक तीव्र शक्ति का उन्होंने अनुभव किया एवं दरवेश जी के सौम्य सुन्दर रूप देखकर वे मुग्ध हो गये। वहाँ से बाहर आने के बाद उनका मन दरवेश जी के ध्यान में तन्मय हो गया एवं विचारों की तरंगें आने लगी कि–मैं क्या कर रहा हूँ? कहाँ जा रहा हूँ? उनका तार्किक मन महात्मा जी के चरण स्पर्श से शान्त हो गया।

शाम के समय अन्नदा कुमार पुनः वहाँ गये और एक कमरे में जाकर बैठ गये। उन्हें चाय लाकर दी गयी, वे चाय पीने लगे। तभी अचानक दरवेश जी कमरे में आये और दरवाजा बन्द करके खाट पर बैठकर धूम्रपान करने लगे। उसके बाद हाथ धोकर बैठ गये। इस समय की घटना का वर्णन, अन्नदा कुमार ने 'आमार जीवन' ग्रन्थ में इस प्रकार दिया है–

"उस निर्जन बन्द कमरे में मानो सहस्त्र प्रदीप अचानक जल उठे। उनकी मूर्ति ज्योतिर्मय हो उठी। लम्बे समय के बाद दूर से आये अपने पुत्र को देखकर माता-पिता अपने अंक में जिस प्रकार भर लेते हैं, उसी तरह मेरे पिता ने मुझे अपने दोनों बाहु से आलिंगनबद्ध किया एवं कहा–"और कितने दिन तक मुझे छोड़कर रहोगे?" मेरी आँखों से लगातार अश्रु गिरने लगा । पिता का वक्षस्थल मेरे अश्रु से भीग गया। उनकी आँखों से निकली अश्रुधारा आशीर्वाद के रूप में मेरे सिर पर गिरने लगी । मैंने रोते हुए पूछा–"इतने दिनों तक मुझे क्यों दर्शन नहीं दिये?" पिता ने कहा–"बाल्यकाल में जब तुम अकेले भ्रमण किया करते थे, जब सात वर्ष की उम्र में पहाड़ से गिरे थे, पुलिस के चाबुक से प्रहार के समय, बन्दुक की नोंक (संगीन) एवं बूट (जूते) के आघात से तुम्हें जर्जरित किया जा रहा था, घोड़े पर बांधकर घसीटते हुए तुम्हें तालाब में फेंका गया था, मोटरगाड़ी की दुर्घटना में जब तुम आहत हुए थे–उस समय मैंने तुम्हारे भीतर रहकर सभी कष्टों को सहन किया था। पुलिस ने जब तुम्हारा सब कुछ ले लिया था और तुम वृक्ष के नीचे कुटिया में पड़े थे–तब क्या मैंने तुम्हारी रक्षा नहीं की?"

इन सब घटनाओं के समय मैं प्राय: एक अस्पष्ट मूर्ति की छाया देखा करता था, उसके सम्बन्ध में पूछा–'वह मूर्ति क्या तुम्हारी थी?' पिता ने कहा–''हाँ, तुम्हारा तार्किक मन इतने दिनों तक तुम्हें मेरे निकट आने नहीं दिया था। आज वह मर गया है। आज से तुम परिपूर्ण रूप से मेरे हो! जिस तरह पिछले साढ़े चार सौ वर्षों से तुम मुझे पाते रहे हो–उसी तरह फिर से पाओगे।''

मैंने पूछा–''साढ़े चार सौ वर्ष?''

पिता ने कहा–''हाँ। साढ़े चार सौ वर्ष!'' ऐसा कहकर उन्होंने अपने दाहिने चरण से मेरे सिर को स्पर्श किया। इस पदस्पर्श से मैं इस जगत को भूल गया। मेरे सामने चलचित्र की तरह एक के बाद एक चित्र प्रकट होते गये। इस तरह पिछले जन्मों के दृश्य दिखलाई पड़ने लगे। कितना समय बीत गया कुछ मालूम न चला। जब होश आया तब पिताजी ने कहा–''कल सुबह स्नान करके मेरे पास आना, तुम्हारी दीक्षा होगी। ऐसा कहकर वे कमरे से बाहर निकल गये। मैं मंत्र मुग्ध होकर बैठा था, अचानक एक व्यक्ति ने चाय देते हुए कहा कि गुरू जी ने तुम्हें चाय देने को कहा है। उसके स्पर्श से मैं सचेत हुआ। उस दिन वहाँ सारे दिन एवं रात अखण्ड नाम-संकीर्तन चल रहा था। लेकिन मेरा मन एक अन्य जगत् की चिन्ता में मग्न था। एक मित्र मुझे भोजन कराने ले गया। किसी तरह भोजन सम्पन्न कर अपनी शय्या पर सो गया। अचानक किसी के स्पर्श से मैं चमक उठा, मैं जागृत था या निद्रित कह नही सकता। कोई मेरे कान में मंत्र उच्चारित कर रहा था, फिर मंत्र का श्वास-प्रश्वास में जप होने लगा। मेरे शरीर में कम्पन्न शुरू हो गया एवं पसीना आने लगा। जब चेतना लौटी तब रात्रि में तीन बज चुका था। किसी ने बत्ती जला दिया। मैं विभिन्न प्रकार की चिन्ता की तरंगों के मध्य कुछ कविताएं लिखता गया एवं लिखते-लिखते सो गया।

प्रातःकाल तैयार होकर दरवेश जी महाराज के पास पहुँचा। यथा समय दीक्षा हो गयी। पिछली रात जो मन्त्र कान में उच्चारित हुआ था–उसी मन्त्र से यहाँ दीक्षा हुई और यही मन्त्र बचपन में अपनी माँ से सुना था। अनुष्ठानिक रूप से दीक्षा के विधि-निषेध गुरूदेव ने बतलाया। मुझे ऐसा लगा जैसे यह साधना पद्धति मुझे मालूम थी। ३७ वर्ष के सभी संस्कार चूर्ण हो गये। दीर्घकाल के पूर्व अभ्यास, जिन्हें बहुत प्रयास करके भी दूर न कर सका था वह सब अपने-आप नष्ट होने लगे। दीक्षा के पश्चात् मैंने गुरूदेव से कहा–''**इतने दिनों तक अपने लिए कितनी चिन्ता करता था–आज से अपनी चिन्ता नही करूँगा। भला-बुरा मैं कुछ नहीं समझता–मैं तुम्हारे चरणों में आत्मसमर्पण कर निश्चिन्त हुआ। आज से सभी चिन्ताएं तुम्हारी रहेंगी।''**

गुरूदेव ने हँसते हुए, आशीर्वाद देकर कहा–''**ऐसा ही होगा।''**

इस तरह सद्गुरु के निकट दीक्षा प्राप्त कर अन्नदा कुमार धन्य हुए। वे धानबाद

से बस द्वारा पुरूलिया आ गये। बस में सर्वदा इष्ट मन्त्र की ध्वनि सुनते रहे। घर पहुँचकर उन्होंने ठण्डे पानी से स्नान किया। मोटरगाड़ी की दुर्घटना के बाद से वे हमेशा गरम पानी से स्नान करते थे एवं सर्वदा गरम कपडे पहनते थे। घर के तीसरे मंजिल में पूजा कमरे में कम्बल का आसन बिछाकर वे बैठ गये। आसन में बैठने के साथ ही ध्यान मग्न होकर उन्होंने देखा कि उन्हें अज्ञात स्थान में ले जाया गया है। वहाँ गोसाँई जी, कुलदानन्द ब्रह्मचारी जी (गोसाँई जी के शिष्य) दरवेश जी, परमहंस जी (गोसाँई जी के गुरू) आदि अनेक महात्मा एक स्थान पर बैठे हैं । उन्हें देखकर अन्नदा कुमार ने प्रणाम किया तब गुरूदेव ने कहा–'देखो तुम्हें महात्मा लोग आशीर्वाद दे रहे हैं !'' वहाँ से गुरूदेव के निर्देशानुसार वापस अपने पूजा कमरे में आने के बाद जब चेतना लौटी तब रात्रि में एक बज गया था। पूजा कमरे से उन्होंने नीचे आकर देखा कि सभी उनका इन्तजार करते हुए बैठे हैं। किसी ने भोजन भी नहीं किया। अन्नदा कुमार के आज के आचरण से सभी चिन्तित थे। स्त्री शैलबाला देवी के पूछने पर उन्होंने दीक्षा की सारी बातें कही।

यहाँ आने के पश्चात् अन्नदा कुमार 'नाम-जप' में मग्न होने की चेष्टा करते थे, परन्तु राजनैतिक एवं सामाजिक सेवाकार्य में उन्हे सुबह से रात तक व्यस्त रहना पड़ता था। राजनैतिक जीवन के साथ धर्म-जीवन को मिलाने की चेष्टा करने पर हर समय संघर्ष हुआ। अतः कार्य करते हुए उन्होंने 'नाम-जप' का अभ्यास शुरू किया। उन्होंने सोचा कि कर्म न करने से कर्म समाप्त नहीं होगा। सभी कर्म जब समाप्त होंगे तब कर्मजयी होकर चित्त, 'नाम' (इष्ट मंत्र) की कृपा प्राप्त करेगा। अतःवे लिखते समय, बातचीत करते हुए सर्वदा 'नाम' की ओर मन रखने की चेष्टा करते थे। गुरूदेव की दिव्य मूर्ति आँखों के सामने सदा लगी रहती थी–ऐसा अनुभव होता था कि गुरूदेव सर्वदा साथ में हैं।

एक दिन सन्ध्या के समय अपने कार्यालय में वे 'नाम-जप' करते हुए ध्यान मग्न हो गये तब देखा कि माता व पिता सामने खडे हैं और कह रहे हैं कि 'इतने दिनों तक हमने तुम्हारी देख-रेख की है, अब तुमने असली रक्षाकर्त्ता 'गुरूदेव' को प्राप्त किया है। हम आशीर्वाद देते हैं–परमब्रह्म गुरूदेव तुम्हारे प्रति सर्वदा प्रसन्न रहें।' सहसा अन्नदा कुमार ने गुरूदेव को भी वहां उपस्थित देखा। माता-पिता ने गुरूदेव के चरणों में अन्नदा कुमार को समर्पित करते हुए कहा–'पूर्व जन्म में इसे पुत्र के रूप में पाने के लिए आपके निकट हम लोगों ने प्रार्थना की थी, अब इसका भार आप लिजिए।' गुरूदेव ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा–'तुम लोग धन्य हो! मैं आशीर्वाद देता हूँ–महान् उच्चलोक को तुम प्राप्त करो एवं पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाओ।' माता-पिता का शरीर ज्योतिर्मय हो गया तथा वे चले गये। अब गुरूदेव ने अन्नदा कुमार से कहा–'तीन दिन का व्रत लेकर तुम निर्जन में साधना करो।' गुरूदेव अदृश्य हो गये। इस प्रकार से प्रत्यक्ष दर्शन व निर्देश पाकर अन्नदा कुमार चकित हो गये।

अन्नदा कुमार के मन में विभिन्न प्रकार के विचार आने लगे। यह कौन सी शक्ति है जो चार सौ मील दूर काशी से, इच्छा मात्र से यहाँ आ सकती है? साढ़े चार सौ वर्ष पुरानी घटनाओं का प्रदर्शन इस शक्ति ने कैसे किया? मनुष्य के भीतर इस शक्ति का विकास क्या हो सकता है? गुरू क्या मनुष्य है? मनुष्य क्या गुरू हो सकता है? जड़ जगत की कामना-वासना रहते हुए क्या कोई इस प्रकार की दिव्य शक्तियों का अधिकारी हो सकता है? उसी समय अन्नदा कुमार के नेत्रों के सामने गुरूदेव दरवेश जी का ज्योतिर्मय रूप प्रकट हुआ। उनके शरीर की दिव्य ज्योति गोस्वामी जी के शरीर में विलीन हो गयी। गोस्वामी जी का शरीर चैतन्य महाप्रभु के शरीर में विलीन हो गया। फिर उन्होंने चैतन्य महाप्रभु की जगह श्रीकृष्ण की मोहक मूर्ति का दर्शन पाया। इसके पश्चात् सब अदृश्य हो गये।

अन्नदा कुमार के मन क संशय नष्ट हो गये। ग्रन्थों में पढ़ा था–''गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु गुरूर्दैवै महेश्वर:'' इस श्लोक के अन्तर्निहित अर्थ उनके हृदय में प्रकट हुए एवं संशया की निवृत्ति हो गयी।

गुरू के निर्देशानुसार उन्होंने तीन दिन का व्रत आरम्भ किया एवं 'पातंजल योग दर्शन' ग्रन्थ को इस समय पढ़ा। व्रत समाप्त होने के साथ-साथ दरवेश जी का पत्र आया। उन्होंने लिखा–''कर्म, ज्ञान, योग परिपूर्णता की ओर ले जाने में तीनों समान हैं। मनुष्य की प्रकृति एवं प्रवृत्ति के अनुसार जिस पथ से भी चला जावे–तीनों एक ही स्थान पर पहुँचा देंगे। परन्तु इन तीनों पथों की प्राण शक्ति है–भक्ति एवं अनुराग। भक्तिभाव न रहने से ज्ञान पथ में चलने पर आत्मज्ञानी न होकर कोरा पण्डित बनोगे। भक्तिभाव न रहने पर योग-साधना द्वारा भगवान के साथ योग न होकर, शरीर का कसरत या हठयोग हो जावेगा। श्वास-प्रश्वास में शक्तिपूर्ण 'नाम' का अभ्यास होने पर देखोगे कर्म करने से दृढ़ एवं बलवान बन जाओगे। जो संकल्प करोगे वह सिद्ध (पूर्ण) होगा।

पत्र पढ़ने के बाद अचानक एक साधु उनके पास आए और उपदेश देते हुए कहा–''बेटा! तुम निर्जन स्थान में बैठकर योग-साधना करने के लिए नहीं आये हो। तुम्हारे सामने अनेक कर्म हैं–तुमने सद्‌गुरू प्राप्त किया है–कर्म करते रहो। 'गुरू मन्त्र जप (नाम-जप)' के साथ कर्म एवं कर्म के साथ 'नाम-जप' करने से तुम्हें सभी प्राप्त होंगे। योग अपने आप हो जायेगा।'

गुरूदेव का पत्र एवं साधु का आयाचित उपदेश प्राप्त कर अन्नदा कुमार के मन में विचार आया कि 'गुरूदेव तुम तो मेरे साथ हो–मेरे संघर्षमय जीवन-पथ की अग्रगति में बाधाएं क्या रह सकती है। मुझे नियन्त्रित करने वाले तुम्हीं हो।'

तीन दिन एकान्त में बीत गये। इस व्रत के कुछ दिन पश्चात् जब वे अपने कार्यालय में बैठकर कोई ग्रन्थ पढ़ रहे थे तब अचानक दो ज्योतिर्मय मूर्तियों ने उन्हें

पूजा के कमरे में चलने के लिए आह्वान किया। मूर्तियो का अनुसरण करते हुए वे पूजा के कमरे में पहुँचे और कपड़े बदलकर अपने आसन में बैठकर 'नाम-जप' करने लगे। दोनों मूर्तियां अदृश्य हो गयी। उस समय उनके आँखों के सामने एक दृश्य प्रकट हुआ–रामचन्द्रपुर आश्रम के पीपल वृक्ष के नीचे गुरूदेव के पास वे बैठे हुए हैं। इस तरह २१ दिन व्यतीत हो गया हैं। चारों ओर संकीर्तन चल रहा है। यज्ञ की दिव्य सुगंध से वातावरण मन को मोहित कर रहा है। हजारों की संख्या में नर-नारायण भोजन कर रहे है–नाम-संकीर्तन की मधुर ध्वनि मानो एक नवयुग के आगमन की सूचना दे रही है। उस दिन रात्रि एक बजे तक यह सब दृश्य देखने का बाद उन्हें बाह्यज्ञान हुआ। दूसरे दिन आसन में बैठने पर यही दृश्य फिर से प्रकट हुआ। गुरूदेव को इस सम्बन्ध में उन्होंने कुछ भी नहो लिखा। उन्होने सोचा कि गुरूदेव की इच्छा व निर्देश से जब सब हो रहा है तो उन्हें क्या लिखूँ? दो चार दिन बाद गुरूदेव का पत्र मिला। उसमें कोलकाता में मिलने के लिए लिखा था । यथा समय जब कोलकाता जाकर गुरूदेव से अन्नदा कुमार मिले तो उन्होंने कहा–**'मैं रामचन्द्रपुर आऊँगा। तुम्हें ध्यान में दिखलाई पड़ने वाला २१ दिन के व्रत का पालन करना होगा।'**

अध्याय १४ : गोस्वामी जी के जन्मशती महोत्सव में दरवेश जी का रामचन्द्रपुर आगमन एवं अन्नदा कुमार का व्रत पालन

अन्नदा कुमार पुरूलिया में रहते हुए भारती प्रेस से 'संगठन' पत्रिका का प्रकाशन कार्य एवं अन्य सेवा कार्यों का संचालन करते थे। रामचन्द्रपुर आश्रम में गोसाँई जी के जन्मशती महोत्सव की आवश्यक तैयारी के लिए वे वहाँ पहुँचे। पुलिस ने आश्रम के भवन को लगभग नष्ट कर दिया था, केवल प्राथमिक विद्यालय भवन सुरक्षित था। अन्नदा कुमार ने थोड़े ही समय के भीतर पूजा का कमरा, लाईब्रेरी, दातव्य चिकित्सालय, कार्यालय एवं अतिथि गृह का निर्माण कार्य समाप्त किया। दरवेश जी के निर्देशानुसार आश्रम का नाम 'श्रीश्री विजयकृष्ण आश्रम' रखा गया एवं यहाँ केवल सेवा कार्य को चालू रखा गया। राजनैतिक कार्यों का संचालन पुरूलिया से करने के लिए उन्होंने निर्देश दिया।

३ मई, सन् १९४१ ई. को आसनसोल से ट्रेन द्वारा दरवेश जी महाराज को मुराडी स्टेशन लाया गया। गोलोक दास के संचालन में एक विशाल जनसमुदाय, कीर्तन मंडली सहित स्टेशन में उपस्थित थे। गोलोक दास को देखते ही दरवेश जी ने उन्हें आलिंगन किया तब उन्होंने कहा–"प्रभु मैं अधम हूँ, मुझे आप स्पर्श न करें। मैं इस योग्य नही हूँ।" उल्लेखनीय है कि गोलोक दास को कुष्ठ रोग हो गया था। ग्राम के सभी लोग उनसे दूर रहते थे परन्तु अन्नदा कुमार ने शुरू से उनकी चिकित्सा, भोजनादि की सभी व्यवस्था की थी और उन्हें सर्वदा नाम-जप करने के लिए कहा था। अपने दैनन्दिन जीवन में अधिकांश समय गोलक दास नाम-जप करते थे जिससे उनका कुष्ठ रोग अच्छा हो गया था।

गोलोक दास से दरवेश जी ने कहा–"तुम्हारे सभी अंगां से नाम-जप का प्रभाव प्रस्फुटित होता दिखलाई पड़ रहा है। तुम पवित्र हो।"

संकीर्तन मंडली, कीर्तन करते हुए दरवेश जी को रामचन्द्रपुर आश्रम में ले आयी। यहाँ प्राचीन पीपल वृक्ष को देखते ही दरवेश जी ने उसका आलिंगन किया और कहा–**"ऐसा लग रहा है कि मैं यहाँ काफी दिनों तक रहा हूँ। यह मेरा अपना स्थान लग रहा है।" एक स्थान पर इंगित करते हुए उन्होंने कहा–"देखो तो! इसके नीचे यज्ञकुण्ड एवं पंचमुंडी आसन है क्या? यहाँ कुण्ड की अग्नि कभी नही बुझती थी।" उस स्थान में खुदाई करने पर यज्ञकुण्ड व 'पंचमुंडी आसन' प्राप्त हुआ। यज्ञकुण्ड की राख को निकालते समय उसमें अग्नि देखकर सभी को आश्चर्य हुआ। दरवेशजी ने अग्नि को तुरन्त मिट्टी व राख से ढक देने का निर्देश देते हुए**

कहा–''इस कुण्ड में सर्वदा अग्नि है, इसमें अग्नि आह्वान की आवश्यकता कभी नही होगी।''

यहाँ बड़े आयोजन के साथ महोत्सव कार्य सम्पन्न हुआ। विभिन्न स्थानो से लगभग पंाच हजार लोग आये थे। चार मई को दिन भर प्रवचन, सत्संग एवं कीर्तन चला। कुलदानन्द ब्रह्मचारी जी के शिष्य योगेश ब्रह्मचारी जी ने गोसाँई जी के सम्बन्ध में जो प्रवचन दिया, उसे सुनकर सभी मुग्ध हो गये। सत्संग के समय शिक्षक प्रफुल्ल पाठक के प्रश्नों का उत्तर देते हुए दरवेश जी कहा–(१) गोसाँई जी ने कहा है कि सन् १९५० ई. के भीतर देश स्वाधीन होगा। इसके लिए युद्धादि करने की आवश्यकता नही होगी। अंग्रेज देश का भार अर्पण कर, चले जावेंगे। १९५० के पूर्व भी देश स्वाधीन हो सकता है, लेकिन इससे देरी नही होगी।

(२) देश स्वाधीन होने के साथ उन्नति नहीं हो सकेगी। संशोधन में समय लगेगा। पद के मोह एवं अपनी प्रधानता (अहं भावना) से बचना बहुत कठिन होता है। आज जो त्यागी दिख रहे हैं उनमें से अनेक लोग स्वाधीनता के बाद पद प्राप्त कर भोग-विलास में डूब जाएंगे। इनमें देश की सेवा कि अपेक्षा अपना स्वार्थ प्रधान होगा। देशव्यापी अन्न का अभाव एवं अकाल पड़ेगा। संघर्ष चलता रहेगा। दलबन्दी भावना बढ़ेगी। इसके बाद अशांति और बढ़ जायेगी। नेता लोग कर्तव्य से विमुख होकर देश को और अधिक हानि पहुँचायेंगे। बाद में आत्मचेतना जागेगी। ठीक अवस्था आने में और समय लगेगा।

देश विभक्त होने के बाद स्वाधीनता आएगी। सब तरफ रक्त की नदी बहेगी। अनाचार एवं दुर्नीति बढ़ेगी। छात्रों, श्रमिकों, जनता, सभी के भीतर अनुशासन हीनता आने से देश एवं जाति के सम्मुख अनेक प्रकार की समस्या आयेगी। लोगों के दु:ख की सीमा नहीं रहेगी। अन्त में जाति के भीतर नवीन चेतना आयेगी। नये तौर पर देश का गठन होगा। संघर्ष के भीतर से नवयुग प्रारम्भ होगा। धर्म की नीव पर देश की प्रतिष्ठा होगी।

(३) धर्म क्या है? पूछने पर दरवेश जी ने कहा– जो मनुष्य को सत्य में प्रतिष्ठित रखे–मानव बोध को पूर्ण विकसित करे, वही धर्म है। जो पतन से रक्षा करे, वही धर्म है। जो मनुष्य को कमशः उच्चतर अवस्था पाने में अर्थात् कमोन्नति में सहायता करे, वही धर्म है। जो सामुहिक रूप से समाज के कल्याण में सहायता करे, वह धर्म है। व्यक्तिगत कल्याण एवं उन्नति के साथ-साथ सामुहिक कल्याण और उन्नति को वर्द्धित करते हुए, जो एक मधुर एवं शान्ति का वातावरण तैयार करे और सभी के जीवन को प्रेम व मधुरता से परिपूर्ण कर देवे–वही वास्तविक रूप से समाज में धर्म कहलाता है। समाज का धर्म मानव को विच्छिन्न न कर एक साथ संलग्न करता है। सभी को अपार प्रेम द्वारा अपने पास लाकर उसका संशाधन करना भी धर्म है।

हिन्द् समाज में अनेक जाति के लोग सम्मिलित हुए हैं। हिन्दू समाज ने सभी को अपने हृदय में स्थान दिया है।

(४) अन्नदा कुमार के भविष्य के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए दरवेश जी ने कहा– अन्नदा का भविष्य अत्यन्त कटु एवं मधुर है। वह इस जिला एवं यहाँ रहने वाले लोगों के लिए अपना सर्वस्व देकर श्रद्धा अर्जन करेगा, परन्तु उसे किसी की सहायता नहीं मिलेगी! यही उसके कर्म के प्रति वैराग्य होने का प्रमुख कारण होगा। वह बार-बार कर्म छोड़ेगा एवं पुनः प्रारम्भ करेगा। दलबन्दी राजनीति न करने से एवं कुटिल पथ का अवलम्वन न करने से उसे श्रद्धा एवं सम्मान मिलने पर भी कहीं स्थान नहीं मिलेगा। इस प्रकार एक कटु एवं मधुर अभिज्ञता उसके जीवन में आएगी। जब उसके ऊपर अत्याचार हुआ तव स्थानीय कांग्रेस ने उसकी सहायता नहीं की। अनाहार से इस आश्रम में उसके कितने दिन व्यतीत हो गये, केवल सब्जी खाते हुए उसे महिनों बीत गये, परन्तु जिला कांग्रेस के नेताओं ने उसकी कोई सहायता नहीं की। जब टेलर और चार्चर साहब के अत्याचार से अन्नदा मरनासन्न होकर आश्रम में पड़ा था तव मेरे निर्देश से शरतचन्द्र, हजारीबाग से आकर उसे ले गया था। यह सब कैसे हुआ तुम लोग समझ न सकोगे।

मैं उसे, कर्म के भीतर रहते हुए, कर्म-विमुक्त करना चाहता हूँ। उसे अन्तिम दिन तक कर्म करना होगा। परन्तु धीरे-धीरे उसकी गति एवं प्रकृति परिवर्तित हो जायेगी। वह निस्पृह हो जायेगा। कर्म स्वतः छूट जायेगा। इन सब कर्मों का यद्यपि व्यक्तिगत रूप से उसका कोई प्रयोजन नहो है तथापि अनासक्त कर्म द्वारा उसका कल्याण होगा, इसी कारण उसे रखा गया है और जितने दिनों तक आवश्यक होगा, रखा जाएगा।

तिब्बती बाबा ने जो कुछ कहा, वह सब सत्य हुआ है एवं होगा। सन् १९५७ ई. के बाद अन्नदा के जीवन में द्रुत परिवर्तन आयेगा। उसका दीर्घ जीवन है, परन्तु जितने दिनों तक आवश्यक है उसे रखा जायेगा। सद्‌गुरू का आश्रय पाने के बाद शिष्य का जीवन-मरण उन्हीं के हाथों म रहता है। जब जहाँ रखना आवश्यक हो उसे वहाँ रखा जायेगा–भगवत् कर्म करने के लिए। अन्नदा को कई बार आना (जन्म लेना) पड़ सकता है–अपने लिए नहीं, दूसरों की सेवा के लिए। जीवात्मा के कल्याण के लिए ये लोग जन्म-जन्मान्तर कष्ट भोग करते हैं और करेंगे। इनका कर्म, कर्म-भोग नही, कर्मयोग कहलाता है।

मैंने तो सोचा था कि उसे परिवार सहित काशी ले जाऊँगा परन्तु गोसाँई जी ने कहा–''अन्नदा को वहीं (रामचन्द्रपुर में) रहना होगा। वहीं उसका कर्म है।''

(५) विश्वास एवं निर्भरता के विषय में गोसाँई जी ने जो कहा था, उसका उल्लेख करते हुए दरवेश जी ने कहा– विश्वास और निर्भरता एक वस्तु नही है।

विश्वास होने पर भी अपना (स्वयं का) अस्तित्व होता है, परन्तु निर्भरता का अर्थ पूर्ण रूप से शरणागति है। तुम्हारी माँ ने तुम्हें कुछ कार्य करने के लिए कहा। माँ के ऊपर तुम्हें विश्वास है। तुम जानते हो माँ ऐसा कुछ भी नही करेंगी जिससे तुम्हारा अकल्याण हो। कार्य करते समय संशय , उद्वेग, अशान्ति आदि आने पर भी तुम उस कार्य को करते हो। क्योंकि माँ ने जब कहा है तब इसे करने पर अवश्य कल्याण होगा–इसे ही विश्वास कहा जाता है।

'निर्भरता' में ऐसा नहीं होता–निर्भरता का अर्थ है अपना अस्तित्व भूल जाना। सम्पूर्ण रूप से अनुगत (शरणागत) न होने पर निर्भर नही हुआ जा सकता। भगवान ने कहा है–'योगक्षेमं वहाम्यहम्', वह क्या साधारण बात है? अपनी पृथक सत्ता (अस्तित्व) का जिसे बोध है वह क्या इसकी आशा कर सकता है कि भगवान स्वयं अपने सिर पर रखकर आवश्यक वस्तुओं को लेकर आएंगे? जो निर्भर है वह सैकड़ों उद्वेग–अशान्ति आने पर भी समझ ही नहीं सकेगा की उसके ऊपर दुःख आया है। जो आया है उसे मधुरं-मधुरं कहता हुआ आनन्द पूर्वक ग्रहण करेगा।

नाप-जप सर्वदा करते रहो–विश्वास-निर्भरता सब होगी।

दरवेशजी ने अन्नदा कुमार को २१ दिनो का व्रत पालन करने का निर्देश दिया। व्रत के नियमादि भी उन्होने बतला दिया। जन्मशती के उपलक्ष्य में पांच मई को नर-नारायण सेवा का आयोजन किया गया। सभी कार्य आनन्दपूर्वक सम्पन्न हुआ।

यहाँ के कार्यकम के बाद दरवेशजी पुरूलिया पहुँचे । पुरूलिया में भी गोस्वामी जी का जन्मशती महोत्सव अच्छी तरह सम्पन्न हुआ। यहाँ पंचकोट राजा कल्याणी प्रसाद भी दरवेशजी का दर्शन करने आये। कल्याणीप्रसाद अत्यन्त अत्याचारी राजा थे। अन्नदा कुमार ने इनके अन्याय कार्यो का कठोर प्रतिवाद किया था। बाद में दरवश जी के पास वे दीक्षा प्रार्थी भी हुए थे। उनका दीक्षा-प्रसंग अगले अध्याय में दिया गया है।

पुरूलिया के कार्यकम समापन के बाद बांकुड़ा जिले के कान्तोड़ नामक स्थान पर दरवेश जी गये। वहाँ एक छोटा आश्रम उन्होंने बनाया था। बुद्ध पूर्णिमा के समय यहाँ महोत्सव होता है। इस बार महोत्सव मे दरवेश जी की शक्ति का थोडा प्रकाश सभी लोगों ने यहाँ प्रत्यक्ष देखा। मध्यान्ह भोजन के समय आकाश चारों ओर घने बादलों से घिर गया। खुली जगह में भोजन के लिए सैकड़ों लोग बैठे थे। सभी लोग चिन्तित होने लगे, तब दरवेशजी अचानक बाहर आये और अपने हाथों को आकाश की ओर घुमाया। आश्चर्य, चारों ओर घनघोर वर्षा होने लगी परन्तु आश्रम के भीतर एक बून्द पानी नहीं गिरा। सभी का शान्तिपूर्वक भोजन हो गया। यहाँ से दरवेशजी जगन्नाथ पुरी के लिए रवाना हो गये।

दरवेशजी के निर्देशानुसार अन्नदा कुमार पुरूलिया के अपने समस्त कार्यों की आवश्यक व्यवस्था कर जब रामचन्द्रपुर आश्रम जाने लगे तब अचानक राजा

कल्याणीप्रसाद आये और उन्हें प्रणाम करते हुए कहा–"भाई, तुम्हारे समान निःस्वार्थ व्यक्ति के साथ मैंने स्वार्थवश वाद-विवाद किया। मैं आज क्षमा माँगने आया हूँ। जीवन में मैंने अनेक पाप किया है उसका प्रायश्चित मुझे करना है। मुझे तुम क्षमा कर दो।" ऐसा कहकर उन्होंने अन्नदा कुमार को फिर से प्रणाम कर एक सौ रूपये देकर कहा कि 'सुना है तुम कल से २१ दिन का व्रत लोगे। आश्रम में नर-नारायण सेवा पर इस तुच्छ भेंट को लगा देना।' उल्लेखनीय है कि १९४१ ई. में सौ रूपये का मूल्य आज के हिसाब से काफी अधिक था।

पहला जेठ (बंगला तिथि) से २१ दिन का व्रत अन्नदा कुमार ने आरम्भ किया। दिनभर उपवास रहकर रात्रि में केवल १ पाव दूध लेना ही उनका आहार था। ग्रीष्म ऋतु मे इस तरह रहना पड़ेगा सोचकर वे थोड़ा चिन्तित हुए, किन्तु व्रत पालन करते समय उन्हे किसी प्रकार की तकलीफ नहीं हुई। दरवेश जी के निर्देशानुसार उनकी दिनचर्या इस प्रकार थी– प्रातः ५ बजे से १० बजे तक–पूजा, पाठ एवं मन्त्र जप। १० बजे से १२ बजे तक–धर्म-ग्रन्थ पाठ। १२ बजे से १ बजे तक–विश्राम। १ बजे से ५ बजे तक–मन्त्र जप एवं ध्यान । सन्ध्या ५ बजे से ७ बजे तक–नामसंकीर्तन करते हुए गाँव का भ्रमण। ७ से रात्रि ९ बजे तक–स्नानादि एवं दुग्धपान। रात्रि ९ बजे से १२ बजे तक–निद्रा तथा १२ बजे से सुबह ५ बजे तक–मन्त्र जप एवं ध्यान।

व्रत के समय कई विचित्र दर्शन एवं अनुभव उन्हें हुआ और दरवेश जी की उपस्थिति का अनुभव भी प्रायः होता था। संक्षेप में इस समय की घटनाओं का विवरण यहाँ दिया जा रहा है–(१) दूसरा जेठ– रात १ बजे अन्नदा कुमार जब तन्मय होकर जप कर रहे थे तब अचानक एक भयंकर आकृति वाले रक्ताम्बरधारी तान्त्रिक सन्यासी प्रकट हुए एवं तीव्र दृष्टि से थोड़ी देर तक देखते रहने के पश्चात् अदृश्य हो गये।

(२) चौथा जेठ– वही संन्यासी ने फिर दर्शन दिया परन्तु आज उनकी मूर्ति सौम्य थी। अन्नदा कुमार के प्रणाम करते ही वह अदृश्य हो गयी।

(३) आठवां जेठ– सुबह, एक दिव्य मनमोहक सुगंध से आश्रम सुगंधित हो गया। आँखों के सामने अन्नदा कुमार को दिखलाई पड़ा–हजारों की संख्या में नर-नारी भोजन कर रहे हैं एवं उत्सव में सभी आनन्द मग्न हैं।

(४) बारहवाँ जेठ– अन्नदा कुमार ने देखा कि छः-सात साधु एक मृत शिशु को सामने रखकर, मन्त्र पाठ करते हुए उसे जीवित करने का प्रयास कर रहे हैं। उनमें वे तान्त्रिक साधु भी हैं। अन्य साधुओं ने अन्नदा कुमार को अपने पास बुलाया, परन्तु तान्त्रिक साधु ने इशारे से उन्हें आने के लिए मना किया। अन्नदा कुमार नाम-जप में मग्न रहे। थोड़ी देर बाद मृत शिशु जीवित हो उठा। अन्य साधुओं के अदृश्य हो जाने पर तान्त्रिक साधु ने अन्नदा कुमार से कहा–"वे तुम्हें यह विद्या सिखाना चाहते थे परन्तु मैंने मना किया, क्योंकि इससे तुम्हारा कोई फायदा नहीं होता। तुम्हारे गुरुजी

से मेरा परिचय है।"ऐसा कहकर वे अदृश्य हो गये। लगभग चार घंटे का समय इस तरह बीत गया।

(५) सोलहवां जेठ–गुरूदेव का पत्र मिला–'**मैं सर्वदा तुम्हारे निकट हूँ और तुम्हारी सहायता कर रहा हूँ। तुम बाह्य जगत् को भूलकर, और भीतर में जाने का प्रयास करो। तुम्हारा श्वास-प्रश्वास नाममय हो। जिस भयंकर साधु का तुमने दर्शन पाया है वे तुम्हारे हिताकांक्षी हैं । बहुत पहले उसी स्थान पर उन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी। पंचमुंडी आसन एवं यज्ञकुण्ड उन्होंने ही स्थापित किया था। तुम केवल श्वास-प्रश्वास की ओर ध्यान रखकर नाम-जप करते रहो। उसी से सब हो जायेगा।''**

गुरूदेव के पत्र के साथ ही स्त्री शैलबाला देवी का भी पत्र मिला। जिसमें लिखा था–''**रात्रि में स्वप्न दिखा कि गुरूदेव उपस्थित हैं एवं उनके निकट तुम बैठे हो। अचानक एक संन्यासी की भयंकर मूर्ति वहाँ उपस्थित हुई । थोड़ी देर बाद सब अदृश्य हो गये।''**

एक ही प्रकार के दृश्य के विषय में गुरूदेव एवं स्त्री ने लिखा था। यह देखकर अन्नदा कुमार विस्मित हो गये।

(६) अठारहवां जेठ– संन्यासी, अनन्त जल राशि के पास अन्नदा कुमार को ले गये एवं उनका हाथ पकड़कर कहा–'तुमने वहाँ दीक्षा क्यों लिया?' उनके इस तरह बोलने के ढंग से अन्नदा कुमार क्रोधित होकर झटके के साथ अपना हाथ छुड़ा लिया। संन्यासी ने हँसते हुए कहा–"मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। गुरुशक्ति तुम्हारी सर्वदा रक्षा कर रही है। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि तुम किस तरह बिना खाये-पिये, स्वस्थ रहकर व्रत का पालन करते हुए साधना कर रहे हो । तुम्हारी गुरू निष्ठा की जय हो!" ऐसा कहकर संन्यासी उस विशाल जल राशि में लीन हो गये।

(७) उन्नईसवां जेठ– दूसरे दिन फिर संन्यासी दिखे। आज उनकी मूर्ति शान्त एवं सौम्य थी। अन्नदा कुमार ने प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर वे अदृश्य हो गये।

(८) इक्कईस जेठ– व्रत के अन्तिम दिन भी संन्यासी आये एवं आशीर्वाद देकर अदृश्य हो गये। गुरूदेव का पत्र मिला कि '**तुम्हारा चित्त, पराशान्ति का आभास पाकर धन्य हो गया। जिस स्थान पर आश्रम बना है वह सिद्ध स्थान है।'**

व्रत समाप्ति के बाद तेईस जेठ (बंगला तिथि) को गुरूदेव का पत्र मिला कि ''**यह २१ दिन जिस तरह व्यतीत हुआ, वह तुम्हारे सारे जीवन-स्मृति में रहकर प्रत्येक कार्य एवं चेष्टा में शक्ति प्रदान करेगा । जिस मूर्ति का तुमने हमेशा दर्शन पाया, उसी स्थान पर उन्होंने सिद्ध अवस्था प्राप्त की थी । परन्तु उनकी पद्धति हमारी पद्धति से भिन्न थी। साधना में थोड़ा ऊपर उठने पर महात्माओं की दृष्टि में पृथक-पृथक संकीर्णता की सीमा रेखा फिर नहो रहती। सभी सम्प्रदाय एक हो जाते हैं । इसी कारण सिद्ध महात्माओं में साम्प्रदायिक भावना नहो रहती। इस महात्मा ने**

अनेक प्रकार से तुम्हारी सहायता की है।''

गुरूदेव के निर्देशानुसार व्रत के अन्तिम पांच दिन आसपास के गांवों में जा कर जाति-वर्ण आदि का विचार न करते हुए, हर घर से उन्होंने भिक्षा ग्रहण किया। एक घर भी छुट न जाये, ऐसा गुरूदेव का विशेष निर्देश था। इस भिक्षा में संग्रहित पदाथो से, व्रत के बाद बाइसवें दिन 'नर-नारायण सेवा' की व्यवस्था की गई।

इस तरह व्रत समाप्त कर अन्नदा कुमार जब पुरूलिया पहुँचे तब उन्हें गुरूदेव ने कोलकाता में बुलवाया। गुरूदेव पुरी से कोलकाता आए हुए थे । कोलकाता जाकर गुरूदेव को प्रणाम करते ही उन्होंने अन्नदा कुमार को आलिंगन बद्ध करते हुए कहा–**''इस व्रत के पालन से तुम्ही कृतार्थ नहो हुए हो बल्कि मुझे भी कृतार्थ किया है। मेरा शरीर पुरी में था परन्तु मन सर्वदा तुम्हारे निकट था। गोसाँई जी के विषय में सोचने पर, तुम्हारी बात याद आ जाती थी और मैं प्रार्थना करता था–हे गोसाँई, तुम उसकी रक्षा करो।''**

* * *

अध्याय १५ : 'मन्दिर' पत्रिका का शुभारम्भ एवं वाराणसी में जन्मशती महोत्सव की समाप्ति

गोस्वामी जी (गोसाँई जी) के असाम्प्रदायिक धर्म के प्रचार के लिए एक मासिक पत्रिका निकालने की योजना दरवेश जी महाराज के मन में बहुत दिनों से थी। परन्तु योग्य सम्पादक के अभाव में पत्रिका का कार्य नहीं हो पाया था। अन्नदा कुमार पुरूलिया से साप्ताहिक पत्रिका 'संगठन' काफी समय से निकाल रहे थे। 'मन्दिर' पत्रिका का भार अब दरवेश जी ने उन्हें ही दिया। दरवेश जी का निर्देश था–"**'संगठन' राजनैतिक साप्ताहिक पत्रिका रहेगी और 'मन्दिर' पूर्णतः धार्मिक पत्रिका रहेगी। तुम्हारे जीवन में अभी राजनैतिक क्रिया-कलाप प्रधान होने पर भी, बाद में यह सब कम हो जायेगी और धार्मिक क्रिया-कलाप मुख्य होगा । तुम्हारे जीवन में राजनीति एवं धर्मनीति का अद्भूत सामन्जस्य देश एवं जाति को नया पथ प्रदर्शित करेगा। 'संगठन' एवं 'मन्दिर' जिस तरह तुम्हें दोनों ओर से सहायता करेगी उसी तरह तुम्हारे त्याग के माध्यम से ये दोनों पत्रिका निःसन्देह देशवासियों को कल्याण वितरण करेगी।**" दरवेश जी के आशीर्वाद से थोड़े ही दिनों में 'मन्दिर' पत्रिका बहुत प्रसिद्ध हो गयी। बाद में रामचन्द्रपुर आश्रम से यह पत्रिका प्रकाशित होने लगी । एक अख्यात ग्राम से इस तरह पत्रिका चलाना एवं ग्राहक संग्रह करना कितना कठिन है इसका अनुमान एक प्रकाशक ही कर सकता है। यह पत्रिका आज भी रामचन्द्रपुर आश्रम से प्रकाशित हो रही है। दरवेश जी ने अन्नदा कुमार से कहा था–" **'मन्दिर' (पत्रिका) की सेवा करने से मेरी सेवा होगी।**" अन्नदा कुमार ने गुरूदेव के उपरोक्त निर्देश का आजीवन निष्ठापूर्वक पालन किया।

अन्नदा कुमार के राजनैतिक कर्म स्वतः कम होने लगे। उनके राजनैतिक उपदेष्टा नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के विदेश चले जाने से जिस शून्यता की सृष्टि उनके अन्तःकरण में हुई थी, यह दरवेश जी के निकट दीक्षा प्राप्त करने का बाद पूर्णतः दूर हो गई तथा वे एक नये जगत् के आलोक को देखकर अग्रसर होने लगे। विभिन्न अवस्था के भीतर रहकर साधना करते हुए उन्हें अनुभव हुआ कि **'सद्गुरू अदृश्य रहकर प्रत्येक जीव को परिचालित कर रहे हैं। जीवन के सभी कमो को उन्हीं के कर्म में परिवर्तित करना होगा। कर्मयोग भी योग-साधना का एक प्रमुख मार्ग है। जीव अपने-अपने कर्म एवं साधना से सद्गुरू की सहायता एवं कृपा की उपलब्धि करता है। सद्गुरू सर्वदा देने के लिए उन्मुख हैं, परन्तु हमारा पात्र क्षुद्र है इसलिए ग्रहण नहो कर पा रहे हैं। मंत्र लाभ ही बड़ी बात नहो है, मंत्र साधना की जो पद्धति**

सद्गुरू ने बतलाया है उस पन्थ का अनुसरण करने पर ही सद्गुरू को सर्वदा निकट पाया जा सकता है। मंत्र की अवज्ञा करने पर या साधना न करने पर, श्री गुरू के हृदय में जो कष्ट होता है उसके परिणाम स्वरूप, जीव अपनी दुर्गति लाने के साथ-साथ गुरू को भी कष्ट देता है। शिष्य के कृतकमो के लिए गुरू को भी विभिन्न प्रतिकूलताओं को सहना पड़ता है—यह प्रमाणित सत्य है। मनुष्य भगवान को इस तरह अपने निकट पाकर भी अविश्वास के कारण उन्हें भूलकर सब खो देता है। सद्गुरू प्राप्त कर, उनकी तरफ मन न देकर अनित्य सम्पद, भौतिक सुविधाओं के पीछे दौड़ता रहता है और अपने दुर्भाग्य को आमन्त्रण देता है।

अन्नदा कुमार कहा करते थे—''**मंत्र जप करते हुए मेरा मन एक अज्ञात लोक में चला जाता है। 'नाम' मुझे आध्यात्मिक सम्पद के साथ-साथ विपदों में सर्वदा रक्षा कर रहा है। नाम करते हुए नामदाता को सामने देखकर मैं अपार आनन्द में डुब जाता हूँ। इस आनन्द की कोई सीमा नही। सद्गुरू ने कहा है कि मैं सर्वदा तुम्हारे साथ हूँ—यह वाणी मेरे जीवन में जिस तरह सत्य सावित हुई है उसकी कोई तुलना नही।**'' दृष्टान्त स्वरूप एक छोटी घटना का उल्लेख 'आमार जीवन' ग्रन्थ से यहाँ दिया जा रहा है—

२१ दिन के व्रत के बाद भी अन्नदा कुमार रात्रि साढ़े बारह बजे से साढ़े चार बजे सुबह तक नाम-जप करते थे। चाय पीने की पुरानी आदत के कारण प्रातः स्नानादि के पश्चात् थोड़ी चाय पीने के लिए उनका मन उन्मुख रहता था। एक दिन अचानक दरवेश जी का पत्र आया कि ''प्रातःकाल साधना से उठकर स्नान के बाद तुम्हें चाय की आवश्यकता रहती है यह मैं जानता हू, परन्तु तुम इस जन्म में किसी तरह के सुख या आराम के लिए नही आये हो। तुम्हारा कार्य कोई दूसरा कर देगा, इसकी आशा मत रखो। उस समय शायद स्वयं चाय बनाकर पीना भी सम्भव नही होगा। मैं जब तुम्हारा प्रेस देखने पुरूलिया गया था तब प्रेस के सामने एक चाय की दुकान देखा था। वहाँ कहने पर तुम्हारे लिए रोज चाय बनाकर दुकान वाला दे सकता है।'' गुरूदेव का पत्र पाकर अन्नदा कुमार लज्जित हुए। थोड़ी सी चाय के लिए इतनां झंझट करने की अपेक्षा आज से चाय न पीने का उन्होंने मन में विचार किया। यह बात उन्होंने किसी से भी नहीं कही। दूसरे दिन सुबह स्नानादि के पश्चात् जब वे अपने कार्यालय में जाकर बैठे तब दरवाजे में किसी ने आवाज दिया। अन्नदा कुमार ने पूछा—''कौन हैं?'' उत्तर आया— बाबू मैं चाय वाला अनुकूल (उसका नाम) हूँ। आपके लिए चाय बनाकर लाया हूँ। अन्नदा कुमार ने विस्मित होकर पूछा—'तुम्हें किसने चाय लाने के लिए कहा है?' अनुकूल ने कहा— प्रातः लगभग चार बजे मैं सोया हुआ था, किसी ने मुझे धक्का देकर कहा कि 'बाबू तुम लोगों का इतना उपकार करते हैं, चाय के लिए उन्हें कष्ट होता है तुम्द उन्हें एक कप चाय नही दे सकते?

रोज पाँच बजे बाबू को चाय दे आना।' उस व्यक्ति को ठीक से पहचान न सका–ऐसा लगा कि कोई बुढ़ा सा व्यक्ति कह रहा था। इसी कारण जल्दी उठकर आपके लिए चाय लेकर आया हूँ। अन्नदा कुमार जितने दिनों तक पुरुलिया मे थे, अनुकूल रोज सुबह चाय बनाकर उन्हें देता रहा और उसका पैसा उनस कभी भी नहीं लिया। छोटी-छोटी आवश्यकताओं की ओर गुरूदेव की कृपा दृष्टि देखकर अन्नदा कुमार स्तम्भित हो गये।

दरवेश जी ने रामचन्द्रपुर आश्रम का नाम पहले ही विजयकृष्ण आश्रम रख दिया था। अब उन्होंने आश्रम के कार्यपद्धति की रूपरेखा तैयार कर भेजी। आश्रम में नौ प्रकार के विभाग रहेंगे–(१) ग्रन्थागार, (२) धर्मार्थ चिकित्सालय, (३) सेवा विभाग, (४) विद्यार्थी भवन, (५) कृषि विभाग (६) शिल्प कुटिर (७) शिक्षा विभाग (८) सेवकों के लिए प्रशिक्षण केन्द्र तथा (९) प्रचार विभाग।

दरवेश जी द्वारा निर्देशित कार्यों को करने के लिए अन्नदा कुमार ने प्रयास शुरू किया। इस वर्ष मानभूम एवं आसपास के क्षेत्रो में अकाल पड़ने से अन्नदा कुमार विचलित हो उठे। उन्होंने यथा शक्ति कार्य प्रारम्भ किया तथा इसके सम्बन्ध में दरवेश जी को जो पत्र दिया, उसके उत्तर में दरवेश जी ने लिखा–''**तुम्हारा वेदना से भरा आवेदन मेरे हृदय में तीर की तरह लगा। तुम अपना सम्पूर्ण सामर्थ्य देश के लोगों के दुःख दूर करने में प्रयोग करो। तुम्हें चिन्ता होनी चाहिए कि सेवा का आयोजन तुम्हारी शक्ति के परिमाण के अनुपात से कम न हो। मेरा आशीर्वाद ग्रहण करना। दुःखी लोगों के लिए तुम्हारी सहानुभूति एवं आँखों के अश्रु चिरस्थायी हो।**'' एक अन्य **पत्र में दरवेश जी ने लिखा–''तुम्हारे कार्यों को मैं पसन्द करता हूँ। साधारण लोगों की सुख-सुविधा के लिए, 'संगठन' एवं 'मन्दिर' पत्रिका के लिए तुम्हारा परिश्रम देखकर मैं खुश हूँ। यह मेरे लिए आनन्ददायक है–सन्देह नहीं, परन्तु हमेशा याद रखना –इन सब कायो की अपेक्षा तुम मुझे ज्यादा प्रिय हो।''**

सन् १९४१ ई., २ अगस्त से काशी विजयकृष्ण मठ में सद्गुरू श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी की जन्मशतवार्षिकी प्रारम्भ हुई थी। इस महोत्सव मे गोस्वामी जी के कई शिष्यों के साथ अन्नदा कुमार का परिचय हुआ। कई विशिष्ट विद्वान डा. गोपीनाथ कविराज, माखन गांगुली आदि लोगों से भी उनका परिचय हुआ। अन्नदा कुमार के कार्यों से वे पहले से ही परिचित थे। महोत्सव के समय डा. राधाकृष्णन भी आये थे। अन्नदा कुमार के साथ उनका स्नेह सम्पर्क बराबर रहा। महोत्सव में भाग लेकर सभी लोगों ने अपार आनन्द प्राप्त किया।

दुर्गा पूजा बंगालियों का प्रमुख त्यौहार है। इस वर्ष रामचन्द्रपुर आश्रम में 'घट' की स्थापना कर महाष्टमी के दिन शप्तशती होम की व्यवस्था की गई। अन्नदा कुमार पूजा के समय गरीब बच्चों को वस्त्र वितरण एवं नर-नारायण सेवा को पूजा का प्रधान

अंग मानते थे। पूजा के पहले ही दरवेश जी का मनीआर्डर और पत्र मिला। उन्होंने लिखा–''**गोसाँई जी के निर्देशानुसार मेरे एक गुरूभाई, मेरे माध्यम से तुम्हें रूपया भेज रहे हैं । यदि इससे सभी कार्य न हो तो वे और रूपया भेज देंगे। आशीर्वाद करता हूँ–माँ की पूजा अच्छी तरह सुसम्पन्न हो । तुम्हारी प्रार्थना के अनुसार विजया दशमी के दिन रात्रि बारह बजे आश्रम के 'पंचमुंडी आसन 'में केवल एक मिनट के लिए मेरा दर्शन प्राप्त होगा। सावधान! यह बात किसी से मत कहना।''**

मनी आर्डर के रूपये से सभी कार्य अच्छी तरह सम्पन्न हो गया। सप्तशती होम के प्रारम्भ होने के पश्चात् बहुत जोरो से बारीश शुरु हो गयी। आसपास के सभी स्थान जलमग्न हो गये परन्तु पीपल पेड़ के नीचे 'पंचमुंडी आसन' व यज्ञ कुण्ड के आसपास एक बून्द भी पानी नही गिरा। पांच व्यक्तियो ने होम किया था। छोटे से कमरे में 'घट' की स्थापना कर दुर्गा देवी की पूजा की गयी। सन्धिपूजा (अष्टमी-नवमी का योग) के पश्चात पूरे कमरे में सिन्दूर छिड़ककर दरवाजा बन्द कर दिया गया। बाद में जब दरवाजा खोला गया तब सिन्दूर के ऊपर छोटे-छोटे पद-चिन्ह देखकर सभी चकित् रह गये। इस प्रकार पूजा के समय माँ के अविर्भाव से सभी लोग भावविव्हल हो गये।

विजया दशमी के दिन रात्रि दस बजे के बाद अन्नदा कुमार, पीपल पेड़ के नीचे 'पंचमुंडी आसन ' के पास, एकान्त में बैठकर नाम-जप करने लगे। गुरुदेव के ध्यान में उनका मन तल्लीन हो गया। अकस्मात् उन्होने देखा कि एक सूक्ष्म प्रकाश की किरण पंचमुंडी आसन पर आकर पडी। उसके बाद दरवेश जी महाराज के सूक्ष्म ज्योतिर्मय देह को उन्होंने प्रत्यक्ष देखा । उनको साष्टांग प्रणाम करने के बाद अन्नदा कुमार कितनी देर तक उसी अवस्था में पड़े रहे, उन्हें कुछ खयाल नही रहा। जब चेतना लौटी तब वे अपने को साष्टांग लेटे हुए ही पाया! उनका मन अपार आनन्द से भर उठा।

पूजा के पश्चात् अन्नदा कुमार पुरूलिया आ गये। परन्तु उनका मन दरवेश जी के पास जाने के लिए व्याकुल हो उठा और वे काशी जाने के लिए निकल पड़े। उनके पास कुछ भी पैसा नही था । उस समय सभी बस वाले अन्नदा कुमार से यात्रा के लिए किराया नही लेते थे । बस द्वारा वे काशीपुर आ गये। वहां से आद्रा स्टेशन पास है और काशी जाने के लिए ट्रेन मिल जाती है। अचानक किसी व्यक्ति ने उन्हें कुछ रूपया दिया एवं अपनी गाड़ी से आद्रा स्टेशन पहुँचा दिया। स्टेशन में अन्नदा कुमार ट्रेन की प्रतीक्षा करते बैठे हुए थे, तभी एक मुसलमान व्यक्ति ने आकर उनसे कहा–'अच्छा हुआ आपके साथ भेंट हो गई! आपके प्रेस के कुछ बिल का भुगतान करना था।' ऐसा कहकर उसने बीस रूपये निकाल पर अन्नदा कुमार को दे दिये।

कालीपूजा के पहले अन्नदा कुमार काशी में दरवेश जी के पास पहुँच गये।

दरवेश जी के कहने पर अन्नदा कुमार मध्य रात्रि के समय उनके पास आये। वे अन्नदा कुमार को मठ में स्थित गोसाँई जी के मन्दिर में ले गये। वहाँ गोसाँई जी की प्रतिमा स्थापित है, उसे साष्टांग प्रणाम कर दरवेश जी ने पूछा–''अन्नदा को वहाँ से लाना चाहता हूँ।'' उस समय अन्नदा कुमार ने गोसाँई जी की स्पष्ट आवाज सुनी–''मानभूम से उसे यहाँ लाना नही होगा। उसे संन्यास देने का समय अभी नही हुआ है। यथा समय सब होगा।'' इस तरह दरवेश जी की कृपा से अन्नदा कुमार को गोसाँईजी का दर्शन एवं निर्देश प्राप्त हुआ।

दरवेश जी ने अन्नदा कुमार को स्वयं के जीवन की घटनाओं को लिखने का निर्देश भी दिया । दरवेश जी प्रायः मठ में ही रहते थे। अन्नदा कुमार के अनुरोध पर वे पाँच दिन लगातार शाम के समय गंगा जी में नाव से भ्रमण करने गये। उस समय दरवेश जी ने कहा था–''**सद्गुरू के निकट पूर्णरूपेण आत्मसमर्पण करना होगा। परन्तु हम आत्मसमर्पण नही कर पाते । केवल मुंह से कहते हैं। जहाँ सम्पूर्ण आत्मसमर्पण होता है वहाँ सिद्धि प्राप्ति होती है। उसी समय सद्गुरू, ईश्वर के रूप में आश्रितों की प्रार्थना पूर्ण करते हैं। जहाँ दुविधा, संकोच या संशय रहता है वहाँ सब गड़बड़ हो जाता है। गुरू एवं शिष्य के मध्य किसी प्रकार की दुविधा, संकोच, भय या लज्जा नहीं होनी चाहिए । शिष्य जब पूर्ण रूप से अपने को श्रीगुरू के चरणों में अर्पित कर देगा, तभी उस शिष्य का आधार, श्रीगुरू की करूणा ग्रहण करने में योग्य होगा।**''

''**गुरू कितनी तरह से शिष्य की परीक्षा करते हैं। साधना के पथ में कितने प्रकार के दर्शन, भ्रम, असंतोष एवं सन्देह आते हैं। जो साधक इन सब को तुच्छ मानकर, एक मन व प्राण से श्रीगुरू और श्रीगुरू प्रदत्त इष्ट मंत्र का सहारा लेकर, एक लक्ष्य निर्धारित कर अग्रसर होता है तब उसे लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य होती है। वे तो तुम्हारे हृदय में विराजित हैं। जो सर्वदृष्टा हैं उनसे क्या कोई कुछ छिपा सकता है। जहाँ गुरू सब देखकर भी कुछ नहीं देखते हैं या सतर्क (सावधान) नहीं करते हैं, वहाँ समझना चाहिए कि वे दुःख देकर, तुम्हारे दुःख को नष्ट कर रहे है।**''

एक दिन दरवेश जी ने नीलकण्ठ पर्वत की घटना का विवरण देते हुए कहा कि किस तरह गोसाँई जी ने और उन्होंने स्वयं, अन्नदा कुमार की आत्मा को लाकर शिवरात्रि के दिन चतुर्दशी और अमावस्या के सन्धि के समय, गर्भ में स्थापन किया था। एक अन्य दिन नाव में माँ आनन्दमयी के साथ दरवेश जी ने अन्नदा कुमार का परिचय कराया। दरवेश जी ने अपनी कुछ कविताएं माँ आनन्दमयी को सुनाया। माँ आनन्दमयी के साथ अन्नदा कुमार की, बाद में कई बार भेंट हुई।

इस बार काशी से पुरूलिया आने के बाद अन्नदा कुमार का मन प्रेस आदि के कार्यों से विरक्त हो गया। उन्होंने कार्यों के देख-रेख का भार एक कर्मचारी को

सौंप दिया। उनके दैनन्दिन जीवन में अब अपने आप परिवर्तन शुरू हो गया। नेताजी सुभाषचन्द्र के अनुरोध से उन्होंने कमीज और जूता पहनना चालू किया था, अब वह फिर से छूट गया। दरवेश जी ने उन्हें कहा था–**'कपड़ा जितना कम होने से चल जावे उतना ही व्यवहार में लाना। भोजन केवल जीवन धारण या शरीर रक्षा के लिए जितना आवश्यक हो उतना ही लेना–भोजन विलास की वस्तु नहो है। अर्थ का सद्व्यवहार करना। केवल दान करने से ही अर्थ की सार्थकता नहो है! दान का पात्र या क्षेत्र (आधार) देखकर देना होगा एवं दान सात्विक होना चाहिए। तुम्हारा पूर्व संस्कार तुम्हारे भीतर कार्य कर रहा है एवं करेगा। तुम्हारे अपने स्वयं के लिए किसी तरह का विधि-निषेध नहो है। परन्तु दूसरों की शिक्षा के लिए तुम्हें उसे मानकर चलना होगा।'**

गोसाँई जी के जन्मशती महोत्सव के पश्चात् से अन्नदा कुमार ने अपनी मानसिक अवस्था में काफी परिवर्तन देखा। एकांत में बैठने से उनकी आँखों के सामने चलचित्र की तरह विभिन्न दृश्य प्रकट होते एवं विलीन हो जाते थे। दरवेश जी के निर्देशानुसार, रात्रि में शयन के पूर्व अपने जीवन की दैनन्दिन घटनाओं एवं मानसिक अवस्थाओं का विवरण वे नित्य लिखा करते थे। दरवेश जी को नित्य पत्र भी लिखना पडता था। हर तीसरे दिन दरवेश जी का पत्रोत्तर आता था। अधिकांश पत्र व्यक्तिगत होने से गुप्त रह गया। केवल कुछ पत्रों को, जिसे पढ़कर साधारण लोगों का कुछ उपकार हो, 'मन्दिर' पत्रिका में प्रकाशित किया गया। बाद में इन पत्रों की पुस्तक ''श्रीश्री दरवेश जी महाराजेर पत्रांश'' नाम से प्रकाशित की गयी।

अध्याय १६ : शान्तिपुर एवं प्रयाग कुम्भमेला दर्शन

मोटर गाड़ी की दुर्घटना के बाद से अन्नदा कुमार को सिर में प्रायः एक प्रकार का दर्द अनुभव होता रहता था। कभी-कभी शरीर में तीव्र पीडा के साथ खिंचाव सा होता एवं शरीर पिंडाकार हो जाता था। इस अवस्था में वे कभी-कभी दो-तीन घंटे तक पड़े रहते। इस बार काशी से लौटने के बाद यह पीड़ा फिर से शुरू हो गयी। पीड़ा के समय कई बार उनका बाह्यज्ञान लुप्त हो जाता और उस समय वे कभी विभिन्न महात्माओं का, तो कभी तीर्थस्थानों का, मृत आत्माओ आदि का दर्शन प्रायः पाते थे। ऐसी ही अवस्था मे एक दिन उन्होंने देखा कि एक ज्योतिर्मय पुरूष आकर उन्हे आकाश मार्ग से ले जा रहे हैं। काफी दूर जाने के बाद एक नदी को पार कर एक बड़े वट वृक्ष के नीचे हरिनाम संकीर्तन सुनकर वे रूक गये। चारों ओर आम का बगीचा था। कई परलोकगत आत्माओं को ज्योतिर्मय रूप में उन्होंने देखा। उस समय दरवेश जी एवं गोसाँईजी का दर्शन हुआ। दरवेश जी ने कहा–'इसका अभी यहाँ आना नही होगा।' एक व्यक्ति से उन्होंने अन्नदा कुमार को गंगा स्नान करवा लाने को कहा। गंगाजी में डुबकी लगाते ही उनकी बाह्य चेतना लौट आयी।

दूसरे दिन दरवेश जी का पत्र मिला जिसमें उन्होने अन्नदा कुमार को कोलकाता जाने के लिए निर्देश दिया। अन्नदा कुमार जब कोलकाता पहुँचे तो उनके दो डाक्टर गुरूभाइयो ने दरवेशजी के निर्देशानुसार उनके शरीर की अच्छी तरह जाँच करवाई। यहाँ से अचानक शान्तिपुर जाने का कार्यकम बन गया। उस समय शान्तिपुर में गोसाँई जी के घर में नित्य पूजित श्रीश्री श्यामसुन्दर जी के मन्दिर के सेवाधिकारी से संयोगवश कोलकाता में भेंट हो गयी। दोनों एक साथ शान्तिपुर आये एवं विभिन्न रास्तों से होकर सीधे श्रीश्री श्यामसुन्दर जी के मन्दिर में पहुँचे। सेवाधिकारी ने पूछा कि क्या आप पहले कभी यहॉ आये हैं? अन्नदा कुमार ने कहा–'नही। मैं यहाँ पहली बार आया हूँ , लेकिन यह सब स्थान मुझे परिचित सा लग रहा है।' श्रीश्री श्यामसुन्दर जी का दर्शन कर अन्नदा कुमार मुग्ध हो गये।

गंगाजी में स्नान करने के पश्चात् यहाँ से जब वे श्री अद्वैत महाप्रभु के 'पाठवाड़ी' बाबला नामक स्थान पर पहुँचे तब वे आश्चर्य चकित हो गये। यहाँ जैसा आम का बगीचा है, ठीक वैसा ही उन्होंने दो-चार दिन पूर्व मूर्च्छित अवस्था में दर्शन किया था। यहाँ से वे वापस शान्तिपुर आ गये।

एक़ दिन संकीर्तन करते हुए काफी लोगों के साथ वे फिर से 'श्री अद्वैत पाठ' बाबला गये एवं रात्रि में वहीं रहने का विचार किया। उनके साथ दो गुरूभाई भी वहाँ

रूके। अन्नदा कुमार ने सारी रात नाम-जप करते हुए बिताने का विचार किया। आसन में बैठकर जब वे नाम-जप करने लगे तब उनके आँखों के सामने एक दृश्य स्पष्ट प्रकट हुआ–**उन्होंने श्री अद्वैताचार्य एवं उनकी पंत्नी सीता देवी को देखा। फिर श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव से लेकर उनका शान्तिपुर आना एवं यहाँ से प्रस्थान के सभी दृश्यों का दर्शन किया । ज्योतिर्मय ओंकार के मध्य श्री चैतन्य महाप्रभु की लीला का दर्शन करते हुए सारी रात बीत गई ।**

इस प्रकार दिव्य आनन्दमय लीला का दर्शन कर, जब वे शान्तिपुर लौटे तब दरवेश जी का पत्र मिला कि ''तुम इतनी जल्दी शान्तिपुर जाओगे, ऐसी मेरी इच्छा नहो थी। पत्र मिलते ही तुम पुरूलिया लौट जाओ।"

शान्तिपुर के सम्बन्ध में यहाँ संक्षेप में विवरण दिया जा रहा है– श्री चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव स्थल नवद्वीप (पं. बंगाल) है। श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के पूर्व श्री अद्वैताचार्य नामक एक गृहस्थ महात्मा शान्तिपुर आए। देश की दुर्दशा देखकर उनका कोमल मन द्रवित हो उठा। उन्होंने गंगाजी के किनारे एक कुटिया बनायी एवं भगवान श्रीकृष्ण के निकट व्याकुल भाव से रोते हुए गंगाजल एवं तुलसी द्वारा प्रार्थना शुरू की। उनकी प्रार्थना से भगवान श्रीकृष्ण ही श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए। ऐसा वैष्णव सिद्ध महात्माओं का मत है । श्री अद्वैताचार्य उस समय के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने पाठशाला खोल रखी थी जिसे बंगला भाषा में 'पाठबाड़ी' कहा जाता है। गंगाजी के किनारे बाबला नामक ग्राम में जहाँ अद्वैताचार्य ने तपस्या की थी–'श्री अद्वैत पाठ'–बाबला के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्थान से गंगाजी की दूरी अब काफी बढ़ गयी है। यहाँ का वातावरण आज भी अत्यन्त मनोरम है। अनेक साधकों ने यहाँ हरिनाम संकीर्तन की अप्राकृतिक ध्वनि का श्रवण किया है। 'श्रीश्री सद्गुरू संग' (लेखकः कुलदानन्द ब्रह्मचारी) ग्रन्थ में इस स्थान के सम्बन्ध में विशद उल्लेख मिलता है।

अन्नदा कुमार शान्तिपुर से पुरूलिया लौट आये। जन्म पत्रिका के हिसाब से इस वर्ष अन्नदा कुमार का मृत्यु योग देखकर उनकी पत्नी शैलबाला देवी ने दरवेश जी को पत्र लिखा। दरवेश जी ने पत्रोत्तर में लिखा–''माँ, तुम चिन्ता मत करो। अन्नदा का अमंगल नहो होगा। जो कुछ भी खराब या अमंगल है, उसका अन्नदा के साथ कोई सम्बन्ध नहो है। उसे काशी भेज देना।"

दरवेश जी के निर्देशानुशार २४ दिसम्बर, १९४१ ई. को अन्नदा कुमार काशी पहुँचे। काशी में 'बंगीय साहित्य सम्मेलन' में उन्होंने योगदान किया एवं यहाँ कुछ आवश्यक सुझाव भी दिये। सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात् दरवेश जी के साथ वे प्रयाग 'कुम्भमेला' में गये। 'कुम्भमेला' १२ वर्ष के अन्तराल में कमशः हरिद्वार, इलाहाबाद, उज्जैन व नासिक में होता है। उस वर्ष इलाहाबाद में पूर्णकुम्भ पर्व था। कुम्भ मेले में श्री

विजयकृष्ण मठ की छावनी पर अन्नदा कुमार का प्रमुख कार्य था– दरवेश जी के पास आये विभिन्न पत्रों का उत्तर लिखना एवं दरवेश जी कथित आत्मकथा को लिखना।

लाखो साधुओं की भीड़ में से सिद्ध महात्मा को पहचानना बहुत कठिन है। अपने पूर्व परिचित महात्मा 'हंस बाबा' के पास झूंसी (गंगा का दूसरा तट) मे एक दिन अन्नदा कुमार अपने एक गुरू भाई के साथ पहुँचे। बहुत से साधुओ के साथ हंस बाबा बैठे थे । अन्नदा कुमार को देखते ही उन्होंने कहा–'क्या बच्चा! मिल गया?' फिर दूसरे साधुओं से उन्होंने कहा–'यह भी एक साधु है। गोसाँई जी का चेला है।' ऐसा कहकर अन्य साधुओ को गोसाँई जी के विषय में बतलाने लगे। गोसाँई जी के प्रति उनकी भक्ति देखकर अन्नदा कुमार अवाक् रह गये। यहाँ से हंस बाबा ने अपनी नाव द्वारा उन्हें वापस भेज दिया।

छावनी में वापस आते समय अन्नदा कुमार बहुत अस्वस्थ हो गये। छावनी के एक अलग कमरे में उन्हे रखा गया। बिस्तर में लेटने के साथ ही अन्नदा कुमार की चेतना लुप्त हो गयी। उस समय का विवरण अन्नदा कुमार ने अपने ग्रन्थ 'आमार जीवन' में इस प्रकार से दिया है–

उस समय दो व्यक्ति मुझे लेकर गुरूदेव के पास पहुँचे और उनसे 'कहा कि आपकी अनुमति के बिना हम इसे नहीं ले जा सकते। उसी समय गोसाँई जी वहाँ पर आये और कहा–"इसका कार्य अभी और बाकी है। वास्तव में इसकी मृत्यु हो गयी है, उसे फिर से जीवित करना होगा।" फिर दरवेश जी ने उन व्यक्तियों से कहा–"इसे यहाँ रखकर तुम लोग चले जाओ।" मैं देख रहा था कि मेरा शरीर वहाँ पड़ा हुआ है। इस समय दो व्यक्ति आये और दरवेश जी के निर्देशानुसार मेरे शरीर के भीतर के विभिन्न अंग काट-काट कर फकने लगे। उनका यह कार्य समाप्त हो जाने पर दरवेश जी ने उन्हें दो घंटे बाद आने को कहा। फिर उनके लौटकर आने के बाद मेरे शरीर से चादर हटाया गया। मैंने अपने शरीर को पूर्ववत् देखा। गोसाँई जी ने दरवेश जी से कहा–"इसकी आत्मा को इस शरीर के भीतर प्रवेश करवा दो और इसे इसके बिस्तर पर ले जाकर सुला दो।"

सुबह नींद खुलने पर सारे शरीर में अत्यन्त दर्द का अनुभव हुआ। शरीर में कहो भी चीर-फाड़ का निशान नहीं दिखा।

एक गुरूभाई डा. वरदा कुमार ने उन्हें यमुना में ले जाकर स्नान करवाया। स्नान करने के बाद अन्नदा कुमार जब दरवेश जी को प्रणाम करने गये तब उन्होंने अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहा–"बेटा, कल रात तुम्हें बहुत कष्ट झेलना पड़ा।" ऐसा कहकर उन्होंने अन्नदा कुमार को अपने गोद में लिटाकर, हाथों से उनके शरीर को दबाने लगे। इस तरह शरीर को दबाते हुए उनका हाथ जब पैरों की तरफ पहुँचा, तब अन्नदा कुमार अत्यन्त संकुचित हो उठे। दरवेश जी ने स्नेहपूर्वक कहा–'तुम क्यों

संकुचित हो रहे हो?' थोड़ी देर बाद अन्नदा कुमार ने अनुभव किया कि उनके शरीर का सारा दर्द दूर हो गया है। रविवार, माघ ११ की रात्रि में घटित इस घटना के बाद से अन्नदा कुमार के चेहरे एवं विचारधारा में अनेक परिवर्तन देखा गया। इस तरह दरवेश जी की कृपा से मृत्यु संकट कट गया ।

कुम्भ मेले से वे काशी आ गये। यहाँ से पुरूलिया लौटते समय उनसे दरवेश जी ने कहा–"बेटा, इस बार बहुत प्रयास करके तुम्हें रखा गया है । अपने शरीर का ख्याल रखना–विश्राम करना। नींद आने पर दरवाजा बन्द कर, कमरे को अंधेरा करके सो जाना।"

कुम्भ के समय अन्नदा कुमार को जो अनुभव व दर्शन हुआ उसका कुछ विवरण यहाँ दिया जा रहा है– (१) एक दिन श्री विजयकृष्ण छावनी में साधु-भंडारा के समय जब आरती की जा रही थी, उस समय उन्होंने गोसाँईजी को देखा और जब साधुओं का भोजन प्रारम्भ हुआ तब गोसाँईजी के साथ श्री भोलानन्द गिरि एवं श्री रामदास काठिया बाबा को पंक्तियों के बीच घूमते हुए देखा। बाद में दरवेश जी से एकांत में पूछने पर उन्होंने कहा–'तुमने ठीक देखा है। आज वे सभी आये थे।' उनके यहाँ आने से सभी कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न हुआ। इसके पूर्व ऐसा कभी नहीं देखा गया।

(२) एक दिन अन्नदा कुमार को लेकर दरवेश जी नाव द्वारा गंगा पार कर, झूंसी में एक अन्यन्त दुबले-पतले वृद्ध साधु के पास पहुँचे। अन्नदा कुमार से उन्होंने साधु को प्रणाम करने के लिए कहा और बताया कि इस साधु का उनके साथ पुराना सम्बन्ध है। इनका शरीर बहुत प्राचीन है। अब ये शीघ्र ही शरीर छोड़ देंगे।

(३) एक दिन दरवेश जी कुछ शिष्यों के साथ एक साधु के पास पहुँचे और शिष्यों से कहा कि गोसाँई जी जब कुम्भ में आये थे तब इन्होंने उनसे दीक्षा प्राप्त की थी। साधु ने बतलाया कि इस कुम्भ को लेकर उनका बारह कुम्भ देखना हो गया है। बड़े छत्ते के नीचे धूनी जलाकर वे बैठे रहते थे और किसी से कुछ नहीं मांगते थे । इनके पास दरवेश जी के शिष्य प्रायः जाया करते थे। वे भी सबको बहुत स्नेह करते थे।

(४) एक दिन दरवेश जी ने कहा–'तुम लोग मुंगफली लेकर खाओ–मैं देखूँगा।' अन्नदा कुमार व एक गुरूभाई वरदाकुमार जब रास्ते के किनारे बैठकर मुंगफली खाने लगे तब दरवेश जी एकदम बालकों की तरह आनन्द करने लगे। इस तरह का दरवेश जी का भाव, उन्होंने पहले कभी नहीं देखाथा।

सद्गुरू का शिष्यों के साथ किस प्रकार निःस्वार्थ सम्बन्ध रहता है, वह यहाँ पता चलता है। अन्नदा कुमार पुरूलिया वापस आकर अपनी स्त्री को पुनर्जीवन प्राप्त करने की पूरी घटना सुनाई। इसे सुनकर शैलबाला देवी रोते हुए कहने लगी–'दरवेश जी महाराज ने तुम्हारी रक्षा की है।'

अध्याय १७ : रामचन्द्रपुर आश्रम में परिवार को ले आना, व्रत पालन एवं दरवेश जी का आगमन

लगभग डेढ माह श्रीगुरूदेव के साथ रहकर जब अन्नदा कुमार पुरूलिया पहुँचे तब कुम्भ की स्मृति, गुरूदेव की कृपा आदि का स्मरण कर इस कर्म कोलाहल से किस प्रकार पीछा छूटे, इस सम्बन्ध में वे चिन्ता करने लगे। उसी समय गुरूदेव का पत्र मिला–'**कर्म करते हुए तुम्हें कर्म को जय करना होगा। सभी कर्म 'उनका' है–तुम केवल यंत्र हो। तुम्हारे द्वारा देश एवं मानव जाति की सेवा कराना–यही गोसाँई जी की इच्छा है। अन्यथा मैं बहुत पहले ही तुम्हें प्रेस आदि सहित यहां पर ले आता। तुम्हारा अपना कर्म नही है। तुम कर्म को भगवत् सेवा के ज्ञान से करो।**'

गुरूदेव का पत्र पाकर उनका मन स्थिर हुआ एवं वे अपने कर्त्तव्य कर्म में लग गये। फिर भी उनका मन सर्वदा कर्म जगत् से पृथक रहना चाहता था। इस तरह होली का समय आ गया एवं वे गुरूदेव के पास काशी पहुँचे। होली के दिन गुरू माँ की अनुमति से गोसाँई जी के मन्दिर में चन्दन, तुलसी एवं गुलाल देने के लिए वे गये। अन्नदा कुमार ने जब चन्दन, तुलसी एवं गुलाल गोसाँई जी के चरणो में चढ़ाया तब मूर्ति का चरण कोमल एवं स्वाभाविक प्रतीत हुआ । बार-बार उन्होंने इस तरह हाथ लगाकर देखा एवं प्रत्येक बार, इसी तरह का अनुभव हुआ। इसके बाद अपने गुरूदेव एवं गुरू माँ की उन्होंने पूजा की। काशी में दो-चार दिन आनन्दपूर्वक बिताकर जब वे पुरूलिया जाने लगे, तब गुरूदेव दरवेश जी ने उनसे कहा–'**पुरूलिया से परिवार के सभी लोगों को स्थायी रूप से रामचन्द्रपुर आश्रम में ले आओ और तुम पुरूलिया में रहकर अपना काम स्वयं करना । वस्त्र जितना कम हो सके धारण करना और दिन में एक बार भोजन करना। अभी इस तरह कार्य करते रहो, बाद में आवश्यक निर्देश दिया जावेगा।**'

रामचन्द्रपुर में आवश्यक व्यवस्था करने के पश्चात् परिवार के सभी लोगों को वे आश्रम में ले आए। इस वर्ष उन्होंने पहला आषाढ़ से, २१ दिनों का व्रत आरम्भ किया। **दरवेश जी ने उन्हें प्रतिवर्ष व्रत पालन करने का निर्देश दिया था। अन्नदा कुमार ने लगातार बारह वषो तक इस प्रकार के व्रत का पालन किया।**

व्रत के ग्यारहवें दिन एक आश्चर्यजनक घटना हुई। रात्रि ११ बजे अन्नदा कुमार विश्राम कर रहे थे। बाहर बहुत तेज वर्षा हो रही थी। अकस्मात् एक पुरुष एवं स्त्री बाहर आंगन में आए। शैलबाला देवी ने उन्हें देखकर पूछा–'कौन है?' उन्होंने कहा–'गौरी ने हमें यहाँ भेजा है। हमलोग 'हरि मन्दिर ' में रहेंगे। हमें बड़ी भूख लगी

है।' उनका शरीर संथाल लोगों के जैसा दिखा। शैलबाला देवी ने सोचा कि उनके परिचित गौरी नाम की स्त्री ने, घर में जगह की कमी होने के कारण शायद इन लोगों को यहाँ रहने के लिए भेज दिया है। उन लोगों की आवाज सुनकर अन्नदा कुमार जल्दी बाहर आये एवं सेवक रघु को उनके लिए भोजन लाने का निर्देश देकर उन्हें ठहराने के लिए स्कूल के कमरे में ले गये क्योंकि हरि मन्दिर का कमरा बहुत छोटा था। वे लोग कहने लगे– 'हमलोग वहीं हरि मन्दिर में रहेंगे, यहाँ नहीं रहेंगे।' अब अन्नदा कुमार उन्हें पुनः हरि मन्दिर में ले गये। इस बीच सेवक रघु भोजन ले आया। अचानक अन्नदा कुमार ने देखा कि वे दोनों वहाँ नहीं हैं । चारों तरफ देखा गया तथा आश्रम के बाहर भी काफी दूर तक उनकी खोज की गई, परन्तु उनका कुछ पता न चला। अन्नदा कुमार के मन में इससे बहुत दुःख हुआ कि अतिथि आए एवं उन्होंने भोजन व आश्रय माँगा, फ़िर अचानक कहाँ चले गये? अपने पूजा के कमरे में जाकर गुरूदेव के चित्र के सामने रोते हुए वे कहने लगे–''गुरूदेव ! यह क्या मेरा अपराध हो गया है?'' इस तरह रोते-रोते वे निद्रित हो गये। उस समय उन्हें अनुभव हुआ कि कोई कह रहा है–'चिन्ता मत करो हम सन्तुष्ट हो गये हैं।' दूसरे दिन इसी विषय पर जब वे चिन्ता कर रहे थे, तभी गुरूदेव का टेलीग्राम आया–''उन्होंने भोजन नहीं किया इसलिए तुम दुःख मत करो। तुमने जिन्हें देखा है वे खुश होकर गये हैं। हम भी प्रसन्न ह।'' अचानक टेलीग्राम पाकर अन्नदा कुमार को आश्चर्य हुआ। बाद में गुरूदेव ने पत्र मे लिखा–''**तुम्हारी आश्चर्यजनक तपस्या देखने हमलोग गये थे। व्रत में इस बार तुम्हें सारे दिन में केवल तीन बेल पत्ती खाने का निर्देश दिया था। हमलोग अदृश्य रहकर तुम्हारी ग्यारह दिन की कठोर तपस्या देखकर मुग्ध हो गये। तुम्हारे अज्ञात में जो तुम्हें आशीर्वाद देकर चले गये, वे थे–गोसाँई जी एवं माता योगमाया देवी।''**

गुरूदेव का पत्र पाकर मन शान्त हो गया। चौदहवें दिन एक अद्‌भुत प्रकार की शान्ति का उन्हें अनुभव हुआ। उन्नीसवें दिन से ७२ घंटे का अखण्ड नाम-संकीर्तन प्रारम्भ हुआ। विभिन्न ग्रामों से अन्तिम पांच दिनों में प्राप्त भिक्षा द्वारा, नर-नारायण सेवा की गई। अखण्ड कीर्तन के समय एक दिन कुछ नाग सांप यहाँ आ गये। इससे कीर्तन करने वाले लोग बहुत डर गये परन्तु उन्होंने कीर्तन बन्द नहीं किया। सर्प फन ऊँचा कर कुछ देर नृत्य करते रहे, उसके बाद अपने आप चले गये। इस अलौकिक घटना से नाम-कीर्तन का प्रभाव देखकर उपस्थित सभी लोग अवाक् रह गये।

व्रत एवं महोत्सव के समाप्ति के पश्चात् अन्नदा कुमार पुरूलिया चले गये। उस दिन अपने कार्यालय में बैठकर वे नाम-जप कर रहे थे, अकस्मात् एक दृश्य उन्हें दिखलाई पड़ा कि ''जगन्नाथजी एवं गोसाँई जी को एक रथ में लेकर वे रामचन्द्रपुर के आसपास के ग्रामों में भ्रमण कर रहे हैं और अन्त में आश्रम में पहुँचे।'' यह दृश्य

देखकर जब उनकी चेतना लौटी तब उन्होंने देखा कि दूसरे दिन ही जगन्नाथ जी की रथयात्रा का दिन है। अतः वे तुरन्त बस द्वारा रामचन्द्रपुर आ गये और रात्रि में ही जगन्नाथ जी की रथयात्रा के लिए रथ तैयार कर लिया। रथयात्रा के दिन गाँव में खीर का भोग लगाया जाता है, इसलिए शैलबाला देवी ने भी खीर बनायीं। उस समय अचानक एक गलित कुष्ठ रोगी आश्रम में वटवृक्ष के नीचे आकर कहने लगा–'माँ! तेरे हाथों से बनायी गयी खीर खाने के लिए आया हू । बडी भूख लगी है। मुझे भोजन दे।'' शैलबाला देवी ने जो भोग लगाया था वह थाली सहित लाकर उन्हें दे दिया और भोजन करने के लिए कहा । कुष्ठ रोगी ने कहा–'मुझे थाली में क्यों दे रहे हो? पत्तल में दो । शैलबाला देवी ने कहा–'नहीं, आप थाली में ही भोजन करिये।' ऐसा कहकर उन्होंने आसन बिछाकर उसे बैठा दिया और पीने का जल दिंया। वे भोजन करने लगे। शैलबाला देवी खीर और लाने के लिए रसोई घर पर गइ और जब वे खीर लेकर लौटो तो देखा वहाँ कोई नहीं है। भोजन व जल आदि जो दिया गया था सभी वे खा चुके थे। आसपास सभी तरफ खोज की गई परन्तु वह कुष्ठ रोगी कहीं भी नहीं दिखा।

दोपहर दो बजे के लगभग आश्रम से अन्नदा कुमार ने रथयात्रा प्रारम्भ की। संकीर्तन के साथ सैकड़ों लोग रथ लेकर निकले। अन्नदा कुमार ने अनुभव किया कि एक अन्य विशाल संकीर्तन दल रथ के आगे-आगे जा रहा है। इस आनन्द महोत्सव की समाप्ति के बाद अन्नदा कुमार व शैलबाला देवी के मन में यह प्रश्न बार-बार आने लगा कि वह कुष्ठरोगी कौन था?

पुरूलिया वापस आने के दो दिन बाद अन्नदा कुमार को दरवेश जी का पत्र मिला–**''तुम लोग एक बड़ी परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये हो। श्रीश्री जगन्नाथ देवजी एवं श्रीश्री गोसाँई जी ने तुम लोगों के द्वारा दी गई खीर परम आनन्द के साथ ग्रहण किया है। हम लोगों ने भी, रथयात्रा के उत्सव में सम्मिलित होकर परम आनन्द प्राप्त किया है। सभी कमो में तुम्हारी जय हो।''**

प्रतिवर्ष की तरह गोसाँई जी के जन्म उत्सव (रक्षाबन्धन के दिन) में अन्नदा कुमार इस वर्ष (सन् १९४२ ई) भी काशी गये थे। रामचन्द्रपुर में दुर्गापूजा का उत्सव इस वर्ष अत्यन्त साधारण तरीके से किया गया, क्योंकि कुछ दिन पहले ही अन्नदा कुमार परिवार सहित नजरबन्द किये गये थे। नजरबन्द किये जाने के बाद भी पुलिस उन्हें कही आने-जाने पर बाधा नहीं देती थी। पुलिस के लोग उनसे कहते थे कि आप केवल इतना ध्यान रखियेगा कि हमारी नौकरी न चली जाये।

गोसाँई जी के दीक्षा स्थान गयाजी के आकाशगंगा पहाड़ में प्रति वर्ष दिसम्बर माह में उत्सव होता है। २५ दिसम्बर को अन्नदा कुमार वहाँ के उत्सव में पहुँचे। इसी वर्ष इन्दौर में 'अखिल भारत शिक्षा सम्मेलन' में जाने के लिए उन्हें विशेष निमंत्रण

मिला। यथा समय गया से आगरा होते हुए वे इन्दौर पहुँचे। वहाँ उन्हें हिन्दी या अंग्रेजी में भाषण देने के लिए कहा गया। हिन्दी उन्हें नहीं आती थी तथा अंग्रेजी का ज्ञान भी सामान्य ही था । इसके बावजूद सभी के अनुरोध पर उन्होंने अंग्रेजी में भाषण दिया। दूसरे दिन संवाद पत्र में अपना अंग्रेजी भाषण देखकर वे अवाक् रह गये। गुरूदेव की कृपा से ही, अंग्रेजी में इस तरह के शब्दों तथा वाक्यों का प्रयोग उन्होंने भाषण में किया था। सम्मेलन के पश्चात् माण्डू, ग्वालियर, उज्जैन आदि स्थान घूमकर वे वीरराज्य नामक स्थान में गये। यहीं से उनके पूर्वज बंगाल आये थे। पूर्वजों द्वारा प्रतिष्ठित कंकाली मूर्ति का भी उन्होंने दर्शन किया।

यहाँ से काशी होते हुए वे गयाजी आ गये। यहाँ एक दिन उन्होंने अद्‌भुत स्वप्न देखा– गोसाँई जी और दरवेश जी के साथ वे नदी के किनारे श्मशान में स्थित एक काली मन्दिर में गये। सामने चिता जल रही थी। गोसाँई जी ने कहा–"उधर देखो!" चिता के ऊपर उनकी पत्नी का देह जल रहा था। इसके बाद अपने सभी पुत्रों के शवों को जलते हुए उन्होंने देखा। दरवेश जी ने पूछा–"क्या कष्ट हो रहा है?" अन्नदा कुमार ने इन्कार किया। उन्होने देखा, शव के जलने के बाद, एक स्वर्ण कान्ति युक्त नवीन शरीर धारण कर वे सभी धीरे-धीरे विलीन हो गये। अन्नदा कुमार ने गोसाँई जी व दरवेश जी को प्रणाम किया, तब उन्होने काली मन्दिर के भीतर ले जाकर उनसे काली मूर्ति को प्रणाम करने को कहा । अन्नदा कुमार काली मूर्ति को प्रणाम करके जब उठे, तब उन्होंने हाथ में प्रसाद दिया। इसके पश्चात् उनकी नीद टूट गयी। आश्चर्य होकर उन्होने देखा कि हाथों में हलुवे का प्रसाद है। उस प्रसाद को उन्होंने कई लोगों को वितरण किया। इस तरह स्वप्न में स्थूल प्रसाद पाकर अन्नदा कुमार मुग्ध हो गये।

इस वर्ष (१९४३ ई.) आठवां चैत्र से बाईसवां चैत्र, केवल १४ दिनों के लिए व्रत का पालन अन्नदा कुमार के लिए दरवेश जी ने स्थिर किया। इस बार अन्नदा कुमार की पत्नी ने उनसे कहा कि यदि तुम्हें दरवेश जी का दर्शन मिले तो मुझे भी दर्शन करवाना। दोनों बहुत व्याकुलता पूर्वक प्रार्थना करने लगे। तीन दिन बीत गये। व्रत के चौथे दिन, अपने भजन कुटीर में रात्रि के समय गुरूदेव का दर्शन पाकर अपनी पत्नी को बुलाने के लिए अन्नदा कुमार दौड़े। पत्नी को लेकर कुटीर के भीतर उन्होंने प्रवेश किया और दरवेश जी को प्रणाम किया। पत्नी ने कहा कि मुझे तो यहाँ कोई दिखलाई नही पड़ रहा है। अन्नदा कुमार ने भावमग्न होकर देखा कि दरवेश जी का शरीर सामने रखे विग्रह में विलीन हो रहा है और विग्रह भी मानो ज्योति में लीन हो गया। अन्नदा कुमार ने बड़े तन्मयता के साथ यह सब दर्शन किये। जब उन्हें बाह्यज्ञान हुआ तब देखा कि उनकी पत्नी रोते हुए उनके चरणों में अपने इष्ट मंत्र का उच्चारण करते हुए प्रणाम कर रहीं है। अन्नदा कुमार ने पूछा–"क्या तुम्हें उनका

दर्शन मिला! यह तुम क्या कर रही हो?'' उनकी पत्नी ने कहा–''उनकी कृपा से मैंने मंत्र सुना। उन्होने यही मंत्र जप करने का निर्देश दिया है।'' फिर वे रोते हुए कहने लगीं कि ''मैंने अपने कान में उनकी मधुर वाणी को सुनी, परन्तु दर्शन नहीं हुआ।'' अन्नदा कुमार ने उन्हे सांत्वना देते हुए कहा–''तुम्हे एक दिन उनका दर्शन अवश्य मिलेगा। तुम उन्हें पाने के लिए मत्र की साधना करो।''

दिन व्यतीत होने लगे। अन्नदा कुमार अपनी साधना में लगे रहते थे। उनकी पत्नी घर के सभी कायो को समाप्त कर, नित्य उन्हें इष्ट मंत्र से प्रणाम करती थी। इससे अन्नदा कुमार को संकुचित होते देखकर वे कहतीं–'यही मेरे इष्ट की पूजा है।' इस तरह व्याकुल भाव से दोनों साधना में लगे रहे। व्रत के अन्तिम दिन अन्नदा कुमार अपने गुरुदेव की दिव्य मूर्ति को आँखें बन्द करके एवं खुली आँखों से भी सर्वत्र देखने लगे। वे भाव विव्हल हो गये। रात्रि के समय अचानक कुटिया आलोकित हो उठी एवं गुरूदेव का उन्होंने प्रत्यक्ष दर्शन किया। गुरूदेव ने आशीर्वाद देते हुए पूछा–''तुम्हारी क्या प्रार्थना है?'' अन्नदा कुमार ने कहा–**''मेरे परिपूर्ण दैन्य एवं दरिद्रता के मध्य तुम सर्वदा पूर्ण रूप से विराजमान रहो।'' गुरूदेव ने आशीर्वाद देकर कहा–''ऐसा ही होगा।'' उनकी पत्नी ने भी अपने कमरे में गुरूदेव की वाणी सुनी। गुरूदेव ने अदृश्य रूप में उनसे पूछा–''तुम क्या चाहती हो?'' उन्होंने प्रार्थना किया– ''मेरे संसार में तुम, मेरे सभी मातृत्व भावना को पूर्ण करते हुए आओ।'' अदृश्य रूप म ही गुरूदेव ने कहा–''ऐसा ही होगा।''**

इस तरह व्रत के समय गुरूदेव की अपार कृपा प्राप्त कर वे दोनों धन्य हो गये।

सातवां बैशाख को काशी से झरिया, धानबाद, नवद्वीप एवं आसनसोल होते हुए दरवेश जी ने रामचन्द्रपुर आने का कार्यकम बनाया। छब्बीसवां बैशाख से पाँचवां जेठ तक ११ दिन वे रामचन्द्रपुर आश्रम में रहे। आश्रम में यह उनका द्वितीय बार आगमन था। उस समय आश्रम में आज की तरह पक्के कमरे नहीं थे, केवल मिट्टी के कुछ कच्चे कमरे थे। दरवेश जी महाराज के आने से यहाँ उत्सव का सा माहौल हो गया । विभिन्न स्थानों से लोग उनका दर्शन करने आने लगे। अपने कुछ अनिवार्य कार्यवश अन्नदा कुमार को नित्य पुरूलिया जाना पड़ता था। प्रातः छः बजे की बस से जाकर, रात्रि आठ बजे वे लौटते थे। आश्रम से चार किलोमीटर की दूरी पर पुरूलिया के लिए बस मिलती थी। अन्य कोई साधन न रहने से वहाँ तक वे पैदल ही आते-जाते थे। प्रातः अपने सामने दरवेश जी उन्हें कुछ भोजन करवाते, फिर जाने देते थे। रात्रि के समय जब तक अन्नदा कुमार वापस नही आते तब तक वे भोजन नहीं करते थे।

दरवेश जी ने यहाँ अनेक लोगों को दीक्षा प्रदान किया। तारापद नामक एक दुराचारी व्यक्ति को भी उन्होंने दीक्षा दी। एक दिन अन्नदा कुमार की पत्नी को उन्होंने

दीक्षा दिया और कहा कि 'इसे दीक्षा देने के लिए ही मैं इस बार यहाँ आया हूँ।' उस दिन शैलबाला देवी के सिर में अत्यन्त पीड़ा थी। उनकी दीक्षा के पश्चात् प्राणायाम तथा अन्य नियम आदि बतलाने के लिए अन्नदा कुमार को उन्होंने निर्देश दिया। गहरी रात्रि में दरवेश जी सिद्ध पंचमुन्डी आसन में बैठकर ध्यानस्थ हो जाते थे।

अध्याय १८ : रामचन्द्रपुर आश्रम में अकाल के समय अन्नक्षेत्र प्रारम्भ

मानभूम की तरफ, तीन वर्ष लगातार ठीक समय पर वर्षा न होने से लगभग अकाल जैसी स्थिति रही। सन् १९४३ ई. को पूरे बंगाल में अकाल प्रारम्भ हो गया। यद्यपि रामचन्द्रपुर आश्रम की तरफ से थोड़ा बहुत राहत कार्य हर वर्ष किया जाता था, परन्तु यह आवश्यकता के अनुपात में बहुत ही कम था । अन्नदा कुमार ने इस वर्ष गोसाँई जी के जन्मोत्सव (रक्षाबन्धन) के समय काशी जाने के पहले ही राहत कार्य प्रारम्भ कर दिया था। काशी के उत्सव में इस बार उनका मन नहो लगा। उत्सव समाप्त होते ही वे दरवेश जी के निर्देश से रामचन्द्रपुर लौट आये। यहाँ आसपास के गाँवा का परिभ्रमण कर वे विचलित हो उठे। अपने क्षुद्र सामर्थ्य से हजारों पीड़ित लोगों के लिए किस प्रकार की व्यवस्था की जाये? आश्रम में इसी चिन्ता के साथ वे आसन पर बैठकर गोसाँई जी के निकट व्याकुल भाव से प्रार्थना करने लगे–''**हे ठाकुर! तुम इन लोगों की रक्षा करो।**''

इस प्रकार प्रार्थना करते-करते वे आसन में ही निद्रित हो गये। स्वप्न में उन्होंने देखा–''**आश्रम में एक विशाल अन्नक्षेत्र प्रारम्भ किया गया है। हजारों की संख्या में लोग भोजन कर रहे हैं। गोसाँई जी व दरवेश जी वहाँ उपस्थित रहकर देख रहे हैं । उस समय अन्नदा कुमार स्वयं भोजन परोस रहे हैं। भोजन परोसते समय अचानक उनका कटि वस्त्र शरीर से गिर पड़ा तथा वे वस्त्रहीन हो गये। इसे देखकर गोसाँईजी व दरवेश जी जोरों से हँसने लगे।**'' उनकी निद्रा भंग हो गई। सुबह आसन में बैठने के बाद इसी दृश्य को उन्होंने पुनः देखा। स्वप्न का उल्लेख करते हुए, पत्र में दरवेश जी से उन्होंने अन्नक्षेत्र खोलने के लिए प्रार्थना की। दरवेश जी के साथ इस विषय में जो पत्र व्यवहार हुआ उसका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

अन्नदा कुमार की प्रार्थना पर दरवेश जी ने उत्तर लिखा– **दैव के ऊपर निर्भर रहकर जो पुरूषाकार (अपना उद्यम) से विस्मृत हो जाता है, वह मूर्ख है। तुम्हारा धन-हीन होने से, इस तरह के कार्य (अन्नक्षेत्र चलाने) में अग्रसर होना उचित मालूम नहो होता। यदि कर सको तो अपने सामर्थ्य के अनुसार तुम लोगों का दु:ख दूर करने का प्रयास करो । इस प्रकार के अच्छे एवं वृहत कार्य का भार अपने सिर पर मत लो ।**

मैंने तुम्हें किसी समय कहा था कि जो कार्य हाथ के सामने आये उसे करते रहो। नया कर्म प्रारम्भ मत करो। तुम्हारा यह कार्य, इस उपदेश के विपरीत है। तुमने,

अपने आप जो दीन-दु:खी लोग आयें, उनकी सहायता की बात नहीं कही है वरन् चारों ओर पुकार कर तुम भीड़ जमाना चाहते हो। अपना मन स्थिर करो। जिसे चाहो चावल या आटा देकर सहायता करो। अन्नक्षेत्र खोलकर अपने को अपरिसीम (अपार) कर्म के मध्य मत डुबाओ।

दरवेश जी का पत्र पढकर अन्नदा कुमार चिंतित हो गये। सुबह आसन में बैठने पर उनकी आँखों के सामने अनाहार से क्लिष्ट लोगों का शरीर दिखलाई पड़ने लगा तथा स्वप्न में देखे हुए दृश्य भी बार-बार आँखों के सामने आने लगे। उन्होंने आसन से उठकर, अन्नक्षेत्र खोलने के सम्बन्ध में दरवेश जी को पुनः पत्र लिखा। इस बार दरवेश जी ने लिखा–

''तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। बिड़ला सरीखा व्यक्ति जिस काम को करने में झिझकता है, तुम उसे करने जा रहे हो! तुम्हारा शरीर अस्वस्थ है। अन्नक्षेत्र चालू करने पर हजारों लोग आते रहेंगे। कमजोर शरीर से कठिन परिश्रम करते हुए तुम मर जाओ–यह मैं कभी सहन नहीं कर सकता। तुम अपने संकल्प का त्याग करो।''

दरवेश जी का पत्र मिलने पर भी अन्नदा कुमार के मन में विचार आया कि गुरूदेव के अपने मन की बात यह कभी नहीं हो सकती। अब वे पूजा के कमरे में जा कर व्याकुल भाव से प्रार्थना करने लगे। तन्मय अवस्था में उन्होंने गोसाँई जी एवं दरवेश जी को देखा। वे कह रहे थे–**''ऐसा महान् कर्म–इतने लोग भूखे मर रहे हैं और तुम बैठे रहोगे!''**

अन्नदा कुमार सोचने लगे पत्र में गुरूदेव निषेध कर रहे हैं और स्वप्न एवं ध्यान में इस कार्य को करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। कई बार पत्र विनिमय द्वारा स्पष्ट निर्देश प्राप्त नहीं हुआ तब अन्नदा कुमार ने दरवेश जी को लिखा–**''तुम लोगों की इस प्रकार का पहेली का अर्थ मेरी समझ के परे है। जो बोलना है स्पष्ट कहो।"**

दरवेश जी ने एक विस्तृत पत्र में लिखा–

(पत्र का प्रथम अंश)–**''जो सब कार्य तुम करना चाहते हो, उसकी अपेक्षा महत् कार्य और क्या हो सकता है? परन्तु अपनी शक्ति व सामर्थ्य का अतिक्रमण करते हुए किसी कार्य में हाथ लगाना उचित नहीं है।**

किसी कार्य को आरम्भ करने के समय, विचार करना आवश्यक है, assets (सम्पत्ति) और liabilities (दायित्व) सोचकर देखना चाहिए। उस समय भगवान् की कृपा को assets के हिसाब से नहीं पकड़ना चाहिए क्योंकि दया या कृपा करना, दयामय की सम्पूर्ण इच्छा पर निर्भर है। दया या कृपा के लिए प्रार्थना की जा सकती है परन्तु दबाव (देना ही पड़ेगा) नहीं चलता। इसी कारण हिसाब करते समय भगवान् के ऊपर प्रत्याशा नही रखनी चाहिए वरन् आशा रखने पर वे विमुख होते हैं।

केवल खराब कायो से नही, अच्छे कायो से भी मनुष्य की उन्नति में बाधा

आती है। लोगों के दुःख एवं अभाव देखकर तुम केवल दुःखित ही नही होते हो बल्कि पूर्णतः आत्मविस्मृत हो जाते हो। ऐसे समय तुम्हारा proportion (सन्तुलन) लुप्त हो जाता है। यह तुम्हारे चरित्र में draw back (कमजोरी) है। अपने को सम्पूर्ण संयत रखकर सब कार्य में अग्रसर होना चाहिए।

कंगाल, दुःखी, अन्धे, लूले एवं कुष्ठ रोगग्रस्त लोगों से तुम्हारा आश्रम भर जाएगा। इन्हें डेढ़ या दो महिने के पश्चात् तुम आश्रम से हटा सकोगे–ऐसा सम्भव नहो होगा। emotion (भावुकता) द्वारा carried (परिचालित) न होकर विचार एवं व्यवस्था के हिसाब से कार्य करना। तब तुम्हारे द्वारा इस प्रकार की स्वीकृति पाने पर मुझे अपने विचार से निवृत्त होना पड़ेगा। भगवान् तुम्हारे सहायक हो!

पत्र के दूसरी तरफ लिखा था–(पत्र का द्वितीय अंश)

तुम कह सकते हो–इतने अच्छे कार्य में, इतने महान् कार्य में वार-बार मैं क्यों बाधा दे रहा हूँ। तुम्हारी जमीन-जायजाद सब रहेंगे, स्त्री-पुत्र-कन्या के शरीर में अलंकार शोभित होंगे और तुम रूपया संग्रहित कर दान-खैरात करोगे, इसमें गोसाँई जी कभी सहायता नहो करेंगे। अब सोचकर देखो! स्वप्न में भोजन परोसते समय तुम वस्त्रहीन क्यों हो गये थे? इस प्रकार वस्त्रहीन होकर यदि दूसरों के लिए अपना सब कुछ दे सको–तभी गोसाँई जी सहायता करेंगे, अन्यथा नहीं! अब अपना कर्त्तव्य स्थिर करो।''

अन्नदा कुमार को जब यह पत्र मिला तब पत्र का प्रथम अंश पढकर ही वे क्षुब्ध हो उठे और पत्र के दूसरी तरफ देख नहीं पाये। उसी समय दरवेश जी को उन्होंने कड़े शब्दों में पत्र लिखा एवं उसे तुरन्त आसनसोल भेजकर पोस्ट किया गया, जिससे पत्र जल्दी काशी पहुँचे। पत्र मे अन्नदा कुमार ने लिखा–

''इन सब क्षुधार्थ, मृत्युशय्या में पड़े हुए लोगों के मध्य यदि तुम्हें एवं गोसाँई जी को मैं न पा सका, तब तुम लोगों को मैं स्वीकार नहीं करता। चाहे तो इनकी व्यवस्था करो, अन्यथा मुझे इनकी व्यवस्था करने में सहायता करो। इन दोनों में से, मैं केवल स्पष्ट एक जवाब चाहता हूँ!''

पत्र को भेजने के बाद वे सुबह पुरूलिया चले गये। दरवेश जी को इस तरह कड़ा पत्र लिखने से उनके मन में तनाव सा हो रहा था। अपने कार्यालय में पहुँच कर उन्होंने दरवेश जी के पत्र को फिर से पढ़ा। इस बार पत्र को पलटकर जब द्वितीय अंश को देखा, तो उसे पढ़कर उनकी आँखों में अश्रु आने लगे। अनुतप्त चित्त से वे बार-बार गुरूदेव के चरणों में क्षमा प्रार्थना करने लगे। उसी समय गाड़ी की व्यवस्था कर वे रामचन्द्रपुर वापस आए एवं परिवार के सभी लोगों को गुरूदेव का पत्र दिखलाया। स्त्री-पुत्र-कन्या सभी ने अपने सब गहने उसी समय प्रदान किये एवं गुरूदेव को पत्र में सभी लोगों ने हस्ताक्षर करते हुए, लिखा–**''अन्नक्षेत्र के कार्य में**

हमलोग अपना सब कुछ देने के लिए प्रस्तुत हैं।''

पुरूलिया में प्रेस में रखे कागजों को आधी कीमत पर बेचने से पाँच सौ रूपये मिले। गहनों को गिरवी रखने पर सात सौ रूपये मिले। आश्रम में उस दिन संध्या के समय आसन में बैठकर ध्यान में अन्नदा कुमार ने स्पष्ट देखा कि गुरूदेव पत्र लिख रहे हैं एवं सौ रूपये भेज रहे हैं । पत्र लिखने की तारीख १६ है, यह भी देखा।

आसन से उठने के पश्चात् स्कूल के प्रधान शिक्षक दासरथी बाबू को उन्होने कहा–'आज की तारीख में गुरूदेव के नाम पर सौ रूपये और हमारे नाम पर बारह सौ रूपये लिखकर दान खाता तैयार करा।'

अन्नदा कुमार को बात सुनकर सभी कहने लगे कि आपका दिमाग खराब हो गया है। दरवेश जी पत्र में बार-बार अन्नक्षेत्र शुरू करने को मना कर रहे हैं और आप उनके ही नाम पर सौ रूपया जमा करने के लिए कह रहे हैं–यह कैसे हो सकता है? परन्तु अन्नदा कुमार ने दृढ़तापूर्वक कहा–'मैंने देखा है कि दरवेश जी १६ तारीख को सौ रूपया भेज रहे हैं।'

तीन दिन बाद दरवेश जी का पत्र व सौ रूपया प्राप्त हुआ। पत्र लिखते समय उनके अश्रु पत्र पर गिरे थे इसके स्पष्ट चिन्ह देखकर एवं पत्र पढ़कर सभी अश्रुमग्न हो गये। पत्र में दरवेश जी ने लिखा था–

''तुम्हारी एकाग्रता एवं परदुःख-प्रवणता (कातरता) के निकट मैंने अपनी हार मान ली। इस अन्नक्षेत्र के कार्य को प्रारम्भ करने में, तुम्हारा जो आग्रह देखा–यथा सर्वस्व विसर्जन देकर दीन-दुःखी लोगों के लिए अन्न की व्यवस्था करने की जो प्राणपन चेष्टा तुम्हारे भीतर विकसित हो गयी है, वह देखकर मैं मुग्ध हो गया। मैं अपने सारे अन्तःकरण से तुम्हारे इस कार्य का अनुमोदन कर रहा हूँ। जो होने का है, वही होगा। दयाल गुरूदेव तुम्हारे इस कार्य में सहायक हों । आशीर्वाद स्वरूप तुम्हारे इस कार्य के लिए मैं सौ रूपया भेज रहा हूँ। आशा करता हूँ यह अन्नहीनों को थोड़ा अन्न प्रदान कर मुझे कृतार्थ करेगा। अब सब कुछ नित्य-निरन्तर आता रहेगा!

परन्तु बेटा! भावुकता द्वारा चलित मत होना। भाव तुम्हारे अधीन रहना चाहिए। सभी विषयों में एक प्रणालीबद्ध (नियमित) कर्म पद्धति रहना आवश्यक है।''

दरवेश जी का पत्र पढ़कर सभी के मन में एक विशेष शक्ति एवं उत्साह का संचार हुआ।

अन्नदा कुमार ने खाद्य वस्तुओं की व्यवस्था के लिए पुरूलिया जाकर डिप्टी कमिश्नर से मुलाकात की। उस समय एक मुसलमान सज्जन श्री उमर साहब वहाँ के डिप्टी कमिश्नर थे। अन्नदा कुमार के साथ उनका पूर्व परिचय था। अन्नदा कुमार का, अन्नक्षेत्र खोलने का, विचार सुनकर वे बहुत प्रभावित हुए एवं अन्नक्षेत्र शुरू होने के दिन उन्होंने उद्घाटन करना सहर्ष स्वीकार किया। उन्होंने लिख दिया–

Any quantity of food stuff may be purchased and may be taken to Ramchandrapur Ashram by train or by bus, truck or cart.

रामचन्द्रपुर में खाद्य पदार्थों के वितरण के लिए निम्न व्यवस्था की गयी–

(१) जिनकी खाद्य पदार्थ कय करने की क्षमता है, उन्हें कन्ट्रोल रेट पर खाद्य पदार्थ विकय करना।

(२) गरीब लोग जो किसी प्रकार तंगी से अपना खर्च चलाते हैं, उन्हे आधी कीमत पर खाद्य पदार्थ देना।

(३) परिश्रम करने योग्य व्यक्तियों के लिए राहत कार्य की व्यवस्था करना।

(४) शिशु, वृद्ध, असहाय लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था। आश्रम में आकर जो नित्य भोजन कर सकते हैं, उन्हें तैयार भोजन देने की व्यवस्था एवं जो दूर गांवों में रहते हैं, उन्हें सात दिनों के लिए आवश्यक चावल आदि ले जाने की व्यवस्था प्रारम्भ की गई।

जिस दिन अन्नक्षेत्र का उद्घाटन करने डिप्टी कमिश्नर उमर साहब आये, उस दिन लगभग आठ हजार लोग भोजन करने आये थे। अनाहार से क्लिष्ट लोगों के शरीर की हालत देखकर उमर साहब की आखों में अश्रु आ गये। उन्होंने कहा–**'जैसे भी हो इस सेवा-कार्य को चालू रखना पड़ेगा।' उन्होंने स्वयं सौ रूपये दिये।**

उस दिन केवल दो हजार व्यक्तियों के लिए भोजन तैयार किया गया था, परन्तु सब लोग यह देखकर आश्चर्य चकित हो गये कि इतने ही भोजन में आठ हजार लोगों ने भरपेट भोजन किस प्रकार पा लिया। उमर साहब बार-बार कहने लगे–'यह कैसे हुआ?' अचानक उनका ध्यान एक छोटे से कमरे की तरफ गया और उन्होंने पूछा कि इस कमरे में क्या है? अन्नदा कुमार ने कहा कि गोसाँई जी की पूजा करने का कमरा है। इनकी कृपा से ही यह सब हो रहा है। उन्होंने कहा–'क्या मैं भीतर जा सकता हूँ?' अन्नदा कुमार उन्हें भीतर ले गये। उमर साहब ने गोसाँई जी एवं दरवेश जी के चित्र को देखकर साष्टांग प्रणाम किया। अन्नदा कुमार ने अवाक् होकर पूछा– आप लोग तो इस प्रकार से प्रणाम नहो करते हैं? उमर साहब ने कहा–**''आज, मेरा रोजा रखना सार्थक हुआ। मैंने इन महात्माओं की उपस्थिति प्रत्यक्ष की है।''** उन्होंने अंग्रेजी में कहा– Mr. Chakraborty, I see the Saints are here. **मैं सोच रहा था कि यहाँ किस प्रकार से यह अप्राकृतिक घटना घट रही है। आपने मेरा अत्यन्त उपकार किया है। मेरे अनेक सन्देह नष्ट हो गये। बाद में उन्होंने जन समुदाय से कहा–'इस जनसेवा में जो भी सहायता देंगे, मैं उनके निकट कृतज्ञ रहूँगा।'** इसके पश्चात् बार-बार गोसाँई जो को प्रणाम करके वे पुरूलिया लौट गये।

आश्रम में माता शैलबाला देवी के निर्देशानुसार स्कूल के शिक्षकों ने रसोई का

भार लिया। गांव के लड़कों ने परोसने का कार्यभार लिया। भारती प्रेस के कर्मचारियों ने पुरूलिया से आवश्यक सामान खरीदकर भेजने का कार्यभार लिया। पुरूलिया के एक प्रसिद्ध दुकानदार ने आवश्यक सभी सामग्री देने का भार सहर्ष लिया। उसने कहा कि 'आपको जो आवश्यक हो, ले जाइये—रूपये की चिन्ता न करें—जब आपकी इच्छा हो भिजवा दीजिये।'

नित्य दस क्विन्टल भोजन तैयार होता था। इसके अतिरिक्त कन्ट्रोल दर, अर्धमूल्य, बिना मूल्य एवं सात दिन के लिए अन्न देने की व्यवस्था की गई। सभी कार्य सुचारू रूप से चलने लगा। दरवेश जी महाराज का आशीर्वाद था कि—''अब सब कुछ नित्य-निरन्तर आता रहेगा!'' इस सत्य को सभी लोगों ने प्रत्यक्ष किया।

सितम्बर से दिसम्बर (सन् १९४३ ई.) तक लगातार चार महिने अन्नक्षेत्र चलता रहा। इस समय की कुछ घटनाओं का उल्लेख करने से स्पष्ट हो जाएगा कि गोसाँई जी की कृपादृष्टि यहाँ सर्वदा किस प्रकार रही—

(१) एक दिन रसोई बनाने के लिए कोयला नही था। इससे सभी लोग चिन्तित हो उठे। कुछ लोगों ने तय किया कि एक कमरे का छप्पर तोड़कर लकड़ी निकालकर, उससे रसोई प्रारम्भ की जाये। इसी बीच किसी ने आकर कहा कि चार बैलगाड़ी, कोयला लेकर कहीं जा रही है। दो-चार युवकों ने तय किया कि एक गाड़ी कोयला लूटकर, आज के रसोई की व्यवस्था की जाये। उनका मत था—जहाँ हजारों लोगों को भोजन मिलेगा वहाँ इस तरह लूट करना कोई अन्याय नहीं है। तभी देखा गया, चारों गाडियाँ आश्रम की तरफ ही आ रही है। आश्रम आकर गाड़ी वालों ने पत्र देते हुए कहा कि बाबू ने यह कोयला अन्नदाबाबू के लिए भेजा है। अन्नदा कुमार आश्रम में मौजूद नहीं थे। स्कूल के प्रधान शिक्षक ने पत्र पढ़कर देखा, उसमें लिखा था—'आश्रम में अन्नक्षेत्र के लिए चार गाड़ी कोयला भेज रहा हूँ। गाड़ी वाले को किराया दे दिया गया है। कृपया इसे ग्रहण करें।'

सभी लोग आनन्दमग्न होकर 'गोसाँई जी की जय' ध्वनि देते हुए पूजा घर के सामने साष्टांग प्रणाम करने लगे।

(२) एक दिन एक बालक ने कहा कि जहाँ सब लोग भोजन कर रहे ह वहाँ दरवेश जी को घूमते हुए उसने देखा है। इस तरह कई लोग गोसाँई जी व दरवेश जी का, विभिन्न समय में दर्शन पाकर धन्य हुए।

अन्नदा कुमार ने अपने 'आमार जीवन' ग्रन्थ में लिखा है— **अप्रकट होने के पश्चात्, गोसाँई जी की इस विराट दान-लीला में अनेक महापुरूषों का प्रत्यक्ष दर्शन हम लोगों ने पाया था। यह सब गोसाँई जी की कृपा से ही सम्भव हुआ। एक बार ऐसा हुआ कि शरीर अस्वस्थ होने से मैं कई दिन बाहर न जा सका। हाथ में एक पैसा नहीं था। मैं गुरूदेव के चरणों में व्याकुल भाव से प्रार्थना करता रहा। काशी में रहते हुए**

भी उन्होंने यहाँ प्रत्यक्ष दर्शन देकर मुझे डांटते हुए कहा–''यह क्या तुम्हारा कार्य है? यह क्या तुम कर रहे हो? तुम केवल 'उनकी' करूणा का अवलोकन करो–और कुछ करने की आवश्यकता नही है!'' रूपया, कपड़ा, अन्नादि ऐसे-ऐसे लोगों के पास से भी आया जिनका नाम व पता कुछ भी नही मालूम था। यहाँ जनसंघ के नेता श्यामाप्रसाद मुखर्जी सर्वदा खबर लेते रहते एवं कुछ-कुछ रूपया भी भेजते रहते थे। इस महान् यज्ञ में साठ हजार से भी अधिक रूपये खर्च हुए थे। किसी के पास से हमें, कुछ भी मांगने की आवश्यकता नहीं पड़ी । परम दयाल गोसाँई जी की अपार करूणा से यह असम्भव कार्य सम्भव हुआ था। हमलोग केवल दर्शक थे।

उस समय साठ हजार रूपये का मूल्य आज के हिसाब से साठ लाख रूपये से भी अधिक होगा।

(३) अन्नक्षेत्र के कार्यकाल में उमर साहब का तबादला (Transfer) हो गया। जाने के पूर्व उन्होंने सरकार को एक गुप्त रिपोर्ट में लिखा–''**यह अन्नक्षेत्र किस प्रकार चल रहा है, अत्यन्त विस्मयजनक है। जिला में अनेक धनी व्यक्ति हैं । उनमें से कोई इस कार्य के लिए आगे नही आया। आगे बढ़ा एक ऐसा महान् व्यक्ति जो रास्ते में रहता है एवं उसकी अपनी कुछ भी सम्पत्ति नहीं है। यह किसी जादूगर के डण्डे की करामात से भी बहुत बड़ी करामात है। जो अविश्वासी हैं, इसे देखकर उनका विश्वास पुनः आ जावेगा। मेरे बाद यहाँ जो आएंगे उनसे मैं इस अन्नक्षेत्र के परिदर्शन करने का अनुरोध कर रहा हूँ।**''

उमर साहब के पश्चात् नये डिप्टी कमिश्नर श्री वंशीधर आये। वे बडे ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे। पुरूलिया आने के साथ ही उन्होंने रामचन्द्रपुर आश्रम आकर अन्नक्षेत्र परिदर्शन किया एवं अन्नदा कुमार से कहा–'मेरे द्वारा जो भी सम्भव होगा मैं अन्नक्षेत्र के लिए करूँगा। आप केवल मुझे आदेश करेंगे।'

(४) आश्रम में इन चार महिने, अनाहार से क्लिष्ट लगभग पांच सौ लोगों की चिकित्सा भी की गई। पथ्य-दवा आदि की भी व्यवस्था की गई। इनमें से पांच लोगों की मृत्यु, अतिरिक्त भोजन करने से हुई थी।

(५) अन्नक्षेत्र के अन्तिम दिन एक आश्चर्यजनक धटना हुई। गरीब लोगों को वस्त्र प्रदान करने के लिए ढ़ाई हजार टिकिट वितरित किया गया। वंशीधर साहब को भी उस दिन आने के लिए अनुरोध किया गया था। वस्त्र वितरण करते समय देखा गया कि लगभग चार हजार से अधिक प्रार्थी लोग आ गये हैं। अधिकांश महिलाओं के शरीर के वस्त्र फटे हुए थे। कई लोगों के शरीर में केवल चिथड़ा लपेटा हुआ था। इतने लोगों को देखकर अन्नदा कुमार चिन्तित हो गये कि इनमें से किन्हें वस्त्र दिया जाये? लगभग तीन बजे, तीन गाड़ियाँ आश्रम में आयी । उसमें श्री वंशीधर, एस.डी.ओ. तथा जिला बोर्ड के सभापति आये। बातचीत के समय श्री

वंशीधर को पता चला कि यहां लोगों के अनुपात में वस्त्र कम ह । तब उन्होंने कहा कि 'आप लोग चिन्ता न करें, हमारे साथ तीन गठरी में लगभग दो हजार वस्त्र हैं।' अब सभी लोगों को वस्त्र वितरण करने के बाद भी ८० वस्त्र बच गये। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने 'गोसाई जी की जय' ध्वनि करते हुए आनन्द व्यक्त किया।

अन्नक्षेत्र का कार्य समाप्त कर, २४ दिसम्बर को अन्नदा कुमार गयाजी में गोसाँई जी के दीक्षा स्थान आकाशगंगा पहाड़ पर महोत्सव में पहुँचे। दरवेश जी वहाँ पहले से उपस्थित थे। अन्नदा कुमार ने जैसे ही उनको प्रणाम किया, दरवेश जी ने तुरन्त उन्हें आलिंगन करते हुए, छोटे बच्चों की तरह चुम्बन किया एवं कहा–"**तुम्हारा सभी कर्म समाप्त हुआ । अब तुम जो भी कार्य करोगे–वह सब मेरा कार्य होगा। आज से तुम्हारे सभी कर्मा-कर्म, पाप-पुण्य, अच्छा-बुरा सभी मेरा है। तुम तो जन्म-जन्मान्तर से मेरे ही हो !**"

अध्याय १९ : पुत्र की दीक्षा एवं अन्नदा कुमार को गोसाँई जी का प्रत्यक्ष निर्देश

गयाजी से वापस आकर अन्नदा कुमार ने रामचन्द्रपुर से लगभग २० किलोमीटर की दूरी पर 'बाथान बाड़ी' नामक गांव में एक आश्रम की स्थापना की एवं उसका नाम ''श्रीश्री विजयकृष्ण सेवाश्रम'' रखा। इस आश्रम की स्थापना में आसपास के गांव के लोगों ने जो सहायता की एवं उत्साह दिखलाया, उससे आश्रम को लेकर एक नयी धर्म भावना का संचार उन सभी लोगों के भीतर देखा गया। यहाँ एक पूर्व माध्यमिक पाठशाला भी प्रारम्भ की गयी। आश्रम में नियमित रूप से कीर्तन एवं सत्संग प्रारम्भ हो गया। रास पूर्णिमा (कार्तिक पूर्णिमा) के समय यहाँ चौबीस घण्टे का अखण्ड नाम-संकीर्तन भी प्रति वर्ष शुरू हो गया। लगभग दस वषो तक यह सभी कार्य अच्छी तरह से होता रहा। उसके पश्चात् जब डी. व्ही. सी. (Damodar Vally Corporation) ने आसपास के साठ ग्रामों को अधिग्रहण कर 'पंचकोट बांध' का निर्माण किया तब यहाँ के आसपास का अधिकांश इलाका पानी में डूब गया । इसके कारण आश्रम के इन सब कार्यों में पहले जैसी रौनक नहो रही । यहाँ आज भी स्कूल चल रही है एवं प्रतिवर्ष रास पूर्णिमा में अखण्ड नाम-संकीर्तन का उत्सव होता है।

सन् १९४४ ई. को दिल्ली में 'अखिल भारत बंग भाषा साहित्य सम्मेलन' में भाग लेने, अन्नदा कुमार आठ मार्च को वहाँ पहुँचे। सम्मेलन में कई साहित्य प्रेमियों से उनका परिचय हुआ। उस समय माँ आनन्दमयी भी दिल्ली में थी। माँ के साथ उन्होंने यहाँ कई बार मुलाकात की । माँ, अन्नदा कुमार से अत्यन्त स्नेह करती थी।

दिल्ली से अन्नदा कुमार गुरूदेव के पास काशी आ गये। गुरूदेव ने अन्नदा कुमार के ज्येष्ठ पुत्र नन्ददुलाल की जन्म-पत्रिका मंगवाकर अच्छे ज्योतिषियों को दिखलाया। सभी ने बालक के भविष्य के सम्बन्ध में उच्च विचार प्रकट किये। काशी में रामनवमी के अवसर पर, दरवेश जी के निर्देशानुसार नन्ददुलाल का उपनयन संस्कार सम्पन्न हुआ। इसके बाद उसे दरवेश जी ने दीक्षा प्रदान करने का विचार किया। नन्ददुलाल को भविष्य में काशी मठ का महन्त बनाने का उनका विचार था। उन्होंने उस समय कहा था –'१८ वर्ष की उम्र तक, बालक की गतिविधियों का निरीक्षण करने के पश्चात् ही इस सम्बन्ध में निर्णय लिया जा सकेगा। यहाँ के महन्त का संन्यासी होना आवश्यक है।' नन्ददुलाल इस समय ७ वर्ष के थे।

नन्ददुलाल की दीक्षा के दिन अन्नदा कुमार को भी मन्दिर में उपस्थित रहने के लिए दरवेश जी ने कहा था किन्तु किसी कार्य-वश वहाँ पहुचने में उन्हें देर हो गई। दरवेश जी ने यथा समय दीक्षा कार्य प्रारम्भ कर दिया। दरवाजा बन्द देखकर अन्नदा कुमार वहीं बाहर बैठ गये। नन्ददुलाल की दीक्षा सम्पन्न होने के बाद दरवेश जी ने अन्नदा कुमार को मन्दिर के भीतर बुलाया एवं दरवाजा बन्द कर दिया। मन्दिर के भीतर एक तरफ दरवेश जी एवं दूसरी तरफ अन्नदा कुमार व नन्ददुलाल बैठे थे। दरवेश जी ने कहा–'**मेरी बात नही है–गोसाँई जी जो कह रहे हैं, ध्यान से सुनो!** अन्नदा कुमार रोमांचित हो उठे। मन्दिर में नामब्रह्म का आलेख, गोसाँई जी एवं योगमाया देवी की संगमरमर की मूर्ति प्रतिष्ठित है। अन्नदा कुमार ने देखा– मूर्ति की जगह में गोसाँई जी प्रत्यक्ष बैठे हैं और कह रहे हैं–''**दरवेश के देहत्याग के पश्चात् तुम्हारे माध्यम से यह दीक्षा प्रवाह विस्तृत होगी । दीक्षा की पद्धति देख लो।''उन्होंने दीक्षा की पद्धति बतला दी। इस तरह एक घण्टा बीत गया। अन्नदा कुमार ने बाद में कहा था–''उस समय मैं कौन सी अवस्था में था, कह नही सकता। मैं एक भावावेश में मग्न सा था।**''भाग्यवान नन्ददुलाल ने इस घटना को देखने का सौभाग्य पाया। नन्ददुलाल को साधन के सम्बन्ध में आवश्यक शिक्षा एवं उपदेश के लिए दरवेश जी ने अन्नदा कुमार को कहा।

इस अविस्मरणीय घटना के पश्चात् दरवेश जी ने पुनः-पुनः अन्नदा कुमार को दीक्षा प्रदान करने का निर्देश दिया एवं अपने शरीर त्याग के पूर्व ही राजा कल्याणी प्रसाद को उनसे दीक्षा भी दिलवाया । यथा स्थान इस घटना का उल्लेख किया जाएगा ।

काशी से लौटने के पश्चात् अन्नदा कुमार पूर्ववत् अपने कार्य में संलग्न हो गये। इस वर्ष बारहवां जेष्ठ से व्रत प्रारम्भ हुआ। व्रत के समय सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत का पाठ करने के लिए दरवेश जी ने उन्हें निर्देश दिया। अन्नदा कुमार ने इसका पूर्णतः पालन किया। यद्यपि अन्नदा कुमार मौन रहकर भागवत् पाठ करते थे, फिर भी लोग नित्य भागवत् पाठ के समय उनके पास बैठ जाते थे। गोसाँई जी की कृपा से उन लोगों का मन एक ऐसे स्तर पर चला जाता था कि वे भी भागवत् पाठ के रस का आस्वादन करते थे। व्रतकाल में २ जून, एकादशी से अखण्ड नाम-संकीर्तन प्रारम्भ हुआ एवं नर-नारायण सेवा आदि कार्य अच्छी तरह से सम्पन्न हुआ।

सन् १९४४ ई. में अन्नदा कुमार के कई हिताकांक्षी लोगों का आकस्मिक निधन हुआ जिसमें पण्डित राखालचन्द्र विद्यारत्न, पूरी गोसाँई मठ के मोतीलाल गांगुली, साधु भोलानाथ डे, महा-महोपाध्याय प्रमथनाथ तर्कभूषण प्रमुख थे।

काशी में प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष इकत्तीस जुलाई से आठ अगस्त तक गोसाँई जी का जन्म महोत्सव चला। दरवेश जी के निर्देशानुसार पुत्र नन्ददुलाल को अन्नदा कुमार साथ में वहाँ ले गये। अचानक नन्ददुलाल को तेज बुखार हो गया। काशी में, मठ के पास ही 'आनन्द भवन' में सब लोगो के ठहरने की व्यवस्था की गयी थी। वहाँ पहुँचने पर, पहले दरवेश जी ने स्वयं होम्योपैथी दवा चालू की, बाद में काशी के प्रसिद्ध होम्योपैथी चिकित्सक की दवा शुरू की गयी, लेकिन बुखार कम नहीं हुआ। उन्हें टाइफाइड हो गया। इस तरह चौदह दिन बीत गये एवं रोगी की हालत दिन-पर-दिन खराब होती गई। दरवेश जी नित्य नन्ददुलाल को देखने आते थे। एक दिन उन्हे भी तेज बुखार हो गया था एवं वे उस दिन रोगी के पास न जा सके। शाम को चार बजे के पश्चात् नन्ददुलाल की अवस्था और नाजुक हो गई। डाक्टर ने उन्हें देखकर किसी प्रकार का भरोसा नहीं दिया। रात के आठ बजे देखा गया उनकी नाड़ी का स्पंदन बन्द हो गया। तुरन्त डाक्टर को बुलाया गया। सब देखकर डाक्टर बिना कुछ कहे बाहर निकल गये। नन्ददुलाल के शरीर को चादर से पूरा ढांक दिया गया। अन्नदा कुमार ने एक व्यक्ति को मठ में दरवेश जी के पास भेजते हुए उससे कहा कि पहले देखलेना सबका भोजन हो गया हो, उसके बाद यह समाचार देना । उस व्यक्ति के मठ में पहुँचते ही सामने दरवेश जी मिले एवं नन्ददुलाल के सम्बन्ध में उन्होंने पूछा। उस व्यक्ति ने कह दिया कि अब वह जीवित नहीं है। उस समय दरवेश जी को भोजन परोसा गया था । उन्होंने कहा–''जब तक नन्ददुलाल न उठे–मैं भोजन नही करूँगा!'' ऐसा कहकर अपने एक डाक्टर शिष्य को अन्नदा कुमार के पास भेज दिया एवं स्वयं गोसाँई जी के मन्दिर में प्रणाम करके लगातार मन्दिर की परिकमा करने लगे। कुछ देर बाद थककर वे कुर्सी में बैठ गये। उधर डाक्टर शिष्य ने जाकर देखा कि वहाँ कोई रो रहा है, तो कोई बार-बार नन्ददुलाल के मुख से चादर हटाकर देखने के बाद फिर से ढंक दे रहा है और अन्नदा कुमार एक तरफ चुपचाप लेटे हुए हैं । अचानक डाक्टर ने नन्ददुलाल के पेट को हिलते हुए देखा। उसकी नाड़ी पकड़कर स्पष्ट स्पंदन देखकर, एक व्यक्ति के द्वारा तुरन्त दरवेश जी के पास उन्होंने यह खबर भेजा। दरवेश जी खबर सुनकर उसी समय रात के दस बजे नन्ददुलाल के पास पहुँचे एवं उसका नाम लेकर पुकारा। आवाज सुनकर नन्ददुलाल ने कहा–''दादाजी, मैं तो आपके पास में ही था।'' इस घटना को प्रत्यक्ष देखकर सभी आश्चर्य-चकित रह गये।

इस तरह मृत नन्ददुलाल ने पुनर्जीवन प्राप्त किया। थोड़ा स्वस्थ होने के पश्चात् अन्नदा कुमार उसे लेकर रामचन्द्रपुर आश्रम में आ गये। उस समय सभी

लोगों ने देखा कि नन्ददुलाल के गले की आवाज परिवर्तित हो गयी है।

लगभग एक महिने पश्चात् दरवेश जी ने अन्नदा कुमार को पत्र में यथाशीघ्र काशी आने के लिए लिखा। अन्नदा कुमार के काशी पहुँचने पर उनसे एकान्त में दरवेश जी ने कहा–''**मठ के भविष्य के सम्बन्ध में मैं चिन्तित हूँ। परन्तु मेरे चिन्ता करने से क्या होगा? मेरी परमायु बहुत पहले समाप्त हो गयी है। गोसाँई जी ने मुझे अभी तक रखा है। १९४६ ई. (बंगला सन् १३५३) सत्रहवां आषाढ़ की मध्यरात्रि मेरे शरीर छोड़ने का समय निश्चित है। इस जीर्ण शरीर को लेकर मेरा और रहने का विचार नहो है । गोसाँई जी की जो इच्छा है–वही होगा।**''

इस तरह अपनी मृत्यु का दिन दरवेश जी ने दो वर्ष पूर्व ही अन्नदा कुमार को बतला दिया था। दरवेश जी के पास से कुछ आवश्यक निर्देश प्राप्त कर, अन्नदा कुमार रामचन्द्रपुर वापस आए।

काशी से लौटने के पश्चात् सन् १९४४ ई., दिसम्बर में गया में आकाशगंगा पहाड़ के उत्सव में अन्नदाकुमार, गांव के अपने कई परिचित दीक्षा प्रार्थियों को दरवेश जी के पास ले गये। दरवेश जी ने सभी प्रार्थियों की प्रार्थना पूर्ण की। दरवेश जी का स्वास्थ्य कुछ दिनों से ठीक नहो था। अतः जलवायु परिवर्तन के लिए वे जसीडीह के पास सिमुलतला आ गये। यहाँ उनके पास विभिन्न स्थानों से शिष्यगण प्रायः आते-जाते रहते थे। अन्नदा कुमार भी प्रायः यहाँ आते रहते थे। यहाँ १ जनवरी, १९४५ ई. को दरवेश जी ने अन्नदा कुमार से कहा–''इस वर्ष तुम्हें बड़े संघर्ष के मध्य से पार होना पड़ेगा। परन्तु अन्त में जय तुम्हारी ही होगी । मैं स्पष्ट रूप से यह देख रहा हूँ।''

कुछ दिन पूर्व बाथानबाड़ी गाँव का नाम परिवर्तित कर 'विजयनगर' रखा गया था। यहाँ के आश्रम में अन्नदा कुमार ने पहले जो स्कूल चालू किया था वहाँ धर्मार्थ चिकित्सालय प्रारम्भ किया गया। गाँवों में शिक्षा के विस्तार के लिए पास के गुनियाड़ा नामक ग्राम में उन्होंने इस वर्ष 'श्रीश्री विजयकृष्ण पूर्व माध्यमिक अंग्रेजी विद्यालय' प्रारम्भ किया। इस कार्य के प्रारम्भ में उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा । बाद में वह सुचारू रूप से चलने लगा। इस समय राजनीति की अपेक्षा ग्राम की उन्नति एवं सेवा कार्यों में वे अधिक आनन्द प्राप्त करते थे। 'रामचन्द्रपुर आश्रम रिलीफ सोसाइटी' के माध्यम से छोटे-छोटे ग्रामों में इस तरह पाठशाला स्थापित करने से एवं उनके सेवा कार्यों से सभी लोग अन्नदा कुमार को श्रद्धा करने लगे एवं आपसी मतभेद या विवाद का निपटारा करने के लिए उनके पास ही आया करते थे। इन सब कार्यो को अन्नदा कुमार ने भगवत् सेवा के रूप में ग्रहण किया ।

२२ जनवरी को प्रातः एक स्वप्न देखकर अन्नदा कुमार चीख उठे। उन्हें ऐसा

लगा कि दरवेश जी फिसलकर गिर पड़े हैं। उनके सिर पर चोट लगने से रक्त गिर रहा है एवं दोनों हाथों में भी आघात लगा है। उनका मन बहुत व्याकुल हो गया। बाद में दरवेश जी के पत्र से उन्हें समाचार मिला कि वास्तव में उन्हें चोट लगी थी। ६-७ दिनों बाद अन्नदा कुमार सिमुलतला पहुँचे। उस समय दरवेश जी का घाव प्रायः सुख गया था। एकाग्र भाव से जो गुरू की चिन्ता करते हैं, उन्हें गुरू के सुख-दुःख के अनुभव का पता तुरन्त लग जाता है—यह घटना इसका प्रमाण है। इस तरह की घटना अन्नदा कुमार के जीवन में अनेक बार देखी गयी।

अध्याय २० : व्रत पालन एवं राजा कल्याणीप्रसाद को अन्नदा कुमार का दीक्षा प्रदान

इस वर्ष (सन् १९४५ ई.) २६ फरवरी, होली के दिन से चौदह दिन तक अन्नदा कुमार को व्रत पालन का निर्देश दरवेश जी ने दिया। उन्होंने अन्नदा कुमार को पत्र में लिखा–''**आज से दो सप्ताह तुम्हें संसार की सभी वस्तुओं का विस्मरण करते हुए आत्मचिन्तन करना होगा। गोसाँई जी तुम्हें प्रेरणा एवं शक्ति प्रदान करें। इस दो सप्ताह की तपस्या से, आत्मा के लिए जो सम्पंद अर्जित होगी उसके द्वारा पूरे वर्ष भर के लिए शक्ति प्राप्त करोगे। तुम्हारी कर्मशक्ति वर्धित होवे ! तुम्हारा ज्ञान एवं शक्ति उस 'एक' के सन्धान में नियोजित होवे! तुम भक्ति एवं विश्वास द्वारा सुशोभित होगे!**''

व्रत के समय बंगाल के प्रसिद्ध सन्त, स्वामी निगमानन्द जी के प्रमुख शिष्य स्वामी सत्यानन्द जी एवं स्वामी सिद्धानन्द जी के वहाँ आने से सभी आनन्दित हुए। व्रत के समय यहाँ का वातावरण ऐसा हो गया था मानो शान्ति एवं आनन्द की धारा यहाँ बह रही है तथा जो भी व्यक्ति यहाँ उपस्थित होता था वह, विशेष कर पीपल वृक्ष के नीचे इसे अनुभव करता था। एक Botanist भी वहाँ आये थे। उन्होंने इस प्राचीन पीपल वृक्ष का निरीक्षण कर उसे लगभग सात सौ वर्ष पुराना बतलाया। उन्होंने कहा कि वट एवं पीपल की छाल १०० वर्षों में एक इंच मोटी होती है। इस पीपल वृक्ष की छाल सात इंच मोटी है, अतः यह सात सौ वर्ष से अधिक प्राचीन है। यह वृक्ष एक खोखले तने पर आधारित है। उन्होंने खोखले को मिट्टी से भर देने का निर्देश दिया एवं कहा कि इससे वृक्ष की परमायु बढ़ जाएगी।

प्रतिवर्ष की तरह व्रत के सभी कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न हुआ। असंख्य लोग इस समय आये एवं प्रसाद ग्रहण किये। खाद्य सामग्री स्वतः आती रही एवं भंडार सर्वदा परिपूर्ण रहा। यज्ञ के समय कई भाग्यवान व्यक्तियों ने गोसाँई जी एवं दरवेश जी की उपस्थिति का अनुभव किया।

व्रत के अन्तिम दिन, 'संथाल संगठन' के प्रमुख कार्यकर्त्ता महेन्द्र चकवर्ती ने अन्नदा कुमार से, दूसरे दिन एक हजार ब्राह्मणों को भोजन कराने का विशेष अनुरोध किया एवं कहा– 'आसपास के पांच ग्रामों से एक हजार ब्राह्मणों को मैं अभी निमन्त्रण देने जा रहा हूँ। कल, सभी को अच्छी तरह भोजन करवाना है–तुम्हारे गोसाँई जी एवं दरवेश जी से कहो, जिससे व्यवस्था में कोई त्रुटि न रहे।' वे उसी समय निमन्त्रण

करने निकल पड़े। एक दिन के भीतर इतनी वृहत् व्यवस्था किस प्रकार संभव होगी सोचकर अन्नदा कुमार, ठाकुर जी के कमरे में जाकर व्याकुल भाव से प्रार्थना करने लगे। उन्हें अनुभव हुआ कि दरवेश जी सामने खडे हुए कह रहे हैं—''**जो तुम्हारे जीवन-मरण में सभी अवस्थाओं के साथी हैं, उनके रहते तुम्हें क्या डर है?**''

रात के नौ बज चुके थे। दूसरे दिन एक हजार ब्राह्मण भोजन करेंगे—भंडार खाली पड़ा है—कैसे सब काम होगा? सभी चिन्ता करने लगे। रात दस बजे किसी व्यक्ति ने अचानक दो मन चांवल भेजा। दूसरे दिन सुबह से खाद्य पदाथो का आना ऐसा आरम्भ हुआ कि किसी को कुछ समझ में नही आया। भंडार भर गया। दूध तो इतना अधिक आया कि उससे जो खीर बनी, वह एक हजार से भी अधिक लोगों के खाने के बाद भी काफी मात्रा में बच गयी। सभी आनन्दपूर्वक 'गोसाँई जी की ज़ुय' ध्वनि करने लगे।

१२ मार्च को 'विजयकृष्ण आश्रम रिलिफ सोसाइटी' का वार्षिक अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। उसमें जिले के कई विशिष्ट व्यक्ति उपस्थित हुए। उस समय 'आश्रम धर्म' के सम्बन्ध में अन्नदा कुमार ने एक अत्यन्त मार्मिक भाषण दिया था। उसका संक्षेप में वर्णन यहाँ दिया जा रहा है—

आश्रम धर्म :— भारत में तपोवन के ऋषियो द्वारा प्रवर्तित नियम एवं प्रदर्शित पथ को सभी श्रेणी के लोगों ने ग्रहण कर लिया था। ये ऋषि लोग ही वास्तव में भारत के परिचालक रहे। उनके आश्रम थे—शान्ति एवं पवित्रता का पुण्य निकेतन। आश्रमवासियों के आचरण एवं व्यवहार को देखकर, सभी उन्हे श्रद्धा करते थे। भारत वर्ष उनके दिव्य आदर्श के निकट, पवित्र चरित्र के निकट, विनय-नम्र व्यवहार के निकट श्रद्धा सहित सिर नमन करता था। आश्रम में कभी-कभी क्रोधित शिष्यों का दृष्टांत भी मिलता था, परन्तु उनकी कठोर भाषा से आश्रम के अतिथि-अभ्यागतों का कभी अपमान हुआ हो, ऐसा दृष्टांत विरला ही कहीं प्राप्त हो सकता है। आज सब तरफ सैकड़ों आश्रम बन रहे हैं। शहर एवं गाँवों में उनके इस शुभ प्रचेष्टा से नवीन आशा के संचार करने पर भी आज चिन्ता करना आवश्यक है कि इन आश्रम एवं प्रतिष्ठानों को यदि समुचित रूप से परिचालित न किया जाए अथवा इनके द्वारा ऐसे आदर्शों का प्रचार न हो, जो मनुष्य के मन में एक नई ज्योति के द्वारा चित्त में अतीत के भावधारा का पुनः प्रवर्तित न करे, तो इन आश्रमों की प्रतिष्ठा व्यर्थ होगी। ऐसे आश्रमों के प्रतिष्टाता एवं उनके अधिवासियों या कर्मीवृन्द के व्यवहार एवं आदर्श, जनसंघ के भीतर, वितृष्णा ही संचारित करेगी।

जो आश्रम बना रहे है एवं जो आश्रम में सेवक के रूप में रहते हैं, उन्हें याद रखना होगा कि उनके व्यक्तिगत व्यवहार या आचरण ही आश्रम के सुनाम अथवा

दुर्नाम का कारण होगा एवं उनसे आश्रम के प्रतिष्ठाता के प्रति जन-साधारण की श्रद्धा अथवा अश्रद्धा उत्पन्न होगी। वास्तव में आश्रम के नियम एवं धमो का जो निष्ठा सहित पालन न कर सकेंगे उनका आश्रम त्याग करना ही उचित है।

दीर्घकाल से विभिन्न आश्रम एवं प्रतिष्ठान के साथ सम्पर्क रहने से ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक आश्रम बनाये जाते हैं–अपने व्यक्तिगत स्वार्थ या मतलब के लिए। 'सत्य' के ऊपर प्रतिष्ठित न रहने से ऐसे स्थान जल्दी लुप्त हो जाते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ को लेकर धर्म के नाम पर, देश के नाम पर जो लोग सेवक-वेश में आते ह–दो दिन बाद उनका स्वरूप प्रकाशित होने पर वे फिर भाग जाते हैं। अधिकांश आश्रम एवं प्रतिष्ठानो में यही बात देखी जाती है।

ऐसा भी देखा जाता है कि अच्छे महात्माओं के द्वारा स्थापित आश्रम में स्थान पाकर भी सेवक अपने जीवन में 'सत्य' की प्राप्ति न कर सका। कोई सेवक दुर्भाग्य वश अनेक प्रकार की तकलीफ प्राप्त कर आया एवं कुछ दिन बाद सब छोड़कर और कहा चला गया। कुछ दिनों पश्चात् वह फिर से वापस आया–उसे आश्रय भी दिया गया, परन्तु उसके चित्त की मलिनता नहा गयी। उसके कुकर्मों का फलभोग पूर्ण न होने से उसका जीवन अभिशप्त सा हो गया। इतनी दुर्गति पाने पर भी उसकी चेतना नहा आयी। आश्रम के धर्म में कर्कशता, दुर्व्यवहार, आदर्श हीनता एवं नियमों को भंग करने की प्रवृत्ति का कोई स्थान नहा है। ऐसा भी देखा जाता है कि आश्रम के परिचालक या सेवक कभी-कभी ऐसा व्यवहार या अपशब्द कह देते हैं अथवा अनेक समय कोध के वश में ऐसा कार्य कर बैठते ह कि आश्रम धर्म के प्रति जन-साधारण की वितृष्णा हो जाती है।

आश्रम में रहते हुए आश्रम धर्म का अपमान सेवक लोग कितने प्रकार से करते है इसका कोई हिसाब नहा । सत्य बोलने की प्रतिज्ञा लेकर हर समय मिथ्या आचरण करते ह । विश्वासघातकता अनेक प्रकार से हम नित्य करते हैं–हमारे चाल-चलन, आचार-व्यवहार, दैनिक जीवन व्यतीत करने की पद्धति ही उसका प्रमाण है। आश्रम में रहते हुए अनेक समय कर्त्तव्य भावना से, हम इस तरह आत्मविस्मृत हो जाते हैं एवं अपने बड़प्पन के प्रति इतने अधिक सजग रहते ह कि स्वयं को, श्रेष्ठ व्यक्ति या महापुरूष दर्शाने में संकोच बोध नही करते। आश्रम में संसार के तापित या पीड़ित, जो लोग शान्ति पाने की आशा से आएगें, वे आश्रम में आकर यदि किसी प्रकार से अपमानित हो या कष्ट पावें तो वे फिर कहाँ जाएंगे?

इस तरह के सेवकों के शून्य न होने तक आश्रम बनाने का वास्तविक उद्देश्य कभी सफल नहा होगा। घर संसार छोड़कर जो आश्रम में रहने आते हैं उन्हें, आश्रम के भीतर धर्म जीवन का पवित्र भाव से पालन करते हुए, संकीर्णता को त्याग करना होगा। सभी के प्रति प्रेमपूर्ण सरल सुन्दर व्यवहार द्वारा अपने जीवन को चरितार्थ

करना होगा—यही उसका उद्देश्य रहना चाहिए। भगवान को प्राप्त करने के पथ में यदि संकीर्णता बढ़ती रहे, काम-कोध बढ़ते रहें, दम्भ-अहंकार बढ़ते रहे तथा संसार के क्षुद्र स्वार्थ को त्यागकर आश्रम मे आकर अपने कर्त्तव्य पालन के बदले, यदि नई प्रवृत्ति का प्रारम्भ होवे तो सोचना चाहिए कि वह आश्रम में रहने लायक नहो है।

आश्रम में यदि शान्ति एवं प्रीतिपूर्ण वातावरण न होवे—आश्रम में यदि हिंसा, मिथ्या आचरण, असत्य भाषण अथवा अन्याय पूर्वक व्यक्तिगत अभाव को पूर्ण करने की प्रचेष्टा देखी जावे तो सोचना होगा कि धर्म के नाम पर हम, सर्वदा अधर्म का केवल आचरण ही नहो कर रहे है—आश्रम देवता का केवल अपमान ही नहो कर रहे हैं बल्कि इसके साथ-साथ स्वयं को धोखा देकर, अपनी अधोगति का रास्ता साफ कर रहे हैं।

अतः आश्रम का सेवक होने के लिए आश्रम धर्म का पालन करने के लिए सर्वदा तत्पर रहना आवश्यक है। नियमों में कठोरता अवश्य रहेगी। कठोरता के मध्य से न जाने पर अथवा नियमों को विधिवत् मर्यादा न देने से, कोई भी उच्च अवस्था की प्राप्ति नहो हो सकती। इसलिए आश्रम के आदर्श और नियम-निष्ठा को परिपूर्ण मर्यादा प्रदान करने के लिए आश्रमवासियो को सर्वदा सचेष्ट रहना आवश्यक है, नहीं तो आश्रम में रहना व्यर्थ हो जावेगा। जिस आश्रम में मैं रहूँगा, उसके नियमो को मैं निर्विकार चित्त स यथावत् पालन करूँगा, नही तो आश्रम त्यागकर अन्यत्र प्रस्थान करूँगा। यहाँ किसी प्रकार का तर्क नही चलेगा—किसी प्रकार की युक्ति (कारण दिखाना) नहो चलेगी—इसके सिवाय अन्य कोई रास्ता नहीं है।

विभिन्न कार्य के भार प्राप्त व्यक्ति अपने कार्यों को अच्छी तरह सम्पादन करता हुआ, अपने व्यक्तिगत कर्त्तव्य का जिस तरह पालन करेगा—उसी प्रकार आश्रम के वृहत् आदर्श के प्रति श्रद्धावान रहते हुए, आश्रम की शान्ति एवं प्रीतिपूर्ण वातावरण को उत्पन्न करने में सहायक रहेगा। किसी कारणवश काध प्रकाश, दम्भपूर्ण बातें या दूसरों को पीड़ा देने की प्रवृत्ति यदि अपने भीतर दिखलाई पडे तो उससे अपने चित्त की ही दुर्गति हुई है—ऐसा समझना होगा। अनेक लोग ऐसा कहते है कि वे दीर्घकाल से कितने परिश्रम एवं कष्ट सहन करते हुए कार्य कर रहे ह—इस कारण उनका किसी भी तरह का व्यवहार करने का अधिकार है। अपने कार्यों से भी वे इसे प्रकट करते हैं। यह आचरण उनका पागलपन के सिवाय और क्या हो सकता है ? आश्रम में दीर्घकाल दुःख-कष्ट के भीतर रहते हुए, सेवा के माध्यम से यदि काध का दमन न होवे, काम दमन न होवे, कटु वचन या असंयत बातें कमशः बढ़ते रहे तथा आत्माभिमान (घमंड) बढ़ता रहे तो कहना होगा कि उसका आश्रम सेवा व्यर्थ हो गया है—उसका कष्टों को सहना—उसका ऐसा जीवन, उसे दुर्गति की ओर ले जा रहा है।

'आश्रम धर्म' एक महान् धर्म है। इसके प्रभाव से पापी-तापी शान्ति पावेंगे।

आश्रमवासी यदि उस वातावरण को तैयार न कर सके तो ऐसे आश्रम की आवश्यकता नहो है। आदशो को प्रचार करते हुए यदि स्वयं उसका पालन न करें तब हमारा ध्वंस होना अच्छा है ।

सभी आश्रमो को आज इस तरह के आदर्श 'आश्रम धर्म' का प्रचार करना आवश्यक है। आश्रमवासी अपने कर्म, आचरण, व्यवहार, आदर्श के प्रति निष्ठा एवं पवित्रता द्वारा सभी के चित्त को जय करें। सद्‌गुरू हमारे जीवन में ऐसी शक्ति देवें जिससे हम मानवता को दम्भ (घमंड-अहंकार) के चरणों में विकय न करें। हमारे आचरण, व्यवहार एवं कार्य दूसरे के जीवन में आघात या मानसिक कष्ट उत्पन्न न करे ।

भगवान सदाशिव की करूणा का अन्त नहो है। स्वयं प्रलय देवता होते हुए भी सृष्टि के प्रति उनकी असीम करूणा एवं स्नेह है। इस तत्व को कोई नहो समझता। प्रस्तर रूपी शिव के निकट बैठकर अबोध मानव उसे शव समझकर सत्य-सुन्दर-मंगलमय शिव को उपहास कर रहा है—इसका फल शिव की क्षमा प्राप्त करने पर भी अपनी दुर्गति को बुलाकर लाता है।

आज के इस पवित्र दिन में मैं सभी के निकट आशीर्वाद भिक्षा कर रहा हूँ—जिससे अपने को उचित सेवक के रूप में गठन कर सकें— गुरूदेव हमारे भीतर उस शक्ति को प्रदान करें। आप लोगों का आशीर्वाद लेकर म नूतन भावना से कमक्षेत्र में प्रवेश कर रहा हूँ ।

अन्नदा कुमार द्वारा प्रदत्त उपरोक्त निर्देश आज भी सभी आश्रमों एवं मठवासियों के लिए चिंतनीय एवं पालनीय है।

व्रत समाप्त होने के पश्चात् दरवेश जी ने कई पत्र इन्हें लिखा। एक पत्र में उन्होने लिखा था—''**तुम्हारा अपना कर्म कुछ भी नहो है फिर भी कर्म करना पड़ेगा। लोक शिक्षा के लिए तुम्हें कर्म में नियुक्त रहना ही होगा—लोक सेवा करना होगा। याद रखना, इस तरह लोक सेवा से मेरी ही सेवा हो रही है। इस लोक सेवा से ही तुम्हारी भगवत् सेवा हो जाएगी। तुम जो मन्दिर पत्रिका की सेवा कर रहे हो—वह भी मेरी सेवा करना है। मेरा ही कार्य कर रहे हो—इस भावना से सभी कार्य करते रहो। तुम्हारे लिए 'उज्ज्वल भविष्य' अपेक्षा कर रहा है।**''

वास्तव में रामचन्द्रपुर आश्रम एवं उसकी अन्य दो शाखाओं ने उस समय सारे जिले में जो सेवा कार्य किया था उससे सभी की दृष्टि इस आश्रम के प्रति आकर्षित हो गई। प्रदेश सरकार एवं डा.राजेन्द्र प्रसाद ने भी आश्रम की गतिविधियों के सम्बन्ध में जो उच्च विचार प्रकट किये थे वह उस समय की कई प्रमुख पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। डा. राजेन्द्र प्रसाद जब पुरूलिया आये थे तब 'भारती प्रेस' में आकर वे बहुत प्रभावित हुए। दीर्घकाल तक ग्राम के संगठन एवं सेवा कार्यों को करते हुए अन्नदा कुमार ने अपना अनुभव इस तरह से 'आमार जीवन' ग्रन्थ में व्यक्त किया है—''**भगवत्**

विश्वास एवं अपनी तीव्र उत्कंठा व हार्दिक निष्ठा रहने पर किसी भी अच्छे कार्य में अर्थ का अभाव कभी भी नहो होता है । परन्तु योग्य कर्मी या सेवक प्राप्त न होने पर कार्य को चालू रखना फिर सम्भव नहो होता है। सेवकों के भीतर आत्म-प्रतिष्ठा की भावना आने पर एवं अर्थ का लोभ आने पर कोई भी प्रतिष्ठान दीर्घकाल तक नहो टिक सकता ।''

प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष भी पुरी में गोसाँई जी के तिरोभाव महोत्सव में दरवेश जी अपने कुछ शिष्य एवं भक्तों सहित पहुँचे। अन्नदा कुमार भी वहां गये। दरवेश जी का यही अंतिम बार पुरी आना हुआ। इन दिनों के संस्मरण ने अन्नदा कुमार के जीवन में अमिट छाप डाली। पुरी से कलकत्ता आकर दरवेश जी काशी चले गये। अन्नदा कुमार ने नवद्वीप जाने के लिए कई बार चेष्टा की थी परन्तु प्रत्येक बार दरवेश जी ने मना करते हुए उन्हें कहा था कि–'अभी नवद्वीप एवं शान्तिपुर जाने का तुम्हारा समय नहो हुआ है।'

इस वर्ष काशी में १८ अगस्त से २५ अगस्त तक जन्म उत्सव मनाया गया। भक्तगण दरवेश जी का जन्म (श्रावण शुक्ल चतुर्दशी) एवं गोसाँई जी का जन्म (श्रावण पूर्णिमा) साथ-साथ मनाते हैं। इसी दिन दरवेश जी ने अपनी डायरी में लिखा–'':आज मेरी जन्म-तिथि है। ६८ वर्ष आज प्रारम्भ हुआ। यह वर्ष पूरा होगा कि नही गोसाँई जी जानते हैं।'' बाद में देखा गया कि दरवेश जी ने इसी वर्ष अपना शरीर त्याग दिया। इस तरह दरवेश जी की उपस्थिति में काशी में यह अन्तिम उत्सव रहा।

राजनीति के क्षेत्र में यह वर्ष (१९४६ ई.) भारत के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। नेताजी सुभाष चन्द्र के चले जाने के पश्चात् उनका I.N.A. (इंडियन नेशनल आर्मी) का गठन एवं 'आजाद हिन्द' फौज के वीरतापूर्ण अभियान से लोगों के हृदय में अंग्रेजों के प्रति जो वितृष्णा प्रकट हुई, उसने अंग्रेजों के साम्राज्य की नीव को हिलाकर रख दिया। अन्नदा कुमार ने पुरूलिया में 'भारती प्रेस' एवं 'संगठन' पत्रिका के माध्यम से नेताजी की भावधारा एवं आदर्श का गांव-गांव में प्रचार शुरू किया । जिले में खाद्य एवं वस्त्रादि का अभाव, धनी लोगों का अत्याचार, गांवों में चोरी-डकती की वृद्धि एवं पुलिस का अत्याचार इन सब कार्यों के विरूद्ध अन्नदा कुमार ने एक बलिष्ठ जनमत गठन किया। हजारों की संख्या में प्रचार-पत्र छपवाकर उन्होंने सर्वत्र प्रचार किया कि– (१) कालाबाजारी बन्द करो, (२) घूसखोर अफसरों को सजा दो, (३) अत्याचारी राजा एवं मालगुजारों को निर्मूल करो, (४) पुलिस अत्याचार के विरूद्ध संग्राम करो, (५) गांवों के घर-घर में सशस्त्र क्रान्ति प्रारम्भ करो एवं इस महान् यज्ञ में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आहूति दो, (६) धनी लोगों के संग्रहित भंडार को लूटकर गरीब एवं भूखे लोगों को अन्न प्रदान करो–इसके लिए यदि मरना पड़े तो भी हमें स्वीकार है परन्तु हम अपने कर्त्तव्य से विमुख न होवें।

रामचन्द्रपुर आश्रम में दुर्गापूजा के अवसर पर पूजा-उत्सव का आडम्बर बन्द कर उन्होंने जन-साधारण की सेवा के लिए कार्य आरम्भ किया। असहाय कुष्ठ रोगियों एवं गरीबों को पूजा के अवसर पर अन्न एवं वस्त्र प्रदान किया। उन्होंने इस आदर्श का प्रचार किया कि यदि देश के निरक्षर, असहाय जन-साधारण की सेवा न कर सकें तब पूजा एवं उत्सव करने का हमें कोई अधिकार नहीं है। यदि इन लोगों के भीतर हम अपने ईश्वर को न देख सकें तो हमारी पूजा व्यर्थ हो जाएगी। इन असहाय लोगों की सहायता ही हमारा उत्सव या पूजा हो।

इन सब कार्यों में अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी अन्नदा कुमार ने अपनी साधना को यथावत् चालू रखा। रात्रि दो बजे से चार बजे तक वे नित्य गुरुनिर्दिष्ट जप-साधना मे लीन रहते थे। एक दिन भी इस साधना में उनकी शिथिलता नहीं देखी गई। सभी कार्यों के साथ-साथ नाम (मंत्र) स्मरण करने की वे सर्वदा चेष्टा किया करते थे।

१० अक्टूबर, १९४५ ई. को दरवेश जी ने अन्नदा कुमार को पंचकोट के राजा कल्याणी प्रसाद से मुलाकात करने का निर्देश दिया। अन्नदा कुमार को समाचार मिला कि राजा अत्यन्त अस्वस्थ हैं एवं कोलकाता में उनकी चिकित्सा चल रही है।

अन्नदा कुमार उन्हें देखने कोलकाता पहुँचे। अन्नदा कुमार को देखते ही राजा ने कहा–''भाई तुम आ गये हो ! मैंने सारा जीवन जो पाप कर्म किया, उसका फल भोग रहा हूँ। तुम्हारे जैसे हिताकांक्षी मित्र के उपदेशों को मैंने नहीं माना। यदि मैं जीवित रहा तो इसका प्रायश्चित करूँगा।'' ऐसा कहकर उन्होंने अपने सारे जीवन के कृत-पाप कर्मों की कथा सुना दी। अन्त मे राजा ने अपने शरीर से वस्त्र हटाकर नग्न शरीर को दिखलाते हुए अन्नदा कुमार से कहा–''देखो, मेरे शरीर की क्या दशा हो गयी ह ? जो बातें मैंने किसी से नहीं कही थी वह सब तुमसे कहकर मैं निश्चिंत हुआ।'' राजा की आँखों से अश्रु प्रवाहित होने लगा। अन्नदा कुमार भी राजा की इस अवस्था को देखकर अपने अश्रु को रोक न सके। राजा ने रोते-रोते कहा–''भाई, दरवेश जी महाराज ने मुझसे कहा था, तुम्हारे पास ही मेरी दीक्षा होगी। इसीलिए तुम्हें कई बार मेरे पास आने के लिए खबर भी भेजा। आज ही उनका टेलीग्राम आया है और तुम भी आ गये हो। यह देखो उनका टेलिग्राम।" अन्नदा कुमार ने अपने नाम का टेलिग्राम देखा। उसमें लिखा था–Initiate Raja on my behalf – Derbesh.

अन्नदा कुमार ने उसी घर में राजा को दीक्षा प्रदान की। मंत्र सुनने के पश्चात् राजा नाम में मग्न हो गये। राजा जो अपनी शारीरिक रोग-यंत्रणा से सर्वदा तकलीफ पा रहे थे, मंत्र जप से वह यंत्रणा शान्त हो गयी। इसी तन्द्राच्छन्न अवस्था में, पांच दिन पश्चात् उनकी मृत्यु हो गई।

अन्नदा कुमार कहा करते थे कि लोग अन्याय व पाप कर्मों को करते समय

उसके भावी परिणाम के बारे में नहीं सोचते। बाद में यथा समय जब पाप कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है तब उनकी चेतना आती है। परन्तु उस समय कोई उपाय नहीं रहता । राजा अपने पाप कर्मों के कारण दुरारोग्य व्याधि से ग्रस्त हो गये थे। उनके सारे शरीर से पीब निकलता रहता था तथा इतनी दुर्गन्ध आती थी कि कोई उनके निकट नहीं जाता था । अन्त में उन्हें नर्सिंग होम में रखा गया। वहाँ भी नर्स अपने नाक में कपड़ा रखकर बीच-बीच में जाकर उनकी आवश्यक सेवा कर आती थी ।

राजा कल्याणी प्रसाद की मृत्यु के बाद शंकरी प्रसाद राजा हुए परन्तु धीरे-धीरे राजतन्त्र नष्ट हो गया ।

अध्याय २१ : गुरू के साथ एकात्मता एवं दरवेश जी से अन्तिम निर्देश की प्राप्ति

सन् १९४५ ई., नवम्बर महिने में विभिन्न ग्रामों में प्रचार कार्य करते हुए अन्नदा कुमार झरिया पहुँचे। वहाँ रास पूर्णिमा (कार्तिक पूर्णिमा) के अवसर पर उनके गुरूभाई शरत् चन्द्र चकवर्ती के घर में नाम-संकीर्तन एवं विशाल उत्सव का आयोजन किया गया था। झरिया मे रहते समय स्वप्न में अन्नदा कुमार के समक्ष रामचन्द्रपुर आश्रम में नया मन्दिर एवं एक नये निर्माण की रूपरेखा प्रकट हुई। आज रामचन्द्रपुर का आश्रम, ठीक स्वप्न में देखी हुई रूपरेखा के समान ही है।

रामचन्द्रपुर आश्रम में निर्माणकार्य के लिए अचानक कुछ व्यक्तियों ने सहायता प्रदान की। अन्नदा कुमार ने स्वप्न में देखी रूपरेखा के समान ही निर्माण शुरू किया। उस समय दरवेश जी ने उन्हें लिखा–''**रामचन्द्रपुर आश्रम में निर्माण कार्य प्रारम्भ करने के लिए अर्थ की प्राप्ति का समाचार पाकर मैं आनन्दित हुआ। काशी मठ एवं रामचन्द्रपुर आश्रम दोनों में मेरे लिए कोई प्रभेद नहो है–यह तुम जानते हो। मैं वहाँ जाकर रहूँ अथवा न रहूँ–इससे कोई फर्क नही पड़ेगा। रामचन्द्रपुर आश्रम को मैं अपना ही आश्रम मानता हूँ। 'मन्दिर 'पत्रिका एवं रामचन्द्रपुर आश्रम के लिए जो भी सहायता या सहयोगिता की जावेगी वह मेरे लिए प्रिय कार्य होगा।''**

इस समय अन्नदा कुमार ने 'संगठन' पत्रिका में, आजाद हिन्द फौज के प्रसिद्ध संगीत ''कदम-कदम बढ़ाये जा....'' का बंगला अनुवाद प्रकाशित किया। इसके पश्चात् उन्हें दरवेश जी का पत्र मिला कि ''तुम्हारे इस बंगला अनुवाद को देखकर मैं विस्मित हो गया। मैंने भी इस गाने का बंगला अनुवाद किया है और उसे जब तुम्हारे पास भेजने को तैयार हुआ तब देखा कि 'संगठन' में प्रकाशित तुम्हारा अनुवाद एवं यह अनुवाद अक्षरशः एक ही प्रकार का है। **अनुवाद करते समय अचानक तुम्हारे बारे में मैंने स्मरण किया था एवं मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि तुम मेरे अन्तर में समाहित हो गये हो। मैं अनुवाद करता गया– वही अनुवाद तुम्हारी कलम से वहाँ लिखा गया। तुम्हारी एकात्मता ने मेरे अनुवाद एवं तुम्हारे अनुवाद में तादात्मयता ले आई।''**

बाद में देखा गया कि दरवेश जी एवं अन्नदा कुमार ने एक ही समय में अनुवाद कार्य किया था। गुरू के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित होने से शिष्य एवं गुरू के मन-वचन-कर्म एक ही प्रकार के हो जाते हैं–इसका यह अनुपम दृष्टांत है।

दरवेशजी महाराज के शिष्य शरत्चन्द्र चकवर्ती ने दीक्षा लेने के पश्चात् एक दिन दरवेशजी से पूछा कि अनेक समय मन में प्रश्न आने पर आपके साथ सम्पर्क करना संभव नहीं हो पाता, उस समय क्या करें?

दरवेशजी ने कहा –क्यों? अन्नदा है–उसके पास से पूछ लेना ।

शरत्चन्द्र ने कहा – अन्नदाजी हमारे गुरूभाई हैं, वे जो कुछ कहेगे उसे तुम्हारी बात है – इसे किस प्रकार विश्वास करें?

दरवेशजी ने कहा – अन्नदा जो कुछ कहेगा, वह मेरी ही बात होगी । इसे परीक्षा करके देख लेना ।

दरवेशजी से इस तरह के वार्तालाप के कुछ दिनों के पश्चात् शरत्चन्द्र के मन मे कुछ विशेष प्रश्न उदित हुए। उन्होंने अपने मन मे स्थिर किया कि इन प्रश्नों के सम्बन्ध में अन्नदाजी को कुछ भी नही कहूँगा । वे यदि मेरे निकट आकर, स्वयं इन प्रश्नों का उत्तर प्रदान करें, तब समझूंगा कि दरवेशजी के निर्देश प्राप्तकर अन्नदाजी सब कार्य करते हैं। अचानक उसी दिन झरिया मे शरत्चन्द्र के घर में अन्नदा कुमार आए। शरत्चन्द्र के मन में जो प्रश्न था उसका उल्लेख करते हुए, उन्होंने अपने से, उत्तर प्रदान किया एवं कहा कि दरवेशजी का भी उत्तर यथासमय तुम्हें प्राप्त हो जायेगा।

अचानक इस तरह अन्नदा कुमार से अपने प्रश्नों का उत्तर प्राप्तकर शरत्चन्द्र बहुत विस्मित हुए। दो-चार दिन बाद उन्होंने दरवेशजी का पत्र प्राप्त किया। दरवेशजी ने लिखा था–

''मेरे पत्र पाने के पूर्व अन्नदा कुमार के पास से तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर अवश्य प्राप्त हो गया होगा । उसकी वाणी एवं उत्तर– मेरा ही समझना।''

इस घटना के पश्चात् शरत्चन्द्र सर्वदा अन्नदा कुमार को गुरुवत् श्रद्धा करते थे एवं अपने प्रश्नों का समाधान उनके पास किया करते थे। इस तरह के अनुभव कई भाग्यवान लोगों को हुआ था ।

इस वर्ष गया के आकाशगंगा पहाड़ में गोसाँई जी के दीक्षा स्थान पर उत्सव के समय दरवेश जी भी आये। उत्सव का सभी कार्य अच्छी तरह सम्पन्न हो गया। उस समय दरवेश जी के कुछ प्रमुख ट्रस्टी शिष्यों ने अन्नदा कुमार से कहा कि गुरूदेव को 'तुम' कहकर सम्बोधित करना अनुचित है। हम लोगों की उपस्थिति में अब से 'तुम' कहकर सम्बोधन मत करना। अन्नदा कुमार प्रथम दर्शन से ही दरवेश जी को 'तुम' कहकर सर्वदा सम्बोधित करते रहे हैं। गुरूभाइयों की इस बात से वे बहुत दुःखी हो गये। दरवेश जी के पास जब यह समाचार पहुँचा तब उन्होंने अन्नदा कुमार को बुलाकर सब जानकारी ली और काध प्रकाश करते हुए कहा–**''तुम लाखों लोगों के सामने मुझे 'तुम' कहना। तुम्हारे साथ मेरा क्या सम्बन्ध होगा यह क्या ट्रस्टी लोग**

स्थिर करेंगे–मठ का महन्त होने के नाते क्या मैं उनका गुलाम हो गया हूँ? तुम अपना मन खराब मत करना। पृथ्वी में एक श्रेणी के व्यक्ति भी हैं जो किसी के साथ किसी का आन्तरिक सम्बन्ध सहन नहीं कर सकते। तुम्हारे साथ मेरा क्या सम्बन्ध है यह तो उन्हें मालूम नहीं है।'' बाद में उन शिष्यों ने अपनी गलती को स्वीकारा और समस्या का समाधान हो गया। भविष्य में गया के इस उत्सव को प्रतिवर्ष चालू रखने के लिए इस वर्ष 'आकाश गंगा समिति' नामक एक संस्था का गठन कर उसकी नियमावली प्रस्तुत की गई। आज भी यहा प्रतिवर्ष दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में उत्सव का आयोजन होता है।

२३ जनवरी, सन् १९४६ ई. को नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के जन्मदिन के उपलक्ष्य में सारे देश में जन्मोत्सव मनाने की तैयारी की गई थी। अन्नदा कुमार ने भी अपने प्रमुख सहयोगियों की सहायता से विभिन्न गांवों में जाकर जयन्ती मनाई। आद्रा में उन्होंने अपने प्रमुख कार्यकर्त्ता श्यामा दास चटर्जी के सहयोग से उस दिन विशाल जनसभा का आयोजन किया। इस जनसभा में एक लाख लोगों की उपस्थिति देखकर सभी विस्मित हो गये। इस तरह का स्वतःस्फूर्त आयोजन यहाँ पहले कभी नही देखा गया था। सुभाषचन्द्र के व्यक्तित्व, देशप्रेम की भावना, राजनैतिक दूरदर्शिता की लोग कितनी श्रद्धा करते थे इसका प्रमाण यहाँ देखा गया ।

कुछ दिनों पूर्व रामचन्द्रपुर के पास तीन गांव में अचानक आग लग जाने से अधिकांश गरीब लोगों के मकान जल गये थे। अन्नदा कुमार उस समय रिलिफ सोसाइटी के माध्यम से सेवा कार्य में अग्रसर हुए। उनके इस कार्य में दो कोलियारी के अंग्रेज मैनेजर कूपर एवं ब्लूमफील्ड ने काफी सहायता की। ये दोनों सज्जन आश्रम में भी कई बार आये एवं अन्नदा कुमार के सेवा कायो को देखकर बहुत प्रभावित हुए। बाद में वे गोसाँई जी की कृपा का अनुभव कर शराब, मांस आदि छोड़कर हिन्दुओं की तरह रहते थे।

इधर काशी में दरवेश जी का शरीर काफी अस्वस्थ था। शिष्यों ने चिकित्सा के लिए उन्हें कोलकाता ले जाने का विचार किया। कोलकाता जाने के पूर्व उन्होंने अन्नदा कुमार को काशी बुलवाकर निम्न निर्देश प्रदान किया–

(१) रामचन्द्रपुरं आश्रम एवं रिलिफ सोसाइटी का कार्य निष्ठापूर्वक, प्राणपन करना।

(२) 'मन्दिर' पत्रिका को नियमित रूप से चलाते रहना। याद रखना, 'मन्दिर' पत्रिका के चालू रहने का अर्थ है–मैं तुम्हारे निकट जीवित हूँ!

(३) 'संगठन' पत्रिका देश की सेवा कर रही है, उसे अच्छा बनाने का प्रयास करना।

(४) अपना सब कुछ देकर भी दूसरों का उपकार करना।

(५) परिमित आहार एवं परिमित निद्रा लेना एवं आवश्यकता से अधिक वस्त्र का व्यवहार मत करना।

(६) सभी के भीतर भगवत् दर्शन करना।

(७) तुम सर्व-जयी होना–तुम विश्वजयी होना–तुम सच्चे सेवक बनो।

(८) दीनातिदीन होकर सेवा करते हुए श्रेष्ठ बनो। तुम्हारा कर्म एवं साधना का क्षेत्र (रामचन्द्रपुर आश्रम) अवश्य तीर्थ स्थल होगा।

(९) सत्य की सेवा करो–सत्य प्रकाश करो–सत्य मर्यादा की रक्षा करो। कोई भी शक्ति तुम्हारे विरूद्ध टिक न सकेगी। नियमित साधना करते रहो–चिन्ता क्या है? तुम्हारे निःस्वार्थ कर्मों के भीतर यथा समय तुम मेरा निर्देश प्राप्त करोगे।

काशी से रामचन्द्रपुर होते हुए अन्नदा कुमार पुरूलिया आ गये। उस समय नेताजी के दो प्रमुख सहयोगी कर्नल महबूब एवं मेजर जनरल शाह नवाज पुरूलिया आये। 'आजाद हिन्द फौज' के इन सेनानियों ने पुरूलिया, बलरामपुर, चाण्डिल एवं टाटानगर में आयोजित विशाल सभाओं में नेताजी के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट किये। अन्नदा कुमार के साथ इन लोगों ने अलग से नेताजी के सम्बन्ध में विशेष चर्चा की थी।

दरवेश जी को कोलकाता लाकर शिष्यों ने प्रसिद्ध चिकित्सकों से इलाज करवाया फिर भी स्वास्थ्य में कोई सुधार न हुआ। अतः ७ जून को वे वापस काशी आ गये। काशी आकर उन्होने पुनः अन्नदा कुमार को काशी बुलवाकर जो बातें कही, उसे यहाँ दिया जा रहा है–

(१) तुम्हारा पुत्र नन्ददुलाल साधु अवश्य बनेगा, परन्तु वह संन्यासी होगा कि नहीं– इसमें मेरा संदेह है। किसी को जोर जबर्दस्ती कर संन्यासी नहीं बनाया जा सकता।

(२) अनेक मठ, मन्दिर, प्रतिष्ठान का भार लेने के लिए भविष्य में तुमसे कहा जावेगा परन्तु तुम कभी इसमें राजी मत होना। तुम सेवक हो–सेवा करना ही तुम्हारा कार्य है।

(३) दरवेश जी ने अन्नदा कुमार को संन्यास लेने के लिए कहा तब अन्नदा कुमार ने कहा–'मैं संन्यास लेने के लिए प्रस्तुत हूँ। एक वर्ष के भीतर परिवार के लोगों की व्यवस्था कर संन्यास ग्रहण करूँगा।' दरवेश जी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और कहा, 'संन्यास की विधि आदि सब, मठ में लिखा रखा है। संन्यास, माघ महिने की सप्तमी तिथि (अद्वैत सप्तमी) में लेना। प्रयाग में जिस स्थान में मैंने संन्यास ग्रहण किया था वह स्थान कुम्भ के समय तुम्हें दिखलाया था, तुम वहीं संन्यास लेना। संन्यास के पश्चात्, जिस प्रकार मैं हूँ, उसी तरह रहना। संन्यास का नाम होगा– असीमानन्द!'

अतः संन्यास लेकर परिवार के लोगों से अलग न रहकर उनके साथ ही रहने का निर्देश दरवेश जी ने उन्हें दिया। अन्नदा कुमार एवं स्त्री शैलबाला देवी दोनों ही साधना के उन्नत शिखर पर थे इसलिए उन्हें एक साथ रहने के लिए कहा गया। प्राचीनकाल में, हमारे देश में ऋषि लोग इसी तरह निर्लिप्त जीवन व्यतीत करते थे।

(४) रामचन्द्रपुर आश्रम की सुव्यवस्था के लिए दरवेश जी ने निम्न निर्देश उन्हें दिये–

(i) आश्रम के तीन हिस्से रहेंगे–दक्षिण भाग में तुम्हारे परिवार के लोग रहेंगे, मध्य भाग में आश्रम रहेगा। आश्रम में ठाकुर जी का मन्दिर, भोग गृह, पुरुष तथा महिलाओं के लिए रहने की पृथक व्यवस्था रहेगी।

(ii) मेरे लिए जो गृह बनाओगे, उसमें मेरा आसन एवं पादुका रहेगी।

(iii) शैलबाला देवी स्वयं अथवा ब्राह्मण द्वारा सेवा-पूजा एवं भोग की व्यवस्था करेंगी । तुम्हारे वंश-परम्परा में ठाकुरजी की सेवा-पूजा चलते रहेगी । आश्रम में दूसरे जाति के लोग काशी मठ के नियमानुसार पूजा कर सकेंगे ।

(iv) तुम्हारे संन्यासी गुरूभाई या कोई ब्रह्मचारी आश्रम में रहना चाहे तो उनके लिए पृथक कमरे की व्यवस्था कर देना। उन्हें नियमित साधन-भजन करना होगा एवं भिक्षा द्वारा अपना भोजन संग्रह करना होगा। नियम भंग करने पर या साधन-भजन न करने पर उन्हें आश्रम से निकाल देना। जो कर्म या आश्रम की सेवा कार्य का भार लेकर रहेंगे, उनके लिए उपरोक्त नियम लागू नहीं रहेंगे।

(v) दाल, चावल एवं एक सब्जी आश्रमवासियों का नित्य आहार होगा। उत्सव आदि में विशेष व्यवस्था की जा सकती है।

(vi) आश्रम का उत्तर भाग रिलिफ सोसाइटी के लिए निर्दिष्ट रहेगा । इसके अन्तर्गत स्कूल, अस्पताल एवं अन्य जन-सेवा के लिए आवश्यक कार्य चलता रहेगा। प्रति वर्ष कमेटी विचार-सभा (बैठक) करते हुए अपने कार्यों का सुचारू रूप से संचालन करेगी।

(vii) होम्योपैथी दवाखाना के विस्तार के लिए चेष्टा करना।

(viii) एक वर्ष के भीतर अपने परिवार प्रतिपालन की व्यवस्था कर संन्यास ले लेना । चेष्टा करना, जिससे समय का हेर-फेर न हो जाए । इस प्रकार निर्देश देकर दरवेशजी ने पुनः अन्नदा कुमार को कहा–संन्यास लेने के पश्चात् मेरी तरह रहना। नाम असीमानन्द रखना ।

दरवेश जी की शारीरिकअवस्था कमशः खराब होने लगी। सभी लोग चिन्तित हो उठे। अन्नदा कुमार ने रोते हुए उनसे कहा– "तुमने मुझसे कहा था कि मेरे पास आकर रहोगे।" तब दरवेश जी ने सांत्वना देते हुए कहा–**"तुम रो क्यों रहे हो! मैं तो सर्वदा तुम्हारे साथ हूँ । मैं कल रात्रि में शरीर त्याग दूँगा। जाने के पूर्व तुम्हें चार वरदान देता हूँ–**

(१) तुम जो प्रारम्भ करोगे वह सम्पूर्ण होगा।

(२) तुम जो संकल्प करोगे वह सिद्ध होगा।

(३) मुझे देखने की इच्छा होने पर इसी तरह देख सकोगे।

(४) तुम अपना शरीर छोड़कर जब जहाँ इच्छा होगी, जा सकोगे।

ऐसा कहकर उन्होंने अपना आसन और खड़ाऊ (चरण पादुका) देकर कहा कि ''इसके साथ ही मैं तुम्हारे पास जा रहा हूँ।'' उन्होंने इन वस्तुओं को यथाशीघ्र रामचन्द्रपुर भेजने का निर्देश दिया ।

दरवेश जी द्वारा पूर्व कथित निर्दिष्ट दिन आ गया। उनके भावी विरह से सभी दुःखित थे। संध्या के समय उनके शरीर की अवस्था और अधिक नाजुक देखकर उनका प्रिय नाम-संकीर्तन "भजो गुरू गौरांग राधा गोविन्द ब्रह्म नारायण हरे कृष्ण राम" प्रारम्भ किया गया । अन्नदा कुमार की आँखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी । रात्रि के पौने बारह बजे दरवेश जी महासमाधि में लीन हो गये । उस समय कई भाग्यवान व्यक्तियों ने वहाँ गोसाँई जी को प्रत्यक्ष देखा था। अन्नदा कुमार ने देखा कि एक ज्योतिपूंज दरवेश जी के मुख से निकलकर विलीन हो गया। दूसरे दिन मठ में गोसाँई जी के मन्दिर के नीचे तलघर में, पूर्व निर्दिष्ट स्थान पर उनके पवित्र देह को समाधिस्थ किया गया।

दरवेश जी के अन्तिम पच्चीस दिनों के संस्मरण, उनके शिष्य डा. वरदाकुमार देव ने लिखा था। उनकी डायरी से तथा 'दरवेश दर्शन' ग्रन्थ से दरवेश जी के कुछ उपदेश यहाँ दिये जा रहे हैं–

(१) इनके एक शिष्य ने कई लोगों के साथ दुर्व्यवहार किया था एवं कई लोग उसके आचरण से बहुत क्षुब्ध थे। उस व्यक्ति ने अपनी गलती स्वीकार कर दरवेश जी के पास आकर क्षमा मांगी। तब दरवेश जी ने कहा–''मैंने तुम्हारा कोई अपराध ग्रहण नहीं किया है। जिन व्यक्तियों के निकट तुमने अपराध किया है, उनके चरणों में क्षमा भिक्षा करने पर, उन अपराधों का परिणाम तुम्हें नही भुगतना पड़ेगा। नहीं तो भयानक कष्ट पाना होगा–यही गोसाँई जी का विधान है।''

(२) कई लोग गोसाँई जी की शिष्य परम्परा में अपने को दीक्षित कहा करते हैं। इस सम्बन्ध में दरवेश जी ने कहा–''जो लोग शराब, मांस आदि खाते हैं एवं उच्छिष्ठ (जूठा) का विचार नहीं करते हैं वे लोग गोसाँई जी के शिष्य कभी नहीं हो सकते। इस विषय में तुम लोग दृढ़ रहना।''

इस सम्बन्ध में स्वामी असीमानन्द जी (अन्नदा कुमार) का भी स्पष्ट कथन है–''सांधना के नियम मेरे द्वारा बनाये हुए नहीं है। इन नियमों के पालन का निर्देश गोसाँई जी ने दिया है। उच्छिष्ठ (जूठा),प्याज, मांस आदि खाने पर दुरारोग्य व्याधि होगी। नियमों में कुछ भी परिवर्तन मैं नहीं कर सकता।''

इस प्रसंग में जब इन्दौर में ''अखिल भारत शिक्षा सम्मेलन'' में अन्नदा कुमार (स्वामीजी) गए थे। उस समय की एक घटना का उल्लेख किया जा रहा है। इस सम्मेलन में उपस्थित सभी लोगों के लिए टेबिल पर भोजन रखा था एवं सब लोग अपनी ईच्छानुसार उसमें से खाद्य पदार्थों को निकालकर भोजन कर रहे थे। अन्नदा कुमार ने इस स्वरूचि भोज मे जाने के पूर्व ही फल वैगरह का भोजन कर लिया था। इस भोज में उनकी जाने की इच्छा नहीं थी पर मित्रों के अनुरोध को न टाल सकने से टेबिल के पास एक कुर्सी पर बैठे हुए, इस दृश्य को वे देख रहे थे। अचानक अन्नदा कुमार को मुस्कराते हुए देखकर मित्रों ने उनके हँसने का कारण पूछा। अन्नदा कुमार ने हँसते हुए कहा–''देखिए, दूसरे देशों मे मनुष्य समान अधिकार मांगते हैं और हम लोगों को Equal distribution of disease चाहिए अर्थात रोग का भी समवितरण एवं अधिकार चाहिए। विज्ञान के दृष्टिकोण से देखने पर उच्छिष्ट (जूठा) भोजन से रोग के जीवाणु का संकमण होता है। हमलोग विज्ञान सम्मत उपाय से रोग का वितरण कर रहे हैं।'' अन्नदा कुमार की बातों को सुनकर मित्रगण अपने इस प्रकार के कार्य से लज्जित हो गए। अन्नदा कुमार ने उन लोगों से कहा–**''जूठा खाने से ही प्रेम भाव नही हो जाता है। मित्रता का प्रमाण जूठा खाना नहो है। जूठा खाना भी उचित नहीं है एवं किसी को जूठा देना भी अनुचित है।''** ('संगठन' पत्रिका, २५वां वर्ष)

(३) दरवेश जी अन्नदाकुमार को अत्यधिक स्नेह करते थे। इसे लेकर कई शिष्यों के मन में ईर्षा की भावना थी। दरवेश जी ने एक दिन शिष्यों को कहा–अन्नदा सम्पूर्ण निःस्वार्थ है। उसके जिले के लोग उसकी अत्यन्त श्रद्धा करते हैं एवं उसे छोड़ना नहो चाहते। कर्म में वह बहुत उच्च स्थान पर है उस हिसाब से साधना में उसकी कमी है। परन्तु मुझ पर उसकी अचला भक्ति है। गुरू पर जिसकी अचला भक्ति है उसके लिए साधना की क्या आवश्यकता है? गुरू पर अचला भक्ति रहने पर भी यदि कहा जाये कि साधन-भजन की आवश्यकता है तो शास्त्र व गोसाँई जी की वाणी मिथ्या हो जावेगी।

(४) दरवेश जी के शारीरिक कष्ट को देखकर किसी शिष्य के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा– दैहिक कष्ट वैसा कुछ भी नहो है। तुम्हारे कुछ गुरूभाईयों ने नियमों का पालन नहो किया है, इसी कारण कष्ट है। मानसिक पाप की अपेक्षा शारीरिक पाप भयानक होता है। जैसे मन में चोरी करने की इच्छा अचानक हुई, इसकी अपेक्षा यदि वास्तव में चोरी की जाये तो अधिक पाप होता है। नशा, मांस, अण्डा, जूठा आदि निषेध का कई शिष्यों ने पालन नही किया है, इसी कारण यह भोग मुझे भोगना पड़ रहा है। यदि मैं ऐसा न करता तो यह सब शिष्यों को ही भुगतना पड़ता। मैं यदि उनका कष्ट ग्रहण न करूँ तो उन लोगों का उद्धार किस प्रकार होगा? दीक्षा देने पर इस प्रकार कष्ट ग्रहण करना पड़ता है। स्वयं कष्ट न पाने से लोगों का उपकार

कैसे होगा? जिस समय गोसाँई जी ने दीक्षा देने के लिए आदेश प्रदान किया था, उसी समय उन्होंने कहा था–''लोगों के उपकार के लिए कष्ट सहन करना ही होगा–कष्ट सहन करने के लिए तुम तैयार हो? मैंने कहा था–'आपके कहने पर सभी सहन कर लूँगा ।

(५) गोसाँई जी के सम्बन्ध में दरवेश जी का जो स्पष्ट अभिमत था, उसे 'दरवेश दर्शन' ग्रन्थ से यहाँ उल्लेखित किया जा रहा है–

(i) गुरुशक्ति तुम्हारे गुरु के भीतर है इस कारण वे तुम्हारे पूज्य एवं प्रिय हैं। परमहंस जी (गोसाँई जी के गुरूदेव) इस शक्ति के मूल आधार हैं, इस कारण वे भी पूज्य हैं। परन्तु गोसाँई जी इस तरह नहो हैं। गोसाँई जी का शरीर अप्राकृत है अर्थात मृत्यु के साथ उनका देह लुप्त नहीं हो गया। इस शक्ति को देने के लिए वे सद्‌गुरू रूप में अवतीर्ण हुए हैं। मेरे गुरू हैं इस कारण मैं उन्हें महान् नही कह रहा हूँ, वास्तव में वे सद्‌गुरू के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। उनका शरीर नश्वर नहीं है। इसे और अच्छी तरह समझाने के लिए कह रहा हूँ–गोसाँई जी इस शक्ति को वितरण करने के लिए जिन आधारों (शरीर) में विराज कर रहे हैं, वे आधार नश्वर है अर्थात इस बार मृत्यु के पश्चात् यदि गोसाँई जी के निर्देश से, इनमें से किसी को पुनः जन्म लेना पड़े तो एक नवीन देह लेकर उन्हें आना होगा। उस देह की आकृति, पूर्व के देह की आकृति से भिन्न होगी । परन्तु यदि गोसाँई जी स्वयं आवे तो इसी प्रकार की आकृति लेकर आंएगे, क्योंकि उनका देह अप्राकत है । गोसाँई जी के गुरू स्वामी ब्रह्मानन्द परमहंस जी यद्यपि परम्परा से उनके गुरू हैं परन्तु उनका भी शरीर नश्वर है । गोसाँई जी इसके पूर्व और तीन बार अवतीर्ण हुए हैं। उस तीन बार और इस बार की आकृति एक ही समान है। शास्त्र में प्रमाण है। यह सब कहने से तुम्हें विश्वास नहो होगा । केवल सुनने से पूरा विश्वास कभी नहीं हो सकता । इस प्रकार का विश्वास स्थायी भी नहीं होता । कमशः इसका अनुभव अर्थात दर्शन अवश्य होगा।

(ii) गोसाँई जी का स्वरूप–वे सद्‌गुरू हैं। सद्‌गुरू दो प्रकार के हैं । एक, भगवान् सद्‌गुरू के रूप में स्वयं अवतीर्ण होते हैं जैसे, दत्तात्रेय, कपिल, ऋभु आदि। दूसरे, मुक्त आत्मा भगवान् के विशेष आदेश से सद्‌गुरू रूप में जन्म ग्रहण करते हैं। जैसे, जनक ऋषि ने नानक के रूप में जन्म लिया। प्रायः दोनों का कार्य एक ही प्रकार का है। सिद्ध महात्माओं को सद्‌गुरू नहो कहा जाता। वे ब्रह्मविद् सिद्धगुरू हैं परन्तु सद्‌गुरू नहीं। सिद्ध गुरू मोक्ष का श्रेष्ठ पथ दिखला सकते हैं परन्तु सद्‌गुरू शिष्य को मोक्ष प्रदान कर सकते हैं एवं कर देते हैं। महाभारत के शान्तिपर्व में श्रीकृष्ण ने जो स्तोत्र कहा है, उसमें भगवान् के जितने स्वरूप हैं उन सभी का उल्लेख करते हुए एक-दो श्लोक मिलता है। उसमें सद्‌गुरू के सम्बन्ध में एक श्लोक का उल्लेख है–

जटिने दण्डिने नित्यं लम्बोदर शरीरिणे।
कमण्डलु-निषंगाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः॥

सद्गुरू का रूप वर्णन करते हुए कहा गया है––वे जटाधारी, दण्डधारी, कमंडल धारी, लम्बोदर अर्थात स्थूल काय हैं एवं ब्रह्म ही उनकी आत्मा है। इस रूप के साथ गोसाँई जी का रूप पूर्णतः एक है। दत्तात्रेय एवं कपिल मुनि का शास्त्र में जो वर्णन है, वह भी इसी प्रकार का है। गोसाँई जी अवतीर्ण सद्गुरू थे अथवा मुक्तपुरूष–भगवान् के आदेश से आये थे, यह अभी तुम्हारी समझ में नहीं आएगा। कमशः इसे समझोगे। दोनों का फल एक ही है। कर्त्ता (मालिक) का स्वयं कार्य करना अथवा अपने प्रिय विश्वासी व्यक्ति से कार्य करवाना–फल की दृष्टि से दोनों एक ही है।

(६) दरवेश जी से उनके शारीरिक कष्ट के बारे में पूछने पर उन्होंने कहा–"शरीर म कष्ट विशेष कुछ नहो है–परमानन्द में हूँ। मैं दृष्टा मात्र हूँ। नाम में मन सर्वदा डूब जाता है। यह शरीर 'मैं' नही हूँ– 'मैं' पृथक है, यह बोध होता है। 'नाम' स्वतः चल रहा है। उसमें मग्न होने के लिए मन उधर लगाता हूँ तो 'नाम' के समुद्र में डूब जाता हूँ । चारों तरफ नाम की तरंगा से श्वास बन्द होने लगती है।"

(७) भगवान् की उपलब्धि करना एवं उनके चरणों में स्थान पाना–ये दोनों अवस्था केवल 'नाम' करते रहने से हो जाती है। यह 'नाम' इच्छा होने से होगा–ऐसा नहीं है। जिनके ऊपर 'उनकी' कृपा अवतीर्ण होगी–केवल उन्ही के द्वारा श्वास-प्रश्वास में 'नाम जप' संभव होगा। अब विचार करना आवश्यक है कि किनके ऊपर भगवत् कृपा अवतीर्ण होती है? इस सम्बन्ध में, आर्य ऋषि एवं महात्मागण अपने जीवन में परीक्षा द्वारा इस सिद्धांत पर आये हैं कि 'अभ्यास योग' द्वारा उनकी कृपा अवतीर्ण होती है। अर्थात सम्पूर्ण निष्फल होते हुए भी जो व्यक्ति पुनः-पुनः प्रयास करते हैं, जिसे तैरना न आता हो ऐसा व्यक्ति भी पानी में गिर जाने से जिस प्रकार तैरने की प्राण-पण चेष्टा करता हुआ अपना हाथ-पैर पटकता है, उसी तरह कुछ भी नहीं हो रहा है, यह समझकर भी जो 'नाम जप' करने की प्राण-पण चेष्टा का कभी त्याग नहो करता–कृपा उसी के ऊपर अवतीर्ण होती है–यही एक मात्र उपाय है। मैं काम, कोध, लोभ आदि से ग्रस्त हूँ–यह सब व्यर्थ विचार वे लोग ही करते हैं, जो सोचते हैं कि मैं पवित्र होने पर भगवान् को पा जाऊँगा। यह 'अहं' भावना अहंकार से उत्पन्न होती है। मैं जितना भी पवित्र रहूँ–'उन्हें' नहो प्राप्त कर सकता– यदि वे कृपा न करें! इस कृपा को प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है–'अभ्यास' अर्थात 'नामजप'।

(८) दृढ़तापूर्वक नियमित रूप से आसन में बैठकर नामजप करना आवश्यक है। नाम के अर्थ को समझने में त्रुटि नही रहना चाहिए, नाममंत्र चाहे शक्ति का हो या शिवजी का हो, चाहे हरि का हो, सभी नामों का एकमात्र प्रतिपाद्य अर्थ 'ब्रह्म'

है। अविनश्वर ब्रह्म के सिवाय कोई नश्वर देवता उपास्य नहीं हो सकता। 'हरि' इस शब्द का अर्थ है जो पाप-ताप को हरण करे। शिवजी की मूर्ति की चिन्ता करते हुए यदि तुम हरिनाम कीर्तन करो तो कोई गलत काम नहीं होगा । 'शिवम्' शब्द का अर्थ है मंगलमय। श्रीकृष्ण की मूर्ति की चिन्ता करते हुए यदि तुम 'शिवम्' नाम का जप करो तो कोई गलत कार्य नहीं होगा।

पंच देवताओं का सम्पूर्ण सामंजस्य करना गोसाँईजी के धर्म प्रचार का एक प्रधान कार्य था । मैंने भी इस कार्य को, जीवन का एक श्रेष्ठ व्रत के हिसाव से, ग्रहण किया। भगवान की कोई भी मूर्ति पुरूष हो या स्त्री मूर्ति हो, उसका ध्यान करते हुए तुम भगवान या भगवती के किसी भी नाम को जप करने के अधिकारी हो।

('मन्दिर' षष्ठ वर्ष से)

अध्याय २२ : त्रिवेणी संगम में संन्यास ग्रहण एवं परिव्राजन

दरवेश जी के निर्देशानुसार अन्नदा कुमार जनवरी, १९४७ में रामचन्द्रपुर आश्रम एवं परिवार की व्यवस्था कर संन्यास लेने के लिए प्रस्तुत हुए। उनके गुणमुग्ध एवं सहयोगी लोग अन्नदा कुमार के संन्यास लेने का विचार सुनकर बहुत चिन्तित हो उठे। अन्नदा कुमार गुरूजी का निर्देश प्राप्त कर जिस दिन रामचन्द्रपुर आश्रम से निकले, उस दिन लगभग तीन सौ लोग भी उनके साथ-साथ पैदल चलने लगे और सभी कीर्तन करने लगे। अन्नदा कुमार के साथ कुछ भी सामान नहीं था । रास्ते पर एक गांव मे एक व्यक्ति ने उन्हें थोड़ा सा दूध पिलाया और एक नामावली एवं खड़ाऊ प्रदान किया। वहां अन्नदा कुमार ने अपने साथ चलने वालों को बिदा किया परन्तु कुछ लोगों ने उनका साथ नहो छोड़ा। रास्ते में उनके दो अंग्रेज भक्त कूपर एवं ब्लूमफिल्ड साहब अन्नदा कुमार को संन्यास के लिए जाते हुए देखकर बहुत दुःखित हो उठे एवं उन्हें कम्बल देने का प्रयास किया परन्तु अन्नदा कुमार ने नहो लिया। वहां से आद्रा-धानबाद होकर वे गयाजी के लिए रवाना हुए। साथ में १५-२० लोग भी टिकिट आदि की व्यवस्था कर उनके साथ निकल पड़े। गया जी में उन्होंने पिण्डदान कार्य सम्पन्न किया एवं वहां से कुछ लोगों को बिदा कर, १०-१२ लोगों के साथ इलाहाबाद पहुँचे।

प्रयाग मे माघ सप्तमी (अद्वैत सप्तमी) तिथि में उन्होंने विरजा होम कर संन्यास लिया। संन्यास ग्रहण करने के समय उन्होंने गोसाँई जी एवं दरवेश जी के ज्योतिर्मय रूप को प्रत्यक्ष देखा । संन्यास लेने के बाद उनका नाम स्वामी असीमानन्द सरस्वती हो गया।

इसके पश्चात् आगे अन्नदा कुमार को स्वामी जी के नाम से सम्बोधित किया जा रहा है।

संन्यास लेने के साथ ही स्वामी जी में अद्‌भुत् परिवर्तन देखकर सभी लोग विस्मित हो गये। इन लोगों ने उनकी समाधि अवस्था पहले नही देखी थी । संन्यास के बाद जब उन्हें स्थानीय 'भारत सेवाश्रम' में लाया गया तब वे समाधि मग्न हो गये। उसके बाद अर्धबाह्य दशा में उनके गले से मधुर स्वर में भजन-गान सुनकर सभी मुग्ध हो गये। इसके पश्चात् जब भी आसन में बैठते वे समाधि मग्न हो जाते थे। साथ में जो लोग आये थे वे सावधानी पूर्वक उनकी देख-भाल करते थे।

इलाहाबाद से वृन्दावन जाने के लिए जब स्वामी जी स्टेशन पहुँचे तब उनके पास केवल दो पैसे थे, वह भी राधाकुण्ड का पंड़ा छन्नुलाल, जो कि साथ में था, के

पान आदि खाने में खर्च हो गये। ट्रेन आने में एक घण्टे की देर थी। इस समय अकस्मात् एक अपरिचित व्यक्ति ने आकर स्वामी जी को प्रणाम किया और साठ रूपये देकर चला गया। उससे सभी लोगों की टिकिट खरीदने के बाद केवल दस पैसा बचा । स्वामी जी सभी लोगों को लेकर वृन्दावन में गोसाँई जी के एक शिष्य श्री द्वारिकानाथ राय के यहाँ पहुँचे। श्री द्वारिकानाथ राय वृन्दावन में रहकर एकान्त-भजन किया करते थे। स्वामी जी के साथ उनका पूर्व परिचय नहीं था। बाहर निकलकर जैसे ही उन्होंने स्वामी जी को देखा वे कह उठे–कल रात्रि मैंने स्वप्न मे आपको देखा और आपका चेहरा अत्यन्त सफेद देखकर सोचने लगा कि ये कौन हैं? एवं इनका चेहरा इतना सफेद क्यों है? उसी समय देखा कि गोसाँई जी आपके पास खड़े होकर मुझसे कह रहे हैं–''**अब इस शरीर में मैं नृत्य करूँगा** ।'' संन्यास के समय दाढ़ी-मूँछ-भ्रू आदि सब मुंडन करने से स्वामी जी का चेहरा अधिक सफेद लग रहा था । सभी लोग यहाँ पास के ही एक मकान में कुछ दिन ठहरने के पश्चात् स्वामीजी के साथ राधाकुण्ड आ गये। यहाँ पंडा छन्नुलाल ने पहले से ही एक मकान में ठहरने की व्यवस्था कर रखा था। पंडा का मकान 'धूनी आश्रम' के पास में ही था। गोसाँई जी जब राधाकुण्ड आये थे तब जाड़े के दिनों में इस स्थान पर धूनी लगाकर बैठे रहते थे। इसी कारण यह स्थान धूनी-आश्रम नाम से प्रसिद्ध हो गया। यहाँ गोसाँई जी का चित्र लगा है। पंडा एवं ब्रजमाई नित्य गोसाँई जी की आरती एवं भोग सेवा करते थे। ब्रजमाई उस समय का वर्णन करते हुए कहा करती थी–''स्वामी जी के पास रोज सुबह जाकर मैं पूछती कि आज क्या व्यवस्था करूं? तो स्वामी जी कहते थे–'तुम्हारी जो इच्छा है वैसा ही करो ।' फिर मैं अच्छे-अच्छे पकवान आदि की व्यवस्था करती । स्वामी जी अपनी छोटी थैली से नित्य जितना आवश्यक होता उतना रूपया निकालकर दे देते थे। कहां से इतना रूपया आता एवं किस प्रकार इतना खर्च करते, कुछ भी पता नहीं लगता था। बड़े-बड़े राजा महाराजा को भी देखा है परन्तु उन्हें स्वामी जी की तरह खर्चा करते हुए नहीं देखा। ऐसा लगता था जैसे नदी की धारा की तरह बहकर रूपया आ रहा है एवं खर्च हो रहा है। भगवान गोपाल जी ही सब व्यवस्था कर रहे हैं। ऐसा बोध होता था।"

राधाकुण्ड में रहते समय जब भी स्वामी जी आसन में बैठते थे, समाधिस्थ हो जाते थे। कभी-कभी भावावस्था में वे किसी से अस्फूट स्वर में बातचीत करते थे। उस समय प्रायः एक परलोकगत व्यक्ति की आत्मा आकर स्वामी जी के माध्यम से विभिन्न प्रश्नों का उत्तर देती थी। इस तरह से प्रश्नोत्तर द्वारा स्वामी जी के विगत जन्मों की घटनाओं को सुनकर लिख लिया जाता था । भावावस्था में वे जो भी भजन गाते उन सब को भी लिख लिया जाता था। दरवेश जी के एक शिष्य स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती उस समय सर्वदा स्वामी जी के साथ रहते थे, उनके द्वारा लिखी गई उस

समय की कुछ घटनाओं का उल्लेख यहां किया जा रहा है–

राधाकुण्ड में रहते समय स्वामी जी के साथ सभी लोगों ने चौरासी कोस ब्रजमण्डल के प्रमुख कई स्थानों का दर्शन किया। एक दिन सभी विहारवन गये। वहाँ पहुँचते ही स्वामी जी के भीतर एक अपूर्व भाव का उन्मेष देखा गया । वे वहाँ की रज में लोटने लगे एवं प्रत्येक वृक्ष का आलिंगन करने लगे। वन के भीतर वे पागल की तरह दौड़ने लगते। जमीन में लोटते रहने के कारण उनका शरीर कांटों से क्षत-विक्षत हो गया। उन्हें शरीर का कछ भी ध्यान नहीं था । विहारवन में एक प्राचीन कदम्ब का वृक्ष था। वहां एक बाबाजी रहते थे। उन्होंने वृक्ष पर पत्ते का दोना दिखलाया। ऐसा कहा जाता है कि श्रीकृष्ण जी ने अपने सखा सहित लीला के समय इन वृक्षों के पत्तों के दोने में जलपान किया था। द्वापर युग की लीला आज भी वहां चल रही है। भाग्यवान व्यक्ति आज भी इन सब लीला को प्रत्यक्ष देखते हैं। यहां के सभी वृक्ष रज को स्पर्श करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। बड़े वृक्ष की मोटी शाखाएं भी नीचे झुककर रज को स्पर्श कर रही हैं।

राधाकुण्ड के आसपास के स्थानों का दर्शन करने के पश्चात् वे वृन्दावन आ गये और यही रहकर आसपास श्रीराधाकृष्ण की लीला स्थली का दर्शन करने लगे। एक दिन कालियादह जाकर वे भावमग्न हो गये। किसी प्रकार उन्हें घर लाया गया। सारी रात इसी अवस्था में वे भजन गाते रहे। स्वामी जी वन में भ्रमण करते समय भी भावमग्न रहते थे। ऐसा लगता था जैसे वे दिव्य आनन्द में डुबे हुए हैं। इस अनुभव के सम्बन्ध में स्वामी जी ने कहा था–

''वृन्दावन में मेरे शरीर की अपेक्षा 'मन' ज्यादा स्थानों में घूमा है । यहाँ किसी भी स्थान में बैठते ही मन आनन्दमय लोक में पहुँच जाता है। नित्य लीला के इस निकेतन में वृन्दावनं लीला आज भी चल रही है। समाधिस्थ होने पर इस लीला का दर्शन मिलता है। यहाँ वंशी की मधुर ध्वनि सर्वदा गूंज रही है। पहले वृन्दावन आने के लिए मैंने कई बार प्रयास किया था परन्तु गुरूदेव ने जाने के लिए मना कर दिया था। शरीर छोड़ने के पहले उन्होंने कहा था कि संन्यास लेने के बाद तुम पहले वृन्दावन फिर शान्तिपुर एवं नवद्वीप जाना। यद्यपि शान्तिपुर पहले एकबार मैं गया था परन्तु गुरूदेव ने तुरन्त वहां से लौट जाने का निर्देश दिया था। आज मैं अनुभव कर रहा हूँ कि उन्होंने वृन्दावन धाम में जाने के लिए पहले क्यों मना किया था। सम्पूर्ण रूप से आसक्तियों के त्याग के बिना वृन्दावन लीला समझ में नहीं आ सकती। तीव्र वैराग्य के बिना इस लीला का आस्वादन नहीं हो सकता । श्रीकृष्ण को पाने के लिए लज्जा, भय, मान-अभिमान, अहंकार, कुल आदि सब भूलकर व्याकुल भाव से यमुना नदी के किनारे घूमना होगा । उनकी वंशी की ध्वनि के आकर्षण से–मेरा मन, प्राण, शरीर वहीं दौड़ रहा है। मेरा आचरण देखकर लोग हँसते हैं–मुझे

भावमग्न देखकर किसी के आँखों में आँसू आ रहे हैं । कभी-कभी मैं बेहोश हो जाता हूँ–यमुना के किनारे दौड़ता हूँ। श्रीकृष्ण की मधुर वंशी ध्वनि एवं श्रीराधाजी की नित्य लीला यहाँ सर्वदा चल रही है । अप्राकृतिक लीलाभूमि श्री वृन्दावन का क्या कोई वर्णन कर सकता है? भाषा यहाँ रूक जाती है। इसे अनुभव ही किया जा सकता है–कोई इसे व्यक्त नहीं कर सकता ।"

एक दिन भावावस्था में स्वामी जी ने कहा–''विश्व की आत्मा के वीच आत्माराम श्रीकृष्ण लीला कर रहे हैं तथा मेरे श्रीकृष्ण म सभी का लय हो रहा है। सब प्रकार की ज्योति उस विराट महान् ज्योति में विलीन हो रही है। उनका काला रूप सृष्टि के अन्तर्मुखी अवस्था का द्योतक है–एक के मध्य वहु की विलीन अवस्था। इसी कारण मेरे कृष्ण श्याम वर्ण हैं।''

'भीतर शक्ति निद्रित है। सुषुम्ना के पथ में इष्ट मंत्र की ध्वनि के आघात से उसे जागृत करो– उसे और सोने मत दो। यह 'शक्ति' सुषुम्ना के पथ से सहस्रार में जाकर 'शिव' के साथ मिलित होगी। शिव-शक्ति का मिलन होगा। राधाकृष्ण, शिवशक्ति सब एक हैं।' 'योग' का अर्थ है आत्मा के साथ परमात्मा का मिलन।'

चित्त की वृत्तियों को पांच भागों में विभक्त किया जा सकता है–

(१) क्षिप्त – अस्थिर मन। जो स्थिर न होवे उसे 'क्षिप्त' कहा जाता है।

(२) मूढ़ – मन जब काम-कोध आदि के वशीभूत होकर कर्तव्य विस्मृत हो जाता है एवं अच्छा-बुरा समझ नहीं सकता तब उसे 'मूढ़' कहा जाता है।

(३) विक्षिप्त – जो मन अभी स्थिर होवे फिर तुरन्त अस्थिर हो जावे उसे 'विक्षिप्त' कहा जाता है।

(४) एकाग्र – सब कुछ भूलकर चंचलता, आलस्य आदि सभी वृत्तियों का त्याग करते हुए, मन जब अपने लक्ष्य में स्थिर हो जाता है, तब उसे 'एकाग्र' कहा जाता है ।

(५) निरूद्ध – एकाग्र अवस्था प्राप्त करने के पश्चात् मन जब देहबुद्धि विस्मृत हो जावे तथा सभी वृत्तियों को निरोध करता हुआ तन्मय हो जावे एवं यह अवस्था दीर्घकाल तक स्थाई रहे, तब 'निरूद्ध' अवस्था की प्राप्ति होती है।

उस समय स्वामी असीमानन्द जी काफी दिनों तक पागल की तरह यमुना के किनारे 'हा कृष्ण-हा कृष्ण' कहते हुए रोते-रोते घूमते रहते थे। श्रीकृष्ण के दर्शन की आकांक्षा से वे अस्थिर से दिखलाई पड़ते थे। प्रायः समाधिस्थ होकर वे गिर पड़ते थे। कई घण्टों तक उनकी समाधि टूटती नहो थी। दिन व रात किस तरह व्यतीत होता उन्हें कुछ भी ख्याल नहीं रहता था। साथी लोग उनके शरीर की सावधानी से रक्षा करते थे। जोर-जबर्दस्ती कर उन्हें कुछ खिलाना पड़ता था। इस अवस्था में उन्हें निर्देश प्राप्त हुआ–''तुम आश्रम में वापस चले जाओ, वहीं भजन करते हुए–तुम्हें मेरा

दर्शन मिलेगा ।'' इस प्रकार निर्देश प्राप्त कर वे रामचन्द्रपुर वापस आ गये।

वृन्दावन से रामचन्द्रपुर आने के बाद वे अपना अधिकांश समय नाम-जप एवं ध्यान में व्यतीत करते थे। उस समय उनकी तीव्र व्याकुल अवस्था को लोगों ने प्रत्यक्ष देखा। वृन्दावन में रहते समय जो पत्र स्वामी जी ने लिखा था 'असीमानन्देर पत्र' (बंगला) ग्रन्थ से यहां दिया जा रहा है–

''मेरे सम्मुख अनन्त कमो का समुद्र है। मैंने संन्यास लिया है परन्तु अभी भी कर्म रह गया है । कर्म करना ही पड़ेगा । निष्काम कर्म–जगद्धिताय–भगवत्कर्म समझकर सभी कार्य करना होगा । विश्व की सेवा करनी होगी । कर्म करते हुए कर्म की आसक्ति समाप्त करने के पश्चात् कर्म-त्याग होता है। कमो के अतीत होने के पश्चात् भक्तियोग होता है । भक्ति क्या सहज़ है? मन का संदेह दूर नहे होता। भगवान श्रीकृष्ण ने विश्वरूप दर्शन करवाकर अर्जुन का लक्ष्य स्थिर किया था। यह सब उनकी कृपा है। उनकी कृपा से सब हो सकता है।''

वृन्दावन से वापस आकर दरवेश जी के निर्देशानुसार उन्होंने परिवार के लोगों के रहने की पृथक व्यवस्था रामचन्द्रपुर आश्रम में किया। आश्रम व रिलिफ सोसाइटी भी स्वतंत्र रूप से संचालित किया गया। इस वर्ष २६ वाँ फाल्गुन से १३ वां चैत्र तक उन्होंने पूर्व की तरह व्रत पालन किया। व्रत काल में उन्होंने केवल जल ग्रहण किया।

व्रत के समय एक दिन रात्रि तीन बजे उन्होंने भाग्यवान महादेव मुखर्जी को प्रथम दीक्षा प्रदान किया। इसके पूर्व दरवेश जी के शरीर छोड़ने के पूर्व राजा कल्याणी प्रसाद को उन्होंने दीक्षा दी थी। महादेव पहले दीक्षा लेने के लिए दरवेश जी के पास गया था तब उन्होंने कहा था कि रामचन्द्रपुर आश्रम में अन्नदा कुमार से तुम्हारी दीक्षा होगी । व्रत के समय दरवेश जी ने स्वामी जी को दीक्षा प्रदान करने का विशेष निर्देश दिया। इसके बाद से स्वामी जी के पास दीक्षाप्रार्थी आने लगे। सद्गुरू श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी जी प्रदत्त दीक्षा की कुछ विशेषताओं का यहां उल्लेख किया जा रहा है–

(१) गोसाँई जी एवं गुरूजी का प्रत्यक्ष निर्देश प्राप्त करने के बाद दीक्षा दी जाती है।

(२) इसमें महन्त या गद्दी परम्परा से दीक्षा प्रदान करने का विधान नहीं है। गोसाँई जी जिन्हें योग्य समझेंगे उसे दोक्षा प्रदान करने के लिए प्रत्यक्ष निर्देश देंगे ।

(३) इस दोक्षा को ब्राह्मी दोक्षा कहा जाता है अर्थात् दोक्षा प्राप्त करने पर व्यक्ति ब्राह्मण हो जाता है ।

इस सम्बन्ध में स्वामी असीमानन्द जी ने कहा है–जिन्हें यह साधन मिला है वे ब्राह्मण हो जाते हैं परन्तु उनका पूर्व संस्कार एक दिन में नहे जावेगा। जिस प्रकार एक ब्राह्मण लड़के का उपनयन संस्कार हो जाने पर एक निमिष में ही पूर्वसंस्कार

नहीं चला जाता, उसी प्रकार किसी व्यक्ति के पूर्वसंस्कार यह दीक्षा लेने के साथ ही नष्ट नही हो जाते। वे तो धीरे-धीरे ही जाएंगे । इसके लिए जोर-जबर्दस्ती कर प्रयास करने की जरूरत नहो है। स्वाभाविक भाव से साधन करते रहने से ही सभी संस्कार तुम्हारे बिना जाने ही उसी प्रकार छूट जाएंगे जिस प्रकार सर्प की केचुली। जितना ऊपर उठोगे, भेद-विभेद अन्तर्हित होता जाएगा। धीरे-धीरे और भी ऊँचे उठकर देखोगे– सब 'एक' है, सब 'एक' की ही लीला है और सब 'एक' में ही जाकर लय हो गया है । किसी को नीच समझकर घृणा मत करो। सब के भीतर परमात्मा विराजमान हैं–उन्हें नमस्कार करो । जाति-पाति और धर्म के प्रश्न पर किसी से विवाद न करो। सब को प्यार करना सीखो! प्रेमपूर्ण और स्नेहपूर्ण व्यवहार करने से तुम्हारी सभी समस्याओं का समाधान हो जाएगा। (द्रः–कुछेक दिनों के संस्मरण)

(४) गोस्वामीजी से किसी ने पूछा था–आपसे दीक्षा प्राप्त व्यक्ति क्या दीक्षा दे सकता है? गोस्वामीजी ने कहा–जिसे यह साधन मिला है वे सभी दीक्षा दे सकते है। लेकिन गुरू को आह्वान कर उनका आदेश मिलने पर ही दीक्षा दे सकते हैं। जो बिना आदेश के दीक्षा देंगे, उन्हें वहुत कष्ट उठाना होगा।

(५) इस साधना पद्धति में कोई वाह्य अवलम्वन नही है। इसकी कोई विशेष प्रकार की प्रकिया भी नहीं है। केवल अविश्रान्त (=निरंतर) एक अत्यन्त शक्तिशाली प्राणवन्त (=जीवन्त) प्रार्थना करना ही इसकी पद्धति है। कई लोग इसे 'अजपा साधन' कहते हैं। इसमें अविराम साधना करनी पड़ती है। (–श्रीविजयकृष्ण कथामृत)

(६) सद्गुरू का दिया नाम (मंत्र) न तो केवल नाम है, न अक्षर है, न केवल शब्द मात्र है। इस नाम में ही भगवान की अनन्त शक्ति निहित रहती है। शिष्य के भीतर इस शक्ति का संचार ही सद्गुरू की दीक्षा है। किसी समय गोस्वामीजी ने कहा था, ''साधारण गुरू (=कुलगुरू आदि) से प्राप्त मंत्र के चालीस पुरश्चरण करने के पश्चात् ही सद्गुरू मंत्र पाने का अधिकारी हुआ जा सकता है।'' (–श्रीविजयकृष्ण कथामृत)

(७) जिस दिन चौवीस घन्टा श्वास-प्रश्वास में नाम चलेगा तथा एक भी श्वास व्यर्थ नहीं होगा, उसी दिन सिद्ध अवस्था की प्राप्ति होगी। जब तक यह अवस्था प्राप्त न हो जाय साधक 'निरापद भूमि' प्राप्त नहो कर सकता है। निरापद भूमि का अर्थ है जिस अवस्था से साधक का और पतन होने का डर न रहे। इसके पूर्व साधक का हर समय पतन होने का डर रहता है। (–श्रीविजयकृष्ण कथामृत)

(८) भगवन्नाम् करते हुए 'भगवत्प्रेम' की प्राप्ति का कम निम्न है–

(१) पाप बाध (२) पापकर्मों को करने पर अनुताप (३) पाप में अप्रवृत्ति (४) कुसंग से घृणा (५) साधुसंग में अनुराग (६) भगवान के नाम में रूचि एवं परनिन्दा-परचर्चा आदि में अरूचि (७) भाव उदय (८) भगवत्प्रम की प्राप्ति । (–बंगला 'साधना-पथ' से)

स्वामी असीमानन्द जी महाराज दीक्षा देते समय कहते थे–''मैं श्रीश्री गुरूदेव के नाम पर शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं तुम लोगों को अपने सिर पर लेकर अंतिम लक्ष्य तक पहुँचा दूँगा ।''

रामचन्द्रपुर आश्रम में व्रत समापन के समय पूर्ववत् महोत्सव एवं नर-नारायण सेवा की गई। उत्सव में इस बार बहुत अधिक जन-समागम हुआ लेकिन गोसाँई जी की कृपा से किसी वस्तु का अभाव नहो हुआ । अयाचित रूप से विभिन्न स्थानों से सहायता प्राप्त हुई।

व्रत समाप्ति के कुछ दिनों बाद स्वामी जी गिरिडीह एवं गया होते हुए १९ जून, १९४७ ई. को पुनः वृन्दावन आ गये। गिरिडीह से १५ जून को अपने पूर्वआश्रम की सहधर्मिणी शैलबाला देवी को जो पत्र लिखा उससे स्वामी जी के उच्च मानसिक अवस्था का थोड़ा आभारा मिलता है। पत्र में उन्होंने लिखा–

प्रेरा की आय कम हो गयी है क्योंकि उसकी देख-रेख करने वाले योग्य व्यक्ति नहो है। तुम लोगो को अभी काफी कष्टों के भीतर रहते हुए दिन गुजारना पड़ेगा। गुरूदेव के ऊपर निर्भर होकर रहना होगा, वे ही सब व्यवस्था करेंगे। मन को जितना स्वच्छ एवं सरल रखते हुए अपने को, सभी की सेवा में जितना अधिक लगा सकोगे उतना ही अपनी आत्मा एवं संसार का कल्याण होगा।

राजनीति अब अच्छी नहीं लगती परन्तु देश के कल्याण के लिए कुछ समय और इसमें संलग्न रहना पडेगा। गुरू जी ने कहा है कि '१९५७ ई. में तुम्हारा राजनैतिक जीवन समाप्त होगा।' अतः अभी दस वर्ष और इस कर्म में व्यस्त रहना होगा । बाद में किस प्रकार यह सब समाप्त होंगा वे ही जानते हैं। उनकी इच्छा पूर्ण हो !

तुम्हे विभिन्न प्रकार के झंझटों के मध्य रहकर दुश्चिन्ता एवं अशांति को सहन करना पड़ रहा है, यह तुम्हारा कर्म भोग है–प्रारब्ध भोग है। एक दिन सब समाप्त हो जाएगा ।

गया से १७ जून को उन्होंने पत्र लिखा– १५ अगस्त को देश स्वाधीन होगा। सर्वत्र राष्ट्रीय ध्वज फहरेगा–जिसके सम्मान की रक्षा के लिए लाखों नर-नारी जेल गये, अत्याचार सहन किया, मृत्यु का आलिंगन किया। परन्तु इस स्वाधीनता का रूप क्या होगा, समझ में नहीं आता। देश विभक्त होगा–लाखों शरणार्थी भारत में अभी आ रहे हैं–और आएंगे–दुःख और दुर्दशा की सीमा नहो रहेगी।

मैं भविष्यवाणी कर रहा हूँ–मानभूम जिला बिहारी-बंगाली के आपसी कलह से विभक्त हो जावेगा। देश की बागडोर अत्याचारी राजा, मालगुजार एवं अन्याय कर्म करने वालों के हाथ में रहेगी । कांग्रेस के पुराने निःस्वार्थ लोगों को हटा कर स्वार्थी एवं अत्याचारी लोग प्रभुत्व करेंगे। आज 'विष्णु पद' मन्दिर में प्रार्थना कर रहा हूँ–''हे

महाविष्णु तुम्हारे पद स्पर्श से आसुरिक शक्ति ध्वंस हो! देश एवं जाति का मंगल हो!''

वृन्दावन आने के पश्चात् चारा तरफ मुसलमानों के अत्याचार से बंगाल, पंजाब, सिंध आदि विभिन्न स्थानों से आये हुए शरणार्थियों की दुर्दशा को देखकर उनका मन विचलित हो उठा। उस समय उन्होंने लिखा था–''हिन्दुओं का बहुत ही दुर्दिन आ गया है। पूर्वी बंगाल के जिन लोगों के त्याग, आत्म बलिदान से भारत में कान्ति की आग जल उठी थी–आज उन्हीं लोगों के सामने ज्यादा खराब दिन आ गया है। भारत स्वाधीन होगा । द्विजाति के तत्व पर देश का विभाग होगा। भारत धर्म-निरपेक्ष देश घोषित होगा। यहां मुसलमानों को सभी प्रकार की सुविधाएं मिलेगी–हिन्दुओं की प्रार्थना या अनुरोध को कोई नहो सुनेगा ! मैं आँखों के सामने देख रहा हूँ–भयंकर अग्निकाण्ड, नर-हत्या, नारी निर्यातन। मेरा मन फिर से विद्रोही हो उठता है। ऐसी स्वाधीनता लेकर क्या होगा? अखण्ड भारत को खण्डित कर हिन्दुओं को बलिदान करते हुए कौन सा धर्म निरपेक्ष स्वर्ग बनेगा?

आज वृन्दावन में भगवान् के पास प्रार्थना कर रहा हूँ–''हे प्रभु! तुम अपने सुदर्शन चक्रको लेकर फिर से अवतीर्ण होवो! इस अन्याय एवं असत्य को ध्वंस करो! धर्म राज्य की पुनः प्रतिष्ठा क्या नहीं होगी? एक द्रौपदी के अपमान से कुरूक्षेत्र में महासमर हुआ था। आज सैकड़ों-हजारों नारियों पर अत्याचार हो रहा है–अभी भी क्या तुम शान्त रहोगे? हे पाषाण ! तुम जाग्रत हो !!! तुम जागो !!! ''

भगवान की लीला समझ में नही आती । उनके हर कार्य के पीछे मंगल उद्देश्य रहता है–इसे मैं स्वीकार करता हूँ । पता नही कौन से पथ से, किस प्रकार इस विराट अग्निकुण्ड के भीतर से–देश व्यापी संहार की रक्तधारा के मध्य तुम्हारा 'धर्म राज्य' स्थापित होगा।

मेरा मन बहुत विचलित है। चारों तरफ मार-काट लगी है। जो भी शरणार्थी आवे, उनकी व्यवस्था करो–प्राणपन उनकी सेवा करो। अपना घर छोड़कर उन्हें स्थान देना। गृहहीन को यदि स्थान न दें तो उस घर में भगवान नहीं रहेंगे। निराश्रित एवं असहाय लोगों के लिए, तुम अपनी समस्त शक्ति को, उनकी सेवा के लिए नियुक्त करो ।''

उपरोक्त पत्रांश से पता चलता है कि स्वामी जी का हृदय लोगों के दु:ख-कष्ट को देखकर कितना विचलित हो गया था। वृन्दावन से वे कुरुक्षेत्र आ गये। वहां गीता भवन में रूके। 'हिन्दू-मिशन' के पूर्व परिचित स्वामी सत्यानन्द जी उस समय वहीं थे। स्वामी सत्यानन्द जी उन्हें देखकर अत्यन्त आनन्दित हुए। वे स्वामी जी को साथ लेकर ज्योतिसर तीर्थ देखने के लिए गये। ज्योतिसर बहुत ही पवित्र एवं प्रभावशाली तीर्थ है। स्वामी असीमानन्द जी वहां पहुँचते ही भावमग्न हो गये । उनकी आँखों के सामने हजारों वर्ष पूर्व घटित कुरूक्षेत्र के युद्ध के दृश्य प्रकट होने

लगे। उन्होंने देखा-भगवान कृष्ण युद्ध स्थल मे अर्जुन को उपदेश दे रहे हैं। इस प्रकार समाधि अवस्था मे तीन घंटे बीत गये । उसके पश्चात् भोजनादि कर जब वे गीता भवन के धर्मशाला में वापस आये तो देखा कि उनका सारा सामान चोरी हो गया है । यहां चोर-उचक्कों का उपद्रव अधिक है। स्वामी सत्यानन्द जी ने उन्हें एक नया कम्बल दिया ।

कुरूक्षेत्र मे रहते समय स्वामी जी एक दिन समाधि अवस्था में भू-भुवर्लोक, पितृलोक, स्वर्गलोक, मह-जन-तपर्लोक आदि को देखते हुए सत्यलोक पहुँचे। वहाँ गोसाँई जी, परमहंस रामकृष्ण देव, श्री रामदास काठिया बाबा, श्री भोलानन्द गिरि महाराज, बारदी के श्री लोकनाथ ब्रह्मचारी एवं गोसाँई जी के प्रमुख शिष्यों के साथ सैकड़ो महात्माओं का दर्शन किया। सभी का शरीर ज्योतिर्मय था एवं सभी नग्न थे। उनके शरीर में स्त्री या पुरूष का कोई चिन्ह नही था। स्वामी जी के साष्टांग प्रणाम करने पर गोसाँई जी हँसने लगे एवं दरवेश जी से कहा कि चलो इसे रख आवें। गोसाँई जी के दृष्टिपात से एक आलोक रश्मि प्रकट हुई। उसके सहारे वे निम्न भूमि पर आ गये। गोसाँईजी ने उस समय उन्हें कुछ व्यक्तिगत निर्देश प्रदान किया। स्वामी जी को उनके शरीर में प्रवेश कराने के साथ ही गोसाँई जी एवं दरवेश जी वहाँ से चले गये। यहाँ रहते समय स्वामी जी पुनः-पुनः ध्यान में मग्न हो जाते थे। यहाँ स्वामी सत्यानन्द जी ने उनकी बहुत सेवा की थी।

२६ जून, १९४७ ई. को स्वामी जी कुरूक्षेत्र से शिमला पहुँचे एवं स्थानीय कालीबाडी में ठहरे। यहाँ रहते समय कई लोगों को उन्होंने दीक्षा प्रदान किया। एक दिन वे 'तारा देवी' का दर्शन करने गये। वहाँ पहुँचते ही उन्हें ऐसा लगा कि किसी समय यहां उन्होंने तपस्या की थी। उनके पूर्व जन्म की स्मृति जागृत हो गयी। इस सम्बन्ध में वहां रहने वाले सौ वर्षीय एक वृद्ध साधु से स्वामी जी ने जो प्रश्न पूछा, उसके उत्तर से स्वामी जी के पूर्वजन्म की यह धारणा सत्य प्रमाणित हुई। 'तारा देवी' का मन्दिर उस समय बन्द था। इधर-उधर देखने के बाद भी पुजारी का कुछ पता न चला तब स्वामी जी वहाँ से लौटने का विचार कर ही रहे थे कि अकस्मात् मन्दिर का दरवाजा अपने आप खुल गया एवं तारा देवी का दर्शन मिला। दर्शन करने के बाद वे यहाँ से 'जेको हिल' भी गये थे। वहां एक अंग्रेज सज्जन श्रीसिफटन एवं उनकी पत्नी ने स्वामी जी से दीक्षा प्राप्त किया। वे दोनों ही हिन्दू धर्म के प्रति अत्यन्त श्रद्धाशील थे। यहां जब तक स्वामी जी रहे, कई लोग उनके पास उपदेश सुनने के लिए आते थे। वहाँ स्वामी जी की एक शिष्या मीरा देवी ने उस समय की घटनाओं का उल्लेख करते हुए लिखा है–''यहां ठंड रहने के बाद भी स्वामी जी प्रायः खुले बदन में रहते थे एवं स्नान भी ठंडे पानी से ही करते थे। उन्हें प्रायः समाधि अवस्था में देखा जाता था। उनके पास केवल एक कम्बल, लोटा एवं गमछा था । यहाँ से

अन्यत्र जाने का उनका विचार था किन्तु पास में एक पैसा नहीं था। पूछने पर वे कहा करते थे कि गुरूदेव जाने की व्यवस्था करेंगे तभी जाऊँगा। मैं प्रायः उनके पास जाती थी। एक दिन उनके पास अचानक एक रूपये के दो सौ नये नोट देखे गये। सभी आश्चर्य करने लगे कि यह रूपया कहाँ से आया ? इसके पश्चात् स्वामी जी ने यहाँ से प्रस्थान किया।"

शिमला म रहते समय स्वामी जी ने जो उपदेश दिया था उनमें से कुछ उपदेश इस प्रकार ह–

(१) आत्मा के साथ परमात्मा का जो योग है वही वास्तविक योग है। इस 'योग' की प्राप्ति जिस साधना द्वारा होती है वही वास्तविक 'साधना' है। शरीर के साथ मन का योग है। इन्द्रियों का अधिपति 'मन' है। मन के द्वारा इन्द्रियां परिचालित होती है। बाह्य इन्द्रियां हमें सर्वदा चंचल करती रहती है। इन सभी बाह्य इन्द्रियों के प्रभाव से निकलकर 'मन' को भगवद्मुखी करना होगा। शरीर और मन के अतीत, आत्मा को अनुभव करना होगा एवं परमात्मा के साथ युक्त होना होगा।

शरीर के साथ 'मन' का एवं मन के साथ 'आत्मा' का योग है। शरीर, मन एवं आत्मा के इस योग को मधुरतम करने के लिए 'साधना' आवश्यक है। जब आत्मा को जान लेंगे तब–सभी उसी आत्मा का प्रकाश है, सभी 'उनका' रूप है एवं प्रत्येक रूप में 'वे' ही लीला कर रहे हैं–समझ में आता है।

(२) मन सर्वदा चंचल है। इन्द्रियों के प्रभाव से वह सर्वदा भ्रमित हो रहा है। मन स्थिर या एकाग्र न होने पर आत्मा की वाणी–आत्मा में अधिष्ठित श्रीगुरूदेव या ईश्वर की वाणी नहीं सुनी जा सकती। उनकी वाणी को सुनने एवं उसके निर्देशानुसार कार्य करने पर कोई भय या प्रमाद नहीं रहेगा। गुरूवाक्य एवं शास्त्रवाक्य पर जिनका विश्वास है और जो उसके अनुसार कार्य करते हैं उसके लिए आत्मोलब्धि सहज होती है। गुरू वाक्य की सहायता से, गुरू निर्देशित पथ में चलने पर निश्चित ही लक्ष्य में पहुँचा जा सकता है। गुरूदेव आत्मा में रहकर तुम्हें पुकार रहे हैं–अन्तरात्मा में आने के लिए, उन्हें जानने एवं उनका दर्शन करने के लिए, वे पुकार रहे हैं। इस आत्मदर्शन के पथ पर तुम गुरुप्रदत्त साधना की सहायता से अग्रसर हो जाओ।

(३) भ्रूमध्य स्थल – आज्ञा चक्र में मन को रखकर ध्यान करना अच्छा है। आँखों को बन्द करके अन्तर्दृष्टि को भ्रूद्वय के मध्य स्थल में ले जाओ। आज्ञा चक्र में एकाग्र मन से जप करने से वहां स्पन्दन का अनुभव होगा। तब उस स्पन्दन में मन को एकाग्र करो। बाद में नाना प्रकार के वर्ण, दृष्टि के सामने प्रकट होगा। कमशः वह आकाश की तरह नील या शुभ्र हो जाएगा। बीच-बीच में असंख्य क्षुद्र ज्योति-बिन्दु दिखलाई पड़ेगी। इसके मध्य अर्ध-चन्द्राकार अथवा बिन्दु आकार में श्वेत ज्योति का दर्शन होगा। कमशः यह और विस्तृत होगी और उसके मध्य नाना मूर्तियों का दर्शन

मिलेगा । विभिन्न ध्वनि सुनाई पड़ेंगी। वेणु, वीणा आदि कितने प्रकार के मधुर स्वर तुम्हारे कानों में सुनाई पड़ेंगे ।

इस समय विभिन्न रूप एवं मूर्ति दृश्यमान होंगे । उसम मन न लगाकर एकाग्रता के साथ इष्ट मंत्र का जप करते रहना। गुरू मंत्र का सर्वदा जप करते रहना चाहिए। चलते-फिरते, भोजन, शयन, कार्य आदि करते समय सर्वदा मंत्र जप तो करना ही पड़ेगा । इसके अलावा नियमित रूप से आसन में बैठकर मन को स्थिर रखकर जप करना होगा। किसी भी चक्र या पद्म में मन लगाकर मंत्र जप कर सकते हो परन्तु आज्ञाचक्र में मन एकाग्र कर मंत्र जप करना अधिक लाभप्रद है।

(४) साधना करते समय मन चारों तरफ दौड़ेगा, परन्तु तुम 'नाम' को मत छोड़ना। श्वास-प्रश्वास में नजर रखते हुए 'नाम' करते-करते भागता हुआ चंचल मन अपने आप वापस आ जावेगा।

(५) साधना पथ में अनेक बाधाएं आती हैं। सबसे बड़ी बाधा है–अहंकार। नाम यश पाने की आकांक्षा–लोग साधु कहेंगे–सम्मान करेंगे–मेरा नाम प्रचार होगा। अपनी ख्याति फैलाने की चेष्टा–इसके लिए धनी एवं प्रसिद्ध व्यक्तियों से सम्पर्क बढ़ाना एवं विज्ञापन देना–ये सब, साधक के पतन के प्रमुख कारण हैं । लोगों को दिखाने के लिए साधक कुछ नही करेगा। योगैश्वर्य या अलौकिक कुछ भी दिखाना नहीं चाहिए। आजकल साधुओं के भीतर जो आत्मप्रशंसा की भावना दिखलाई पड़ रही है उससे लोगों का साधुओं के प्रति संदेह बढ़ रहा है। साधु सर्वदा अपने को छिपाकर रखेगा।

(६) शक्ति प्राप्त करने के लिए सभी व्याकुल हैं। शक्ति तुम्हारे भीतर है–वह निद्रित है। उसे जगाना होगा । कुल-कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करना होगा। 'नाम' जप के द्वारा यह संभव है। कमशः शक्ति को षट्चक्र भेद करते हुए 'सहसार में ले जाना होगा ।

अध्याय २३ : देश की स्वाधीनता प्राप्ति एवं स्वामीजी का पूर्वी बंगाल भ्रमण

१५ अगस्त, सन् १९४७ ई. में देश स्वाधीन हो गया। देश विभाजन के पश्चात् विभिन्न स्थानों में दंगा आदि होने लगे। सभी लोग विचलित हो उठे। कान्तिकारियों ने स्वाधीनता के लिए अपने प्राणो का बलिदान किया था एवं अंग्रेजों के नृशंस अत्याचार को सहा था। भारत में गणतंत्र चालू हुआ।

प्राचीन भारत मे भी गणतंत्र था। इसका प्रमाण अध्यापक भंडारकर, प्रमथभूषण पाल आदि अनेक इतिहासकारों के लेखों मे मिलता है। उस समय प्रजाशक्ति की सम्पूर्ण रूप से उपेक्षा करते हुए चलने का साहस राजशक्ति में नहीं था। अनेक स्थल में जनमत को श्रद्धा करते हुए राजा लोग शास्त्रो के निर्देशो को मानकर राज्यशासन करते थे। शास्त्रों को मानकर चलने के कारण शासनतंत्र शक्तिशाली था एवं कार्यों को उचित रूप से करता था। ईशोपनिषद् के प्रथम श्लोक का विश्लेषण करने पर प्राचीन भारत के समन्वय नीति का अच्छा प्रमाण प्राप्त होता है। इस प्रकार त्रुटिविहीन साम्यनीति के दृष्टान्त जगत् के इतिहास में विरल है।

ईशा वास्यमिदं सव यत् किन्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुन्जिथा मा गृधः कस्यश्विद्धनम्।।

भावार्थ– इस जगत् में जो कुछ जड़ या चेतन वस्तु है वह सब ईश्वर द्वारा आच्छादित है। इस प्रकार की चिन्ता द्वारा, त्याग अवलम्बन कर भोग करो। धन का लोभ मत करो–धन किसका है? अर्थात् अनासक्त होकर विषय भोग करो। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि भोग और उपभोग विभिन्न है। भोग का अर्थ है– शास्त्रोक्त रीति से अनासक्ति पूर्वक भोग। उपभोग का तात्पर्य है–मनमाने एवं अनुचित रीति से भोग करना। आज देश में सर्वत्र उपभोग चल रहा है।

स्वाधीनता के पश्चात् देश के नेताओं की स्वार्थपरता एवं प्रभुत्व स्पृहा को देखते हुए स्वामी जी ने कहा था–

(१) हमलोग जिसे 'स्वराज्य' अर्थात स्व-अधीनता कहते हैं, वह हमें प्राप्त नही हुई है। हमें जो मिला है उसे स्वाधीनता नहीं कहते हैं। स्वयं, सम्पूर्ण रूप से जो पूर्ण रहे–उसे स्वाधीनता कहते हैं। 'स्व' को पहचानो 'स्व' को जानने से ही तुम वास्तविक रूप से वीर कहलाओगे एवं वीर होगे।

(२) जिसे हम गणतंत्र कहते हैं– वह जन-साधारण द्वारा नहीं हुआ है। जनता को नही मालूम है कि उसे कौन सा तंत्र मिला है ? इस गणतंत्र का क्या उद्देश्य है

एवं उसके लिए उनका अपना क्या कर्तव्य है ?

(३) देश की अमूल्य जमीन हमें प्राप्त हुई है उसका उचित रूप से प्रयोग किस प्रकार करना चाहिए ? हमें नहीं मालूम। देश को, ग्राम को, देश के जन-साधारण को इस तरह हम तैयार नही कर सके, जिससे वे अपने मातृभूमि को प्यार कर सकें–यह अत्यंत लज्जाजनक है।

(४) देश में अनेक सम्प्रदाय, अनेक मत एवं अनेक धर्म हैं। संकीर्णता की भावना से देश भर गया है। देश का गठन करने के लिए जिस उदारता की आवश्यकता है, सहनशीलता की आवश्यकता है–वह नहो है। आज विभिन्न दलबन्दी तथा गुटबन्दी भावना से देश के वास्तविक हित एवं वास्तविक धर्म का बलिदान हो रहा है।

(५) हम विदेशों से खाद्य सामग्री ला रहे हैं–ऋण अथवा भिक्षा मांगकर। इसकी अपेक्षा अनाहार से मरना श्रेष्ठ है। वृक्ष के पत्ते का भोजन करना श्रेष्ठ है। हम मर जाएंगे लेकिन किसी के समक्ष भिक्षा नहीं मांगेंगे–यही आदर्श होना चाहिए।

(६) हजारो शिक्षा प्रतिष्ठान बन रहे हैं–इससे कितने वास्तविक मनुष्य तैयार हुए है ? चरित्र गठन उचित रूप में न होने से इस प्रकार की शिक्षा का क्या मूल्य है ? देश में चरित्रवान, सत्य के प्रति दृढ़ एवं स्वास्थ्यवान युवक चाहिए। तभी देश की उन्नति होगी। आज के कार्यकर्त्ता एवं नेता अपने स्वार्थ के लिए आत्मविकित हो रहे हैं। दूसरों की चाटूकारिता कर रहे हैं। इसमें हमें लज्जा तक नहो आती। यह अत्यन्त दुःखदायक है।

(७) हमने देश की रक्षा के लिए संग्राम किया परन्तु अभी तक हमारे भीतर अन्याय के प्रति ही समर्पण भावना है। जीवन के सभी क्षेत्र में संग्राम आवश्यक है–हम अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल अवश्य होंगे–ऐसे दृढ़ आत्मविश्वास की आवश्यकता है। देश का थोड़ा सा भी अंश छोड़ने का तात्पर्य है, अपनी माँ का अंग हम काट रहे हैं–ऐसी मनोभावना हमें रखना आवश्यक है।

(८) अभी भी हम सोच रहे हैं कि क्या होगा ? मृत्यु से डरने पर नही चलेगा। हम अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए सुविधा त्याग कर, अग्रसर होंगे। बाधाओं को जय करेंगे ! हमारा जीवन संघर्षमय हो !! साधना द्वारा, तपस्या द्वारा, तन-मन-धन का मोह त्याग कर हम दृढ़तापूर्वक अग्रसर होंगे !! हमें संकल्प लेना होगा कि हम अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में जो भी अशुभ-लज्जाजनक कार्य हमारे जीवन को निम्नमुखी करे, जो भी पाप या असत्य लगे–उसे निर्मूल अवश्य करेंगे!!!

सन् १९४८ ई., जनवरी माह में स्वामी जी ने पूर्वी बंगाल भ्रमण का कार्यकम बनाया। उनकी, पूर्वी बंगाल जाने की काफी दिनों से इच्छा थी। गोसाँई जी की लीला स्थली गेंडारिया आश्रम (ढाका के पास) के दर्शन करने की इच्छा एवं देश के

विभाजन के बाद पूर्वी बंगाल में रहने वाले कुछ हिन्दुओं के आन्तरिक अनुरोध को देखते हुए वे वहां गये । उस समय पूर्वी बंगाल की यात्रा बहुत कठिन एवं कष्ट–दायक थी। वे पहले कोलकाता से गोआलन्द नामक स्थान पर गये। वहां से स्टीमर द्वारा कार्तिकपुर गये । फिर छोटी नाव से कुछ दूरी तय करने के बाद, वहां से घोड़े पर बारह मील चलने के पश्चात् वे मातबपुर पहुँचे। देश के विभाजन के बाद हिन्दुओं पर मुसलमानों ने जो अत्याचार किया था उसका चित्र सब तरफ दिखलाई पड रहा था। असंख्य गृहदाह एवं हत्या, सम्पत्ति की लूट, नारियों के अपहरण से वहां रहने वाले हिन्दुओं की दुर्दशा को देखकर वे विचलित हो उठे। वहां उन्हे अपरिचित हिन्दू संन्यासी जानकर कुछ मुसलमानों ने अपमानित करने का प्रयास भी किया। परिस्थितियों को देखकर स्वामी जी ने मौन रहना ही ठीक समझा।

मातबपुर में पूर्व परिचित मोतीलाल साहा के मकान मे वे पहुँचे। उनसे वहां के हिन्दुओं की दुर्दशा का हाल सुनकर वे स्तंभित हो गये। तीन दिन वहाँ रहकर वे गेंडारिया आश्रम दर्शन करने गये। आश्रम में उस समय केवल दो-चार लोग ही रह गये थे। बाद मे मुसलमानों ने इस आश्रम को नष्ट कर वहाँ रहने वालो की हत्या कर दी थी। गोसाँई जी का आसन, खड़ाऊ आदि वस्तुएं पहले ही कुछ लोगों ने कोलकाता ले आये थे। बाद में गोसाँई जी के भक्तो के प्रयास से, कोलकाता के निकट 'बारूईपुर' नामक स्थान में एक आश्रम बनाकर उन वस्तुओं को सुरक्षित रखा गया। गोसाँई जी के सुपुत्र योगजीवन निःसन्तान थे। अतः इस आश्रम की देख-रेख गोसाँई जी की कन्या शान्तिसुधा के वंशज लोग करते हैं।

३० जनवरी को गेंडारिया आश्रम का दर्शन कर स्वामी जी नारायणगंज नामक स्थान पर गये। सन्ध्या के समय समाचार मिला कि महात्मा गांधी जी की हत्या कर दी गई है। ३१ जनवरी को वहाँ मौन पदयात्रा एवं शोकसभा का आयोजन किया गया। इस घटना से सभी लोग शोकमग्न हो गये। वहां स्वामी जी ने गीतापाठ किया। विभिन्न लोग आकर स्वामी जी से देश के भविष्य के सम्बन्ध में प्रश्न करने लगे, तब स्वामीजी ने कहा था–''**राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ (आर.एस.एस.) निषिद्ध घोषित किया जावेगा । हिन्दू महासभा के संचालकों को जेल में बन्द किया जावेगा। श्यामाप्रसाद मुखर्जी किसी प्रकार छूट जाएंगे परन्तु वीर सावरकर पकड़े जाएंगे। आर.एस.एस. एवं हिन्दू महासभा के साथ कांग्रेस सरकार का सम्बन्ध सभी को मालूम है । गांधी जी की हत्या के आड़ में वे इन संस्थाओं को निषिद्ध घोषित करेंगे।'' देश की हालत के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर स्वामी जी ने कहा–''मुसलमानों का षड्यंत्र चलता रहेगा। पाकिस्तान के माध्यम से हिन्दुओं को एवं हिन्दुस्तान को ध्वंस करने का वे प्रयास करेंगे। हिन्दुस्तान के मुसलमानों के मध्य हिंसा का प्रचार एवं षड्यंत्र चलता रहेगा। पाकिस्तान में मुस्लिम राज्य की प्रतिष्ठा के पश्चात् हिन्दुस्तान**

को पाकिस्तान में परिवर्तित करने का प्रयास चलेगा। जो लोग हिन्दुस्तान से पाकिस्तान चले गये थे वे एक निर्दिष्ट परिकल्पना (रूपरेखा) लेकर भारत आकर, यहां के मुसलमानों को उत्तेजित करेंगे। हैदराबाद को केन्द्र बनाकर विभिन्न स्थानों में मुस्लिम एकता का कार्य चलेगा एवं सीमा के प्रदेशों में व्यापक रूप से हिन्दू-निधन चलेगा।'' उस समय स्वामी जी ने देश के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था वह बाद में सत्य प्रमाणित हुआ। आज भी उनके कथन की सत्यता का प्रमाण सर्वत्र दिखलाई पड़ रहा है।

नारायणगंज से स्वामी जी श्रीहट्ट जिले के मौलवी बाजार नामक स्थान पर जाने के लिए स्टीमर पर सवार हुए। वहां सभी मुसलमान यात्री थे। स्वामी जी अपना कम्बल बिछाकर स्टीमर में एक ओर बैठ गये। कुछ मुसलमान स्वामी जी के चारों तरफ खड़े हो गये और उन्हें अपमानित करने के लिए विभिन्न प्रकार से चेष्टा करने लगे। स्वामी जी नाम-जप करते हुए बैठे रहे। एक व्यक्ति ने उनसे पूछा कि क्या आप हिन्दू हैं? स्वामी जी ने कहा–'हाँ'। किसी ने पूछा कि हिन्दू लोग मूर्ति पूजा क्यों करते हैं? भगवान क्या मूर्ति में रहते हैं ? स्वामी जी ने उसी व्यक्ति से पूछा–'भगवान कहाँ रहते हैं ?' उस व्यक्ति ने कहा कि वे सर्वत्र हैं। तब स्वामी जी ने कहा–'यदि वे सर्वत्र हैं तो प्रति अणु-परमाणु में सर्वदा एवं सभी अवस्था में विराजमान भी रहते होंगे? प्रतिमा अणु-परमाणु का सम्मिलित रूप है कि नहीं? उस व्यक्ति के 'हाँ' कहने पर स्वामी जी ने कहा–''**यदि अणु-परमाणु में विराजित हैं तब प्रतिमा में भी वे अवश्य विराजमान रहेंगे । हिन्दू मन्दिर में जाते हैं और तुम मस्जिद में जाते हो। हिन्दू कुछ विशेष विधि-निषेध मानकर चलता है और तुम लोग भी कुछ नियमों को मानते हो। तुम लोगों को मस्जिद की आवश्यकता होती है एवं मस्जिद के भीतर एक विशेष स्थान का निर्माण कर पश्चिम की तरह मुँह करके नमाज पढ़ते हो । जो सर्वकाल में सब दिशाओं में विराजमान हैं–उनकी उपासना के लिए विधि व्यवस्था फिर क्यों करते हो?''** स्वामी जी की बातों को सुनकर कुछ उत्तेजित लोगों ने पूछा कि क्या आप मृत्यु को स्वीकार करते हैं? क्या आप मृत्यु से डरते हैं? स्वामी जी ने कहा–'नहो', मैं मृत्यु से नहो डरता।' तब एक युवक बड़ा सा चाकू लेकर स्वामी जी की तरफ बढ़ा और कहने लगा कि यदि मैं यह छूरा आपको मारूँ तो आप क्या कर लेंगे? स्वामी जी ने कहा–'प्रयास करके देख लो। मेरी हत्या तुम्हारे द्वारा कभी संभव नहीं होगी।' स्वामी जी की बातों को सुनकर किसी ने कहा कि इस साले काफिर हिन्दू को मार दो। तब स्वामी जी ने कहा–'तुम लोग प्रयास करके देख लो।' ऐसा कहकर वे आसन में स्थिर भाव से बैठकर 'नाम-जप' करने लगे। वह युवक छूरा लेकर आगे बढ़ा तभी अचानक देखा गया कि उसके हाथ का छूरा किसी अदृश्य शक्ति ने नदी में फेंक दिया। इसे देखकर सभी अचंभित हो गये एवं लोगों की भीड़

ने स्वामी जी को चारों तरफ से घेर लिया। स्वामी जी स्वयं इस अप्रत्याशित घटना से आश्चर्य चकित हो गये।

इस घटना के पश्चात् स्वामी जी को सिद्ध फकीर समझकर कोई अपनी कठिन बीमारी के लिए दवा मांगने लगा तो कोई अन्य प्रार्थना करने लगा। स्वामी जी ने नम्रतापूर्वक उनसे कहा कि उन्हें दवा आदि के बारे में जानकारी नहो है। फिर भी कुछ लोग दवा के लिए बार-बार प्रार्थना करने लगे। रात्रि आठ बजे स्टीमर चांदपुर नामक स्थान पर पहुँचा। स्वामी जी जब स्टीमर से उतरने लगे तब उन युवकों ने उनका सामान स्टेशन तक ले आया। उन्होंने टिकिट बनाकर एवं ट्रेन मे बैठाकर प्रणाम करते हुए स्वामी जी से आशीर्वाद मांगा, फिर वहाँ से प्रस्थान किया। स्वामी जी चांदपुर से मौलवी बाजार आ गये।

मौलवी बाजार में, दरवेश जी के शिष्य डा. वरदा देव के घर स्वामी जी कुछ दिन रहे। वहाँ स्वामी जी ने कुछ लोगों को दीक्षा प्रदान किया। वहाँ से नारायणगंज होकर वे पुनः गेंडारिया आश्रम में आ गये। उस समय वहाँ माघ महिने में १३ फरवरी से अद्वैत महाप्रभु के जन्मोत्सव के समय धूलट उत्सव एवं नगर-संकीर्तन का आयोजन किया गया। इस उत्सव में कीर्तन के समय गोसाँई जी को प्रत्यक्ष नृत्य करते हुए देखकर स्वामी जी भाव मग्न हो गये। उनके आँखों के सामने अतीतकाल में हुई गोसाँई जी की दिव्य लीला प्रकट हो गई।

फाल्गुन महिने में ५ तारीख से, गोसाँई जी की शिष्या श्री यमुनामाई जी के आश्रम में महोत्सव प्रारम्भ हो गया। दोनों आश्रम आसपास होने से रात्रि के समय स्वामी जी गोसाँई जी के आश्रम में रहते थे। उस समय सारी रात वे आसन में ध्यानस्थ रहते थे। यहाँ कुछ दिन रहकर मार्च महिने में वे नारायणगंज होकर जोतकुड़ा नामक ग्राम में पहुँचे।

इस तरफ गाँव के अधिकांश लोग निम्न जाति के हैं। इन्हें नमःशुद्र कहा जाता है। उच्चवर्ण के लोगों की इनके प्रति घृणा भावना थी। यहाँ स्वामी जी के पास जो भी दीक्षा प्रार्थी आया, सभी को वे दीक्षा देने लगे। वर्षा के समय यहाँ का अधिकांश स्थान आठ-दस फुट पानी के नीचे डूब जाता है। एक घर से दूसरे घर जाने के लिए छोटी नाव से जाना पड़ता है। यहाँ ब्रह्मचारी कुलदानन्द जी के शिष्य आशुतोष मंडल के घर में स्वामी जी बीस दिन ठहरे। आशुतोष मंडल ने स्वामी जी से कहा कि आप दीक्षा प्रार्थियों की योग्यता का कोई विचार न कर, जो भी दीक्षा लेने आ रहा है उसे दीक्षा क्यों दे रहे हैं? स्वामी जी ने कहा–''**दरवेश जी और ब्रह्मचारी कुलदानन्द जी ने मुझे आदेश दिया है कि यहाँ जितने दिनों तक तुम रहोगे, जो भी दीक्षा लेने आएगा–उसे दीक्षा प्रदान करना। उनके निर्देश का मैं पालन कर रहा हूँ।**'' आशुतोष मंडल निम्न जाति के लोगों के प्रति गोसाँई जी की कृपा देखकर विस्मित हो गये।

एक दिन स्वामी जी कुछ लोगों के साथ दरवेश जी के पूर्व आश्रम एवं जन्म स्थान 'खालिया' गये। देश के विभाजन के पश्चात् मालगुजारी नष्ट हो गई थी। उनके पुराने मकान में उस समय केवल दो-चार लोग ही थे।

दरवेश जी के एक शिष्य जगदानन्द ओड़ाकान्दि नामक स्थान में रहते थे। स्वामी जी पन्द्रह-बीस लोगो के साथ वहां भी गये। उनके आने से वहां उत्सव शुरू हो गया। जगदानन्द के घर में कुछ दिनों से भूत का उपद्रव चल रहा था। रात्रि में टिन की छत पर पत्थर के लुढ़कने की आवाज आती थी। जगदानन्द ने यह सब बातें स्वामी जी से कही। दूसरे दिन स्वामी जी ने कहा–"प्रेतात्मा तुम्हारे कुटुम्ब का ही कोई है। मैंने उसे दीक्षा प्रदान कर दिया है। वह अब तुम लोगों को तंग नही करेगा।" इसके पश्चात् प्रेत का उपद्रव शान्त हो गया।

यहाँ एक दिन गोसाँई जी को अन्नभोग लगाया गया। स्वामी जी ने स्वयं भोग निवेदन किया। उनके साथ भोगगृह में कई लोग उपस्थित थे। भोग निवेदन के पश्चात् सभी लोग बाहर आ गये एवं दरवाजा बन्द कर दिया गया। बाहर बैठकर सब लोग नाम-जप करने लगे। बीस-पच्चीस मिनट के बाद भोगगृह का जब दरवाजा खोला गया तब अन्न के ऊपर चार अंगुलियों का मोटा सा निशान स्पष्ट दिखलाई पड़ा। इस प्रकार भोग ग्रहण के स्पष्ट चिन्ह देखकर सभी आनन्दमग्न हो गये।

दूसरे दिन भी इसी प्रकार का भोग निवेदन स्वामी जी ने किया । उस दिन पन्द्रह मिनट बाद स्वामी जी ने दरवाजा खोलने के लिए कहा। तब किसी ने कहा कि अभी दरवाजा खोलने का समय नहीं हुआ है। सामान्यतः बीस-पच्चीस मिनट तक भोग के समय दरवाजा बन्द रखा जाता है। स्वामी जी ने कहा–"उनका भोजन हो गया है।" वास्तव में जब दरवाजा खोलकर देखा गया तो भोग के अन्न में सब्जी मिला हुआ पाया गया एवं अन्न भी पहले से थोड़ा कम दिखा। भोग के सभी वस्तुओं पर फूल देखा गया। स्वामी जी से पूछने पर उन्होंने कहा–"माता योगमाया देवी ने सब्जी व अन्न मिला कर गोसाँई जी, दरवेश जी एवं ब्रह्मचारी कुलनानन्द को खिलाया है। भोग के ऊपर फूलों को माता योगमाया देवी ने छिड़का है।"

यहां के लोगों के आन्तरिक अनुरोध से स्वामी जी दूसरे वर्ष फिर से पूर्वी बंगाल आये एवं विभिन्न स्थानों का भ्रमण कर जोतकुड़ा भी गये। वहां स्वामी जी के आने से पूर्ववत् उत्सव प्रारम्भ हो गया। एक दिन संध्या कीर्तन के समय सभी ने कीर्तन की धुन के साथ एक अन्य तीव्र ध्वनि सुना। स्वामी जी से पूछने पर उन्होंने कहा–"क्यों? दरवेश जी आये थे। उन्हीं का 'स्वर' था । वे भी साथ में गा रहे थे।" उस समय की एक घटना का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है–

नगेन्द्र विश्वास नामक एक सज्जन हरिद्वार के श्री भोलानन्द गिरि महाराज के शिष्य थे। पूर्वी बंगाल के लोगों का मुख्य आहार अन्न (चावल) एवं मछली होता

है। नगेन्द्र विश्वास को दीक्षा के पश्चात् स्वामी भोलानन्द गिरि महाराज ने मछली खाने से मना कर दिया। दीक्षा लेने के बाद नगेन्द्रबाबू असमंजस मे पड़ गये। स्वामी जी जब पूर्वी बंगाल में आये तब नगेन्द्र बाबू प्रायः उनके पास आया करते थे। स्वामी जी के प्रति उनका आकर्षण बढ गया. एवं उन्होंने स्वामी जी के पास पुनः दीक्षा लेने का अपना विचार प्रकट किया। तब स्वामी जी ने नगेन्द्र बाबू को डांटते हुए कहा–'तुम्हें तो दीक्षा मिल गई है। पुनः दीक्षा लेने की आवश्यकता नही है।' अब नगेन्द्रबाबू स्वामी जी से दीक्षा प्राप्त करने के लिए व्याकुल भाव से मन ही मन प्रार्थना करने लगे। उस समय स्वामी जी के साथ-साथ दस-पन्द्रह लोग विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते थे। एक दिन स्वामी जी रात्रि के समय कमरे के भीतर विश्राम कर रहे थे एवं बरामदे में कुछ लोग शयन कर रहे थे। रात्रि के लगभग एक बजे स्वामी जी ने जगदानन्द को बुलाकर कहा–'नगेन्द्र को अभी स्नान करके यहां आने के लिए कहो। भोलानन्द गिरि महाराज अभी आये थे। उन्होंने मुझसे कहा कि नगेन्द्र का भांर मैं तुम्हें सौंप रहा हूँ–तुम इसे पुनः दीक्षा दो।' यथा समय नगेन्द्र बाबू की दीक्षा हो गई। (नोट–स्वयं नगेन्द्र विश्वास द्वारा लेखक को दिया गया विवरण)

जोतकुड़ा से जगदानन्द के अनुरोध पर स्वामी जी उनके घर, ओड़ाकान्दि नामक स्थान पर गये। यहाँ भी उत्सव जैसा आनन्द शुरू हो गया। यहाँ कई भाग्यवानों को दीक्षा मिली। एक दिन संध्या के समय एक मुसलमान फकीर स्वामी जी का दर्शन करने आये एवं एक भजन सुनाया। भजन सुनकर स्वामी जी समाधिमग्न हो गये। भजन समाप्त कर फकीर ने स्वामी जी का हाथ पकड़कर कहा–'इन्हें वापस आने में देर होगी। पहले काशी गये हैं। वहां से वृन्दावन जाएंगे एवं पुरी होकर वापस यहाँ आएंगे। ये भगवान के आदेश से यहाँ आये हैं और फिर यहाँ नहीं आएंगे। यही उनका अन्तिम बार यहाँ आगमन हुआ है।' थोड़ी देर बाद फकीर चले गये। रात्रि के लगभग ११-३० बजे स्वामी जी समाधि से उठे। फिर थोड़ा सा दूध लेकर विश्राम करने लगे।

दूसरे दिन प्रातःकाल स्वामी जी के पास फकीर पुनः आये। स्वामी जी ने उनका आलिंगन किया। काफी देर तक वे अपनी भाषा में बात करते रहे। उनकी बातों को कोई व्यक्ति समझ नहीं पाया। स्वामी जी भी फकीर के प्रश्नों का जवाब उनकी भाषा में ही देने लगे। थोड़ी देर बाद फकीर स्वामी जी को प्रणाम करते हुए चले गये। बाद में फकीर के सम्बन्ध में पूछने पर स्वामी जी ने कहा–"यह फकीर पिछले जन्म में मेरा शिष्य था। इस बार साधना की कियाओं के सम्बन्ध में कुछ प्रश्नों को लेकर मेरा निर्देश लेने आया था।" स्वामी जी के सम्बन्ध में फकीर ने कल जो बातें कही थी, उसके बारे में पूछने पर स्वामी जी ने हँसते हुए कहा कि 'यह फकीर बहुत अच्छा व्यक्ति है।' वास्तव में, स्वामी जी का इसके पश्चात् इधर आना और नही हुआ–फकीर

की बात सत्य हुई। महात्माओं के कार्य एवं चरित्र साधारण लोगों के विचार बुद्धि के परे है।

पूर्वी बंगाल से वापस रामचन्द्रपुर आश्रम आने के पश्चात् स्वामी जी प्रायः समाधिमग्न हो जाते थे। गहन समाधि अवस्था की कुछ घटनाओं का उल्लेख यहां किया जा रहा है (इन घटनाओं में तारीख प्राप्त न होने के कारण, नही दी जा रहो है)–

(१) संन्यास के पूर्व अन्नदा कुमार को गहन समाधि उस समय हुई थी जब दरवेश जी से दीक्षा लिए दो-तीन वर्ष ही हुए थे। उस दिन रामचन्द्रपुर आश्रम में सुबह से कीर्तन प्रारम्भ हुआ था। समाधिस्थ अन्नदा कुमार का शरीर बर्फ की तरह शीतल हो गया। चिकित्सक ने उन्हे मृत घोषित किया। आसपास सब तरफ खबर फैल जाने से सैकड़ों नर-नारी उन्हें देखने के लिए आने लगे। अन्त में दरवेश जी को काशी में खबर किया गया। उन्होंने उत्तर दिया–''डर नही है। अन्नदा की मृत्यु नहीं हुई है। यथा समय उसे चेतना आवेगी ।'' बाद में, रात्रि एक बजे के पश्चात् उन्हें सम्पूर्ण होश आया। बाद में दरवेश जी ने पत्र में लिखा था–''छः घंटे से अधिक अन्नदा को समाधि में मत रहने देना । छः घंटे के बाद उसके शरीर में चेतना लाने का प्रयास करना ।'' उन्होंने चेतना संचार करने की कुछ प्रकिया लिखकर भेजी थी।

उस समय चिन्तित शैलबाला देवी को दरवेश जी ने पत्र में लिखा था–''**तुम अन्नदा के लिए बिन्दुमात्र चिन्तित मत होना। साधन जीवन में यह एक अवस्था है। पहले-पहले शरीर भीतर से प्रकटित शक्ति का वेग धारण करने में अक्षम रहता है, इसी कारण अचेतनता आती है। कुछ दिनों के पश्चात् जब शरीर की धारणा शक्ति बढ़ जाएगी तब कीर्तन में इस प्रकार की अवस्था नहीं होगी। अन्नदा की अनेक अवस्थाओं को दबाकर रखा गया है क्योंकि उसका कुछ कर्म अवशिष्ट है।**

भविष्य में यदि पुनः इस प्रकार की अवस्था होवे तब कीर्तन गान करने वालों को कह देना कि वे कीर्तन को बन्द न करें। थोड़ी देर तक उच्च स्वर में कीर्तन करते रहने से अपने-आप चेतना लौट आवेगी । किसी के द्वारा स्पर्श करना या अन्य किसी प्रकार की सेवा शुश्रूषा करना अनावश्यक है। कीर्तन बन्द मत करना–उससे अपने आप सब ठीक हो जाएगा।

(२) साधारणतः आसन में बैठते ही वे समाधिमग्न हो जाते थे। संकीर्तन में बैठने पर वे जल्दी समाधिस्थ हो जाते थे। उस दिन आश्रम में नाम-संकीर्तन चल रहा था। भक्त गोलोकदास मधुर स्वर में कीर्तन गा रहे थे। स्वामी जी उस समय भाव-मग्न होकर गिर पड़े। प्राथमिक अवस्था में नाम-संकीर्तन के स्वर के ताल के अनुसार उनके शरीर में कम्पन देखा गया एवं थोड़ी देर पश्चात् वे नृत्य करने लगे। उन्हें शरीर का बोध नहीं था। अचानक वे जंगल को तरफ दौड़ने लगे। उन्हें सम्हालने के लिए कुछ लोग भी दौड़े। काफी दूर जाने के पश्चात् वे एक कटीले झाड़ी के ऊपर गिर

पड़े। उनके शरीर में कांटे चुभ गये थे। उन्हें उसी अवस्था में लोगों ने लाकर आश्रम में पीपल पेड़ के नीचे बनी वेदी पर लेटा दिया। कमशः शरीर का स्पन्दन कम होता गया एवं अन्त में शरीर ठण्डा एवं प्रस्तरवत् हो गया । श्वास बन्द हो गयी। प्राण का कोई स्पंदन न देखकर चिकित्सक को बुलाया गया। उन्होंने अच्छी तरह शरीर की जाँच की परन्तु नाड़ी का स्पंदन नहीं मिला। शरीर मृतवत् पड़ा था। परन्तु उनका चेहरा तेजपूर्ण, प्रफुल्लित एवं सुहावना लग रहा था। होमियोपैथी चिकित्सक त्रिलोचन पाण्डे उस समय आये। उन्होंने संदेहवश सुलगती हुई बीड़ी स्वामी जी के शरीर में लगा दी। शरीर का वह अंश जल गया परन्तु शरीर अचैतन्य रहा। एक व्यक्ति ने जलता हुआ कोयले का अंगार उनके पैर में रखा। इस तरह कई प्रकार से लोगों ने परीक्षा किया परन्तु उनके शरीर में कोई विकार या चंचलता नहीं देखी गयी। लोगों ने उनके जीवित रहने की आशा त्याग दी । कीर्तन अखण्ड चल रहा था। लगभग तीन घंटा बीत गया। इसके पश्चात् उनके शरीर एवं मेरूदण्ड पर धीरे-धीरे मालिस किया गया एवं गरम सेंक दिया गया। इसके एक घंटे बाद उनके शरीर मे स्पंदन देखा गया एवं कमशः उनके भीतर चेतना का संचार हुआ। उस दिन उन्हें पूर्ण ज्ञान आने में काफी समय लगा ।

(३) सन् १९५६ ई. (बंगला सन् १३६३, ७वां आषाढ़) में यह घटना हुई थी। उस दिन स्वामी जी का शरीर पहले से थोड़ा अस्वस्थ था। आसनसोल से रामचन्द्रपुर आने के लिए वे ट्रेन पर चढ़े। उस समय उन्हें अनुभव हुआ कि कोई दो व्यक्ति साथ में हैं। मुराड़ी स्टेशन से रामचन्द्रपुर लगभग डेढ़ किलीमीटर की दूरी पर है। मुराड़ी स्टेशन पर उस समय कोई सवारी नहीं मिलती थी। किसी तरह स्वामी जी पैदल आश्रम पहुँचे। आश्रम में आने के बाद कुछ जरूरी पत्रों का उन्होंने जवाब लिखा । सुबह जब वे आसन पर बैठे हुए पत्र लिख रहे थे तब अचानक उन्हें बेहोशी आ गयी एवं वे गिर पड़े। पास मे तकिया रहने से किसी प्रकार की चोट नहीं लगी। इस अवस्था में तीन दिन बीत गये। उस समय उन्हें परलोक की विभिन्न अवस्थाओं का अनुभव हुआ। गोसाँई जी ने उनसे कहा–''तुम शीघ्र अपने शरीर में वापस चलो। तुम्हें मृत समझकर शरीर को जमीन में समाधि देने की व्यवस्था की जा रही है। तुम्हारा अभी कुछ कर्म बाकी है। शरीर नष्ट हो जाने पर, फिर पृथ्वी में वापस न जा सकोगे।'' स्वामी जी ने गोसाँई जी से प्रार्थना किया कि वे थोड़ी देर और यहां रहना चाहते हैं। तब गोसाँई जी ने उनसे कहा–''एक काम करो, तुम थोड़ी देर के लिए अपने शरीर में जाकर वाणीं (उपदेश) देकर फिर चले आना। इससे लोगों को विश्वास हो जाएगा कि तुमने देह त्याग नहीं किया है।'' इसके बाद गोसाँई जी ने उन्हें शरीर में प्रवेश करवा दिया। उस अवस्था में स्वामी जी ने जो वाणी प्रदान किया वह इस प्रकार है–

''मेरा पंचभौतिक शरीर लय प्राप्त होने पर भी मेरी आत्मा पूर्व में जैसी थी अभी

भी वैसी ही है एवं बाद में भी वैसी ही रहेगी। विश्व की आत्मा के साथ मेरा अभिन्न योग है। सभी की सेवा के लिए मैंने बार-बार जन्म लिया है एवं भविष्य में जन्म ग्रहण करूँगा। मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ–जिन लोगों की सेवा का भार मेरे ऊपर अर्पित किया गया है उनके चरम और परम अवस्था की प्राप्ति न होने तक मैं विश्वस्त रूप से उनकी सेवा करता रहूँगा। इसके लिए पुनः-पुनः जन्म ग्रहण करूँगा एवं सभी को अपने माथे पर रखकर प्रभु के श्रीचरणों पर पहुँचा दूँगा।''

उपरोक्त वाणी देकर स्वामी जी पुनः समाधिस्थ हो गये। उस दिन रात्रि के दो बजे उन्हें सम्पूर्ण चेतना आई। स्वाभाविक अवस्था आने पर उन्होंने देखा कि उनके शरीर को समाधि देने के लिए गड्ढा तैयार करके रखा गया था।

––––––

अध्याय २४ : बिहार प्रान्त के विधानसभा में स्वामी जी का प्रवेश

स्वाधीन भारत का प्रथम निर्वाचन सन् १९५२ ई. में हुआ। स्वामी जी ने स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में निर्वाचन में भाग लिया एवं आशातीत मत प्राप्त कर विधानसभा के सदस्य बने।

स्वामी जी समाज के अवहेलित अन्धे एवं कुष्ठ रोगियो के लिए बहुत दिनों से सेवा कार्य कर रहे थे। अस्थायी तौर पर चिकित्सकों की सहायता से सेवा करते हुए उन्हें अनुभव हुआ कि जब तक स्थायी रूप से अस्पताल का निर्माण न किया जावे तब तक गरीब लोग विशेष उपकृत नहो होंगे। रामचन्द्रपुर आश्रम में स्वामी जी ने अस्थायी तौर पर चिकित्सा शिविर कई वर्षों तक लगाया था। उन्होंने देखा कि अनेक रोगियों के आँखों की शल्य-चिकित्सा (Operations) के बाद रोग-संकमण (Infection) से कई लोगों की आँखे खराब हो रही है। इसे देखकर स्वामी जी के मन में विचार आया कि आँखों की चिकित्सा के नाम पर लोगों की आखों को खराब करना ठीक नहीं है। अतः स्वामी जी ने दस शय्या युक्त नेत्र चिकित्सालय प्रारम्भ किया। इस कार्य में उन्होंने बिहार सरकार से सहायता प्राप्त की।

जनसाधारण की सुविधा के लिए स्वामी जी को, विभिन्न समस्याओं को लेकर, बिहार सरकार से कई बार संघर्ष भी करना पड़ा। इनमें से उनके प्रमुख कार्य थे–

(१) सन् १९५३ ई. में बर्नपुर इस्पात कारखाने के मालिक एवं श्रमिकों के मध्य विरोध से उत्पन्न परिस्थितियों को शान्त करने में स्वामी जी का अग्रसर होना ।

(२) अपनी मातृभाषा की शिक्षा, सभी का मौलिक अधिकार है। बिहार में बंगला भाषा का उच्छेद करने का जो प्रयास किया गया था, स्वामी जी ने उसका प्रतिवाद किया एवं विधानसभा में तथा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से इस आन्दोलन को प्रभावशाली बनाया। इसके परिणाम स्वरूप बेसिक (बुनियादी) स्कूलों में आठवी कक्षा तक मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा चालू की गई।

(३) मानभूम में शिक्षकों को नियमित वेतन देने के लिए सरकार की दृष्टि आकर्षित की। फलस्वरूप शिक्षकगण उर्पकृत हुए। इस तरह नियमित पेंशन की व्यवस्था भी की गई।

(४) गांव में सड़कों का निर्माण, तालाबों का जीर्णोद्धार एवं सिंचाई की आवश्यक व्यवस्था के लिए सरकार के ऊपर दबाव दिया गया।

(५) स्वामी जी भारत वर्ष को पाँच प्रमुख अंचलो में विभाजित (Zonal System) करने को उचित समझते थे। उनका कहना था कि 'भाषा के हिसाब से

देश के विभाजन से आपस में जो कलह उत्पन्न होगा उससे भाषा, संस्कृति एवं सीमा को लेकर सर्वदा विवाद होता रहेगा एवं एक के बाद एक विभाजन बढ़ता रहेगा। अंग्रेजों की Divide and rule की नीति ने देश की जो हानि को है, भाषा के हिसाब से देश का विभाजन, उससे भी अधिक विध्वंसकारी होगा।' उन्होंने अपना प्रस्ताव केन्द्रीय नेताओं के समक्ष रखा था।

स्वामी जी के उपरोक्त सिद्धांत (Zonal System) के प्रस्ताव को भारत सरकार ने स्वीकार नहीं किया। आज भाषा के हिसाब से देश कमशः और विभाजित होता जा रहा है, यह सत्य सबके सामने दिखलाई पड़ रहा है। इसके दुष्परिणाम भी प्रकट हो रहे हैं।

(६) देश के निर्वाचन पद्धति के सम्बन्ध में उन्होंने अपना विचार निम्न प्रकार प्रकट किया था–

(क) उम्मीदवार अपना नाम, योग्यता, चित्र एवं अपनी कार्य-पद्धति का विवरण सरकार के पास भेजेगा। सरकार की तरफ से केवल इसका प्रचार किया जाएगा।

(ख) उम्मीदवार की तरफ से किसी भी प्रकार का प्रचार कार्य नहो होगा।

(ग) मतदाता किसी के द्वारा प्रभावित न होकर अपनी स्वाधीन इच्छा से मतदान करेंगे।

उपरोक्त पद्धति से निर्वाचन होने पर उम्मीदवार को अपने क्षेत्र के लिए सेवा कार्य उचित रूप से करना ही पड़ेगा। इसके बिना जनसाधारण उन्हें कैसे पहचान सकेगा ? उम्मीदवार का चरित्र एवं सेवा-कार्य उसे अपने पद के निर्वाचन में सहायता प्रदान करेगा।

(७) सरकार शराब का लाईसेन्स देकर शराब की बिको बढ़ाने का प्रयास कर रही थी क्योंकि सरकार को इससे अधिक आय प्राप्त होती है। स्वामी जी ने सरकार के इस कार्य का विरोध करते हुए कहा कि मनुष्य को शराबी बनाकर सरकार का आय बढ़ाना अत्यन्त लज्ञाजनक कार्य है। यह नैतिकता के विरूद्ध है। स्वामी जी का विरोध सरकार ने नहीं माना। आज सब तरफ शराब का जो दौर दिखलाई पड़ रहा है यह समाज के लिए कलंक है। सरकार अपनी आय बढ़ाने के लिए शराब की खुले आम बिको बढ़ा रही है। इसके प्रभाव से मनुष्य की रूचि एवं प्रवृत्ति कितनी अधोगामी होती जा रही है यह सभी को विदित है।

(८) विधानसभा के प्रथम अधिवेशन में "अधिक फसल उत्पन्न करो" इस विषय पर बहस करते हुए कांग्रेस नेत्री मनोरमा देवी ने बिहार में 'नीलगाय एवं वानर वध' का प्रस्ताव पेश किया। उल्लेखनीय है, उस समय बिहार में घर-घर पर वानरों का उत्पात था एवं रात्रि में नीलगायों का झूंड खेतों में फसल को काफी नकसान पहचाते थे। स्वामी जी ने मनोरमा देवी के इस प्रस्ताव का विरोध करने की अनुमति मांगी परन्तु

उन्हें अनुमति नहीं मिली। अब उन्होंने गोसाई जी को स्मरण कर उनसे व्याकुल होकर प्रार्थना शुरू की एवं अपने मन में स्थिर किया कि यदि यह प्रस्ताव पास हो गया तो वे विधानसभा की सदस्यता से त्याग-पत्र दे देंगे।

मध्यान्ह अवकाश के समय, सदस्यों के सामने स्वामी जी ने अपना विचार प्रकट करते हुए कहा–''मातृशक्ति जब सन्तान वध में अग्रसर होती है तब सृष्टि का ध्वंस अनिवार्य है। इस प्रकार एक महिला सदस्या द्वारा नीलगाय एवं वानर वध का प्रस्ताव अनुचित है। इसके परिणाम स्वरूप माताएं अपनी सन्तानों को भी, फसल की हानि अथवा वानरों द्वारा घर की वस्तुओं को नष्ट करने पर, हत्या करने के लिए प्रेरित करेंगी जो अत्यन्त गर्हित कार्य होगा।''

मध्यान्ह अवकाश के बाद असहाय स्वामी जी केवल प्रार्थना करते रहे। अकस्मात् **उन्होंने देखा कि मंच पर स्पीकर के स्थान पर, एक आलोकित रश्मि के मध्य गोसाँई जी बैठे हैं एवं आसपास उनके शिष्यगण हैं।** उस समय स्पीकर के निर्देश से सरकार की तरफ से मंत्री रामचरित्र सिंह ने प्रस्ताव के विरूद्ध दीर्घ भाषण देकर कहा–''हिन्दू जनसाधारण के मन को आघात कर नीलगाय एवं वानर वध का दायित्व सरकार ग्रहण नहीं कर सकती....।'' इसके बाद मनोरमा देवी ने कहा कि 'मैंने अपना प्रस्ताव वापस लिया।' इसे सुनकर स्वामी जी अत्यन्त आनन्दित हुए एवं टेबिल ठोंककर इसका स्वागत् किया।

बंगाल के मुख्यमन्त्री विधान राय के प्रयास से मानभूम जिला बाद में दो भागों में भाषा के हिसाब से विभाजित हुआ। पुरूलिया जिला पश्चिम बंगाल के अन्तर्गत आ गया । रामचन्द्रपुर पुरूलिया जिला के अन्तर्गत आने से, स्वामी जी पश्चिम बंगाल के विधानसभा में आ गये।

संन्यासी होकर राजनीति में प्रवेश करने से कई लोगों ने उनकी कटु आलोचना की थी। इस सम्बन्ध में कई लोगों ने उनसे प्रश्न भी किया। इसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा–''**मेरा विधानसभा में प्रविष्ट होना आवश्यक था। गुरूदेव के निर्देश से मैं इस कार्य में अग्रसर हुआ। उन्हीं के निर्देशानुसार मैं कार्य करता जा रहा हूँ। मन में इस कार्य के प्रति मेरी कोई आसक्ति नहीं है। जिस निष्ठा के साथ मैं इस कार्य को कर रहा हूँ, उसे, निर्देश मिलने पर उसी समय त्याग करने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ।**

भविष्य में, मेरे पक्ष या विपक्ष में, जो भी आलोचना करे उस ओर तुम लोग ध्यान मत देना। जीवन क अन्तिम दिनों तक मैं अविराम कार्य करता रहूँगा–यहाँ तक कि मृत्यु के उपरान्त भी जगत् के कल्याण के लिए कार्य करूँगा। मिथ्या की अपेक्षा सत्य की शक्ति सहस्त्र गुना अधिक है। चरित्र बल, पवित्रता का बल, सत्य एवं मनुष्यत्व के रहने पर सब ठीक है। जब तक मेरा यह सब रहेगा, तब तक तुम लोगों

को कोई चिन्ता नहीं है–तब तक कोई मेरा कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकेगा। यदि कोई मेरा अनिष्ट करना चाहेगा तो वह निश्चित रूप से असफल होगा–यह भगवत् निर्देशित कार्य है।''

पांच साल के पश्चात् स्वामी असीमानन्द जी पुनः चुनाव में खड़े नहीं हो रहे थे। परन्तु उनके राजनैतिक कर्मियों ने उन्हें नहो छोड़ा। स्वामी जी ने बार-बार कहा कि 'मेरा राजनैतिक कर्म अब समाप्त हो गया है–गुरूजी ने मेरे लिए दूसरा कार्य निर्दिष्ट कर रखा है।' परन्तु उनके राजनैतिक कर्मियों के अत्यन्त अनुरोध से चुनाव में वे खड़े हुए एवं हार गये।

स्वामी जी के मनोभाव, चुनाव परिणाम के पहले एवं चुनाव परिणाम के बाद, अपने प्रिय शिष्य रविन्द्रनाथ पाठक को लिखे गये पत्रों से प्राप्त होता है। चुनाव परिणाम के पहले उन्होने लिखा था–''**चुनाव के परिणाम के सम्बन्ध म मैं चिन्तित नहीं हूँ। विशेष कोई प्रयास भी नहीं किया गया। सहायक कर्मियों से भी कह दिया गया था कि हम चुनाव के लिए प्रचार कार्य नहीं करेंगे। चुनाव में पराजित होने पर मैं अधिक प्रसन्न होऊँगा क्योंकि राजनीति के बन्धन में अब मैं बिल्कुल नहीं रहना चाहता। सहकर्मियों के तीव्र अनुरोध को मानकर मुझे बाध्य होकर चुनाव में खड़ा होना पड़ा।''**

चुनाव परिणाम के पश्चात् स्वामी जी ने उन्हें लिखा था–''**यह समाचार सुनकर आनन्दित होगे कि मैं चुनाव में पराजित हो गया हूँ। श्रीगुरूदेव के चरणों में असंख्य प्रणाम। मैं अत्यन्त आनन्दित हूँ और अब अपने को मुक्त अनुभव कर रहा हूँ। इस चुनाव का परिणाम यद्यपि मुझे पहले से ही ज्ञात था फिर भी सभी लोगों के स्नेहपूर्वक अनुरोध की उपेक्षा न कर चुनाव में खड़ा होना पड़ा था। मैंने किसी प्रकार का प्रचार कार्य भी नही किया था। निर्वाचन म अनिच्छापूर्वक भाग लेने के परिणाम स्वरूप केवल २५० रूपये खर्च हुए।''**

इस सम्बन्ध में महात्मा तिब्बती बाबा ने बहुत पहले अन्नदा कुमार (स्वामी जी) के लिए जो भविष्यवाणी की थी, उसका उल्लेख यहाँ आवश्यक है। उन्होंने अन्नदा कुमार से कहा था–''**तुम्हारा कर्म प्रधान मन राजनैतिक कायो में बार-बार लिप्त होगा, परन्तु धार्मिक प्रेरणा तुम्हें अनासक्ति की ओर आकृष्ट करेगी। अभी काफी दिनों तक तुम्हें राजनैतिक कार्यों में संलग्न रहना पड़ेगा। क्रमशः राजनैतिक भावनाएं अपने आप परिवर्तित हो जाएंगी। तुम्हारे धार्मिक जीवन में अचानक ऐसा परिवर्तन आएगा जिससे तुम्हारे जीवन में सब विपर्यस्त (उथल-पुथल) हो जाएगा।''**

'' बाद में तुम्हें राजनैतिक वातावरण में आना पड़ेगा, परन्तु तुम मौन हो जाओगे। राजनैतिक कर्म तुम्हें असह्य लगेगा, उसमें ज्वलन का बोध होगा। तुम्हारी मौन भावना जनसमुदाय के क्षोभ का कारण बनेगी और यही तुम्हारे लिए वरदान

सिद्ध होगा। तुम सब छोड़कर मुक्त हो जाओगे एवं वृन्दावन के पथ पर तुम्हारी शुभ यात्रा होगी।"

संन्यास के पश्चात् स्वामी जी ने दरवेश जी के निर्देश से दीक्षा देना प्रारम्भ किया था। राजनीति में रहते हुए भी वे मुमुक्षुओं को दीक्षा देते रहे एवं विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए, लोगों की सुप्त धर्म-चेतना को जागृत करने के लिए आवश्यक कार्यों में सदा तत्पर रहे। उन्होंने घोषणा की थी–**''समाज आज जिस स्तर पर आ गया है, यह समाज नहीं टिकेगा–नहीं टिक सकता! आन्तरिकता से शून्य–केवल बाह्य आडम्बर से पूर्ण जाति का मूल्यहीन अभिमान, निकट भविष्य में चूर्ण हो जाएगा। जिस प्रकार की हवा बह रही है वह शीघ्र प्रबल तूफान में परिवर्तित होकर सब चूर्ण करता हुआ, एक धर्म और जाति के मध्य विलीन हो जाएगा। नया युग आ रहा है! उसका प्रबल प्रताप, पुरानी सभ्यता को ध्वंस करता हुआ, नई सृष्टि का सृजन करेगा। उसकी सूचना दिखलाई पड़ रही है । चारों ओर आज नाम-संकीर्तन का प्रचार प्रारम्भ हो गया है। इस नाम के प्रवाह से सभी जाति के सब नर-नारी आनन्द से नृत्य करेंगे। एक दिन ऐसा आएगा जब भारत वर्ष में केवल एक जाति रहेगी–वह मानव जाति कहलाएगी। एक धर्म रहेगा–वह श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित 'प्रेमधर्म' । इस 'प्रेमधर्म' के प्रचार में सहायक रहेगा–'महानाम' अर्थात हरेर्नामैव केवलम्!**(बंगला पत्रिका 'मन्दिर' १८ वर्ष से)

अध्याय २५ : श्रीवृन्दावन धाम की पदयात्रा

अपने गुरूजी की प्रेरणा एवं निर्देशानुसार २१ अक्टुबर, १९५७ ई. को स्वामी असीमानन्द जी ने संकीर्तन मंडली एवं रथ के साथ श्रीवृन्दावन की पदयात्रा प्रारम्भ करने का विचार किया। श्रीवृन्दावन धाम, रामचन्द्रपुर आश्रम से लगभग बारह सौ किलोमीटर की दूरी पर है। पदयात्रा प्रारम्भ करने के पूर्व स्वामी जी ने कहा था–

(१) नित्य प्रातः ४ बजे से ६ बजे के भीतर तैयार होकर, ६ बजे पदयात्रा शुरू होगी।

(२) प्रातः ९ बजे के लगभग किसी स्थान पर पहुँचकर सत्संग अर्थात कीर्तन, पाठ आदि अनुष्ठान, मध्यान्ह तक होता रहेगा। मध्यान्ह १२ बजे से ३ बजे तक भोजन एवं विश्राम के पश्चात् पुनः पदयात्रा प्रारम्भ होगी। संध्या के पूर्व, किसी ग्राम या उपयुक्त स्थान पर रात्रि विश्राम किया जाएगा।

(३) रात्रि ९ बजे तक कीर्तन आदि के पश्चात् भोजन एवं विश्राम।

जो लोग पदयात्रा में भाग लेंगे, उन्हें निम्न नियमों का पालन करना आवश्यक होगा–

(१) यात्रा के समय व्यर्थ आलोचना या बातचीतं न कर, नाम-संकीर्तन एवं अपने इष्ट मन्त्र का जप करते हुए अग्रसर होना पड़ेगा।

(२) मध्यान्ह एवं रात्रि के सत्संग में सभी का योगदान आवश्यक रहेगा।

(३) यात्रा में जो लोग जाएंगे, वे अपने सामर्थ्य के अनुसार, राहखर्च लाकर पदयात्रा-कोष में दान कर देंगे।

(४) भगवान की कृपा के ऊपर निर्भर रहकर पदयात्रा होगी। आवश्यकतानुसार पदयात्रा-कोष से रास्ते का सभी खर्च चलेगा। यदि पदयात्रा-कोष समाप्त हो जाये अथवा कुछ भी प्राप्त न हो तो दुःख या क्षोभ प्रकाश न कर, हमारी यात्रा चलती रहेगी।

(५) अपना आवश्यक सामान साथ लाना होगा । शीतकाल होने से रास्ते में ठंड रहेगी । वृन्दावन पहुँचने में लगभग तीन महिने लग जाएंगे।

(६) यात्रा के समय, दिन-रात सत्संग एवं साधना में लगे रहने के लिए हमें सचेष्ट रहना होगा। स्वामी जी के साथ जाने पर भी, प्रत्येक यात्री को श्रीभगवान की कृपा पर निर्भर रहना होगा एवं उन्हें ही एक मात्र सहायक समझना होगा।

पदयात्रा के पूर्व सभी को निम्न संकल्प लेना होगा–

(१) हम भगवान का नाम लेकर एवं उन पर निर्भर रहकर पदयात्रा करेंगे।

(२) पथ के कष्ट को सहर्ष सहन करेंगे।

(३) किसी प्रकार की असुविधा के लिए किसी को दोषी नही मानेंगे ।

(४) आपस में कलह नहीं करेंगे।

(५) हम, किसी के उद्वेग का कारण न होंगे।

(६) सत्य, प्रेम एवं अहिंसा यात्रा-पथ में हमारा प्रमुख आदर्श रहेगा।

पथ में दुःख, कष्ट, अभाव एवं असुविधा परिपूर्ण रूप से हो सकती है, इसे जानकर जो यात्रा में जाना चाहेंगे, वे ३० सितम्बर के पूर्व स्वामी जी को सूचित करेंगे। उपरोक्त नियमों का जो लोग पालन करने के लिए प्रस्तुत हैं, वे चाहे किसी भी जाति, सम्प्रदाय या धर्म से युक्त हों, इस यात्रा में जा सकेंगे। पद-यात्रियो में कुछ गरीब असहाय लोग भी रहेंगे, इनके लिए कम्बल, वस्त्रादि जो लोग भेजेंगे, उसे कृतज्ञता सहित ग्रहण किया जाएगा।

पदयात्रा में जाने के लिए अनेक लोगों की इच्छा थी, परन्तु नाना प्रकार की असुविधाओं को देखकर केवल चालीस लोग ही इसमे शामिल हो सके। पदयात्रा के समय लगभग १८ फुट ऊँचा एक रथ का निर्माण किया गया था। रथ ४ फुट लम्बी, ४ फुट चौड़ी तथा ५ फुट ऊंची लकड़ी की पेटी पर आधारित था। यह पेटी तीन तरफ टीन के पातों से ढकी हुई थी और सामने की तरफ एक दरवाजा था जिससे पूजा एवं भोग आदि के लिए आवश्यक सामान भीतर रखा जा सकता था। पेटी में रिक्शे के चार चक्के लगे थे तथा ऊपर की तरफ मन्दिर जैसा आकार देकर, रथ तैयार किया गया था। रथ के भीतर सद्गुरू श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी का विशाल तैलचित्र सुशोभित था। मन्दिर के ऊपर पीतल का कलस एवं उस पर ध्वज लहरा रहा था। रथ में श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री नित्यानन्द महाप्रभु के चित्र के साथ गोस्वामी जी की सहधर्मिणी माता योगमाया देवी एवं गोस्वामी जी के कुछ प्रमुख शिष्यों का चित्र रखा गया था।

पदयात्रा के पूर्व, रामचन्द्रपुर आश्रम में विभिन्न स्थानों से लगभग चार सौ से अधिक लोग आये थे। सभी को आशंका थी कि स्वामी जी वृन्दावन जाकर शरीर त्याग देंगे। इस भावी विरह से सभी विषादग्रस्त थे। इस आशंका का कारण था–कुछ दिन पूर्व स्वामी जी जब कोलकाता आये थे तब उन्होंने एक दिन पदयात्रा के सम्बन्ध में एवं भावी रूपरेखा के सम्बन्ध में वर्णन करते हुए कहा था–''मुझे यात्रा-पथ का सुन्दर दृश्य दिखलाई पड़ रहा है। गोसाँई जी एवं गुरूजी हमारे यात्रा की सभी व्यवस्था कर रहे हैं।'' इस तरह वर्णन करते हुए वे भावमग्न हो गये। फिर भावावस्था में कहने लगे–**''मैं श्रीकृष्ण की मधुर वंशी-ध्वनि सर्वदा सुन रहा हूँ। गुरूजी आगे हैं और मैं उनके पीछे चल रहा हूँ। ऐसा लग रहा है कि इसी समय निकल पड़ूं। जो मेरे साथ चलेंगे, उनका अवश्य कल्याण होगा। उन्हें भगवत्नाम की कृपा से पथ के कष्ट का**

अनुभव नहो होगा। हमलोग पथ में नाम एवं उत्सव करते हुए चलेंगे। स्वयं भोजन वनायेंगे। सभी को खिलाएंगे एवं स्वयं प्रसाद ग्रहण करेंगे। जो आएगा उसे प्रसाद दिया जाएगा। जो मेरे साथ नहीं जा सकेंगे, उनके लिए मैं गुरूजी के निकट प्रार्थना कर रहा हूँ जिससे वे अपने हृदय में उनकी वंशी ध्वनि सुन सकें। राधा-चित्त, केवल वृन्दावन में ही नहीं वरन् सारे विश्व में विराजित है। तुम्हारे भीतर जो राधा-चित्त है, वह जागृत हो! तुम लोग मेरा आन्तरिक आशीर्वाद ग्रहण करो । मैं पुनः कह रहा हूँ कि जिन लोगों का भार मैंने ग्रहण किया है, उन्हें मैं अपने माथे पर रखकर प्रभु के चरणों में पहुँचा दूँगा। साधना पथ में कितनी परीक्षा आएगी–कई बार गुरू के प्रति अनेक प्रकार का संदेह होगा–मन विक्षिप्त हो जाएगा। इन सबसे सावधान रहना! तुम सभी परिक्षाओं में उत्तीर्ण हो जाओ!! हमें और तुम्हारी गुरूमाता को गुरूदेव के निकट अनेक परिक्षाएं देनी पड़ी थी। वृन्दावन से वापस आने की मेरी इंच्छा नहीं है। यदि 'वे' वापस लायें तो आना ही पड़ेगा। इस नाम प्रचार के द्वारा देश का वास्तविक कल्याण होगा ।''

उस दिन स्वामी जी भावमग्न अवस्था में काफी देर तक रहे। इसके कुछ दिन पूर्व गोसाँई जी का निर्देश प्राप्त कर स्वामी जी एक संगमरमर की मूर्तियों की दुकान में श्रीराधा-कृष्ण की मूर्ति लेने पहुँचे। वहाँ स्वप्नदृष्ट श्रीराधा-कृष्ण की मूर्ति न देखकर हताश होकर जब वे लौटने लगे तब दुकानदार ने उन्हें अपने गोदाम में आने का अनुरोध किया। गोदाम में जाकर स्वामी जी ने देखा कि एक कोने में दो पेटी रखी हुई है। स्वामी जी ने दुकानदार से उस पेटी को खोलने के लिए कहा। पेटी खोलने पर उसमें श्रीराधा-कृष्ण की मूर्ति देखकर, सभी आश्चर्य चकित हो गये। स्वामी जी ने कहा, इसी मूर्ति के लिए मैं आया हूँ। दुकानदार ने उस मूर्ति का मूल्य २५० रूपये बतलाया लेकिन स्वामी जी को केवल १७५ रूपये में देने का प्रस्ताव रखा। स्वामी जी के पास पूरा मूल्य न रहने पर, दुकानदार ने कहा कि आप मूर्ति ले जाइये, शेष राशि बाद में भेज दीजियेगा ।

मूर्ति को रामचन्द्रपुर आश्रम में लाकर स्वामी जी ने कहा–''**मैं इस मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा करक जाऊँगा । तुम लोगों की गुरू माँ के शेष जीवन का यही प्रमुख अवलम्बन रहेगा।'' पदयात्रा में जाने के पूर्व उन्होंने हमारी गुरू माँ को यह मूर्ति अर्पण करते हुए कहा था–''मेरे अनुपस्थिति में यह युगल मूर्ति तुम्हारे साथ बातें करेंगी। निर्वाक मूर्ति तुम्हारे साथ बात करती हुई, मेरा अभाव पूर्ण करेगी। यह युगल मूर्ति तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देते हुए, तुम्हारी सभी समस्याओं का समाधान करेगी और तुम्हारी प्रमुख सहायक एवं धर्म-पथ के शेष जीवन का अवलम्बन रहेगी।''**यह मूर्ति अब रामचन्द्रपुर आश्रम के नवनिर्मित मन्दिर में प्रतिष्ठित है।

यात्रा के दिन, आश्रम का वातावरण वर्णनातीत शोकग्रस्त लगा। अधिकांश

लोग भावी वियोग से शोकाकुल हो गये थे। आश्रम के पालतू पशु भी उस दिन अपने प्रभु के वियोग मे दु:खी लगे एवं भोजन तक ग्रहण नहो किया। यात्रा के दिन पुत्र नन्ददुलाल को कतिपय विशिष्ट लोगों के समक्ष अपने कमरे में बुलाकर स्वामी जी ने कहा–''**दुलाल! तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो। श्रीगुरू महाराज ने आश्रम का सभी भार तुम्हारी माँ को प्रदान किया है। आज से उनके होकर कार्य के परिचालन के लिए, आश्रम की सभी सम्पत्ति एवं दायित्व तुम्हें अर्पण कर रहा हूँ। माता, भाई एवं बहना के प्रति अपने आवश्यक कर्त्तव्यों का पालन करना। तुम्हारे सहोदर एवं सहोदराओं को स्नेह एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखना । अपनी माँ की जिस तरह भक्ति करोगे उसी तरह अपने से बड़े एवं कनिष्ठ मेरे मन्त्र शिष्य एवं शिष्याओं को सम्मान प्रदान करना। याद रखना, वे लोग तुम्हारे बड़े भाई-बहनों की तुलना में किसी भी अंश में छोटे नहीं हैं वरन् अधिक सम्माननीय हैं।'' फिर स्वामी जी ने, गोसाँई जी के निर्देशों का पालन करते हुए आदर्श गृहस्थ जीवन अपनाने के लिए नन्ददुलाल को उपदेश देते हुए अन्त में कहा–''तुम्हारा जीवन सभी की सेवा के माध्यम से सार्थक एवं जययुक्त हो ! सेवा ही सभी को अपना बनाने का श्रेष्ठतम उपाय है।''**

इसके पश्चात् स्वामी जी के भक्तों ने उन्हें एवं श्रीगुरू माता जी को बैठाकर उनका यथायोग्य अभिवादन किया एवं गुरूवन्दना व नाम-संकीर्तन के माध्यम से अपनी श्रद्धा व्यक्त की । आज सभी आश्रमवासी भक्तों के साथ श्रीगुरू माँ की आँखों से भी अश्रु निकल रहा था। आश्रम से निकलने के पूर्व नन्ददुलाल अपने पिता को पकड़कर जिस तरह रो रहा था, वह दृश्य अवर्णनीय है। उसका आलिंगन करते हुए स्वामी जी सांत्वना देते हुए कहने लगे–''**तुम्हें तो मैं सब कुछ देकर जा रहा हूँ। मैं तो केवल तुम लोगों के लिए नहो हूँ, विश्व के कल्याण के लिए मुझे यह सब करना पड़ेगा। सभी 'उनकी' इच्छा से हो रहा है। यही भगवत् इच्छा है।''**

स्वामी जी ने आश्रम से बाहर निकलकर, आश्रम की ओर साष्टांग प्रणाम किया। उस समय अचानक देखा गया कि रथ अपने आप अग्रसर हो रहा है। गोसाँई जी की जय-ध्वनि देते हुए नाम-संकीर्तन के साथ सभी लोग रथ को लेकर अग्रसर होने लगे। रामचन्द्रपुर ग्राम के प्रमुख मन्दिरो में प्रणाम निवेदन करने के पश्चात् रथ के साथ स्वामी जी मुराडी स्टेशन के काली मन्दिर में आये। इस स्थान पर स्वामी जी को बहुत पहले नजर-बंद कर रखा गया था। वहाँ किसी साधक ने पंचमुण्डी आसन बनाया था। फिर स्वामी जी के निर्देशानुसार वहाँ अब माँ काली जी की मूर्ति प्रतिष्ठित कर मन्दिर बनाया गया है। रास्ते में असंख्य लोग स्वामी जी को प्रणाम निवेदन करते हुए अश्रु विसर्जन कर रहे थे।

उल्लेखनीय है कि पदयात्रा के लिये जो रथ तैयार किया गया था, उसमें स्वामी जी के निर्देशानुसार निम्न उपदेश लिखा गया था–

(बंगला पद) – भारतेर घरे-घरे करोहो प्रचार,
नाम शास्त्र सदाचार एई मात्र सार ।
व्यक्ति जाति सम्प्रदाय ना करि विचार,
नाम प्रेमे सर्वजीवे करोहो उद्धार।।

(हिन्दी अनुवाद) – भारत के घर-घर में करो प्रचार,
नाम शास्त्र सदाचार यही है सार ।
व्यक्ति जाति सम्प्रदाय का न करो विचार,
नाम और प्रेम द्वारा सर्वजीवों का करो उद्धार ।।

पदयात्रा के समय निम्न पद का नाम-संकीर्तन गान किया गया था–

''भजो गुरू गौरांग राधा गोविन्द
ब्रह्म नारायण हरे कृष्ण राम''

नाम-संकीर्तन का अर्थ :- शास्त्रों में गुरू तत्व श्रेष्ठ तत्व माना गया है।

'' न गुरोरधिकं तत्वं न गुरोरधिकं तपः ।''

(गुरूगीता, श्लोक ३६)

अर्थात गुरू तत्व से श्रेष्ठ तत्व कुछ भी नही है एवं गुरू सेवा से अधिक तपस्या भी नहीं है।

इस गुरू तत्व पर ही आधारित है–

''भजो गुरू गौरांग राधा गोविन्द
ब्रह्म नारायण हरे कृष्ण राम''

इसका अर्थ है–गुरू कौन है ? गौरांग (चैतन्य महाप्रभु) हैं। गौरांग कौन है? राधा-गोविन्द (राधा भाव एवं कांति लिये हुए गोविन्द जी) हैं। राधा-गोविन्द का निर्गुण स्वरूप 'ब्रह्म' है एवं सगुण स्वरूप 'नारायण' हैं। हरे, कृष्ण और राम, इन नामों से उनका कीर्तन किया जाता है।

इस कीर्तन का प्रचार सर्वप्रथम श्री गोस्वामी जी के शिष्य श्री किरणचन्द्र दरवेश जी ने किया था । अपने साधन आश्रम में एक दिन उन्होंने देखा कि ऋषि-मुनियों के साथ बुद्ध, मोहम्मद, ईसा तथा अन्य विभिन्न सम्प्रदाय के महात्माओं के साथ, श्री चैतन्य महाप्रभु तथा श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी जा रहे हैं तथा यह नाम-संकीर्तन हो रहा है– ''भजो गुरू गौरांग राधा गोविन्द
ब्रह्म नारायण हरे कृष्ण राम''

इस संकीर्तन का भावार्थ है– नाम, नामी और नामदाता अभिन्न हैं। सर्वप्रथम, शक्तिपूर्ण नाम-जप करते हुए साधक के सामने नामदाता–सद्गुरू का रूप स्पष्ट हो उठता है। इसके पश्चात् नाना प्रकार की भगवत् लीला, दृश्य, देवी-देवताओं की मूर्तियाँ, साधक के संस्कार के अनुसार दिखाई पड़ती हैं । फिर बाद में देखा जाएगा

कि गुरू रूप इन रूपों में मिल रहा है। फिर वे रूप भी गुरू रूप मे मिल रहे हैं । नाम, रूप एवं आकार उस समय लुप्त हो जाएंगे । मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सब विलीन हो जाएंगे और गुरू के दिव्य रूप एवं इष्ट के अभेदत्व को देखकर उसके अतल-तल में साधक डूब जाएगा । उस समय साधक के समक्ष यह तत्व प्रकट होगा—नाम, नामी और नांमदाता अभिन्न हैं। नामी का अर्थ इष्ट देवता है। इसी कारण कहा गया है—

''गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु गुरूर्देवो महेश्वरः''

सद्गुरू प्राप्ति के लिये एवं सद्गुरू की प्राप्ति जिन्हे हो गई है, उनके लिये भी यह नाम-संकीर्तन (भजो गुरू गौरांग....) बहुत सहायक है। 'गुरूतत्व' पर आधारित इस संकीर्तन को सभी सम्प्रदाय के लोग कर सकते हैं। बंगाल की तरफ विभिन्न स्थानों में यह संकीर्तन विभिन्न राग एवं ताल मे गाया जाता है।

रामचन्द्रपुर से वृन्दावन जाते समय रास्ते में स्वामी जी ने निम्न स्थानों पर रात्रि विश्राम किया था—

श्रीवृन्दावन पदयात्रा : रामचन्द्रपुर से वाराणसी = ४७१ कि०मी०

दिनांक	यात्रा प्रारम्भ	रात्रि विश्राम	दूरी
(१९५७ ई.)			
२१ अक्टूबर	रामचन्द्रपुर आश्रम से	रघुनाथपुर	२० कि.मी
२२ अक्टूबर	रघुनाथपुर से	चेलियामा	२४ कि.मी.
२३ अक्टूबर	चेलियामा से	झरिया	१० कि.मी.
२४ अक्टूबर	झरिया से	धइया	१६ कि.मी.
२५ अक्टूबर	धइया में विश्राम—		
२६ अक्टूबर	धइया से	राजगंज	१२ कि.मी.
२७ अक्टूबर	राजगंज से	तोपचांची	१५ कि.मी.
२८ अक्टूबर	तोपचांची से	डूंरी	२१ कि.मी.
२९ अक्टूबर	डूंरी से	बगोदर	२१ कि.मी.
३० अक्टूबर	बगोदर से	बारखट्टा	२२ कि.मी.
३१ अक्टूबर	बारखट्टा से	बारही	२८ कि.मी.
१ नवम्बर	बारही से	चौपारन	१९ कि.मी.
२ नवम्बर	चौपारन से	बाराचोटी	२० कि.मी.
३ नवम्बर	बाराचोटी से	शेरघाटी	३३ कि.मी.
४ नवम्बर	शेरघाटी में विश्राम —		
५ नवम्बर	शेरघाटी से	मदनपुर	२३ कि.मी.
६ नवम्बर	मदनपुर से	औरंगाबाद	२५ कि.मी.

७ नवम्बर	औरंगाबाद से	सोननगर	२२ कि.मी.
८ नवम्बर	सोननगर से	कुम्भौ	१४० कि.मी.
९ नवम्बर	कुम्भौ से	पुसौली	
१० नवम्बर	पुसौली से	दुर्गावती	
११ नवम्बर	दुर्गावती से	चंन्दुली माझया	
१२ नवम्बर	चान्दुली माझया से	वाराणसी	
१३ नवम्बर	वाराणसी मे विश्राम	–	
१४ नवम्बर	वाराणसी में विश्राम	–	
			४७१ कि.मी.

श्रीवृन्दावन पदयात्रा : वाराणसी से वृन्दावन धाम = ६०९ कि.मी.

दिनांक	यात्रा प्रारम्भ	रात्रि विश्राम	दूरी
१५ नवम्बर	वाराणसी से	राजातालाब	वाराणसी से इलाहाबाद १२५ कि.मी.
१६ नवम्बर	राजातालाब से	माधोसिंह	
१७ नवम्बर	माधोरिंह से	जंगीगंज	
१८ नवम्बर	जंगीगंज से	सैयदाबाद	
१९ नवम्बर	सैयदाबाद से	इलाहाबाद	
२० नवम्बर	इलाहाबाद से	मूरादगंज	इलाहाबाद से कानपुर १९१ कि.मी.
२१ नवम्बर	मुरादगंज से	शैली	
२२ नवम्बर	शैली से	रवागा	
२३ नवम्बर	रवागा से	सारसौल	
२४ नवम्बर	सारसौल से	कानपुर	
२५ नवम्बर	कानपुर में विश्राम–		
२६ नवम्बर	कानपुर से	चौबेपुर	कानपुर से मैनपुर १६१ कि.मी.
२७ नवम्बर	चौबेपुर से	बिलहोर	
२८ नवम्बर	बिलहोर से	कनौज	
२९ नवम्बर	कनौज से	गढ़साईगंज	
३० नवम्बर	गढ़साईगंज से	छिब्रामौ	
१ दिसम्बर	छिब्रामौ से	बेवार	
२ दिसम्बर	बेवार से	मैनपुर	
३ दिसम्बर	मैनपुर से	आगरा	मैनपुर से आगरा ६७ कि.मी.

४ दिसम्बर	आगरा विश्राम	–	आगरा से वृन्दावन ६५ कि.मी.
५ दिसम्बर	आगरा विश्राम	–	
६ दिसम्बर	आगरा से	मथुरा	
७ दिसम्बर	मथुरा से	मथुरा रोड धर्मशाला	
८ दिसम्बर	सन्ध्या समय श्रीवृन्दावन धाम में प्रवेश।		

रामचन्द्रपुर से वाराणसी = ४७१ कि.मी.
वाराणसी से वृन्दावन = ६०९ कि.मी.
१०८०
(लगभग) अन्य दूरियां + १२०
१२०० कि.मी.

गांव के लोग काली मन्दिर से जब वापस आने लगे तब सभी के नेत्रों से स्वामी जी के विरह में अश्रु निकल रहे थे। इतने दिनों तक स्वामी जी का स्नेह एवं करुणा दृष्टि उन पर सदा रही। सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान स्वामी जी के पास से उन्हें मिलता था। वे उन्हें छोड़कर श्रीवृन्दावन जा रहे हैं, यदि वहाँ से वापस न आयें तो क्या होगा? इसी चिन्ता से लोग शोकाकुल हो रहे थे।

नेताजी सुभाष रोड से अग्रसर होते हुए स्वामी जी संध्या पूर्व रघुनाथपुर पहुँचे। रास्ते में कीर्तन चलता रहा। रघुनाथपुर में संध्या आरती के पश्चात् स्वामी जी ने अपनी आध्यात्मिक अनुभूति युक्त ग्रन्थ 'बॉसुरी' का पाठ किया। फिर दो घण्टे तक श्रीकृष्ण लीला गान हुआ। यहाँ स्वामी जी ने कई लोगों को दीक्षा प्रदान किया। गर्म रास्ते पर खाली पैर से चलने के कारण स्वामी जी के पैर के तलवे में बड़े-बड़े फफोले पड़ गये।

२२ अक्टूबर को प्रातः स्वामी जी ने गीता का एकादश अध्याय पाठ किया तथा प्रातः कीर्तन करने के पश्चात् रथ के साथ सभी अग्रसर हुए। स्वामी जी के पास अनिल नामक एक कुष्ठ रोगी ने दीक्षा प्राप्त किया और संकीर्तन दल के साथ वह भी वृन्दावन गया। भगवत्कृपा तथा नामसंकीर्तन के प्रभाव से वह जब वृन्दावन पहुँचा तब देखा गया कि उसके शरीर में कुष्ठ रोग के लक्षण समाप्त हो गये हैं। बाद में स्वामी जी ने चिकित्सकों से भी उसकी जाँच करवाई लेकिन रोग के सभी लक्षण समाप्त हो गये थे। स्वामी जी ने उसे कुछ विशेष नियमों का पालन करते हुए नियमित नाम-जप करने का निर्देश दिया था। उन नियमों का उसने जितने दिनों तक पालन किया, वह स्वस्थ रहा परन्तु बाद में खान-पान के अनियम से एवं अनाचार से उसके शरीर

में पुनः व्याधि का प्रकोप शुरू हो गया। व्याधिग्रस्त होने के बाद; वह पुनः स्वामी जी के पास आया एवं पश्चाताप करते हुए, उनसे क्षमा मांगी। स्वामी जी ने उसे नियमों का यथारीति पालन करने एवं नाम-जप करने का निर्देश दिया। कुछ दिनों में वह स्वस्थ हो गया। इस तरह कई बार हुआ। मनुष्य अपने प्रारब्ध कर्म वश विभिन्न कष्टों से जब अत्यन्त पीड़ित हो जाता है तब महात्माओं के शरण में आने से वह कष्टों से छुटकारा पा जाता है, परन्तु उनके निर्देशित पथ पर न चलने से वह पुनः-पुनः कष्ट पाता रहता है।

२२ अक्टूबर को रात्रि विश्राम चेलियामा में कर वहाँ से झरिया (बिहार प्रान्त) मे आ गये। यहाँ के गुरूद्वारा के प्रबन्धकों ने स्वामी जी को 'श्रीगुरूग्रन्थ साहिब जी' प्रदान किया। स्वामी जी ने उसे रथ मे स्थापित किया। उल्लेखनीय है कि गोसाँई जी के गुरूदेव स्वामी ब्रह्मानन्द परमहंस जी का शरीर पंजाब का था और वे गुरू नानक देव के भक्त थे। गोस्वामी जी भी नित्य श्रीगुरूग्रन्थ साहिब का कुछ अंश पाठ करते थे। पुरी एवं काशी के श्रीविजयकृष्ण मठ में इस ग्रन्थ का भी नित्य पाठ होता है। गोस्वामी जी कहा करते थे–**संस्कृत में श्रीमद्भागवत, हिन्दी में रामचरितमानस, बंगला में श्रीचैतन्यचरितामृत एवं पंजाबी भाषा में श्री गुरूग्रन्थ साहिब जी श्रेष्ठ भक्ति-ग्रन्थ हैं।**

झरिया में स्वामी जी के प्रिय गुरूभाई शरतचन्द्र चकवर्ती के यहाँ उस दिन विश्राम किया गया। यहाँ स्वामी जी ने पदयात्रियों को पुनः सचेत किया कि पदयात्रा के समय हमें निम्न बातों का सर्वदा ध्यान रखना चाहिए–(१) अपना कार्य स्वयं सम्पन्न करना चाहिए। (२) कोई किसी के साथ कलह या वाद-विवाद न करे। (३) किसी प्रकार की संचय बुद्धि न रखे अर्थात गोसाँई जी हमें जो कुछ भी दें, उसे हम दोनों हाथों से लुटाते हुए चलेंगे। गोसाँई जी का भंडार कभी शून्य नहीं होगा। भजन-भोजन एवं वितरण के मध्य हमारी यात्रा केवल मधुर ही नहीं होगी, इसके साथ हम निश्चिन्त मन से केवल एक ही विषय 'नाम' की ओर सर्वदा ध्यान रखेंगे–इसके आनन्द से हम वंचित न हो जाएं। (४) केवल भगवान का 'नाम' ही हमारा सम्बल (भरोसा) है। (५) किसी भी अवस्था में हम यात्रा बन्द नहीं करेंगे।

२४ अक्टूबर को झरिया से धानबाद जाते समय सभी ने देखा कि रथ में स्थित गोसाँई जी के तैलचित्र में से जैसे ज्योति की धारा निकल रही है। कई लोगों ने सोचा कि यह शायद सूर्य के प्रतिबिम्ब से प्रकट हो रही है। परन्तु जब रथ छायादार वृक्ष के नीचे से गुजरा तब भी ज्योति दिखलाई पड़ती रही। इससे उनका सन्देह दूर हो गया। इस सम्बन्ध में स्वामी जी से पूछने पर उन्होंने कहा–**''चिन्ता मत करो। मन में सन्देह या अविश्वास मत लाओ। जिन्होंने हमें पथ में निकाला है, उनक स्नेह-प्रेम और आशीर्वाद की उज्ज्वल आलोक धारा, सभी के यात्रा पथ में अभाव, विघ्न एवं**

कष्टों को दूर कर देगी। हम लोगों के अविश्वासी मन ने बार-बार परीक्षा करके देखा है कि यह ज्योति कहाँ से आ रही है। गोसाँई जी ने सभी के सन्देह को दूर कर दिया।''

नाम-संकीर्तन करते हुए जाते समय रास्ते में गाय-बैल आदि पशु अपना भोजन छोड़कर मधुर नाम-संकीर्तन का मानों आस्वादन कर रहे हैं, ऐसा दृश्य कई बार देखा गया ।

स्वामी जी को आज तेज बुखार होने से, धनबाद से थोड़ी दूर आकर धईया नामक गांव में विश्राम किया गया। अस्वस्थ होने के बाद भी स्वामी जी कीर्तन में आकर बैठ गये एवं समाधि-मग्न हो गये। काफी देर तक गहन समाधि में रहने के पश्चात् जब स्वाभाविक अवस्था में आने लगे तब गुनगुनाते हुए स्वरचित भजन गाने लगे। फिर कहने लगे–''हम सभी समान हैं कोई छोटा या बड़ा नहीं है। हम सभी भगवत्प्रेम के भिखारी हैं। हम सभी आपस मे भाई, बन्धु एवं स्वजन हैं। चलो! सभी उनके नाम का कीर्तन करते हुए वृन्दावन की तरफ चलते रहें।''

२६ अक्टूवर को प्रातः गीतापाठ एवं संकीर्तन के पश्चात् रथ सहित सभी नाम-संकीर्तन–'भजो गुरू गौरांग राधा गोविन्द ब्रह्म नारायण हरे कृष्ण राम'–करते हुए अग्रसर होने लगे।

बिहार में उस समय अकाल पडने से मध्यान्ह भोजन के समय काफी लोग जमा हो जाते थे। स्वामी जी का विशेष निर्देश था कि कोई भी व्यक्ति भूखा न जावे। साथ में जो वस्त्र कम्बल आदि रहता था उसे गरीब लोगों को बांट देते थे। रास्ते में लोग जो कुछ प्रदान करते थे सब सामान इसी तरह बांट दिया जाता था।

वृन्दावन की पदयात्रा में विभिन्न स्थानो में स्वामी जी से विभिन्न प्रकार के प्रश्न लोगों ने किया था । उनमें से कुछ प्रश्नोत्तर का यहां उल्लेख किया जा रहा है–

(१) प्रश्न :–भगवान को पाने का सहज उपाय क्या है ?

उत्तर :– भगवान ने स्वयं कहा है–जो सर्वभूतों के हितों में लगा रहता है वही उन्हें प्राप्त करता है। सभी के प्रति प्रेम भावना रहने पर भगवान के प्रति भी प्रेम होता है। एक भी प्राणी से घृणा करने पर 'उनकी' कृपा की प्राप्ति नही होगी। वे सर्वत्र हैं–अणु-परमाणु में हैं। जब सभी के साथ समान रूप से प्रेमभाव रखा जाएगा तभी वे प्रसन्न होंगे। उनके प्रसन्न होने पर उन्हें प्राप्त किया जाएगा। उनकी कृपा पाने के लिए, सभी के प्रति प्रेम भावना रखना होगा–तृण की तरह अपने को छोटा समझकर सभी की सेवा करो। सभी की सेवा के लिए जीवन उत्सर्ग करो। एकमात्र प्रेम से उन्हें प्राप्त किया जा सकता है।

(२) प्रश्न :–यह प्रेम किस तरह प्राप्त किया जाएगा?

उत्तर :– प्रेम की साधना करो । सभी को प्यार करो–सभी भगवान की सन्तान

हैं। सभी प्राणियों में 'उनका' अधिष्ठान है। सर्वभूत मे उन्हें देखने की चेष्टा करो। वे नारायण हैं--सर्वभूत में विराजित हैं। वे वासुदेव हैं–उनके मध्य में सभी हैं और सभी के भीतर वे हैं। तुममें और मुझसे क्या भेद है? तुम्हारे भीतर जो प्राण रूपी भगवान हैं, मेरे भीतर भी वे ही हैं। दोनों में अन्तर केवल घट का है। घट मध्यस्थ वायु एक ही है। इसके अतिरिक्त विभिन्न घट की वायु विभिन्न संस्कार युक्त है। घट के टूट जाने पर घट की वायु संस्कार सहित बाहर होती है। बाद मे संस्कार या गन्ध दूर होने पर वह विशुद्ध वायु, बाहर की विशुद्ध वायु में लीन हो जाती है। घट के भीतर स्थित आकाश महाकाश मे मिल जाता है। हम सभी एक हैं । छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच सब चिन्ता छोडकर एकमात्र अपने इष्ट मूर्ति की चिन्ता करो। सर्वत्र मेरे ठाकुर जी हैं–इस प्रकार की चिन्ता करो। देखोगे, भेद बुद्धि दूर हो जाएगी। भेद-बुद्धि दूर होने से प्रेमभाव आएगा। 'प्रेम'–प्यार का चरम परिणाम है।

(३) प्रश्न :– आप सभी का आलिंगन करते हैं। इससे आपके मन में किसी प्रकार की दुविधा या संकोच, क्या नहीं होता ?

उत्तर :– मेरा इस तरह कोई संस्कार नहीं है। मेरे निकट ऊँच-नीच, छोटा-बडा अथवा जाति भेद कुछ भी नहीं है। मैं किसी को भी अपनी अपेक्षा छोटा नहीं सोच सकता। मैं देखता हूँ–मेरे इष्ट-प्रभु-गुरूजी सभी के ह्रदय में विराजित हैं। इसी कारण मैं सभी को आलिंगन करता हूँ और प्रणाम करता हूँ–हे मेरे गुरूजी! तुम मेरे ह्रदय मे रहो !! मैं सभी का सेवक हूँ। सभी की सेवा करना ही मेरा कार्य है। मेरा स्थान सबसे नीचे है। सेवक का स्थान चरणों के नीचे रहता हैं। अखिल विश्व में मेरे गुरूजी विभिन्न रूप एवं विभिन्न भावना में विराजित हैं। मैं सभी के चरणों के नीचे बैठकर उनकी सेवा कर सकूँ–यही प्रार्थना है।

(४) प्रश्न :–आप इस प्रकार लम्बी पदयात्रा में क्यों जा रहे हैं ?

उत्तर :– पथ में कितने हजारों बन्धुओं से मुलाकात होगी–कितने लोगों का स्पर्श प्राप्त कर सकूँगा–कितने प्रकार की अवस्था के साथ परिचय होगा। नाम करूँगा एवं नाम कराऊँगा–नाम सुनूँगा एवं नाम सुनाऊँगा। पथ को ही अपना घर समझेंगे। घर को पथ मे ले आयेंगे। पथ के साथ मित्रता होने पर ही कल्याण होगा। देखो! कितने लोगों से परिचय हो रहा है–कितने घरों में हमें आश्रय मिल रहा है।

(५) प्रश्न :–क्या ईश्वर अनेक हैं? हिन्दू लोग विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना क्यों करते है ?

उत्तर :– शिव, शक्ति, विष्णु, सूर्य, गणपति, दुर्गा-काली आदि सभी एक ब्रह्म के विभिन्न रूप हैं। जिस प्रकार एक ही अग्नि विभिन्न स्थानों में, विभिन्न रूप में दिखलाई पड़ती है । जिस प्रकार चूल्हे की अग्नि भी अग्नि है एवं यज्ञ की अग्नि भी अग्नि है। विद्युत या बिजली के भीतर जो अग्नि प्रवाह है–वही जल के भीतर

बड़वानल है–प्रदीप की शिखा में भी वही अग्नि है–सभी एक ही अग्नि के विभिन्न रूप हैं। एक ही ब्रह्म, इसी प्रकार असंख्य रूप के मध्य दिखलाई पड़ते हैं। वे एक-अद्वैत एवं निराकार होकर भी विभिन्न रूप के मध्य प्रकाशित हैं। तुम लोग जिस प्रकार या भावना से उसे देखना चाहोगे या जिस रूप में उन्हें देखना चाहोगे–वे उसी रूप में तुम्हारे निकट प्रकाशित होंगे।

(६) एक दिन विभिन्न लोगों के कुछ प्रश्नो के उत्तर में स्वामी जी ने कहा–

(क) मैं जाति को नहीं चाहता–मुझे मनुष्य चाहिए। दिखावटी सौजन्यता (प्रेमभाव) नहीं चाहता–मुझे आन्तरिक (प्राणों का) स्पर्श चाहिए। मैं बाह्य आडम्बर नहीं चाहता–मुझे मधुर प्रेम का आस्वादन चाहिए ।

(ख) जो दीनहीन, कंगाल, पतित, तापित एवं लांच्छित हैं–जिन्हें कोई नहीं चाहता–उन्हें प्राण देकर भी सेवा कर सकूँ–ऐसी प्रार्थना है। मैं समाज के उच्च स्थान में बैठकर पूजा लेना नहीं चाहता–सभी के पैरों के नीचे बैठकर सेवा करना चाहता हूँ।

(ग) मैं जनेऊ के अहंकार से गर्वित, किया-कलाप से हीन, अनाचारी एवं जन्मगत् ब्राह्मण के अहंकार से युक्त घमंडी ब्राह्मण की अपेक्षा भजनशील-पथवासी चाण्डाल को उच्च स्थान देता हूँ। मेरे शिष्य-शिष्यागण मनुष्य मात्र को सम्मान दें। जो सच्ची मानवता से युक्त हैं, वैसे लोगों के साथ ही सम्बन्ध स्थापित करें–चाहे वह किसी भी जाति का हो। जन्मगत जाति को मैं स्वीकार नहीं करता। मैं जाति को लेकर भीड़ जमाना नहीं चाहता। सच्ची मानवता से युक्त लोगों के साथ रहना चाहता हूँ। साधक चण्डीदास ने कहा है–'सवार ऊपर मानुष सत्य ताहार ऊपरे नाई'–मैं भी इसी सत्य को स्वीकार करता हूँ। (इस प्राचीन बंगला पद का अर्थ है–सभी के ऊपर मनुष्य सत्य है–उसके ऊपर कुछ भी नहीं है। मनुष्य का सम्मान करो।) आज सच्चे ब्राह्मणों की कमी हो गयी है। सच्चे शास्त्रज्ञ, धर्मज्ञ एवं त्यागी ब्राह्मणों के रहने से देश की इस तरह दुर्गति नहीं होती। ब्राह्मण वंश में जन्म लेकर अनेक लोग, शूद्रों से भी अधम हैं एवं शूद्र वंश में जन्म लेकर अनेक लोग, ब्राह्मण हैं । मैं, शूद्र वंश में जन्म लेने वाले एक व्यक्ति की स्वर्ण आभा युक्त उपवीत (जनेऊ) देखकर आश्चर्यचकित हो गया था। श्रीगुरूजी ने मेरे सभी संस्कारों को नष्ट कर दिया है। मैं किसी व्यक्ति को देखते ही समझ लेता हूँ कि वह ब्राह्मण है या शूद्र।

गोसाँई जी ने जिन्हें भी दीक्षा प्रदान की है सभी जाति के लोगों को उन्होंने प्रणव (ॐ) युक्त नाम दिया है। उनके शिष्य परम्परा के आचार्यों ने भी प्रणव (ॐ) युक्त नाम दिया है। हम भी प्रणव युक्त नाम सवको देते हैं। वास्तव में 'प्रणव' को छोड़कर मंत्र जप करने पर, उस मंत्र जप के द्वारा शक्ति के उत्थान में सहायता नही मिलती है। प्रणव युक्त 'नाम' शक्ति को मूलाधार से आज्ञा चक्र में ले जाने में सहायता करती है। वहाँ से एक अज्ञात शक्ति द्वारा वह शक्ति आज्ञा चक्रसे सहस्त्रार में पहुँचती है।

(घ) गृहस्थ आश्रम को मैं सर्वश्रेष्ठ आश्रम समझता हूँ। संसार को त्यागकर चले जाने से संसार तुम्हें छोड़ देगा—ऐसा नहीं है। दुर्गा शप्तशती में सूरथ और समाधि, राज-ऐश्वर्य छोडकर वन में चले जाने पर भी संसार को न भूल सके। मन को त्याग के रंग से न रंगवा कर केवल कपडा रंगवाने से क्या होगा? राजर्षि जनक गृहस्थ थे। बडे-बड़े ऋषि लोग उनके पास ज्ञान प्राप्त करने आते थे। वेद-उपनिषद् आदि शास्त्रों को संन्यासी ने नहीं लिखा। आर्य ऋषियों ने गृहस्थ आश्रम ग्रहण किया था। उन लोगों ने जो सम्पद् प्रदान किया है, उसका भाष्य करते हुए शंकराचार्य जैसे संन्यासी को भी कठोर परिश्रम करना पड़ा था। तुम लोग गृहस्थ हो—संसार को भगवान का संसार समझकर एवं अपने को उनका सेवक समझकर गृहस्थ धर्म का पालन करो। सत्य का पालन करो—वाक्य, कर्म एवं चिन्ता द्वारा सत्य का अनुसरण करो। सब प्राणियों के प्रति दया भाव रखो । गुरूजनों के प्रति श्रद्धा रखो। संसार के सम्बन्धों में भगवत् सम्बन्ध स्थापन करो अर्थात् पिता, पुत्र, स्त्री आदि के रूप में वे ही हैं, मैं 'उनकी' सेवा कर रहा हूँ—इस भावना से कार्य करो। ब्रह्मचर्य का पालन करो। सदाचार का पालन करते हुए सभी धर्म के महात्माओं के प्रति श्रद्धा भावना रखो। कभी भी परनिन्दा मत करो। किसी को भी उद्वेग मत दो । उच्छिष्ट (जूठा) भोजन मत करो, शाकाहारी भोजन करो। साम्प्रदायिकता का वर्जन करो। अपने को सेवक समझकर सब कार्य करो—तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा।

आध्यात्मिक शक्ति के निकट जड़ भौतिक शक्ति पराजित है। वर्तमान में वैज्ञानिक अनेक प्रकार के यन्त्रों द्वारा, मानव शरीर के अंग-प्रत्यंग के विभिन्न अंशों का, चित्र ले सकते हैं परन्तु वह केवल स्थूल अंश का चित्र है। मेरूदण्ड के भीतर इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना आदि एवं सुषुम्ना के भीतर सूक्ष्मातिसुक्ष्म अंशों के सम्बन्ध में उनकी कुछ भी अवधारणा नहीं है। परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान सम्पन्न योगी एवं ऋषियों ने सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाड़ी, शिरा-उपशिराओं आदि सूक्ष्म अंशो के सम्बन्ध में एवं उनके कार्य के सम्बन्ध में सम्यक विवरण दिया है एवं आज भी दे रहे हैं।

(ङ) सुख एवं दुःख का कोई परिमाण एवं सीमा नही है। मन में सोचने पर दुःख या सुख का अनुभव होता है। एक ही वस्तु किसी के लिए सुख का कारण है तो दूसरे के लिए दुःख का कारण है। मन को इस तरह प्रस्तुत करो जिससे दुःख के समय उद्वेग न हो एवं सुख के समय अत्यन्त प्रफुल्लित न हो। तुम गृहस्थ हो। माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री-पुत्र आदि को लेकर संसार में हो। जिन लोगों की सेवा का भार तुमने ग्रहण किया है—'भगवान की सेवा' ज्ञान से उनकी सेवा करो। भगवान सर्वत्र हैं—सभी के भीतर हैं—अणु-परमाणु में हैं। सभी के भीतर उन्हें देखना ही वास्तविक ज्ञान है—सभी के भीतर उनकी सेवा करना ही वास्तविक रूप में सेवा है। अपने संसार को भगवान का संसार मानकर एवं अपने को उनके संसार का सच्चा

सेवक समझकर अपने कर्त्तव्य का पालन करते रहो।

प्रातः शय्या त्यागकर श्रीभगवान के चरणों में प्रणाम निवेदन करते हुए कहो—हे प्रभु! तुम्हारा नाम लेकर तुम्हारे संसार में, तुम्हारे सेवाकार्य मे नियुक्त हो रहा हूँ। संसार भी तुम्हारा है, संसार की सेवा भी तुम्हारी है—तुम जो करवाओगे, वही करूँगा। रात्रि को शय्या ग्रहण करने के पूर्व 'उन्हें' प्रणाम करके कहना— प्रभु! सारा दिन जो कुछ भी किया—जो कुछ भी भला-बुरा किया—सभी तुम्हारा है। कर्म भी तुम्हारा है, कर्मफल भी तुम्हारा है—सभी तुम ग्रहण करो। चिन्ता मत करो, तुम्हारे सभी दुःखो का अवसान अवश्य होगा।

(च) भगवान के ऊपर निर्भरता एवं विश्वास ही श्रेष्ठ धर्म है। कहा गया है—

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।।

जिसका जिसमें जितना विश्वास है—उसको उस से उतना फायदा होता है। अतएव विश्वास ही मूल वस्तु है, परन्तु निर्भरता का अर्थ जड़त्व नहीं है। जिसकी जैसी कार्य करने की क्षमता है, उसे तदानुरूप कर्म करना होगा। कार्यालय के अधिकारी एवं अधिनस्थ कर्मचारी का कर्म एक नही है, परन्तु कर्म दोनो को करना होगा। भगवान ने जिसे जो कर्म देकर भेजा है, उसे 'उन' पर विश्वास रखकर वह कर्म अनासक्त भावना से करना होगा—यही कर्म योग है। प्रातःकाल शय्या त्याग के पूर्व कहो—

जानामि धम न च मे प्रवृत्तिः जानाम्य धम न च मे निवृत्तिः।
त्वया हृषिकेश हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि।।

पुनः रात्रि में शयन के समय प्रार्थना करना—हे प्रभु! सारा दिन जो कुछ भी कर्म मैंने किया है—सब कुछ तुम्हें अर्पण कर रहा हूँ। अच्छा भी तुम्हारा, बुरा भी तुम्हारा। इस प्रकार के आत्मसमर्पण द्वारा योगियों ने भगवान को प्राप्त किया है।

(छ) ब्रह्मचर्य पालन आज के युग मे स्वप्नवत् प्रतीत होता है। इसका पुनः प्रवर्तन अत्यन्त आवश्यक है। कलियुग मे नाम-जप ही प्रमुख साधन है। सम्पूर्ण उपनिषद् और भागवत् का मनन करने पर, दो सार वस्तु मिलती है—नाम और प्रणाम। इस महान् दो अस्त्रों की सहायता से तुम इस कलियुग को जय कर सकते हो। You can conquer the world with the help of these weapons. नाम से सभी विघ्न कट जाता है और प्रणाम से—मस्तक नत करने से सभी प्रकार का अहं (अहंकार) चूर्ण हो जाता है। जितने दिनों तक अहंकार रहेगा—ईश्वर से दूर रहोगे। तुम्हारा धन-ऐश्वर्य-प्रतिष्ठा देखकर लोग तुमसे डर सकते है, लेकिन श्रद्धा या भक्ति नहीं कर सकते। दृष्टांत स्वरूप दो उदाहरण यहां दिया जा रहा है—

(i) अफिका में एक व्यक्ति ने प्रतिज्ञा की कि जब तक महात्मा गांधी की हत्या

न कर लूँगा तब तक कुछ भी भोजन नहीं करूँगा। इसे सुनकर गांधीजी स्वयं उस व्यक्ति के पास पहुँचे एवं कहा–'मित्र, मेरे लिए तुम्हें कितना कष्ट हो रहा है। तुम जब तक मेरी हत्या न कर लोगे तब तक भोजन नहीं करोगे–ऐसी तुमने प्रतिज्ञा ली है। अब मेरी हत्या कर तुम इस कष्ट से मुक्त हो जाओ।' इस प्रकार की उदारता देखकर उस दुष्ट व्यक्ति का हृदय दया से भर गया। उसकी पाशविक प्रवृत्ति में परिवर्तन हो गया। उसने अपनी गलती के लिए क्षमा मांगी एवं गांधी जी का परम मित्र बन गया।

(ii) लालाबाबू बंगाल के बहुत धनी मालगुजार थे। एक दिन संध्या के समय वे नदी के किनारे बैठे हुए थे। उस समय एक धोबी की लड़की अपने निद्रित पिता को धक्का देते हुए कहने लगी–'संध्या हो गई है अब और कितनी देर सोते रहोगे।' इन शब्दों को सुनकर लालाबाबू की सुप्त चेतना जागृत हो गयी। अभी तक वे भोग विलास में मस्त थे। इन शब्दों से उनका आत्मबल प्रबल हो गया। वे सोचने लगे–'मेरी भी जीवन-संध्या समाप्त होने वाली है, अभी तक मैंने क्या किया ? उनके हृदय में तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया एवं वे अपना सब कुछ छोड़कर वृन्दावन चले गये। वहाँ उन्होंने एक सिद्धमहात्मा के निकट दीक्षा प्रार्थना की। महात्मा जी ने कहा कि पहले प्रत्येक घर से भिक्षा मांगकर लाओ फिर दीक्षा होगी। लालाबाबू सभी लोगों से भिक्षा मांगी परन्तु अपने एक शत्रु सेठजी के पास वे नहीं गये। महात्मा जी ने उन्हें दीक्षा देने से इन्कार किया और कहा कि जब तक सेठजी से भिक्षा न मांग लोगे, दीक्षा नहीं मिलेगी। अन्त में लालाबाबू अपना अभिमान त्यागकर उस सेठजी के पास पहुँचे एवं भिक्षा मांगी। लालाबाबू की दीनता को देखकर सेठजी का हृदय परिवर्तित हो गया। उन्होंने शत्रुता भूलकर लालाबाबू को प्रणाम किया।

उपरोक्त दृष्टांत देकर स्वामी जी ने कहा–'अभिमान त्यागकर सरल भाव से ईश्वर के निकट क्षमा मांगी जाये तो वे सन्तुष्ट होकर सभी अपराध माफ कर देते हैं। ईसा मसीह ने कहा है– 'Embrace everybody with a loving face.' **मैं भी दृढ़तापूर्वक कहता हूँ कि ''तुम यदि सभी को प्रेमभाव से आलिंगन कर सको तो ईश्वर दर्शन अवश्य होगा।''**

(ज) **एक दिन भावमग्न अवस्था में स्वामी जी कहने लगे–'हे प्रभु! हृदय में तुम्हें लेकर चल रहा हूँ। तुम्हारी वाणी का श्रवण करते हुए मैं अग्रसर हो रहा हूँ। इस यात्रा की समाप्ति कब होगी? जो लोग साथ में जा रहे है सभी तुम्हारे प्रिय हैं–इसे मैं जानता हूँ, तुम भी जानते हो। इनका तुम उद्धार करो। मेरे जन्म-जन्मान्तर की यदि कोई साधना हो तो उसके विनिमय में तुम उन्हें अपनी गोद में शरण दो। ये लोग नाम करते हुए अग्रसर हो रहे है और मैं इस नाम में शक्ति संचार करते हुए अग्रसर हो रहा हूँ। इस नाम की ध्वनि को जो सुनेगा उसे शक्ति मिलेगी। यह तो तुम्हारा ही निर्देश है। साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व हुई लीला की आज पुनरावृत्ति हो रही**

है।' उल्लेखनीय है जिन लोगों ने श्री चैतन्य महाप्रभु का दर्शन किया था अथवा उनके संकीर्तन की ध्वनि का श्रवण किया था उन्होंने जन्मान्तर मे सद्गुरु के निकट यथा समय दीक्षा प्राप्त की थी। जिस प्रकार दण्डक-वनवासी ऋषियों ने जब श्रीरामचन्द्र जी से भगवत्प्रेम प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की थी तब उनकी प्रार्थना श्रीकृष्ण के समय पूर्ण हुई। वे गोपीरूप मे आये और भगवत्प्रेम प्राप्त किया।

सद्गुरू श्री विजयकृष्ण गोस्वामी ने कहा था–''**तुम लोगों ने जो साधना प्राप्त की है वह देव दुर्लभ वस्तु है। ईश्वर की विशेष कृपा बिना इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। श्री चैतन्य महाप्रभु के समय कई लोग इस साधना को प्राप्त करने के लिए प्रार्थी थे, परन्तु केवल चार अन्तरंग लोगों को उन्होंने यह साधना प्रदान की । उस समय जो लोग प्रार्थी थे तथा जिन्हें यह साधना नही मिली थी, इस बार केवल उन्हें ही दीक्षा प्रदान की गई है। अतः जिन्हें यह दीक्षा प्राप्त हुई है वे सभी महाप्रभु के समय उनके संकीर्तन में उपस्थित थे।**'' [द्र:– श्रीश्री विजयकृष्ण कथामृत (हिन्दी) पृ ८५, प्रकाशक–श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त सघ, पो. रघुनाथपुर, जिला–पुरूलिया (प. बंगाल)]

सद्गुरू श्री विजयकृष्ण जी ने और भी कहा था–''**आज भी श्री चैतन्य महाप्रभु की लीला चल रही है। कोई-कोई भाग्यवान व्यक्ति उसे देखने का सौभाग्य प्राप्त कर सकता है। गौरांग महाप्रभु कलियुग में लोगों का उद्धार करने का भार लेकर आये थे। जब तक कलियुग रहेगा तब तक उनका कार्य चलता रहेगा। आवेश, आविर्भाव और प्रकाश–इन तीन प्रकार की भावनाओं से उनकी लीला चल रही है और भविष्य में चलती रहेगी। उनकी लीला समाप्त नही हुई है। उस समय उन्होंने थोड़ा सा दर्शन दिया एवं चले गये। अभी देखो, विदेशों में ईसाई लोग भी मृदंग बजा रहे हैं। भविष्य में ऐसा समय आएगा जब सारा विश्व मृदंगमय हो जायेगा।**'' यह बात गोस्वामी जी ने सौ वर्ष पूर्व कही थी। नाम-संकीर्तन का प्रचार आज दिनों-दिन बढता जा रहा है। समय पर सारे विश्व के लोग इसे ग्रहण करेंगे। (द्र:–श्रीश्रीविजयकृष्ण कथामृत, पृ २३९)

भावावस्था में स्वामी जी ने जो बातें कही थी उससे उनकी पदयात्रा का कुछ प्रमुख उद्देश्य प्रकट हो जाता है। पदयात्रा के समय एक दिन यात्रियों ने अनावश्यक काफी देरी कर दी। उस समय स्वागी जी ने उन्हें सावधान करते हुए कहा था–''**हम लोगों की वृन्दावन पदयात्रा को एक साधारण विलास-भ्रमण समझना गलत होगा। इस पदयात्रा को मैं परम साधन मानता हूँ । हम पथ में चलेंगे–पथ में रहेंगे–पथ में ही विश्राम करेंगे। पदयात्रा के समय दिन-रात, चौबीस घंटे हमारा साधन काल रहेगा। नियमों का उल्लंघन करने पर हमारा अपराध होगा–ऐसा मैं मानता हूँ।**'' स्वामी जी की वृन्दावन पदयात्रा श्री चैतन्य महांप्रभु द्वारा कथित नाम प्रचार ही है।

पदयात्रा के समय रासपूर्णिमा के दिन स्वामी जी ने कहा था–''यह पवित्र रासपूर्णिमा तिथि हमें, गोपियों का श्रीकृष्ण के चरणों में आत्मसमर्पण की कथा,

स्मरण करा देती है। सब छोड़कर उन्हें प्राप्त करने की व्याकुल आकांक्षा के जागृत होने पर ही 'उन्हें' प्राप्त किया जा सकेगा। प्रेमास्पद को, नित्य को पाने के लिए अनित्य को छोडना ही पड़ेगा। श्रेय को पाने के लिए सभी प्रकार के बन्धनों को छिन्न करना होगा। रासपूर्णिमा के दिन उनकी वंशी ध्वनि से अज्ञात फूल भी प्रस्फुटित होकर सुगन्ध का वितरण करते थे। इस वंशी ध्वनि को सुनने के लिए १६ आना (पूर्ण) समर्पण करना होगा। एक आना भी समर्पण में कमी होने पर वह सुनाई नहीं पड़ेगी। 'उनके' निकट जाने के लिए–उन्हें पाने के लिए हमें सब कुछ छोड़ना होगा। हमारे सुख-दुःख, यश-अपयश, अच्छा-बुरा सभी कुछ 'उन्हें' अर्पण करना होगा। वृन्दावन पदयात्रियों! तुम लोग अपने गृहस्थी के कार्यों को छोड़कर किस उद्देश्य से अग्रसर हो रहे हो? उन्हें पाने के लिए ही तुम अग्रसर हो रहे हो! याद रखना होगा कि गोपियाँ किसी प्रकार के भी मोह में आबद्ध नहीं थी । पति, पुत्र, घर, अर्थ, भोग-विलास, मान-अपमान, शुभाशुभ आदि किसी भी प्रकार का बंधन उनमे नहीं था। उनका चित्त पूर्ण रूपेण श्रीकष्ण के चरणों में अर्पित था । इस कारण उनका किसी भी ओर न आकर्षण था और न ही उन्हें निन्दा-प्रशंसा की परवाह थी। जिन्हें प्राप्त करने से सभी कुछ मिलेगा, उस श्रीकृष्ण के चरणों मे उन्होने पूर्णरूपेण आत्मसमर्पण किया था। पूर्ण आत्मसमर्पण ही गोपियो के लिये श्रीकृष्ण प्राप्ति का प्रमुख कारण है। गोपियों का अपना पूर्व संस्कार था कि श्रीकृष्ण भगवान् हैं। गोपियाँ, पूर्व जन्म में ऋषि थीं, इसी कारण उनका इस प्रकार का संस्कार था।''

स्वामी जी ने उपरोक्त कथन को स्पष्ट करते हुए कहा–''देखो! यादवगण श्रीकृष्ण को भगवान नहीं मानते थे। वे समझते थे कि श्रीकृष्ण उनके घर का एक सदस्य हैं। यह अद्‌भुत लीला है कि घर के लोग उन्हें न पहचान सके, परन्तु गोपियों ने श्रीकृष्ण को अपना समझा एवं अपने प्राणों की अपेक्षा 'उनके' प्रति अधिक प्रेमभाव था। 'अभिमान', श्रीकृष्ण लाभ के पथ में परम शत्रु है। इस अभिमान को त्यागकर श्रीकृष्ण में पूर्ण आत्मसमर्पण करके ही 'उन्हें' प्राप्त किया जा सकेगा।''

(७) प्रश्न– पूर्ण निर्भरता किस प्रकार प्राप्त होती है ?

उत्तरः– अहं भावना आसानी से नहीं जाती। हम निर्भर नहीं कर सकते एवं उनके ऊपर निर्भर कर सब कुछ अर्पण नहीं कर सकते। इसी कारण हम जिस वस्तु को पकड़कर रखना चाहते हैं वही चली जाती है। साधना करते हुए कमशः अहं भावना दूर होने पर ही हम निर्भरता के ऊपर स्थित हो सकेंगे । जब भी तुम मेरे ऊपर निर्भर कर सकोगे तब मेरी शक्ति भी अज्ञात रूप से तुम पर कार्य करेगी एवं धीरे-धीरे तुम्हारी अपनी प्रचेष्टा समाप्त होगी। साधना में प्रवेश के पूर्व जो अहं भावना रहती है, साधना करते-करते कमशः वह कम होती है और निर्भरता बढ़ती है। निर्भरता आने पर एक अज्ञात शक्ति की अनुभूति, साधक प्राप्त करता है। फलतः अपने प्रचेष्टा की

समाप्ति होने पर, एक नया जीवन प्रारम्भ होता है। परन्तु इसके पश्चात् एक कठिन अवस्था आती है। साधक के मन में आत्मतुष्टि आती है कि मैंने कुछ शक्ति प्राप्त किया है। इसके फलस्वरूप साधक के मन मे पुनः अन्धकार छा जाता है। फिर साधक का मन आनन्द एवं विषाद के मध्य फँस जाता है। एक तरफ कुछ शक्ति प्राप्ति का आनन्द और दूसरी तरफ अहंकार के प्रभाव से विषाद रूपी अन्धकार प्रकट होता है। इस प्रकार के आनन्द एवं विषाद के मध्य जब साधक किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर, इस अवस्था से मुक्त होने के लिए कातर भाव से प्रार्थना करता है तब श्री गुरू उसका, सारथी के रूप में, भार ग्रहण करते हैं। साधक अपने हृदय मे उनकी आश्वासन भरी वाणी सुनता है। श्री गुरू उसे सांत्वना देते हुए कहते हैं–हे पुत्र ! तुम विषादग्रस्त मत होना। तुम्हारे सामने अमृतमय जगत् है–तुम्हे वही पहुँचना है। तुम मेरे निकट आत्मसमर्पण करो। तुमने तो देखा है कि अपनी चेष्टा द्वारा तुम कुछ भी नही कर सके। साधक के अन्तर्जगत् मे उस समय भगवत्‌गीता की वाणी सुनाई देती है–मेरी ही पूजा करो, मेरा ही भजन करो, मुझे ही नमस्कार करो। मुझे अपने कर्म-अकर्म सभी का कर्मफल अर्पण करते हुए अग्रसर हो–तुम मुझे प्राप्त करोगे।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरू।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।। (गीता ९-३४ श्लोक)

इस निर्देश का श्रवण करने से साधक के अन्तःकरण में जो प्रतिक्रिया होती है, उसके प्रभाव से उसके शरीर का आणविक परिवर्तन प्रारम्भ होता है एवं क्रमशः उसका शरीर भगवत्कृपा को धारण करने के अनुकूल, 'भागवती शरीर' प्राप्त करता है। इसके पश्चात् साधक के अपने स्वतंत्र ज्ञान की विलुप्ति होती है। उस समय उसकी हार्दिक पुकार निकलती है–"हे करूणामय स्वामी! तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो!!"इस आन्तरिक प्रार्थना के स्पन्दन से एवं परिपूर्ण निर्भरता के फलस्वरूप साधक के शरीर और मन में जो शक्ति प्रकाशित होती है, उस शक्ति की क्रिया क्रमशः सभी अवस्थाओ में उसे निर्विकार बना देती है। उस समय वह सदानन्दमय अवस्था प्राप्त करता है। फिर उसका कर्म-अकर्म कुछ भी नहीं रहता–सभी ब्रह्मकर्म हो जाता है। तब अपना-पराया, जाति आदि की भावना लुप्त हो जाती है। उसके लिए सभी अपना हो जाता है। इस अवस्था में साधक ब्रह्म मे स्थिति लाभ करता है। कर्म के मध्य रहकर भी वह निर्लिप्त रहता है–संसार के भीतर रहकर भी वह जीवन्मुक्त संन्यासी है। साधक जब इस प्रकार की जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त करता है तब उसके मन का विलय होता है। अर्थात कोई एक विशेष विषय भोग के मध्य वह लिप्त नहीं हो सकता। 'मन' समग्र विश्व के अणु-परमाणु के मध्य विस्तृत होकर सृष्टि के मध्य अपने को भूल जाता है। स्रष्टा एवं सृष्टि एक है–ऐसी अनुभूति को प्राप्त कर साधक, भगवान की लीला का आस्वादन कर धन्य हो जाता है। वह सर्वत्र भगवान् की मधुर लीला का दर्शन करता

है। साधक इस लीला के मध्य अपने अस्तित्व को क्रमशः विलीन होता हुआ देखकर, एक अद्भुत मनोरम अनुभूति प्राप्त करता है। इस अवस्था में साधक के पूर्व संस्कारों की विलुप्ति होती है एवं कर्मफल के बन्धन समाप्त हो जाते हैं। वास्तव में यही 'परमहंस' की अवस्था है। उसके समक्ष सम्पूर्ण विश्व ब्रह्ममय हो जाता है। साधक-जीवन में इस अवस्था को प्राप्त करने के पूर्व क्रमशः अनेक अवस्थाओं से होकर गुजरना पडता है। यात्रापथ में उत्थान-पतन तो अवश्य है परन्तु इसमें आनन्दप्रद् बात यह है कि साधना के पथ मे किसी कारण-वश अग्रगति बन्द होने पर, सद्गुरू की कृपा से साधक क़ा पतन नही होगा। गति जहाँ रूक जावे, वहाँ साधक को उसके कर्म जनित फल का भोग कराते हुए, गुरूदेव उसे दूसरी अवस्था मे ले जाने के लिए आवश्यक शक्ति संचार करते हैं। उसके लिए हमारे भोग का दस आना अंश श्री गुरू को ग्रहण करना पडता है। हम वृन्दावन के पथ मे अग्रसर हो रहे हैं, श्री गुरू हमारे हृदय मे रहकर हमे परिचालित कर रहे हैं—इसे हम विस्मृत न करे। हम अपना सब कुछ उन्हें अर्पण करते हुए, शीघ्रतापूर्वक अग्रसर हो सकें। हमारे जीवन में उनकी मंगलमय इच्छा पूर्ण हो!! —ऐसी प्रार्थना है।

(८) प्रश्न—देश का कल्याण किस प्रकार होगा ?

उत्तर:– जितने दिनो तक सम-प्राणता (समान भावना) न आवे, सभी एक-दूसरे को प्रेम न कर सके तब तक देश का कल्याण नहीं होगा । जब अखिल विश्व ब्रह्ममय हो जाएगा—ब्रह्मानन्द रस पान करेगा—तभी पृथ्वी आनन्द से भर जाएगी। तभी वास्तविक कल्याण होगा। यह आनन्दरस सभी को दे सकूँ—यही मेरी साधना है। मेरे समक्ष ब्राह्मण-शूद्र का व्यवधान (अन्तर) नही है। मैं, दोनों को भिन्न सोच भी नहीं सकता। एक परमात्मा का प्रकाश विभिन्न घटों में, विभिन्न भाव से हो रहा है। मैं किसे शूद्र कहूँ? किसे छोटा कहूँ ? सभी मेरे लिए श्रेष्ठ आभूषण हैं।

(९) प्रश्नः—लक्ष्य की प्राप्ति किस प्रकार होगी ?

उत्तरः— सभी अवस्थाओं में, धैर्य नष्ट न हो जाए इस तरफ विशेष ध्यान रखना होगा। याद रखना होगा कि हम आनन्द प्राप्त करने के लिए, पथिक हैं। हम आनन्द करते हुए जाएंगे एवं आनन्द लोक पहुँचेंगे। हम लोगों का मन, शिशु जैसा निर्मल व सरल रहे! —यह मेरा निवेदन है।

हम 'नाम' करते हुए पथ में चलेंगे। यहाँ यदि हम नियमित आसन में न बैठ सके तो कोई हानि नहीं होगी। हम तो यहाँ सर्वदा 'नाम' स्मरण करते हुए अग्रसर हो रहे हैं। शयन-भ्रमण-विश्राम में, 'नाम' ही हमारा मित्र है। नाम करते-करते नाम में रूचि आएगी। क्रमशः, सर्वदा नामामृत पान करने की प्रबल आकांक्षा जागृत होगी। उस समय मन, नाम-जप को छोड़ नहीं सकेगा। 'नाम' करते-करते भोग कट जाएंगे। गुरूदेव भोग को, भुगताकर समाप्त करते हैं। गुरूजी किसे, किस अवस्था के भीतर

से ले जाकर, किस तरह उसका भोग एवं कर्म समाप्त कर रहे हैं तथा कितने प्रकार की परिक्षाओं के भीतर से ले जाकर—काम आदि रिपु को समाप्त कर रहे हैं, यह हम कह नहीं सकते। गुरूशक्ति भगवत्शक्ति है। उस शक्ति के स्पर्श से सभी कामना-वासना, अहंकार-आडम्बर दूर हो जाएगा। कई बार क्षोभ, विरूद्ध-भावना, अविश्वास यात्रापथ मे प्रकट होगा, परन्तु चिन्ता मत करो—यह सब क्षणिक रहेगा। सद्गुरू के आश्रित लोग विभिन्न घात-प्रतिघात, विश्वास-अविश्वास, भोग-दुर्भोग के मध्य, पुनः श्री गुरू के निकट अवश्य पहुँचेंगे।

जो सद्गुरू आश्रित हैं, वे तीन जन्मों में निश्चय ही मुक्त हो जाएंगे। इसलिए चिन्ता का कोई कारण नहीं है। गोसाँई जी के चरणों में आत्मसमर्पण करो। वे गुरू हैं—हम तुम्हारे सेवक हैं। हम जिससे ह्रदय से कह सके—''तुम्हारी इच्छा ही पूर्ण हो! हे करूणामय स्वामी !!''—यही प्रार्थना है।

(१०) प्रश्नः—समाज की उन्नति किस प्रकार होगी?

उत्तरः— वर्तमान समाज में नैतिक चरित्र सम्पूर्ण ढीला पड गया है। आज सबसे अधिक आवश्यक है— शिशु अवस्था से ही चरित्र गठन एवं जन-समाज के नैतिक चरित्र का उत्थान। आजकल साधुओं को निर्जन में साधना की आवश्यकता नहीं है। उनकी साधन स्थली जन-समाज के विस्तृत क्षेत्र मे हो। इस विस्तृत क्षेत्र मे आकर वे अत्याचारित, पीडित, शोषित, उपेक्षित जन-साधारण को प्रेमभाव से अपनी गोद में उठा ले। किसी भी व्यक्ति को अस्पृश्य कहकर घृणा करना—मैं महापातक समझता हूँ। समाज को आज मानव के उत्थान के लिए उदार होना होगा। 'नाम' एवं प्रेम वितरण करतें हुए सभी के मध्य प्रेम, प्रीति एवं स्नेहभाव की प्रतिष्ठा आवश्यक है। मेरा धर्म—वर्जन नहो है, मेरा धर्म—ग्रहण करना है। मैं सभी के पाप-ताप, दुःख-दर्द को ग्रहण करने के लिए सर्वदा प्रस्तुत हूँ। सभी धर्म मेरा धर्म है—सभी वर्ण या जाति मेरा वर्ण है। सभी समाज मेरा समाज है—सभी सम्प्रदाय मेरा सम्प्रदाय है। मैं सभी का हूँ एवं सभी मेरे हैं। मेरे इस प्रेम की कोई चिन्हित सीमा नहीं है। कोई भी कर्म मेरे समक्ष छोटा नहो है। मैंने अपने जीवन में सभी तरह के छोटे कर्म करते हुए, सभी सम्प्रदाय के लोगों के कष्टों को अनुभव किया है। किस तरह उनके ह्रदय का कष्ट दूर हो सके, यह मुझे मालूम है। यद्यपि सभी का दुःख मैं दूर नहीं कर सकता, लेकिन सहानुभूति प्रकट कर सकता हूँ। इस तरह की हार्दिक समवेदना लेकर मेरी यात्रा चल रही है।

आज त्याग का पथ छोड़कर, कपटता के आवरण द्वारा अपनी दुर्बलता, पाप-ताप को ढंककर, समाज के उच्चासन में बैठकर, हम लोगों ने जो रास्ता पकड़ा है, उससे अखण्ड हिन्दू जाति का सर्वनाश होगा। हर युग में धर्म स्थापना के लिए महापुरूषों का आविर्भाव हुआ है। इस आविर्भाव से सभी के भीतर नवीन चेतना की

प्रतिष्ठा हो! हमारी श्रद्धा-भक्ति एवं प्रेम-भावना को प्रसारित करते हुए सभी को उठाकर अपनी गोद में लाने का महान् यज्ञ सार्थक हो—यही मेरी प्रार्थना है।

मैं सभी के समक्ष प्रार्थना करता हूँ—मनुष्य के भीतर आपसी भेदभाव को दूर करने के लिए सभी सचेष्ट हों। आज स्वामी विवेकानन्द की इस वाणी का स्मरण सभी के लिए आवश्यक है— (बंगला पद)

बहुरूपे सम्मुखे तोमार, छाड़ि कोथा खुँजिछो ईश्वर।
जीवे प्रेम करे जेई जन, सेई जन सेविछे ईश्वर।।

भावार्थ: अनेक रूप में वे (ईश्वर) तुम्हारे सम्मुख हैं, उन्हें छोड़कर ईश्वर को कहां ढूँढ रहे हो। जीव (प्राणीमात्र) से जो प्रेम करता है, वही व्यक्ति ईश्वर की सेवा कर रहा है।

(११) प्रश्नः—सहज साधना क्या है?

उत्तर :— कलियुग में 'नाम-जप' ही हमारे लिए सबसे सहज साधना है। योग, यज्ञ, तपस्या करना सभी के लिए संभव नहीं है। परन्तु नाम-जप सभी कर सकते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने महानाम का वितरण किया है। योग-साधना से जो फल प्राप्त होता है, केवल नाम-जप से वही फल प्राप्त किया जा सकता है। तुम सब भगवान का नाम करो। जिसे जो नाम अच्छा लगे वह उसी नांम को निष्ठापूर्वक करे। सभी नाम उस एक भगवान का ही नाम है। सब रूप ही उनका रूप है। काली, कृष्ण, राम, शिव, दुर्गा सभी उस परमपिता परमेश्वर का विभिन्न नाम है। जो कृष्ण है—वे ही काली हैं,जो शिव हैं-वे ही राम हैं। तुम लोग सम्प्रदायगत दल-बन्दी की भावना को कभी अधिक महत्व मत देना। सभी सम्प्रदाय भगवान का सम्प्रदाय है। धर्म में दल-बन्दी तथा साम्प्रदायिकता की धर्मान्धता ने भारतवर्ष की जो हानि की है वैसी हानि और किसी के द्वारा नहीं हुई है। जहाँ भी भगवान का नाम-कीर्तन हो वहाँ जाकर प्रणाम करना। सभी पथ उसी एक स्थान पर पहुँचेंगे। तुम्हारा हृदय उदार हो! तुम सभी एक साथ सम्मिलित होकर, भगवान का नाम करते हुए जीवन-पथ पर चलो !

(१२) प्रश्नः— गृहस्थ आश्रम में रहते हुए साधना किस प्रकार करनी चाहिए?

उत्तर :— भगवान सर्वत्र हैं—गृहस्थी के भीतर भी वे हैं। अपने संसार को भगवान का आश्रम समझो और याद रखो, तुम इस आश्रम के सेवक या सेविका हो। संसार या गृहस्थ के सभी कार्यों को भगवान की सेवा ज्ञान से करो। पुत्र की, गोपाल भाव से सेवा करो, पुत्री को देवी का रूप मानो, अपनी मां या सास की, भगवती की भावना से सेवा करो, पिता या श्वसुर की, भगवान बोध से सेवा करो। इस प्रकार की भावना रखकर, गृहस्थ के भीतर रहकर भगवत्-भजन के सुन्दर पथ द्वारा साधना हो सकती है।

(१३) प्रश्न :— आपके आश्रम एवं अस्पताल आदि का विशाल खर्चा कैसे

चलता है ? भविष्य में यह किस प्रकार चलेगा ?

उत्तर :– जिसका यह कार्य है, वे ही इसका खर्च चलाते हैं। म तो केवल एक नौकर हूँ। जितना आवश्यक हो, वे देते हैं एवं मेरे हाथों से खर्च होता है। यह कार्य मालिक का है। मालिक जितने दिनों तक मेरे द्वारा कार्य करवाना आवश्यक समझेंगे, मुझसे कार्य करवाएंगे। यदि वे समझोगे कि अब मेरे द्वारा यह कार्य नही होगा, तब मुझे छुट्टी देंगे। फिर जिसके ऊपर भार देंगे, वह कार्य को परिचालित करेगा। यदि मालिक समझेगे कि इस कार्य की अब और आवश्यकता नही है–वे इसे बन्द कर देंगे। मैं आदेश-पालक सेवक मात्र हूँ। प्रभु की ओर सर्वदा मेरी दृष्टि रहती है–कब वे क्या आदेश प्रदान करे!

वृन्दावन पदयात्रा के समय अनेक प्रकार की अलौकिक घटनाएं हुई जिसकी व्याख्या करना सम्भव नहीं है। यहाँ केवल कुछ घटनाओ का उल्लेख किया जा रहा है–

(i) पदयात्रा के समय देखा गया कि स्वामी जी का शरीर सबसे अधिक अस्वस्थ रहा। उनके पैरों के तलवे मे बडे-बड़े फफोले पड गये थे। किसी-किसी दिन उनके शरीर मे तेज बुखार भी देखा जाता था, परन्तु पदयात्रियो मे अधिकांश लोगो को थकावट के सिवाय अन्य किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव नहीं हुआ। सभी को ऐसा लगा कि स्वामी जी ने पदयात्रियों का कष्ट स्वयं ग्रहण कर, उन्हें कष्ट के अनुभव से मुक्त रखा।

(ii) नित्य जो भी भोजन बनाया जाता था उसे उपस्थित सभी लोगो को वितरण कर दिया जाता था। जितने लोगों के लिए भोजन बनाया जाता था उसकी अपेक्षा अधिक लोग भोजन के समय उपस्थित रहते थे। स्वामी जी का विशेष निर्देश था कि कोई भी व्यक्ति भूखा न चला जाए। सेवकगण आश्चर्यचकित होकर सर्वदा देखते थे कि सभी को भोजन करवाने के पश्चात् काफी भोजन बच जाता था।

(iii) किसी-किसी दिन तेज धूप के समय पथ मे चलते हुए लोगो ने अनुभव किया कि अचानक आकाश मे बादल छा गया है और निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचते तक बादल साथ-साथ चला। विश्राम स्थल पर पहुँचने के साथ ही बादल को अदृश्य होते देखा गया।.

(iv) पथ में कोई अच्छी वस्तु खाने की इच्छा या किसी वस्तु की आवश्यकता होने पर, अचानक किसी न किसी प्रकार से उसकी व्यवस्था हो जाती थी।

(v) पदयात्रियों के सुख-सुविधा की, स्वामी जी सर्वदा खबर लेते रहते थे। सभी को ऐसा लगता था कि स्वामी जी उन्हें ही सबसे अधिक प्यार करते हैं। ऐसा अनुभव सभी को हुआ था।

(vi) कई भाग्यवान लोगो ने महात्मा श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी एवं दरवेश

जी की प्रत्यक्ष उपस्थिति का अनुभव किया। साधारणतः सभी लोगों को ऐसा अनुभव होता रहता था कि हमारे साथ कोई अदृश्य शक्ति चल रही है। इसका प्रमाण भी मिलता रहता था। कभी दिव्य सुगंध, कभी भोग निवेदन के पश्चात् प्रसाद में भोग ग्रहण के सुस्पष्ट चिन्ह, तो कभी तैलचित्र से विशेष ज्योति निकलती हुई दिखलाई पडती थी। इस कारण पथ के कष्ट का अनुभव न कर, सभी आनन्दपूर्वक नाम-संकीर्तन करते हुए चलते रहे।

स्वामी जी पदयात्रा करते हुए क्रमशः मथुरा के पास पहुँचे। उस समय सभी लोग वृन्दावन धाम पहुँचने के आनन्द में विभोर हो गये। प्रातः गीतापाठ एवं कीर्तन के पश्चात् स्वामी जी ने कहा—"तुम सब कितना कष्ट सहते हुए वृन्दावन जा रहे हो। तुम्हारी सेवा सुश्रुषा ने मुझे कृतार्थ किया है। तुम लोग मेरे अन्तरंग बन्धु हो, पथ के साथी ही वास्तविक बन्धु कहे जाते हैं। तुम लोगों का ऋण मैं नही चुका सकता। ८ दिसम्बर को संध्या के समय हमलोग श्रीवृन्दावन मे प्रवेश करेंगे। मथुरा जिले में प्रवेश करते समय गोसाँई जी, दरवेश जी, कुलदानन्द ब्रह्मचारी जी, श्री जगद्बन्धु मैत्र महाशय आदि गोसाँई जी के अनेक शिष्यों ने मुझे आशीर्वाद प्रदान किया है एवं आवश्यक निर्देश दिया है।"

७ दिसम्बर को वृन्दावन मार्ग पर स्थित बिरला धर्मशाला में सब लोग ठहरे। ८ दिसम्बर को संध्या तीन बजे पदयात्रीगण, रथ के साथ संकीर्तन करते हुए वृन्दावन पहुँचे। रथ जब मां आनन्दमयी आश्रम के निकट पहुँचा तब आश्रम के सन्तों ने सभी लोगो को सादर, आश्रम में ले आया। मां आनन्दमयी स्वामी जी को अत्यन्त स्नेह करती थी।' मां वहाँ नही थीं, पर वहाँ के सन्तों ने स्वामी जी को विशेष सम्मान देते हुए भीतर ले गये। वहाँ पहुँचते ही स्वामी जी समाधिमग्न हो गये। समाधि से उठने के पश्चात् वे संकीर्तन दल के साथ अग्रसर हुए। रास्ते में स्वामी जी भाव-विभोर होकर नृत्य करने लगे। उस समय स्वामी जी के चरण शून्य में नृत्यरत थे। कई भाग्यवान लोगों ने देखा कि स्वामी जी के चरण जमीन से ऊपर हैं। समाधि अवस्था में नृत्य करते हुए स्वामी जी को संभालते हुए, शिष्यगण अग्रसर हुए। नृत्यरत अवस्था में स्वामी जी का देह बोध पूर्णतः लुप्त हो गया था एवं वस्त्रादि विलग्न हो गये। इस अवस्था में संकीर्तन करते हुए सब लोग मयदावाली धर्मशाला पहुँचे। यहाँ स्वामी जी लगभग दो घंटे तक समाधि में रहे।

यहाँ रहते समय, संकीर्तन के साथ एक दिन वृन्दावन पंचकोषी परिक्रमा की गई। एक दिन 'माता कृष्णा सत्संग' के संचालक श्री बांकेबिहारी जी के आग्रह से स्वामी जी वहाँ गये। वहाँ कीर्तन के समय, भाव-समाधि की अवस्था मे उन्होंने गोसाँई जी के कुछ निर्देश प्राप्त किये। इन निर्देशों को उन्होंने भावमग्न अवस्था में लिखा था, जो इस प्रकार है—

(१) असीमानन्द को इस बार रखा गया। अनावश्यक कोलाहल न कर, नाम-संकीर्तन का प्रचार आवश्यक है।

(२) मैं सर्वदा साथ में हूँ। अनेक साधु-महात्मागण भी पदयात्रा के समय साथ में थे।

(३) मेरे निर्देशानुसार असीमानन्द, पांच दिन अकेले रहे। किसी स्थान में अकेला रहने की इच्छा होने पर उसमें बाधा नहीं देना चाहिए। वह जो कुछ भी करता है—वह 'मैं' कर रहा हूँ। मैं उसके शरीर में स्थित हूँ।

(४) असीमानन्द, ग्यारह वर्ष पूर्व वृन्दावन में आया था । द्वारकानाथ को मैंने कहा था, इस बार वृन्दावन में उसे अनेक आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त होगी। वृन्दावन के अनेक विदेही महात्मा इनके पास में हैं।

इस तरह कई निर्देश स्वामी जी ने उस दिन प्राप्त किया था। उपरोक्त निर्देशों को देखकर, सब लोग निश्चिन्त हुए। सभी की आशंका थी कि इस बार स्वामी जी वृन्दावन में अपना शरीर त्याग देंगे।

वृन्दावन पदयात्रा पूर्ण होने के बाद सब लोग वापस लौट आए ।

अध्याय २६ : पुरी एवं नवद्वीप की पदयात्रा

वृन्दावन पदयात्रा के बाद स्वामी जी नासिक, पुना, मुम्बई एवं बरोदा गये। १९ जनवरी, १९५८ ई. को पुनः वृन्दावन आये एवं दिल्ली गये। दिल्ली से कानपुर, मुजफ्फरपुर, पटना, झरिया होते हुए १ फरवरी को रामचन्द्रपुर आश्रम पहुँचे। स्वामी जी २१ अक्टूबर को पदयात्रा में निकले थे। तीन महिने ग्यारह दिन के दीर्घ समय के पश्चात् उनके आगमन से, रामचन्द्रपुर में भक्तगण बहुत आनन्दित हुए। परन्तु स्वामी जी का भ्रमण चलता रहा। ४ फरवरी को वे कोलकाता गये। वहाँ ११ फरवरी तक रहने के पश्चात् पुनः रामचन्द्रपुर आ गये। शिवरात्रि के समय १५ फरवरी से १८ फरवरी तक यहाँ उनका जन्म-उत्सव मनाया गया। १९ फरवरी को वे पुनः कोलकाता गये, वहाँ से २१ फरवरी को कालना (नवद्वीप के पास) पहुँचे। २२ फरवरी को यहाँ से निकलकर पटना, झरिया, आश्रम होते हुए १ मार्च को पुनः कालना पहुँचे। उस दिन वहाँ विशाल संकीर्तन का आयोजन किया गया था। स्वामी जी को तब १०३ डिग्री बुखार था फिर भी वे इस तरह भ्रमण करते हुए ५ मार्च को कोलकाता पहुँचे।

५, ६, ७ एवं ८ मार्च, १९५८ ई. को कोलकाता में श्री चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव दिवस (फाल्गुन पूर्णिमा, होली के दिन) के उपलक्ष्य में बहुत बड़े पैमाने पर महोत्सव का आयोजन किया गया था। इसमें बंगाल के प्रसिद्ध प्रायः सभी सन्तों ने योगदान किया था। ७ मार्च को देशप्रिय पार्क में आयोजित धर्म-सभा में मुख्य अतिथि के रूप में स्वामी असीमानन्द सरस्वती जी को आमंत्रित किया गया था। स्वामी जी ने वहा जो भाषण दिया था, उसका संक्षिप्त विवरण यहा प्रस्तुत है–

श्रद्धेय सभापति महोदय, पूज्य श्रीसीताराम दास ओंकारनाथ जी, समवेत साधु, भक्त मंडली, श्रद्धेया मां एवं बहनों, सभी मेरा प्रणाम ग्रहण करें।

इस तीन दिन कोलकाता मे श्री नाम का जो प्रवाह चला, उस महोत्सव में लाखों नर-नारियों के भीतर स्वतः स्फूर्त आनन्द का अद्भूत विकास देखा गया। यद्यपि यह महोत्सव कई वर्षों से होता आ रहा है, परन्तु इस वर्ष एक विशेष प्रभाव देखा गया। इस उत्सव को देखकर, ७० वर्ष पूर्व ढाका (बंगलादेश) में महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी द्वारा अनुष्ठित 'धूलट-महोत्सव' की याद स्वतः आ जाती है। उस महोत्सव में जो प्रेम प्रवाह बहा उससे मनुष्य के साथ-साथ पशु-पक्षी के भीतर भी नामकीर्तन का प्रभाव देखा गया था। आज ढाका में धूलट-महोत्सव बन्द हो गया है। इस महोत्सव के दिन, महात्मा विजयकृष्ण को प्रणाम करते हुए उनसे आशीर्वाद प्रार्थना कर रहा हूँ।

श्री चैतन्य महाप्रभु के इस उत्सव में, भगवान श्रीकृष्ण एवं श्री चैतन्य महाप्रभु की मनमोहक मूर्ति आप सब देख रहें हैं। धर्म की ग्लानि दूर करने एवं विश्व शान्ति के लिए द्वापर युग के अन्त में श्रीकृष्ण भगवान आये एवं कलियुग में जीव उद्धार के लिए महाप्रभु का आविर्भाव हुआ। वैदिक काल के कर्मकाण्ड के बाद उपनिषदों का प्रचार हुआ। उसके पश्चात् पौराणिक काल में श्रीकृष्ण लीला, महाभारत युद्ध एवं धर्म की स्थापना हुई। उस समय जो विश्व शान्ति स्थापित हुई, उसका प्रभाव जब म्लान होने लगा तब भगवान् बुद्ध अवतीर्ण हुए। बुद्ध के पश्चात् शंकराचार्य द्वारा शैव धर्म का उत्थान हुआ। इसके पश्चात् वैष्णव काल आया। इसमें वैष्णव धर्म का प्रचार एवं प्रसार हुआ। बौद्ध एवं जैन धर्म का प्रभाव इस समय म्लान हो गया। वैष्णव धर्म के साथ शाक्त धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। फिर शाक्त एवं वैष्णव धर्म मे कलह प्रारम्भ हुआ। इस समय वैष्णव साहित्य को जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास आदि ने समृद्ध किया। इसके पश्चात् मुस्लिम शासकों ने लोगों पर अत्याचार करते हुए, अपने धर्म का प्रचार किया। उस समय शाक्त एवं तान्त्रिकों के अनाचार एवं अत्याचार से सारे देश में धर्म के नाम पर नर-बलि एवं जीव-हत्या का प्रवाह चला। उच्चवर्ण के लोगो ने मूल्यहीन जात-पात के विभेद से उच्च-नीच भावना को, हृदयहीन रूप में विकसित किया। वैष्णव एवं साधुओं पर अत्याचार प्रारम्भ हो गया। उस समय शान्तिपुर में श्री अद्वैताचार्य की तपस्या से भगवान, श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में आविर्भूत हुए। महाप्रभु अपने प्राथमिक अवस्था में निमाई पण्डित के नाम से प्रसिद्ध हुए। परन्तु इस दिग्विजयी पण्डित का पाण्डित्य, भगवत्प्रेम के बाढ़ में बह गया। भगवत् नाम एवं प्रेम से व्याकुल महाप्रभु के अश्रु प्रवाह ने सभी को प्लावित कर दिया। ठीक इसी समय भारत वर्ष में सर्वत्र अनेक भगवत्प्रेरित महात्माओं का आविर्भाव हुआ। नानक, रामानन्द, कबीर, तुकाराम आदि भहात्माओं पर श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेमधर्म का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। गुरूग्रन्थसाहिब जी के शेष खण्ड में श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रेमधर्म के अन्यतम प्रचारक नित्यानन्द के साथ नानकजी के मिलन का वर्णन मिलता है। महाप्रभु के साथ संत तुकाराम का मिलन हुआ था ।

महाप्रभु का प्रेमधर्म कमशः सम्पूर्ण भारत में व्याप्त हो गया। श्री चैतन्य महाप्रभु ने सभी जाति-वर्ण के लोगों को प्रेम प्रदान किया। उस समय जगाई-मधाई की तरह असंख्य पापियों का उद्धार हो गया। महाप्रभु ने नित्यानन्द से कहा–"इस शक्तियुक्त नाम का उच्चस्वर से प्रचार करते रहो–इसकी ध्वनि जहाँ तक पहुँचेगी स्थावर-जंगम, जड़-चेतन सभी का उद्धार होगा।" महाप्रभु का आविर्भाव विश्व के इतिहास का अपूर्व अध्याय है। उनकी वाणी, विश्व शान्ति की अमृतमयी वाणी से परिपूर्ण है। इस 'प्रेम' भावना से ही विश्व शान्ति आ सकती है। महाप्रभु ने कहा है–"हे कलियुग के लोगों, तुममें योगसाधना, यज्ञ एवं तपस्या करने की शक्ति नहीं है। तुम लोग केवल

'हरिनाम' करो। 'हरिनाम' से ही योग-यज्ञ-तपस्या आदि का फल मिलेगा।'' वास्तव में 'हरिनाम' द्वारा सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ लाखों लोगों में यदि किसी को बुलाना है तो उसका नाम लेकर पुकारना होगा। नाम-जप से ही नामी अर्थात इष्ट की प्राप्ति होगी। नाम-जप से अपने-आप कुम्भक होता है एवं कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है।

'नाम' द्वारा केवल आध्यात्मिक कल्याण ही होगा ऐसा नही है। नाम-जप से सांसारिक कल्याण भी होता है। एक घटना का विवरण देता हूँ—हमारे गांव में गोलोकदास नामक एक वैष्णव बालक के बचपन में ही उसके माता-पिता का देहांत हो गया। उसकी बड़ी बहन द्वारा उसका पालन-पोषण हुआ। नौ वर्ष की उम्र से वह 'हरिनाम' करता हुआ, गांव में घुमता था। बड़ा होने पर उसका विवाह हो गया। उसके बाद उसे कुष्ठ रोग हो गया। उसके शरीर में विषैला फोड़ा हो गया। कोई चिकित्सक आपरेशन करने के लिए राजी नही हुआ। अन्त में मैंने उसका आपरेशन कर आवश्यक सेवा प्रारम्भ किया। एक दिन मैंने गोलोकदास से कहा—''तुम सब छोड़कर केवल 'नाम' करते रहो—'उन्हीं' की शरण लो।'' तब वह सब छोड़कर केवल नाम-जप करता हुआ पड़ा रहता था। तीन सप्ताह के पश्चात् देखा गया कि उसका घाव सूख रहा है एवं छः महिने में उसका घाव पूर्ण रूप से सूख गया। इसके पश्चात् वह तीस वर्ष जीवित रहा। उसे देखकर मालूम नहीं चलता था कि कभी उसे कुष्ठ रोग हुआ था। केवल 'नाम' से यह संभव हुआ। मेरे गुरूदेव (दरवेश जी) जब रामचन्द्रपुर आये तब उन्होंने गोलोकदास को देखते ही आलिंगन किया और कहा—''गोलोकदास, तुम्हारे सारे अंग से नाम की ज्योति प्रकट हो रही है।" इस प्रकार अनेक घटनाओं में 'नाम' का प्रभाव देखा गया है। अतः 'नाम' आध्यात्मिक कल्याण के साथ-साथ, भौतिक जड़ जगत् का भी कल्याण करता है।

सम्पूर्ण भागवत पाठ करने पर, केवल दो बातों का ही सार निकलता है—नाम और प्रणाम। हमलोग यदि कार्य-वाक्य-चिन्ता द्वारा 'नाम' को ही साथी बना लें तो फिर चिन्ता क्या है? शक्ति पूर्ण 'नाम' सब दुःखों को दूर कर देगा।

आप सब मुझे आशीर्वाद दीजिये—जिससे मैं सर्वदा 'नाम' का आश्रय लेकर जीवन-पथ पर चल सकूँ! सर्वदा, सर्वत्र, सभी जड़-चेतन में 'नामी' (इष्ट) का दर्शन कर, सभी के चरणों में प्रणाम कर सकूँ !! जिससे, महाप्रभु के 'प्रेमधर्म' का मैं पालन कर सकूँ!!!

आज इस प्रसंग पर मैं, महोत्सव कमेटी के समक्ष दो प्रस्ताव रखना चाहता हूँ। प्रथमः—आज सर्वत्र सभी धर्म प्रतिष्ठानों के भीतर, निन्दा-द्वेष-ईर्षा का प्रवाह देखा जा रहा है। आज धर्म-प्रतिष्ठानों में कलह-मामला आदि चल रहा है। जो धर्म प्रचारक, धर्मगुरू हैं उन्हें, आगे बढ़कर इस प्रवाह को रोकना होगा। आज महाप्रभु के आविर्भाव

तिथि पर मैं सविनय अनुरोध करता हूँ कि यह कलह और विद्वेष भावना नष्ट हो। सभी सम्प्रदाय, प्रेमपूर्वक आपस में सहयोग करते हुए, महाप्रभु के प्रेमधर्म का पालन करें। यदि धर्म-प्रतिष्ठानों में, आपस में कलह होता रहे तो धर्मगुरू लोग विश्वशान्ति की स्थापना कैसे करेंगे?

मेरा दूसरा प्रस्ताव है– महाप्रभु के सम्बन्ध मे जो जीवन-चरित ग्रंथ आदि मिलते हैं, उन्हें पढने पर अमृत रस का आस्वादन होता है परन्तु उनमें महाप्रभु के भ्रमण एवं नाम-प्रचार कायो के सम्बन्ध में उड़िसा, महाराष्ट्र, दक्षिणभारत से और भी तथ्यादि संग्रहित किये जा सकते हैं। इसे संग्रहित करना बंगाली जाति एवं देश का कर्तव्य है। इन्हें संग्रहित करने पर, देशवासी और अधिक उपकृत होंगे। आप लोग इस कार्य में अग्रसर होंगे–ऐसी आशा है।

उत्सव कमेटी को, इस तरह आयोजन के लिए अपनी श्रद्धा निवेदन करता हूँ। पुनः सभी को प्रणाम निवेदन करता हूँ। (–'सगठन' १९६० विशेष संख्या)

स्वामी जी, कोलकाता से ९ मार्च को रामचन्द्रपुर वापस आये एवं १४ मार्च को पुनः कालना महोत्सव में योगदान करने पहुँचे। कालना में उनके शिष्य शिबू पाण्डे की प्रचेष्टा से, स्वामी जी के वृन्दावन पदयात्रा शुरू होने के दिन से अखण्ड नाम-संकीर्तन प्रारम्भ किया गया था। इस नाम-यज्ञ की पूर्णाहूति के उपलक्ष्य में सौ कीर्तन दलों ने योगदान किया था। इस नाम-यज्ञ में स्वामी जी को लेकर नगर-संकीर्तन प्रारम्भ हुआ। दीर्घ भ्रमण से स्वामी जी का शरीर पहले से ही अस्वस्थ था। कुछ दिनों से उन्हें १००-१०३ डिग्री बुखार चल रहा था। आज प्रातः ८ बजे १०३ डिग्री बुखार होने के बावजूद, स्वामी जी नगर-संकीर्तन में शामिल हुए। लगभग २ बजे संकीर्तन दल पूरे शहर की परिकमा कर वापस आया। स्वामी जी रास्ते में भावमग्न होकर नृत्य करते हुए चल रहे थे। वापस आने पर, उनके निर्देशानुसार उन्हें स्नान करवाया गया। बुखार बढ़कर १०४ डिग्री हो गया। स्वामी जी को कालनावासी भक्तो ने पाकशाला में ले गये। वहाँ तीस क्विन्टल चावल के साथ आवश्यक सब्जी आदि का आयोजन देखकर, स्वामी जी ने साष्टांग प्रणाम किया। भक्तों ने उनसे कहा कि आज महोत्सव में असंख्य लोग प्रसाद लेंगे। ऐसा लग रहा है कि भोजन सामग्री कम पड जाएगी । आप आशीर्वाद कीजिए जिससे सभी लोग आनन्दपूर्वक भोजन कर सकें एवं भोजन का अभाव न रहे। स्वामी जी ने कहा–''तुम लोग चिन्ता मत करो। मेरे गोसाँई जी का भण्डार अक्षय है। जितने लोग आयें, उन्हें प्रसाद वितरण करते रहो। भण्डार समाप्त नहीं होगा। कल भी लोगों को तुम खिला सकोगे।" गोसाँई जी की जय ध्वनि करते हुए असंख्य लोगों ने प्रसाद पाया एवं भण्डार भी पूरा भरा रहा।

यहाँ से रामचन्द्रपुर आश्रम लौटकर, स्वामी जी १८ मार्च को झरिया पहुँचे एवं उसी दिन कार से, वृन्दावन के लिए रवाना हुए। २३ मार्च को वे वृन्दावन पहुँचे।

यहाँ पर उदाहरण के तौर पर उपरोक्त भ्रमण सूची दी गई है। इससे पता चलता है कि स्वामी जी अपने शरीर की तरफ बिल्कुल ध्यान न देकर, लोक कल्याण के लिए अपने गुरूजी के निर्देशानुसार इस तरह भ्रमण करते रहते थे। प्रायः इस तरह का भ्रमण, स्वामी जी को सर्वदा करते देखा जाता था।

जगन्नाथ पुरी की पदयात्रा :–

स्वामी जी लगभग सौ पदयात्रियों के साथ संकीर्तन करते हुए ६ नवम्बर, १९६१ ई. को, लगभग ६०० किलोमीटर की, जगन्नाथ पुरी पदयात्रा के लिए रामचन्द्रपुर से रवाना हुए। यह यात्रा भी बहुत आनन्दप्रद रही। विभिन्न स्थानों में लोगों ने संकीर्तन दल के सहित स्वामी जी की जो अभ्यर्थना की, उसे शब्दों में व्यक्त करना कठिन है। स्वामी जी ने जिन स्थानों पर रात्रि विश्राम किया उसका विवरण इस प्रकार दिया गया है–

दिनांक		यात्रा प्रारम्भ से रात्रि विश्राम	दूरी (कि.मी.)
६ नवम्बर	–	रामचन्द्रपुर आश्रम से मुरलु ग्राम–	१८ कि.मी.
७ नवम्बर	–	मुरलु से सुसुनिया–	२० ”
८ नवम्बर	–	सुसुनिया से छातना–	११ ”
९ नवम्बर	–	छातना से बांकुडा–	१३
१० नवम्बर	–	बांकुडा से ओन्दाग्राम –	१५
११ नवम्बर	–	ओन्दाग्राम से विष्णुपुर –	१५
१२ नवम्बर	–	विष्णुपुर से पियारडोबा –	१२
१३ नवम्बर	–	पियारडोबा से चन्द्रकोना रोड–	२४
१४ नवम्बर	–	चन्द्रकोना रोड से शालबनी –	११
१५ नवम्बर	–	शालबनी से मेदनीपुर –	२०
१६ नवम्बर	–	मेदनीपुर से खड़गपुर –	१३
१७ नवम्बर	–	खड़गपुर से नारायणगढ़ –	२६
१८ नवम्बर	–	नारायणगढ़ से दॉतोन –	३०
१९ नवम्बर	–	दॉतोन से जलेश्वर–	१६
२० नवम्बर	–	जलेश्वर से बस्ता–	२०
२१ नवम्बर	–	बस्ता से बालेश्वर–	३२
२२ नवम्बर	–	बालेश्वर से बाहानाग बाजार –	२३
२३ नवम्बर	–	बाहानाग बाजार से चरम्पा –	४०
२४ नवम्बर	–	चरम्पा से आखोआपाद –	३०
२५ नवम्बर	–	आखोआपाद से खंडित –	४०
२६ नवम्बर	–	खंडित से वर्चना–	३०

२७ नवम्बर	–	वर्चना से कटक–	३४
२८ नवम्बर	–	कटक से भुवनेश्वर–	२५
२९ नवम्बर	–	भुवनेश्वर से पिपली –	२०
३० नवम्बर	–	पिपली से जयरामकृष्णपुर–	१७
१ दिसम्बर	–	जयरामकृष्णपुर से जगन्नाथ पुरी–	२०

पदयात्रा के समय अनेक अलौकिक घटनाएं पूर्व पदयात्रा की तरह हुई। गोस्वामी जी के शिष्य श्री जगद्बन्धु मैत्र की शिष्या श्री मां मणि एवं महात्मा श्री सीताराम दास ओंकारनाथ जी से पुरी में स्वामी जी की भेंट हुई। पुरी में प्रवेश कर, सर्वप्रथम संकीर्तन दल के साथ स्वामी जी गोसाँई जी के समाधि आश्रम मे गये। गोसाँई जी के पुरी में शरीर त्याग देने के पश्चात् इस स्थान पर उन्हे समाधिस्थ किया गया था। पुरी में यह 'जटिया बाबा आश्रम' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके पास ही गोसाँई जी के अनन्यतम् शिष्य कुलदानन्द ब्रह्मचारी जी की समाधि मन्दिर स्थित है। ब्रह्मचारी जी ने ही प्रख्यात ग्रन्थ 'श्रीश्री सद्गुरू संग ' लिखा है। यहाँ से स्वामी जी सभी को साथ लेकर 'मां-मणि' के पास गये एवं वहाँ से श्रीजगन्नाथ देव के मन्दिर पहुचे। यहाँ आकर अभिष्ट श्रीजगन्नाथ जी का दर्शनकर सब लोग आनन्द मग्न हो गये।

श्रीजगन्नाथ जी का दर्शनकर सभी लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के निवास स्थान–गम्भीरा में गये। श्री चैतन्य महाप्रभु इस स्थान पर अट्ठारह वर्ष तक थे। श्रीजगन्नाथ मंदिर से ही स्वामी जी के भीतर एक विशेष भाव का संचार हुआ। 'गम्भीरा' से जब चटकगिरि में श्री सीताराम दास बाबा के आश्रम में पहुँचे तब स्वामी जी समाधिस्थ हो गये। सीताराम बाबा उस समय वहाँ दीर्घकाल से मौन रहकर तपस्या कर रहे थे और किसी से मिलते नहीं थे। स्वामी जी जब संकीर्तन दल के साथ आश्रम के पास पहुँचे, तब कीर्तन की ध्वनि सुनकर सीताराम बाबा तुरन्त स्वामी जी की आगवनी के लिए अग्रसर हुए। समाधिस्थ स्वामी जी को ऊपर मन्दिर में लाया गया। सीताराम बाबा ने अपने शिष्यों से जल एवं एक थाली लाने के लिए कहा। उन्होंने स्वयं स्वामी जी के चरणों को जल से धोया एवं शिष्यों को चरणजल (पादोदक) पीने का निर्देश दिया। उल्लेखनीय है कि रामचन्द्रपुर आश्रम में, पदयात्रा निकलने के पूर्व, सीताराम बाबा ने एक पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने एक कविता लिखी थी, जिसका भावार्थ इस प्रकार है–

'विजयकृष्ण के विजय शंख को बजाते हुए, कलियुग की समस्त कालिमा का नाश करते हुए, तुम अपनी गण-मण्डली सहित आओ! आओ!! इस कठिन कलियुग को शान्त करने के लिए, 'नाम' के रूप में भगवान स्वयं अवतीर्ण हुए हैं । वे ही इन जीर्ण यन्त्रों में लीला कर रहे हैं–इसे मैंने जाना है। यन्त्र के चालक भगवान, इन जीर्ण यन्त्रों को जिस तरह बजाना चाहते हैं ये यन्त्र उसी तरह उनके पावन मन्त्रों का गान करेंगे।

हे प्रेमिक प्रधान! आप प्रेममय की प्रीति ग्रहण करें। आपकी शुभ इच्छा भगवान पूर्ण करे। साक्षात् होने पर सब बातें होगी। –ॐकार।

स्वामी जी की समाधि भंग होने पर दोनों महात्मा आपस में बारम्बार प्रेमालिंगन करने लगे। स्वामी जी को शिष्यों सहित उन्होंने वहो भोजन करवाया।

पुरी मे स्वामी जी ने, प्रसिद्ध कीर्तन गायक अपने एक शिष्य को संन्यास प्रदान कर, उनका नाम निर्मलानन्द सरस्वती रखा। अपने शिष्य को आशीर्वाद देते हुए स्वामी जी ने उस समय कहा–"आज से कीर्तन ही तुम्हारे जीवन का अवलम्बन होगा। मेरे दक्षिण में समुद्र है, ऊपर आकाश है–इस श्रीक्षेत्र में श्रीजगन्नाथ जी के सामने प्रतिज्ञा करते हुए कहता हूँ कि मेरी शक्ति सब समय तुम्हारे साथ रहकर, साधन-भजन एवं सभी कार्यों मे तुम्हारी सहायता करेगी। तीर्थयात्रा में विशेष रूप से सहायता मिलेगी।" स्वामी जी के पास संन्यास के समय इस तरह का आशीर्वाद प्राप्त कर निर्मलानन्द जी धन्य हो गये।

पदयात्रा के समय, रास्ते में स्वामी जी ने जो उपदेश प्रदान किया था उनमें से कुछ उपदेश "उपदेश संग्रह" नामक अध्याय में दिया गया है।

नवद्वीप पदयात्रा :–

६ नवम्बर, १९६४ ई. को स्वामी जी ने तीसरी पदयात्रा, रामचन्द्रपुर आश्रम से नवद्वीप धाम तक, लगभग २२० किलोमीटर की यात्रा की। यात्रा के प्रारम्भ में १०७ पदयात्री थे, फिर रास्ते मे कुछ और लोग शामिल हो गये। यात्रा का विवरण यहाँ दिया जा रहा है–

दिनांक		यात्रा प्रारम्भ से रात्रि विश्राम	दूरी (कि.मी.में)
६ नवम्बर		रामचन्द्रपुर आश्रम से नियामतपुर–	२० कि.मी.
७ नवम्बर	-	नियामतपुर से आसनसोल–	१२
८ नवम्बर	–	आसनसोल से सेन्ट्रल सातग्राम–	८
९ नवम्बर	–	सेन्ट्रल सातग्राम से पूरबा –	२५
१० नवम्बर	–	पूरबा से दुर्गापुर –	१६
११ नवम्बर	–	दुर्गापुर से पानागढ़–	१६
१२ नवम्बर	–	पानागढ़ से गलसी–	२५
१३ नवम्बर	–	गलसी से वर्द्धमान–	२२
१४ नवम्बर	–	वर्द्धमान से सिमलन–	४०
१५ नवम्बर	–	सिमलन से नीरलगाछी–	८
१६ नवम्बर	–	नीरलगाछी से नवद्वीप–	१६

स्वामी जी को इस तरह कठिन पदयात्रा करते हुए देखकर, लोग विभिन्न

प्रकार के प्रश्न करते थे। स्वामी जी ने उस समय कहा था–इस पदयात्रा का उद्देश्य नाम प्रचार तो अवश्य है। इसके साथ पैदल यात्रा करने से असंख्य परिचित-अपरिचित लोगों से मिलने का अवसर मिलेगा–उनके साथ विभिन्न आलोचना होगी। उनके सुख-दुःख के साथ परिचय होने पर, हम परस्पर और घनिष्ट होंगे। सबके साथ मित्रता होगी। सब के साथ प्रेममिलाप से, सभी मानव एक है –इसका बोध होगा। मेरा उद्देश्य है–सभी को प्रेमालिंगन करते हुए हृदय से लगाना।

एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति प्रेमभावना ही मानव धर्म है। योग-यज्ञ या देव मन्दिर के मध्य, भारत वर्ष का धर्म आबद्ध नहो है। भारत का धर्म है, मानव से प्रेम करो–प्रत्येक जीव की सेवा करो–'सव खल्विदं ब्रह्म'। वह ब्रह्म समग्र विश्व चराचर में अनेक रूपों में प्रकाशित है–'रूपं रूपं प्रति रूपं'। अनन्त रूप से ब्रह्म लीला कर रहे हैं। भारत का धर्म, सभी के मध्य है। एक ही भगवान, सभी के मध्य में हैं। अनन्त रूपों में विराजित हैं। अतः कौन छोटा है–कौन बड़ा है? कौन अपना है–कौन पराया है? सभी समान हैं–सभी अपने हैं। ईश्वर जब मेरे अपने हैं तब मैं विश्व में किससे घृणा करूँ? मैं किसे दूर रखूँ? मेरे ईश्वर, सभी के मध्य एवं सर्वत्र हैं। मैं सभी को प्यार करना चाहता हूँ। विवेकानन्द ने कहा हैं–'जीव मात्र से जो प्रेम करता है, वही व्यक्ति ईश्वर की सेवा कर रहा है।'

प्रत्येक जीव की सेवा करनी होगी। सेवा ही धर्म है। सेवा-धर्म में संचय का स्थान नहीं है। निःशेष, 'दान-प्रतिदान' विहीन कर्म अर्थात् प्रत्याशा न रखकर भगवत्ज्ञान से सेवा ही धर्म है। मनुष्य के मंगल के लिए उनकी सेवा करनी होगी। आजकल साम्यवाद का अर्थ कितने लोग समझते हैं? आज साम्यवाद को नीति पर कितने लोग कार्य करते हैं?

साम्यवाद की उत्पत्ति उपनिषद् से हुई है। उपनिषद् में साम्यवाद का विश्लेषण मिलता है। ब्रह्म सर्वत्र है। एक ईश्वर सत्य है–जगत अनित्य है, समय पर यह ध्वंस हो जाएगा। ईश्वर नित्य-अविनश्वर हैं–सभी के भीतर वे ही हैं। सभी के भीतर भगवान् का दर्शन करो।

धर्म, नाक दबाकर प्राणायाम नहीं है। आसन में बैठना ही केवल धर्म नहीं है। धर्म–जो धारण करके रखे, जीवन को धारण करते हुए उसे उन्नत स्तर पर जो ले जाए, वही धर्म है। मेरा धर्म जनगण की सेवा है। सेवा परम धर्म है। मनुष्य की सेवा न करने पर, ईश्वर की पूजा कैसे होगी? चरणों के नीचे आकर सेवा करनी होगी। उच्चासन में बैठकर सेवा नहीं होती–उच्चासन में बैठकर प्रभुत्व की जा सकती है। सेवा करने के लिए रास्ते में उतरना होगा। दीन-हीन, दरिद्र, रोगग्रस्त, असहाय मनुष्यों के मध्य जाना होगा। मेरा धर्म, सेवा ग्रहण करना नहो–सेवा करना है। मेरी व्यक्तिगत मुक्ति नहीं– सभी जनगण की मुक्ति, मेरा लक्ष्य है। आनन्द पथ के सभी यात्रियों को

साथ लेकर हम आनन्द के पथ पर चलेंगे।

भारत के सभी मनुष्य की मंगलकामना ही मेरी आकांक्षा है। मेरी मुक्ति उस दिन होगी–जब दुःख, कष्ट, हा-हाकार नहीं रहेगा–सभी की मुक्ति ही मेरी मुक्ति है! (–'पदब्रजे श्रीधाम नवद्वीप' से)

पुरी पदयात्रा के समय एक दिन अपने, पदयात्रा करने के उद्देश्य को बतलाते हुए स्वामी जी ने कहा–**''अभी तक पैदल चलते हुए जिन्हें मैंने अपने से आलिंगन किया है, उन लोगों के भीतर मैंने शक्ति संचार कर दिया है। एक दिन इसका प्रकाश होगा।''** ('असीमानन्देर पथे' ग्रन्थ से)

इस तरह श्री चैतन्य महाप्रभु के पदांकों का अनुसरण करते हुए, स्वामी जी भगवत्प्रेम के प्रचार कार्य में अग्रसर हुए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है–**''एक समय ऐसा आएगा जब पृथ्वी के हर स्थान में मेरे 'नाम-कीर्तन' का प्रचार होगा।''**

श्री गोसाँई जी से किसी ने पूछा कि चैतन्य महाप्रभु के समय एवं उसके बाद उनका प्रचार इतना कम क्यों हुआ? इस प्रश्न के उत्तर में गोसाँई जी ने कहा था–**''श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित संकीर्तन का कार्य अभी चालू हुआ है, भविष्य में ऐसा समय आएगा, जब सम्पूर्ण विश्व मृदंगमय (संकीर्तनमय) हो जाएगा।"** अर्थात् केवल नाम-संकीर्तन से लोग भगवत् उपासना करेंगे एवं दिव्य प्रेम के अधिकारी होंगे।

स्वामी जी ने कहा है–**''जितने दिनों तक समप्राणता (समान भावना) न आये, सभी लोग आपस में प्रेम न करें–तब तक देश का कल्याण नहीं होगा। जब अखिल विश्व ब्रह्ममय हो जाएगा–ब्रह्म रस का आस्वादन करेगा–तभी पृथ्वी आनन्द से भर जाएगी–तभी कल्याण होगा। यह आनन्द जिससे प्राप्त कर सकें–इसी के लिए मेरी यह साधना है।''**

श्री दरवेश जी ने स्वामी जी से कहा था–**''नाम और प्रणाम तुम्हारे जीवन का अवलम्बन हो। सर्वदा नाम करो एवं सर्वत्र 'उनका' दर्शन कर–वे सर्वत्र विराजित है, इस भावना से प्रणाम करो।"** (असीमानन्देर पथे' से)

स्वामी जी के द्वारा इस तरह भ्रमण करने के सम्बन्ध में पूछने पर उन्होंने कहा था–**''आश्रम म क्या मेरा सब समय रहना संभव है? कितने शिष्यगण अत्यन्त गरीब हैं–वे मेरे निकट नहीं आ सकते। कई लोग बहुत दूर-दूर रहते हैं, उनके निकट आवश्यकतानुसार मुझे ही जाना पड़ता है। उनकी आन्तरिक प्रार्थना से मुझे जाना पड़ता है।''**

अध्याय २७ : विभिन्न स्थानों का भ्रमण एवं धर्म प्रचार

(क) डाल्टन गंज :–स्वामी जी संन्यास के पश्चात् सन् १९४७ में पहली बार डाल्टन गंज (बिहार) आये थे । उस समय वे प्रायः समाधिस्थ हो जाते थे। अर्धबाह्य दशा में उन्हे कभी अस्पष्ट स्वर में कविता या गाना गाते हुए या कभी उपदेश उच्चारित करते हुए देखा जाता था। उस समय वहां उपस्थित लोगो द्वारा जो कुछ लिख लिया जाता था, उसका यहां उल्लेख किया जा रहा है–

(१) श्रीराधा अग्रसर होती हैं–श्रीकृष्ण से मिलने के लिए। आज्ञा चक्र प्रमुख स्थान है–यही 'राधा-कृष्ण' 'हर-गौरी' का मिलन होता है। गुरू रूप आचार्य श्रीकृष्ण ही दोक्षा गुरू हैं। श्रीराधा की तरह अराधना करनी होगी–श्रीराधा की तरह प्रेम न होने पर श्रीकृष्ण की प्राप्ति नही होती। गुरू को पूर्ण समर्पण करना होगा–तभी सब प्राप्त होगा।

(२) उन्हे पाने के लिए कर्म छोडने की आवश्यकता नहीं है। राजर्षि जनक ने क्या कर्म त्याग दिया था? 'कमल के पत्ते पर पानी'–इस तरह रहना होगा। ऋषियों ने गृहस्थ आश्रम को श्रेष्ठ कहा है। प्राचीन काल में ऋषियों का आश्रम ही शिक्षा का केन्द्र रहा।

(३) बहिर्मुखी मन को अन्तर्मुखी करो। नाम-जप करते-करते अपने आप प्राणायाम होगा–कुम्भक होगा।

(४) शरीर में ओंकार स्थित है। छः चक्र हैं–मन आगे बढ रहा है, इसकी तीव्र गति है। श्वास-प्रश्वास द्वारा इस मन को जय करना होगा। ओंकार के धनुष मे, श्वास-प्रश्वास युक्त 'नाम' को जोड़ दो और तीर को निक्षेप करो–चंचल मन वशीभूत होगा।

(५) संसार समुद्र में प्रबल तूफान उठा है। उसकी विकराल तरंग हैं। यदि उसे पार करना चाहो तो 'नाम' रूपी नाव को लेकर अग्रसर हो जाओ। 'नाम' ही तुम्हें पार करेगा। तूफान एवं तरंग रहेगी–नाम रूपी नाव उसे भेद करते हुए पार कर देगी। किनारे बैठकर रोने से क्या होगा? नाम-नाम-नाम जप करो!

(६) ऋषि एवं ऋषि पत्नी ने गृहस्थ आश्रम के भीतर रहकर 'संयम' का पालन किया। उनकी भी सन्तानें थी। इन्होंने ही भारत को आध्यात्म सम्पद् प्रदान किया है।

(७) मैं अपने को, स्वयं जलाकर मार रहा हूँ। मेरे भीतर असंख्य दोष हैं–अहं भावना के कारण यह नहीं दिख रहा है। मेरा सब अच्छा है, दूसरे का सब खराब है। अहं को लेकर चलने पर उसकी ज्वाला से जलकर अवश्य मृत्यु होगी।

(८) भगवान सर्वत्र हैं–सब रूप उन्हीं का रूप है। उनके किसी भी रूप का अवलम्बन करो एवं नाम-जप करो। आज्ञा चक्र में दृष्टि रखकर नाम-जप करते रहो।

कमशः कितने प्रकार की ज्योति-प्रकाश दिखलाई पड़ेगी। पीत वर्ण के भीतर घना नीला एवं श्याम वर्ण के भीतर नारायण दर्शन होगा।

(९) कलियुग में सभी लोग योग-किया नहो कर सकते। वीर्यक्षय करने वालों को प्राणायाम करना नहीं चाहिए। नाम-जप ही श्रेष्ठ पथ है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है–'कलियुग में नाम ही यज्ञ है।' घी अथवा पंचशष्य द्वारा, अशुद्ध मन्त्रों द्वारा, मन में स्वार्थ बुद्धि रखते हुए, विश्व कल्याण के लिए आज सर्वत्र यज्ञ का आयोजन हो रहा है। इससे अकल्याण ही होगा। यजमान, पुरोहित, उद्योगी सभी का ध्वंस होगा। यज्ञ तमाशा नहीं है। तुम सब लोग नाम-यज्ञ करते रहो–इसी से सब होगा। (द्रः 'संगठन' विशेष सख्या १९५० ई से संग्रहित)

(ख) मुजफ्फरपुर (बिहार) :–सन्१९४९ ई. में स्वामी जी मुजफ्फरपुर सर्वप्रथम गये थे। तब कनौली में गोस्वामी जी के शिष्य ज्ञानेन्द्र मोहन दत्त के अनुरोध पर वे २६ दिन वहां रहे। उनकी उपस्थिति से असंख्य लोग उपकृत हुए। यहां भी स्वामी जी अधिकांशतः समाधिस्थ रहते थे। भावावस्था मे अनेक प्रकार की घटनाएँ घटती रहती थी। यथा, कभी चारों ओर दिव्य सुगन्ध का सभी अनुभव करते थे, भोग निवेदन करने पर उसमें भोग ग्रहण के सुस्पष्ट चिन्ह देखे जाते थे। भावावस्था में अस्फुट स्वर से अनेक कविताएं एवं गाने उनसे लोग सुना करते थे। इसके पश्चात् स्वामी जी मुजफ्फरपुर में कई बार आये। यहां की कुछ घटनाओं का उल्लेख किया जा रहा है–

(१) कनौली में धीरेन्द्र मोहन दत्त के घर में स्वामी जी अधिकतर ठहरा करते थे। उनके परिवार के सभी लोग स्वामी जी की अत्यन्त श्रद्धा करते थे एवं अधिकांश लोगों ने स्वामी जी से दीक्षा प्राप्त की थी। एक दिन रात्रि के समय स्वामी जी ने सिर पर पगड़ी बांधकर, बाघ के चमड़े को कमर पर वस्त्र की तरह लपेट लिया और हाथ में त्रिशूल लेकर अपने परिचितों के घर भ्रमण करने लगे। कुछ लोग भी उनके साथ गाडी में आ गये। स्वामी जी 'बम भोलानाथ! देवी भिक्षां देही!!' कहते हुए सत्येन दत्त के घर पहुँचे। सत्येन दत्त उनके साथ गाड़ी में ही थे। उनकी स्त्री ने नौकर के द्वारा दो-चार रोटियां खिड़की से स्वामी जी को दे दिया। स्वामी जी के गले का स्वर बिलकुल अलग लग रहा था इस कारण घर के लोग उन्हें पहचान नहीं पाये। इस तरह प्रत्येक घर में वे भ्रमण करते रहे। अन्त में सोनाबाबू के घर पहुँचे। घर के सब लोग उस समय भोजन कर रहे थे। उन लोगों ने स्वामी जी को बैठने के लिए कहा। स्वामी जी घर के बाहर आसन बिछाकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद सोनाबाबू बाहर आये एवं स्वामी जी को देखते ही पहचान लिया और तुरन्त उन्हें अन्दर ले गये। फिर स्वामी जी एवं सभी को भोजन करवाया। सभी ने आनन्द करते हुए भोजन किया।

उस दिन स्वामी जी एक विशेष भाव में विभोर थे। सभी के साथ आनन्द करते समय वे बालकवत् लग रहे थे। उस समय उन्होंने कहा था–''**क्षुदार्थ (भूखा) को**

सर्वदा भोजन देना चाहिए। चाहे वह किसी भी समय आए–उसे कभी विमुख नहीं करना चाहिए।"

(२) एक दिन 'हरि सभा' में कीर्तन का आयोजन किया गया था। गायक थे, भक्त हरिश बसु। सब जगह स्वामी जी के आगमन का संवाद भेज दिया गया। कीर्तन में बड़े पैमाने में लोग उपस्थित हुए। स्वामी जी यथा समय उपस्थित हुए। उस दिन गायक का शरीर अस्वस्थ रहने पर भी उन्होंने स्वामी जी के निर्देशानुसार कीर्तन प्रारम्भ किया। थोड़े ही देर मे स्वामी जी के शरीर में अश्रु-कम्पन आदि सात्विक विकार दिखलाई पड़े एवं वे समाधिमग्न हो गये। भक्त हरिश बसु भाव विभोर होकर कीर्तन करते रहे। उन्हें ऐसा लग रहा था मानो उनके माध्यम से कोई दूसरा व्यक्ति कीर्तन कर रहा है। इस तरह का अनुभव हरिश बाबू को पहले कभी नहीं हुआ था। लगभग दो घण्टे के बाद स्वामी जी की समाधि भंग हुई।

(३) स्वामी जी एक दिन लहेरिया सराय में सुधीर बाबू के घर पर कीर्तन में आमंत्रित थे। उनके साथ मुजफ्फरपुर से कुछ लोग भी वहां गये। कीर्तन में स्वामी जी लगभग डेढ़ घण्टे समाधिस्थ रहे। उस दिन भावमग्न अवस्था मे वे नृत्य करने लगे। उनके शरीर मे अद्भूत दिव्य भाव का प्रकाश देखकर सभी नर-नारी भी भावमग्न हो गये। कोई भावावेश में रो रहा है तो कोई आनन्द के आवेश में नृत्य कर रहा है। इस तरह के दृश्य का वर्णन, श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं गोसॉई जी की जीवनी में ही मिलता है। अतः इस प्रकार के भाव का बाह्य प्रकाश सभी लोगों के भीतर बहुत कम देखा जाता है।

यहां के कार्यकम समाप्ति के पश्चात् दूसरे दिन जब स्वामी जी के साथ अन्य लोग मुजफ्फरपुर लौटने के लिए रेलवे स्टेशन पर आए तब ट्रेन छूटने का समय हो गया था। उस दिन गंगा स्नान का विशेष योग होने से प्लेटफार्म में बहुत भीड थी और रेलवे की ओर से विशेष टिकिट परीक्षण कार्य चल रहा था। इस कारण लोग इधर-उधर टिकिट लेने के लिए दौड़ते दिखलाई पड़ रहे थे। हरिश बाबू ने स्वामी जी के लिए प्रथम श्रेणी का टिकिट ले लिया था। बाहर कोलाहल देखकर स्वामी जी ने दरवाजे के पास आकर कोलाहल का कारण पूछा। पूरा समाचार प्राप्त होने पर उन्होंने हरिश बाबू से कहा–"सभी लोगों से कह दे कि वे टिकिट ले आएं। ट्रेन तब तक ठहरी रहेगी।" हरिश बाबू ने सभी लोगों को यह समाचार दिया। ट्रेन चालक ने निर्दिष्ट समय पर ट्रेन चलाने की कोशिश की, परन्तु ट्रेन नहीं चली। इंजिन आदि की जांच की गई लेकिन कोई त्रुटि नहीं दिखलाई पड़ी। इस बीच सभी लोग टिकिट लेकर ट्रेन पर चढ़ गये। स्वामी जी लगभग आधा घण्टा दरवाजे पर खड़े रहे। जब उनसे कहा गया कि सब लोग ट्रेन में चढ़ गये हैं तब वे अन्दर जाकर बैठे। उनके बैठते ही ट्रेन अपने-आप चालू हो गई। इंजिन को अपने आप चलते देखकर चालक

और गार्ड दौड़कर उसमें चढ़ गये।

मुजफ्फरपुर में स्वामी जी चार दिन रहे। चार दिन पश्चात् हरिश बाबू किसी कार्यवश लहेरिया सराय गये, तब वहां के स्टेशन मास्टर के साथ उनकी भेंट हुई। स्टेशन मास्टर ने उनसे स्वामी जी का परिचय जानने के बाद कहा कि उस दिन ट्रेन के न चलने का कारण हमें बाद में पता चला। इंजिन आदि ठीक रहने के बाद भी ट्रेन का न चलना, स्वामी जी की इच्छा शक्ति का प्रभाव था। उन्होंने हरिश बाबू से अनुरोध किया कि ऐसे महापुरूषों का दर्शन एवं सत्संग बड़े सौभाग्य से मिलता है। स्वामी जी महाराज जब भी इधर आऐ तो आप हमें अवश्य सूचित कीजियेगा।

(४) हरिश बाबू बंगाल के प्रसिद्ध संत श्री राम ठाकुर के शिष्य थे। वे स्वामी जी की अत्यन्त श्रद्धा करते थे। उनकी इस प्रकार की श्रद्धा देखकर स्वामी जी के कुछ शिष्यों ने उन्हें पुनः स्वामी जी से दीक्षा लेने का सुझाव दिया। हरिश बाबू दुविधा में पड़ गये। इसी चिन्ता में उन्होंने एक दिन स्वप्न में देखा कि श्री राम ठाकुर हँसते हुए कह रहे हैं–'इतनी चिन्ता की क्या आवश्यकता है? चिन्ता का कोई कारण नहीं है–स्वामी असीमानन्द के भीतर मैं ही हूँ।' स्वप्न में इस दृश्य को देखकर हरिश बाबू की चिन्ता दूर हो गई। तीन-चार दिन बाद ही समाचार मिला कि स्वामी जी आए हैं। उस वर्ष (सन् १९५१ ई.) मुजफ्फरपुरवासी भक्तवृन्दों ने स्वामी जी की जन्मतिथि का आयोजन वहीं किया। सोना बाबू के घर पर कीर्तन का आयोजन किया गया एवं कनौली में भोजन की व्यवस्था की गई। कीर्तन के पश्चात् जब आमंत्रित लोग कनौली मे धीरेन दत्त के घर जाने लगे तब हरिश बाबू सोचने लगे की मुझे तो वहां जाने का निमंत्रण नहीं मिला है इसलिए वहां न जाना ही ठीक रहेगा। धीरेन दत्त के घर के लोगों ने भी उनसे इस सम्बन्ध कुछ नहीं कहा। अतः हरिश बाबू अपने घर लौट आये। उनके मन में अभिमान आ गया कि मुझे वहां जाने के लिए क्यों नहो कहा गया? इसी मानसिक द्वन्द के चलते उनके मन में हठात् विचार आया कि स्वप्न में गुरूदेव (श्रीराम ठाकुर) ने मुझसे कहा है कि 'मैं स्वामी असीमानन्द के भीतर हूँ।' वास्तव में, यदि वे स्वामी जी के भीतर विराजमान हैं तो स्वामी जी यहां से मुझे अवश्य ही अपने साथ लेते हुए जाएंगे। अधीर आग्रह से वे प्रतीक्षा करने लगे। इस तरह काफी समय बीत गया। अन्त में उन्होंने रात्रि भोजन में केवल दूध लेने का विचार कर स्टोव जलाकर उसमें दूध रख दिया। वे अपनी मानसिक चिन्ता में इतने लीन थे कि दुध जलकर नष्ट हो गया तब उन्हें होश आया। फिर एक परिचित लड़के को रूपये देकर थोड़ी मिठाई लाने के लिए कहा। इसी समय अचानक उन्होंने देखा कि दो मोटर गाड़ी उनके घर की गली के सामने खड़ी है एवं धीरेन दत्त ने आकर उनसे कहा कि आपको अभी हम लोगों के साथ चलना है, स्वामी जी भी गाड़ी पर बैठे हैं। हरिश बाबू अपने नौकर को बता कर गाड़ी के पास गये तो स्वामी जी ने उन्हें बुलाकर अपने पास बैठाया।

इस घटना के दो दिन बाद हरिश बाबू सभी की उपस्थिति में कीर्तन गा रहे थे । तब स्वामी जी भाव समाधि में मग्न हो गये। उनके शरीर में सात्विक भावना की तरंग को देखकर हरिश बाबू हारमोनियम छोडकर खड़े हो गये और उन्मादवत् कीर्तन करते हुए स्वामी जी की प्रदक्षिण करने लगे। उनके सहायक मृदंग वादक एवं अन्य लोग भी उनके साथ हो गये। अब स्वामी जी भी उसी अवस्था मे खडे होकर मधुर नृत्य करने लगे। इस समय हरीश बाबू कीर्तन करते हुए अचानक बेहोश हो कर गिर पड़े। भावमग्न स्वामी जी को भी लोगों ने यत्न पूर्वक हरिश बाबू के पास ही लेटा दिया। उस अवस्था में स्वामी जी ने अकस्मात् हरिश बाबू के कान मे एक मन्त्र का उच्चारण किया । हरिश बाबू आश्चर्य चकित हो गये, यही मन्त्र श्री रामठाकुर ने भी उन्हें जप करने के लिए कहा था।

दूसरे दिन हरिश बाबू ने धीरेन दत्त एवं अन्य लोगों से सुना कि स्वामी जी ने उन लोगों से कहा था–''क्या करें ? गोसाँई जी, गुरूदेव एवं श्री रामठाकुर ने आकर मुझसे कहा कि इस मन्त्र को सुनाकर हरिश के मन के द्वन्द को नष्ट कर दो। इसीलिए मैंने उसके मन्त्र का उसे स्मरण करा दिया।'' उस दिन से हरिश बाबू स्वामी जी को गुरू मानने लगे।

(५) सन् १९५३ ई. को दुर्गापूजा के लगभग दो महिने पूर्व स्वामी जी मुजफ्फरपुर आये थे, तब सभी भक्तों ने उनसे पूजा के समय मुजफ्फरपुर आने के लिए विशेष अनुरोध किया। स्वामी जी ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए कहा–''ठीक है, इस वर्ष पूजा के समय तुम लोगो से मुलाकात करने आऊँगा।" स्वामी जी की बात सुनकर सभी आनन्दित हुए, लेकिन सब को मालूम था कि पूजा के समय आश्रम में स्वामी जी के पास विभिन्न स्थानों से लोग आते हैं। आश्रम में भी दुर्गापूजा होती है, इस कारण स्वामी जी का दुर्गापूजा में कहीं बाहर जाना असंभव है।

यथा समय दुर्गापूजा प्रारम्भ हुई। सप्तमी समाप्त हो गयी। अष्टमी के दिन रात्रि के समय हरिश बाबू अपने घर पर सो रहे थे। अचानक दरवाजा खटखटाने की आवाज आई, तब रात्रि के दो बजे थे। हरिश बाबू ने थोड़ा विरक्तिपूर्ण स्वर में पूछा–''बाहर कौन ह ''? बाहर से आवाज आई–''दरवाजा खोलो।''वे गुरूदेव की आवाज पहचान गये एवं तुरन्त दरवाजा खोलकर बाहर आये। हरिश बाबू ने आनन्दपूर्वक उनका चरण स्पर्श कर प्रणाम किया। घर के अन्दर आकर एक कुर्सी पर बैठते हुए स्वामी जी ने कहा– 'अभी निकलना है।' फिर एक ग्लास पानी लाने के लिए कहा। हरिश बाबू समझ गये कि स्वामी जी के साथ उन्हें भी जाना होगा। अतः वे जल्दी-जल्दी तैयार होने लगे। इस हड़बड़ी में वे स्वामी जी को पानी देना भूल गये। स्वामी जी के निर्देशानुसार बाहर निकलकर रिकशे के द्वारा वे स्वामी जी के साथ डा. रमेश गुप्ता के 'गुप्ता-भवन' नामक मकान पर पहुँचे। हरिश बाबू ने घर

के लोगों को जगाया। अचानक स्वामी जी को देखकर सभी आनन्दित होकर उन्हें प्रणाम करने लगे। स्वामी जी ने यहां पानी मांगा। इसे सुनकर हरिश बाबू को अपनी भूल याद आ गयी, वे लज्जित हुए। यहां पर भी हड़बड़ी में वे लोग स्वामी जी को जल देना भूल गये। यहां से हरिश बाबू को लेकर स्वामी जी पशुपति बाबू के घर पहुँचे। पशुपति बाबू अच्छे साधक थे। उन्होंने स्वामी जी को स्पर्श कर प्रणाम किया तो उन्हें स्वामी जी का शरीर अत्यन्त ठंडा मालूम हुआ । उन्होंने स्वामी जी से इसका कारण पूछना चाहा तो स्वामी जी ने इशारे से उन्हें मना किया। इसके बाद हरिश बाबू को लेकर स्वामी जी चार-पांच घरों पर गये। सबसे आश्चर्य की बात यह रही कि स्वामी जी ने सभी घरों मे पानी मांगा लेकिन वे लोग स्वामी जी को देखकर आनन्दातिरेक में उन्हें पानी देना भूल गये। इसके पश्चात् स्वामी जी ट्रेन द्वारा वापस जाने के लिए मुजफ्फरपुर स्टेशन पहुँचे। ट्रेन का समय हो गया था इसलिए स्वामी जी प्लेटफार्म पर चले गये और हरिश बाबू टिकिट लेने के लिए गये। प्रथम श्रेणी का टिकिट लेकर जब वे प्लेटफार्म पर आये तब स्वामी जी उन्हें वहां कही भी दिखलाई नहीं दिये। उन्होंने कई बार पूरा प्लेटफार्म देखा परन्तु स्वामी जी का कहीं भी पता नहीं चला। टिकिट वापस कर उन्होंने सीधे कनौली में धीरेन दत्त के पास जाकर सब बातें कही। धीरेन दत्त ने कहा कि ऐसा लगता है स्वामी जी अपने स्थूल शरीर के साथ नहीं आये थे, सूक्ष्म रूप से आये थे। इसी कारण जल मांगकर, फिर हम सभी को भूला दिया। उन्होंने हमे वचन दिया था कि पूजा के समय सब लोगों से मुलाकात करने यहां आएंगे। उन्होंने अचानक इस तरह आकर सभी को दर्शन दिया। परन्तु उनकी चतुराई हम लोगों के पकड में नही आयी। आप बड़े भाग्यवान हैं क्योंकि उनके चिन्मय देह के साथ, उनको स्पर्श करते हुए एक साथ बहुत समय व्यतीत किया। धीरेन बाबू एवं हरिश बाबू अन्त में पशुपति बाबू के पास गये। वहाँ पहुँचते ही पशुपति बाबू ने कहा–'क्या, कुछ समझ में आया? या केवल साथ में बैठकर घुमते रहे?' हरिश बाबू ने उन्हें रेलवे स्टेशन की घटना का विवरण दिया तब उन्होंने कहा–'मने जब स्वामी जी के चरणों को स्पर्श किया तब उनका शरीर बर्फ की तरह ठंडा था। मने उनसे इसका कारण पूछना चाहा परन्तु उन्होंने मुझे इशारे से मना किया। एक जीवित व्यक्ति का शरीर इतना ठंडा कभी नहो हो सकता।" हरिश बाबू लगभग तीन घण्टा उनके साथ रहकर विभिन्न स्थानों पर गये लेकिन आनन्द की उत्तेजना में वे इस तरफ ध्यान ही नही दे पाये। इस घटना का पूरा विवरण देकर हरिश बाबू ने रामचन्द्रपुर आश्रम में पत्र लिखा। पत्र के उत्तर में स्वामी जी ने लिखा–

'ॐ गुरू'

स्नेहमय पुत्र, आश्रम, दिनांक १२-१०-१९५३

तुम्हारा सुन्दर पत्र मिला। तुम लोगों के प्रेममय स्पर्श से, इस बार दुर्गा अष्टमी की सन्धिपूजा सार्थक हुई। तुम्हारी माँ ने तुम्हे आशीर्वाद भेजा है।

हे आत्मभोला सन्तान, एकान्त एवं निर्जन में बैठकर चिन्ता करो–तुम कौन हो? तुम्हारे पवित्र जीवन की भक्ति रस धारा, तुम्हारे सभी भाई-बहनों के जीवन में नवीन प्रेरणा प्रदान करेगी।

मेरा आशीर्वाद भेज रहा हूँ। ब्रज के कोयल–ब्रज रस धारा को परोसते हुए तुम इस जीवन का कार्य समाप्त करते जाओ।

आशीर्वादक--बाबा।

स्वामी जी के पत्र के उत्तर में हरिश बाबू ने एक कविता लिखकर उन्हें भेजा। कविता का भावार्थ था–'हे मेरे प्रभु, मेरा 'मैं' कौन है? इसे तुम मुझे बता दो, नहो तो आना-जाना व्यर्थ होगा। मुझे समझा दो कि मेरा 'मैं' कौन है? मेरा ध्यान-धारणा, साधन-भजन अतुलनीय चरणों का चिन्तन हो। मेरा मन भगवत् रूप के सागर में डुबा रहे। कहो, मेरा 'मैं' कौन है? मेरे 'मैं' के भीतर–तुम प्रकट हो । भव बन्धन के कारावास से मुझे मुक्त करो। हे चित्चोर मेरे चित्त की चोरी करो। जिस दिन तुम्हारी कृपा मिलेगी उस दिन अपने हृदय में स्वयं को पा जाऊँगा। उस दिन तुम–मैं एक होगा। 'मैं' कौन है–इसे जानूँगा–इसे पहचानूँगा। 'मै' कौन है इसे बतलाओ।

इस कविता के उत्तर में स्वामी जी ने लिखा–

पागल हरिश–
ब्रज का पपीहा केवल गाना गाता है–गानें में उसका विराम नहीं है,
आनन्द रस-धारा के प्रवाह में उसे मैं देखता हूँ।
वह केवल हँसता हुआ–सभी को हँसाता है, रोता हुआ–सभी को रूलाता है,
इस वसुधा के सभी बन्धुओं को अपना बनाकर बाँधा है।
अपना पराया इसमें विचार नही है–प्रेम रस से वह सर्वदा परिपूर्ण है,–
उसकी मूर्ति, भावना के मध्य सदा आनन्दप्रद है।
कुछ भी न माँगते हुए, केवल वितरण में ही उसका आनन्द है,
भावुक पागल की केवल भावना को लेकर सर्वदा लीला चल रही है।
यमुना के तट में कुंजों के पथ में नित्य उसका आना-जाना है,
राधाकृष्ण के संगीत से–उसका उदार हृदय परिपूर्ण है।
कभी नृत्य कभी गाना–कभी अनुराग तो कभी अभिमान,
उसका मधुर नटखटपना भी सर्वदा साथ-साथ है।
पागल पुत्र का यह मधुर प्रेम एवं उसका भाव भी मधुर है,
निशिदिन सोचता हूँ इसे कहां रखने से, उसे ठीक रखना होगा।
देखा मेरे इष्ट का रूप विश्व में व्याप्त है,

इस कारण आदर पूर्वक उसे प्रत्येक रूप में, पास में रखा।
रूप-रूप में इष्ट के रूप को देखकर—उसकी मधुर स्मृति रह जाती है,
उसके जीवन का जो कुछ भी है—वह उस रूप में विलीन हो जाता है।
मैं हृदय में मिलन की महिमा को धारण करता हूँ,
हरिश के दिए हुए स्नेह के साथ, उसे भी प्राप्त कर अपने को धन्य मानता हूँ।
ब्रज का पपीहा केवल अविराम गान करता है—उसका विश्राम नहीं है,
दूर से मैं प्राण भरकर—दिवानिशि उसे सुनता रहता हूँ।

(६) मुजफ्फरपुर में कनौली में धीरेन दत्त के बगीचे पर 'तपोवन' नाम से आश्रम बनाने का विचार किया गया। उस स्थान पर स्वामी जी ने १२ दिनों का व्रत पालन किया था। सारे दिन मौन व उपवास रहते हुए सन्ध्या के बाद वे थोड़ा सा दूध लेते थे। व्रत समाप्ति के दिन लगभग चार मील संकीर्तन करते हुए शहर में परिकमा की गई थी। उस समय महोत्सव का जो आयोजन किया गया था उसकी मधुर स्मृति ने सभी लोगो के मन में विशेष आनन्द प्रदान की। इस स्थान पर लीची के एक विशाल वृक्ष के नीचे, ऐसा कहा जाता है, गौतम बुद्ध के प्रमुख शिष्य आनन्द की समाधि थी। यहां स्वामी जी ने विशाल होमकुण्ड बनाकर यज्ञ का आयोजन किया था। इस यज्ञ के पश्चात् लगभग एक महिने तक यहां होम की सुगन्ध का अनुभव लोगों ने किया था।

(७) सन् १९५० ई. की एक घटना है। स्वामी जी रामचन्द्रपुर आश्रम में थे। धीरेन दत्त यद्यपि स्वामी जी के शिष्य नहीं थे, लेकिन उनकी गुरूवत् श्रद्धा करते थे। मुजफ्फरपुर में धीरेन दत्त के यहां एक बहुत अच्छी 'महिदाना' नामक मिठाई कहो से लाया गया। वे साधारणतः सर्वदा भोग निवेदन करने के पश्चात् उसे ग्रहण करते थे। उस दिन लोभ-वश उन्होने मिठाई पहले खा लिया, निवेदन करना भूल गये। फिर तुरन्त ख्याल आने पर उन्होंने मन में स्वामी जी से प्रार्थना किया कि 'तुम मेरे भीतर से उसे ग्रहण करो।' तीन-चार दिन बाद उन्हें स्वामी जी का पत्र मिला—"तुम्हारा दिया हुआ भोग, मने तुम्हारे माध्यम से ग्रहण किया है।'

(८) सन् १९५१ ई. दुर्गापूजा के समय महाष्टमी की पूजा के पश्चात् धीरेन बाबू अपनी पत्नी के साथ 'तपोवन' में स्थित लीची के वृक्ष की प्रदक्षिणा करते हुए गाने लगे—'मेरे हृदय मन्दिर में तुम जागो.......।' दो-चार दिनं बाद स्वामी जी का पत्र मिला—"तुम लोगों का भजन गान आकाश द्वारा मेरे पास पहुँचा।" पत्र में उन्होंने वह बंगला भजन पूरा लिख कर भेजा था। स्वामी जी के सम्बन्ध में धीरेन बाबू कहा करते थे—मैंने बहुत दिनों तक स्वामी जी का संग किया है। उनकी अनेक अलौकिक लीला को मैंने प्रत्यक्ष देखा है। उनका सब वर्णन करना उचित नहीं है। मेरी माँ कहती थी कि मन की अनुभूति अपने भीतर रखना ही उचित है, इससे विश्वास दृढ़ होता

है। मैंने स्वामी जी की तीन दिन लगातार समाधि देखी है। दो-चार घण्टे की समाधि भी कई बार देखी है। हमारे परिवार के सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ भी कहा था, सत्य हुआ। कई बार अनेक कार्यों के सम्बन्ध में उन्होंने हमे पहले से सावधान कर दिया था। उनका संग करने पर, उनके अन्तर्निहित प्रेम-भाव को देखकर लोग अपने आप आकर्षित हो जाते थे।

(९) स्वामी जी जिस दिन रामचन्द्रपुर से वृन्दावन पदयात्रा के लिए निकले थे उस दिन से हरिश बाबू ने अपनी मंडली के साथ नित्य शेष रात्रि के अन्तिम प्रहर में नगर-संकीर्तन प्रारम्भ किया था। नगर-संकीर्तन स्वामी जी के वृन्दावन पहुँचते तक नित्य किया गया था। स्वामी जी पदयात्रा करते हुए जब काशी धाम पहुँचे थे तब वहां से हरिश बाबू को एक पत्र में लिखा था–

'ॐ गुरू'

कल्याणवरेषु वाराणसी, १४-११-५७

बाबा,..........हमलोग दो दिन काशी में आनन्द पूर्वक रहे। कल प्रातः पांच बजे यहां से यात्रा शुरू होगी। तुम लोगों के प्रातः कीर्तन की ध्वनि मेरे पास पहुँचती है। करीमगंज के भक्तो द्वारा, इसी तरह संध्या के समय कीर्तन की ध्वनि मैं श्रवण करता हूँ। निम्न पते पर खबर लेकर देखना कि वे नित्य संध्या सात बजे कीर्तन करते हैं या नहीं।........ स्नेहार्थी–बाबा।

स्वामी जी ने आसाम (करीम गंज) का एक पता भी हरिश बाबू को भेजा था।

(१०) एक दिन 'तपोवन' में स्वामी जी ने गोस्वामी जी को भोग निवेदन किया। निवेदन के पश्चात् भोग में अन्न ग्रहण का सुस्पष्ट चिन्ह दिखलाई पड़ा एवं भोगगृह से चन्दन की तीव्र सुगन्ध निकल रही थी। स्वामी जी यहां से लगभग १०० हाथ की दूरी पर समाधिस्थ थे, लोगों ने वहां तक चन्दन की सुगन्ध का अनुभव किया।

इस प्रकार की असंख्य घटनाएं मुजफ्फरपुर मे हुई।

(ग) **आसाम** :– कामरूप कामाक्षा देवी का दर्शन एवं अन्य स्थानों का भ्रमण–

स्वामी जी आसाम प्रान्त के विभिन्न स्थान पर कई बार गये थे। सब घटनाओं का यहां विवरण देना संभव नहीं है। स्वामी जी के स्वकथित एवं वहां उपस्थित लोगों के द्वारा बतलायी गयी कुछ घटनाओं का विवरण यहां दिया जा रहा है–

(१) स्वामी जी से प्रार्थना करने पर उन्होंने अपने साथ बीती दो-एक घटनाएं बतलाई, जिसे यहां दिया जा रहा है–(i) मैं १६ अप्रेल, सन् १९५६ ई. को, एक व्यक्ति को दीक्षा देने के लिए आसाम गया था। वहां स्टेशन में उसे उपस्थित रहने के लिए पहले से तार द्वारा सूचित कर दिया गया था। परन्तु जब लामडि नामक स्थान में उतरा तब वहां किसी को न देखकर सोचने लगा कि इस अपरिचित स्थान में कहां

जाऊँ! रूपया भी सब समाप्त हो गया था, भूख भी लगी थी और कुछ उपाय भी नही था। चुपचाप स्टेशन में एक कुर्सी पर बैठकर नाम-जप करने लगा। थोड़ी देर बाद एक १३-१४ वर्ष का काले बदन का बंगाली लड़का आया और एक थाली मेरे सामने रखते हुए कहा कि 'महाराज कृपा करके आप इसे ग्रहण कीजिए।' थाली में रोटी एवं सब्जी थी। मैं आश्चर्यचकित होकर उससे पूछा कि यह सब किसने भेजा? लड़का दूर मे एक स्थान को दिखाता हुआ कहा –'वहाँ एक बंगाली बाबू रहते हैं, उन्होंने भेजा है।' मैं विस्मित होकर सोचने लगा कि ये बाबू कौन है एवं मुझे किस तरह पहचाना? खैर, मैंने भोजन कर लिया । भोजन बहुत ही स्वादिष्ट था। लड़के ने पूछा–'पेट भर गया है ना?' मैंने हँसते हुए कहा–'हाँ, भूख मिट गई।' लड़का थाली लेकर चला गया। लड़के के जाने पश्चात् होश आया कि वह लड़का कौन था? आसपास खबर लिया कि यहां कोई बंगाली बाबू रहते है? लोगों ने बतलाया कि यहां एक मील के भीतर कोई बंगाली नहीं रहते है। उस बंगाली लड़के एवं बंगाली बाबू के सम्बन्ध में कुछ पता न चला।

(ii) ३१ अक्टूबर सन् १९५६ ई. को मुझे विशेष कार्य-वश मुजफ्फरपुर जाना पड़ा। वहां धीरेन दत्त के 'तपोवन' में ठहरा। १ नवम्बर, काली पूजा का दिन था। उस दिन एक अद्भुत स्वप्न देखा–मैं एक ऊँचे पहाड़ पर चढ़ रहा हूँ। पहाड़ के ऊपर एक मन्दिर है। उसमें एक गहरे स्थान पर ऊँची वेदी है। वेदी के ऊपर आठ सुन्दरी देवियाँ दिखलाई पड़ी। उनके मध्य सुन्दर शिशु को लेकर एक असाधारण रूपलावण्यमयी कुमारी देवी बैठी है। वेदी एवं मन्दिर के मध्य संकीर्ण स्थान पर दरवेश जी महाराज को उच्च स्वर में स्तोत्र पाठ करते हुए देखा। मेरे वहां पहुँचते ही वे खड़े हो गये एवं कहा–'प्रणाम करो।' मैंने साष्टांग प्रणाम किया। बाहर आने पर देखा, एक सुन्दरी बालिका बैठी हुई है। मैंने उसे प्रणाम किया। मन में उसकी पूजा करने की इच्छा हुई। पूजा की विधि-अनुष्ठान आदि मुझे मालूम नहीं है–ऐसा मन में सोचने पर ही उस कुमारी ने मुझे पूजा की विधि बतला दी। मैंने आनन्दपूर्वक पूजा सम्पन्न की। पूजा समाप्त होने पर उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखकर कहा–'मुक्त हो जाओ! मुक्त हो जाओ!! मुक्त हो जाओ!!!' मेरी नींद टूट गई। वहां कुछ लोगों से मैंने स्वप्न के सम्बन्ध में चर्चा की। दिन भर एक विशेष आनन्द में डूबा रहा। २ एवं ३ नवम्बर को पुनः इसी स्वप्न को देखा । ३ नवम्बर को अचानक दरवेश जी ने दर्शन देकर कहा–''जितना जल्दी संभव हो तुम कामाक्षा चले जाओ। देर मत करना।''

मुजफ्फरपुर से पटना होते हुए १० नवम्बर को आश्रम लौटा। वहां से झरिया जाकर पुनः आश्रम में आया। १३ नवम्बर को दरवेश जी ने फिर दर्शन देकर कहा–''अब देर मत करो। १५ नवम्बर के भीतर तुम्हारा कामाक्षा पहुँचना आवश्यक है। वहां ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे चन्द्रकांत नामक एक वृद्ध ब्राह्मण साधु, मृत्यु की

प्रतीक्षा कर रहा है। उसके साथ तुम्हारा पूर्वजन्म का सम्बन्ध है। उसका अन्तिम कार्य तुम्हें करना है। उसे तुम मन्त्र प्रदान करना। उसके पश्चात् उसकी मृत्यु होगी। मृत्यु के बाद उसे जल-समाधि देना। यह कार्य बहुत आवश्यक है।''

मैं दरवेश जी के निर्देशानुसार उसी दिन कोलकाता गया। वहां से कामाक्षा जाने के लिए किराया नहीं था। अचानक कुछ रूपया टी. एम. ओ द्वारा प्राप्त हुआ। प्रेषक का नाम एवं पता पढ़कर अपरिचित लगा। उसमें लिखा था–'हम लोगों के पास आपका जो रूपया था, उसे भेज रहे हैं। ' सब कुछ आश्चर्यजनक लगा। मेरे पास जो रूपया था उसके साथ इन रूपयों को मिलाकर देखा कि गोहाटी तक हवाई जहाज का टिकिट हो जाएगा। उसी दिन टिकिट बना लिया। वहां से निकलने के पूर्व पचास रूपये का एक और मनिआर्डर मिला । राह खर्च का रूपया भी अपने आप मिल गया। गोहाटी से कामाक्षा पर्वत के पास आकर सोचने लगा कि रास्ता मालूम नहीं है, किधर जाने से अच्छा रहेगा? अचानक एक व्यक्ति ने मेरे पास आकर कहा–''क्या आप कोलकाता से आ रहे हैं? गेरूआ वस्त्र धारण किये एक जटाधारी वृद्ध महात्मा ने आपका सामान लेकर पहाड़ के ऊपर ले जाने के लिए मुझे भेजा है।'' उसकी बात सुनकर आश्चर्य हुआ कि यहां पर आने का संवाद तो मैंने किसी को नही भेजा था। खैर, उस व्यक्ति के साथ पहाड़ पर चढने लगा। पहाड़ का दृश्य, मैंने स्वप्न में जैसा देखा था, ठीक उसी तरह का था। वह मुझे विमल नामक एक पण्डे के पास ले गया। पण्डा मुझे देखकर बहुत आनन्दित हुआ एवं अपने घर पर ले जाकर दुमंजिल मे एक कमरा, रहने के लिए दिया। कमरा अच्छी तरह सुसज्जित था।

पण्डा ने कहा–'मैं आपकी कुछ दिनो से प्रतीक्षा कर रहा था।' मेरे लिए अत्यन्त विस्मय का विषय था कि यह व्यक्ति मेरा पूर्णतः अपरिचित है। थोड़ी देर पश्चात् शंकर चैतन्य ब्रह्मचारी नामक एक लड़के ने आकर मुझे प्रणाम किया। उसने मुझे अपना परिचय दिया। वह मानभूम जिले के एक गांव में रहता था । दस वर्ष पूर्व मेरा स्वेच्छा सेवक रहा था। यहां, पण्डे की गुरू माँ उषांगनी देवी के जमीन आदि की देख-रेख करता है। वह मुझे अपने साथ ले जाने के लिए जिद करने लगा लेकिन विमल पण्डा ने भी मुझे नहीं छोड़ा । मेरा मन उस समय एक दूसरे जगत में विचरण कर रहा था। विमल पण्डा के अनुरोध से मैंने थोड़ी चाय ली।

शाम के समय शंकर चैतन्य ने मुझे साथ ले जाकर मन्दिर के आसपास सब दिखलाया। मैंने स्वप्न में इसी मन्दिर को देखा था। मेरा शरीर थका हुआ था अतः वापस आकर भोजन के पश्चात् निद्रित हो गया। रात्रि में स्वप्न देखकर लगभग दो बजे मैं जाग उठा। ऐसा लगा ''मैं धनबाद में अपने परिचित अत्यंत अस्वस्थ दिगम्बर चकवती को दीक्षा प्रदान कर रहा हूँ। दीक्षा के बाद उसकी शारीरिक अवस्था अच्छी होने लगी। इसके पश्चात् देखा कि गोसाँई जी व दरवेश जी के साथ मैं पुनः कामाक्षा

-पर्वत पर आ गया हूँ।'' अब जागृत अवस्था मे, उनके निर्देशानुसार पहाड़ के संकीर्ण पथ से मैं नीचे उतरने लगा। बिस्तर से मैं खुले बदन ही निकल पड़ा था। १५ नवम्बर की गहन रात्रि में पहाड़ पर अत्यन्त ठण्ड थी। किसी प्रकार ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे पहुँचा। वहां एक कुटिया में गेरूआ वस्त्रधारी एक वृद्ध सोए हुए थे। वहां कुलदानन्द ब्रह्मचारी महाराज, दरवेश जी एवं गोसाँई जी को उपस्थित देखा। गोसाँई जी ने मुझसे कहा–''इसे मन्त्र प्रदान करो।'' मैंने कहा–'तुम लोग तो हो, फिर मुझे क्यों आदेश दे रहे हो।' गोसाँई जी ने कहा–''नहीं, अभी तुम्हें ही यह कार्य करना होगा। यह कार्य अभी तुम्हारा है।" उनके निर्देशानुसार मैंने उस वृद्ध को मन्त्र सुनाया। मन्त्र सुनकर वृद्ध चौंक उठे एवं उठकर बैठ गये। 'आप आ गये।' ऐसा कहकर उसने मुझे प्रणाम किया। उसकी आँखों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगा, शरीर में हर्ष-पुलक-कम्पन होने लगा एवं चेहरा उज्ज्वलता से परिपूर्ण हो गया। फिर आँखे बन्दकर उन्होंने प्राण त्याग दिया। गोसाँई जी उसकी आत्मा को लेकर शिष्यों सहित अदृश्य हो गये।

मैंने वृद्ध को उसके वस्त्रों के साथ बांधकर एवं उसमें पत्थर भरकर ब्रह्मपुत्र नदी में प्रवाहित कर जल समाधि दिया। उस समय प्रातः चार बज रहा था। गीले वस्त्रो के साथ ठंड में कांपते हुए मैं लगभग पांच बजे विमल पण्डे के घर पहुँचा। कपडे बदलकर, कम्बल ओढ़कर अपने बिस्तर में जाकर बैठ गया। मन मे आया कि थोड़ी चाय पीने से अच्छा होता। ठीक उसी समय विमल पण्डे ने ग्लास भरकर चाय ले आया। मैं विस्मित होकर पूछा–'मैं चाय पीने के लिए मन में सोच रहा था, लेकिन आप कैसे जान गये?' उन्होंने कहा–''मैं रोज प्रातः चाय लेता हूँ। आज दूसरे दिनों की अपेक्षा कुछ पहले जाग गया एवं चाय बनाने के पश्चात् आपको भी देने का विचार मन में आया। इस कारण चाय ले आया।''

थोड़ी देर पश्चात् भुवनेश्वरी मन्दिर का दर्शन कर कामाक्षा देवी का दर्शन करने पहुँचा। मन्दिर के भीतर जाने पर, स्वप्न में जैसा देखा था ठीक वैसा ही, अष्टकुमारी देवियों को देखा। मैंने भक्ति-भाव से उनकी पूजा की। पूजा समाप्त होने के बाद उनमें से एक कुमारी मेरे पास आकर, हाथ के ईशारे से बुलाकर बाहर ले गई एवं एक कमरे में मुझे ले आयी। पूजा की विविध सामग्री वहां सुसज्जित थी एवं देखा कि विमल पण्डा की कुमारी कन्या की 'कुमारी पूजा' होगी। मेरी पथ प्रदर्शक देवी ने मुझसे कहा–'मेरी पूजा करो।' मैंने मन में निवेदन किया कि 'माँ! अनुष्ठान सहित पूजा की विधि तो मुझे मालूम नहीं है। लेकिन, यदि कृपा करके तुम मुझे बतला दो तो मैं उस तरह पूजा कर सकता हूँ।' मन में ऐसा विचार करने के साथ ही देखा कि देवी, विमल पण्डे की कुमारी कन्या के भीतर विलीन हो गई। उस कन्या का शरीर ज्योतिर्मय एवं उज्ज्वल हो उठा। फिर मुझे ऐसा लगा कि मैं उसके गोद में पुत्र के रूप में बैठा हूँ। मैंने निश्चिन्त होकर अपने को अर्पण कर दिया। थाड़ी देर बाद अपने को

कुमारी के चरणों के पास बैठा हुआ देखा एवं ऐसा लगा कि मैं उनकी पूजा कर रहा हूँ। कुमारी माता मुझसे कहने लगीं–'जल से मेरे चरणों को धोकर उसमें अलता लगा दो। अश्रुपूर्ण नेत्रों से देवी के चरणों को धोकर उसमे अलता लगा दिया। फिर उनके कोमल चरणकमलों को अपने सिर पर रखते हुए मन में प्रार्थना किया–'माँ, इसके साथ मैंने अपना जीवन, मन, सबकुछ तुम्हारे चरणो में सौंप दिया। कृपा कर तुम्हारे इस सुशीतल चरणों से मुझे वंचित मत करना।' मेरी आँखो से अविराम अश्रु निकल रहा था। देवी के मनोहर हास्य युक्त आनन को देखकर आत्मनिवेदन करने की व्याकुल भावना हुई। पुष्प एवं चन्दन के साथ अपने 'स्वयं' को माँ के चरणो मे अंजली प्रदान किया। माता, छोटे शिशु की तरह मुझे गोद में लेकर स्नेह पूर्वक चुम्बन करते हुए, मेरे सिर पर हाथ रखते हुए, बोलीं–''मुक्त हो जाओ! मुक्त हो जाओ!! मुक्त हो जाओ!!!'' इसके पश्चात् स्नेहयुक्त कण्ठ से बोली–'अब मेरे मुँह में भोजन दो।' माँ के मुँह में खीर, मक्खन, मलाई देकर जल दिया एवं अन्त मे पान दिया। मॉ को प्रणाम करते हुए पूछा–'माँ! मेरी पूजा तुमने ग्रहण किया है ना?' माँ स्नेहपूर्ण वाणी से बोली–'बेटा! इसीलिए तो तुझे यहां बुलाकर लाई हूँ। एक गोपनीय बात तुझे मैं कह रही हूँ–तेरे आश्रम के दक्षिण मे जो सुन्दर पहाड है वहां एक स्थान मैं तुझे बतला दूँगी, प्रत्येक वर्ष अम्बुवाची (बंगला आषाढ़ महिने में) के दिन मेरी पूजा एकान्त में करना, फिर वहां पर मेरा दर्शन मिलेगा। इसके साथ हर वर्ष दुर्गापूजा में दसभुजा दुर्गा की मूर्ति स्थापित कर शरत्काल में मेरी पूजा करना। मैं इस मूर्ति में प्रतिवर्ष तेरे पास आऊँगी। श्रीगुरू तेरे सहायक हैं–तुझे क्या चिन्ता है? मैं तेरे साथ रहूँगी–तुझे सर्व सिद्धि प्राप्त होगी–यह मेरा आशीर्वाद है।" माँ अप्रकट हो गई। मुझे होश आया। देखा अश्रु से मेरा वस्त्र भीज गया है एवं मैं विमल पण्डे की कुमारी कन्या के चरणों के पास बैठा हुआ हूँ। ('संगठन' १९६० विशेष सख्या से)

(२) ४ जनवरी, १९५९ ई. को स्वामी जी मुजफ्फरपुर से दार्जिलिंग, पाण्डू, मेथानी टी स्टेट, जोरहाट, वरदपुर, शिलचर भ्रमण करते हुए देवान नामक स्थान पर पहुँचे। विभिन्न स्थानों में असंख्य लोग स्वामी जी के सत्संग से उपकृत हुए, कई लोगों ने दीक्षा प्राप्त की। देवान में प्रातःकाल सब लोग स्वामी जी के दर्शन के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे। साधारणतः स्वामी जी ३-३.३० बजे स्नान आदि से निवृत होकर ४ बजे गीतापाठ एवं कीर्तन करने आ जाते थे। उस दिन उनके आने में देरी होने पर सभी चिन्तित हो उठे। इस तरह जब सुबह ८ बज गये तब शीला नामक लड़की कौतूहलवश स्वामी जी के कमरे का दरवाजा खोलकर उन्हें देखने के लिए भीतर गई। फिर घबराते हुए बाहर आकर कहने लगी कि स्वामी जी अपने आसन पर नहीं है। कई लोगों ने कहा कि इस तरह स्वामी जी के कमरे में उनकी अनुमति के बिना जाना अनुचित हुआ। कमरे का दरवाजा पूर्ववत् बन्द कर दिया गया। इस घटना के

लगभग एक घण्टे पश्चात् स्वामी जी बाहर आए एवं आराम कुर्सी पर आँखें बन्दकर बैठ गये। दोनों हाथ करबद्ध मुद्रा में थे। उनके लिए चाय लाई गई किन्तु उन्हें चिन्ता मग्न अवस्था मे देखकर उन्हें चाय देने के लिए साहस किसी में नहीं हुआ। वह दिन इसी तरह बीत गया। दूसरे दिन स्वामी जी स्वाभाविक अवस्था में थे। उन्होंने कहा–''कोलकाता में सुनीत अत्यन्त अस्वस्थ हो गया है। मुझे शिलचर होते हुए यथाशीघ्र कोलकाता पहुँचना आवश्यक है।'' स्वामी जी यथा समय शिलचर गये। वहां उन्हें दो टेलिग्राम मिला पहले टेलिग्राम में लिखा था–'सुनीत बाबू अत्यन्त अस्वस्थ हैं।' दूसरा टेलिग्राम बाद में आया। उसमें लिखा था–'सुनीत बाबू का स्वास्थ कमशः अच्छा हो रहा है।'

१९ जनवरी को स्वामी जी शिलचर से कोलकाता पहुँचे। वहां जाने पर पता चला कि १५ जनवरी को रात्रि के समय सुनीत बाबू अचानक अत्यन्त अस्वस्थ हो गये थे। उन्हें तुरन्त अस्पताल में भर्ती किया गया । १६ जनवरी को उनकी शारीरिक अवस्था अत्यन्त नाजुक हो गई थी। सभी ने उनके जीवन की आशा त्याग दी थी। परन्तु दोपहर से अचानक उनका स्वास्थ्य सुधरने लगा। स्वामी जी के साथ जो भ्रमण कर रहे थे वे समझ गये कि स्वामी जी १६ जनवरी को क्यों इस तरह चिन्तामग्न अवस्था में थे। स्वामी जी अस्पताल में सुनीत बाबू को देखने भी गये।

स्वामी जी कहा करते थे–'तुम सभी लोगों के साथ मेरे हृदय का योग है। मेरा हृदय सर्वदा तुम सभी के हृदय के साथ युक्त रहता है। तुम लोगों का सुख-दुःख, कष्ट-दर्द मेरे हृदय में कम्पन सृष्टि करता है। मैं तुम लोगों के लिए गुरू जी के चरणों में प्रार्थना करता हूँ। मैं कभी भी किसी के ऊपर आन्तरिक तौर पर कोधित नहीं होता हूँ। कोई मेरे प्रति कितना भी खराब व्यवहार करे या कोई मतलब लेकर आए, मैं उन्हें आन्तरिक भाव से ग्रहण कर, गुरूदेव के निकट उसके कल्याण के लिए प्रार्थना करता हूँ। तुम लोग याद रखना–सर्वदा विश्वास रखना कि मैं तुम लोगों का सच्चा सेवक हूँ। सेवा करना ही मेरा कार्य है–पूजा लेना नहीं। मेरे साथ किसी का आर्थिक या जड़गत वस्तुओं से सम्बन्ध नहीं है। मेरे अन्तर की श्रद्धा, प्रीति, भक्ति, प्रेमभावना द्वारा तुम लोगों के भीतर प्रतिष्ठित मेरे प्रेममय गुरूजी की पूजा-उत्सव प्रत्येक क्षण में मैं सम्पन्न कर रहा हूँ।'' ('संगठन' बंगला सन् १३६६ से संग्रहित)

(घ) **दार्जिलिंग** :– दार्जिलिंग में स्वामी जी कई बार आए थे एवं यहां The Light नामक मकान में ठहरते थे। यहां स्वामी जी के एक गुरूभाई स्वामी प्रणवानन्द जी के पूर्वाश्रम के भाई के परिवार के लोग रहते थे। उनके आन्तरिक भक्ति-भावना को देखकर स्वामी जी यहीं ठहरते थे। यहां अनेक लोगों की दीक्षा हुई एवं कीर्तन के समय स्वामी जी को तीन-तीन, चार-चार घण्टे तक समाधिस्थ अवस्था में देखा गया। स्वामी जी जहां भी जाते वहां, उनके आनन्दमय रूप एवं प्रेम भावना से लोग

आकर्षित होकर चले आते थे। जहां वे ठहरते थे, वह स्थान कीर्तन, ध्यान, सत्संग, वार्तालाप आदि से अत्यन्त मधुर एवं आकर्षक लगता था। स्वामी जी अपने सहज-सरल भावना से बालक-वृद्ध सभी के साथ मिलते रहते थे। स्वामी जी के पास किसी को संकोच या भय नहीं होता था। सभी उन्हें अपने अत्यन्त निकटतम परम-आत्मिय समझते थे। उन्हें ऐसा लगता था कि स्वामी जी उन्हे ही सबसे अधिक प्रेम करते हैं। दीक्षा प्रदान करते समय या समाधि अवस्था में उन्हें देखने पर जिस तरह उनकी महान्ता एवं अपनी हीनता का बोध होता था, साधारण अवस्था में स्वामी जी को देखने पर, उन्हें एक स्नेहमय पिता के समान लगता था।

दार्जिलिंग की कुछ घटनाओं का उल्लेख यहां किया जा रहा है–

(१) स्वामी जी को एक दिन कीर्तन के समय भावमग्न अवस्था में देखकर कीर्तन जल्दी बन्द कर दिया गया। तब स्वामी जी ने उसी अवस्था में लिखा–''यहां गोसाँई जी, दरवेश जी , कुलदानन्द ब्रह्मचारी जी, भोलागिरि, काठियाबाबा, परमहंस जी आदि अनेक महात्मा उपस्थित हैं–कीर्तन बन्द मत करो–तुम सब कीर्तन करो। पुनः कीर्तन प्रारम्भ किया गया। स्वामी जी गहन समाधि में मग्न हो गये।

(२) एक दिन सुबह स्वामी जी ने कहा–'रमणी' का आज देहान्त हो गया।' दोपहर को टेलिग्राम मिला कि रमणी मोहन साहा का देहान्त हो गया है। वे दरवेश जी के शिष्य थे एवं स्वामी जी की अत्यन्त श्रद्धा करते थे।

(३) यहां एक दिन स्वामी जी से पूछा गया–'भावमग्न अवस्था में आप कहते हैं कि कीर्तन करो–यहां गोसाँई जी, दरवेश जी......आदि आए हैं....इत्यादि। वास्तव में क्या वे सब आते हैं?' स्वामी जी ने दृढ़तापूर्वक कहा–''हाँ, यह निश्चित रूप से सत्य है। अच्छा, आज तुम लोगों को रात्रि के समय कीर्तन में इसका प्रमाण दिखा दूँगा।''

उस दिन कीर्तन के समय दो आसन अलग-अलग बिछाया गया। आसन के नीचे नरम गद्दी रखी गई, जिससे पता चल जाये कि इस पर कोई बैठा था। कीर्तन समाप्त होने पर स्वामी जी भाव-मग्न हो गये। बाद में देखा गया कि आसन में कोई बैठा था। आसन पर बैठने का सुस्पष्ट निशान देखकर सभी विस्मित हो गये।

(५) विभिन्न स्थानों पर घटित कुछ घटनाओं का विवरण :–

(१) मृत व्यक्ति की जीवात्मा की दीक्षा :– स्वामी जी ने अनेक मृत व्यक्तियों को भी दीक्षा प्रदान की है। यहां इस प्रकार की दो घटनाओं का उल्लेख किया जा रहा है–

(क) वीणादेवी नामक एक महिला ने इस घटना का विवरण देते हुए कहा कि उसकी सहेली अपने पति के देहान्त के बाद स्वामी जी से दीक्षा लेने के लिए व्याकुल हो गई। उसने स्वामी जी से प्रार्थना किया कि उसके मृत पति की दीक्षा भी उसके साथ हो। निर्दिष्ट दिन पर वह अपनी सहेली को दीक्षा दिलवाने ले गई। जिस कमरे

में दीक्षा होनी थी वहां दो आसन बिछाये गये थे। एक में सहेली बैठी और दूसरे आसन मे उसके पति का एक चित्र रखा गया। कमरे में, उसके अलावा और भी लोग दीक्षा के समय उपस्थित थे। जब स्वामी जी ने अपने गुरू का आवाहन करते हुए दीक्षा देना प्रारम्भ किया तब मृत व्यक्ति का चित्र अपने आप हिलने लगा। सभी लोगों ने अपनी आँखों के सामने यह दृश्य देखा। जैसे ही दीक्षा समाप्त हुई, सभी ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि चित्र का कम्पन अपने आप बन्द हो गया। स्वामी जी से पूछने पर उन्होंने कहा–'दीक्षा के बाद उसकी आत्मा ज्योतिर्मय रूप धारण कर चली गयी है।'

(ख) एक प्रख्यात वकील कोर्ट से घर आये, वहां अचानक दिल का दौरा पड़ने से उनका देहान्त हो गया। उनकी पत्नी, स्वामी जी की शिष्या थी। पति की मृत्यु के पश्चात् वह स्वामी जी से मृत पति को दीक्षा देने के लिए प्रार्थना करने लगी। निर्दिष्ट दिन पति का चित्र रखकर स्वामी जी ने दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के समय कई लोगों ने चित्र को हिलते हुए देखा। वकील की आत्मा की दीक्षा के पश्चात् स्वामी जी ने उसकी पत्नी से कहा कि तुम्हारे पति ने मुझसे कहा है–''आपने मुझे दीक्षा देकर मुक्त कर दिया है। मैंने ज्योतिर्मय देह प्राप्त की है। मैंने अपने घर की दिवाल में एक स्थान पर गड्ढा कर उसमें कुछ रूपया रखा था। मेरी अचानक मृत्यु हो जाने से मैं किसी को भी इस सम्बन्ध में बता नहीं पाया। आप कृपा करके मेरी पत्नी को यह बतला दीजियेगा एवं वह इन रूपयों में से कुछ रूपये आपके सेवा-कार्य में दान कर देगी। ऐसा कहकर उसकी ज्योतिर्मय आत्मा स्वर्गलोक चली गयी।''

स्वामी जी की बात सुनकर वकील की पत्नी ने उसी समय बतलाये गये स्थान को खोदा, वहां एक डब्बे के भीतर रूपयों को रखा देखकर वह अत्यन्त विस्मित हो गयी। उन रूपयों में से कुछ रूपये उसने स्वामी जी को सेवा-कार्य के लिए दान किया।

(२) स्वामी जी किसी भी व्यक्ति को देखकर उसके पूर्व-जन्म को जान जाते थे। एक बार उन्होंने एक बाल-विधवा की प्रार्थना पर उसके तीन जन्मों का विवरण देते हुए कहा–'तुम्हारे पूर्व-जन्म के पति बहुत धनी मालगुजार एवं अच्छे व्यक्ति हैं। तुम्हारी मृत्यु के उपरान्त उन्होंने फिर से विवाह भी नहीं किया एवं तुम्हारे चित्र को अभी भी रोज माला पहनाते हैं। जन्म-जन्मान्तर के पाप के फलस्वरूप पहले तुम्हारी मृत्यु हुई थी एवं तुम पति के सुख से वंचित हुई थी । इस जन्म में भी पति के मृत्यु होने से पति के सुख से वंचित हुई हो। तुम्हारा पाप अब कट गया है। इसके बाद वाले जन्म में तुम्हें पति के वियोग का कष्ट फिर से नही झेलना पड़ेगा ।

उस बाल-विधवा ने स्वामी जी से अपने पूर्व-जन्म के पति का सब विवरण सुनकर उससे मिलने के लिए स्वामी जी से अनुमति मांगी। स्वामी जी ने उसे बारम्बार निषेध करते हुए कहा–''पूर्व-जन्म के पति के साथ इस जन्म में तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम दूसरे व्यक्ति की पत्नी थी एवं अभी बाल-विधवा हो । उससे

मुलाकात करने पर उसे कष्ट होगा और तुम्हें भी कष्ट होगा। सावधान रहना वहां जाने का प्रयास भी नहीं करना।''

वह विधवा, स्वामी जी को कुछ न बतलाकर एक दिन अपने कौतूहल को मिटाने के लिए पूर्व-जन्म के पति को देखने के लिए उस धनी मालगुजार के घर गई। मालगुजार उस समय अपनी प्रजा के साथ बैठकर बातचीत कर रहे थे। विधवा ने उसे दूर से देखकर पहचान लिया कि इसी व्यक्ति के सम्बन्ध में स्वामी जी ने कहा है। पहरेदार ने आकर मालगुजार से कहा कि एक विधवा स्त्री आपसे मिलना चाहती है। मालगुजार उस स्त्री को देखते ही विस्मित हो गया। उसका चेहरा उसकी पत्नी की तरह था। उसने स्त्री से पूछा–'आप क्या चाहती हैं? कहां से आ रही हो? विधवा स्त्री ने कहा– 'आप घर के भीतर चलिए, वहां मैं आपको सब कहूँगी।' उसने मालगुजार से उसकी मृत पत्नी के सम्बन्ध में पूछताछ की। उसने कहा–'मेरी पत्नी देखने में ठीक आपकी तरह थी। यहां तक कि उसके बात करने का ढंग भी इसी तरह का था। वह बहुत कम उम्र मे मर गई। मैं उसे बहुत प्यार करता था पर वह मुझे छोड कर चली गई। वह देखिये उसका चित्र। मैं नित्य इस चित्र में फूल माला लगाता हूँ। उसके चले जाने के पश्चात् मैंने पुनः विवाह नहीं किया। मैंने अभी तक अपनी बात कही, अब आप अपनी बात कहिये।''

दिवाल पर लगे चित्र को देखकर विधवा स्त्री अत्यन्त विस्मित हो गई। उसे समझ में आ गया कि स्वामी जी ने जो कुछ भी कहा था सब ठीक कहा। अपना परिचय देते हुए उसने कहा–'मैं रामचन्द्रपुर आश्रम से आपसे मिलने के लिए आई हूँ। मेरे गुरूदेव स्वामी असीमानन्द जी ने मेरे पूर्व-जन्म के विषय में जो बातें कहो थी उसकी जानकारी लेने के लिए मैं यहां आई थी। आप मेरा भक्तिपूर्ण प्रणाम ग्रहण कीजिये। दूसरे जन्म में मुझे आपकी तरह पति की प्राप्ति हो–ऐसा आशीर्वाद दीजिए।'

उसके चले जाने के बाद मालगुजार दूसरे दिन रामचन्द्रपुर आश्रम में स्वामी जी के पास आया एवं उस विधवा स्त्री के सम्बन्ध में पूरी जानकारी पूछी। स्वामी जी ने बाध्य होकर पूर्व-जन्म की बाते उसे कही। इसे सुनकर मालगुजार बेहोश हो गया। थोड़ी देर बाद हाश आने पर उसने कहा–'मैं उस विधवा को प्रत्येक महिने सौ रूपया देना चाहता हूँ। यदि आप इसकी अनुमति दें तो मैं अत्यन्त आनन्दित होऊँगा।' स्वामी जी ने उसकी व्याकुल भावना को देखकर उसके प्रस्ताव को स्वीकार किया। मालगुजार के चले जाने के पश्चात् स्वामी जी ने उस विधवा स्त्री को, इस तरह से मालगुजार के पास जाने के कारण बहुत धिक्कारा।

बाद में इस विषय पर दरवेश जी से चर्चा करने पर उन्होंने स्वामी जी को विशेष रूप से सावधान करते हुए कहा–''कभी भी किसी को उसके पूर्व-जन्मों के सम्बन्ध में कुछ भी मत कहना। पूर्व-जन्म के सम्बन्ध में याद न रहना–यह भगवान

का विधान है। इसका विशेष कारण भी है।"

इस घटना के बाद से स्वामी जी ने किसी को भी पूर्व-जन्मों के सम्बन्ध में कहना बन्द कर दिया।

(३) (क) श्री रविन्द्रनाथ पाठक ने, जगदलपुर (छत्तीसगढ़) में रहते समय स्वामी जी से दीक्षा प्राप्त की थी। स्वामी जी कई बार जगदलपुर आये थे। एक बार यहां के शिष्य एवं भक्तगण स्वामी जी को लेकर चित्रकोट जलप्रपात देखने के लिए वहां जाने का विचार किया। गाड़ी की व्यवस्था रविन्द्र बाबू ने किया परन्तु अधिक लोग हो जाने से गाड़ी में एक महिला को बैठने का स्थान नहीं मिला। अतः स्वामी जी ने उस महिला को अपनी गोद में बिठा लिया। जलप्रपात देखकर लौटते समय भी इस घटना की पुनरावृत्ति हुई। रविन्द्र बाबू एवं मुजफ्फरपुर के धीरेन दत्त दोनों के मन में इस घटना को लेकर, स्वामी जी एवं उक्त महिला के प्रति विरूद्ध विचार आए। उन्हें लगा कि संन्यासी होते हुए स्वामी जी का इस तरह का आचरण ठीक नहीं है। घर में वापस आने के पश्चात् स्वामी जी शौचालय गये। रविन्द्र बाबू स्वामी जी के वस्त्र एवं टार्च लेकर स्वामी जी की प्रतीक्षा करने लगे क्योंकि शौच के पश्चात् स्वामी जी स्नान करेंगे। थोड़ी देर बाद स्वामी जी ने रविन्द्र बाबू को बुलाया और कहा धीरेन को भी बुलाकर लाओ। भीतर जाकर दोनों ने देखा स्वामी जी नग्न अवस्था में खड़े हैं। उन्होंने गंभीर स्वर में रविन्द्र बाबू से पूछा– "Where is my sex? What is my sex? मैं पुरूष हूँ या स्त्री ?'' रविन्द्र बाबू ने कहा कि आपकी दाढ़ी-मूँछ है, आप तो पुरूष है। स्वामी जी ने कहा–''केवल दाढ़ी-मूँछ रहने से ही पुरूष नहीं होता है। एकमात्र लिंग के चिन्ह द्वारा ही स्त्री या पुरूष है, इसकी पहचान होती है। मेरे लिंग की परीक्षा करके कहो कि मैं पुरूष हूँ या स्त्री?

रविन्द्र बाबू ने टार्च जलाकर देखा कि स्वामी जी के पुरूष लिंग का चिन्ह नहीं है। उसकी जगह स्त्री योनि का चिन्ह है, वह भी खड़ा न होकर आड़ा अर्थात (–) प्रकार का है। दोनों स्तंभित हो उठे। रविन्द्र बाबू ने पूछा कि आप पेशाब किस तरह करते हैं? स्वामी जी ने कहा–'जब इस अवस्था में रहता हूँ तब इसी प्रकार पेशाब करता हूँ। वास्तव में क्या होता है जानते हो? मैं जब महिलाओं के मध्य रहता हूँ तब मेरा पुरूष चिन्ह सम्पूर्ण लुप्त हो जाता है और महिलाएं मुझे उन्हीं की तरह समझतीं हैं। इसी कारण मेरे पास उन्हें किसी भी प्रकार का संकोच या लज्ञा नहीं रहती । वे अपनी सभी समस्याओं की आलोचना मुझसे निःसंकोच करती हैं। जब मैं पुरूषों के मध्य रहता हूँ तब मेरा लिंग एक शिशु की तरह क्षुद्र हो जाता है एवं वे मुझे पुरूष समझकर मुझसे निःसंकोच भावना से बातचीत करते हैं।

रविन्द्र बाबू एवं धीरेन बाबू ने स्वामी जी को प्रणाम करते हुए अपने मन की ग्लानी-भावना एवं सन्देह के लिए क्षमा मांगी। वे दोनों चिन्ता करने लगे कि स्वामी

- १४

जी न जाने साधना के कौन से उच्च शिखर पर आरूढ हैं।

(ख) इसी प्रकार की एक घटना झरिया मे स्वामी जी के एक गुरूभाई शरत चन्द्र चकवर्ती के घर में हुई। शरत बाबू, स्वामी जी की गुरू की तरह श्रद्धा करते थे। स्वामी जी इनके घर प्रायः हर महिने जाया करते थे। वहां स्वामी जी के पास उनके एक गुरूभाई ललित सामन्त भी प्रायः आया करते थे। गुरूभाई होने के कारण वे स्वामी जी के साथ निःसंकोच होकर विभिन्न विषयों पर चर्चा किया करते थे। स्वामी जी भी उनके प्रति सदा प्रसन्न रहते एवं उनसे अत्यन्त स्नेह करते थे।

एक दिन शरत बाबू एवं ललित बाबू ने स्वामी जी से प्रश्न किया–''आप सर्वदा हमारे घर आते रहते हैं। कई बार घर में कोई पुरूष नही रहता। घर की महिलाएं आपके पास आती रहती हैं एवं आपकी सेवा आदि भी करती हैं। आपने क्या ऊर्ध्वरेता अवस्था की प्राप्ति की है? काम-भावना को आपने क्या जय कर लिया है?'' इनकी बातों को सुनकर स्वामी जी हँसते हुए पहले 'हाँ' कहा फिर उन्हें लेकर एक कमरे के भीतर गये एवं दरवाजा बन्द करने के लिए कहा। स्वामी जी ने अपना वस्त्र एवं कौपीन खोलकर अपने पुरूषांग को दिखलाया। दोनों ने विस्मित होकर देखा कि उनका लिंग एक शिशु के लिंग की तरह छोटा है। इस तरह स्वामी जी ने कृपा करके उनके संशय की निवृत्ति कर दी। इस घटना के पश्चात् स्वामी जी के प्रति उनकी श्रद्धा और भी अधिक बढ़ गई।

उक्त प्रथम घटना का विवरण लेखक को रविन्द्र बाबू ने स्वयं कहा था एवं दूसरी घटना ललित बाबू एवं शरत बाबू ने स्वयं कहा था।

साधना की विभिन्न अवस्थाओं के सम्बन्ध में आलोचना करते हुए स्वामी जी ने एक समय अपनी पूर्वाश्रम की पत्नी शैलबाला देवी को एक पत्र लिखा था। उस पत्र में उल्लेख था कि साधन की एक उच्च अवस्था में शरीर एवं इन्द्रियों की प्रवृत्ति का लोप हो जाता है। पत्र इस प्रकार था–

साधन करते समय कमशः छत्तीस अवस्थाओं के साथ परिचय होगा। कार्य करते हुए प्रथमतः ऐसा प्रतीत होता है कि 'मैं कार्य करता हूँ।' साधंना में अग्रसर होने पर भगवान पर निर्भरता आती है एवं एक अज्ञात शक्ति की किया की उपलब्धि होती है–अपनी चेष्टा की कमशः समाप्ति होती है। उस समय समझ में आता है कि एक अदृश्य शक्ति हमारी सहायता कर रही है। कमशः आत्मसमर्पण की भावना जितनी बढ़ती है उतनी अपनी चेष्टा की अनावश्यकता का अनुभव होता है। कमशः अपनी चेष्टा की समाप्ति होती है। इसके पश्चात् एक सम्पूर्ण नवीन जीवन आरम्भ होता है।

नवीन जीवन के प्रारम्भ होने पर मनुष्य के मन में अहंकार की भावना आती है। वह सोचता है कि 'मैं भगवत् कृपा का अधिकारी हुआ हूँ। जब इस तरह का अहंकार होता है तब 'अहं' रूपी अंधकार, साधक के अग्रगति के पथ को अंधकार से

भर देने का प्रयास करता है। गहन अंधकार में कोई रास्ता न देखकर, हम भगवान के निकट इस अवस्था से मुक्त होने के लिए व्याकुल होकर कन्दन करते हैं। तब भगवान उस गहन अंधकार के मध्य व्याकुल साधक को सांत्वना प्रदान करते हैं कि 'किसी प्रकार का डर नहीं है! मैं साथ में हूँ—तुम्हारे इस संग्राम में सारथी का कार्य करूँगा!!' व्याकुल प्रार्थना, साधक के इस दुःखद अवस्था के बीच, भगवान की कृपा के अवतरण में सहायक होती है। साधक का शरीर भगवान की कृपा से दिव्य शरीर की प्राप्ति में अग्रसर होता है। उस समय भी स्वतंत्र ज्ञान रहता है। बाद में साधक जब देखता है कि उसके द्वारा कुछ भी सम्पन्न होना संभव नहीं है, तब वह प्रार्थना करता है—'तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो, करूणामय स्वामी!' इस अवस्था की प्राप्ति के बाद स्वतंत्र इच्छा नहीं रहती। साधक जो कुछ भी करता है वह, उसके मध्य 'वे' ही कर रहे हैं, ऐसा बोध होता है—अपने को यन्त्रवत् समझता है।

इस अवस्था में एक प्रकार की 'सदानन्द' भावना आती है। वह भाव-मग्न हो जाता है। साधक भाव में उन्मत्तवत (पागल सा) हो जाता है। साधक, ब्रह्म में स्थिति लाभ करता है। सभी 'ब्रह्ममय' है—ऐसा बोध होता है। जिसे देखता है उसे गले लगाना चाहता है। यह अवस्था भयानक है। उस समय लोकालय में रहना विपत्तिजनक हो सकता है। साधारण लोग, साधक की भावना को न समझ पाने से उस पर कठोर अत्याचार कर सकते है एवं इससे उसकी मृत्यु भी हो सकती है।

इसके पश्चात् 'जीवन्मुक्त' अवस्था होती है। इस अवस्था में 'मन' का विलय होता है। इसके बाद सर्वज्ञ अवस्था आती है। उसकी भावना एवं कार्य साधारण लोगों की समझ के बाहर है। इसके पश्चात् 'शिशुभाव-लीला' अर्थात शिशु की तरह आचरण देखा जाता है। साधक अपने सभी अस्तित्व को भूल जाता है। उसकी उम्र चाहे जितनी भी हो, वह उसे स्मरण नहीं कर पाता। अनेक साधक एवं साधिकाओं को शिशु की तरह रोते हुए, हँसते हुए, छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए बच्चों की तरह मांग करते हुए, यहां तक की बच्चों के खिलौनों को लेकर खेलते हुए मैंने देखा है।

अब जो भी भोग रहता है, उसका नाश होता है—जैसे शरीर के रोग आदि। शिशु को भी रोग होता है। शरीर रहने पर, शरीर के रोग भी होंगे। साधक को केवल अपना भोग ही भुगतना पड़ता है, ऐसा नहीं है—उसे अपने आश्रित शिष्य आदि लोगों का दस आना भोग भुगतना पड़ता है। परन्तु इसमें वे कष्ट का अनुभव नहीं करते—निर्लिप्त रहते हैं। पूर्व संस्कार जो भी रहता है, इसके बाद की अवस्था में वह समाप्त होता है। इसके पश्चात् साधक अपनी तपस्या में 'आत्म-स्थिति' प्राप्त करता है। सर्वदा ब्रह्म में स्थिति—ब्रह्म-रस में मग्न रहता है। वह ब्रह्मज्ञान—ब्रह्मध्यान—ब्रह्मानन्द रस पान करता है। जीवन मृत्यु की बात उसके चिन्ता में भी नही आती है। शरीर है या नहीं, यह बोध भी नहो रहता—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'।

शरीर एवं इन्द्रिय की प्रवृत्तियों का लोप हो जाता है। नारी-पुरूष ज्ञान नही रहता। पुरूषत्व लुप्त हो जाता है। बर्हिलिंग कहीं लुप्त हो जाता है। उस समय एक नया जन्म एवं भावना क्रा संचार होता है। इस समय आश्रित लोग, साधक की अवस्था को न समझ पाने से चिकित्सक को बुलाकर लाते हैं—चिकित्सक इनकी चिकित्सा क्या करेगा? यह उसकी समझ के बाहर है।

श्री दरवेश जी की चिकित्सा के लिए शिष्यो ने चेष्टा की। अन्त में वे हार मान गये। चिकित्सकों ने कहा कि 'इनकी चिकित्सा हमारी चेष्टा के बाहर है—चिन्ता के बाहर है। साधकों के जीवन का तत्व-ज्ञान हमारी समझ के बाहर है।' इस तरह साधक की तीस अवस्थाओं का वर्णन करने के बाद स्वामी जी ने आगे लिखा—

इसके बाद की अवस्था में, आत्मा-परमात्मा के मिलन में फिर किसी प्रकार की बाधा नहीं रहती। सभी मानों सबसे मिल रहे हैं—'अखण्ड भाव'। सर्वत्र ब्रह्म दर्शन—ब्रह्म उपलब्धि—'तुम' के अलावा कुछ नहो । 'मैं' तब 'तुम' हो जाता है—'त्वंहि! त्वंहि!!'

विश्व में व्याप्त उनकी लीला माधुर्य का बोध अर्थात ज्ञान होता है—सब 'वे' हैं—सब 'वे' हैं। इसके बाद 'तुम' 'मैं' हूँ—'मैं' 'तुम' हूँ—सोहं! 'मैं' नही है—'तुम' हो—'तुम' 'मैं' हूँ—'मैं' तुम हो। इस तरह सब एकत्व अनुभव होता है।

साधना के पथ में अनेक बाधाएं हैं। सबसे बड़ी बाधा, 'अहंकार' है। सम्मान-यश को पाने की आकांक्षा होती है। लोग साधू कहेंगे—सम्मान करेगे—मेरा नाम सर्वत्र प्रचार होगा। अपने प्रचार की चेष्टा करना, इसके लिए धनी एवं प्रतिष्ठित लोगों के दरवाजे में घुमना, विज्ञापन देना—ये सब साधक के पतन का कारण है। साधक कभी भी लोगों को दिखाने के लिए कुछ भी नहीं करेगा। ऐश्वर्य अथवा अलौकिक कुछ भी नहो दिखलाएगा। आजकल साधुओं के भीतर जो भावना देखी जा रही है, उससे अच्छे सांधुओं के प्रति भी लोगों का अविश्वास हो रहा है। साधू अपने को सर्वदा छिपा कर रखेगा।

साधना की उपरोक्त विभिन्न अवस्थाओं का उल्लेख करते हुए स्वामी जी ने लिखा था—'मैंने स्वयं साधना की जिन अवस्थाओं को समझा है केवल उसे ही लिखा है।' ('असीमानन्देर पत्र' नामक ग्रन्थ से)

(४) रविन्द्रनाथ पाठक जिस समय खैरागढ़ (छत्तीसगढ़) में रहते थे उस समय स्वामी जी एक बार वहां गये। उनके घर पर कुछ दिनो से भौतिक उपद्रव चल रहा था। रात्रि के समय छत पर पत्थर गिरने एवं लुढकने की आवाज प्रायः सुनाई देती थी। कमरे के दरवाजे-खिड़कियां बन्द रहने पर भी, उनके खुलने की आवाज अचानक सुनाई पड़ती थी। बत्ती जलाकर जब देखा जाता तब न तो छत पर पत्थर होता और न ही कमरे के दरवाजे-खिड़कियां खुली रहती। कभी-कभी उस कमरे में

कैरम बोर्ड बिछाने एवं खेलने की आवाज सुनाई पड़ती थी। ऐसा लगता था कि कोई कैरम खेल रहा है। लेकिन बत्ती जलाकर देखने पर कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता, कैरम भी ठीक स्थान पर रखा रहता था।

स्वामी जी जब यहां आये तब उस बन्द कमरे को साफ कर, उनके रहने की व्यवस्था वहीं की गई। दूसरे दिन सुबह स्वामी जी से इस सम्बन्ध में पूछने पर उन्होंने कहा–रात्रि के समय एक बालक की प्रेतात्मा मेरे पास आई। उसने मुझसे कहा कि लगभग बीस वर्ष पूर्व यह कमरा अस्पताल का आपरेशन-घर था। यहां आपरेशन के समय मेरी मृत्यु हो गई थी। उस समय से मैं यहीं पर हूँ। मुझे मालूम था कि यहां पर एक महात्मा आएंगे। उन्हो की प्रतीक्षा मैं कर रहा था।' मैंने उसे दीक्षा प्रदान की है एवं उसकी उन्नति के लिए प्रार्थना की है। अब वह यहां से चला गया है।

रविन्द्र बाबू ने अनुसन्धान कर पता किया कि वास्तव में वह घर पहले एक अस्पताल का आपरेशन-घर था। इस घटना के पश्चात् रविन्द्र बाबू लगभग तीन वर्ष वहा रहे लेकिन फिर किसी प्रकार का उपद्रव वहां नहीं हुआ। ('श्री असीमानन्द सरस्वती एवं ताहार अलौकिक योगैश्वर्य' नामक ग्रन्थ से)

(५) डा. श्यामाकान्त हजारी एवं उनके परिवार के अनेक लोग स्वामी जी के शिष्य हैं। यह घटना लगभग १९५८ ई. की है। श्यामाकान्त उस समय कोलकाता के पास एक गांव में अपनी जमीन आदि की देख-रेख करने गये थे। एक दिन अचानक उनके छोटे भाई शचिकान्त ने उनके पास आकर कहा–कल एक विचित्र घटना हुई। दोपहर के समय जब मैं पिताजी के साथ भोजन कर रहा था तब किसी ने आकर मुझसे कहा कि नीचे स्वामी जी आए हुए हैं एवं मुझे बुला रहे हैं। मैं तुरन्त हाथ धोकर नीचे पहुँचा। स्वामी जी को देखकर जैसे ही प्रणाम करने के लिए अग्रसर हुआ,उन्होंने हाथ से इशारा कर निषेध किया। फिर एक कागज में लिखकर दिया–'(१) मुझे स्पर्श मत करो। (२) मै मौन हूँ। (३) मेरा अनुसरण मत करो।' एक दूसरे कागज में उन्होंने लिखा–''श्रीयुक्त अजीत दास के पास मैं पांच सौ रूपये का ऋणी हूँ। आज वह रूपया वापस करने का दिन है। तुम यदि उसे रूपया दे आओ तो मुझे अत्यन्त आनन्द मिलेगा।''

स्वामी जी ने अजित दास को देने के लिए एक पत्र भी दिया। मैंने स्वामी जी के निर्देशानुसार पांच सौ रूपये लेकर, हरिश मुखर्जी रोड़ पर अजीत दास के पास पहुँचा एवं रूपये व पत्र दे दिया। पत्र में एक जगह उल्लेख था–''पृथ्वी उलट सकती है परन्तु असीमानन्द की बात कभी मिथ्या नही होगी।''

शचिकान्त के पास से घटना का पूरा विवरण सुनकर, श्यामाकान्त ने इस घटना का तात्पर्य जानने के लिए आश्रम में पत्र लिखा। आश्रम से पत्र आया कि 'स्वामी जी उस दिन अस्पताल के लिए आवश्यक सीमेन्ट का परमिट बनवाने के

लिए पुरूलिया गये थे। वे कोलकाता नहीं गये थे। घटना का पूरा विवरण लिखकर भेजो । स्वामी जी जानना चाहते हैं कि उस दिन क्या हुआ था?'

घटना का पूरा विवरण लिखकर श्यामाकान्त ने स्वामी जी को भेजा । इस घटना के कुछ दिनों बाद स्वामी जी कोलकाता आए। श्यामाकान्त एवं शचिकान्त ने उनसे इस घटना के सम्बन्ध में जानना चाहा तो स्वामी जी ने कहा—''तुम बहुत भाग्यवान हो ! मेरा उस दिन ऋण चुकाने का दिन था लेकिन मैं भूल गया था। गोसाँई जी ने मेरा रूप धारण कर इस तरह से ऋण चुकाया।'

(६) रामचन्द्रपुर आश्रम में एक बार उत्सव के समय एक बालक तालाब में डूब गया। सभी उत्सव के आनन्द में मग्न थे। बालक की माँ को भी ध्यान नहीं था। जब बालक की खोज की गई तब देखा गया कि तालाब में उसका शव तैर रहा है। बालक को लाकर गोसाँई जी के मन्दिर के पास रखा गया। बालक की माँ अत्यन्त करूण भाव से स्वामी जी के चरणों में रोते हुए बोली—'बाबा, उत्सव में आनन्द मनाने के लिए आकर मैंने अपने एकमात्र पुत्र को खो दिया। आप कृपा करके इसे बचाइये।' उसके करूण कन्दन को देखकर सभी लोगों की आँखों में आँसू आ गए।

स्वामी जी कुछ देर तक स्तब्ध खड़े रहे। सामने गोसाँई जी के चित्र की ओर वे देख रहे थे एवं उनके नेत्रों से भी अश्रु निकल रहे थे। थोडी देर बाद उन्होंने कहा—'यदि गोसॉई जी की कृपा हो जाए तो बालक बच जाएगा।' ऐसा कहकर उन्होंने बालक के सिर के मध्य स्थल को हाथ से स्पर्श किया। उनके स्पर्श करते ही बालक के मुंह से पानी निकलने लगा। धीरे-धीरे बालक स्वस्थ हो गया। सभी लोग आनन्दित होकर स्वामी जी एवं गोसाँई जी की जय देने लगे।

(७) कोलकाता में एक बार स्वामी जी, हाजरा लेन में स्थित ललित भट्टाचार्य के मकान में ठहरे थे। एक दिन मध्यान्ह भोजन के बाद स्वामी जी विश्राम कर रहे थे। एक शिष्य उनका पैर दबा रहा था। अचानक स्वामीजी कहने लगे—'देखो, अभी वृन्दावन में कितना मधुर कीर्तन हो रहा है—गायक का स्वर कितना मीठा है। अनेक साधु-महात्मा एवं भक्तलोग एकत्रित होकर कीर्तन कर रहे हैं। तुम लोग भी क्या इस कीर्तन को सुनना चाहते हो?'

सभी लोगों ने कीर्तन सुनने के लिए स्वामी जी से प्रार्थना की। उन्होंने कहा—'सब लोग चुपचाप स्थिर होकर बैठो—तुम्हें कीर्तन सुनाई देगा।' स्वामी जी के निर्देशानुसार सभी स्थिर भाव से बैठ गए। उन लोगों को ऐसा लगा जैसे कि रेडियो में कहीं कीर्तन हो रहा है। कीर्तन की ध्वनि बहुत ही मधुर एवं स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। एक व्यक्ति के मन में संदेह हुआ। वह उठकर बाहर गया और आसपास थोड़ी दूर तक जाकर देखा कि आवाज कहां से आ रही है। बहुत देर तक वह इधर-उधर घुमकर वापस आया और कहा कि मैंने बाहर सब जगह देखा कहीं कीर्तन नहीं हो रहा है।

स्वामी जी ने कहा–'तुम लोगों के मन में अविश्वास की भावना अधिक है। इस कारण तुम्हें दिखलाई या सुनाई नहीं पड़ता।' उस दिन लगभग एक घण्टे तक सभी ने स्वामी जी की कृपा से अप्राकृतिक कीर्तन ध्वनि सुनी।

(८) स्वामी जी का एक शिष्य अपनी माँ, स्त्री एवं पुत्र-कन्या को लेकर कोलकाता से दिल्ली जा रहा था। वर्द्धमान स्टेशन पर वह पानी लेने के लिए उतरा। नल के पास बहुत भीड़ थी। वह लाईन मे खड़ा होकर नाम-जप में तल्लीन हो गया। अचानक किसी वृद्ध व्यक्ति ने उसे धक्का देते हुए कहा–'तुम क्या कर रहे हो? ट्रेन तो छूट गई।' उनका डब्बा आगे निकल गया था। अतः सामने जो डब्बा मिला उसी में, दौड़कर दरवाजे के पास वे चढ़ गये। दरवाजा भीतर से बन्द था। वे वैसे ही दरवाजे पर लटके हुए बार-बार दरवाजा खोलने के लिए भीतर आवाज देने लगे लेकिन किसी ने दरवाजा नहीं खोला। रात्रि का समय होने के कारण शायद लोग डर गये थे। ट्रेन की गति कमशः बढ़ रही थी। दरवाजे पर, उनके एक हाथ में जल का पात्र था और दूसरे हाथ से वे हेन्डिल को पकडे हुए थे। कोयले इंजिन का धुंआ एवं कोयले का छोटे-छोटे टुकड़े हवा के साथ उसके शरीर मे तेजी से लगने लगे। धोती एवं कुर्ता फट गया। उसने अपनी मृत्यु निश्चित जानकर श्वास-प्रश्वास में नाम-जप प्रारम्भ किया। उसका हाथ कमशः शिथिल होने लगा एवं उसे ऐसा लगा कि हाथ अब छूट जाएगा। उसका मन, डर से व्याकुल होकर, एकमात्र गुरू को पुकार रहा था। अचानक उसने स्वामी जी की कण्ठध्वनि सुनी–"घबराओ मत! मैं साथ में हूँ!! मेरे भक्त का कभी विनाश नहीं हो सकता। मैं उसकी रक्षा करता हूँ।"

अचानक स्वामी जी का स्वर सुनकर उसमें साहस का संचार हुआ एवं दृढ़तापूर्वक वह हेण्डिल को जोर से पकड़ा रहा। पास वाले दूसरे डब्बें पर अचानक उसकी दृष्टि गई तो देखा कि वहां दरवाजे पर स्वामी जी हेन्डिल पकड़कर लटके हुए हैं। स्वामी जी को उस अवस्था में देखकर, उसके मन में भरोसा हुआ कि अब मुझे कुछ हानि नहो होगी । दूसरे स्टेशन पर जब गाड़ी रूकी तब प्लेटफार्म पर उतरकर पहले उसने स्वामी जी को ढूंढा, परन्तु वे नही मिले। अन्त में वह अपने डब्बे में पहुँचा। उसे देखकर सभी दंग रह गये। उसका वस्त्र फट गया था, शरीर धुएं से काला हो गया था। उसके परिवार के लोग स्वामी जी की कृपा का अनुभव कर अश्रु विसर्जन करने लगे।

बाद में, जब स्वामी जी से उसकी मुलाकात हुई तब उसने इस घटना का जिक्र किया किन्तु स्वामी जी ने कुछ भी जवाब नहीं दिया, लेकिन उनके नेत्र सजल हो गये थे।

(९) रामचन्द्रपुर आश्रम में दरवेश जी की मूर्ति प्रतिष्ठा के दिन अखण्ड नामसंकीर्तन, शप्तशति-होम आदि सभी अनुष्ठान में योगदान करने काफी लोग आए

थे। स्वामी जी के कुछ गुरूभाई भी इस अवसर पर आए हुए थे। अखण्ड नाम-कीर्तन के समापन के पूर्व नगर-संकीर्तन में सब लोग गये। कीर्तन करते हुए गांव की परिकमा कर जब सब लोग आश्रम लौटे उस समय स्वामी जी के एक गुरू भाई, प्रभात भौमिक बाबू अपनी दाढ़ी बना रहे थे। कीर्तन की ध्वनि सुनकर वे विशेष आकर्षण का अनुभव कर अचानक आधी बनी हुई दाढ़ी की अवस्था में कीर्तन में पहुँचे। उन्होंने देखा कि दरवेश जी उनका आलिंगन करते हुए उनके भीतर विलीन हो गए। प्रभात बाबू ''जय निताई–जय निताई'' कहकर चिल्लाने लगे। उसी अवस्था में उन्होने गोसॉई जी, श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री नित्यानन्द प्रभु एवं श्री अद्वैत प्रभु को वहां नृत्यरत् देखा । सभी नर-नारी कीर्तन में विशेष आनन्द रस का पान कर रहे थे। उस समय मन्दिर के बरामदे में स्वामी जी को खडे हुए देखकर, प्रभात बाबू उन्हें भी कीर्तन के मध्य ले आए। कीर्तन में आने के साथ ही स्वामी जी समाधिस्थ हो गए। उस समय प्रभात बाबू ने अनुभव किया कि स्वामी जी के प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में तीव्र गति से अपने आप नाम-जप हो रहा है एवं उनका शरीर काष्ठवत् हो गया था। प्रभात बाबू उन्हें संभाले हुए थे। उस समय उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि दरवेश जी कह रहे है–बाह्य ज्ञान न होने तक तुम इन्हें संभाल कर पकडे रहो। शिष्यो ने स्वामी जी को उठाकर उनके आसन के पास लेटा दिया। प्रभात बाबू शुरू से स्वामी जी को पकड़े हुए थे। इस समय उनसे किसी व्यक्ति ने कहा कि वे स्वामी जी को छोड़ दें। प्रभात बाबू ने उसे डाँटते हुए उसको बात मानी नहीं। थोडी देर बाद स्वामी जी स्वाभाविक अवस्था में आए। उस समय प्रभात बाबू ने स्वामी जी के सामने अपना अनुभव सुनाते हुए कहा–'मेरे गुरूदेव ने स्वामी जी की उपस्थिति में इस घटना का पूरा विवरण देने का मुझे निर्देश दिया था। इसीलिए मैंने यह विवरण दिया।'

दरवेश जी की मूर्ति प्रतिष्ठा के समय प्रभात बाबू एवं कुछ लोगों ने मूर्ति में श्वास-प्रश्वास के साथ ह्दंय की धड़कन का अनुभव किया ।

स्वामी जी के शिष्यों ने इस समय की पूरी घटना का विवरण 'मन्दिर' पत्रिका में देने के लिए प्रभात बाबू से अनुरोध किया। प्रभात बाबू ने १९६८ ई. की झूलन पूर्णिमा के दिन, वाराणसी में स्वामी जी से इस सम्बन्ध में अनुमति मांगी तो स्वामी जी ने कहा–''देखो, यह सब दुर्लभ घटना है। सभी के कल्याण एवं आनन्द के लिए तुम इसे प्रकाशित कर सकते हो ।''

इस कथोपकथन के चार दिन के भीतर स्वामी जी आश्रम वापस आए एवं अपना शरीर त्याग दिया। अतः यह घटना स्वामी जी के जीवित अवस्था में प्रकाशित न हो सकी।

(१०) स्वामी जी की तीनों पदयात्रा में प्रमिला देवी नामक भाग्यवती महिला सर्वदा स्वामी जी के साथ में रहो। उन्होंने भोजन आदि आवश्यक सेवा के साथ-साथ सभी लोगों की जिस तरह सेवा की थी, वह अनुपम थी। आश्रम में भी अधिकतर वे

इस तरह की सेवा कार्य करती रहतो थी। स्वामी जी की अनेक अलौकिक घटनाओं को देखने का सौभाग्य उन्हें मिला।

प्रमिला देवी ने लेखक को जो संस्मरण सुनाया, उसमें से एक घटना यहां दी जा रही है–

श्रीवृन्दावन की बात है। स्वामी जी उस दिन पोस्ट ऑफिस होकर मन्दिर दर्शन के लिए निकले। उनके साथ भक्त मंडली भी थी। मैं नहीं गई, क्योंकि लगभग पचास लोगों का दोपहर का भोजन तैयार करना था। थोडी देर बाद एक शिष्य ने आकर बताया कि स्वामी जी यमुना स्नान करेंगे। वह स्वामी जी के वस्त्रादि लेकर चला गया। मैं भोजन बनाकर, स्वामी जी एवं लोगों का इंतजार करने लगी। तब मेरे मन में लगा कि सभी लोग स्वामी जी के साथ आनन्द मना रहा हैं और मैं यहां बैठी हूँ। थोड़ी देर बाद एक काला सा बालक थाली में प्रसाद लाकर दिया और कहा–''गोविन्द मन्दिर से यह प्रसाद स्वामी जी के लिए भेजा गया है। जल्दी ले लो।'' मैंने उस बालक की ओर विशेष ध्यान नही दिया। उसे ठहरने के लिए कहा। बालक ने कहा–''देरी करने से नहीं चलेगा। मुझे अभी गाय चराने के लिए जाना है।'' मैं जल्दी से थाली खालीकर वापस देने के लिए जब आई तो बालक वहां नहीं दिखा। अचानक वह कहां चला गया कुछ भी मालूम नहीं चला।

स्वामी जी यमुना स्नान के बाद श्री सीतारामदास ओंकारनाथ बाबा के आश्रम चले गये एवं वहां सभी लोगों ने प्रसाद भी ग्रहण किया। परन्तु मुझसे यह बात गुप्त रखी गई। उन्होंने यहां आकर मुझे भोजन परोसने के लिए कहा। सब लोगों के भोजन करने के ढंग से मैं समझ गई कि ये लोग अवश्य कहीं से भोजन करके आ रहे हैं। बाद में मालूम हुआ कि गुरूजी ने, यहां दुबारा भोजन करना होगा इसलिए, सीताराम बाबा जी के आश्रम में सभी से थोड़ा कम भोजन करने के लिए कहा था।

मैंने स्वामी जी से कहा कि गोविन्द जी के मन्दिर से एक बालक प्रसाद देकर गया है। स्वामी जी ने आनन्दपूर्वक प्रसाद लाने के लिए कहा। प्रसाद की थाली स्वामी जी के सामने लाते ही उन्होंने उसे माथे में लगाया एवं कहने लगे–''स्वयं गोविन्द जी यह प्रसाद देकर चले गये। तुम भाग्यशाली हो–तुम्हें उनका दर्शन मिला। मेरे प्रति तुम्हारे मन में अभिमान था इस कारण तुमने बालक की ओर विशेष ध्यान नही दिया एवं उसे पहचान न सकीं।''

भोजन के पश्चात् वह थाली गोविन्द जी के मन्दिर में भेजा गया। मन्दिर के पुजारी ने कहा–'इस मन्दिर की थाली कही बाहर नहीं भेजी जाती है। यह थाली हमारी नहीं है। इस घटना से प्रमाणित हुआ कि स्वयं गोविन्द जी ही स्वामी जी के लिए प्रसाद की थाली लेकर आए थे। इस थाली को रामचन्द्रपुर आश्रम में लाकर रखा गया था।

(११) स्वामी जी ३१ अगस्त, १९६४ ई. को दिल्ली से 'द्वारका धाम' के लिए

रवाना हुए। उनके साथ लगभग पंन्द्रह लोग थे। द्वारका, भेट द्वारका, बेरावल आदि स्थानों का उन्होंने दर्शन किये। वहां से पुष्कर व जयपुर दर्शन कर, ८ नवम्बर को वे वापस दिल्ली आ गए।

(१२) स्वामी जी पुरी धाम में प्रायः जाते रहते थे। पुरी में गोसाँई जी के समाधि मन्दिर में प्रतिवर्ष ज्येष्ठ महिने की कृष्णा द्वादशी तिथि पर गोसाँई जी का तिरोभाव महोत्सव होता है। स्वामी जी प्रतिवर्ष वहां जाते थे।

उस समय पुरी में 'मां मणि' नामक साधिका रहती थी। वे गोसाँई जी के शिष्य श्री जगद्बन्धु मैत्र की शिष्या थीं। श्री गोसाँई जी की कृपा से उन्हें सर्वदा श्रीवृन्दावन लीला, श्रीजगन्नाथ देव की लीला का दर्शन एवं श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीरामकृष्ण परमहंस, श्रीकाठिया बाबा, स्वामी भोलानन्द गिरि, स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस आदि महात्माओं का दर्शन मिलता रहता था। उनके पास विभिन्न सम्प्रदाय के भक्तगण आते रहते थे। भक्तों के प्रश्नों का उत्तर, मां मणि भक्तों की इच्छानुसार विभिन्न महात्माओं के पास से मालूम कर, बता दिया करतीं थी। उनके पास 'श्रीगोपाल जी' का एक चित्रपट था। उनकी वे सेवा-पूजा करती थी । श्री सीतारामदास ओंकारनाथ बाबा जी, श्री दुर्गाप्रसन्न परमहंस, स्वामी परमानन्द सरस्वती आदि अनेक महात्मा यहां आते रहते थे।

स्वामी जी के साथ मां मणि का अत्यन्त घनिष्ठ सम्पर्क था। स्वामी जी को वे स्नेहवश 'बड़ा गोपाल' कहा करती थी। उन्होंने गोसाँई जी के अजपा-साधन की दीक्षा लेने के लिए अनेक लोगों को स्वामी जी के पास भेजा था। मां मणि स्वयं किसी को दीक्षा नहीं देती थी। परन्तु दीक्षा पाने के लिए सात्विक आहार एवं 'नामब्रह्म' नाम के जप का निर्देश दिया करती थी। उनका कहना था कि इस 'नामब्रह्म' मन्त्र का जप करने से सद्गुरू की प्राप्ति अवश्य होगी। श्री चैतन्य महाप्रभु एवं गोसाँई जी ने उन्हें 'नामब्रह्म' जप का प्रचार करने का निर्देश दिया था। 'नामब्रह्म' मंत्र इस प्रकार है–

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

मां मणि कहा करती थी–''**अभी गोसाँई जी स्वामी जी के माध्यम से दीक्षा प्रदान कर रहे हैं। उनके भीतर गोसाँई जी की नित्य-लीला चल रही है।**''

सन् १९६६ ई. में मां मणि का शरीर अत्यन्त अस्वस्थ हो गया था। स्वामी जी उन्हें देखने के लिए पुरी आए एवं मां मणि के सिर पर कुछ देर तक हाथ फेरते रहे। थोड़ी देर में ही वह अपने को स्वस्थ अनुभव कर, उठकर बैठ गई और स्वामी जी से कहीं–'बाबा, यह तुमने अच्छा नहीं किया! आज गोसाँई जी की निर्वाण तिथि है। तुम सब यहां उपस्थित हो–ऐसा दिन क्या और मिलेगा?' स्वामी जी उन्हें आश्वासन देकर चले गये। दूसरे दिन सुबह मां मणि ने कहा–''गोसाँई जी ने कहा कि आज तुम्हारे

देहत्याग की व्यवस्था की गई थी परन्तु असीमानन्द ने तुम्हें नहीं छोड़ा।''

पुरी से प्रस्थान करने के पूर्व स्वामी जी पुनः मां मणि के पास आए एवं कहा–''मां, जब तक मैं वापस न आ जाऊँ, तुम रहना।'' मां मणि ने अपनी सम्मति प्रदान की।

मां मणि की संक्षिप्त जीवनी का प्रकाश करने का निर्देश गोसाँई जी ने मां मणि को दिया। इस कार्य में मां मणि के सेवक स्वामी द्विजेशानन्द ने 'जीवन गाथा' नामक ग्रंथ को पूर्ण कर, प्रकाशित करने की प्रचेष्टा शुरू की। मां मणि अपने प्राप्त दर्शनों की चर्चा प्रायः द्विजेशानन्द जी से करती थी।

एक बार, ९ अगस्त, १९६६ ई. को मां मणि को Celebral Thrombosis का दौरा पड़ा। सभी जगह उनकी अस्वस्थता का समाचार भेजा गया। रामचन्द्रपुर से स्वामी जी ने लिखा–''आशा करता हूँ, मां का शरीर अब कमशः स्वस्थ हो रहा है। शायद अब कुछ-कुछ बातचीत भी कर रही होंगी। इस बार उनके बचने की आशा नहीं थी, गोसाँई जी एवं दरवेश जी ने उनपर अत्यन्त कृपा की हैं। उनके अस्वस्थता के समय गोसाँई जी, दरवेश जी, मां मणि के गुरू श्री जगद्‌बन्धु मैत्र महाशय एवं भोलानन्द गिरि महाराज वहां उपस्थित थे।''

१ सितम्बर, १९६६ ई. को कानपुर से स्वामी जी ने द्विजेशानन्द को लिखा–''मां बहुत कष्ट मे हैं। गोसाँई जी के निकट काशी में उनके स्वास्थ्य की उन्नति एवं रोग से मुक्ति के लिए प्रार्थना किया, परन्तु गोसाँई जी ने कुछ नहीं कहा । गोसाँई जी के विशेष आदेश से काशी आया था एवं अब उनके निर्देश से हरिद्वार जा रहा हूँ।''

६ सितम्बर को मां मणि ने थोड़ा बातचीत करना आरम्भ किया। वे सर्वदा पूछती रहती थी कि 'असीम बाबा' कब आ रहा है? एक दिन उन्होंने अपने प्राप्त दर्शनों के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए बोलीं–**''बाबा, क्या हो गया! क्या देखा!! ऐसा दिन फिर कब होगा? सभी आए थे–फिर से उन्होंने मेरी रक्षा की । अब क्यों मेरी रक्षा कर रहे हैं? गोसाँई जी एवं अन्य महात्माओं के साथ श्री भोलानन्द गिरि महाराज एवं स्वामी विशुद्धानन्द जी (काशी के गंधबाबा) भी थे।''**

कुछ दिनो पश्चात् मां मणि पुनः स्वामी जी को पुरी आने के लिए कहने लगीं। स्वामी जी ने दिल्ली से पत्र लिखा–'यहां आकर मैं अत्यन्त अस्वस्थ हो गया था। वापस लौटते समय पुरी आऊँगा । मां का स्नेहपूर्ण स्पर्श मैं यहीं पर प्राप्त कर रहा हूँ। इस बार गोसाँई जी ने उनकी रक्षा की है। परन्तु अब वह अधिक दिन नहीं रहेंगी।''

१ अक्टूबर को स्वामी जी मां मणि के पास पुरी आए। उनके पुरी से चले जाने के बाद मां मणि अपने भाव मे और अधिक मग्न रहने लगी। उनका स्वास्थ्य दिन पर दिन खराब होता गया। २२ दिसम्बर, १९६६ को उन्होंने दोपहर लगभग एक बजे महाप्रयाण किया। मां मणि के देहान्त का समाचार सब तरफ भेजा गया। नाम-संकीर्तन के साथ उनके देह का अन्तिम संस्कार रात्रि एक बजे तक सम्पन्न हुआ।

उनके निर्देशानुसार उनके नित्य सेवित विग्रह आदि को समुद्र में विसर्जन किया गया।

इस घटना के दो दिन बाद ही स्वामी जी का पत्र मिला। स्वामी जी ने यह पत्र, पुरी में श्रीमती प्रतिमा देवी को लिखा था।

'ॐ गुरू'

स्नेहमयी माँ, मैं यह पत्र तुझे दिन के दो बजे लिख रहा हूँ। एक घण्टा पूर्व मां मणि के साथ भेंट हुई। मां शरीर त्याग कर चली गई। द्विजेश के पास से शायद कल समाचार मिलेगा। इस समय यहां अनेक लोग उपस्थित हैं । पत्र लिखने के पश्चात् एक मीटिंग में जाना पड़ेगा । मां चली गई अपने आकांक्षित धाम में। बहुत कष्ट पा रहीं थी। मैंने १९ तारिख को गोसाँई जी के निकट प्रार्थना की थी जिससे उनका सब कष्ट दूर हो जाए।

शोक करने की बात नहीं है। उनकी अमर आत्मा को गोसाँई जी ले गए है। उस समय गोसाँई जी के साथ जगद्बन्धु मैत्र, शान्तिसुधा देवी, कुलदानन्द ब्रह्मचारी जी एवं दरवेश जी भी उपस्थित थे।

द्विजेश से कहना कि वह चिन्ता न करे। मैं कल 'गया जी' जा रहा हूँ। गया उत्सव से, पुरी आने का प्रयास करूँगा।

आशीर्वादक—बाबा।

स्वामी जी ने रामचन्द्रपुर आश्रम से एक पत्र स्वामी द्विजेशानन्द को भी लिखा—

कल्याणवरेषु,

बाबा, तुम्हारा पत्र मिला। गया से वापस आकर मैं अस्वस्थ हो गया था। तुम्हारे पत्र में लिखित सब बातों को मै जानता हूँ। २२ दिसम्बर को दिन के ग्यारह बजे से मैं अपने बिस्तर में ही था । मां ने अपना नश्वर शरीर छोड़ दिया, परन्तु वे अभी भी हैं। गया उत्सव में उन्होंने योगदान किया था एवं मेरे पास थीं। अभी रात्रि के आठ बजे हैं। मैं मां के पास बैठकर ही पत्र लिख रहा हूँ। उनकी कोई आकांक्षा नहीं है। प्रतिदिन इस समय वे मेरे पास आती हैं। उनकी मूर्ति—हास्यमय शुभ्र एवं उज्ज्वल है।

मैं शायद श्राद्ध कर्म के समय उपस्थित नहीं रह सकूँगा। लौकिक कृत्य, जैसा नियम है, सभी करना होगा। परन्तु उनके लिए इन सबकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

आशीर्वादक—बाबा।

उपरोक्त घटना से प्रमाणित होता है कि मां मणि के साथ स्वामी जी का सर्वदा योग था। यहां तक कि मां मणि के शरीर त्यागने के बाद भी स्वामी जी के साथ उनका बराबर योग था।

अध्याय २८ : स्वामी जी की विभिन्न प्रतिभाएँ

स्वामी जी के भीतर विभिन्न प्रकार की प्रतिभाओं का उन्मेष बाल्यकाल से देखा गया। पूर्व अध्यायों में स्वामी जी की राजनैतिक विचारधारा, समाज सेवा, एवं धर्म साधना के सम्बन्ध में कुछ-कुछ घटनाओं को संकलित किया गया है। इस अध्याय में स्वामी जी की अन्य प्रतिभाओं के सम्बन्ध में संक्षेप में वर्णन करने का प्रयास किया गया है। एक व्यक्ति के भीतर इस तरह परस्पर विभिन्न विचारधारा एवं घटनाओं का समावेश प्रायः देखा नहीं जाता। स्वामी जी के जीवन की घटनाओं का अनुशीलन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य रश्मि के भीतर सात प्रकार के रंगों का जिस तरह समावेश देखा जाता है, उसी तरह उनके जीवन में विभिन्न प्रकार की भावधारा को एकत्र देखा गया।

(क) **काव्य एवं साहित्य के क्षेत्र में :**

बाल्यकाल से स्वतःस्फूर्त साहित्य का विकास अन्नदाकुमार (स्वामी जी) के जीवन में पाया गया है। पाठशाला में पढ़ते समय पंचम जार्ज के भारत आगमन पर सर्वत्र जब अभिनन्दन समारोह का आयोजन किया जा रहा था, उस समय क्रान्तिकारी अन्नदाकुमार के अन्तर्रात्मा की आवाज कविता के रूप में प्रथमतः प्रस्फुटित हुई थी। वर्द्धमान में, छात्रावास में रहते समय दुर्गाशप्तशती एवं गीता की उन्होंने जिस तरह सरल व्याख्या की थी, उसकी विद्वानों ने बहुत प्रशंसा की थी एवं उसे प्रकाशित भी किया गया । इसके पश्चात् बंगला भाषा की अधिकांश साप्ताहिक एवं मासिक पत्रिकाओं में उनके कविता एवं लेख प्रकाशित होने लगे।

स्वाधीनता संग्राम के समय देश की आभ्यंतरिक परिस्थिति के अनुकूल उनकी कविता एवं लेख, लोगों की सुप्त चेतना को जागृत करने में, विशेष प्रभावशाली रहे। सन् १९२८ ई. में उन्होंने सर्वप्रथम 'तरूण शक्ति' नामक पत्रिका प्रकाशित की। सत्य का प्रकाश एवं अन्याय कार्यों का प्रतिवाद, इस पत्रिका का प्रमुख उद्देश्य था। सांवादिक जीवन के प्रारम्भ से उनकी सत्य के प्रति जो दृढ़ता देखी गई वह उनके जीवन के अन्तिम दिनों तक रही। उनके जीवन का मूल मन्त्र था–"ईश्वर के नाम पर, शपथ लेकर न्याय एवं सत्य की पूजा के लिए जिस ध्वज को मैंने फहराया (उठाया) है एवं जिस लेखनी को मैंने धारण किया है उसे अन्याय एवं असत्य, घमण्डी एवं भ्रष्ट, अविचारक एवं अत्याचारी के समर्थन से कलंकित होने के पूर्व मृत्यु को स्वीकार करना श्रेष्ठ समझता हूँ।" उन्होंने कुछ नाटक एवं 'विप्लवेर शिखा' नामक उपन्यास भी लिखा, जिसकी प्रशंसा उपन्यास सम्राट शरत्चन्द्र ने भी की। नेताजी

सुभाषचन्द्र बोस के संपर्क मे आने के पश्चात् नेताजी के कथित आदर्श–''अन्याय के साथ समझौता, मनुष्य का घृण्यतम अपराध है,'' का अन्नदा कुमार ने जिस तरह पालन किया है उसका दृष्टांत उनका सम्पूर्ण जीवन है।

'तरूण शक्ति' के पश्चात् स्वामी जी ने 'संगठन' एवं 'मानभूम समिति' नामक पत्रिका का सम्पादन किया। इन पत्रिकाओ से अंग्रेज सरकार को जबरदस्त धक्का लगा था। दरवेश जी महाराज से दीक्षा प्राप्ति के पश्चात् उनके निर्देशानुसार अन्नदा कुमार ने 'संगठन' पत्रिका द्वारा समाज सेवा का कार्य एवं राजनैतिक विचारधारा को प्रकाश किया एवं 'मन्दिर' पत्रिका के माध्यम से सनातन धर्म के सम्बन्ध में, सद्गुरू विजयकृष्ण गोस्वामी जी की जीवनी एवं उपदेश द्वारा उनके सिद्धांतो का प्रचार करने का प्रयास किया । दरवेश जी स्वयं एक प्रख्यात् कवि थे। उनके काव्य की, रविन्द्रनाथ ठाकुर एवं समकालीन लेखको ने प्रशंसा की थी। दरवेश जी द्वारा लिखित 'मन्दिर' काव्य, विश्वविद्यालय के पाठ्यपुस्तक की तालिका में थी। दरवेश जी के संस्पर्श में आने के पश्चात् स्वामी जी कमशः राजनैतिक जीवन से मुक्त होकर साधना की गहराई में पहुँच गये। अपनी आध्यात्मिक अनुभूति एवं विभिन्न अवस्थाओं से सम्बन्धित कविताओं को अपने विभिन्न काव्य ग्रन्थो में कमशः उन्होने प्रकाशित किया। इनमें बांसुरी, अनामा, पथिकेर गान, पथेर-कविता, पदचिन्ह, तपोवन आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं। 'बांसुरी' ग्रन्थ में कविता के माध्यम से षट्चक्र तथा श्रीराधाकृष्ण तत्त्व को प्रकट करने का प्रयास किया गया है। इसमें आत्मा का परमात्मा के साथ मिलन एवं श्रीराधा का श्रीकृष्ण के साथ मिलन को एक ही तत्व कहा गया है। सुप्त कुण्डलिनी शक्ति को सहस्त्रार मे ले जाना होगा। योग के द्वारा यह संभव है। श्री विजयकष्ण गोस्वामी जी द्वारा प्रदत्त 'अजपा-साधना' द्वारा श्वास-प्रश्वास में नाम जप करने से किस तरह यह अवस्था कमशः प्राप्त हो सकती है, उसका विवरण इस ग्रन्थ में है। इस ग्रन्थ के अन्तर्निहित गूढ़ अर्थ को समझाने के लिए स्वामी जी ने कई बार 'बांसुरी' ग्रन्थ को पढ़कर सुनाते हुए व्याख्या की। स्वामी जी की कविताओं में यह विशेषता देखने को मिलती है कि उनकी भाषा सरल है पर भाव गंभीर है। आधुनिक लेखकों के दुर्बोध्य कविता, जिसे आधुनिक पद्धति (Modern Art) कहा जाता है, जैसी कविता स्वामी के ग्रन्थों में नहीं मिलते।

सांवादिकता के क्षेत्र में अन्नदा कुमार जिस आदर्श को सामने रखकर अग्रसर हुए उसे दृष्टांत स्वरूप कहा जा सकता है। उन्होंने 'संगठन' पत्रिका में एक लेख द्वारा अपने विचार को इस प्रकार व्यक्त किया था–लेख का शीर्षक–

''सांवादिकता कीचड़ उछालना नहो है।''

विगत कुछ समय से हमारे पास अनेक संवाद पत्र आए हैं, जिसे पढ़ने से स्वतः प्रश्न उठता है कि 'क्या यही सांवादिकता है'?' अन्याय कार्यों के विरूद्ध

समालोचना अवश्य करना चाहिए, परन्तु उसका मूल उद्देश्य रहेगा–अन्याय का संशोधन। शक्तिशाली लेखन एवं समालोचक के लेख किसी को नीचा करने के लिए नहीं होने चाहिए एवं किसी के सम्मान को हानि पहुँचाने के लिए भी नहीं होने चाहिए। उसका उद्देश्य होगा–'अपराध करने वालो या दुष्ट लोगों के हृदय को सुयोग्य चिकित्सक की तरह अस्त्रोपचार द्वारा उसके व्याधि को ठीक करना। हमारे देश के लोग हमारे शत्रु नहीं हैं–सभी हमारे भाई, मित्र या स्वजन हैं। हम सभी देश मातृका के सेवक हैं। प्रत्येक की भूल त्रुटियों को संशोधन करने का हम प्रयास करेंगे एवं न्याय तथा सत्य पथ पर अग्रसर होने में सहानुभूतिपूर्वक सहायता करेंगे। प्रयोजन होने पर कठोर समालोचना करेंगे। प्रतिवाद करेंगे एवं आवश्यक प्रतिरोध करने का प्रयास करेंगे। इस कर्त्तव्य पालन के महान् पथ में जिस तरह दृढ़ता की आवश्यकता होगी–तेजस्विता एवं शक्तिशाली होना आवश्यक होगा उसी तरह सौजन्यता एवं शालीनता की उपेक्षा करना भी नहो चलेगा–सत्य की नीव पर प्रतिष्ठित तथा देश के कल्याणकारी आदर्श को स्थापित करने के पथ में सहायक हो, इस प्रकार की हमारी समालोचना होगी।

संवाद की भाषा होगी–सरल, सुन्दर, अनाड़म्बर, तेजोदीप्त एवं प्राणस्पर्शी। वह हृदय में पहुँच कर आघात अवश्य करेगा तथा उसके प्रभाव से दुष्कार्य करने वाले के चित्त मे अनुताप और आत्मचिन्तन भी उत्पन्न करेगा अर्थात चित्ताकर्षण रूप में संवाद का प्रसार करना सांवादिकता का महान् गुण है।

अश्लील भाषा का प्रयोग करते हुए संवाद-पत्र की मर्यादा की प्रतिष्ठा नहो की जा सकती। हम कुरूचि या अश्लीलता का आश्रय लेकर, संवाद पत्र की सेवा के महान् व्रत को कलंकित न करे। संवाद मिलने पर उसे छापना हो पड़ेगा–यह उचित नहीं है। उसका निर्वाचन करना होगा। संवाद-पत्र 'सत्य' समाचार प्रकाशित करेगा। संवाद-पत्र के सेवकों की टिप्पणी होगी–सत्य पर प्रतिष्ठित। उन्हें सभी प्रकार के प्रलोभनों को जय करना होगा। विज्ञापन द्वारा पत्रों को परिपूर्ण करते हुए, कुछ संवाद–कुछ मतवाद प्रकाशित कर, विज्ञापन की आय से पत्र को चालू रखने की व्यवस्था संवाद-पत्र का उद्देश्य नहीं है। अनेक संवाद-पत्र अपने पृष्ठों में महात्माओं की वाणी देते हैं, परन्तु पत्र के पन्ने पलटने पर जिस तरह के अश्लील मनोभाव का प्रकाश देखा जाता है, उससे विस्मित होना पड़ता है। याद रखना आवश्यक है कि मतलब (चालाकी) द्वारा कोई महान् कार्य कभी सम्पन्न नहीं हो सकता । दूसरों के नाम पर उत्तेजक शब्दों के प्रयोग से कुछ लोगों की सामयिक तौर पर प्रशंसा पाने पर भी वह पत्रिका नहीं टिकेगी।

आज नित्य अनेक संवाद-पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। मेरे पास सैकड़ों पत्र-पत्रिकाएं आती हैं। इनमें से कुछ पत्रिकाओं में समालोचना की भाषा तीव्र परन्तु मधुर

रहती है। आकमक होते हुए भी समालोचना में विद्वेषभाव नहीं है। इनमें संशोधन का पथ निर्देश है, परन्तु किसी की अवमानना (अपमान सूचक) नहो है। इनमें सच्चे सेवक के मनोभाव का प्रकाश है तथा सभी प्रकार के प्रतीकार का सामना करने के लिए सम्पादक प्रस्तुत रहते हैं। ऐसे लोगों का मैं अभिनन्दन करता हूँ।

वास्तव में संवाददाता या संपादक कभी अर्थ के लिए आत्मविकित नहीं होगा, यश के लिए अथवा प्रचार के लिए मिथ्या का आश्रय कभी नही लेगा। 'सत्य' कें प्रकाश, न्याय की पूजा, देश एवं जाति के कल्याण के लिए वे सर्वदा सचेष्ट रहते हैं। देश के संगठन के पथ में ये लोग देश को सच्ची सहायता प्रदान करते हैं। किसी के कठोर शासन या कोध से वे विचलित नहीं होते। किसी भी तरह के दुर्व्यवहार को सहन करने के लिए वे सदा प्रस्तुत रहते हैं।

अपने दलबंदी भावना के प्रचार के लिए आजकल अनेक संवाद-पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। अपने-अपने आदर्श के प्रचार के लिए इसकी आवश्यकता भी है। दूसरे के आदर्श की त्रुटियों को दिखलाकर उसके संशोधन की भी आवश्यकता अवश्य है, परन्तु दूसरों के आदर्श पर कटाक्ष करना, गाली देना अथवा हीन भावना से आकमण करना कभी भी सांवादिकता नहीं हो सकती। एक श्रेणी के कुछ लोग इसकी प्रशंसा क़र सकते हैं, पत्रिका का विकय सामयिक (थोड़े समय के लिए) कुछ बढ़ सकता है, परन्तु इससे निःसंदेह सांवादिकता का अपमान ही होगा। (समाप्त)

स्वामी जी की इस तरह की मौलिक विचारधारा अनेक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी है जो चिन्तन एवं मनन का विषय है।

साहित्य के क्षेत्र में दो प्रकार के लेखक़ मिलते हैं। एक प्रकार के लेखक, अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं लेखन शैली के सहारे विद्वतापूर्ण लेखों द्वारा लोगों को आकृष्ट करते हैं। इनके लेखों से प्रभावित होकर कोई यदि उनके व्यक्तिगत जीवन का विश्लेषण करना शुरू करे तो उसे निराश होना पड़ेगा। क्योंकि इन लेखकों की कथनी एवं करनी में एकता नहीं होती। अपनी मनमोहक शैली से लेखों द्वारा वे, लोगों को आकर्षित कर सकते है परन्तु उसमें वर्णित सिद्धांतों को अपने जीवन में प्रयोग नही कर पाते।

दूसरे प्रकार के लेखक, गहन विचार या ध्यान द्वारा जिस 'सत्य' को अपने जीवन में उतार सकते हैं उसे ही वे अपने लेखों में प्रकाशित करते हैं। जिस सत्य की उन्होंने स्वयं उपलब्धि कर शान्ति प्राप्त की है उसे सर्व साधारण प्राप्त कर सकें, इसके लिए वे प्राणपण चेष्टा करते हैं। हमारे सनातन धर्म के प्राचीन ऋषि-मुनि या महात्मागण इसी आदर्श के अनुयायी थे। स्वामी असीमानन्द जी भी इसी भावधारा द्वारा बचपन से परिचालित हुए। एक अदृश्य शक्ति सर्वदा उन्हें उपनिषद् के मन्त्र–'इशावास्यमिदं सर्वं यत् किन्च जगत्यां जगत्' को लक्ष्य रखकर अग्रसर होने

में सहायता प्रदान की। इसी कारण स्वामी जी के हर उपदेश, कविता या लेखों में–'जित देखूँ उत वो ही दिखे', इसका प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ता है। छात्र-जीवन से ही वे बंगाल के कई प्रमुख लेखकों के संपर्क में आए एवं उनसे प्रभावित हुए। रामचन्द्रपुर आश्रम में उन्होंने कई बार 'बंगीय साहित्य सम्मेलन' का आयोजन किया। इसमें बंगाल के सभी प्रमुख कवि, नाट्यकार, उपन्यासकार, लेखक, समाचार-पत्रों के सम्पादक आदि उपस्थित रहे। वे सभी स्वामी जी के व्यक्तिगत जीवन एवं उनके लेखों से प्रभावित थे। 'अखिल भारतीय बंग भाषा प्रचार समिति' की मानभूम शाखा को कई वर्षों तक स्वामी जी ने परिचालित किया। कई स्थानों के 'बंग भाषा सम्मेलन' में उन्हें सभापति बनाया गया। कोलकाता, अन्दमान, हैदराबाद, आदि विभिन्न स्थानों के साहित्य सम्मेलन में उन्होने भाग लिया था। साहित्य की सेवा को वे समाज सेवा का प्रमुख अँग मानते थे। साहित्य के भीतर सत्य भावना या धर्म भावना को जागृत रखने के लिए उन्होंने लेखको को प्रेरित किया। इस सम्बन्ध में स्वामी जी के विचार को निम्न दो भाषणों में प्रकट देखा जा सकता है ।

(१) बर्नपुर–साहित्य सभा में (सन् १९३८ ई. के लगभग)–

बर्नपुर साहित्य सभा मे अन्नदा कुमार मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित थे। वहां सभा में बंगला भाषा के प्रसिद्ध लेखक श्री ताराशंकर बन्धोपाध्याय सभापति थे। अन्नदा कुमार के प्रवचन ने सभी साहित्य प्रेमियों को अचम्भित कर (हिला) दिया। अन्नदा कुमार (स्वामी असीमानन्द सरस्वती) के शरीर त्याग के पश्चात् श्री ताराशंकर ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उस दिन की घटना का वर्णन करते हुए लिखा था–"वास्तव मे बंगला साहित्य में १९२१ ई. से १९३८ ई. के बीच विदेशी शासन के उत्ताप से बंगाल के मनुष्य का जीवन ज्वालामुखी के गरम लावा की तरह उबल रहा था। परन्तु इसकी अभिव्यक्ति उस समय के साहित्य में नहीं दिखलाई पड़ती। बंगला साहित्य के उपन्यास सम्राट बंकिमचन्द्र के 'आनन्द मठ', रविन्द्रनाथ ठाकुर के 'गोरा' एवं शरत्चन्द्र के 'पथेर दाबी' इन तीन उपन्यासों के मध्य ही यह सीमित रहा।" बंगाल के प्रसिद्ध कान्तिकारी कवि नजरूल की ओजस्वी कविता उस समय के साहित्य में आलोचना की वस्तु थी। उस समय साहित्यकारों की ऐसी धारणा थी कि साहित्यकार, राजनीति एवं राजनैतिक आन्दोलन और संगठन से अपने को दूर रखकर आवश्यक साहित्य लिखें। तब अन्नदा कुमार के साथ ताराशंकर बाबू का परिचय नहीं था। बर्नपुर में अन्नदा कुमार के प्रवचन से वे चौक उठे। उस प्रवचन में अन्नदाकुमार ने साहित्यकारों को निम्न शब्दों में धिक्कारा था–

"बीसवीं शताब्दी की मानिकतला बगीचे में, श्री अरविन्द द्वारा परिचालित कान्तिकारी विद्रोह से लेकर चटग्राम अस्त्रागार को लूटने तक की बंगाली तरूण कान्तिकारियों की तपस्या का प्रतिबिम्ब साहित्य में कहां प्रतिफलित हुई? उसकी

प्रतिध्वनि साहित्य के क्षेत्र मे कहां हुई?''

''रामायण में सीता हरण के समय सीता का कन्दन आज भी हमारी आँखों को सजल कर देती है, साथ ही साथ रावण एवं राक्षसो के कार्यों के प्रति पाठकों का हृदय कठोर हो जाता है। रामचन्द्र ने जब समुद्र में सेतु-बन्धन किया तब मनुष्य ने अपने संकल्प एवं शक्ति का परिचय पाया एवं एक शक्तिवान मानव की तरह, अपने को पहचान सका। महाभारत में द्युत सभा में राजशक्ति के अन्याय–कुटिल चाल से हमारी स्नायु उत्तेजित हो उठती है। भीष्म-चरित्र की सभी महिमा उनकी नीरवता के कारण मानो म्लान पड़ जाती है। इस तरह के वर्णन में ही साहित्य की एवं काव्य की सार्थकता है।''

इस तरह उस दिन अन्नदा कुमार के प्रवचन की आन्तरिकता ने सारी सभा को विचलित कर दिया था। प्रवचन में अपने स्वार्थ के लिए विषय भोग एवं आरात्ति भावना का तीव्र तिरस्कार किया गया था। उनके तिरस्कार के भीतर जो आन्तरिकता एवं अपनापन था, उसके प्रभाव से सभी लोगों को अपने कर्त्तव्य कर्म की त्रुटियां दिखलाई पड़ी एवं आत्मचिन्तन की आवश्यकता महसूस हुई। ('संगठन'–असीमानन्द संख्या से)

(२) सन् १९५५ ई. के समस्तिपुर (बिहार) साहित्य सम्मेलन मे :–

पहला बैशाख से बंगला नया वर्ष प्रारम्भ होता है। प्रतिवर्ष इस दिन यहां साहित्य-सम्मेलन का आयोजन किया जाता था। उस वर्ष सम्मेलन में मुख्य अतिथि बंगला भाषा के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री विभूति मुखोपाध्याय एवं सभापति के रूप में स्वामी जी आमंत्रित थे। उस समय स्वामी जी बिहार विधानसभा के सदस्य भी थे। सभा में उपस्थित कई लोगों ने आपस में आलोचना किया कि साहित्य सम्मेलन मे एक राजनैतिक एवं संन्यासी व्यक्ति को सभापति के रूप में मनोनीत करना क्या उचित कार्य हुआ है? सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ। स्वामी जी उस दिन काफी अस्वस्थ थे। साहित्यकार विभूतिबाबू ने अपने भाषण में कहा–''यह साहित्य सभा है। यहां राजनीति को लेकर किसी तरह की आलोचना हम नहीं करना चाहते। ......इत्यादि।'' अन्य विद्वान साहित्यकारों के भाषण के पश्चात् अन्त में सभापति स्वामी जी ने भाषण प्रारम्भ किया। भाषण का कुछ अंश यहां दिया जा रहा है–

मानभूम के एक अज्ञात गांव से, एक दीनहीन व्यक्ति आप लोगों को साहित्य के सम्बन्ध में नई वाणी क्या उपहार देगा? प्रातः से संध्या तक एवं संध्या से प्रातः तक गांव के हजारों सुख-दुःख, अभाव-कष्ट के मध्य में मेरा जो जीवन साहित्य तैयार हुआ है, उसे कौन पढ़ना चाहेगा? उस साहित्य को पढ़ने के लिए मनुष्य को गांव के मध्य जाना होगा। पुस्तक के पन्नों में इसका कितना परिचय मिलेगा?

आज इस शहर में उपस्थित रहकर मेरे आँखों के समक्ष, मेरे गांव के लाखों

अत्याचारित, निष्पेषित भाई एवं बहनों के करूण रूप दिख रहे हैं। उनके पास न खाने के लिए अन्न है न पहनने के लिए वस्त्र। प्यास बुझाने के लिए न पानी है न रोग-ग्रस्त होने पर दवा। एक दिन पराधीन भारत में हम लोगों ने अंग्रेजों को गाली दी थी और आज स्वाधीन देश में, वही पुराना शासन नया वेश लेकर हमें सर्वदा स्मरण करा रहा है कि हम जिस अंधकार में थे—उसी में हैं।

साहित्य सभा में राजनीति का प्रवेश निषिद्ध है, परन्तु मैं सोच नही सकता कि राजनीति को पृथक कर आज जीवन किस प्रकार चलेगा? भोजन नहीं है—भोजन की मांग करनी होगी, वस्त्र नहीं है, उसकी मांग करनी होगी—यह सब तो राजनीति है। जो नहीं है उसकी मांग करने पर तुम राजद्रोही हो जाओगे। गुप्त रूप से स्वेच्छाचारी सरकार की चापलूसी करने पर, तुम राजभक्त हो जाओगे। तुम्हारा मान-सम्मान होगा—तुम्हें अर्थ मिलेगा।

रविन्द्रनाथ, बंकिमचन्द्र, शरत्चन्द्र, देशबन्धु चित्तरंजन दास आदि का नाम लेकर चिल्लाने से तुम जीवित नहीं रह सकते। तुम्हें एक आदर्श की प्राप्ति के लिए साधना करनी होगी। व्यक्तिगत स्वार्थ और दलगत स्वार्थ ने आज बंगाली जाति की शक्ति को पंगु बना दिया है।

बंगला वर्ष के अन्त में शिव की उपासना प्रचलित है। शिव मंगलमय हैं। विगत वर्षों की सब कालिमा को मिटाते हुए, मंगलमय शिव, मंगल करें।

इस तरह स्वामी जी ने काफी देर तक धाराप्रवाह ओजस्वी भाषण दिया। सभी लोग उनके दीर्घ प्रवचन को मन्त्रमुग्धवत् सुनते रहे। सभा के अन्त में स्वामी जी को आधे घन्टे तक सभी के श्रद्धापूर्ण प्रणाम ग्रहण करने के लिए खड़े रहना पड़ा। जिन लोगों ने स्वामी जी की पहले आलोचना की थी, वे अब प्रशंसा करने लगे। विभूतिबाबू ने कार्यकर्ताओं से एकांत में कहा—'स्वामी जी को मैं जानता हूँ। उनका प्रवचन स्फुलिंग (आग की चिंगारी) की तरह है। उन्हें थोड़ा उत्तेजित करने के लिए ही मैंने राजनीति को लेकर कटाक्ष किया था। आप लोगों ने आज जो सुना, वह उनके प्रवचन के सोलह आने का केवल चार आना था। उनका प्रवचन सुनने पर शरीर और मन दोनों उत्तेजित हो उठते हैं।' ('संगठन'—विशेष संख्या से)

(३) सन् १९६२-६३ ई. में जब चीन ने भारत पर आकमण किया था, उस समय रामचन्द्रपुर आश्रम मे एक साहित्य सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इसमें बंगला भाषा के अनेक साहित्यकार एवं पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक उपस्थित थे। सभी लेखकों ने, चीन के विरूद्ध में साहित्यकारों का जो महान् कर्त्तव्य है, उसे स्मरण करते हुए, संकल्प लिया कि साहित्यकार देश-भक्तिपूर्ण एवं देश के मंगल-जनक साहित्य की रचना करेंगे। आवश्यकता होने पर उन्हें मसि छोड़कर असि (कलम छोड़कर तलवार) ग्रहण करना होगा। उस समय बंगला भाषा की प्रमुख

मासिक पत्रिका 'भारत वर्ष' के सम्पादक श्री फणीन्द्रनारायण मुखोपाध्याय (सभापति) ने अपने भाषण मे आधुनिक कविता की कठोर आलोचना करते हुए कहा कि छन्द-हीन, उद्देश्य-हीन, व्याकरण-हीन एवं संगीत विहीन कविता मनुष्य को क्या प्रदान करेगा? कुछ शब्दों का सम्मिश्रण कर प्रस्तुत शब्द जाल कविता नहीं है। कविता का जीवनदायी एवं प्रेरणा मूलक होना आवश्यक है। आज के युग में इस आधुनिक कविता के प्रवाह को बन्द करने की आवश्यकता पर उन्होंने विशेष रूप से कहा। देशात्म बोधक एवं मानव जीवन के विभिन्न दृष्टिकोण एवं प्रेम-भावना पर लिखित कविता मनुष्य को कछ प्रदान कर सकती है।

सभा में उपस्थित सभी लोगों ने स्वामी जी के प्रति अपनी आन्तरिक श्रद्धा प्रकट की थी। कोई लोग प्रश्न करते थे कि धर्म प्रतिष्ठान में, इस तरह के साहित्य सम्मेलन के आयोजन करने का स्वामी जी का क्या उद्देश्य था? ऐसा लगता है कि साहित्य ही समाज का दर्पण है। समाज की उन्नति में साहित्य का अवदान सर्वाधिक है। साहित्यकार यदि समाज की उन्नति के लिए, मनुष्य के चरित्र गठन में, मनुष्य के भीतर सुप्त चेतना को जागृत करने के लिए साहित्य की रचना करें तो उसका स्थाई रूप से प्रभाव पड़ता है। रामायण, महाभारत आदि प्राचीन साहित्य ने भारत को जो प्रेरणा प्रदान की है, उसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। समाज की सेवा में साहित्य का एक विशेष प्रभावशाली स्थान है, इसे स्वामी जी मानते थे। इस कारण साहित्य की उन्नति के लिए वे सचेष्ट रहते थे।

(ख) जन-सेवा के क्षेत्र में :–

छात्रों के प्रति निर्देश – देश की उन्नति छात्रों के ऊपर निर्भर है। आज जो छात्र हैं वे ही भविष्य में देश के नागरिक होंगे। अतः उनके ऊपर ही देश की उन्नति निर्भर है। स्वामी जी, छात्रो को अपना कर्त्तव्य कर्म करने के लिए सर्वदा उत्साहित करते थे। उनका कहना था कि 'सत्य एवं ब्रह्मचर्य द्वारा अनन्त शक्ति प्राप्त की जा सकती है '–छात्रों को पहले इसकी शिक्षा देना आवश्यक है। विभिन्न समय में, इस विषय पर अपने विचार को लेख एवं भाषण द्वारा उन्होंने व्यक्त किया। छात्रों के नैतिक चरित्र का पतन तथा शिक्षा के प्रति उदासीनता को देखकर स्वामी जी का हृदय उनके कल्याण के लिए चिन्तित हो उठता था। स्वामी जी द्वारा, छात्रों को प्रदत्त कुछ उपदेश एवं प्रवचन का उल्लेख यहां किया जा रहा है–

(१) ऋषियों ने शरीर एवं मन के लिए व्यायाम का उपदेश दिया है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए जो शारीरिक परिश्रम किया जाता है, उसे दैहिक व्यायाम कहा जाता है। शरीर और मन को संयमित कर उसे स्वस्थ रखा जा सकता है। अष्टांग योग-साधना द्वारा शरीर और मन, दोनों की उन्नति होती है। 'सत्य', 'अहिंसा', 'ब्रह्मचर्य', तृष्णा या आसक्ति का त्याग, शरीर एवं मन की पवित्रता, सन्तोष, तपस्या, सद्ग्रन्थ-

पाठ, ईश्वर का चिन्तन एवं ध्यान–ये सब मन को एकाग्र करने में सहायक हैं। निर्दिष्ट समय पर, नियमपूर्वक शरीर एवं मन के व्यायाम द्वारा मनुष्य दीर्घजीवन, सुख शान्ति एवं आनन्द प्राप्त कर सकता है।

यदि जीवन संग्राम में जयी होना है तो तुम्हें दृढ़तापूर्वक संकल्प लेना होगा–'दीर्घजीवन के लिए, सत् एवं पवित्रता के लिए, तुम्हारा जीवन सभी की सेवा के लिए नियुक्त रहेगा। आत्मसुख एवं भोग आकांक्षा पूर्ण करना, कभी भी तुम्हारा उद्देश्य नही रहेगा।'

जिस तरह शरीर अस्वस्थ होने पर दवाई की आवश्यकता होती है, उसी तरह मन अस्वस्थ होने पर उसके लिए आनन्द प्राप्ति की साधना करनी होगी। यदि हम ज्ञान प्राप्त कर सकें एवं पराविद्या का अनुशीलन करें तब हमें मालूम पड़ेगा कि मन की उन्नति के लिए क्या आवश्यक है? हमें तपस्या द्वारा रज एवं तमोगुण का दमन करते हुए सत्वगुण में प्रतिष्ठित होना होगा। इसके लिए मन में दृढ़ संकल्प रखना आवश्यक है।

तुम्हें तीन उपदेशों का पालन करना आवश्यक है–प्रथमः–प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदय के समय, भगवान के निकट प्रार्थना करना चाहिए–हे तेजस्वरूप! तुम हमारे भीतर तेज का संचार करो। हे वीर्य स्वरूप! तुम हमारे भीतर वीर्य का संचार करो, हमें बल प्रदान करो। हे ओज स्वरूप! तुम हमें ओजस्वी करों। हे सह स्वरूप! तुम हमें सहन करने की शक्ति दो। हे न्याय स्वरूप! तुम हमें अन्याय के विरुद्ध खड़े होने के लिए, बल प्रदान करो।

तुम चिन्ता करो–तुम देह-मन नहीं हो, बुद्धि-अहंकार-चित्त नहीं हो। तुम नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त एवं चैतन्य स्वरूप हो।

द्वितीय :– नित्य संध्या के समय निर्जन स्थान में बैठकर चिन्तन करो–मेरी उन्नति हो रही है, मैं सत्य की ओर अग्रसर हो रहा हूँ, मेरी दोष-त्रुटियां-दुर्बलता, मेरा अभिमान-अहंकार, काम-काध, लोभ-मोह-मत्सर्य कम हो रहा है–कमशः यह समाप्त होगा। मैं वही शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-चैतन्य स्वरूप हूँ एवं सब तरफ से मेरी उन्नति हो रही है।

तृतीय :– रात्रि में सोने से पहले प्रार्थना करो–हे भगवान! मेरा अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य, कर्म-अकर्म सभी तुम्हारे चरणों में अर्पण कर रहा हूँ। तुम्हारा नाम लेकर, तुम्हारे संसार में सेवक के रूप में मैंने काम किया, अब कर्म के अन्त में विश्राम लेने के पूर्व, सब कुछ तुम्हारे चरणों में अर्पित कर–निश्चिन्त हो गया।

कुछ दिन इस प्रकार अभ्यास करने से तुम देखोगे कि तुम्हारी शारीरिक एवं मानसिक शक्ति की वृद्धि हो रही है।

हे छात्रगण! तुम्हें आत्म-जयी होना पड़ेगा । तुम्हारे शरीर एवं मन की सुप्त

शक्ति को जागृत कर, उपरोक्त साधना, अमृत सागर की ओर ले चलेगा–तुम्हारा मानव जीवन धन्य हो जाएगा ।

केवल विचार या तर्क से शक्ति की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। तुम्हे नित्य अभ्यास करना होगा, प्रयास करना होगा, कर्म करना होगा। तामसिक कर्म हीनता को, कर्म से अतीत अवस्था समझकर आत्म-सन्तोष करना विनाशकारी होता है। कर्म करते हुए कर्म के अतीत अवस्था प्राप्त करो।

शास्त्रो मे अनेक प्रकार के आसन एवं मुद्राओं का वर्णन है। इनका अपना-अपना अलग फल है। योग की कियाओं द्वारा अनेक प्रकार के लाभ होते हैं, परन्तु इसे किसी योग्य गुरू से सीखना आवश्यक है। पुस्तकों को पढकर योग की शिक्षा नहीं होती।

शारीरिक व्यायाम के साथ, एकाग्रता की शिक्षा आवश्यक है। एकाग्रता द्वारा असाध्य कार्य किये जा सकते हैं। मन को स्थिर एवं एकाग्र करने के लिए भगवत् उपासना प्रारम्भ करो। अवश्य एक दिन तुम्हें साधना में सिद्धि की प्राप्ति होगी। ('मन्दिर' पत्रिका, १८ वर्ष, संख्या १० से)

(२) छात्र किस तरह अपने पाठ्य पुस्तकों को याद रखे, इस विषय पर स्वामी जी ने कहा था–

(i) छात्रगण, तुम पहले स्वयं अपने से प्रश्न करो कि तुम क्यो पढ़ रहे हो? इस पढ़ाई का क्या उद्देश्य है? इससे तुम क्या लाभ की आशा रखते हो? इससे तुम्हारे जीवन की कुछ उन्नति होगी ऐसा सोचते हो अथवा पढना है इस कारण पढ रहे हो? मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि तुम्हें पहले यह जानना आवश्यक है कि इस पढाई का लक्ष्य क्या है? लक्ष्य स्थिर होने पर तुम्हारे बहिर्मुखी मन में, लक्ष्य में पहुँचने के लिए, एकाग्रता आएगी।

(ii) तुम जिस विषय को पढ़ रहे हो उसके सम्बन्ध में जितने प्रकार के तथ्य आवश्यक हैं उसे तुम संग्रह करो ! जिस प्रकार एक राजनैतिक नेता, किसी स्थान पर जाने के पूर्व उस स्थान के प्रमुख लोगों का नाम पहले याद कर लेता है। इससे भविष्य मे उसके कार्य में सहायता मिलेगी–यह बात उसे अच्छी तरह मालूम है। उसे इस कार्य के लिए अभ्यास नही करना पड़ता। उसका राजनैतिक लक्ष्य स्थिर रहने से, उसका मन उसे लक्ष्य में पहुँचाने के लिए स्वतः सहायता करता है।

(iii) शिक्षा, केवल ग्रन्थों के पढने पर निर्भर नहीं रहती। तुम जिस प्रकार से किसी विषय का पाठ करते हो उसी तरह से, दूसरों के साथ उस विषय की आलोचना करो–तुमने जो कछ समझा है उसे, दूसरों को सिखाने का प्रयास करो । इसके पश्चात् पुनः उस विषय का पाठ करो, इससे मालूम हो जाएगा कि कोई आवश्यक अंश छूट तो नहीं गया। यदि कोई अंश भूल गये हो तो उसे पुनः याद कर लेना होगा।

(iv) कोई भी विषय, शीघ्रतापूर्वक, बिना समझे मत पढ़ो । जितना भी पढ़ो उसे अच्छी तरह समझकर पढो। यदि नित्य नियमित रूप से थोड़ा भी, समझकर पढ़ा जाए तो देखोगे तुमने अधिक अंश पढ़ लिया है।

(v) निर्दिष्ट स्थान पर, निर्दिष्ट समय पर पढ़ने से मन सरलता से स्थिर हो जाता है । अपने पढने के कमरे को साफ-सुथरा रखना आवश्यक है। पुस्तक एवं लेखन सामग्री आदि व्यवस्थित ढंग से यथास्थान रखना चाहिए। इस प्रकार से जो भी पढ़ोगे, मन सहज रूप से उसे स्मरण रखेगा। प्रातः चार बजे से पढ़ने का अभ्यास सबसे अधिक अच्छा होता है।

(vi) पढने एवं पढ़ाने पर अध्ययन सम्पूर्ण होता है। तुम जो भी पढ़ो, उस विषय को अपनी भाषा एवं भावना द्वारा कहने का अभ्यास करो। उसे अपनी भाषा में लिखा करो। इससे तुम्हें आशातीत फायदा मिलेगा।

(vii) स्मरणशक्ति, उपरोक्त प्रकार से अध्ययन द्वारा अवश्य बढ़ेगी। इसके साथ ब्रह्मचर्य का पालन करो। मन की, याद रखने की क्षमता तुम्हारे संयमित जीवन पर अधिक निर्भर रहती है। संयमित वाक्य द्वारा विशेष सहायता मिलेगी।

(३) उस समय कई महाविद्यालयों में 'रेगिंग' नामक लज्जाजनक प्रथा को प्रचलित होते देखकर स्वामी जी ने छात्र-समाज के समक्ष इस प्रकार निवेदन किया–

मेरे प्राणप्रिय छात्र-मण्डली के निकट मेरा निवेदन है कि हमारे इस देश की दुर्दशा एवं पतित समाज का एकमात्र भरोसा छात्रों पर है। मैं अन्तरंग रूप से छात्रों के साथ मिला हूँ–अपने मित्र की तरह उन्हें प्यार करता हूँ एवं मैंने आजीवन परमनिष्ठा के साथ उनकी यथा योग्य सेवा की है। इस कारण लोगों के मुंह से सुनकर एवं दैनिक समाचार पत्रों में जब छात्रों के विरूद्ध में, उनके असंयम एवं अशोभनीय आचरण का संवाद प्राप्त करता हूँ तब सहसा उसे विश्वास करने की मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। परन्तु जब हर पत्रिकाओं में शिवपुर बी. ई. कॉलेज, खड़गपुर आई. आई. टी. छात्रावास आदि में रेगिंग नामक असभ्य एवं निष्ठुरतापूर्ण कार्यो के होने का विवरण प्रकाशित हुआ एवं विभिन्न महाविद्यालयों मे इस कुप्रथा की लज्जाजनक पुनरावृत्ति करती हुई घटनाएं प्रकाशित हुई तब इसे अस्वीकार नही किया जा सका। जिस छात्र-समाज को लेकर हम गर्वित होते हैं, जिनके त्याग-आदर्श-कर्मप्रेरणा हमारे देश का भविष्य है–वे इस तरह आत्म-विस्मृत होकर अपनी इतनी अधोगति की ओर जा रहे हैं, इसे विश्वास करना कठिन लगता है। हास-परिहास की सीमा रेखा को पार करने पर, वह किसी भी क्षेत्र में, बर्बरता या क्रूरता में परिवर्तित हो जाता है, इसे समझने लायक बुद्धि एवं दायित्व ज्ञान (भरोसा), प्राप्त वयस्क शिक्षित लोगों को अवश्य रखना चाहिए।

इस कारण आज मैं छात्र-समाज के निकट सविनय निवेदन लेकर आया हूँ।

राष्ट्र का भविष्य एवं समाज का भार जिन पर है, वे अवश्य इस निवेदन द्वारा सचेत होंगे एवं अपने प्रिय 'नेताजी' (सुभाषचन्द्र बोस) के आदर्शो से अनुप्राणित होकर इस तरह के कुकार्य के अनुष्ठान की पुनरावृत्ति नही होने देंगे।

स्वामी जी द्वारा उपरोक्त लेखों एवं प्रवचनो से स्पष्टतः प्रमाणित होता है कि वे छात्र-समाज की उन्नति के लिए किस तरह सचेष्ट थे ।

(४) छात्र आन्दोलन का नेतृत्व (१८ जनवरी, १९४८ ई.)–

बिहार प्रान्त में स्थित मानभूम जिले के अधिकांश लोग बंगाली भाषी रहने पर भी बिहार प्रान्त के नेताओं ने बंगला भाषा का उच्छेद करने की योजना बनाई एवं जबरदस्ती हिन्दी भाषा को प्राथमिक शिक्षा में पढ़ाई का माध्यम बनाया। इस कार्य का यद्यपि मानभूम जिले के अधिकांश लोगों ने विरोध किया, परन्तु योग्य नेता के अभाव मे यह आन्दोलन असफल होने लगा। छात्र एवं शिक्षकगणों ने स्वामी जी से इस कार्य में, नेतृत्व करने के लिए अनुरोध किया। स्वामी जी छात्रों को, सत्य पथ पर चलने एवं अन्याय कार्यों का विरोध करने में सर्वदा तत्पर रहने के लिए प्रेरित करते थे। स्वामी जी ने छात्र एवं शिक्षकों से कहा–''माँ एवं मातृभाषा समान है। मातृभाषा के सम्मान के लिए अपने जीवन की आहुति देने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ। इस अन्याय कार्य का सर्वत्र प्रतिवाद करो। इसके प्रतिवाद स्वरूप, आगामी कल सांकेतिक रूप से मानभूम जिले के सभी स्कूल-कॉलेज बन्द रखो एवं पुरूलिया शहर में विशाल पैमाने पर छात्रों क़ो लेकर प्रतिवाद जुलूस एवं सभा का आयोजन करो।''

इस आन्दोलन को सफल करने के लिए स्वामी जी ने सर्वत्र, प्रचार पत्र के माध्यम से सभी लोगों को योगदान करने के लिए अनुरोध किया। उन्होंने केन्द्र तथा बिहार सरकार को सचेत कर दिया कि वे असहयोग आन्दोलन द्वारा इस अन्याय का प्रतिरोध करेंगे। बिहार सरकार इस आन्दोलन को कुचलने के लिए शुरू से तैयार थी। प्रशासन की तरफ से उस दिन सर्वत्र असंख्य पुलिस तैनात की गई एवं लोगों को डराया गया तथा जिलाधीश को अनुष्ठान आदि रोकने के लिए आवश्यक कार्यवाही करने का निर्देश दिया गया । प्रशासन की तरफ से इस प्रकार कार्यवाही की जाएगी, किसी ने आशा नही की थी। सभी लोग आशंका करने लगे कि कहीं जुलूस में पुलिस गोली न चला दे। स्वामी जी ने इस आन्दोलन का नेतृत्व लेकर अपने सहयोगी कर्मियों से कहा–''तुम लोग चिन्ता मत करो, जुलूस यथा समय अवश्य निकलेगा। जुलूस के सामने की पंक्ति में मेरे पुत्र एवं कन्याएं रहेंगी। यदि सरकार ने गोली चलाई तो पहले गोली उन्हें लगेगी।''

स्वामी जी के निर्देशानुसार यथा समय विशाल जुलूस निकला। जुलूस में, सामने उनके पुत्र एवं कन्याएं थी। सभी स्कूल-कॉलेज के छात्र-छात्राओं एवं उनके अभिभावकों ने इसमें योगदान दिया। इस तरह, स्वतःस्फूर्त आन्दोलन से प्रशासन

घबरा गई। अन्त में बिहार के मुख्यमन्त्री श्रीकृष्ण सिंह, शिक्षा मन्त्री तथा दिल्ली से राष्ट्रपति एवं प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने स्वामी जी से इस आन्दोलन को, और आगे न बढाने का अनुरोध किया एवं मानभूम में बंगला भाषा के माध्यम से शिक्षा देने का आवश्यक निर्देश प्रदान किया।

(ग) श्रीश्री विजयकृष्ण आश्रम रिलिफ सोसाईटी एवं उसका कार्य :–

सन् १९१८ ई. में सर्वप्रथम अन्नदा कुमार ने अपने मित्रों की सहायता से एक छोटा ग्रन्थालय रामचन्द्रपुर में बनाया था। बाद में, १९२१ ई. से १९२५ ई. तक चरखा एवं करघा के माध्यम से असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। सन् १९२५ ई. में, वर्द्धमान से स्थाई रूप से वे रामचन्द्रपुर आ गये एवं कान्तिकारिक आन्दोलन मे सकिय भाग लेकर मानभूम के गांवों में प्रचार कार्य करते रहे। १९२८ ई. में, नेताजी सुभाषचन्द्र के आश्रम आगमन पर जो विशाल पैमाने पर राजनैतिक सम्मेलन का आयोजन किया गया था, उससे अन्नदा कुमार की संगठन शक्ति को देखकर ब्रिटिश शासकवर्ग घबरा गए। उस समय 'नेताजी' ने इस आश्रम का नाम 'मानभूम कर्मी संसद' रखा था। आश्रम से प्रकाशित 'तरूण शक्ति' पत्रिका एवं 'गीता में कर्मयोग' ग्रन्थ के प्रकाशक अन्नदा कुमार को राजद्रोह के अपराध में दण्ड स्वरूप सश्रम कारावास प्रदान किया गया। अंग्रेजों ने, टेलर और चार्चर के नेतृत्व में उन पर जो अत्याचार किया था उसका उल्लेख पूर्व के अध्याय में किया गया है।

सन् १९३५ ई.में आश्रम में ध्वंस स्तूप पर विद्यालय एवं आवश्यक गृहादि का पुनः निर्माण कार्य प्रारम्भ किया गया। तीन वर्ष के तीव्र प्रयास से विद्यालय आदि का कार्य सुचारू रूप से प्रारम्भ हो गया। उस समय ग्राम संगठन कार्यों के साथ-साथ कृषि, शिक्षा, स्वास्थ एवं साहित्य के प्रचार में उन्होंने अत्यधिक प्रयास किया।

सन् १९४१ ई. में उनके जीवन की धारा में विशेष परिवर्तन हो गया। दरवेश जी महाराज से दीक्षा प्राप्त करने के बाद से उनके निर्देशानुसार वे सेवा-कार्य को परिचालित करने लगे। सन् १९४२ ई. में दरवेश जी रामचन्द्रपुर आए। उन्होंने आश्रम का नाम 'श्रीश्री विजयकृष्ण आश्रम' रखा एवं यहां से 'श्रीश्री विजयकृष्ण आश्रम रिलिफ सोसाईटी' के माध्यम से दातव्य चिकित्सालय, विद्यालय, शिक्षा का प्रचार, कुटिरशिल्प का प्रचार आदि सेवा-कार्य प्रारम्भ करने का निर्देश दिया।

सन् १९४३ ई. के अकाल के समय, लंगरखाना द्वारा यहां के हजारों असहाय नर-नारियों की, जो सेवा की गई वह अनुपम थी। उस समय गोसाँई जी एवं दरवेश जी की कृपा को प्रत्यक्ष देखकर लोग मुग्ध हो गये। सन् १९४५-४६ ई. में भीषण आगजनी से मानभूम के कई ग्राम नष्ट हो गये थे। रिलिफ सोसाईटी ने उस समय भी गांव के लोगों को अन्न वस्त्रादि प्रदान कर एवं गृह निर्माण कर आवश्यक सहायता प्रदान की थी। अन्नदा कुमार ने शुरू से, ईश्वर पर निर्भर रहकर इन सेवा कार्यों का

परिचालन किया था। उनका सिद्धांत था–

(१) केवल स्वतःप्रवृत्त दान ग्रहण करना,

(२) स्वार्थ की आशा मे या अपने प्रचार के लिए प्रदत्त अर्थ को ग्रहण नहीं करना,

(३) सोसाईटी द्वारा अपनी परिकल्पना के अनुसार अर्थात जिस प्रकार से कार्य करना उचित लगे, वैसा ही कार्य करना,

(४) रिलिफ सोसाईटी के सदस्यों द्वारा केवल अपनी कमेटी के समक्ष ही हिसाब दाखिल करना,

(५) किसी को भी खर्च आदि का हिसाब न दिया जाना।

देश के विभाजन के पश्चात् पूर्वी बंगाल के नोआखली में जो भीषण दंगा हुआ था, उस समय लगभग तीन सौ शरणार्थियों ने रामचन्द्रपुर आश्रम में काफी दिनों तक आश्रय प्राप्त किया था। बाद में वे अन्यत्र चले गये।

इस प्रकार विभिन्न सेवाकार्य काफी दिनों से चल रहा था। दरवेश जी के निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने के पूर्व, रामचन्द्रपुर आश्रम को तीन भागों में अन्नदा कुमार ने विभाजित किया। एक अंश उनके परिवार के लिए निर्दिष्ट किया गया। द्वितीय अंश मे श्रीश्री विजयकृष्ण आश्रम रखा। यहां मन्दिर, उसकी सेवा-पूजा एवं पाठ-कीर्तन आदि विविध धार्मिक अनुष्ठान होते रहते हैं। प्राचीन पीपल वृक्ष, शिव मन्दिर, यज्ञकुण्ड, एवं पंचमुण्डी आसन इसी अंश में है। बाद में स्वामी असीमानन्द जी एवं गुरू माता शैलबाला देवी की समाधि मन्दिर इसी अंश में बनाई गई।

आश्रम के तृतीय अंश मे, श्रीश्री विजयकृष्ण आश्रम रिलिफ सोसाईटी निम्न कार्यों का संचालन करती है–

(१) नेताजी नेत्र चिकित्सालय
(२) विद्यालय
(३) होमियोपैथी दातव्य-चिकित्सालय
(४) छात्रावास
(५) भारती प्रेस तथा
(५) ग्रन्थालय।

अन्नदा कुमार द्वारा स्थापित नेताजी नेत्र-चिकित्सालय को जिन्होंने भी देखा है, उन्होंने विस्मित होकर इसकी प्रशंसा की है। एक अख्यात छोटे से गांव के भीतर, इस तरह का विशाल नेत्र-चिकित्सालय पश्चिम बंगाल में और कहीं नहीं है।

इस नेत्र-चिकित्सालय को प्रारम्भ करने के लिए सर्वप्रथम नेताजी सुभाष चन्द्र ने अन्नदा कुमार को प्रेरित किया था, इसी कारण इसका नाम 'नेताजी नेत्र-चिकित्सालय' रखा गया। नेताजी जब पुरूलिया आये थे और वहां का कार्यकम

समाप्त कर आद्रा जाने के लिए निकले तब रास्ते में अचानक उनकी गाड़ी के धक्के से एक व्यक्ति गिर पडा। तुरन्त गाड़ी रूकवाकर नेताजी एवं अन्य लोगों ने उस व्यक्ति को उठाया तो देखा कि उसे चोट तो नहीं लगी थी, लेकिन वह व्यक्ति अन्धा था। उसकी आँखों में मोतिबिन्द (Cateract) हो गया था। उसे देखकर सुभाषचन्द्र की आँखों मे आँसू आ गए। उन्होंने अन्नदा कुमार से कहा कि क्या ऐसे लोगों के लिए हम कुछ नहीं कर सकते? इन असहाय लोगों की सेवा अत्यन्त आवश्यक है। अन्नदा कुमार ने उसी दिन, नेत्रहीनों की आवश्यक चिकित्सा करने का संकल्प किया। तब से अन्नदा कुमार जाडे के दिनों में जहां भी नेत्र चिकित्सा शिविर लगता था वहां रोगियों को स्वयं खर्चा देकर भेज दिया करते थे।

अन्नदा कुमार का संन्यास हो जाने के बाद, आश्रम में ही नेत्र चिकित्सा शिविर प्रारम्भ किया गया। कमशः यह बढ़ता गया। सन् १९५२ ई. में आश्रम में आँखों की चिकित्सा प्रथमतः प्रारम्भ हुई। सन् १९५३ से १९५५ ई. तक बिहार सरकार आवश्यकतानुसार चिकित्सक भेजा करती थी। उस समय स्वामी जी विधानसभा के सदस्य थे। उन्हें विधानसभा से जो भी अर्थ मिलता था सब यहां लगा दिया करते थे। स्वामी जी की सदस्यता समाप्त होने पर बिहार सरकार सन् १९५६ ई. से सहायता देना बन्द कर दी। फिर १९५८ ई. में आश्रम में बीस शय्या युक्त अस्पताल चालू किया गया था।

नेत्र-चिकित्सालय के भिति स्थापन (भूमि पूजन) के समय नेताजी सुभाषचन्द्र के बडे भाई सुरेशचन्द्र बोस एवं विशिष्ट जननेता समर सेन, लोकेश घोष आदि आश्रम में उपस्थित थे। इनकी उपस्थिति में स्वामी जी ने दो घण्टे तक भाषण दिया, जिसमें उन्होंने यह भी कहा–''**भारत सरकार नेताजी के सम्बन्ध में चाहे जो कुछ भी कहे, मेरा दृढ़ विश्वास है –नेताजी जीवित हैं।'' उल्लेखनीय है कि भारत सरकार ने एक विमान दुर्घटना में नेताजी सुभाषचन्द्र वोस को मृत घोषित किया था।**

'नेताजी' के बड़े भाई सुरेशचन्द्र बोस ने भी स्वामी जी की बात को स्वीकारते हुए कहा था कि भारत सरकार ने, जनता के अनुरोध पर जो 'नेताजी अनुसन्धान कमेटी' बनायी थी, उसकी रिपोर्ट मिथ्या प्रमाणित हो गई है।

'आजाद हिन्द फौज' के मेजर जनरल, शाहनवाज खाँ जो देश की स्वाधीनता के बाद रेलमंत्री बने थे, १७ अप्रेल सन् १९५९ ई. को 'नेताजी नेत्र-चिकित्सालय' के एक समारोह में रामचन्द्रपुर आये थे। तब उन्होंने कहा था–''ब्रिटिश शासन को समाप्त करने में इस आश्रम का योगदान चिर-स्मरणीय रहा है। नेताजी के इस कर्म क्षेत्र में आकर मैं अपने को गर्वित अनुभव कर रहा हूँ। इस आश्रम से कान्तिकारी सुभाषचन्द्र एवं अन्नदा कुमार (स्वामी जी) ने जिस कर्म-पथ एवं कर्म-प्रेरणा द्वारा देशवासियों के हृदय में देशात्मबोध को जागृत किया था एवं अंग्रेज राजशक्ति को पंगु

बनाने के लिए जो कान्तिकारिक कदम उठाया था, वह स्वाधीनता संग्राम के इतिहास का एक उज्वल अध्याय है। कान्तिकारी अन्नदा कुमार के रक्तरंजित इस आश्रम में आकर मैं अपने को धन्य समझता हूँ। कान्तिकारी अन्नदा कुमार तथा आज के स्वामी असीमानन्द जी के समक्ष मैं आशीर्वाद की प्रार्थना कर रहा हूँ, जिससे देश की सेवा में ही अपना जीवन पूर्ण कर सकूँ।''

'नेताजी नेत्र-चिकित्सालय' के भवन निर्माण का कार्य, इसी समय से प्रारम्भ किया गया। स्थाई भवन बन जाने के पश्चात् रोगियों की संख्या यहां कमशः बढ़ती गई। कमशः यह सौ बिस्तर वाला एक आदर्श चिकित्सालय बन गया एवं सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया।

स्वामी जी के समय विगत वर्षों में शत-प्रतिशत आपरेशन सफल हुआ था। तब रोगियों के भर्ति होने के समय से उनकी चिकित्सा-भोजन आदि का सम्पूर्ण व्यय रिलिफ सोसाईटी वहन करती थी। इस सेवाकार्य में सरकार की तरफ से एवं कई अनेक प्रतिष्ठानों ने आन्तरिक सहयोग प्रदान किया था। स्वामी जी, गरीब लोगों की व्यक्तिगत रूप से खबर रखते थे एवं आवश्यक होने पर उन्हें आने-जाने का व्यय देते तथा निःशुल्क चश्मा प्रदान करते थे।

स्वामी जी के सेवाभाव से मुग्ध कोलकाता के कई प्रसिद्ध नेत्र विशेषज्ञों ने यहां रहकर रोगियों की चिकित्सा की थी। यह चिकित्सालय आज भी सुचारू रूप से चल रहा है। पहले जैसी निःशुल्क चिकित्सा अब बहुत कम हो गई है किन्तु अन्य स्थानों की अपेक्षा यहां कम शुल्क में आधुनिक सभी प्रकार की चिकित्सा की जाती है। अब यहां रोगियों के रहने के लिए सुविधायुक्त कमरे की एवं सभी प्रकार की अच्छी व्यवस्था हो गई है। चिकित्सालय में बिस्तरों की संख्या में भी कमशः वृद्धि हो रही है।

रिलिफ सोसाईटी, स्वामी जी के जन्मदिन—शिवरात्रि के समय सात दिन भारत के सभी प्रमुख स्थानों में Blind Welfare Week का आयोजन करती है। इस समय जो भी अर्थ आदि प्राप्त होता है, उसे नेत्रहीनों की सेवा मे लगा दिया जाता है।

(घ) विविध घटनाओं का विवरण :—

जनसेवा के क्षेत्र में स्वामी जी के कुछ कार्यों का विवरण यहां दिया जा चुका है। उनकी कुछ और विभिन्न घटनाओं का उल्लेख यहां किया जा रहा है। अधिकांश घटनाएं 'संगठन' पत्रिका (२५ वर्ष) से संग्रहित की गई हैं।

(१) एक बार चारों तरफ अकाल पड़ा था। रामचन्द्रपुर आश्रम के पीछे की तरफ एक तालाब के पास कुछ संदिग्ध लोगों को देखकर स्वामी जी उनके निकट पहुँचे। स्वामी जी को अचानक देखकर वे लोग अपने अस्त्र-शस्त्र छिपाने लगे। स्वामी जी ने उनसे पूछा—'तुम सब कहां जा रहे हो?' उन्होंने कहा कि 'हुजूर! आप हमारे माँ-बाप हैं, हम आपसे मिथ्या नहीं कह सकते। हम चोरी करने के लिए निकले हैं।

धर में सब लोग भूखे हैं, कुछ उपाय न देखकर हमलोग चोरी करने निकले हैं।' स्वामी जी ने कहा–'यदि मैं तुम लोगों के भोजन की व्यवस्था कर दूँ, तो? उन लोगों ने कहा कि 'तब हम चोरी क्यो करेंगे? आप विश्वास करिये, इसके पूर्व हमने कभी चोरी नहो की है। परिवार के पालन के लिए ही हमलोग चोरी करने जा रहे थे।' स्वामी जी के कहने पर उन्होंने अस्त्र-शस्त्र तालाब में फेंक दिया। स्वामी जी ने उनका आलिंगन करते हुए कहा–''आज से चोरी कभी मत करना। जब आवश्यक हो आश्रम चले आना, मैं भोजन की व्यवस्था करूँगा।'' स्वामी जी ने उन्हें एक-एक कार्ड पर, कुल कितने सदस्य परिवार में हैं ऐसा लिखकर देते हुए कहा–'सात दिन के अन्तर में इस कार्ड को लेकर आश्रम में आना और आवश्यक चावल आदि ले जाना।'

पच्चीस लोगो का यह दल जो विपथ में जा रहा था, स्वामी जी की आन्तरिक सहानुभूति से वे सभी ठीक रास्ते पर आ गए । जाते समय उन लोगों ने स्वामी जी को प्रणाम करते हुए कहा–'अल्लाह तुम्हारा मंगल करेंगे! तुम्हारे आश्रम में कभी अन्न का अभाव नहीं होगा!!'

(२) २६ जनवरी, १९५५ ई. को स्वामी जी, स्वाधीनता दिवस के उपलक्ष्य में एक गांव में आमंत्रित थे। रात्रि के समय वहां ठण्ड के साथ वर्षा भी होने लगी। गांववासियों ने स्वामी जी से रात्रि मे वहीं रूकने के लिए विशेष अनुरोध किया, परन्तु स्वामी जी राजी नहीं हुए। उन्होंने कहा–'आज मुझे आश्रम जाना ही पड़ेगा। वहां रोने-चिल्लाने की आवाज मुझे सुनाई पड़ रही है।' अतः स्वामी जी बैलगाड़ी द्वारा लगभग रात्रि बारह बजे आश्रम पहुँचे। उन्होंने गांव की तरफ कुछ रोने-चिल्लाने की आवाज सुनी। वे टार्च लेकर तुरन्त स्कूल शिक्षक के साथ निकल पड़े। थोड़ी दूर जाने के पश्चात् उन्होंने, 'मार दो! काट दो!!' इत्यादि आवाज सुनी। स्वामी जी ने शिक्षक को वहीं रूकने के लिए कहा और स्वयं आवाज की दिशा में टार्च का प्रकाश फेंकते हुए जोर से, 'कौन है! वहां कौन है!!' चित्कार करते हुए आगे बढ़े। नजदीक पहुँचने पर उनके ऊपर पत्थर की बौछार शुरू हो गई एवं एक साथ दस-पन्द्रह टार्च का प्रकाश उन पर पड़ा । वे निडरता पूर्वक आगे बढ़ते गये। अचानक स्वामी जी को देखकर वहां भगदड मच गई। सब लोग, 'स्वामी जी आ गए–स्वामी जी आ गए' आदि आवाज करते हुए वहां से भाग गए। एक छोटी लड़की को धमकाकर वे लोग घर के लोगों के पास से चाबी मांग रहे थे। स्वामी जी की अचानक उपस्थिति से उस दिन उस परिवार की रक्षा हुई। डकैतों के भाग जाने के बाद गांव के सब लोग एकत्रित हो गए। स्वामी जी ने सभी लोगों को गांव की रक्षा के लिए रात में पहरा देने का सुझाव दिया।

(३) लगभग १९२६-२७ ई. की एक घटना है। अन्नदा कुमार बांकुड़ा जिले के एक गांव में विवाह समारोह पर गए थे। वहां पास के ही एक घर में अचानक आग

लग गई। गांव की तरफ अधिकतर मकान बांस एवं पैरे (फूस) के बनते हैं। आग बहुत जल्दी फैल गई। आसपास लोगों की भीड़ जमा हो गई। घर के भीतर से किसी तरह सब लोग निकल गए थे, किन्तु एक छोटा बच्चा भीतर रह गया था। उसकी मॉ की करूण चित्कार सभी लोग सुन रहे थे परन्तु उस फैलती हुई आग मे घर के भीतर जाने का साहस किसी ने नहीं किया। तब अन्नदा कुमार दौड़ते हुए जलते घर के भीतर घुस गये एवं बच्चे को लेकर बाहर आ गए। बच्चा तो बच गया किन्तु अन्नदा कुमार का शरीर बहुत झुलस गया। शरीर के घांव सूखने मे काफी दिन लगा।

इस तरह अपने जीवन की परवाह न करते हुए कई बार उन्होंने असहाय लोगों को मुराडी एवं रामचन्द्रपुर में भी आग से बचाया था।

(४) अन्याय, अत्याचार एवं निष्ठुरता को ऑखो के सामने देखने पर, उसका प्रतिकार करने के लिए वे सर्वदा तत्पर रहते थे। ऐसे समय में उन्हें रोकना असंभव था । एक बार पुरूलिया जाने के लिए वे आद्रा स्टेशन में पहुँचे। प्लेटफार्म में बहुत भीड़ थी। बहुत लोग ट्रेन में जगह न मिलने पर यहां-वहां घूम रहे थे। अन्नदा कुमार ने देखा कि एक डब्बे मे केवल चार मिलिट्री के सैनिक बैठे हैं। उस समय अंग्रेजों का शासन होने से मिलिट्री के सैनिको का बहुत प्रताप था। सभी उन्हें देखकर डरते थे। अन्नदा कुमार ने उसी डब्बे में बैठने का प्रयास किया तो सैनिको ने उन्हें रोक दिया एवं कहा कि वे किसी अन्य व्यक्ति को इस डब्बे मे चढ़ने नहीं देंगे। अन्नदा कुमार ने प्रतिवाद करते हुए कहा कि आप लोगों के लिए मिलिट्री का अलग डब्बा लगा है, आप वहो जाईये। परन्तु उन्होंने वहां जाने से इन्कार कर दिया। अन्नदा कुमार इस अन्याय का कठोरता पूर्वक प्रतिवाद करते हुए डब्बे मे चढ़ गए। इस वाद-प्रतिवाद में सैनिकों से उनकी हाथा-पाई शुरू हो गई। वहां भीड जमा हो गई। पुलिस व स्टेशन-मास्टर भी आ गए। मिलिट्री सैनिकों को बहुत समझाने पर भी वे अपने डब्बे में नहीं गए। अन्त में अन्नदा कुमार ने कहा कि सैनिक लोग इस डब्बे में बैठ सकते है लेकिन अन्य लोग भी इसमें चढ़ेंगे। अतः अन्य यात्री भी इस डब्बे में चढ़ गए।

ट्रेन जब पुरूलिया पहुँची तब वहां मिलिट्री के अफसर उपस्थित थे। आद्रा के स्टेशन-मास्टर ने पहले से इस घटना की सूचना वहां भेज दी थी। उन लोगों ने अन्नदा कुमार से घटना का पूरा विवरण जानकर सैनिको को गिरफ्तार किया एवं उन पर आवश्यक कार्यवाही की गई।

(५) अन्नदा कुमार ने उस समय संन्यास ले लिया था। दुर्गापूजा के अवसर पर वे आद्रा से झरिया जा रहे थे। ट्रेन में बहुत भीड़ थी और किसी भी डब्बे में बिजली नहीं थी। ट्रेन छूटने का समय हो गया था। इस सम्बन्ध में स्वामी जी ने गार्ड को सूचित करते हुए कहा कि डब्बे के भीतर भीड़ में चोरी-जखम कुछ भी हो सकता है। आप ट्रेन के रक्षक हैं, आपको इसकी व्यवस्था करना ही पड़ेगा। गार्ड ने उनकी बातों

को अनसुनी कर ट्रेन को हरी झंडी दिखा दी। ट्रेन चलने लगी तो स्वामी जी ने तुरन्त जंजीर खींच कर ट्रेन रोक दी। भीड़ जमा हो गई। गार्ड व स्टेशन मास्टर भी आ गए। अन्त में सभी डब्बे मे बिजली की व्यवस्था की गई। इस कारण से ट्रेन एक घण्टा विलंब से छूटी। सभी ट्रेन यात्रियो ने स्वामी जी की बातों का अनुमोदन किया एवं यात्रियों की सुविधा के लिए स्वामी जी के सहयोग की प्रशंसा की।

(६) स्वामी जी अधिकतर ट्रेन के तृतीय श्रेणी के डब्बे में सफर करते थे। उनका कहना था कि थोड़े आराम के लिए रूपयों को व्यर्थ नष्ट न कर, उससे गरीबों की सेवा करना उचित है। बाद में जब उनका शरीर काफी अस्वस्थ हो गया तब भक्तों के अनुरोध पर वे उच्च श्रेणी में कभी-कभी भ्रमण करते थे। एक बार स्वामी जी मुराडी से आसनसोल जा रहे थे। इस लोकल ट्रेन में नित्य यात्रियों के साथ गांव के गरीब लोग सब्जी, दूध, मछली आदि लेकर बर्नपुर या आसनसोल में बेचने के लिए जाते रहते हैं। यही इन लोगो की आजीविका का प्रमुख साधन है। मुराडी स्टेशन से ट्रेन छूटने के पश्चात् अचानक दरवाजे के पास हल्ला सुनकर स्वामी जी वहां गए। उन्होंने देखा कि एक गरीब महिला का हाथ पकड़कर टिकिट निरीक्षक उसे फटकारते हुए विभिन्न अपशब्दों का प्रयोग कर रहा है। इस दृश्य को देखकर स्वामी जी ने क्रुद्ध होकर टिकिट निरीक्षक को सावधान करते हुए महिला का हाथ तुरन्त छोड़ने के लिए कहा। स्वामी जी ने उससे कहा–'आप सरकारी कर्मचारी हैं। इस प्रकार के अशोभनीय आचरण के लिए आपको सजा दी जाएगी।' इसके पश्चात् मालूम चला कि मासिक टिकिट रहते हुए भी टिकिट निरीक्षक इन लोगों से कुछ-कुछ पैसे वसूल करते हैं। इस महिला के पास पैसे न रहने से उसने इसकी मछली की टोकरी को पहले ही ट्रेन से नीचे फेंक दी थी, फिर उसका हाथ पकड़कर उसे डरा-धमका रहा था। घटना का पूरा विवरण जानकर स्वामी जी ने जंजीर खींचकर ट्रेन को तुरन्त रोक दिया। इस प्रकार अचानक ट्रेन रूक जाने पर गार्ड एवं इसी ट्रेन में सफररत् रेलवे के एक उच्च कर्मचारी वहां पहुँचे। स्वामी जी ने उन लोगों को पूरी घटना का विवरण देते हुए कहा–'जब तक इस गरीब महिला की टोकरी को ट्रेन में न चढ़ाया जाय एवं टिकिट निरीक्षक अपने इस दुष्कर्म के लिए क्षमा न मांग ले तब तक ट्रेन यहीं रहेगी।' स्वामी जी के इस कठोर प्रतिवाद से अन्त में महिला की टोकरी उठाई गई लेकिन टिकिट निरीक्षक ने क्षमा नहीं मांगी। रेलवे के उच्च कर्मचारी ने इस घटना को लेकर स्वामी जी को दो-चार कड़ी बातें कही। वहां उपस्थित कई लोगों ने, जो स्वामी जी के कार्यो से परिचित थे, उच्च रेलवे कर्मचारी को स्वामी जी के साथ बहस न करने के लिए सलाह भी दी, परन्तु अपनी पद मर्यादा के गर्व से उसने स्वामी जी एवं लोगों की बातों की अवहेलना की।

आसनसोल पहुँचते ही स्वामी जी ने इस घटना का पूरा विवरण देते हुए

टिकिट निरीक्षक एवं उस उच्च रेलवे कर्मचारी के विरूद्ध कड़ी कार्यवाही करने के लिए अभियोग दायर किया। इस घटना को लेकर रेलवे प्रशासन के भीतर खलबली मच गई । उन लोगों को मालूम था कि रेलमंत्री के साथ स्वामी जी को मित्रता है। उस उच्च रेलवे कर्मचारी को भी समझ में आ गया कि स्वामी जी के साथ दुर्व्यवहार करना उचित कार्य नहीं हुआ। सभी लोगों ने स्वामी जी से क्षमा मांगने के लिए उसे सुझाव दिया।

एक दिन मुराडी के स्टेशन मास्टर स्वामी जी के पास आकर उक्त कर्मचारी के सम्बन्ध में पूरा विवरण देते हुए कहा कि वह आपसे मुलाकात कर क्षमा मांगने के लिए तैयार है। आप आश्रम में कब रहेंगे, यह जानने के पश्चात् वे यहां आएंगे। क्षमाशील स्वामी जी ने कहा–'वे अपनी गलती समझ गए हैं–इससे मुझे खुशी हुई। मेरे न रहने पर भी वे आपनी सुविधानुसार किसी भी समय यहां आ सकते हैं–उसी से मुझे संतोष है।' स्वामी जी आवश्यक कार्यवश कुछ दिनों के लिए बाहर गए हुए थे। इस बीच वह कर्मचारी आश्रम में आए थे। बाद में पता चला कि स्वामी जी से क्षमा मांगने के बाद भी उसे, लिखित अभियोग के कारण आद्रा से किसी दूसरे स्थान पर स्थानांतरित कर दिया गया एवं पद से उसकी अवनति भी हुई। इस समाचार को सुनकर स्वामी जी ने दु:खी होकर कहा था कि इतनी ज्यादा सजा उसे नहीं मिलने से अच्छा होता।

(७) स्वामी जी उस समय विधानसभा के सदस्य थे। १० मई, १९५५ ई. को वे पटना से झरिया जाने के लिए द्वितीय श्रेणी का टिकिट बना लिए। ट्रेन आने पर देखा गया कि उसमें द्वितीय श्रेणी का डब्बा नहीं लगा है। स्टेशन-मास्टर एवं गार्ड को उन्होंने इसकी सूचना दी। स्वामी जी की तरह अन्य कई लोग भी द्वितीय श्रेणी की टिकिट लेकर बड़ी कठिनाई में पड़ गए। अन्य डब्बों में भीड़ अधिक रहने से ये सभी चिंतित हो उठे। उस ट्रेन में विशेष सेलून डब्बे में भ्रमणरत् केन्द्रीय मंत्री अरूण गुह से मुलाकात कर स्वामी जी ने उनसे आवश्यक कार्यवाही करने का अनुरोध किया। स्वामी जी के साथ उनका पूर्व परिचय भी था। लेकिन उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट कर स्टेशन-मास्टर से मिलने का सुझाव दिया। स्वामी जी इस अन्याय कथन को सुनकर कहा–"ठीक है, जब तक सभी यात्रियों के बैठने की उचित व्यवस्था नही होगी तब तक ट्रेन को मैं जाने नहो दूंगा।" स्वामी जी, स्टेशन-मास्टर को यात्रियों का कष्ट दिखलाकर, ट्रेन में अतिरिक्त डब्बा न लग जाने तक ट्रेन को नहीं जाने देंगे, ऐसा कहकर वे ट्रेन के सामने पटरी पर खड़े हो गए। इस घटना को लेकर हलचल मच गई। गार्ड ने ट्रेन चलाने के लिए हरी झंड़ी दिखला दी। परन्तु ट्रेन चालक ट्रेन से उतरकर कहा कि इस तरह स्वामी जी के ऊपर से मैं ट्रेन नहीं चला सकता। अन्त में स्वामी जी के साथ आलोचना कर एक तृतीय श्रेणी का

अतिरिक्त डब्बा लगाया गया एवं द्वितीय श्रेणी के यात्रियों को उसमें सफर करने के लिए अनुरोध किया गया। यात्रियों ने द्वितीय श्रेणी के लिए जो अतिरिक्त किराया दिया था, उसे वापस करने का निर्देश रेलवे प्रशासन ने दिया। इस कारण से ट्रेन लगभग एक घण्टा देरी से छूटी।

स्वामी जी का निर्देश था–''स्वयं कष्ट सहन कर लो–परन्तु दूसरों को कष्ट न हो, इस तरफ ध्यान रखना चाहिए।'' अन्याय कार्यों का वे सर्वदा दृढ़तापूर्वक प्रतिरोध करते थे। इस तरह की असंख्य घटनाओं से स्वामी जी का जीवन परिपूर्ण है। स्वामी जी कहा करते थे–''**अन्याय जो करता है उसकी अपेक्षा अन्याय को सहन करने वाला सैकड़ों गुना अधिक अपराधी है। चाहे तुम बहुत धनी हो, प्रभावशाली हो, चाहे बहुत शक्तिशाली हो–शठता, प्रवंचना, मिथ्याचरण में तुम कुशल हो सकते हो, परन्तु 'सत्य' पथ में चलने वाला व्यक्ति उसकी परवाह नहीं करेगा। मिथ्या के विरूद्ध सदा 'सत्य' की विजय हुई है। तुम्हारे धन-सम्पद, प्रभाव, कूटबुद्धि, तुम्हारी बदमाशी को सत्य का पालन करने वाला व्यक्ति कभी भी बरदास्त नही करेगा। तुम चाहे कितना भी मिथ्या जाल फैलाओ, अन्त में देखोगे, उसी जाल में फंसकर तुम मृत्यु यंत्रणा पाओगे। तुम स्वयं तो मरोगे, तुम्हारे सहयोगियों का भी ध्वंस अनिवार्य है। सावधान! मिथ्या के पथ में मत चलो। सत्य की पूजा करो–न्याय का सम्मान करो। धीर-स्थिर भावना से सभी प्रकार की चिन्ता करते हुए, अपने कर्त्तव्य पालन के मध्य से, अपनी मानवता को कृतार्थ करो। असत्य का प्रभाव अस्थाई है। सत्य की ज्योति सर्वदा उज्ज्वल, सर्वदा सुन्दर रहती है। असत्य के द्वारा 'सत्य' को किसी ने भी छिपा नहीं सका–न छिपा पाएगा। हे मानव! तुम कभी मिथ्या आचरणं मत करो–मिथ्या के प्रलोभन से दूर रहो–इसके जाल में मत फंसो। सावधान! जितने दिनों तक जीवित हो–भगवान् की सेवा –सत्य की सेवा में अपने को नियुक्त रखो।**'' ('मन्दिर' १८ वर्ष से)

अध्याय २९ : स्वामी जी का महाप्रयाण

स्वामी जी १६ मई, १९६८ ई. को केदारनाथ एवं बद्रीनाथ का दर्शन करने के लिए रवाना हुए। विभिन्न स्थानों से स्वामी जी के साथ जाने के लिए लगभग ४६ लोग हरिद्वार पहुँचे। उस समय स्वामी जी का शरीर अस्वस्थ था। डायबीटीज के साथ हृदय की तकलीफ भी कभी-कभी बढ़ जाती थी। अपनी शारीरिक अस्वस्थता को देखते हुए स्वामी जी ने साथ में जाने वालों से कहा–'तुम सब लोग केदार-बद्रीनाथ का दर्शन करके आ जाओ, मैं हरिद्वार में अपेक्षा करूँगा।' लेकिन स्वामी जी को छोड़कर कोई भी जाने के लिए तैयार नहीं हुआ। अन्त में सभी लोगों के साथ बस द्वारा स्वामी जी रवाना हुए। रास्ते में हिमालय के प्राकृतिक दृश्यों को देखकर उन्होंने कई कविताएं लिखी । केदारनाथ पहुँचने के पश्चात् स्वामी जी का शरीर और भी अस्वस्थ हो गया। हृदय में तीव्र दर्द से वे मूर्च्छित हो गए। साथ में तीन चिकित्सक थे। लगभग दो घन्टे तक स्वामी जी के शरीर में नाडी का स्पन्दन नहीं था। बाद में धीरे-धीरे वे स्वस्थ हुए एवं बद्रीनाथ भी गए। वहां भी उनका शरीर अस्वस्थ हो गया था।

बद्रीनाथ से रामचन्द्रपुर लौटने के पश्चात् विभिन्न समय में लोगों के साथ उन्होंने जो बातें की थी, उसमें उनके शरीर त्यागने के सम्बन्ध में संकेत थे। परन्तु इस तरफ किसी का ध्यान नहीं गया । एक दिन आश्रम में उन्होंने **''मेरी शेष इच्छा''** नामक अपना बंगला में लिखा हुआ लेख पढ़कर कुछ लोगों को सुनाया। इस लेख में, उनके शरीर त्याग के पश्चात्, किस तरह से शरीर की समाधि दी जाएगी, कौन सी जगह पर दी जाएगी, उस समय शिष्यों को किन नियमों का पालन करना होगा, आश्रम आदि किस प्रकार चलेगा, इन सबका विस्तृत वर्णन था। इसमें पूर्व-आश्रम के लोगों की व्यवस्था, आश्रम की व्यवस्था तथा रिलिफ सोसाईटी के माध्यम से नेत्र चिकित्सालय, स्कूल, छात्रावास आदि किस पद्धति से कार्य करेंगे, उसका पूर्ण विवरण मिलता है।

स्वामी जी के लेख–'मेरी शेष इच्छा' का कुछ अंश यहां दिया जा रहा है–

देहत्याग एवं उसके पश्चात् आवश्यक कर्त्तव्यः–

(१) मैं चाहे कहो भी शरीर का त्याग करूँ, मेरे शरीर को रामचन्द्रपुर के श्रीश्री विजयकृष्ण आश्रम में लाकर समाधि दी जाएगी।

(२) समाधि का स्थान मेरे गुरूदेव ने निर्दिष्ट कर दिया है। वहां पहले से समाधि वेदी निर्मित की गई है।

(३) मेरे समाधि वेदी के सामने मेरी साधन वेदी पूर्ववत् रहेगी। भक्त एवं शिष्यगण आवश्यकतानुसार इन्हे नूतन रूप में पुनर्निर्माण कर सकेंगे, परन्तु स्थान परिवर्तन नहीं कर सकेंगे।

(४) मेरी समाधि देने के समय, भूमि में एक शुद्ध वस्त्र बिछाकर, मुझे सुलाकर समाधि देना होगा। सिर उत्तर की दिशा में रहेगा। कौपीन, बर्हिवास पहने हुए अवस्था में समाधि दी जाएगी। समाधि के भीतर केवल जल का कमंडलु रहेगा।

आश्रम एवं मन्दिर के सम्बन्ध में निर्देश :–

(१) आश्रम का खर्च चलाने के लिए कभी भी चन्दा वसूल अथवा भिक्षा नहो किया जाएगा। केवल स्वतःप्रवृत्त दान के ऊपर वह निर्भर रहेगा।

(२) यदि अर्थ न मिले तो केवल फूल एवं जल द्वारा विग्रहों की सेवा चलेगी।

(३) आश्रम में अनिच्छुक कर्मी नहीं रखे जाएंगे। आश्रम की अवस्था के साथ मिलकर जो लोग सभी प्रकार के दुःख-कष्ट को सहन करते हुए भी यहां रहना चाहेंगे, केवल वे ही रहेंगे।

(४) आश्रम मे मेरे शिष्य-शिष्या अथवा गुरूभ्राताओं के आने पर, वे तीन दिन रह सकते हैं। अध्यक्ष की अनुमति लेकर अधिक दिन भी रह सकते हैं। मेरे गुरूभ्राता-भगिनी के आने पर उन्हें मेरी तरह सम्मान पूर्वक रखना पड़ेगा।

(५) (क) अतिथि-अभ्यागतों को उनके संस्कार के अनुसार रहने दिया जाएगा। आश्रम में भोजन के समय पंक्ति-विचार नहीं है, परन्तु यदि कोई एक साथ बैठकर भोजन न करना चाहे तो उन्हें स्वतंत्र रूप से भोजन देना होगा। पुरूष एवं महिला पृथक रूप से बैठकर भोजन करेंगे।

(ख) मेरे देहत्याग के पश्चात् समाधि वेदी में सभी लोग फूल दे सकते हैं। मन्दिर में पूजा होने के बाद उसका प्रसादी फूल समाधि वेदी के शिरोभाग में दिया जाएगा। एकमात्र मेरे जन्मतिथि में शिष्य एवं भक्तगण समाधि में गुरूपूजा कर सकेंगे। **उस दिन मेरा आविर्भाव साधनशील व्यक्ति लोग अनुभव करेंगे।**

(६) मेरे देहत्याग के पश्चात् अनाडम्बर रूप से पारलौकिक कृत्य सम्पन्न करना होगा, किसी प्रकार की शोभा-यात्रा नहीं होगी। जड़ शरीर चौबीस घण्टा खुले आंगन में रखा जाएगा। कोई भी इसका स्पर्श एवं दर्शन कर सकेंगे।

(७) मेरे देहत्याग के पश्चात् मेरे पूर्वाश्रम के पुत्र-कन्याओं के लिए श्राद्धानुष्ठानादि किसी तरह का कर्त्तव्य नहीं रहेगा। संन्यास लेने के पूर्व मैंने स्वयं सब कुछ कर लिया है। इच्छा होने पर बारहवें दिन नर-नारायण भोजन करा सकते हैं। मेरे देहान्त के समय जो पास में रहेंगे, केवल स्नान करने पर उनका अशौच समाप्त हो जाएगा। दूर में अवस्थित शिष्य-शिष्याओं को तीन दिन अशौच पालन करना पड़ेगा। तीन दिन के बाद संवाद मिलने पर केवल स्नान करने पर उनका अशौच समाप्त होगा।

(८) निर्विकार मन का कोई भी अशौच नहीं है।

(९) मेरे देह-त्याग के पश्चात् मेरे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठानो की रक्षा करना ही मेरे प्रति श्रेष्ठ श्रद्धा प्रकाश करना होगा।

(१०) आजकल सेवा-पूजा के लिए ब्राह्मण शरीर वालो को पाना अत्यन्त कठिन हो गया है। म विश्वास करता हूँ कि श्रीश्री गोस्वामी प्रभु प्रदत्त साधना जिन्होंने प्राप्त की है, वे ब्राह्मण हैं। फिर भी किसी को अपने संस्कार के विरूद्ध में जाने के लिए मैं नहीं कहता । मेरे शिष्य-शिष्याओं में जो कोई भी, विग्रहों के सेवा-पूजा करने में अग्रसर होने एवं भार लेने पर, पूजा कर सकेगे। चाहे वह किसी भी जाति का हो।

(११) अन्न भोग देना ही पडेगा, ऐसा कोई नियम मैं नही कर रहा हूँ। जो मिलेगा, उसका ही भोग देना होगा। फूल, चन्दन, जल, थोड़ा बतासा अथवा भक्ति के साथ जो भी दिया जाएगा, उसे ही वे ग्रहण करेंगे।

(१२) नित्य प्रातः एवं सन्ध्या के समय कीर्तन, जो रहेगे वे करेंगे—अकेला रहने पर अकेले ही कीर्तन करेंगे। ('मन्दिर' २८ वर्ष से)

'मेरी शेष इच्छा' लेख का केवल थोडा सा अंश ही यहां दिया गया है। उपरोक्त नियमादि, स्वामी जी ने अपने हाथों से लिखकर, वाराणसी जाने के पूर्व सबको सुनाया था ।

दो-एक वर्ष पूर्व, स्वामी जी ने कई बार अपने शिष्य एवं भक्तों से कहा था कि मैं चाहता हूँ इस आश्रम एवं सेवाकायो का सब भार तुम लोग ले लो एवं इन कार्यों से मुझे छूट्टी दो।' योग्य सेवक के अभाव से स्वामी जी के ऊपर आश्रम, स्कूल, अस्पताल आदि का सम्पूर्ण भार पड़ गया था। एक दिन उन्होंने कहा—

''इस अस्वस्थ शरीर को लेकर मैं और कार्य चलाने में असमर्थ हूँ। तुम लोग यदि मुझे सभी कार्यों से मुक्त कर सको, तब दस वर्ष मुझे और प्राप्त करोगे।" ('मन्दिर' २६ वर्ष)

उस समय उन्होंने आश्रम का भार संन्यासियो के ऊपर एवं सेवाकार्यों का भार अपने बड़े पुत्र श्री नन्ददुलाल को देने का विचार किया था। इस सम्बन्ध में कई बार बैठक भी हुई एवं कार्य कुछ आगे बढ़ा। इसके पश्चात् आश्रम का भार संन्यासियों को देने के विषय में कुछ लोगों ने अपनी आपत्ति प्रकट की। विभिन्न लोगों के इस प्रकार का मनोभाव देखकर स्वामी जी को अपना विचार परिवर्तित करना पड़ा। आश्रम एवं सभी सेवाकार्यों का भार उनके पूर्वाश्रम की सहधर्मिणी 'माता शैलबाला देवी' एवं पुत्रों को दिया गया।

प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष भी 'गुरूपूर्णिमा' के अवसर पर बहुत लोग आए एवं स्वामी जी ने उपदेश आदि प्रदान किया। इसका वर्णन आगे 'द्वितीय खण्ड' में किया गया है।

५ अगस्त, १९६८ ई. को स्वामी जी रामचन्द्रपुर से वाराणसी गए। यहां श्रीदरवेश जी महाराज द्वारा स्थापित 'श्रीश्री विजयकृष्ण मठ' (५ ए–अवधगर्वी) में प्रतिवर्ष गोसाँई जी के जन्मदिन झूलन पूर्णिमा (राखी) के समय महोत्सव होता है। स्वामी जी प्रतिवर्ष इस समय वहां जाते थे। इस बार 'श्री गुरू माँ' भी साथ में गई थी एवं माँ आनन्दमयी के साथ उनकी भेंट हुई। मठ के उत्सव में स्वामी जी ने सभी के साथ पूर्ववत् बातचीत की। वहां कुछ भाग्यवान लोगों ने स्वामी जी से दीक्षा भी प्राप्त किया । यही स्वामी जी का अन्तिम दीक्षादान था।

स्वामी जी पटना होते हुए १३ अगस्त को संध्या के समय रामचन्द्रपुर आश्रम पहुँचे। उनका शरीर ट्रेन की यात्रा एवं परिश्रम से कुछ थका हुआ सा लग रहा था, परन्तु वे अपने सदाहास्य एवं आनन्दमय रूप में सभी से मिले एवं यथायोग्य बातचीत की। स्वामी जी के पुराने मित्र एवं समाज सुधारक वृद्ध श्री चन्द्रमोहन बाबू, तीन दिन पूर्व ही स्वामी जी से मिलने आ गए थे। स्वामी जी का उनके साथ वार्तालाप हुआ, पुत्र नन्ददुलाल के साथ अस्पताल के सम्बन्ध में आवश्यक बातें हुई। स्नानादि के पश्चात् रात्रि ९ बजे वे आश्रम के रसोईघर की तरफ गए एवं वहां के परिचालक संन्यासियों से हँसते हुए कहा–'क्यों महाराज! सब ठीक तो चल रहा है? मेरे न रहने पर भी सब ठीक तो चलेगा?' ('सगठन' असीमानन्द सख्या)

इस प्रकार सभी के साथ आनन्दपूर्वक बातचीत करते हुए वे वापस आए और भोजन किया। भोजन के पश्चात् अपने कमरे के बाहर बरामदे में अपनी कुर्सी पर बैठ गए एवं उनके गुरूभाई डा. वरदाकुमार देव, श्री कृष्ण चकवर्ती एवं चन्द्र बाबू आदि के साथ बात करते हुए उन्होंने तीन प्रसंग सुनाया। जिसका उल्लेख यहां किया जा रहा है–

(१) नासिक के राजा पावार एवं उनकी पत्नी उदयिनी देवी ने स्वामी जी से दीक्षा प्राप्त किये थे। एक बार स्वामी जी वहां गए थे । रानी अत्यन्त उदार एवं सरल स्वभाव की थी। स्वामी जी ने देखा कि राजमहल की एक नौकरानी का पुत्र रो रहा है और उसके पास कोई नहीं है। रानी स्वयं उसे अपने पुत्र की तरह गोद में लेकर प्यार करने लगी। स्वामी जी विभिन्न स्थानों पर गए हैं, परन्तु इस प्रकार की उदारता उन्होंने कहीं नहीं देखी। स्वामी जी ने रानी से पूछा कि 'आपकी क्या आकांक्षा है?' रानी ने उत्तर दिया–''इतना विशाल राज्य, इस तरह योग्य पति एवं सन्तान प्राप्त कर, और क्या कामना रहेगी? म भगवान के निकट कृतज्ञ हूँ!'' साधारणतः देखा जाता है कि लोग अपनी अवस्था के प्रति सन्तुष्ट नहीं रहते। उनकी विभिन्न आकांक्षाएं बढ़ती रहती हैं। स्वामी जी ने कहा कि इस तरह का सन्तोष एवं उदारता बहुत कम दिखलाई पड़ती है।

(२) दूसरी घटना गोसाँई जी की कृपा के सम्बन्ध में प्रसंगवश उन्होंने सुनाई।

कुछ वर्ष पूर्व स्वामी जी पटना जा रहे थे। वे ट्रेन के शौचालय में गए। उनका एक पैर फिसल कर गड्ढे में घुस गया एवं बहुत चोट लगने से वे बेहोश हो गए। जब होश आया तब उन्होंने देखा कि वे ट्रेन के डब्बे में अपने स्थान पर बैठे हुए हैं। शौचालय भीतर से बन्द रहने पर भी वे किस तरह बाहर आए एवं यहां आकर बैठ गए, इस विषय पर वे चिन्ता करने लगे।

थोड़ी देर बाद आसपास के यात्रियों ने स्वामी जी से पूछा कि आपके साथ जो दो वृद्ध व्यक्ति आए थे, वे कहां हैं? स्वामी जी ने कहा–"मैं अकेला हूँ, मेरे साथ कोई व्यक्ति नहीं है।" उन लोगों ने कहा कि दो वृद्ध व्यक्ति आपको पकड़कर शौचालय से लाकर यहां बैठाकर चले गये, यह हमनें देखा है। स्वामी जी समझ गये, कि वे वृद्ध कौन थे?

(३) इस समय किसी ने पूछा कि आपके पश्चात् इतना विशाल सेवाकार्य किस प्रकार चलेगा? स्वामी जी ने कहा–"धनी व्यक्ति अपने घर के एक नौकर की मृत्यु हो जाने पर दूसरा नौकर रखता है। कोई नौकर ठीक से काम न करे तो उसे हटाकर वह दूसरा नौकर रखता है और यदि उसे कार्य के लिए नौकर की आवश्यकता न हो तो वह दूसरा नौकर फिर से नहीं रखता। उसी तरह वे मालिक हैं, मैं उनका एक नौकर हूँ। मेरे द्वारा कार्य कराना यदि वे आवश्यक समझेंगे तो रखेंगे। यदि अनुपयुक्त लगे तो मुझे हटाकर अन्य किसी उपयुक्त व्यक्ति को रखेंगे और यदि इन कार्यों की और आवश्यकता न हो तो किसी को भी नहीं रखेगे।"

इस तरह बातचीत करते हुए रात्रि के दस बज गए और स्वामी जी विश्राम करने चले गए। सेवक स्वामी विनयानन्द उनका पैर दबाने लगे। थोड़ी देर बाद स्वामी जी ने उसे भी विश्राम करने भेज दिया। विनयानन्द के जाने के थोड़ी देर के पश्चात् स्वामी जी को तीव्र खांसी एवं श्वास लेने में कष्ट होने लगा। उन्होंने स्वयं एक दवा ली। डा. वरदाकुमार फौरन वहां आ पहुँचे एवं उन्होंने देखा कि खांसी एवं श्वास-कष्ट के साथ उनके शरीर से बहुत पसीना निकल रहा है। स्वामी जी की शारीरिक अवस्था अत्यन्त नाजुक देखकर उन्होंने पुत्र नन्ददुलाल एवं श्री गुरूमाता को समाचार भेजा। परन्तु थोड़े समय के भीतर ही उनका शरीर शान्त हो गया। उस समय रात्रि के ११ बज कर १८ मिनट हुए थे। घटना इतने आकस्मिक रूप से हुई कि किसी को कुछ करने या सोचने का भी समय नहीं मिला।

स्वामी जी के महाप्रयाण के पश्चात् उनके लिखित निर्देशानुसार उनके पवित्र देह को यथा समय आश्रम में समाधिस्थ किया गया एवं २४ अगस्त को विशाल नर-नारायण सेवा की व्यवस्था की गई। सभी कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न हुआ।

स्वामी जी के आकस्मिक महाप्रयाण से सभी शोकाकुल हो गए। विभिन्न लोगों ने उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। कई लोगों ने स्वामी जी के सम्बन्ध में अपना

व्यक्तिगत अनुभव सुनाया। यहां उनमें से दो घटनाओ का उल्लेख किया जा रहा है–

(१) डा. प्रभात भौमिक स्वामी जी के बहुत घनिष्ठ गुरूभाई थे। १९६८ ई. में स्वामी जी के साथ वाराणसी में जो चर्चा हुई थी, वह 'संगठन' पत्रिका (असीमानन्द संख्या) में विस्तृत रूप से उल्लेखित है। स्वामी जी ने प्रभात बाबू को एक घटना बतलाते हुए कहा कि मेरे जीवित काल में इस घटना को प्रकाश मत करना। स्वामी जी ने घटना का विवरण इस प्रकार कहा–

''इस वर्ष केदारनाथ-बद्रीनाथ में जाकर मैं अत्यन्त अस्वस्थ हो गया था। मेरे साथ जो डाक्टर गए थे वे मेरा परीक्षण कर समझ गए कि अब मेरे जीवित रहने की आशा नहीं है। दो घण्टे तक मेरा शरीर मृत देह की तरह पड़ा रहा। उस समय गुरूदेव मेरे साथ थे। गोसाँई जी, माता योगमाया देवी, माता सरोजबाला देवी, ब्रह्मचारी कुलदानन्द आदि के साथ वे मुझे लेकर अनेक स्थानों पर गए एवं कैलास पर्वत, मानस-सरोवर आदि विभिन्न स्थानों को भी दिखलाया।" डा. प्रभात बाबू ने पूछा–'तुमने वहां क्या देखा? कैलाश में क्या शिव-पार्वती को देखा?' स्वामी जी ने कहा–''कैलाश देखा परन्तु शिव-पार्वती को नही देखा। गोसाँई जी के गुरूदेव स्वामी ब्रह्मानन्द परमहंस जी एवं अनेक महात्माओं को देखा। इन सब स्थानो को दिखलाने के पश्चात् उन्होंने पुनः मेरे शरीर के भीतर मुझे प्रवेश करा दिया।''

स्वामी जी ने प्रभात बाबू से कहा–'भाई! वास्तव में मेरा शरीर अत्यन्त अस्वस्थ है। हृदय के भीतर एक विशेष दर्द का अनुभव होता रहता है।' प्रभात बाबू ने कहा कि तुम पूर्ण रूप से विश्राम लो! स्वामी जी ने कहा–''भाई! क्या करें? उनकी जो इच्छा होगी वही होगा । जितने दिनों तक अपने कार्य के लिए वे रखेंगे, उतने दिन रहेंगे–मैं यही विश्वास करता हूँ।"

इस तरह वाराणसी में वार्तालाप होने के पांच दिन के पश्चात् स्वामी जी ने रामचन्द्रपुर आश्रम में शरीर त्याग दिया।

(२) स्वाभी आत्मानन्द सरस्वती दीर्घकाल तक आश्रम एवं अस्पताल के सेवा कार्य को करते हुए स्वामी जी के निकट रहे। पदयात्रा के समय भी वे गुरूदेव के साथ बराबर रहे। स्वामी जी से दीक्षा एवं संन्यास प्राप्त तेरह व्यक्तियों में आत्मानन्द दूसरे थे। शीतऋतु में जब नेत्र-चिकित्सालय में आपरेशन चलता था तब रामचन्द्रपुर आश्रम में वे अस्पताल की देख-रेख करते थे। प्रतिवर्ष शिवरात्रि के पश्चात् वे हरिद्वार में स्वामी भोलानन्द गिरि जी के आश्रम में जाकर रहते थे। प्रतिवर्ष की तरह १९६८ ई. में हरिद्वार जाने के लिए जब स्वामी जी से उन्होंने अनुमति मांगी तब स्वामी जी ने अचानक उनसे कहा–''जब भी मैं तुम्हें रामचन्द्रपुर आश्रम में आने के लिए पत्र या टेलिग्राम करूँ तो तुरन्त आ जाना–एक दिन भी देरी मत करना।'' आत्मानन्द जी हरिद्वार चले गए। उनके मन में स्वामी जी की यह बात प्रायः स्मरण होते रहती थी।

स्वामी जी अगस्त महिने में वाराणसी गए। उसके पश्चात् आत्मानन्द जी को लगातार दो पत्र रामचन्द्रपुर आने के लिए उन्होंने लिखा। प्रथम पत्र पाने के पश्चात् आत्मानन्द जी की, रामचन्द्रपुर जाने की इच्छा नहीं हुई। परन्तु दूसरा पत्र मिलने पर, इच्छा न रहते हुए भी उन्हे रामचन्द्रपुर के लिए निकलना पडा। उस पत्र में स्वामी जी ने लिखा था–''इस पत्र को टेलीग्राम समझकर, तुम तुरन्त आ जाना।''

आत्मानन्द जी १३ अगस्त को सुबह रामचन्द्रपुर आश्रम पहुँचे। स्वामी जी उसी दिन संध्या के समय पहुँचे। स्वामी जी ने आत्मानन्द जी के साथ थोड़ी देर साधारण बातचीत की, परन्तु उन्हे पत्र लिखकर क्यों बुलाया गया है, इस सम्बन्ध में स्वामी जी ने कुछ भी नहीं कहा।

स्वामी जी के शरीर त्याग देने के पश्चात् डाक्टर एवं सभी लोग दुविधा में थे कि वास्तव में स्वामी जी की मृत्यु हुई है या समाधि अवस्था है। उस समय आत्मानन्द जी ने स्वामी जी के शरीर का परीक्षण करने के बाद कहा कि मैंने स्वामी जी को समाधि अवस्था में कई बार देखा है, लेकिन इस बार स्वामी जी नश्वर शरीर त्यागकर चले गए हैं।

लगभग ३६ घण्टे पश्चात् जब स्वामी जी के शरीर को समाधि देने के लिए मन्दिर से उठाया जा रहा था तब आत्मानन्द जी, जो अब तक शान्त खड़े थे, अचानक बच्चे की तरह फूट-फूट कर रोते हुए कहने लगे–'तुमने मुझे हरिद्वार से बुलाया! मुझे तुमने क्या दिया!! क्यों बुलाया!!! दो-चार मिनट के पश्चात् वे अचानक सामान्य हो गए। समाधि का कार्य सम्पूर्ण हुआ ।

कुछ दिनों के बाद एक दिन एकान्त मे स्वामी जी के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए आत्मानन्द जी ने अपने गुरूभाई स्वामी आलोकानन्द एवं लेखक से कहा–''जब स्वामी जी को समाधि देने के लिए उठाया जा रहा था तब अचानक मेरे भीतर स्वामी जी के विछोह से एक व्याकुल भाव का संचार हुआ और मैं उन्हे कहने लगा–'तुमने मुझे हरिद्वार से बुलाया! मुझे तुमने क्या दिया!! मुझे क्यों बुलाया!!!' उस समय अचानक मैंने स्वामी जी की उज्ज्वल ज्योतिर्मय मूर्ति को देखा। वे मुझे सांत्वना देकर कहने लगे–''मेरे समाधि का कार्य तुझे करना है, इसी कारण तुझे बुलाया था। तू यदि इस तरह रोएगा तो बाकी लोग क्या करेंगे? तुझे ही तो सबको देखना है।'' गुरूदेव की इन बातों को सुनकर मेरा मन शान्त हो गया।

उपरोक्त घटनाओ से प्रमाणित होता है कि स्वामी जी अपनी मृत्यु के सम्बन्ध में निश्चित थे। अस्पष्ट रूप से संकेत द्वारा उन्होंने इसे प्रकाश भी किया, परन्तु कोई इसे समझ न सका कि उनकी मृत्यु इतनी आकस्मिक होगी।

अध्याय ३० :माता श्री शैलबाला देवी का सद्गुरू के रूप में प्रकाश

अध्याय-२ में, अन्नदा कुमार के विवाह के प्रसंग पर माता शैलबाला देवी का थोड़ा सा परिचय दिया गया है। इस अध्याय में स्वामी जी के महाप्रयाण के पश्चात् माता शैलबाला देवी किस तरह सद्गुरू के रूप में असंख्य लोगों को पराशान्ति के पथ पर ले गई, इसका संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है। जब तक स्वामी जी शरीर में प्रकट थे तब तक माता शैलबाला देवी मानो अन्तरपट (परदे) में थी। घर-गृहस्थी के सभी कार्यों को परिचालित करते हुए अतिथि अभ्यागतों की देख-रेख में उनका समय व्यतीत हो जाता था। उस समय गृहस्थी में एक साधारण माता की तरह वह सांसारिक कार्यों में अत्यंत व्यस्त रहती हुई दिखलाई पडती थीं, इस कारण बहुत कम लोग ही उनकी उच्च आध्यात्मिक अवस्था को समझ सके।

परिचय :– सन् १९१७ ई के शुभ रासपूर्णिमा (कार्तिक पूर्णिमा) के दिन नवद्वीप मे श्री माँ का जन्म हुआ। पन्द्रह वर्ष की उम्र मे ६ जून १९३२ ई. को उनका विवाह, अन्नदा कुमार के साथ हुआ। श्री माँ के पिता श्री जगबन्धु गोस्वामी, तारापीठ के महान् साधक, महात्मा श्री वामाक्षेपा के शिष्य थे। अपना शेष जीवन उन्होंने साधुओं की तरह व्यतीत किया एवं जीवानन्द गोस्वामी के नाम से परिचित हुए। श्री माँ अपने चार भाईयो मे सबसे छोटी होने के कारण सभी की अत्यन्त प्रिय थीं । उनकी माता अत्यन्त सरल एवं उदार मनोवृत्ति की थीं। श्री माँ प्रसंगवश उनके सम्बन्ध मे कहती थीं–'घर में सब का भोजन हो जाने पर फिर वह भोजन करने के लिए बैठती। उसी समय यदि कोई अतिथि आ गए तो वे आनन्दित होकर अपना भोजन उसे खिला देती और स्वयं भूखी रह जातीं, ऐसा प्रायः होता रहता था। अतिथि सेवा को वे अपना परम धर्म मानती थी। अपने मधुर व्यवहार के कारण उनके पडोस के लोग उनकी अत्यन्त श्रद्धा करते थे।

श्री माँ के पिता को एक बार मोतिझिरा (Small Pox) हो गया एवं शरीर इतना ज्यादा अस्वस्थ हो गया कि सभी ने उनके जीवन की आशा त्याग दी। उस समय श्री माँ की माता, भगवान के निकट व्याकुल भाव से तीव्र प्रार्थना करने लगी। अचानक देखा गया कि उनके शरीर में हैजे के प्रकोप का लक्षण दिखलाई पड रहा है एवं थोडे समय के भीतर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। इस घटना के पश्चात श्री माँ के पिता स्वस्थ हो उठे एवं दीर्घकाल तक उनका जीवन रहा।

मातृ वियोग के समय श्री माँ केवल छः महिने की थीं। इसके पश्चात् वे अपनी दादी के स्नेहछाया मे पालित हुईं। कुछ दिनो तक वे ढाका–नारायणगंज मे अपनी

बुआ के घर पर भी रहीं, परन्तु वे अधिकतर अपने पिता के पास ही रहीं।

अपने पूर्व संस्कार-वश बचपन से श्री माँ अच्छे स्वप्नादि प्रायः देखा करती थीं। स्वप्न में एक महात्मा को वे प्रायः देखती थीं । बचपन में श्री माँ ढाका—गेण्डारिया आश्रम में कई बार गई थीं । सद्गुरू विजयकृष्ण गोस्वामी ने इस आश्रम की स्थापना की थी। उनके शिष्यगण उस समय वहां रहते थे। लगभग पन्द्रह वर्ष की उम्र में एक दिन स्वप्न में श्री माँ को वही महात्मा ने एक लडके को दिखलाते हुए कहा कि इसके साथ २१ वां ज्येष्ठ (बंगला तिथि) को तेरा विवाह होगा। श्री माँ के पिता कुछ दिनो से पुत्री के विवाह के लिए चिन्तित थे। श्री मां ने जब उन्हें स्वप्न की घटना बतलाई तब उनके पिता ने 'आनन्द बाजार पत्रिका' बंगला समाचार-पत्र में कन्या के विवाह का विज्ञापन दिया। कुछ दिनो के भीतर मानभूम जिला से एक पत्र एवं चित्र मिला। चित्र को देखते ही माँ उसे पहचान गई। उन्हें स्वप्न में इसी लडके को महात्मा जी ने दिखलाया था। आश्चर्यजनक रूप से स्वप्न निर्दिष्ट तिथि—बंगला २१ वां ज्येष्ठ १३२३ (६जून, १९३२ ई.) को उनका विवाह कार्य सम्पन्न हुआ।

विवाह अत्यन्त साधारण तरीके से सम्पन्न हुआ। विवाह की रात्रि में पति-पत्नी ने भगवान के पास प्रार्थना करते हुए संकल्प लिया—

(१) देश के लिए प्राण देने को हम सर्वदा तैयार रहेंगे।
(२) हमलोग विलास के लिए कभी आकांक्षा नहीं करेंगे।
(३) एक दूसरे का व्रत भंग नहीं करेंगे।

शैलबाला देवी ने अपने पति के चरणों में शपथ लिया कि 'मैं तुम्हारे पथ में कभी भी बाधा प्रदान नहीं करूँगी ।' तब अन्नदा कुमार ने उन्हे सर्वदा जप करने के लिए एक मन्त्र देते हुए कहा—**''यही तुम्हारा अन्तिम जन्म है। मुझे और आना पड़ेगा। तुम इस जन्म में मेरे साथ रहोगी।''** इसके बाद दोनों पति-पत्नी नाम-जप करने लगे। थोड़ी देर पश्चात् दोनों ने स्वप्नदृष्ट महात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन किया। दोनों ने उन्हें प्रणाम किया। प्रणाम करके जैसे ही वे उठे, तो देखा कि महात्मा जी अदृश्य हो गए हैं। इस तरह विवाह की रात्रि में ही भाग्यवान पति-पत्नी ने महात्मा जी का दर्शन एवं आशीर्वाद प्राप्त किया। बाद में यथासमय इन्हीं महात्मा जी से उनकी दीक्षा हुई। ये महात्मा वाराणसी के किरणचन्द्र दरवेश जी थे, जिनके गुरूदेव सद्गुरू श्री विजयकृष्ण गोस्वामी थे।

विवाह के पश्चात् दो वर्ष तक पति-पत्नी ने निर्लिप्त जीवन व्यतीत किया। बाद में महात्मा जी के निर्देशानुसार उनकी क्रमशः आठ सन्तानें हुई। इनकी प्रथम कन्या सन्तान डेढ़ वर्ष की उम्र में चल बसी। इस तरह गृहस्थ जीवन में ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करते हुए इन लोगों ने सन्तान प्राप्त किया। गृहस्थ जीवन में इस तरह शास्त्रोक्त कठोर नियम का पालन करते हुए संयमित जीवन बिताना, पूर्व-जन्म की

तीव्र साधना के बिना असंभव है—यह निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है।

दरवेश जी से दीक्षा प्राप्त करने के बाद शैलबाला देवी ने पूर्वदृष्ट अपने स्वप्न का उल्लेख उनसे किया। तब दरवेश जी ने कहा—"**बेटी, तुम लोगों के लिए भी मुझे क्या कम हैरान होना पड़ा है? तुम लोग जन्म-जन्मान्तर से मेरे हो! एकान्त रूप से मेरे अपने हो!!**

श्री माँ से एक बार पूछा गया—"बचपन में जब तुम स्वप्न में दरवेश जी महाराज को देखती थीं तब उनका कौन सा रूप दिखता था? इस प्रश्न के उत्तर में श्री माँ ने कहा—"मैं उनके सद्गुरू रूप को ही देखती थी।" प्रश्नकर्त्ता ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए पूछा—'यह तो बहुत आश्चर्यजनक घटना है। यह क्या पूर्वनिर्दिष्ट था कि भविष्य में दरवेश जी का रूप इसी प्रकार का होगा? श्री माँ ने कहा—"**हाँ, भविष्य में उनका सद्गुरू रूप किस प्रकार होगा— वह स्थिर था। मैं उनके इसी रूप को देखती थी।**" (प्रश्नकर्ता, लेखक स्वयं थे)

स्वामी जी ने 'आमार जीवन' ग्रन्थ में इस विवाह के सम्बन्ध में लिखा था—"**विवाह के पश्चात् पथ में ही हम लोगों का वैवाहिक जीवन बीता। पुलिस एवं गुप्तचर सर्वदा पीछे लगे रहते थे। इस तरह मेरे पथवासी जीवन में गृहलक्ष्मी को भी पथ का अनुसरण करना पड़ा। जीवन में यह एक बड़ी परीक्षा थी—न अर्थ है—न विषय-सम्पद है—न भोजन है, इस प्रकार न जाने कितने दिन व्यतीत हो गए। स्वाभाविक रूप से तुम लोग प्रश्न कर सकते हो कि इस तरह की अवस्था में रहते हुए भी विवाह करने की क्या आवश्यकता थी? इसका उत्तर तुम्हें शैलबाला देवी द्वारा कथित विवरण में प्राप्त होगा। मेरे गुरूदेव के निर्देशानुसार मुझे इस विवाह में अग्रसर होना पड़ा था। मेरे जीवन के संघर्षमय पथ पर, दुःख-कष्ट-निर्यातन-अपमान-अनाहारादि के मध्य जो नारी मेरे साथ समान रूप से चलते हुए अग्रसर हुई, उंसे जिस तरह श्रद्धा सहित पहले ग्रहण किया था—३५ वर्ष मेरे तपस्या के पथ में मैंने जो सहायता उससे प्राप्त की है, उसका स्मरण करते हुए—आज भी उसी तरह अत्यन्त कृतज्ञता के साथ अपनी श्रद्धा निवेदन कर रहा हूँ।**"

श्री माँ ने स्वामी जी के सम्बन्ध में विवरण देते हुए कहा था—"**तुम लोगों के गुरूजी की समाधि अवस्था में अनेक आश्चर्यजनक घटना हुई है। पहले सोचती थी कि ऐसा क्यों होता है? बाद में सब समझ में आया। मेरी उम्र जितनी बढ़ती गई उतना उन्हें समझने की चेष्टा की। उन्हें जितना घनिष्ठ रूप से पाया, उतना अपने को उनके निकट अयोग्य अनुभव किया। फिर भी मुझे ऐसा लगता था कि मैं भाग्यवती हूँ एवं अपने पूर्व जन्मों की साधना द्वारा मैंने उन्हें प्राप्त किया है। पिछले जन्मों की भूल के कारण उस समय उनसे विच्छिन्न रही। अब भूल न हो जाए, इस कारण उनके पास जाने में डर लगता था। साहस पूर्वक उनके पास न कभी जा सकी, न ही बात**

कर सकी। कई बार मन में हुआ कि उनकी सेवा करूँ—उन्हें सजाकर उनकी पूजा करूँ, परन्तु डर के कारण नहो कर सकी—यदि वे असंतुष्ट हो जाएं तो क्या होगा? मैं मूर्ख नारी हूँ! मेरी बुद्धि ही कितनी है!!

उन्होंने मुझे कभी एक भी अपशब्द नहीं कहा । जब वे बातचीत करना बन्द कर देते थे, भोजन नहीं करते थे तब मैं समझ जाती थी कि कुछ त्रुटि हो गई है। उस समय मैं भी डर के कारण अस्थिर हो जाती थी।

तुम्हारे गुरूजी के सम्बन्ध में मैं और क्या कहूँ? मेरा नाम शैलबाला है। शिव को पाने के लिए पार्वती को तपस्या करनी पड़ी थी। मैं भी तपस्या कर रही हूँ। किसी की निन्दा-गाली से उन्हें कभी भी दु:खित नहीं देखी। वे सर्वदा आनन्दमय हैं। मनुष्य को बचाने के लिए वे अग्नि में भी कूद पड़े, पर उन्हें कुछ नहीं हुआ। तैरना नहीं आता था, फिर भी तालाब में डूबते बालक को बचाया । एक दिन वे सो रहे थे, उनके बिस्तर में सांप देखा। वे जिस कमरे में रहते थे वहां कितनी अलौकिक घटनाएं हुई, उसका विवरण देना संभव नहीं है।

इतने दिनों तक मैंने उनका दूर से अवलोकन किया। बाद में जब सब समझ में आया तब ऐसा लगा कि मैंने कितनी भूल की है। उन्होंने (जन्म-जन्मान्तर से) हजारों लोगों को हजारों प्रकार का वचन दिया है। अब यदि वे उसे पूरा न करें तो यह ठीक नहीं होगा। उनका कार्य वे ही ठीक समझते है—अभी मेरा कार्य है, उनकी पूजा करना।

विगत् २२ जून, १९५६ ई. को जब उनका देहान्त हो गया था (उल्लेखनीय है कि उस समय उनके देह को समाधि देने की सब व्यवस्था कर ली गई थी।) तब मैं रोने लगी। गोसाँई जी एवं दरवेश जी ने **मुझे दर्शन देकर कहा—''इस बार इसे रखा जा रहा है। तू अपने हाथों से इनकी सेवा कर, नित्य पांच तुलसी-पत्र इनके सिर में देकर, पूजा करना। जब वे नहीं रहेंगे तब उनके आसन व शय्या की पूजा करना।" मैंने उनसे पूछा कि 'नित्य उन्हें कसे प्राप्त करूँगी?' तब दरवेश जी ने कहा—''मूर्ख बेटी! आसन पर उनके चरणचिन्ह बना कर रख दे।'' इसी कारण गुरूपूर्णिमा के दिन आसन वेदी बनाकर उनके चरणों का चिन्ह उसमें लेकर रखा गया है।**

गोसाँई जी और दरवेश जी ने मुझे आसन वेदी, चरण चिन्ह और विश्राम वेदी की सेवा करने का निर्देश दिया है वही कर रही हूँ। गोसाँई जी एवं गुरूजी की पूजा करने के पश्चात् यह सेवा कार्य मैं करती हूँ। गुरूजी ने मुझसे कहा है कि 'इनकी सेवा करने पर, तेरा सब हो जाएगा।' मैं तो सेवा करना नही जानती! तुम लोग अपने गुरूजी से प्रार्थना करो कि वे मुझ पर कृपा करें! मुझे क्षमा करें!!

मेरा मन विभिन्न अवस्था के भीतर रहता है। तुम लोगों को कुछ कह देने पर बुरा मत मानना! अबोध माँ को क्षमा करना!! ('असीमानन्देर पत्र' नामक ग्रन्थ से)

स्वामी जी के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए श्री माँ ने कहा था–''मैं अपने हृदय में उनकी पूजा करती हूँ। वे कौन हैं एवं क्या हैं–यह मैं जानती हूँ, पर इसे कहना निषेध है। जो सोचते हैं कि दिखावटी सेवा की भावना द्वारा अथवा अर्थ का प्रलोभन दिखाकर उन्हें मुग्ध कर लेंगे, उन लोगों को यह नहीं मालूम कि इस शिव को इस तरह नहीं भूला सकते! वे जितने कोमल हैं उतने कठोर भी हैं!! उनके निकट सभी समान हैं! छोटा-बड़ा अथवा धनी-दरिद्र का विचार उनके पास नहीं है!!''

स्वामी जी ने किसी समय श्री माँ से कहा था–''मैंने गुरूजी के आदेश पर तुम्हें ग्रहण किया है। मैं पूर्वजन्म में तुम्हारे निकट वचनवद्ध भी अवश्य था। पूर्व प्रतिश्रुति एवं महापुरूष के स्वप्नादेश के कारण तुम्हारा और मेरा मिलन संभव हुआ। हमारे जीवन में क्या-क्या होगा–यह मुझे मालूम है।''

स्वामी जी ने कहा था–

(१) घर-गृहस्थी सब आश्रम वन जाएगा। आश्रम जीवन ही हमारा शेष जीवन होगा।

(२) एक ऐसी अवस्था आएगी जिससे तुम्हारा जीवन सम्पूर्ण परिवर्तित हो जाएगा।

(३) तुम्हें, तुम्हारे शेष जीवन में वास्तविक मातृमूर्ति के रूप में प्रकाशित होना पड़ेगा।

(४) उस समय हजारों सन्तानों द्वारा तुम मातृ रूप में अभिषिक्त होकर अपनी व्यक्तिगत सत्ता को भूल जाओगी!

(५) सभी को जननी अर्थात मातृ स्वरूपा हो जाओगी।

(६) तुम्हारे निकट अपनी सन्तान और दूसरे की सन्तान में कोई प्रभेद नहीं रहेगा।

(७) मैं तुम्हारे पूर्वजन्म को निश्चित रूप से जानता हूँ, तुम मेरी पत्नी थी एवं पुनः मेरे निकट आई हो। मेरे उस जन्म के और उसके भी पहले तीन जन्मों के सभी कुटुम्ब एवं मित्रों के साथ इस जन्म में मिलन होगा। यह सब बात अत्यन्त गोपनीय है।

(८) दरवेश जी ने कहा है–''तुम्हारे प्रति गोसाँई जी की असीम करूणा है। यह आश्रम एक दिन तीर्थ वन जाएगा।''

मुझे ९वां चैत्र १३५३ (बंगला तिथि) को रात्रि तीन बजे प्रथम साधना देने का निर्देश मिला। गोसाँई जी का निर्देश है–मैं क्या कर सकता हूँ।

(९) मेरे पथ में तुम मुझे शक्ति प्रदान करना।

(१०) तुम्हारा स्नेह, सहायता एवं कृपा भिक्षा कर रहा हूँ। शक्ति की कृपा के विना सब अचल है। ('संगठन' असीमानन्द संख्या से)

वृन्दावन पदयात्रा के समय स्वामी जी ने रामचन्द्रपुर मे श्री माँ को मथुरा से जो पत्र लिखा था, उसमें श्री मां का स्वरूप आंशिक रूप से प्रकाशित होता है। पत्र में लिखा था–

दिनांक ७-१२-१९५७ ई.

दीर्घ ७३४ मील पथ पर चलकर मथुरा पहुँचा। पांच मील और बाकी है। सारा पथ तुम्हारी चिन्मयी शक्ति ने मेरे भीतर शक्ति संचारित की है। दिनांक ४-१२-१९५७ ई. को रास्ते पर उषाकाल में श्रीराधा जी ने दर्शन देकर, श्रीवृन्दावन धाम में प्रवेश करने के पूर्व आशीर्वाद प्रदान किया है। आगामी कल गोधुली वेला (संध्या) में श्रीश्रीकृष्ण के प्रेम के राज्य में प्रवेश करने की इच्छा है।

सभी भक्तगण तुम्हें प्रणाम निवेदन कर रहे हैं एवं तुम्हारा आशीर्वाद भिक्षा कर रहे हैं। तुम्हारी चिन्मयी शक्ति मुझे लक्ष्य में ले जाएगी। मेरे हृदय की अविनश्वर नित्य प्रेम एवं नित्य आनन्द का विशुद्ध संयोग, तुम्हारी आत्मा में सर्वदा जागृत है–इसे तुम अनुभव करती हो! उसकी अन्तिम एवं परिपूर्ण जागृति, कृतार्थ करे! तुम्हारी पूर्व स्मृति सम्पूर्ण जागृत हो!!

आशीर्वादक – तुम्हारे जन्म-जन्मान्तर का साथी–''आनन्द''।

उपरोक्त पत्र में स्वामी जी ने श्री माँ के स्वरूप को जिस तरह व्यक्त किया है उससे श्री माँ के सम्बन्ध में उनकी उच्च धारणा प्रकट होती है।

पूज्य स्वामी जी के महाप्रयाण के बाद श्री माँ के पास विभिन्न स्थानो से लोग अपनी आध्यात्मिक-सांसारिक आदि समस्याओं को सुलझाने के लिए आने लगे। गोसाँई जी की दीक्षा प्राप्त करने के लिए भी अनेक लोग श्री माँ से प्रार्थना करने लगे। श्री माँ सभी को मातृ-स्नेह द्वारा एवं आवश्यक उपदेश देकर उन्हें सांत्वना प्रदान करती थी, परन्तु दीक्षा नहीं देती थीं। बाद में उन्होंने दीक्षा देना प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में श्री माँ, दीक्षा दे रही हूँ, ऐसा न कहकर 'नाम' दे रही हूँ, इस प्रकार कहती थीं। वे प्रायः अस्वस्थ रहती थीं, इस कारण 'प्राणायाम' नहीं देती थीं। स्वामी जी ने जिन्हें भी दीक्षा दिया, उन्हें मन्त्र प्रदान करने के साथ एक विशेष प्राणायाम करने का भी निर्देश देते थे और साधना की पद्धति को विशद् रूप से समझा देते थे। श्री माँ दो-चार प्रमुख नियमों को बतलाकर, श्वास-प्रश्वास में 'नाम-मन्त्र' के जप का निर्देश दिया करती थी।

श्री माँ ने जब दीक्षा देना प्रारम्भ किया तब कुछ लोगों के मन में अनेक संशय आने लगे। संशय के मुख्य कारण निम्न थे–

(१) **स्त्री शरीर में रहते हुए भी श्री माँ दीक्षा दे रही ह**–इस संशय के सम्बन्ध मे ''अजपा साधन तत्व'' नामक ग्रन्थ में स्वामी जी ने लिखा है कि गोसाँई जी ने कहा है–**''स्त्री शरीर, इस दीक्षा का दान नहीं कर सकता है। ब्राह्मण होने पर, पुरुष**

ही सब श्रेणी अर्थात वर्ण के लोगों को दीक्षा दे सकते हैं। ब्राह्मण के सिवाय अन्य वर्ण के शरीरधारी, अब्राह्मण लोगों के दीक्षा गुरू हो सकते है किन्तु ब्राह्मण के दीक्षा गुरू नहीं हो सकते।''

शास्त्रों में उल्लेख है–**''सिद्ध शरीर होने पर स्त्री-पुरूष के विचार का प्रयोजन नहीं है। स्त्री शरीर के सिद्ध हो जाने पर उसमें लिंग भेद नही रह जाता। शरीर सिद्ध हो जाने पर वे ब्रह्म में स्थिति लाभ कर लेते हैं। वे लिंग ज्ञान से परे हो जाते हैं। इसलिए वे पुरूष के निकट पुरूष तथा स्त्री के निकट स्त्री ही प्रतीत होते हैं। उनके लिंग-ज्ञान तिरोहित हो जाने पर स्त्री या पुरूष कहकर उनकी विवेचना नहीं होती है।''**

श्रीमत् स्वामी असीमानन्द जी ने स्त्री गुरू के सम्वन्ध में कहा है–अपने गुरू की आज्ञा से, स्त्री शरीरधारी अपने उपासित मंत्र का दान कर सकती हैं–यही शास्त्र का आदेश है। स्त्री-गुरू ने अपने गुरू से जो मन्त्र प्राप्त किया है, वही मन्त्र वह दे सकती हैं । इसमें कोई क्षति अर्थात हानि नहीं है।

श्रीश्री गोस्वामी प्रभु ने कहा है कि स्त्री शरीर दीक्षा देने का अधिकारी नहीं है। परन्तु स्त्री-गुरु के सम्बन्ध में विशेष प्रश्न करने पर वे यही शास्त्रोक्त विधि कहते। यह निश्चित है कि इस प्रकार के प्रश्न का सुयोग नहीं हुआ इसलिए उस समय विशद् रूप से इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया। ('अजपा साधन तत्व' से)

उल्लेखनीय है गोसाँई जी की शिष्या, उनके पूर्वाश्रम की पुत्री श्री शान्तिसुधा देवी ने कई लोगों को दीक्षा दिया। श्री दरवेश जी महाराज के पूर्वाश्रम की सहधर्मिणी माता श्री सरोजबाला देवी ने भी कई लोगों को दीक्षा प्रदान किया । अन्य सम्प्रदाय में भी, यथा, श्रीश्रीरामकृष्ण देव की पत्नी माता श्रीमाँ शारदा देवी, श्रीमाँ आनन्दमयी माता आदि ने स्त्री शरीर रहते हुए भी दीक्षा प्रदान कर असंख्य लोगों का उद्धार किया है।

(२) श्री माँ प्राणायाम नहीं देती हैं–इसे लेकर कई लोगों के मन में संशय था। इस सम्बन्ध में श्री माँ से कई बार प्रश्न किया गया। श्री माँ का कहना था–**''यह दीक्षा ऋषि-मुनियों का अमूल्य धन है। वे निर्जन में रहते थे, इसलिए प्राणायाम आदि करते थे। आजकल सभी लोगों का घर बहुत छोटा है। इसके अलावा आजकल अधिकांश लोगों का शरीर अस्वस्थ है अर्थात प्राणायाम करने के उपयुक्त नहीं है। इसी कारण मैं प्राणायाम नहीं देती। यह जो 'नाम' दिया है, इस 'नाम' से ही सब हो जाएगा।''**

श्री माँ ने जिन लोगों को दीक्षा दी है, उनमें से साधनशील कुछ लोगों के भीतर अपने आप प्राणायाम की किया एवं 'केवल कुंभक' आदि होते हुए देखा गया है।

श्री माँ के सम्बन्ध में, स्वामी अलोकानन्द सरस्वती और लेखक ने बंगला भाषा में ''स्मृति कुसुमांजली" नामक एक ग्रन्थ में, कुछ घटनाओं एवं उनके उपदेशों को

प्रकाशित किया है। उक्त ग्रन्थ से कुछ घटनाएं एवं उपदेश यहाँ दिये जा रहे हैं–

श्री माँ से सम्बन्धित कुछ घटनाएं :

भूमिका :– श्री गुरूदेव (स्वामी जी) के महासमाधि लेने के पश्चात् हमलोग (स्वामी अलोकानन्द एवं लेखक) श्री माँ का घनिष्ट सान्निध्य लाभ कर धन्य हुए। श्री माँ से अनेक आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा हुई। सन् १९६८ ई. से १९७२ ई. तक हम लोग आसनसोल से लगभग दस किलोमीटर दूर, जहरगढ़ नामक स्थान पर रहे। श्री माँ एक बार कृपापूर्वक वहां आई थीं। बाद में सन् १९७५ ई. मे जब रघुनाथपुर (जिला पुरूलिया) में 'श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ' नामक आश्रम की स्थापना हुई तब श्री माँ कई बार यहां उत्सव मे तथा अन्य समय में आईं एवं हम लोगो पर कृपा करते हुए एक-डेढ महिने तक भी रही। उस समय यहां अनेक लोगो ने श्री माँ से दीक्षा प्राप्त किये।

यहां जिन घटनाओं का उल्लेख किया जा रहा है, उसमे श्री माँ की आध्यात्मिक शक्ति की कुछ झलक दिखलाई पड़ती है।

(१) श्री माँ का जहरगढ़ में आगमन– श्री गुरूदेव, महासमाधि लेने के लगभग चार महिने पूर्व जहरगढ़ गए थे। उस समय हमलोग 'योगी गुफा', रघुनाथपुर में रहते थे। जहरगढ़ बहुत एकान्त जगह थी। बंगाल के विभाजन के पश्चात् पूर्वी बंगाल के कुछ समृद्ध लोगों ने यहां एक कॉलोनी बनाने की योजना बनाई। एक बगीचा, मन्दिर एवं कुछ मकान बनाकर वहां कुछ लोगों ने रहना भी प्रारम्भ किया, परन्तु यहां कई बार डकैती होने से वे सब लोग इस स्थान को छोडकर चले गए। तब यहां की देख-रेख श्री हिरण्मय रायचौधरी करते थे। वे अपनी पत्नी नीलिमा देवी के साथ इस निर्जन स्थान पर कई वर्ष रहे। उस समय संयोगवश उन्होंने स्वामी असीमानन्द सरस्वती जी से दीक्षा भी प्राप्त की। उन्होंने स्वामी जी से प्रार्थना किया कि जहरगढ में किसी साधू को भेजकर आश्रम बनाया जाए तो अच्छा होगा। स्वामी जी ने जहरगढ़ का स्थान देखने के पश्चात् हम लोगों को वहां रहने का निर्देश दिया।

जहरगढ़ जाने के पूर्व स्वामी जी ने हमसे कहा–''**वहां आसपास गांव दूर में है इस कारण तुम लोग एक दिन जाकर सभी घर से भिक्षा लेना एवं जब वह समाप्त हो जाए तब पुनः भिक्षा के लिए निकलना।**''

जहरगढ़ जाने के बाद पहले दिन हमलोग भिक्षा के लिए निकले एवं भिक्षा लेकर आने पर देखा कि हमारे किसी गुरूभाई ने हम लोगों के लिए आवश्यक सभी सामग्री भेज दिया है। इसके पश्चात् हमें और कभी भिक्षा के लिए जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। कहीं न कहो से आवश्यक सामग्री का प्रबन्ध होता रहा। हिरण्मय बाबू फोटोग्राफी करते हुए किसी तरह अपने परिवार का खर्च चलाते थे।

जहरगढ़ में इस वर्ष पूज्य स्वामी जी के 'जहरगढ़-आगमन तिथि' बुद्ध पूर्णिमा

के दिन महोत्सव करने का विचार किया गया। रामचन्द्रपुर आश्रम से श्री माँ को भी उत्सव मे यहां लाने का अनुरोध कई भक्तों ने हम लोगों से किया। उत्सव के कुछ दिन पूर्व हमलोग रामचन्द्रपुर गए एवं श्री माँ से जहरगढ़ आने के लिए अनुरोध किया। स्वामी जी के महाप्रयाण के बाद श्री माँ, आश्रम से बाहर कहीं नही गई थी। उन्होंने कहा–''मेरी इच्छा तो है, परन्तु मेरा स्वास्थ्य ठीक नही रहता। इस अवस्था में किस तरह जाएं।''

हम लोगों की बारंबार प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा–''उत्सव के पहले खबर लेना । यदि स्वास्थ्य ठीक रहा तो मैं जाऊँगी। पहले यहां खबर लेने के बाद ही गाड़ी भेजना।''

श्री माँ की सम्मति प्राप्त कर सभी लोग आनन्दित हुए। उत्सव के कुछ दिन पूर्व से ही मानो हमारी परीक्षा शुरू हो गई। हमारे पास कुछ भी पैसा नहीं रहा। हिरण्मय बाबू के घर में न पैसा है न खाने के लिए चावल आदि। कई दिन बगीचे मे लगे कच्चे कटहल की सब्जी बनाकर हमलोग खाए। नाम-संकीर्तन महोत्सव का समाचार एवं श्री माँ के आने का समाचार कोलकाता, रघुनाथपुर, चितरंजन आदि अनेक स्थानों में पहुँच गया। परिचित सभी लोगों ने उत्सव में यहां आने की सूचना भेजी। महोत्सव करना है और हमलोग की इस तरह की अवस्था चल रही है–श्री माँ को रामचन्द्रपुर से लाने के लिए गाड़ी चाहिए परन्तु किराया नहीं। हमलोग, यहां की आर्थिक अवस्था के सम्बन्ध में किसी को भी बताने के लिए हिरण्मय बाबू को, मना कर दिये थे।

श्री माँ के ठहरने के लिए मन्दिर के पास में एक मकान को साफ किया गया। उस समय हमारे मन में इस तरह का विश्वास आया कि–'**श्री गुरू माँ यहां आ रही हैं, इस कारण किसी प्रकार का अभाव यहां नहीं रह सकता।**'

उत्सव के दो दिन पूर्व एक गांव से किसी ने कुछ चावल आदि भेज दिया। चितरंजन से कुछ गुरूभाई एवं भक्त लोग आ गए। वे उत्सव के लिए कुछ सामान भी लाए थे। विभिन्न स्थानों से लोग आने लगे एवं उत्सव के लिए सभी व्यवस्था स्वतः होने लगी। श्री माँ को लाने के लिए हिरण्मय बाबू के साथ एक गुरूभाई रामचन्द्रपुर जाने के लिए तैयार हुए। मन्दिर में कुछ लोगों ने जो रूपये चढ़ाये थे उससे रामचन्द्रपुर जाने की व्यवस्था हो गई। उन लोगों के जाने के पश्चात् अचानक एक कोलियारी के मालिक ने हमारे पास एक आदमी को भेजा। उस व्यक्ति ने हमसे कहा–''यहां महोत्सव का आयोजन हो रहा है, यह समाचार सुनकर हमारे कोलियारी के मालिक ने मुझे यहां भेजा है एवं आवश्यक सभी सामग्री उत्सव में देने के लिए कहा है।'' जिन वस्तुओं की आवश्यकता थी वह उसे बतला दी गई। उसने सभी समान पहुँचा दिया। इस प्रकार श्री माँ के आने के पहले ही सब व्यवस्था हो गई।

आश्रम से यथा समय श्री माँ यहां आईं। उन्होंने यहां आते ही हिरण्मय बाबू की पत्नी नीलिमा देवी को सौ रूपये देकर कहा कि 'इसे रखो एवं उत्सव-कार्य में लगा देना।' यहां विभिन्न स्थानो से लोग आने लगे। संकीर्तन में, लोगो ने श्री माँ की उपस्थिति से विशेष आनन्द प्राप्त किया। इस तरह श्री माँ यहां तीन दिन रहने के पश्चात् रामचन्द्रपुर आश्रम चलो गईं। स्वामी जी के महाप्रयाण के पश्चात् श्री माँ का प्रथमतः जहरगढ आना हुआ। उनकी कृपा से महोत्सव की सारी व्यवस्था अपने-आप हो गई।

(२) भोग निवेदन :– जहरगढ मे हमलोग अपना भोजन स्वयं बनाकर पाते थे। हिरण्मय बाबू एवं नीलिमा देवी की बहुत इच्छा थी कि हमलोग नित्य उनके घर में भोजन करें। लगभग एक वर्ष तक हमलोग उनके यहां कुछ भी भोजन आदि नहीं किये। लेकिन नीलिमा देवी की एकान्त इच्छा थी कि हमलोग उनके यहां भोजन करें। एक दिन नीलिमा देवी ने रामचन्द्रपुर आश्रम में श्री माँ के पास जाकर अपनी इच्छा व्यक्त की। श्री माँ ने कहा–''**साधुओं के लिए अपना भोजन स्वयं बनाकर खाना ही अच्छा है। साधुओं को भोजन करवाने के लिए पवित्रता से भोजन बनाकर नियमानुसार पहले गोसाँई जी को भोग निवेदन करना होगा। यह प्रसाद साधू लोग ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु तुम्हारे घर में भोग किसमें बनाओगे? तुम्हारे सभी बर्तन में तो कालिख (दाग) लगा हैं। भोग के वर्तन आदि यदि नया ला सको तव भोग देना।**''

आश्रम से लौटकर नीलिमा देवी ने हम लोगो से यह सब बातें कही। उनके घर जाकर देखा गया कि वास्तविक रूप से बर्तनों में काला दाग था। उन्होने नया बर्तन मंगा लिया। हम लोगों ने भी रामचन्द्रपुर आश्रम जाकर श्री माँ से इस सम्बन्ध में पूछा तो उन्होंने कहा–''**नीलिमा की आन्तरिक इच्छा देखकर मैंने उसे कहा कि पवित्रता पूर्वक भोजन बनाकर पहले भोग निवेदन करेगी, उसके पश्चात् साधू लोग प्रसाद ग्रहण कर सकते हैं।**''

पहले दिन नीलिमा देवी के घर से लगभग एक बजे हमें भोजन करने के लिए बुलाया गया। वहां जाकर हमने पूछा कि भोग लगाने में इतनी देर कैसे हो गई? नीलिमा देवी ने कहा–'पता नहीं क्या हो रहा है? मैं भोजन बनाकर भोग निवेदन कर लगभग २० मिनट बाद जब भोगगृह का दरवाजा खोली तो देखी कि भोग के अन्न बिखरे हुए हैं और ऐसा लगा कि आसन भी किसे ने हिलाया है। मैं सोची कि शायद बिल्ली घुस गई थी। इसलिए पुनः भोजन बनाकर भोग लगाई। इस बार भी उसी तरह का चिन्ह है।' हमलोग भोगगृह में जाकर देखे कि थाली में भोग ग्रहण के चिन्ह स्पष्ट दिखलाई पड़ रहे है एवं आसन पर गोसाँई जी के चरण चिन्ह छाप पड़ा है। उन लोगों ने इसके पूर्व कभी भी भोग में इस तरह का स्पष्ट छाप आदि नहीं देखा था। हमने उन लोगों से कहा–''**श्री माँ की कृपा से आपके घर में गोसाँई जी ने भोग**

ग्रहण किया है एवं इसका चिन्ह भी वे कृपा पूर्वक दे गये हैं। आप लोग भाग्यवान हैं।''

इस घटना के पश्चात् उनके घर मे नित्य भोग में इस तरह भोग ग्रहण के चिन्ह दिखलाई पड़ने लगे। श्री माँ की कृपा से नीलिमा देवी आज भी जहां कहीं भी भोग निवेदन करती हैं, इस प्रकार के कुछ न कुछ भोग ग्रहण के चिन्ह स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं।

(३) जगन्नाथ पुरी में श्रीगुरूदेव की कृपा–

चतुर्धाम में पुरी अत्यन्त पवित्र तीर्थ है। इस पवित्र धाम में अनेक महात्मा सर्वदा आते रहते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु ने अट्ठारह वर्ष यहां बिताया विजयकृष्ण गोस्वामी जी के पिताजी शान्तिपुर से, सारे रास्ते भर साष्टांग प्रणाम करते हुए चलकर यहां आए थे एवं पुत्र के लिए प्रार्थना की थी। यहां से वापस जाने के पश्चात् श्री विजयकृष्ण जी का जन्म हुआ था। गोसाँई जी ने अपने जीवन के अन्तिम लगभग एक वर्ष पुरी में ही बिताया एवं यही महासमाधि ली। उनके पवित्र शरीर की समाधि यहां नरेन्द्र सरोवर के तट पर 'जटिया बाबा का समाधि आश्रम' के नाम से प्रसिद्ध है।

एक बार गुरूभाईयों के अनुरोध पर हम लोगों ने पुरी जाने की योजना बनाई। जहरगढ़ से हिरण्मय एवं नीलिमा देवी तथा रघुनाथपुर से कुछ लोग भी साथ में गए। इनमें एक वृद्धा, जिन्हें गोपाल की माँ कहा जाता था, एवं हमारे दो संन्यासी गुरूभाई भी थे। पुरी में पहले दिन श्रीजगन्नाथ जी के दर्शन के पश्चात् रात्रि के समय महाप्रसाद भोजन की व्यवस्था की गई। हम सभी 'गोयनका धर्मशाला' में ठहरे थे। यथा समय वहां हम सब गुरूभाई लोग 'महाप्रसाद' भोजन करने बैठे। हमलोग जब भोजन कर रहे थे तब गोपाल की माँ एक कटोरी लेकर मेरे पास आई एवं महाप्रसाद मांगी। मैंने कहा कि यदि आपकी, प्रसाद लेने की इच्छा है तो हमारे पत्तल से स्वयं ले सकती हो। उन्होंने मेरे पत्तल से प्रसाद लेने के बाद सभी के पत्तल से थोड़ा-थोड़ा महाप्रसाद कटोरी में लेना शुरू किया। हमारे एक संन्यासी गुरूभाई के मना करने पर भी गोपाल की माँ ने उनके पत्तल से प्रसाद ले लिया। इससे वे संन्यासी क्रुद्ध हो उठे। इनकी धारना थी कि महाप्रसाद जूठा हो गया। वे पत्तल छोड़कर चले गए। उनसे पुनः दूसरे पत्तल में भोजन लेने का अनुरोध किया गया, परन्तु वे पुनः भोजन नही किये। उनके इस तरह से उठ जाने पर सभी को दुःख हुआ, विशेषकर गोपाल की माँ अपने को अपराधी मानकर चिन्तित हो उठी। उल्लेखनीय है, महाप्रसाद में उच्छिष्ट विचार नहीं होता।

हम लोगों का भोजन हो जाने के पश्चात् गुरूबहिनें हमारी पत्तलों पर ही महाप्रसाद लेकर भोजन करने के लिए बैठ गइ। परन्तु उक्त संन्यासी द्वारा छोड़े गए पत्तल पर कोई नहीं बैठा। सबका भोजन हो जाने के पश्चात् हमने कहा कि संन्यासी

द्वारा छोड़े गए महाप्रसाद को बाहर किसी भिखारी या पशु को देना अच्छा रहेगा। गोपाल की माँ इस महाप्रसाद को पत्तल सहित उठाकर धर्मशाला के वाहर गईं तो एक वृद्ध सा भिखारी, जिसका शरीर चादर से ढंका हुआ था, जल्दी से उनके पास आया और बहुत आग्रहपूर्वक कहा–'मुझे यह महाप्रसाद दो।' फिर वह महाप्रसाद लेकर चला गया। उसके चले जाने के पश्चात् गोपाल की माँ को अचानक लगा कि इस वृद्ध व्यक्ति का चेहरा हमारे गुरूदेव (स्वामी जी) के समान है। उनके शरीर में कम्पन शुरु हो गया और वह 'मैंने क्या देखा ! मैंने क्या देखा!!' ऐसा कहते हुए धर्मशाला के ऊपर के कमरे में हमारे पास आकर इस घटना का पूरा विवरण देते हुए वह कहने लगी कि वह व्यक्ति बहुत भूखा लगा। हमने, उसे और भोजन देने के लिए गोपाल की माँ को पुनः वहां भेजा। इस बार उनके साथ दो लोग और गए, लेकिन धर्मशाला के बाहर इतने बड़े रास्ते पर उन्हें कोई भी नहीं दिखा। इसी समय नीलिमा देवी एवं दुर्गाबाई नामक एक गुरूबहिन दोनो अचानक भावमग्न हो गए थे। करीब आधा घण्टा तक वे इस अवस्था में रहे। उसके बाद, हमारे पूछने पर नीलिमा देवी ने कहा–''गोपाल की माँ जब महाप्रसाद लेकर बाहर गई उस समय मैं बैठकर नाम-जप कर रही थी। अचानक मेरी आँखों के सामने एक दृश्य दिखलाई पड़ा कि हमारे गुरूदेव चादर ओढ़कर धर्मशाला के बाहर आए एवं गोपाल की माँ के हाथों से महाप्रसाद लेकर तुरन्त चले गए। इस दृश्य को देखकर नाम-जप तीव्रता से होने लगा एवं मेरे शरीर में कम्पन होने लगा।''

दुर्गाबाई से पूछने पर वह बोली–''गोपाल की माँ के बाहर जाने के बाद अचानक मुझे दिखलाई पड़ा कि एक वृद्ध सा व्यक्ति धर्मशाला के बाहर गोपाल की माँ के हाथ से महाप्रसाद लेकर चला गया। उसका चेहरा स्वामी जी के जैसा लगा। यह देखकर मेरे शरीर में कम्पन आदि शुरू हो गए एवं इष्ट मन्त्र भी तीव्र गति से चलने लगा । श्वास-प्रश्वास मे प्राणायाम सा होने लगा। पता नहीं मैंने यह क्या देखा!''

इन तीनों की घटना लगभग एक जैसी थी। परन्तु गोपाल की माँ ने गुरूदेव को प्रत्यक्ष देखा। इस घटना का तात्पर्य उन्होंने हमसे पूछा। हमने कहा कि यह सब श्री गुरू माँ से पूछ लेना। हमें ऐसा लग रहा था कि गुरूभाई द्वारा श्रीधाम में इस तरह महाप्रसाद को जूठा समझकर भोजन न करना, उसका अपराध हुआ है। इसलिए श्री गुरूदेव ने स्वयं महाप्रसाद लेकर उसे इस अपराध से मुक्त कर दिया।

पुरी से लौटने के बाद गोपाल की माँ एवं दुर्गाबाई ने रामचन्द्रपुर आश्रम में जाकर श्री माँ को पूरी घटना बतलाई। श्री माँ ने कहा–''**तुम लोगों ने ठीक ही देखा है। शिष्य का सब अपराध गुरू ग्रहण करते हैं।**''

सद्गुरू, शिष्य का सर्वदा मंगल करते हैं एवं उसके पाप-ताप स्वयं ग्रहण

करते हैं। श्री गुरूदेव के अप्रकट होने के पश्चात् पुनः इस तरह प्रकाशित होना एवं कृपा करना निःसन्देह विरल घटना है।

(४) अप्राकृत रूप से दुर्गाबाई की दीक्षा होना–

हमलोग उस समय जहरगढ़ में रहते थे। रघुनाथपुर में दुर्गाबाई के घर पर गोसाँई जी के जन्मदिन झूलन पूर्णिमा (राखी) के दिन एवं बंगला नववर्ष, पहला बैशाख को अखण्ड नाम-संकीर्तन का आयोजन प्रतिवर्ष प्रारम्भ किया गया। दुर्गाबाई ने अपने कुलगुरू से दीक्षा प्राप्त की थीं। उनके आन्तरिक आग्रह से एवं गोसाँई जी के प्रति भक्ति भावना को देखकर, उनके घर में श्री गुरू माँ एवं संन्यासी लोग प्रायः आया करते थे।

प्रथम वर्ष उत्सव के समय बालभोग निवेदन कर दुर्गाबाई भोगगृह के बाहर बैठकर नाम-जप करने लगीं। अचानक सभी ने देखा कि उसके शरीर में कम्पन हो रहा है एवं तीव्र गति से श्वास-प्रश्वास में प्राणायाम जैसा हो रहा है। घर के लोग घबरा गए एवं हमें सूचित किया। हमने उन्हें कहा कि यह सब सात्विक भाव के लक्षण हैं, चिन्ता की कोई बात नहीं है। थोडी देर में सब ठीक हो जाएगा।

जब भोगगृह का दरवाजा खोला गया तव आसन पर किसी व्यक्ति के बैठने का चिन्ह एवं भोग ग्रहण के स्पष्ट छाप देखे गये। वहां से एक विशेष प्रकार की सुगन्ध भी निकल रही थी। सभी लोगों ने इसका अनुभव किया। थोड़ी देर बाद दुर्गाबाई स्वाभाविक अवस्था में आ गई। हमारे पास आकर उन्होंने कहा–''बालभोग निवेदन करने में मुझे देरी हो गई थी, इस कारण मैंने गरम मोहनभोग को ठंडा किये बिना ही निवेदित कर दिया और भोगगृह का दरवाजा बन्द करके मैं बाहर बैठकर नाम-जप करने लगी। उस समय मैंने देखा कि गोसाँई जी आकर आसन पर बैठ गए एवं मोहनभोग को स्पर्श कर तुरन्त हाथ हटा लिए। मुझे ऐसा लगा कि गरम लगने के कारण उन्होंने हाथ जल्दी से हटा लिया । इस दृश्य को देखकर मेरे मन में अत्यन्त कष्ट होने लगा। मुझसे अपराध हुआ है! मैंने उन्हें कष्ट दिया है!! इस प्रकार मन में विचार आने के साथ मेरे शरीर में कम्पन आदि होने लगे। उस समय गोसाँई जी अचानक आसन से उठकर मेरे पास आए और मुझे एक मंत्र का उच्चारण करके सुनाया। मंत्र सुनते ही श्वास-प्रश्वास में वह मंत्र तीव्र गति से चलने लगा ।''

दुर्गाबाई ने गोसाँई जी से प्राप्त मंत्र हमें सुनाया। हमारे निर्देशानुसार उसने रामचन्द्रपुर में श्री गुरू माँ को पूरी घटना सुनाई। श्री माँ ने दुर्गाबाई को गुरूदेव के समाधि मन्दिर में प्रणाम करके आने के लिए कहा । समाधि मन्दिर में जाने पर दुर्गाबाई के शरीर में उसी प्रकार का कम्पन आदि होने लगा एवं लगभग आधे घण्टे तक उस अवस्था में रही। उसके पश्चात् श्री माँ से उसने कहा–''**समाधि मन्दिर में मुझे स्वामी जी का दर्शन हुआ। स्वामी जी ने मुझे एक मंत्र जप करने का निर्देश**

दिया।" श्री माँ सब कुछ सुनकर बोली–"**उन्होंने तुझे दीक्षा प्रदान की है। तू इसी मंत्र का जप कर, कहीं और दीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं है।** "

आश्रम से रघुनाथपुर आकर, दुर्गाबाई ने पूरी घटना हमें बतलाई। हमने देखा कि दुर्गाबाई के कुलगुरू ने जो मंत्र दिया था, गोसाँई जी एवं श्री गुरूदेव ने भी उसे वही मंत्र श्वास-प्रश्वास में जप करने के लिए कहा है।

वास्तव में, मंत्र तो ग्रन्थों में सभी मिलते हैं, परन्तु जब सद्‌गुरू इस मंत्र की दीक्षा देते हैं तब उसमें शक्ति संचार कर देते हैं। साधारण गुरू में यह क्षमता नहीं रहती। इसी कारण गोसाँई जी ने कहा है–"**योग शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी सिद्ध योगी से दीक्षा लेना आवश्यक है। लेकिन जिन योगियों का सिद्ध योगियों के साथ सदैव योग रहता हैं तथा उन्हें यदि वे महात्मा, दूसरे के भीतर शक्ति संचार पूर्वक दीक्षा देने की क्षमता प्रदान कर, दीक्षा देने का आदेश प्रदान करें, तब एक ही फल प्राप्त किया जा सकता है। अन्यथा जहाँ-तहाँ दीक्षा लेना कभी उचित नहीं है।'**

"**जो स्वयं अन्धा है, वह दूसरों को क्या पथ दिखलाएगा? जो सौ रूपयों का मालिक है, उसके दान-क्षेत्र खोलने से कैसे काम चलेगा? जिनकी शक्ति उस अनन्त शक्तिमान परमेश्वर से युक्त है, केवल उसी ने अनन्त स्त्रोत प्राप्त किया है। इसके सिवाय अन्य किसी को 'योग दीक्षा' देने का अधिकार नही है। इस प्रकार निम्न अवस्था के लोगों से दीक्षा लेने से हमारे देश में 'गुरूवाद' के नाम पर अत्याचार और घृणित पाशविक कार्य बढ़ गया है।**" (श्रीश्री विजयकृष्ण कथामृत से, पृ. ८४)

इस घटना के बाद से दुर्गाबाई के शरीर में विभिन्न प्रकार के सात्विक विकार प्रारम्भ हो गए। साधारण लोग, समझ न पाने से, विभिन्न प्रकार का प्रश्न–आलोचनादि किया करते थे। दुर्गाबाई ने हमसे एक दिन कहा–"इस तरह किसी भी समय शरीर में कम्पन आदि होने से असुविधा होती है। मुझे क्या करना चाहिए?" हमने कहा–श्री माँ के पास जाकर तुम इस प्रकार से प्रार्थना करना कि मेरे शरीर के बाहरी विकार बन्द हो जाए एवं भीतर नाम एवं दर्शन आदि होता रहे । हमारे निर्देशानुसार उसने श्री माँ के निकट उपरोक्त प्रार्थना की। श्री माँ ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा–"ठीक है, आज से ऐसा ही होगा।" इसके बाद से दुर्गाबाई के शरीर में किसी प्रकार का कम्पन-विकार आदि नहीं हुआ।

श्री माँ की आध्यात्मिक शक्ति एक और घटना में दिखलाई पडती है–

दुर्गाबाई की सात्विक भावना को देखकर हमने उसे श्री माँ के निकट, श्री गुरूदेव का प्रत्यक्ष दर्शन करवाने के लिए, प्रार्थना करने को कहा। दुर्गाबाई प्राय: आश्रम जाकर श्री माँ से यह प्रार्थना करती थी। शिवरात्रि के पहले दुर्गाबाई श्री माँ के पास, गुरूदेव का प्रत्यक्ष दर्शन करवाने के लिए व्याकुल भाव से रोने लगी। अन्त में श्री माँ उसकी व्याकुलता देखकर सम्मति प्रदान कर, दरवाजा बन्द करने के लिए

कहा। श्री माँ स्वयं एक आसन पर बैठ गई एवं दुर्गाबाई को अपने पीछे एक आसन पर बैठने के लिए कहा। सामने दिवाल पर गुरूदेव का एक चित्र टंगा हुआ था। श्री मां ने दुर्गाबाई से कहा–''सामने जो चित्र है उसकी तरफ देखते हुए नाम-जप करो। तुम्हें उनका दर्शन मिलेगा परन्तु उनकी वाणी सुनाई नहीं पड़ेगी । तुम उन्हें स्पर्श करने का प्रयास या किसी प्रकार की आवाज मत करना।'' ऐसा कहकर श्री माँ ने दुर्गाबाई के सिर पर थोड़ी देर हाथ रखा। उनके हाथ के स्पर्श से दुर्गाबाई का बाह्यज्ञान लुप्त सा हो गया एवं मन्त्र-जप तीव्रता से अपने आप होने लगा। थोड़ी देर बाद दुर्गाबाई को लगा कि सामने श्री गुरूदेव बैठे हुए हैं। सामने चित्र के स्थान पर गुरूदेव की सहास्य उज्ज्वल मूर्ति उन्हें दिखलाई पड़ी। इस तरह कितना समय बीत गया इसका दुर्गाबाई को बोध न रहा। जब बाह्यज्ञान हुआ तब सब अदृश्य हो गया था। श्री माँ ने इस दर्शन के सम्बन्ध में किसी से चर्चा करने के लिए निषेध किया । केवल हम लोगों से कहने की अनुमति, श्री माँ ने दुर्गाबाई की इच्छा से, प्रदान की ।

(५) स्वामी जी ने 'मेरी अन्तिम इच्छा' में लिखा है–**''मेरी समाधि में एकमात्र मेरे जन्मतिथि में शिष्य एवं भक्तगण गुरू पूजा कर सकेंगे। उस दिन मेरा आविर्भाव, साधनशील व्यक्ति लोग अनुभव करेंगे।''**

नीलिमा देवी ने जहरगढ़ में जब से नित्य भोग लगाना प्रारम्भ की तब से उन्हें अच्छे अध्यात्मिक अनुभव तथा दर्शनादि होना प्रारम्भ हो गए। श्री माँ के पास वह प्रायः जाया करती थी एवं उनके निर्देशानुसार चलने का प्रयास करती थीं। एक बार शिवरात्रि के कुछ दिन पहले हमलोग नीलिमा देवी से, गुरूदेव की उक्त 'मेरी अन्तिम इच्छा' लेख का उल्लेख करते हुए कहा कि तुम श्री माँ से प्रार्थना करो, उनकी कृपा से शिवरात्रि के समय कुछ न कुछ अनुभव अवश्य होगा। शिवरात्रि के दिन नीलिमा देवी आश्रम गई एवं श्री माँ से बारम्बार श्री गुरूदेव का दर्शन कराने के लिए प्रार्थना करने लगी। श्री माँ ने टालने का बहुत प्रयास किया लेकिन नीलिमा देवी व्याकुल भाव से लगातार प्रार्थना करती रहो । अतः श्री माँ ने उसे गुरूदेव के समाधि मन्दिर में जाकर बैठने का निर्देश दिया।

रात्रि का समय था। लोग समाधि मन्दिर में दर्शनादि के लिए उस समय भी आ रहे थे। समाधि मन्दिर में स्वामी जी का एक विशाल तैलचित्र रखा था। लोगों के आने-जाने के कारण, नीलिमा देवी गुरूदेव के इस विशाल चित्र के पीछे बैठकर नाम-जप करने लगी। नीलिमा देवी ने अनुभव किया कि उनके श्वास-प्रश्वास में नाम-जप सुस्पष्ट रूप से स्वतः चल रहा है एवं उनका शरीर कमशः अवश अर्थात बाह्यज्ञान से शून्य होता जा रहा है। मन्दिर के पूजारी ने वहां आकर भोग निवेदन किया। उसके पश्चात् शयन देकर बत्ती बन्द किया और समाधि मन्दिर का दरवाजा बाहर से बन्द कर दिया। नीलिमा देवी वहां बैठी हैं, इसे पुजारी ने देखा नही। नीलमा देवी को उस

समय थोड़ा बाह्यज्ञान था, परन्तु शरीर जड़ सा हो गया था। उनका नाम-जप चलता रहा। कितना समय बीत गया इसका उन्हें ज्ञान नही रहा। वह चित्र के पीछे की तरफ बैठी थी, अचानक उन्हे ऐसा लगा कि वहां चित्र नही है, उस स्थान पर श्री गुरूदेव ध्यानस्थ होकर बैठे हैं। इसे देखकर नीलिमा देवी का बाह्यज्ञान पूर्णतः लुप्त हो गया एवं श्री गुरूदेव के उज्वल ज्योतिर्मय रूप का वह दर्शन करती रही।

सुबह, यथा समय पुजारी ने समाधि मन्दिर का दरवाजा खोलकर सफाई करने लगा तब नीलिमा देवी को होश आया। उसने चित्र के सामने आकर समाधि वेदी को प्रणाम किया। पुजारी ने उन्हे देखकर कहा कि 'आज आप तो बहुत सुबह आ गइ।' नीलिमा देवी कुछ जवाब न देकर, धीरे-धीरे श्री माँ के पास पहुँची और श्री माँ को इस दर्शन के सम्बन्ध में बतलाई। फिर श्री माँ का आशीर्वाद लेकर जहरगढ़ लौट आईं एवं घटना का पूरा विवरण हमें सुनाया।

उपरोक्त घटना का उल्लेख इसलिए किया गया है कि साधारणतः घर की वृद्धा अपने परिवार वर्ग के लोगों एवं नाती-पोते आदि को लेकर जिस तरह मग्न रहती हैं, श्री माँ को भी इस तरह देखा जाता था। परन्तु जिन्होंने उनसे आध्यात्मिक प्रश्नादि किये हैं अथवा उनकी कृपा प्राप्त की है, वे उनकी उच्च आध्यात्मिक अवस्था को देखकर चकित् रह गए हैं। श्री गुरूदेव के महासमाधि लेने के पश्चात् असंख्य लोगों ने श्री माँ की कृपा प्राप्त कर अपना जीवन धन्य किया है।

श्री माँ का शरीर कमशः अस्वस्थ होता जा रहा था। इस अवस्था में भी वे कोलकाता एवं रघुनाथपुर मे कई बार आई थो । रघुनाथपुर में स्थापित 'श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ' में श्री माँ अन्तिम बार नवम्बर, १९९६ ई. में. आईं थी। इस वर्ष श्री माँ का जन्मउत्सव–रास पूर्णिमा (कार्तिक पूर्णिमा) दो दिन तक था। प्रथम दिन यह उत्सव रघुनाथपुर में आनन्दपूर्वक मनाया गया एवं दूसरे दिन का उत्सव रामचन्द्रपुर आश्रम में मनाया गया।

सितम्बर, १९९७ ई. में स्वास्थ्य परीक्षण के लिए श्री माँ को आसनसोल लाया गया था। फिर वहां से २५ किलोमीटर दूर हिन्दुस्थान केबल्स (रूपनारायणपुर) में नवनिर्मित श्रीश्री 'विजयकृष्ण निकेतन' में उन्हें लाया गया। यहां पर वे ९ सितम्बर से लगभग दस-ग्यारह दिन तक रहीं। उस समय काफी लोगो की दीक्षा भी श्री माँ से हुई। यहां से आसनसोल होते हुए वे आश्रम लौट गईं।

इसके पश्चात् श्री माँ का स्वास्थ्य और भी खराब होता गया एवं ७ मई, १९९८ ई., बृहस्पतिवार को उन्होंने महाप्रयाण किया। श्री माँ के पवित्र अस्थि की समाधि रामचन्द्रपुर आश्रम में, 'श्री श्री विजयकृष्ण भक्त संघ'–रघुनाथपुर में तथा श्री वृन्दावन में '६४ महन्त की समाधि स्थान' (ज्ञान गुदड़ी) में बनाई गई।

श्री माँ के उपदेश :–

(क) विभिन्न समय में श्री माँ से हम लोगों ने जो प्रश्न किया था, उसमें से कुछ प्रश्नोतर यहां दिये जा रहे हैं–

(१) प्रश्नः तुम्हें क्या हमारे गुरूदेव (स्वामी जी) का दर्शन सर्वदा मिलता है?

श्री माँ – हाँ, जब भी कोई विशेष बात जानने की आवश्यकता होती है तभी वे दर्शन देते हैं। ज्यादा देर रहने पर उन्हें कष्ट होता है।

(२) प्रश्नः भगवत् दर्शन कब होता है?

श्री माँ – जब सब समय उनका स्मरण-मनन हो, उनके दर्शन के लिए मन अत्यन्त व्याकुल हो जाए, अन्य किसी बाहरी विषयों के प्रति जब मन नहीं जाता है, तभी भगवत् दर्शन होता है।

(३) प्रश्नः आसन में स्थिर रूप से ज्यादा देर तक बैठा नहीं जाता, इसके लिए क्या करना चाहिए?

श्री माँ – जितनी देर संभव हो बैठना, इसके बाद थोड़ा आराम कर, पुनः बैठ जाना।

(४) प्रश्नः प्राणायाम करने में असुविधा होती है, क्या करें?

श्री माँ – नाम-जप करते रहो–उसी से सब होगा ।

(५) प्रश्नः रात्रि का भोजन सूर्यास्त के पहले करना, क्या अच्छा है?

श्री माँ – हाँ, सूर्यास्त के पहले रात्रि का भोजन कर लेना अच्छा है। जिन्हें पेट में वायु विकार है या भोजन पचाने में असुविधा होती है, उन्हें सूर्यास्त के पूर्व भोजन करना चाहिए। रात्रि के समय कुछ हल्का पेय पदार्थ ले सकते हो। सूर्य के साथ इन सबका, एक प्रकार का सम्बन्ध है।

(६) प्रश्नः जिन्होंने सिद्ध अवस्था प्राप्त कर ली है, वे फिर से जन्म क्यों लेते है?

श्री माँ – शिष्यों के उद्धार के लिए वे आते हैं।

(७) प्रश्नः ऐसे महात्मा, शुरू में जितने दिनों तक स्वयं को नहीं जान पाते है, उतने दिनों तक क्या उन्हें कष्ट पाना होता है?

श्री माँ – नहीं, उन्हें सब मालूम रहता है। वे किसलिए आए हैं, उन्हें कौन सा कार्य करना है–सब मालूम रहता है।

(८) प्रश्नः यह तो अत्यन्त आश्चर्यजनक बात है। वे इस तरह अपने को छिपाकर रखते हैं, साधारण मनुष्य की तरह व्यवहार एवं सब कार्य करते हैं। साधारण लोग उन्हें न पहचानकर उनकी निन्दा आदि करते है, तो क्या यह उनका अपराध होता है?

श्री माँ (सहास्य) – वे किसी प्रकार का अपराध नहीं लेते।

(९) प्रश्नः गोसाँई जी जब आए थे तब कितने लोगों ने उन्हे अपमानित भी किया। इससें क्या अपराध नही हुआ?

श्री माँ – नहीं, वे किसी प्रकार का अपराध ग्रहण नहो करते। वे जानते हैं कि लोग उन्हें न पहचान सकने के कारण इस तरह का वर्ताव कर रहे हैं।

(१०) प्रश्नः गोसाँई जी ने अपने जीवन की सभी घटनाएं क्या जानबूझकर किया था?

श्री माँ – हाँ, वे सब जानते थे।

(११) प्रश्नः उनकी जीवनी में है कि काम की उत्तेजना से उन्होंने, आत्मग्लानि का अनुभव कर, आत्महत्या करने का प्रयास किया था। तो, यह सब क्या उन्होंने जानते हुए किया था?

श्री माँ – हा, वे सब जानते थे। जानवूझकर उन्होंने इस प्रकार की लोला की है।

(१२) प्रश्नः मुक्त आत्माएं जो जन्म ग्रहण करते हैं, सभी को क्या पूर्वजन्म की सब स्मृति रहती है?

श्री माँ – सब समय, सब कुछ क्या स्मरण रहता है? कुछ-कुछ रहता है।

(१३) प्रश्नः एक आसन में ज्यादा देर तक नही बैठ सकन के कारण मैं पहले एक घण्टा सिद्धासन में बैठकर, फिर सुखासन मे बैठता हूँ। क्या यह उचित हो रहा है?

श्री माँ – गुरूदेव ने तुम्हें क्या कहा था?

मैं – एक ही प्रकार के आसन मे नित्य बैठना।

श्री माँ – हाँ, इस साधना में एक ही प्रकार के आसन में सर्वदा वैठना चाहिए। गुरूदेव किसी से कुछ कहे तो अलग बात है। थोड़ा-थोड़ा प्राणायाम नित्य कर सकते हो–अभ्यास रहेगा तो अच्छा होगा। संध्या के पूर्व रात्रि का भोजन कर लेना–इससे शरीर हल्का रहता है। आलस्य कम होता है। एकदम खाली पेट या भरे पेट में प्राणायाम नहीं करना चाहिए।

(१४) प्रश्नः नाम उचित रूप से नहीं होता–विभिन्न चिन्ताएं आती रहती है।

श्री माँ – नाम के पास ही प्रार्थना करना–उससे सब ठीक हो जाएगा।

संन्यास के पश्चात् गुरूदेव ने बारह वर्ष तक कुछ नियमों का विशेष रूप से पालन करने का निर्देश दिया था। इस सम्बन्ध में संन्यासी एवं ब्रह्मचारी साधकों की साधना में सहायक कुछ नियमो को श्री माँ ने बतलाया। जो इस प्रकार हैं–

(१) दृष्टि स्थिर होने से तृतीय नेत्र खुल जाती है एवं दर्शनादि शुरू होता है। इस कारण दृष्टि संयम के लिए पैर की अंगुलियों की तरफ दृष्टि रखना चाहिए।

(२) किसी क हाथ का बना हुआ भोजन नही खाना अच्छा है। स्वपाक आहार ग्रहण करना अच्छा है।

(३) दिन के समय ग्यारह-बारह बजे के भीतर एक बार भोजन और रात्रि के समय दो-एक रोटी अथवा दुध ले सकते हो। भोजन जितना कम लोगे–देखोगे शरीर स्वस्थ रहेगा।

(४) सुबह दूध, चाय अथवा शर्वत ले सकते हो।

(५) किसी गृहस्थ के घर रात्रि में न रहना ही उचित है।

(६) किसी उत्सव आदि में, जहां स्वपाक भोजन संभव न हो, वहां निवेदित प्रसाद ले सकते हो।

(७) भोजन करते समय यथा संभव मौन रहकर नाम-जप करना चाहिए। अर्थात् नाम-जप करते हुए भोजन करना चाहिए।

(८) यथा सम्भव वातें कम करना चाहिए एवं नियमित रूप से किसी की सेवा ग्रहण करना नहीं चाहिए।

(९) अपना कार्य स्वयं करना अच्छा है।

(१०) कोई अपने घर आग़हपूर्वक ले जाए तो वहां थोड़ी देर रूकना–ज्यादा देर न रहना ही अच्छा है।

(११) भिक्षा में जो भी मिले अपनी आवश्यकतानुसार रखकर, बाकी गरीब दीन-दु:खियों को वांट देना चाहिए।

(१२) गृहस्थ लोगों के साथ ज्यादा मेल-मिलाप न रखना ही अच्छा है।

(ख) २९ अक्टूबर, १९७८ ई. में श्री माँ रघुनाथपुर आईं थी। उस समय हम लोगो ने उनसे कुछ प्रश्न किये एवं उनके उत्तर को टेप में रिकार्ड कर लिया गया। प्रश्नोत्तर बंगला भाषा में हुए थे। उनमे से कुछ प्रश्नोत्तर का उल्लेख यहां किया जा रहा है–

(१) प्रश्न : नाम और दीक्षा में क्या अन्तर है?

श्री माँ – 'नाम' में, उनका रास्ता साफ करने के लिए अर्थात साधना पथ की असुविधाओं को दूर करने के लिए कोई एक मन्त्र दिया जाता है। इससे उसका मन अच्छा होता है अर्थात लक्ष्य स्थिर होगा, रास्ता साफ होगा। दीक्षा लेने पर, विशेष कुछ नियमों का पालन करना आवश्यक रहता है। सभी के लिए, इन नियमों का पालन संभव नहीं है लेकिन वे 'नाम' करना चाहते है। इसी कारण उन्हें कोई एक नाम दिया जाता है। इस 'नाम' का जप करते-करते उनके भीतर का रास्ता स्वच्छ होता है। फिर समय होने पर उनकी दीक्षा होती है।

(२) प्रश्न: श्री गुरूदेव जो शक्ति संचार-पूर्वक दीक्षा देते थे एवं तुम जो दीक्षा देते हो, दोनों अवश्य एक ही होगा, क्योंकि तुमने एवं श्री गुरूदेव ने भी कहा है–"हमने शिष्यों का भार लिया है।"

श्री माँ – दोनों एक ही है। परन्तु अनेक लोगों में समान रूप से 'विश्वास' नहीं है। स्त्री लोगों का दीक्षा देना एवं पुरूष लोगों का दीक्षा देना–इसे लेकर अनेक लोगों के मन में दुविधा आती है–संशय रहता है। हमारे कुछ गुरूभाईयों के भीतर भी, जब माता सरोजबाला देवी ने दीक्षा देना प्रारम्भ किया था, संशय हुआ–विश्वास

नहीं किया। अनेक जगह देखा जाता है कि माताओं के निकट दीक्षा लेना अथवा मातृ जाति भी शक्ति से युक्त हो सकती है, इसे सब लोग विश्वास नहीं कर पाते हैं।

मनुष्य का मन अत्यन्त चंचल है। व्यक्तिगत रूप से, अपने मन के भीतर से वे इस पर अविश्वास करते हैं ऐसा नहीं है। वे, लोगों की बातों पर ज्यादा ध्यान देते हैं, उसको मानते हैं—इसी कारण मन में संशय आता है। यही अन्तर है इसके सिवाय कुछ भी अन्तर नहीं है।

(३) प्रश्न : तुम जिन्हें दीक्षा दे रही हो उसे फिर अन्य जगह दीक्षा लेने की आवश्यकता तो नही है?

श्री माँ – नहीं! कई लोगों ने यह प्रश्न किया है कि हमें और दीक्षा लेने की आवश्यकता है या नही? मेरा कहना है कि मैं जिस तरह दीक्षा दे रही हूँ—अनेक लोग भी इस तरह दीक्षा देते हैं एवं शिष्य तालिका बनाते हैं। मेरा अपना मत है कि मैंने जो दिया है उसमें यदि वे सन्तुष्ट न हों अथवा मन में शान्ति न पाएं तथा उनके मन में ऐसी भावना आए कि अन्य जगह दीक्षा लेने से मुझे अधिक शान्ति की प्राप्ति होगी, तो वे अन्य जगह दीक्षा ले सकते हैं। इसमें मुझे कोई आपत्ति नही है। परन्तु अनेक लोगों के मन में ऐसी भी भावना है कि मुझे और कहीं दीक्षा लेने की आवश्यकता नही है—हम इसी दीक्षा को लेकर सन्तुष्ट हैं ।

अन्य स्थान में दीक्षा लेने की बात कर रहे हो? कई लोग तो तीन जगह-चार जगह, न जाने कितने स्थानों में गुरू बनाते जा रहे हैं। उनके मन में तृप्ति नही है। वे सन्तुष्ट नहीं हो पा रहे हैं। मनुष्य के मन में विश्वास-भक्ति ठीक रहने पर कोई भी एक वस्तु से ही भगवान् की प्राप्ति हो सकती है। कई लोगों को दीक्षा न लेने पर भी कुछ-कुछ अनुभूति एवं दर्शन आदि होते ह। परन्तु गुरू की आवश्यकता तो अवश्य है।

(४) प्रश्न : यदि कोई इस प्रकार तुम्हें त्यागकर चला जाए तब तुम तो उन्हें त्याग नहीं करोगे?

श्री माँ – नहीं, वैसा मैं क्यों करूँगी? मेरे पास से जिन लोगों ने दीक्षा प्राप्त की है उनके अलावा ऐसे भी अनेक लोग मुझे प्यार करते हैं एवं माँ कहकर मेरे पास सर्वदा आते रहते हैं। मैंने जिन्हें दीक्षा दी है उन्हें जिस तरह स्नेह करती हूँ—हृदय से प्यार करती हूँ, जो लोग दीक्षा नहीं लिए हैं—मुझे माँ कहकर मेरे पास आते हैं उन्हें भी मैं उसी तरह स्नेह करती हूँ—गोद में पुत्र या कन्या की तरह उठा लेती हूँ।

(५) प्रश्न : माँ! हम दूर रहते हुए जब तुम्हें प्रणाम करते है या प्रार्थना करते हैं तब तुम क्या उसे समझ पाती हो? क्या, प्रणाम ग्रहण करती हो?

श्री माँ – ग्रहण अवश्य करती हूँ। सब समय इसका अनुभव नहीं होता। परन्तु अनेक समय इसका अनुभव होता है कि वे चिन्ता कर रहे हैं। ऐसे प्रत्यक्ष रूप से कुछ कहना या करना नहीं हो पाता। सभी के लिए जिस तरह गुरूदेव के निकट नित्य

प्रार्थना करती हूँ–उसी तरह उनका मंगल हो–इसके लिए भी अनेक समय प्रार्थना करती हूँ। कोई कहीं पर भी रहे–दिन या रात में एक बार उनके लिए प्रार्थना सर्वदा करती हूँ।

(६) प्रश्न : विभिन्न स्थानों में जो संकीर्तन आदि होता है, वहाँ तुम लोग उपस्थित हो, इसे हम किस तरह समझ पाएंगे? हम तो साधारण व्यक्ति हैं–हम इसका कैसे अनुभव करेंगे?

श्री माँ – इसे समझ पाओगे! जहां कीर्तन हो रहा है वहां सब कार्य अच्छी तरह हो रहा है–ऐसा अनुभव करोगे! जिस प्रकार कि भोग निवेदन करने पर भोग ग्रहण का छाप पड़ने पर ही 'वे' भोग ग्रहण किये हैं अन्यथा नहीं–ऐसा नहीं है! भोग बनाते समय शुद्ध भावना से रसोई बनाने पर– रसोई बनाने के समय से भोग निवेदन तक, एक विशेप सुगन्ध निकलती है। तुम चाहे एक बार ही भोग निवेदन करो अथवा केवल अन्न ही निवेदन करो–जो कुछ भी दो, यदि वह अपने हृदय से निवेदित हुआ हो तो भोग ग्रहण के चिन्ह पड़े या न पड़े–रसोई घर से भोगगृह तक एक विशेष सुगन्ध अवश्य मिलेगी। मैंने देखा है कि ऐसा अनेक स्थानों में होता है।

उसी तरह जहां कीर्तन हो रहा है, वहां अचानक मन में स्थिरता या एकाग्रता आ जाती है–भोजन की सामग्री आदि जो कुछ आया हो–देखोगे, थोड़े से सामान से ही पूरा कार्य सम्पूर्ण हो गया–सब कार्य अच्छी तरह हो गया। इस तरह होने पर समझ में आता है कि यहां उनकी उपस्थिति हुई है या उन्होंने कृपा की है।

(७) प्रश्न : यहां प्रायः अष्ट-प्रहर संकीर्तन आदि होते रहते हैं। इसका पूरा लाभ लोग किस तरह पा सकेंगे? क्या सब समय उन्हें कीर्तन में बैठे रहना होगा–रात्रि जागरण करना होगा? किस प्रकार चलें कि पूरा लाभ हो?

श्री माँ – वैसा नहीं। जितना भी करो अच्छी तरह करना चाहिए। जो सुन रहे हैं उन्हें कितनी देर कीर्तन में बैठना होगा, इसका कोई निश्चित नियम नहीं है। जिसकी जितनी देर इच्छा हो–रहेंगे। केवल नाम-जंप करते हुए कितने लोग सारी रात बैठे रहते हैं। परन्तु नाम-संकीर्तन होने से कई लोग भगवान के 'नाम' को सुन सकते हैं। इस प्रकार 'नाम' को सुनकर उनका मन आकर्षित होता है–'नाम' का प्रचार भी होता है।

(८) प्रश्न : दरवेश जी महाराज के अनेक शिष्यों से सुना है कि –"कोई एक उत्सव में योगदान करने पर अथवा वहां सेवाकार्य आदि करने से उसका एक वर्ष की साधना का काम हो जाता है।" क्या दरवेश जी ने ऐसा कहा है?

श्री माँ – हाँ! क्या होता है, साधन-भजन चाहे तुम कुछ भी करो–उत्सव में, उसके सभी कार्यकमों में यदि योगदान कर सको तो सभी के साथ सद्-आलोचना होती है, उत्सव देखना भी होता है। श्री गुरूदेव ने ऐसा कहा है कि कोई भी संकीर्तन

में अथवा प्रत्येक उत्सव में यदि सब लोग योगदान कर सकें तो उनका, एक वर्ष के साधन-भजन से जो होगा, वह हो जाएगा। इससे मन में एक विशेष तृप्ति या शान्ति प्राप्त होती है।

(९) प्रश्नः कई लोग कहते है, जिन्हें अच्छी अनुभूति या दर्शन आदि होते हैं, वे साधन की उच्च अवस्था में हैं। कोई कहता है जिसका मन सर्वदा साम्यावस्था मे है, वे साधन की उच्च अवस्था में हैं। कोई कहता है जिन्हें सर्वदा 'नाम' स्मरण रहता है, वह उच्च अवस्था में है। हम किस तरह समझेंगे कि हम साधना मे अग्रसर हो रहे हैं अथवा नहीं? इसके क्या लक्षण है?

श्री माँ – साधन में अग्रसर होने का लक्षण स्वयं तुम्हें अनुभव होगा। सभी की एक प्रकार की भावना नहीं रहती। अनेक लोगों का, पूर्वजन्म के सुकृतिवश थोड़ी सी साधना से काम हो जाता है। कोई सारा जीवन प्रयास कर रहा है–उनके भीतर नाम अवश्य हो रहा है, परन्तु वे स्वयं इसे अनुभव नहीं कर पा रहे हैं। लेकिन मेरा कहना है कि चाहे कुछ भी हो, यह सब लेकर चिन्ता न करते हुए नाम-जप करते रहना चाहिए। गुरू ने जैसा कहा है वैसा करते रहें–यही उचित है।

श्री गुरू करा रहे हैं–इस तरह की भावना रखकर नाम करते रहना चाहिए। सामने जो कार्य आए, उसे करते चलो। वास्तव में सब कुछ 'वे' ही करा रहे हैं–इसे कमशः धक्का खाते हुए तुम लोग स्वयं अनुभव करोगे। देखोगे कि किसी कार्य को करते हुए प्राथमिक अवस्था में शायद समझ न सको, परन्तु कार्य को करते हुए क्मशः इसे अवश्य अनुभव करोगे। तुमने सोचा कि अमुक कार्य करेंगे या अमुक स्थान पर जाएंगे–देखोगे, ठीक इस प्रकार न होकर अन्य तरह का हो गया।

जिस तरह रोग होने पर डाक्टर को दिखाना पड़ता है, दवाई लेनी पड़ती है। परन्तु 'उनकी' इच्छा के बिना रोग ठीक नहीं होता, लेकिन दवाई लेनी पड़ती है–सबकुछ करना पड़ता है। उस प्रकार की निर्भरता किसी को नहीं हुई है। निर्भरता यदि रहे, तो यह मैंने अनेक समय देखा है–मेरे मन में आया कि अमुक वस्तु मिल जाती तो अच्छा रहता या अमुक पकवान मिलता तो भोजन करती– उसी समय वह वस्तु अपने आप (स्वतः) आ गई। चाहे मन की तीव्र लालसा भी न रहे, वस्तु की प्राप्ति के लिए मन में मात्र विचार हुआ–वह उसी समय पूर्ण हो गया। 'उनके' ऊपर निर्भरता सहज नहीं है।

इसके अलावा अपने हाथों से बनाकर भोजन करना एवं दूसरे के हाथों से बना हुआ भोजन करना, दोनों में अन्तर है। सभी का मनोभाव एक सा नहीं है। रसोई बनाने पर, भोजन के भीतर से रसोइये का भाव, खाने वालों पर प्रवेश करता है। परन्तु लोगों के अनुरोध को सब समय टाला नहीं जा सकता। इसलिए नाम-जप करते हुए एवं निवेदन करने के पश्चात् भोजन करना चाहिए।

(ग) विभिन्न समय में विभिन्न लोगों के प्रश्नों का उत्तर माँ ने इस प्रकार दिया–

(१) प्रश्नः तुमने, आसन में बैठकर आज्ञाचक्र में मन को रखने का निर्देश दिया है। उस समय नाम की ओर लक्ष्य रखें या गुरू के रूप का ध्यान करें?

श्री माँ – गुरू प्रदत्त 'नाम' का जप करते-करते उसका रूप प्रकट होगा।

प्रश्नकर्ता – किसका रूप आएगा?

श्री माँ – गुरू का दर्शन तो होगा ही। अन्य रूप यथा काली-दुर्गा आदि के बाद अन्त में गुरू का रूप आएगा। गुरू के मध्य सब का दर्शन होगा।

(२) प्रश्न : हमारे कर्म किस तरह समाप्त होंगे?

श्री माँ – कर्म करते हुए कर्म शेष किया जाता है। केवल बैठे रहने से मन के भीतर अनेक प्रकार की चिन्ता आएगी। इसकी अपेक्षा कर्म करो एवं नाम करो। संसार के भीतर भगवान ने ही रखा है। पुत्र-कन्या आदि सभी 'उनके' हैं। मैं सेवा कर रहा हूँ–इस प्रकार चिन्ता करना।

(३) प्रश्न : नाम में रूचि क्या गुरू कृपा से होती है?

श्री माँ – स्वयं को प्रयास करना पड़ता है। गुरू कृपा तो है ही। कर्म करते-करते सब ठीक हो जाता है। तुम कुछ भी करने जाओ, उसमें पहले बाधा आएगी। फिर भी अपने मन में जोर लगाकर नाम करना होगा–'उनके' ऊपर विश्वास रखकर नाम करते रहना पड़ेगा। व्याकुलता भी लाना होगा।

जिस प्रकार संसार के अन्य सब काम अनिवार्य रूप से करते हो उसी प्रकार दोनों समय (सुबह-शाम) आसन में बैठना पड़ेगा। कुछ काम बाकी है, इस कारण नहीं बैठ पाया–इस प्रकार से साधना नहीं होती। सभी कार्य जब हो रहा है तब यह भी क्यों नहीं होगा? ऐसा हो सकता है कि अधिक समय तक कार्यवश नहीं बैठ पाए। दो मिनट या चार मिनट भी नियम से बैठना चाहिए। आसन का उपवास न हो अर्थात नित्य आसन पर कुछ समय बैठना आवश्यक है।

(४) : कौन से ग्रन्थ का पाठ नित्य करना चाहिए?

श्री माँ – गीता पाठ नित्य करना, जितना हो सके अच्छा होगा। श्रीश्री सद्‌गुरू संग (ग्रन्थ), भागवत इन सबको पढ़ना लाभदायक है, परन्तु गृहस्थ व्यक्ति को सांसारिक कार्य, नौकरी आदि से समय ही नही मिल पाता।

(५) प्रश्न : तुम जब दीक्षा देती हो, तब क्या गोसाँई जी आते है?

श्री माँ – वे तो आते ही हैं। यहां तक कि गोसाँई जी मुझे दीक्षा का मंत्र बता देते हैं–उसी मंत्र को मैं कहती हूँ।

(६) प्रश्न : अभी हमारे मन में कोई प्रश्न नहीं है। परन्तु तुम्हारे चले जाने के पश्चात् यदि कोई प्रश्न पूछना हो तो उत्तर कैसे मिलेगा?

श्री माँ – आसन में बैठकर प्रश्न करने से उत्तर मिल जाएगा।

प्रश्नकर्त्ता – हमारा मन चंचल है। आसन में ज्यादा देर नहीं बैठ सकते। क्या करें?

श्री माँ – थोड़ा यहां-वहां घुम-फिरकर, पुनः आसन पर बैठना। कीर्तन-पाठ यह सब करना। कुछ देर तक 'नाम' करने के पश्चात् प्रश्न करने पर उत्तर मिलेगा।

(७) प्रश्न : कीर्तन में दीक्षित एवं अदीक्षित सभी प्रकार के लोग आते हैं। गोसाँई जी क्या सभी पर कृपा करते हैं?

श्री माँ – हाँ, सभी पर वे कृपा करते हैं।

(८) प्रश्न : कोई यदि मन में आघात देते हुए कटु वचन कहे, तब क्या करना चाहिए?

श्री माँ – कोई जवाव न देना सवसे अच्छा है। अपने को ही दोषी मान लेना। ऐसा सोचना कि उनके भीतर से 'वे' ही कह रहे हैं।

(९) प्रश्न : कोई व्यक्ति कुछ निषिद्ध वस्तुओं को नहीं खाता है। यदि उसके अनजाने में कोई उसे खिला दे, तो किसका अपराध होगा?

श्री माँ – जो जिस वस्तु को नहीं खाता है, उसे वह वस्तु नहीं देना चाहिए। जो देता है, उसका ही अपराध होता है।

(१०) प्रश्न : नौकरी करना क्या कर्म है? जो रूपया मिलता है उसे किस तरह व्यय करना चाहिए?

श्री माँ – नौकरी करना कर्म तो है ही। भविष्य में अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए कुछ जमाकर रखना चाहिए। कुछ रूपयों से माता-पिता की सेवा करना चाहिए। कुछ दान करना आवश्यक है। अपात्र को दान देना व्यर्थ है। अपात्र का अर्थ है–जैसे मित्र आदि को देकर मौज करना। किसी के प्रतिदान की आशा से दान करना उचित नहो है–खुले मन से दान करना उचित है। जो कुछ दोगे उसका दुगुना वापस मिलेगा।

जो छात्र पुस्तकादि नही खरीद सकते, जो दरिद्र हैं, जो रोगग्रस्त हैं, या कई अस्पताल हैं– वहां दान दिया जा सकता है।

(११) प्रश्न : गुरू का संग कैसे प्राप्त होता है?

श्री माँ – गुरू के पास रहने से ही गुरू का संग नहीं होता। यहां से बहुत दूर रहकर भी गुरू का संग हो सकता है। मेरा एक शिष्य कोलकाता में है, उसके आँखा के अश्रु से यहां मेरे पैर भोज (गीला) जाते हैं।

(१२) प्रश्न : दुःख या कष्ट के समय भगवान का 'नाम' भूल जाते हैं–उस समय क्या करना चाहिए?

श्री माँ – मन से चिन्ता को हटाकर जबरदस्ती 'नाम' करना चाहिए। क्रमशः सब ठीक हो जाता है।

(१३) प्रश्न : दान किस तरह करना चाहिए?

श्री माँ – किसी को हजार रूपये देकर यदि एक रूपया उसके पास से वापस पाने की आशा रखी जाए तो वैसा दान न देना ही अच्छा है। किसी को कुछ देने पर वापस पाने की या किसी प्रकार की आशा नहीं रखना चाहिए। दान सर्वदा निःस्वार्थ भावना से करना उचित है।

(१४) प्रश्न : निर्भरता कैसे होगी?

श्री माँ – सर्वदा दुःख और सुख दोनों को समान मानकर चलना होगा। दुःख मिलने पर भी सोचना पड़ेगा कि 'वे' ही दे रहे हैं। सुख मिलने पर भी सोचना होगा 'वे' ही दे रहे हैं। सभी 'वे' दे रहे हैं–'वे' कर रहे हैं। इस प्रकार प्रयास करते-करते समय पर सम्पूर्ण निर्भर हो जाता है।

तुम लोग सोचते हो कौन खिलाएगा–कौन देख-रेख करेगा। लेकिन जब देखोगे–धक्का खाते हुए, एक समय निर्भर हो गए हो, उस समय किसी तरह का फिर अभाव नहीं रहेगा।

निर्भर होकर रहने से, विश्वास रखने पर सब कुछ हो जाता है।

अत्यन्त आर्थिक कष्ट से प्रभावित एक स्त्री ने श्री माँ से पूछा–'इससे उद्धार पाने का क्या उपाय है?' ऐसा कहकर वह रोने लगी। श्री माँ ने उसे आश्वासन देते हुए कहा–

'देवी लक्ष्मी के नाम पर एक हण्डी रखना। नित्य दोपहर को भोजन बनाते समय जितना चावल आवश्यक हो उतना निकालने के पश्चात् उसमें से, एक मुट्ठी चावल, उस देवी की हण्डी में रखते जाना। मैं कह रही हूँ–देखना, तुम्हें किसी भी दिन भोजन का कष्ट नहीं होगा। लक्ष्मी की हण्डी के चावल को बाद में गरीबों को दान कर देना।'

अध्याय ३१ : उपदेश संग्रह एवं प्रश्नोत्तर

उपदेश :– कई स्थानों पर विभिन्न समय में स्वामी जी द्वारा प्रदत्त विविध उपदेशों का उल्लेख यहां किया जा रहा है–

(१) परलोक के सम्बन्ध में :

मनुष्य मरने के पश्चात् कहां जाता है, यह जानने की इच्छा सभी की रहती है। मनुष्य मृत्यु के समय जैसी चिन्ता करता है–मृत्यु के पश्चात् उसकी वैसी गति होती है। इस सम्बन्ध में सभी शास्त्रों का एक समान मत है। जो लोग सद्गुरू के आश्रित (दीक्षा प्राप्त) हैं, मृत्यु के समय सद्गुरू आकर उन्हें यथा स्थान ले जाते हैं। मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा को कुछ अवस्थाओ या श्रेणियों के भीतर से जाना पड़ता है। भू-लोक (पृथ्वी) के पश्चात् भुवर्लोक है– भूवर्लोक के दो स्तर हैं–प्रेत-लोक एवं पितृ-लोक। जो लोग अच्छा कर्म करते हैं एवं सद्गुरू के आश्रित हैं, वे प्रेत-लोक का अनुभव न करते हुए, पितृ-लोक पहुँचने पर उनकी निद्रा भंग होती है। पितृ-लोक से स्वःलोक में गति होती है।

परलोक, जीवात्मा का विश्राम स्थल है। जीवात्मा, परलोक में जाकर विश्राम चाहता है। परन्तु विश्राम उसे नहीं मिलता। इस संसार के संस्कार–उसकी कामना-वासना उसे स्थिर रहने नही देती। इस तरह की आकांक्षा एवं उसकी पूर्ति न होने का कष्ट–इसे नरक-यन्त्रणा कहा जाता है। सामने भोग की सब सामग्री है, परन्तु उसका भोग नहीं कर सकता है, क्योंकि उसका स्थूल देह नहीं है। उस समय वह स्थूल देह प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो जाता है। कुछ आत्माएं, किसी स्थूल देह में प्रवेशकर, अपनी वासना पूर्ण करने का प्रयास करती हैं। ऊर्ध्वलोकवासी आत्माएं, सर्वदा, इन सब दुःखित आत्माओं का भोग जिससे शीघ्र कट जाए, इसके लिए सहायता करते हैं। अधिकांशतः, जिस स्थान पर जन्म लेने से भोग शीघ्र समाप्त हो जाए। उसकी वे व्यवस्था करते हैं। अच्छी आत्माओं की, जिससे वे ऊर्ध्वलोक से और उच्चलोक में कमशः जा सके, इसके लिए वे सहायता करते हैं।

विभिन्न ऊर्ध्वलोकवासी आत्माएं, किस प्रकार विश्व का कल्याण हो, इसके लिए सर्वदा प्रयास करते रहते हैं। महान् आत्माएं बहुधा स्वःलोक से इस भू-लोक में जन्म ग्रहण करती हैं। सत्यलोकवासी महात्मा लोग भी कभी-कभी जीवात्माओं के कल्याण के लिए, इस पृथ्वी में जन्मग्रहण करते हैं। जन्म लेना या न लेना, यह उनके इच्छाधीन रहता है। कई आत्माएं, ब्रह्मलोक से पृथ्वी में मनुष्य शरीर धारण कर सभी को आनन्द का वितरण कर पुनः चली जाती हैं। हमलोग जो इस लोक में हैं एवं जो

परलोक प्राप्त कर चुके हैं तथा विभिन्न लोकों में जो अवस्थित हैं—सभी एक दूसरे के मित्र हैं। हम कोई छोटे या बड़े नही हैं। एक आत्मा का ही—विभिन्न प्रकाश। सभी एक दूसरे की आवश्यक सहायता विभिन्न प्रकार से कर रहे हैं। जो निन्दा कर रहे हैं—जो शत्रुता कर रहे हैं, वे भी सहायता कर रहे हैं। उनके इस तरह के कर्म द्वारा हमलोग सर्वदा उपकृत हो रहे हैं। हम लोगों की सहनशीलता बढ़ रही है। हम अपना आत्मविश्लेषण करते हुए, अपनी भूल-त्रुटियों को समझने का प्रयास कर रहे हैं। जो निन्दा कर रहे हैं, वे भी परममित्र हैं। मैं उन्हें बारम्बार प्रणाम करता हूँ। अच्छा समालोचक, हमारा परम बन्धु हैं। ('मन्दिर' १९ वर्ष से)

(२) **जीवात्मा एवं परमात्मा के सम्बन्ध में :**

(क) जीवात्मा, परमात्मा का प्रतिबिम्ब है। परमात्मा निर्गुण—उपाधि रहित हैं। गुण के मध्य आने पर वे कियाशील प्रतीत होते हैं। वास्तव में वे कियाशील नहीं हैं। जिस प्रकार घट में स्थित आकाश, उसी का आकार एवं संस्कार अर्थात गन्ध आदि से युक्त हो जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा, शरीर में आकर अपने संस्कारों से युक्त हो जाता है। घट के टूट जाने पर, आकाश जिस प्रकार संस्कार मुक्त होकर महाकाश में मिल जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा, देह रूपी घट के टूट जाने पर कमशः संस्कार मुक्त होने पर, परमात्मा में लीन हो जाता है। संस्कार कमशः क्षय होता है। आत्मा को आश्रय कर पंचभूत, शरीर-पिण्ड का गठन करता है।

जल, जिस पात्र में रखा जाए, उसी पात्र का रूप ग्रहण करता है। आत्मा भी जिस देह में प्रवेश करती है, उस देह का रूप ग्रहण कर लेती है। आकाश का रूप नहीं है परन्तु घनीभूत अवस्था में वह नीले रंग का दिखाई पड़ता है—आकाश में विभिन्न रंगो का खेल दिखलाई पड़ता है। परन्तु कितना भी ऊपर चले जाओ, कुछ भी नही दिखेगा। जल की घनीभूत अवस्था बर्फ है। उसका रूप है। परन्तु जल का रूप नहीं है। जल की गहराई बढ़ने पर उसका रूप दिखलाई पड़ता है।

सूर्य और सूर्य रश्मि की तरह, परमात्मा और आत्मा है। सूर्य रश्मि का एकत्रित रूप सूर्य है। सूर्य रश्मि, सूर्य में ही विलीन होती है। परमात्मा ही विभिन्न रूप में जीवात्मा है। सूर्य रश्मि ही विभिन्न वर्णों की सृष्टि करती है। जीवात्मा के विभिन्न रूपों के भीतर विभिन्न प्रकार के खेल, विभिन्न भावना एवं विभिन्न विचित्रता के स्रष्टा के रूप में—परमात्मा ही प्रतीत होता है। परमात्मा निष्क्रिय है। उसकी छाया, जीवात्मा में गुणों के संयोग से कियाशील है।

इस आत्मा को जानना होगा—तब परमात्मा को जाना जाएगा। तुम देह को 'मैं' समझते हो—इस कारण दु:ख पाते हो। यह देह पंचभूतों का समष्टि है। यह पंचभूतों में लय होगा। यह जो सुन्दर रूप-शरीर, सुन्दर केश, दाँत, हँसी आदि नेत्रों की मनोरम दृष्टि है—सब असार बोध होगा। जिस दिन तुम्हारे मध्य से 'तुम' चला

जाएगा अर्थात मेरे भीतर से 'मैं' चला जाएगा (देह त्याग कर) उस समय इस देह को जलाने के लिए अथवा कबर देने के लिए, सब लोग व्यस्त हो जाएंगे। इस सड़े हुए शरीर को कोई स्पर्श नहीं करेगा–आलिंगन नहीं करेगा–चुंबन नहीं करेगा–भोग नहीं करेगा। इससे समझ में आता है कि 'मैं' अथवा 'तुम' यह शरीर नहीं है। जो 'मैं' रूप में, 'तुम' रूप में, जीव-जीव में–जीव के जैवी भावना के रूप में है–उस महान् आत्मा को जानने के लिए ही हमारी साधना है। यह आत्मा ही जीवब्रह्म क रूप में जीव के भीतर है। वे ही परब्रह्म हैं–सर्वमय एवं सर्वातीत हैं। इस ब्रह्म को जानना होगा–इस ब्रह्म को ही प्यार करना होगा।

इसे किस तरह जाना जाएगा? बुद्धि निर्मल होने पर उसे जान सकेंगे। ध्यान, चित्तशुद्धि फिर ब्रह्मज्ञान। जो 'नाम' मंत्र मिला है–प्रणव (ओंकार) युक्त उस 'नाम' का जप करते-करते चित्तशुद्धि होने पर 'उन्ह' जान सकोगे। (मन्दिर १९ वर्ष से)

(ख) जीवात्मा, शरीर त्याग करने के पूर्व, पंच-कर्मेन्द्रिय–वाक्, पद, पाणी, पायु एवं उपस्थ; पंच-ज्ञानेन्द्रिय–आँख, कान, नासिका, जिव्हा एवं त्वक्; 'पंच-प्राण' एवं मन और बुद्धि इन सत्रह उपादानो से गठित 'सूक्ष्म देह' धारण कर, स्थूल देह को परित्याग करती है। उस समय उसका 'अहं' ज्ञान रहने से, संसार मे उसने जो कुछ भी किया है–वे सब कर्म-संस्कारों की याद उसे आती है। ये संस्कार, सूक्ष्म देह को सुख-दुःख रूपी कर्मफल भोगने के लिए प्रेरित करती है। जब तक स्थूल शरीर वह प्राप्त न कर ले अर्थात् जन्म ग्रहण न कर ले, तब तक वह सूक्ष्म-लोक मे कर्मफल भोग करता है। सूक्ष्म शरीर या लिंग शरीर एक ही है।

जीव के अनन्त कर्म-प्रवाह ही, वैतरणी नदी कही जाती है। इस कर्म-प्रवाह रूपी वैतरणी पार करने पर, जीव पितृ-लोक पहुँच सकता है। नदी में जिस तरह मगर आदि रहते हैं उसी तरह हमारे अनन्त कर्म-प्रवाह रूपी वैतरणी नदी में सर्वदा काम, काध, लोभ, मोह, मद आदि षड्रिपु हमें ग्रास करने आ रहे हैं। वे ग्रास कर रहे हैं–चर्बन कर रहे हैं। इस तरह विविध कष्ट ही नरक भोग है। लोग कहते हैं मृत्यु के बाद यमराज दण्ड प्रदान करते हैं। इस प्रकार भोग के भीतर से, हमारे कर्म-संस्कार जिससे कट जाए उसकी व्यवस्था, इस तरह, नियम से होती रहती है। कर्म-संस्कार, जीव को भोग के लिए विभिन्न स्थानों मे जन्म लेने को बाध्य करता है। संस्कार समाप्त होने पर वह मुक्त होता है। जीव का अच्छा-बुरा कर्म-भोग अधिकांश समाप्त होने पर भी यदि उसके भीतर कुछ कर्म-संस्कार रह जाए, तो उसे पुनः आना पडता है।

जीव का अवतरण, एक विशेष प्रकिया के माध्यम से होता है। जीवात्मा यदि कर्ममय हो तो अंतरिक्ष, वायु, धुम्राकार, जलवाष्प, मेघ, जल, धान, यव, वृक्ष, लता, गुल्म आदि इन अवस्था को प्राप्त होता है। इस अवस्था में जीव का मुक्त होना अत्यन्त कठिन है। जब कोई प्राणी इन वस्तुओं का भक्षण करता है तब वह वीर्य बनता है।

यह वीर्य, स्त्री योनि में पतित होने पर, पुरूष के वीर्य एवं स्त्री के शोणित के सम्मिश्रण से, जीव उस योनि को प्राप्त करता है। अत्यन्त सूक्ष्म चैतन्य स्वरूप जीव कितने स्थानों मे जाता है–यथा धान के खेतों में, नाले में, तालाब-नदी आदि में। जीव, गर्भरथ होने पर उसमें पांच-छः महिने में प्राण का संचार होता है। तब गर्भ के भीतर जीव की पूर्व-स्मृति जागृत होती है। वह अपने जन्म-जन्मान्तर के पाप-ताप आदि की बात को याद करता है। सातवें महिने में एक स्थान से दूसरे स्थान पर वह वायु द्वारा चालित होता है। इस समय वह योग-समाधिस्थ होता है। दस माह पूर्ण होने पर वह, गर्भरथ-वायु के प्रभाव से बाहर (पृथ्वी पर) आता है । इसे ही जीव का अवतरण कहा जाता है। शुकदेव पृथ्वी में मायाबद्ध नहीं होने के लिए, गर्भ में बारह वर्ष समाधि में मग्न रहे। बाद में ब्रह्मा के कहने पर उन्होंने मायामुक्त होकर जन्म लिया।

संसार के भीतर इतनी ज्वाला एवं कष्ट है, इससे मुक्ति किस प्रकार होगी? संसार के भीतर रहकर भी मुक्त रहा जा सकता है–संसार की ज्वाला या कष्ट उसे विचलित नहीं कर सकता। अपने संसार को भगवान का संसार समझो और चिन्ता करो कि तुम उसके सेवक हो। अच्छा भी उनका है–बुरा भी उनका है। तुम्हारा केवल सेवा करने में अधिकार है। फल के तुम अधिकारी नहीं हो। संसार के सम्बन्धों में भगवत् सम्वन्ध स्थापन करो। फल की आकाक्षा कभी मत करो। उससे संसार, बंधन का कारण कभी नहीं होगा–संसार की ज्वाला-कष्ट तुम्हें कभी विचलित नहीं कर सकेगी।

गोसॉई जी ने कहा है–''सरलता ही साधन है। जो सरल है, उसे फिर साधना की क्या आवश्यकता है? सरल न होने पर 'सत्य' की पूजा नहीं हो सकती। 'सत्य' की पूजा करते-करते सत्यस्वरूप को हम प्राप्त कर सकते हैं।''

भगवान के नाम-जप से सब हो जाता है–अष्टांग योग-साधना इससे हो जाती है। 'नाम' को अपना बना लेने पर, 'नाम' सर्व अवस्था में तुम्हारी रक्षा करेगा–उसके निकट जो चाहोगे वह मिलेगा। (स्वामी निर्मलानन्द सरस्वती कृत–'असीमानन्देर पथे' बंगला ग्रंथ से)

(३) शब्द-ब्रह्म एवं उसकी उपासना :

ब्रह्म का स्वरूप ओंकार है। ओंकार को ही शब्द-ब्रह्म कहा जाता है। इसके सिवाय इसका कोई अन्य स्वरूप अर्थात् अपना रूप नही है, परन्तु सब रूप ही उन्हीं का रूप है। सभी ब्रह्म है। चित्त शुद्ध होने पर, आत्मा को जाना जाता है।

ब्रह्मविद् व्यक्ति सब कुछ लाभ कर सकता है। नित्यानन्द लाभ करना, जीव का लक्ष्य है। उस अवस्था में भी 'अहं' रहता है। पंचकोष अर्थात् अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय को भेद करने पर भी आनन्द में मग्न आत्मा, परमात्मा में पूर्णतः लीन नही होता। अर्थात, जैसे कि समुद्र के मध्य, जल का बून्द विलीन रहकर भी उसका अपना अस्तित्व है।

ब्रह्म को जानने पर सब कुछ जाना जा सकता है। 'उन्हें' प्रेम करने पर वास्तविक रूप से 'प्रेम ' करना होता है। उस समय देह की चिन्ता फिर नहीं रहती। स्थूल शरीर के दर्शन, स्पर्शन, चुम्बन, आलिंगन के लिए मन उस समय आकर्षित नही होता। ब्रह्म को प्राप्त कर ब्रह्मानन्द रस में, उस परम प्रेमिक के प्रेम रस में वह डूब जाएगा। इसका अपना अस्तित्व रहकर भी यह विलीन रहेगा–जैसे, समुद्र में जल बिन्दु।

ब्रह्म, बलहीन व्यक्ति को प्राप्त नहीं होता। साधना की शक्ति द्वारा यह प्राप्त होता है। विशुद्ध-चित्त व्यक्ति, अपने जीवन में परमात्मा के साथ एक होकर रह सकते हैं। देह त्याग होने पर उसे निर्वाण लाभ होता है। ब्रह्म को जानने पर ब्रह्म हो जाता है। उस ब्रह्म को प्यार करो–उन्हें जानने की चेष्टा करो–उसे जानो एवं प्राप्त करो। यह शरीर 'मैं' नहीं है। इसके मध्य जो अनादि-अनन्त-सत्यस्वरूप-आनन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा हैं–वे ही 'मैं' हैं। 'मैं'–शब्दब्रह्म–ओंकार है।

जो अज्ञान–अंधकार को दूर कर हमें परमार्थ प्राप्ति के पथ पर ले जाए एवं सभी बंधनों को छिन्न कर संसार समुद्र को पार कराए–वे ही 'गुरू' हैं। मनुष्य कभी 'गुरू' नहीं हो सकता। गुरू परब्रह्म हैं। शब्द ही ब्रह्म है एवं मन्त्र ही शब्द का रूप है। महाशक्ति युक्त मन्त्र, जिस आधार के माध्यम से हम प्राप्त करते हैं उन्हें ही 'गुरू' कहा जाता है। गुरू प्रदत्त जो 'नाम' है, वही नामी है। मन्त्र और ब्रह्म एक है। इस मन्त्र की साधना द्वारा हम भगवान को प्राप्त कर सकते हैं। गुरू प्रदत्त जो 'नाम' है, वही नामी–वही ब्रह्म है। प्राचीन काल में 'कुलगुरू' से मन्त्र लेने की प्रथा थी। आज भी कई जगह यह प्रचलित है। कुलगुरू का अर्थ–जिन्होंने अपनी कुल-कुंडलिनी शक्ति को जागृत कर लिया है एवं जो शिष्य को परब्रह्म प्राप्ति के लिए सहायता करते हैं–वही कुलगुरू कहलाते हैं। आजकल कुलगुरू प्रथा वंशानुसार चल रही है। इस तरह के कुलगुरू से भी दीक्षा लेकर यदि कोई परम विश्वास एवं श्रद्धा से मंत्र की साधना करता रहे तो उससे भी लाभ होगा। यदि कुलगुरू, मंत्र-साधना की पद्धति के सम्बन्ध में शिष्य को आवश्यक निर्देश दे तो वे भी सहायता कर सकते हैं।

शब्द ही ब्रह्म है। मन्त्र भी ब्रह्म है। मन्त्र शब्दों का ही रूप है। इस शब्द के चार प्रकार के रूप हैं–(१) परा (२) पश्यन्ति (३) मध्यमा एवं (४) वैखरी।

वैखरी वाक्, स्थूल जगत् के विभिन्न वर्णमाला द्वारा गठित एवं उच्चारित होता है। सूक्ष्म जगत् में, मध्यमा वाक् का प्रकाश है। 'कारण' या दिव्य चैतन्य युक्त जगत् में, पश्यन्ति वाक् सर्वद्रष्टा है। शब्दब्रह्म से 'परा वाक्' की उत्पत्ति होती है। इस शब्द-ब्रह्म से ही सभी की उत्पत्ति होती है एवं यह शब्दब्रह्म ही सम्पूर्ण सृष्टि में परिव्याप्त है। भाषा द्वारा, शब्द-ब्रह्म क्या है– समझाया नहीं जा सकता।

इस परब्रह्म को किस प्रकार प्राप्त किया जाए? किस तरह इस परमानन्द को प्राप्त करें? यह प्रश्न सभी का है। मानव जगत्, सर्वदा 'मुक्ति' के लिए प्रार्थना कर

रहा है। मुक्ति का अर्थ–दुर्गति से, निरानन्द से मुक्ति। जिसमें जिसे आनन्द मिलता है, उसे वह चाहता है। परन्तु, वह आनन्द यदि उसके दुःख का कारण हो तो वह आनन्द नहीं कहलाता है। जिस आनन्द में विच्छेद नहीं है–जो नित्य है–जो सत्य है, उस नित्यानन्द को पाने का क्या उपाय है? शास्त्रों में 'आनन्द' को ब्रह्म कहा है–'अमृत' को ब्रह्म कहा है। इस अमृत को जब तक न प्राप्त कर लें तब तक नित्यानन्द की प्राप्ति नहीं होगी। इस नित्यानन्द की प्राप्ति के लिए हमें विज्ञान अर्थात् विशेष ज्ञान की आवश्यकता है। विज्ञान द्वारा, कौन अनित्य है एवं कौन नित्य है–यह समझने पर हम नित्यानन्द पाने के लिए दौड़ेंगे। यह ज्ञान हमें गुरू से मिलता है। श्री गुरूदेव जीवों के कल्याण के लिए 'नाम' रूप में आते हैं एवं 'नाम' के साथ 'नामी' को, साधक प्राप्त करता है।

परब्रह्म के साथ मिलने के लिए हम गुरू निर्दिष्ट उपाय से मन्त्र जप करते हैं। हमारे स्थूल देह के कण्ठ से निर्गत वाक् (वाणी, वाक्य आदि) द्वारा हम स्थूल जगत् के कार्यों को सम्पन्न करते हैं। इस वाक् को अशुद्ध चिन्ता या कल्पना से अलग करते हुए, प्राण को सहस्त्रार में ले जाना होगा । 'मंत्र-ब्रह्म' आदि-अन्तहीन है या अनादि है एवं 'गुरू-मंत्र' वीर्य प्रद है। गुरू प्रदत्त वीर्यवान मंत्र का, गुरू प्रदत्त उपाय से, मानसिक जप द्वारा सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। यदि तुम्हारे भीतर सदा असत् चिन्ता उदित होती रहे अथवा सर्वदा नाना प्रकार की रूप कल्पना तुम्हारे चित्त को आलोड़ित करते रहे तथापि यदि तुम गुरू प्रदत्त मंत्र का जप करते जाओ, तब तुम शुद्ध चित्त होकर इस मंत्र के ज्योतिर्मय रूप को निश्चित देख सकोगे। बाद में यह ज्योतिर्मय दर्शन तुम्हे, विभिन्न स्थूल दर्शन के मध्य से कमशः सूक्ष्मातिसूक्ष्म दर्शन एवं विभिन्न दिव्य अनुभूति से पूर्ण कर देगा। तुम्हें देवताओं का दर्शन होगा–अनेक देवताओं की कृपा तुम पर वर्षित होगी। इसके पश्चात् 'तुरीय' अवस्था आएगी। उस समय एक विराट् चैतन्य सत्ता में समाहित हो जाओगे। तुम, तुम्हारे भीतर पराशक्ति के विशाल प्रवाह, किस प्रकार सहस्त्रार से मूलाधार तक विस्तृत है–उसे अनुभव कर सकोगे।

नाम-जप करते हुए तुम इस तत्व को जान सकोगे। वैखरी वाक् जो सुनाई पडता है उसका उत्पत्ति स्थान 'कण्ठ' है। इसके द्वारा स्थूल जगत् के सब कार्य होते हैं। मध्यमा, पश्यन्ति एवं परा वाक् की उत्पत्ति सहस्त्रार के विभिन्न स्तरों से होती है। मध्यमा वाक् की विस्तृति (विस्तार) सहस्त्रार से अनाहत तक है। पश्यन्ति वाक् सहस्त्रार से मनिपुर होकर स्वाधिष्ठान तक आ रही है। परा वाक् का प्रभाव मूलाधार तक रहता है। यहां वे सार्ध-त्रि (साढ़े तीन)-वलय के मध्य शक्ति रूप में विराजित है। यह जो वाक् है–यह शब्दब्रह्म है। इस शब्द का कथित रूप ओंकार है। यह शब्दब्रह्म भू-भूवः-स्वः-महः-जनः-तप-सत्यलोक से व्याप्त है। मूलाधार-स्वाधिष्ठान-मनिपुर-अनाहत-विशुद्धाख्य-आज्ञाचक-सहस्त्रार तक यह व्यापक है।

भू-लोक की स्थूल अनुभूति होती है। भूवः-लोक की सूक्ष्म अनुभूति होती है। मनिपुर या स्वः-लोक की कारण देह में अनुभूति होती है। इस मनिपुर तक अर्थात स्वः-लोक तक स्थूल-सूक्ष्म-कारण के पृथक बोध की अनुभूति होती है। महः-लोक में यह अनुभूति चली जाती है। महः-लोक या अनाहत-चक्र में पृथक बोध नहीं रहता। अनाहत के पश्चात् विशुद्ध जनः-लोक एवं आज्ञा-चक्र मे तपः-लोक है। आज्ञा-चक्र के पश्चात् मनश्चक-सोमश्चक्र एवं उसके पश्चात् सहस्त्रार है।

वाङमय चित्त-शक्ति, स्थूल-सूक्ष्म-कारण-कारणातीत रूप में इस सृष्टि को धारण कर रही है। प्रत्येक चक्र के पद्मदल में विभिन्न वर्ण स्थित है। शब्द के उच्चारण के साथ सम्पूर्ण शरीर में स्पन्दन जागृत होता है। शिरा-उपशिरा में कम्पन्न होता है। मन्त्र, वर्णों का समूह है। एकाग्र मन से मन्त्र जप करते-करते कमशः निश्वास बन्द हों जाती है एवं कुंभक होता है। गुरू प्रदत्त मंत्र जप के द्वारा शक्ति का कमिक उत्थान होते हुए, स्थूल-सूक्ष्म-कारण का अतिकमण करते हुए, जीव को वह तूरीय अवस्था में ले जाती है। इसके पश्चात् तूरीयातीत अवस्था।

स्थूल-सूक्ष्म-कारण इन तीनों जगतों का अवलम्बन 'प्राण' है। परम-पुरूष 'हं' एवं परमा-प्रकृति 'सः' के साथ संयुक्त (एक साथ) स्पंदन से प्राण मे जो स्पंदन होता है, वही सब जगह स्थित है। इस प्राण का स्पंदन दिन-रात में, हमारे श्वास-प्रश्वास के रूप में इक्कीस हजार छः सौ बार जप होता रहता है। यह 'अजपा-जप' अपने आप चलता रहता है। सोहं-हंसः—इस प्राण को जानना होगा। श्री गुरूदेव इस प्राण को जागृत कर देते हैं।

श्री गुरू-तत्व एवं श्री गुरू पादुका-तत्व अत्यन्त कठिन तत्व है। श्री गुरू की कृपा के बिना इसका सम्यक ज्ञान कभी भी संभव नहीं है।

(४) सद्‌गुरू एवं अजपा साधन :

स्वामी जी ने कहा है– "**स्वयं श्री भगवान नारायण ही इस साधन के प्रवर्तक हैं। ब्रह्मा, भगवान् सदाशिव, महर्षि नारद, दत्तात्रेय, वशिष्ठ, ध्रुव, प्रह्लाद आदि ने इसी साधना के द्वारा भगवान को प्राप्त किया। कलियुग में श्री चैतन्य महाप्रभु ने असाधारण शक्ति समन्वित इस नाम साधन को राय रामानन्द, स्वरूप दामोदर, शिखि माइति एवं उसकी बहन माधवी देवी को दान किया था। गुरू नानक, कबीर, तुलसी दास इस प्रणाली को अपनाकर सिद्धि प्राप्त कर सकें। इनके ग्रन्थों में अजपा साधन के सम्वन्ध में बहुत कुछ मिलता है। श्री विजयकृस्ण गोस्वामी ने इस साधन को मानस सरोवर के स्वामी ब्रह्मानन्द परमहंस से प्राप्त किया था।**

इच्छा होने से ही कोई इस साधन का दान नहीं कर सकता। अर्थात इस साधन को दान करने योग्य शक्ति नहीं रहने पर, इस साधन को देकर किसी का कल्याण नहीं किया जा सकता । सद्‌गुरू जिसे निर्देश दें—वही इस साधन को देने का अधिकारी हो सकता है।

सद्गुरू ही भगवान् हैं और भगवान् ही सद्गुरू हैं। जिस मनुष्य में उस गुरूशक्ति का प्रकाश हो एवं जो जिस आधार से इस शक्ति को ग्रहण करे, वही महाशक्ति के प्रकाश से समन्वित जो व्यक्ति हैं वही उनके सद्गुरू हैं।

इस साधना के अधिकारी के सम्बन्ध में स्वामी जी ने कहा है–''केवल प्रार्थी होने पर कोई इसे नहीं पा सकता। सद्गुरू जिस समय साधन देंगे–वही योग्य समय होगा। जिसे साधन प्रदान किया जाएगा, उसके लिए वही उचित समय है। समय, असमय, जाति, वर्ण, आयु आदि का विचार यहां आवश्यक नहीं है। सद्गुरू की कृपा ही इस समस्या का समाधान है।

सद्गुरू के सिवाय, अजपा-साधन की प्रणाली जानने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। गुरू के शरीर त्याग करने पर भी शिष्य को यदि गुरूशक्ति का प्रयोजन हो तो, उसी रूप में, सद्गुरू का आवश्यक उपदेश, आदेश एवं निर्देश प्राप्त हो जाते हैं।

निष्ठापूर्वक श्री गुरू चरणों में शरण पाकर–अपनी बुद्धि कुछ भी नहीं है–ऐसी भावना से निवेदन कर, गुरू निर्दिष्ट पद्धति के अनुसार, नाम-साधन करना होगा। श्वास-प्रश्वास में नाम-साधन करते-करते श्वास एवं प्रश्वास में मन को निबद्ध करने से, बहिर्मुखी मन धीरे-धीरे वशीभूत हो जाएगा।

श्वास-प्रश्वास में गृहीत 'नाम' के प्रभाव से शरीर को कमशः वह नाममय कर देगा। फिर मन में शरीर की शिरा-उपशिराओं में, रक्त कणिकाओं में, त्वचा आदि में 'नाम' व्याप्त हो जाएगा। त्वचा के भीतर शिरा प्रभृति, नाम के प्रभाव से नाम रूप धारण कर लेगी। कर, चरण तथा शिराओं में ओंकार स्वरूप प्रणव मंत्र की अभिव्यक्ति होगी–लय होगा और पुनः अभिव्यक्ति होगी। ('अजपा साधन तत्व' से)

(५) जातिभेद एवं ओंकार जप :

ओंकार जिस प्रकार सृष्टि में पूर्णतः व्याप्त है उसी प्रकार देह में भी व्याप्त है। मूलाधार से मणिपुर तक 'अ' कार का स्थान है। मणिपुर से अनाहत तक 'ऊ' कार का स्थान है। अनाहत से आज्ञा-चक्र तक अ-ऊ-म का स्थान है। गुरू प्रदत्त पद्धति द्वारा, ओंकार के साथ चित्त को मूलाधार से आकर्षण करते हुए सहस्रार में ले जाओ। बाद में इस शक्ति को नीचे एक चक्र से दूसरे चक्र में उतारते हुए मूलाधार में लाकर इष्ट मन्त्र का ध्यान करो।

महिलाओं को ओंकार विहीन दीक्षा की जिन्होंने व्यवस्था दी है उन्हें गार्गी, मैत्रयी, वाचल्कवि आदि स्त्री ऋषियों की कथा स्मरण कराना आवश्यक है। स्त्रियों को दुर्गाशप्तशती–वेद पाठ का अधिकार नहीं है, ऐसा कहना व्यर्थ है। वेद के सूक्त जो रचना कर सकते हैं–वे वेद पाठ नहीं कर सकते–यह कैसे हो सकता है? दुर्गाशप्तशती के उपास्य स्वयं एक देवी है–यह स्मरण रखना चाहिए।

मनुष्य जन्म के बाद शूद्र रहता है। संस्कार द्वारा द्विज होता है। गीता में गुण

एवं कर्म के ऊपर जाति-विभाग की बात है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार, शूद्र कुल में जन्म लेकर व्यक्ति विप्र वर्ण तथा ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर शूद्र वर्ण हो सकता है। श्रीमद् भागवत् में है–जिसका जैसा वर्ण है, उसके लक्षण को देखकर, उसे उस वर्ण का समझना चाहिए। ब्राह्मण कुल मे जन्म लेकर उसके लक्षण यदि वैश्य–क्षत्रिय या शूद्र वर्ण के अनुरूप हो तब उसे कभी ब्राह्मण नहीं माना जाएगा। प्राचीनकाल में ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर व्यक्ति अन्य वर्ण का माना गया है एवं अन्य वर्ण में उत्पन्न व्यक्ति ब्राह्मण माना गया है।

जैसा कि मुदगल ऋषि के पुत्र मौदगल्य क्षत्रिय होने पर भी ब्राह्मण हो गये थे। विश्वामित्र क्षत्रिय होने पर भी ब्राह्मण हो गए। संस्कृत, कपि, पुरू, कूत्स, सत्य, अनूहवान आदि अन्य वर्ण के होने पर भी ब्राह्मण हो गए थे। यह वायु पुराण में है। क्षत्रिय के अलावा अन्य नर-नारी के संयोग से उत्पन्न व्यक्ति भी ब्राह्मण माने गए। नाभागरिष्ट वैश्य थे। उनके दो पुत्र विद्या एवं तपस्या के बल पर ब्राह्मण हो गए–'हरिवंश' में इसका उल्लेख है। व्यासदेव ने केवट कन्या के गर्भ से जन्म लिया। पराशर चाण्डाल कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुए। शुकदेव शुक नामक हीन जाति के गर्भ से उत्पन्न हुए। महर्षि कणाद–उलूकी, ऋष्यश्रृंग–मृगी नामक अनार्या स्त्री के पुत्र थे। मन्दपाल मुनि–नाविक कन्या से, मांडव मुनि–मांडवी नामक नारी के गर्भ से उत्पन्न हुए। सत्यकाम का जन्म जाबाला से हुआ। शूद्र यदि सदाचार-सम्पन्न एवं उत्तम गुण सम्पन्न पाए जाते थे तो उस समय उन्हें ब्राह्मण माना जाता था। ब्राह्मण यदि दूराचारी होता तो उसे शूद्र की अपेक्षा हीन माना जाता था। ऋषि कवश एवं कक्षीवान शूद्र कुल में जन्म लिये थे।

गौतम संहिता में है–जाति पूज्य नहीं है–गुण ही कल्याणकर एवं पूज्य हैं। 'वृतस्थ' चाण्डाल होने पर भी देवताओं ने उन्हें ब्राह्मण माना । विश्वामित्र, मुदगल, कश्यप, याज्ञवल्क, शालष्कायन, शुश्रुत, हारीत आदि ब्राह्मण धर्म का पालन कर ब्राह्मण हो गए। अन्ध मुनि वैश्य थे एवं उनकी स्त्री शुद्र कन्या थी, उनके पुत्र सिन्धु मुनि ब्राह्मण थे।

जनसंख्या जब बढ़ने लगी तब इस तरह गुण-कर्म विचार कर जाति का निर्णय असंभव हो गया। इस कारण जाति वंशगत मानी गई। प्राचीन काल में, मनुष्य एक वर्ण से दूसरे वर्ण में ग्रहण किया जाता था। देवताओं के मध्य भी चतुर्वर्ण पाया जाता था।

मैं व्यक्तिगत रूप से, वर्तमान समय में जिस प्रकार से जाति विभाग चल रहा है–इसे नहीं मानता। मेरी अपनी अभिज्ञता है एवं मैंने देखा है कि शूद्र के घर में ब्राह्मणों के आचरण युक्त मनुष्य का जन्म हुआ है तथा ब्राह्मण के घर में चाण्डाल का जन्म हुआ है। कश्यप के पुत्र मनु थे। मनु के पुत्र कुछ ब्राह्मण, कुछ क्षत्रिय, कुछ वैश्य

एवं कुछ शूद्र हुए। कश्यप के पुत्रों में कुछ देवता, कुछ दैत्य, कुछ गन्धर्व एवं कुछ नाग आदि हुए। अब विचार करके देखो किसे ब्राह्मण एवं किसे शूद्र कहें? मेरा विचार है कि **जो व्यक्ति हरि भक्ति परायण है वह जाति में चाण्डाल होने पर भी ब्राह्मण की अपेक्षा श्रेष्ठ है।** ('मन्दिर' १९-२० वर्ष से)

स्वामी जी के उपरोक्त कथन का प्रमाण शास्त्रों में मिलता है। शास्त्रों में उल्लेख है–

(क) विष्णु भक्ति विहीना ये चण्डलाः परिकीर्त्तिताः।
चण्डालाः अपि वै श्रेष्ठा हरि भक्ति परायणाः।।

भावार्थ :- विष्णु-भक्ति से शून्य व्यक्ति को चाण्डाल कहा जाता है एवं हरि-भक्ति समान्वित चाण्डाल को श्रेष्ठ माना जाता है। ('भक्तमाल' स्कन्द पुराण से)

(ख) श्रीमद्भागवत में है–

बारह गुणों से युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान विष्णु के चरण-कमलों से विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिसने अपने मन, वचन, कर्म, धन और प्राण भगवान के चरणों में समर्पित कर रखा है, क्योंकि वह चाण्डाल तो अपने कुल तक को पवित्र कर देता है। बड़प्पन का अभिमान रखने वाला वह ब्राह्मण, अपने स्वयं को भी पवित्र नहीं कर सकता। ('श्रीमद्भागवत' सप्तम स्कन्ध, नवां अध्याय-१० श्लोक)

स्वामी जी ने १९६२ ई मे शिवरात्रि के दिन, शिष्यों से कहा था–

तुम लोगों ने ब्रह्म-दीक्षा प्राप्त किया है, परन्तु साधना के द्वारा तुम्हें ब्राह्मणत्व अर्जन करना होगा। ब्राह्मण वंश में जन्म लेने से ही कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता। 'ब्रह्म' को जानने पर सच्चा ब्राह्मण बनोगे। इस 'ब्रह्म' को जानना होगा। इसके लिए विश्वामित्र के समान तपस्या करना होगा। परमेश्वर को प्राप्त करना होगा। दीक्षा के पवित्र समय से तुम्हारी यात्रा शुरू हुई। यदि वास्तव में 'ब्रह्म' को जानना हो तो सर्वदा 'नाम' करो–आवश्यक प्राणायाम करो–नियमित साधना करो।

ब्रह्मज्ञ अवस्था की प्राप्ति के लिए निम्न उपदेशों का पालन करना आवश्यक है–

(१) सत्य कहो। कार्य-वाक्य-चिन्ता द्वारा सत्य का अनुसरण करो । सत्य के उपासक ही ब्राह्मणत्व लाभ के अधिकारी हैं। जो मिथ्या कहते हैं वे ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के बाद भी अब्राह्मण हैं।

(२) जीवों (प्राणियों) के प्रति दया भावना रखो–जीव की सेवा भगवत् ज्ञान से करो।

(३) अतिथि सेवा करो।

(४) गुरूजनों की श्रद्धा करो।

(५) ब्रह्मचर्य का पालन करो।

(६) सदाचार का पालन करो।

(७) संसार के सम्यन्धों में भगवत् सम्बन्ध स्थापन करो। भावार्थ—स्त्री, स्वामी, पुत्र, कन्या, आदि सभी के रूप में भगवान हैं—इस भावना से उनकी सेवा करो।

(८) सभी धर्म के साधू-महात्माओं को सम्मान देना।

(९) आन्तरिक भावना से मन खोलकर हँसो—सभी के प्रति प्रेम भावना रखो—सभी को प्रेम पूर्वक गले लगाओ।

(१०) पर निन्दा मत करो।

(११) किसी को उद्वेग मत दो।

(१२) जूठा भोजन मत करो। दूषित भोजन ग्रहण मत करो। असत् व्यक्ति का अन्न ग्रहण मत करो। विषय भोग में डूबे हुए व्यक्ति का अन्न ग्रहण मत करो। श्राद्धान्न भोजन मत करो।

(१३) सात्विक भोजन करो। मांस, अण्डा, प्याज, बासी अन्न, राजसिक तामसिक एवं नशीली वस्तुओं का सेवन मत करो।

(१४) तुम्हारे साधन पथ में तथा ब्रह्म प्राप्ति के पथ में जो अनुकूल रहे—वही करो।

(१५) मन को संकीर्ण मत करो। हृदय को आकाश की तरह उदार— कुसुम की तरह कोमल रखो एवं आदर्श व नीति की रक्षा के लिए वज्र की तरह कठोर रहो।

(१६) आत्म वंचना मत करो अर्थात अपने आप को धोखा मत दो। इन्द्रिय को जय करना होगा।

(१७) जो गृहस्थ है उन्हें शास्त्रोक्त विधि से संसार-धर्म का पालन करना चाहिए। असंयमित भोग करने से अन्धे-लंगड़े-लूले-दुर्वल एवं कापुरूष सन्तान का जन्म होगा। इससे अपना परिवार, देश एवं जाति कलंकित होगा।

(१८) जो कहना हो स्पष्ट कहो। किसी के ऊपर निर्भर मत रहो । आलस्यता को दूर करो। अपने पुरूषार्थ के ऊपर भरोसा रखो। अपने परिश्रम द्वारा अर्जन करते हुए आवश्यक भोजनादि की व्यवस्था करो। जो भी अर्जन हो उसे पवित्र रूप से बनाकर अपना एवं अपने परिवार वर्ग का प्रतिपालन करो। प्रति ग्रास में भगवान का नाम स्मरण करो। सड़ा अथवा बासी भोजन ग्रहण मत करो।

(१९) तुम्हारा शय्या, वस्त्र जितना आवश्यक हो, उतना रखो। तुम्हारा आहार होगा—विलासता से वर्जित। तुम्हारा वस्त्र-भोजन रहेगा—सादा, अनाडम्बर, पवित्र एवं सात्विक।

(२०) सर्वदा 'नाम' जप करो। 'नाम' के साथ कार्य करो एवं कार्य के साथ नाम।

मैंने तुम लोगों का सेवा-भार लिया है। मैं शपथ पूर्वक कह रहा हूँ—तुम यदि नियम निष्ठ हो सको—साधनशील हो सको—वास्तविक रूप से भगवत् प्राप्ति के लिए तुम्हारा आग्रह रहे, तो कोई भी प्रतिकूल शक्ति तुम लोगों को रोक नहीं सकेगी।

तुमने ब्रह्म-दीक्षा प्राप्त किया है। वास्तविक ब्राह्मण बनो। अभिमान को त्याग दो। इन्द्रियों को जय करो। सब प्राणियों के प्रति दया भावना रखो। सभी के भीतर उसी एक भगवान का दर्शन करते हुए–उनका नाम करते हुए, सदा प्रणाम करो। 'नाम और प्रणाम' तुम्हारे जीवन का सम्बल हो। ('संगठन' २५ वर्ष से)

(६) शरीर स्वस्थ रखने के कुछ नियम :

(१) प्रातः सूर्योदय के पूर्व शय्या त्याग कर पेट भर जल पान करना। इसके पश्चात् प्रातःकृत्य करना चाहिये। सूर्योदय के पश्चात् कभी मत सोना। स्वास्थ्य के लिए यह अत्यन्त हानिकारक है। इससे अग्नि मंद होती है एवं शक्ति का क्षय होता है। पेट के विभिन्न रोग एवं अम्लता (acidity)होता है।

(२) प्रातःकृत्य के पश्चात् दांत साफ करना चाहिए। ब्रश व्यवहार मत करो। नीम, बबूल, साल आदि वृक्षों की दातुन उपकारी है। आँखों को शीतल जल से बार-बार धोना चाहिए। जिव्हा एवं गला नित्य साफ करना चाहिये।

(३) इसके पश्चात् गुरू निर्देशानुसार प्राणायाम एवं नियमित साधना–'नाम-जप' जितना अधिक हो सके करना चाहिए।

(४) यथानियम प्रातः एवं संध्या के समय छात्रों को अपना पाठ करना चाहिये।

(५) सभी कार्यों का समय निश्चित कर, दिन के समय को विभाजित कर लेना चाहिए।

(६) सात्विक आहार करना चाहिए। बासी-उत्तेजक खाद्य नहीं खाना चाहिये। ज्यादा तीखा, खट्टा, नमकीन, मीठा, उत्तेजक पदार्थ खाना या पीना नहीं चाहिये। नशीली वस्तु एवं मांस, प्याज, अण्डा मत खाना।

(७) सत्य एवं ब्रह्मचर्य का पालन करो।

(८) उत्तेजना प्रद दृश्यों को मत देखो, अश्लील पुस्तकों को मत पढ़ो। शरीर और मन को जो उत्तेजित करे वैसी आलोचना मत करो।

(९) चार घण्टे निद्रा के पश्चात् बाकी बीस घण्टे का समय नित्यकर्म, साधन-भजन, आहार, भ्रमण, व्यायाम, पाठ आदि कार्यों में व्यतीत करो।

(१०) ऐसा कार्य मत करो जिससे श्वास का अधिक क्षय हो। श्वास की जितनी अधिक रक्षा की जाएगी–उतनी आयु बढ़ेगी।

(११) पेट का दो भाग खाद्य, एक भाग जल एवं एक भाग खाली रखो। भरपेट भोजन अस्वास्थ्यकर है।

(१२) दिन के समय नहीं सोना चाहिए।

(१३) ज्यादा गरम या ज्यादा ठण्डा खाद्य मत खाओ।

(१४) रात्रि में सोते समय बाएँ करवट सोना चाहिए। सोने के पूर्व ठण्डा पानी पीना हितकर है।

(१५) भोजन के पूर्व एवं भोजन के पश्चात् पेशाब करना। लिंग एवं अण्डकोष ठण्डे पानी से धोना चाहिए। जितनी बार पेशाब किया जाए, प्रत्येक बार इस तरह धोना चाहिए।

(१६) सत्य का पालन करो। सदाचारी, नियमनिष्ठ, कर्तव्यनिष्ट एवं अहंकार रहित बनो। एक घड़े में यदि छः छिद्र रहे तो उसमें क्या जल रहेगा? शरीर के मध्य छः रिपु का दमन करो। एक भी छिद्र रहने पर सब जल निकल जाएगा। इसी कारण साधना की आवश्यकता है। साधना द्वारा सब संभव है।

(१७) मत्स्य आहार भी जीव-हत्या को प्रोत्साहन देती है। जीव हत्या किसी भी तरह नहीं होना चाहिए। शरीर रक्षा के लिए आपत्काल में मांस-अण्डा आदि ग्रहण करने की अनुमति दी जाती है, परन्तु मैं इसे भी उचित नहीं मानता हूँ। अपने प्राण की रक्षा के लिए दूसरे के प्राण का नाश–धर्म नहीं है।

(७) **गृहस्थ धर्म के सम्बन्ध में :**

गृहस्थ को नियमित आहार, विहार एवं विश्राम करना चाहिये। सर्वदा, श्वास की तरफ दृष्टि रखना चाहिये। मनुष्य, दिन भर मे इक्कीस हजार छः सौ बार श्वास लेता है। यह जितना कम हो उतना अच्छा है। इष्ट मंत्र का जप करते हुए श्वास लेना एवं त्यागना चाहिये। जिस प्राणी की श्वास-प्रश्वास किया जितनी कम होती है वह उतना दीर्घजीवी होता है। हमलोग प्रत्येक क्षण शक्ति क्षय कर रहे हैं। इसे संयत करना होगा। शास्त्रोक्त उपाय से जीवन का गठन करने पर दीर्घजीवन लाभ होगा। गृहस्थ को, निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये–

(१) गृहस्थ जीवन में साधना की आवश्यकता अधिक है। श्री भगवान का 'नाम' लेकर पवित्र जीवन व्यतीत करने से, गृहस्थ के कर्तव्य पालन एवं गृहस्थ के कठिन ताप को सहन करने की क्षमता काफी बढ़ जाएगी। 'नाम' करते हुए कार्य एवं कार्य करते हुए 'नाम' करना असंभव नहीं है। नियमित साधना के द्वारा यह सहज रूप से हो जाता है।

इस जन्म में जो पति-पत्नी हैं–दूसरे जन्म में वे फिर से पति-पत्नी होंगे अथवा विगत जन्म में वे पति-पत्नी थे–ऐसी कोई बात नहीं है। आत्मा का कोई लिंग नहीं है। पुरूष देह में जो है–नारी देह में भी वे ही हैं–वे एक ब्रह्म ही हैं।

सद्‌गुरू भगवान् हैं। सद्‌गुरू सर्वत्र हैं। पिता रूप में वे हैं, माता रूप में वे हैं, पति रूप में वे हैं, पत्नी रूप में वे हैं। पुत्र, कन्या, भाई, बहिन, बन्धु आदि में, अणु-परमाणु में सद्‌गुरू लीला कर रहे हैं। मैं सर्व काल में एवं सर्वत्र जिससे, इस लीला का दर्शन कर सकूँ–ऐसी प्रार्थना करना चाहिये। ('असीमानन्देर पथे' से)

गृहस्थ प्रार्थना करते हैं–''वीरं मे दत्त पितर।'' सभी वीर, स्वस्थ, विद्या-बुद्धि सम्पन्न, तेजस्वी और धार्मिक सन्तान चाहते हैं। मनुष्य नहीं जानता कि अच्छे पुत्र के

जनक या जननी बनने के लिए क्या आवश्यक है? जब तुम अपनी रोगग्रस्त एवं दुर्बल सन्तान को लेकर मेरे पास आते हो, तब मुझे दुःख होता है। इसकी इस अवस्था के लिए तुम दोषी हो। किस प्रकार वीर, गुणवान एवं विद्वान पुत्र का जनक या जननी, मनुष्य हो सकता है? इसके सम्बन्ध में शास्त्र में वर्णन है। बीज के अनुरूप ही वृक्ष होगा। तुम्हारा वीर्य जितना शक्तिशाली होगा, सन्तान भी उतनी ही शक्तिशाली होगी। तुम्हारे जीवन यात्रा की प्रणाली, तुम्हारा अभ्यास, आचार-व्यवहार, तुम्हारी प्रकृति का संस्कार–तुम्हारे वीर्य के माध्यम से सन्तान में भी संकमित होता है। पिता-माता की मनोवृत्ति, व्याधि, सद्‌गुण, असद्‌गुण परिवार का स्वभाव–ये सभी चीजें सन्तान को विरासत के रूप मे मिलती है।

शास्त्र में स्त्री-पुरूष के संगम की विधि है। उसी के अनुसार स्त्री-पुरूष का संगम हो, तो उत्तम सन्तान होगी। मनुष्य का शरीर तो हमें प्राप्त है, परन्तु हम पशु तुल्य ही हैं। शास्त्र में वीर्याधान की विधि है–समय है। विभिन्न दिवसों एवं तिथियों मे संगम निषेध है। परन्तु हम मानते कहां हैं? विभिन्न तिथियों में हमारा वीर्य विकृत रहता है। उस वीर्य से जो सन्तान उत्पन्न होगी–वह रोगी और दुर्बल तो होगा ही। ('कुछेक दिनों के सस्मरण' से)

विवाहित जीवन में ब्रह्मचर्य पालन के कुछ नियम हैं । यथा–ऋतुकाल में, अष्टमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, पूर्णिमा एवं अमावस्या में स्त्री-गमन निषेध है। संकान्ति, पर्व-दिन, जन्म-वार, रविवार एवं दिन के समय स्त्री-गमन निषेध है। शरीर के साथ मन की स्थिरता के लिए भी इसका पालन कल्याणप्रद है। ('मन्दिर' २५ वर्ष, से)

शरीर पर नियंत्रण रखकर मन को संयत कर लेना सहज है। शरीर पर नियंत्रण रखने के लिए शास्त्रों में बहिरंग साधन की बात कही गई है। बहिरंग साधन के सम्बन्ध में जो सार तत्व हैं वे सभी श्रीश्री गोस्वामी प्रभु प्रदत्त, साधना के उपदेशों में मिलते हैं।

(२) **आहार** – बहिरंग साधना के अन्तर्गत 'आहार' की तरफ विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्राण की रक्षा एवं शरीर धारण करने के लिये आहार है। हम जो कुछ खाते हैं उसका कुछ अंश विष्ठा में, कुछ अंश मांस आदि में परिवर्तित होता है एवं सूक्ष्म प्रभाव मन पर पड़ता है। जल का कुछ अंश मूत्र, कुछ अंश रक्त एवं कुछ अंश प्राण रूप मे परिवर्तित होता है। तेल-घी आदि का कुछ अंश अस्थि-मज्जा एवं कुछ अंश वाक्य के रूप में परिवर्तित होता है। द्रव्य का गुण होता है। मिर्च खाने से पेट में जलन होगी। दुष्पाच्य एवं बासी खाद्य मत खाना। सहज सुपाच्य आहार आवश्यक है।

किसी का उच्छिष्ट (जूठा) मत खाओ। उच्छिष्ट भोजन से साधना की शक्ति धीरे-धीरे क्षय हो जाती है। माता-पिता का उच्छिष्ट, सन्तान के लिए प्रसाद है। उससे कल्याण होता है। स्त्री अपने सास-ससुर एवं पति का उच्छिष्ट, प्रसाद हिसाब से ग्रहण

कर सकती हैं। अपनी सन्तान पांच वर्ष की उम्र तक साथ में खा सकता है। गृहस्थ में जो गुरूजन, माता-पिता की तरह स्नेह का अधिकार प्राप्त किये हैं एवं लालन-पालन किये हैं, अपनी प्रवृत्ति या इच्छा होने पर, उनका उच्छिष्ट खा सकते हैं। किसी साधु-महात्मा का दर्शन कर यदि आन्तरिक श्रद्धा हो एवं उनका प्रसाद लेने पर यथार्थ कल्याण होगा, ऐसी धारणा हो, तो उनका प्रसाद खाया जा सकता है। परन्तु देखा-देखी अर्थात कोई ले रहा है इस कारण हम भी लेंगे—ऐसा उचित नहीं है।

श्राद्ध का अन्न प्रेत का उच्छिष्ट है। इसे कभी मत खाना। जिस दिन श्राद्ध के मन्त्र-पाठ करते हुए प्रेत का आवाहन कर पिंडदान किया जाता है, उस दिन उस गृह में जल-बिन्दु तक ग्रहण नही करना चाहिये। देवता को निवेदित अन्न प्रसाद है—उसे ले सकते हैं।

उच्छिष्ट भोजन से विभिन्न रोग एक देह से दूसरे देह में संकमित होते हैं। इसे जिस तरह जड देह मे देखा जाता है उसी तरह, उच्छिष्ट भोजन से एक व्यक्ति की भावना दूसरे मे संचारित होती है—यह परिक्षित सत्य है। **गुरूजन होने पर भी यदि उसे संकामक व्याधि है तो उनका उच्छिष्ट कभी नहीं खाना चाहिये** । केवल मुख के उच्छिष्ट से ही नही, एक टेबिल में बैठकर भोजन करने पर भी भाव का संकमण देखा जाता है। इससे अपनी रक्षा के लिये टेबिल पर कम्बल बिछाकर खाने पर संकमण नहीं होता। परन्तु यह भी आपत्‌कालीन व्यवस्था है।

जिस साधन पथ पर चलना है, उनके विधि-निषेध को न मानने पर कभी साधना में अग्रसर नहीं हो सकेंगे। ट्रेन आदि के दीर्घ सफर मे भोजन करना आवश्यक होता है एवं विभिन्न विरूद्ध भाव के लोगों का स्पर्श भी होता है। यहां खाना ही पड़ता है परन्तु इसका कुफल भी भुगतना पड़ता है।

हमलोग साधारणतः पानी या चाय पी कर गिलास को जल से थोड़ा धोकर रख देते हैं—यह उचित नहीं है। प्रत्येक बार गिलास को एवं भोजन के बर्तन को उचित रूप से मिट्‌टी या राख आदि से साफ करना आवश्यक है। हम जिस तरह किसी का उच्छिष्ट भोजन नहीं करेंगे उसी तरह दूसरो को भी अपना उच्छिष्ट नहीं देंगे।

कई जगह देखा जाता है कि व्याधिग्रस्त दादाजी या माता-पिता या अन्य कोई गुरूजन स्नेहपूर्वक छोटे बच्चों को अपनी थाली से भोजन करा रहे हैं। यह स्नेह नहीं है—निरोग शिशु के भीतर अपने शरीर के रोग का संकमण करना है।

(३) **आचार-विचार**—अपने शिष्यों को सावधान करते हुए स्वामी जी का निर्देश था—तरूण अवस्था में युवक एवं युवतियों को आपस में बहुत सावधान रहकर मिलना-जुलना चाहिये। लालसा की अग्नि सारे विश्व मे जल रही है। प्रेम के रूप में 'काम' सर्वत्र भ्रमण कर रहा है। युवा अवस्था में काम-भावना प्रबल रहती है। कामना की अग्नि में पतंगे (कीड़े-मकौड़े) की तरह जलने के बाद 'हाय-हाय' करने से क्या

लाभ होगा? 'प्रेम-प्रेम' यह शब्द सर्वत्र सुनाई पड़ता है। परन्तु **'काम' एवं 'प्रेम' में बहुत अन्तर है**। अपने स्वार्थ के लिए प्यार करना एवं स्वार्थ में बाधा या विरोध होने पर, कलह-रूप अग्नि का प्रकाश होना–'काम' का लक्षण है।

स्वार्थहीन–निष्काम प्रेम सर्वदा पवित्र है। जिसे प्यार करते हैं वह यदि दुःख भी प्रदान करे तो वह भी मेरे लिये सुख-प्रद रहेगा। प्रियतम का दिया हुआ दुःख, चित्त में सुख रूप में प्रतीत होगा–यह 'प्रेम' का लक्षण है।

इस महा अरण्य में बहुत सावधान होकर विचरण करना चाहिए। विवेक पूर्वक अपने इष्ट मंत्र का सर्वदा स्मरण करो। सदाचार का पालन करो। प्रेम के रूप में 'काम' की पूजा कभी मत करो। संयम का पालन, सद्ग्रन्थ पाठ, सत्संग एवं साधु-संग द्वारा विवेक-वैराग्य भावना को सदा जागृत रखो। गुरू निर्देशानुसार यौवन काल को पार करने पर अनेक प्रकार के झंझटों से मुक्ति मिलेगी। ('अमृतवाणी' ग्रन्थ से)

(८) भारत के आदर्श सन्त एवं धार्मिक-राजनैतिक नेता :

एक बार रामचन्द्रपुर आश्रम में उत्सव के समय दरवेश जी के शिष्य श्री सीतानाथ महंती एवं उनके साथ उड़िया भाषा के सर्वश्रेष्ठ दैनिक संवाद-पत्र 'समाज' के सम्पादक श्री राधानाथ रथ आए। स्वामी जी से मुलाकात करने के लिये जब वे अग्रसर हुए तब गोसाँई जी, दरवेश जी एवं कुलदानन्द ब्रह्मचारी जी के तीन विशाल तैलचित्र के पास राणाप्रताप, शिवाजी एवं नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का वैसा ही विशाल तैलचित्र देखकर वे लोग अचंमित हो गए। इन तीनों चित्र में अश्व के ऊपर वे सवार थे, घोडे की लगाम उनके बाएं हाथ में और दाहिने हाथ में खुली तलवार थी। थोडी देर पश्चात् श्री राधानाथ बाबू ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि सनातन धर्म के प्रचारक सन्तो के साथ, इन शूरवीर सैनिकों का चित्र आपने क्यों लगा रखा है?

स्वामी जी ने प्रसन्नतापूर्वक जवाब दिया–"देखो ये छः चित्र हमारे भारत वर्ष के आदर्श हैं। जिस दिन से भारत इनके आदर्शों से विच्युत हो गया है, उस दिन से भारत की नैतिक अधोगति प्रारम्भ हुई है। जिस दिन इनक आदर्श को वह पुनः प्राप्त कर लेगा उस दिन भारत पुनः प्राचीन भारतवर्ष में रूपान्तरित हो जाएगा। कब वह दिन आएगा, इस आशा को लेकर मैं दिन व्यतीत कर रहा हूँ।"

राधानाथ बाबू ने कहा–आपकी बातों को मैं ठीक से समझ नहीं पाया। कृपया मुझे थोड़ा समझाकर कहिये।

स्वामी जी ने कहा- देखो, इस भारतवर्ष में, प्राचीनकाल में अनेक राजाओं ने राज्य किया और वे भी काफी शूरवीर रहे, परन्तु एक भी राजा के ऐसे राजत्व काल को नहीं दिखा सकते, जो अपने राजत्व काल में ईश्वर को छोड़कर–धर्म को पृथक कर, निर्विघ्न रूप से शासन कर सके हों। प्रत्येक राजा के उपदेष्टा गुरू थे–कोई ऋषि। परन्तु आज हम क्या देख रहे है? भारत की राजनीति चल रही है–ईश्वर और

धर्म को छोड़कर। इसी कारण आज महान् भारतवर्ष जो सम्पूर्ण विश्व का आदर्श रहा, उसका आज दुर्दिन चल रहा है। विश्व के निकट आज भारत घृणित है। आज विश्व के सभी स्थानों में भारत भिक्षा पात्र लेकर, एक सामान्य भिखारी के समान है।

जिस दिन भारत अपने पूर्व आदर्श को पुनः प्राप्त कर लेगा, उस दिन भारत वर्ष पुनः विश्व की सभा के मध्य श्रेष्ठ आसन प्राप्त करेगा। इसी कारण इन छः तैल-चित्रों को एक स्थान पर मैंने लगा रखा है। मैं तो केवल अपनी चिन्ता नहीं करता–केवल कुछ शिष्यों की ही चिन्ता नहीं करता। मैं चिन्ता करता हूँ–समग्र भारत की, इसी कारण आँखों के सामने इन आदर्श पुरूषों के चित्र को रखकर ध्यान करता हूँ। चिन्ता शक्ति का अपना एक प्रभाव है। मैं अकेला तो कुछ नहीं कर सकता। पर मेरी चिन्ता-शक्ति द्वारा यदि भगवान की करूणा हो !! स्वामी जी के बात सुनकर वे लोग स्तंभित हो गए। ('असीमानन्द पथे' ग्रन्थ से)

(९) गोसाँई जी प्रदत्त दीक्षा की विशेषता :

सद्गुरू श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी प्रदत्त दीक्षा के सम्बन्ध में स्वामी जी कहते थे–गोसाँई जी की दीक्षा का वही व्यक्ति दान कर सकता है जिसने यह दीक्षा साक्षात् सद्गुरू से प्राप्त की हो एवं दीक्षा देने का निर्देश जिन्होने सद्गुरू के पास से प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त किया हो।

कई बार, दीक्षा पाने का समय न होने पर उसे 'तारक ब्रह्म' मन्त्र का जप करने का निर्देश दिया जाता है।

'तारक ब्रह्म'– हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।

इस दीक्षा के सम्बन्ध में निम्न विषयों पर ध्यान रखना आवश्यक है–

(१) जिन्होंने यह दीक्षा प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त नहीं की है, वे दीक्षा देने के अधिकारी नहीं हैं।

(२) किसी को दीक्षा देने के लिये, सद्गुरु का प्रत्यक्ष निर्देश पाना आवश्यक है।

(३) इस दीक्षा में सभी को प्रणव समन्वित मंत्र दिया जाता है। दीक्षा के पूर्व, कौन सा मंत्र प्रदान किया जाएगा, इसे नहीं जान सकते। आसन मे बैठने के पश्चात् गुरूदेव का आह्वान करने पर, तब मालूम चलता है कि यह व्यक्ति कौन से मंत्र वे जप का अधिकारी है।

(४) कई बार विभिन्न व्यक्तियों का विभिन्न मन्त्र होने के कारण, एक साथ रहने पर, साधना के विधि-निषेध बतला देने के पश्चात् पृथक-पृथक मन्त्र हर-एक व्यक्ति को अलग रूप से दिया जाता है। कई बार दीक्षा लेने के लिये बैठने पर भी दीक्षा पाने का समय अभी नहीं हुआ है, यह जानने पर, उसे दीक्षा नहीं दी गई। वास्तविक रूप में, आसन पर बैठने के पूर्व, वह व्यक्ति दीक्षा प्राप्त करेगा या नहीं, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

इस सम्बन्ध में स्वामी जी की एक घटना का उल्लेख यहां किया जा रहा है–एक बार इक्यावन (५१) व्यक्ति दीक्षा लेने के लिये स्वामी जी के पास आए। दीक्षा का कार्य प्रारम्भ हुआ। सभी आसन में बैठे थे। अचानक स्वामी जी ने उनमें से पचास व्यक्तियों को दीक्षा-गृह से बाहर जाने का निर्देश दिया। केवल एक व्यक्ति को उन्होंने दीक्षा प्रदान की। बाद में पूछने पर उन लोगों ने कहा–'हमलोग, वास्तव में दीक्षा प्रार्थी नहीं थे। 'डी. व्ही. सी.' (दामोदर वेली कारपोरेशन) में कुछ लोगों की आवश्यकता थी। हम लोगों ने वहां नौकरी के लिये आवेदन किया था। हमें मालूम चला कि 'डी.व्ही.सी.' के डायरेक्टर, स्वामी जी के शिष्य हैं। इसी कारण हमलोग दीक्षा लेने आए थे। इससे वहां नौकरी पाने में सुविधा होती।' ('मन्दिर', ३१ वर्ष, से)

सद्‌गुरू, शिष्य का किस तरह उद्धार करते हैं? इस सम्बन्ध में स्वामी जी के अपने अनुभव का यहां उल्लेख किया जा रहा है–

एक शूद्र युवक के, सद्‌गुरू के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर स्वामी जी ने उससे कहा था–**''जिन्होंने सत्य एवं सत्य स्वरूप भगवान् को प्राप्त कर लिया है, उन्हें सद्‌गुरू कहते हैं। सद्‌गुरू, ईश्वर को प्राप्त करने का पथ प्रदर्शित करते हैं एवं जीव की ऊर्ध्वगति में सहायता करते हैं। शिष्य को वे सद्‌उपदेश प्रदान करते हैं एवं सत्य पथ पर चलने के लिये तमो और रजोगुण के प्रभाव से मुक्त करते हुए क्रमशः सत्वगुण में सुप्रतिष्ठित करते हैं। सद्‌गुरू सर्वदा साथ-साथ रहकर, हृदय के अन्दर से उपदेश प्रदान करते हैं। सद्‌गुरू, मनुष्य कभी नहीं हो सकते–वे स्वयं भगवान हैं। किसी सत्वगुण समन्वित, योग्य आधार में रहकर वे अपनी लीला करते हैं। जिस प्रकार बिजली का बल्ब विद्युत का आधार मात्र है। केवल बल्ब अपने से नहीं जलता। विद्युत के साथ योग होने पर बल्ब जल उठता है। उसी प्रकार वह महान् शक्ति, किसी विशुद्ध आधार का अवलम्बन कर अपना कार्य करती है। छोटे-बड़े विभिन्न प्रकार के आधार के मध्य से वे लीला कर रहे हैं। जिस प्रकार बल्ब बाहर से छोटा-बड़ा, नीला-पीला आदि विभिन्न रंगों में प्रकाशित होता है परन्तु उसमें विद्युत एक ही है। उसी तरह सद्‌गुरू विभिन्न आधारों में, विभिन्न रूप से, समग्र सृष्टि में अपना कार्य कर रहे हैं। तुम्हारा आधार जब प्रस्तुत होगा एवं शक्ति के साथ जब आधार का योग होगा, तब वह प्रकाशित होगा। तुम्हारे आधार को प्रस्तुत करो, आधार को प्रस्तुत करने के लिये विभिन्न नियम आदि हैं। गोसाँई जी ने जिन नियमों को कहा है वह आधार प्रस्तुत करने के लिये है।''**

दीक्षा पाने के पूर्व क्या किया जाए? इस प्रश्न के उत्तर में स्वामी जी ने उससे कहा–**''प्रणव मंत्र (ओंकार) का जप करो एवं नियमों का पालन करो।''**

शूद्र या स्त्री को क्या प्रणव मन्त्र का अधिकार है? इस प्रश्न पर स्वामी जी ने उससे कहा–**'प्रणव में सभी का अधिकार है। जन्म के समय शिशु प्रथम उच्चारण**

'ओं-मां, उँ-आ' करता हुआ कन्दन करता है। यह, अ-ऊ-म अर्थात् ओंकार का ही रूपान्तर है। गोस्वामी जी ने जिन्हें भी दीक्षा दी है, उन्हें प्रणव युक्त नाम दिया है। उनके निकट सभी धर्म के, सभी वर्ण के, सभी श्रेणी के नर-नारियों ने प्रणव समन्वित 'नाम' प्राप्त किया है। हमलोग भी सभी को प्रणव युक्त 'नाम' देते हैं। तुम निर्भय होकर प्रणव मन्त्र का जप कर सकते हो। प्रणव मन्त्र करते हुए तुम्हारा मन स्वच्छ होगा–उज्ज्वल होगा। प्रणव मन्त्र तुम्हें सब प्रकार से सहायता करेगा। बाद में यथा समय तुम्हें दीक्षा प्राप्त होगी।'

अन्य कई गुरू लोग शूद्र एवं स्त्रियों को प्रणव मन्त्र क्यो नहीं देते हैं? **स्वामी जी ने कहा–''क्यों नहीं देते हैं–यह मैं नहीं कह सकता। उनकी आलोचना करना मेरे अधिकार के बाहर है। मैं केवल अपनी बात कह सकता हूँ। मेरे गुरूदेव की पद्धति एवं उनके गुरूदेव की पद्धति के सम्बन्ध में जो कुछ मैं जानता हूँ–उसे कह सकता हूँ।''**

उसने पूछा–मेरे जैसे साधारण व्यक्ति का कुछ हो सकता है? स्वामी जी ने कहा–''क्यो नही होगा? अपने को शक्तिहीन मत समझो–नीच-जाति का मत समझो। तुम परमेश्वर के अंश हो। तुम छोटा, हीन या पतित नहीं हो। तुम शूद्र नहीं हो–मनुष्य हो। मानवता तुम्हारा धर्म है। सदाचारी होना तुम्हारा कर्म है। ब्रह्मचर्य पालन करना–तुम्हारी साधना है। विश्व को अपना समझकर सभी को गले लगाना अर्थात प्रेम करना–तुम्हारा समत्व ज्ञान है। सभी के भीतर तुम हो एवं तुम्हारे भीतर सब हैं–इस उपलब्धि को प्राप्त करने पर साधना की समाप्ति होती है। तुम्हारी जय हो।''

उस शूद्र युवक ने स्वामी जी से कहा था–''श्रीश्री गोस्वामी जी के उपदेश अमूल्य हैं। वे अपने जीवन में साधना द्वारा मानव से महामानव बन गए। गृहस्थ में रहकर उन्होंने संसार की आसक्ति को जय कर लिया था। अपने जीवन में उन्होंने जीवन्मुक्ति प्राप्त की थी। गृहस्थों में, निःसन्देह रूप से इस प्रकार का आदर्श देखने को नहीं मिलता।''

''मेरे मन में आता है कि यदि इस साधन पथ पर चल सकता, तो मैं भी अग्रसर हो जाता। परन्तु जब मैं अपनी गृहस्थी में, घर के लोगों की ओर देखता हूँ तो स्त्री, पुत्र, कन्या, मित्र आदि सब परस्पर विरोधी लगते हैं–सभी अपने-अपने स्वार्थ को पूर्ण करने के लिए केवल प्रयासरत हैं। उनकी उपेक्षा, अत्याचार आदि को सहन करते हुए जब मैं फिर से उनके निकट दासत्व स्वीकार करने को बाध्य हो जाता हूँ तब लज्जा-दुःख-अनुताप आने पर भी फिर से इसी की पुनरावृत्ति होती है। इस अवस्था में मुक्त नहीं हो सकता। कई साधु-महात्माओं के पास गया, सभी नामजप करने का उपदेश करते हैं।''

''नाम-जप करो यह सुनने में मधुर लगता है। परन्तु यह नाम कहां कर पा रहे हैं? जब घर में भोजन का अभाव हो–जब पुत्र-कन्या के स्कूल का शुल्क नहीं

दे पाता हूँ, तब 'नाम' स्मरण कहां होता है? महाराज! संसार में बहुत कष्ट है। किस प्रकार इस कष्ट से मुक्ति मिले?'' इस प्रकार कहते-कहते युवक की आँखां से अश्रु गिरने लगे। उसने कहा–''मैं नीच जाति का हूँ, इसी कारण क्या भगवान की करूणा से वंचित हूँ?''

स्वामीजी ने उस युवक को समझाते हुए एवं सांत्वना देते हुए कहा–''**ऐसा मत कहो–भगवान पतित-पावन हैं। उनके निकट कोई छोटा-बड़ा नहीं है। वे नारायण हैं–सभी के मध्य उनका अधिष्ठान है। वे हरि हैं–सभी के दुःख कष्टों का हरण करने के लिये वे सर्वदा व्यस्त हैं। वे तुम्हारे हृदय में हैं। तुम गुरूदेव को ढूँढ रहे हो–वे तुम्हारे हृदय में हैं। यह सत्य है कि 'नाम-जप' करने से उन्हें प्राप्त किया जा सकता है। 'नाम-साधना' ही इस युग के लिये श्रेष्ठ साधना है–सहज साधना है। परन्तु दवाई के साथ जिस तरह आवश्यक अनुपान जरूरी है, उसी तरह साधना के पथ में अग्रसर होने के लिये आवश्यक नियमों का पालन जरूरी है।''** काफी देर तक इस प्रकार की सांत्वना स्वामी जी से पाकर वह युवक चला गया।

युवक के चले जाने के पश्चात् स्वामी जी के मन में युवक के प्रश्न बार-बार आने लगे। इस साधन को प्राप्त कर अनेक लोग कृतार्थ हुए हैं। सैकड़ों पत्र नित्य स्वामी जी के पास आते रहते थे, जिसमें प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण, शिष्यगण नियमादि का उचित रूप पालन नहीं कर सकते थे। उनके विषय में चिन्ता करते हुए स्वामी जी भावमग्न से हो गए। अचानक अपने अन्दर उन्होंने एक वाणी सुनी–''**तुम चिन्ता क्यों कर रहे हो? मैंने तुम्हारे माध्यम से जिन्हें ग्रहण किया है–उनकी चिन्ता मुझे है। किस तरह से उन्हें मैं अन्तिम लक्ष्य में ले जा रहा हूँ–इसका अवलोकन करो।''**

उस तंद्राच्छन्न अवस्था में स्वामी जी ने जो देखा उसका वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया–''**गोस्वामी प्रभु अंगुष्ठ प्रमाण आत्माओं को सिर पर रखकर ले जा रहे हैं। विभिन्न संस्कार-युक्त आत्माएं अपने संस्कार वश परस्पर कलह कर रहे हैं–कोई-कोई झगड़ा करते हुए नीचे भी गिर रहे हैं। सद्गुरू उन्हें फिर से उठाकर सिर में रखकर, अग्रसर हो रहे हैं। मैं भी प्रभु के पीछे-पीछे चल रहा हूँ। आकाश पथ से विभिन्न दृश्य देखते हुए हम एक अपूर्व ज्योतिर्मय देश में पहुँचे। वहां सब कुछ आलोकमय था। वहां प्राणियों का शरीर ज्योतिर्मय एवं वाणी बिजली की तरह आलोकमय थी। उसकी ध्वनि न रहने पर भी उसकी उपलब्धि अर्थात् बोध होता था। सद्गुरू द्वारा सब आत्माओं को, एक विराट ज्योतिर्मय वेदी पर रखते ही वे सब ज्योतिर्मय हो गए। सभी सद्गुरू को प्रणाम करने लगे। बाद में, उनमें ही सब विलीन हो गए। ज्योति में ज्योति विलीन हो गई।''**

मेरी समझ में आया–हम लोगों की कोई क्षमता नहीं है। एक ही पथ पर चलकर, एक ही सद्गुरू के आश्रित होने पर भी हमलोग कितना कलह करते

हैं—कितना अकर्म-पापकर्म करते हैं। विभिन्न अवस्थाओं के भीतर से हमें तापों को सहन कराते हुए, जलाकर शुद्ध करते हुए, सद्‌गुरू हमारे प्रारब्धों को क्षय कराते हुए ले चल रहे हैं। देहत्याग के पश्चात् अर्थात जब संस्कारों के सहित शरीर का हम त्याग करते हैं तब इसके बाद वाले जीवन में इन संस्कारों को वे काट देते हैं। तत्परिवर्ती जीवन में वह संस्कार और क्षीण होकर, तृतीय जीवन में उसका अवसान हो जाता है। इसके पश्चात् जो सूक्ष्म संस्कार रहता है, उसे प्रभु अपने ऊपर लेकर अन्तिम लक्ष्य में ले जाकर समाप्त कर देते हैं।

अचानक मन में ऐसा विचार आया कि 'उस युवक को वापस भेज दिया—वह बहुत दुःख पाकर चला गया।' साथ ही साथ प्रभु ने कहा—''उसका अभी दीक्षा पाने का समय नहीं हुआ है। मैंने अन्दर से तुम्हें जो निर्देश दिया है, तुमने उसे केवल व्यक्त किया है। यथा समय वह इस दीक्षा को प्राप्त करेगा ।''

प्रभु के चरणों में प्रणाम किया और तंद्रा टूट गइ ('मन्दिर' २५ वर्ष, से)

स्वामी जी ने गोसाँई जी प्रदत्त दीक्षा के सम्बन्ध मे कहा है—''जिन लोगों ने गोस्वामी प्रभु की साधना प्राप्त की है, जिन्हें मिल रहा है और जो प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें निश्चित रूप से जानना आवश्यक है कि इस साधना में सांसारिक सुख-सुविधा, अर्थ, यश एवं अन्य सांसारिक सुख-सुविधाएं कभी प्राप्त नहीं होगी। इसके द्वारा जगत् के दुःख का अवसान होगा, दुर्भोग कट जाएगा। संसार के बन्धनों का अवसान होगा एवं पराशान्ति को प्राप्त कर जीव कृतार्थ होगा। जो गृहस्थ हैं उन्हें भगवान का नाम करते हुए, 'भगवान का संसार' ज्ञान से संसार की सेवा करते हुए चलना होगा। सर्वदा 'नाम' के साथ कर्तव्य कर्मों का सम्पादन करते हुए चलने पर कमशः स्वतः वानप्रस्थ एवं संन्यास की अवस्था प्राप्त होगी। सर्प की केंचुली की तरह सब आवरण अर्थात् आसक्ति विलग्न हो जाएगी। किसी भी प्रकार के प्रलोभन से अथवा किसी के अनुरोध से या अत्याचार-निर्यातन की वह परवाह नहीं करेगा। सब छोड़कर भगवान् को प्राप्त करने के लिये वह तीव्रता पूर्वक अग्रसर होगा। यह सब जानकर, तब इस साधना को ग्रहण करना उचित है। देखा-देखी, साधन लेना नहीं होता।'' ['मन्दिर' १८ वर्ष (पृ. ५६१)]

इस प्रसंग पर आलोचना करते हुए एक समय स्वामी जी ने कहा था—

''सर्वदा विचार करना चाहिये—भगवान हमें राजा की तरह आराम से रखे हैं। देखो, कितने लोगों के पास रहने को झोपड़ी तक नहीं है। दिन पर दिन उपवास कर रहे हैं। हमारी अपेक्षा वे कितने कष्ट एवं दुःख में हैं। इन्हें [illegible] हमें अपनी भोग की इच्छा का दमन करना चाहिये।

मेरे पास किसी रोग की दवा नहीं है। अर्थ कमाने का कोई मंत्र मुझे मालूम नहीं है। मेरे पास 'सब चले जाने' का मंत्र है। इस नश्वर जगत् के सब कुछ निःशेष

होंगे। सब बन्धन कट जाएंगे। दुःख, कष्ट, कठिनाई आदि की अग्नि परीक्षा के भीतर से प्रभु के राज्य में प्रवेश किया जाता है। पति मरेगा, स्त्री मरेगी, पुत्र-कन्या मरेंगे, विषय-सम्पत्ति सब नष्ट होंगे। उसके पश्चात् उस श्मशान के मध्य जाग उठेगा तुम्हारा अहं भावना से वर्जित 'मैं'। इस महान् 'मैं' को आत्मसात् कर प्रभु के चरणों में मैं पहुँचा दूंगा। वहां 'मैं' तुम में–'त्वं हि'–'त्वं हि' में परिवर्तित हो जाएगा।

भगवान् को प्राप्त करना है। उन्हें पाने के लिए सब आसक्तियों का विसर्जन करना होगा। चिन्ता करके देखो–किसके साथ किसका–क्या सम्बन्ध है? जिन्हें अपना-अपना कह रहे हो–जिनके लिये तुम 'हाय! हाय!' करते हुए मर रहे हो–कोई अपना नहीं है। अपना केवल 'नाम' है। 'नाम' लेकर पड़े रहो। नश्वर जड़-जगत् के सुख को पान का रास्ता मुझे मालूम नहीं अथवा कोई रोग की दवा मुझे मालूम नहीं है।"

किसी व्यक्ति ने कहा–'बाबा! दीक्षा के बाद तो अभाव-अशान्ति तथा दुःख, और अधिक क्यों बढ़ गया? स्वामी जी ने उत्तर दिया–

''यह तो बढ़ेगा ही। लकड़ी में अग्नि का संयोग किया गया है। सूखी लकड़ी होने पर उसी समय जलकर सब समाप्त होता है। कच्ची लकड़ी में रस रहने से, पहले वह रस शेष होगा। इसी कारण सब प्रकार के मोह-आसक्ति पहले नष्ट होंगे! यह साधना वहुत कठिन है–'मैं' अथवा 'मेरा' नाम का कुछ भी नहीं रहेगा। जिन्हें लेकर तुम मस्त हो, उनमें से कोई तुम्हारे साथ नहीं जाएगा–नंगा आए हो नंगा जाना होगा। सब छोड़कर जाना होगा इसलिये अभी से अभ्यास करो–तैयार रहो। भगवान के संसार में तुम सेवक या सेविका हो। सब कुछ उनका है। तुम्हारा केवल सेवा करने का अधिकार है। वे जो भी प्रदान करें–मालिक जैसा रख –उसी में आनन्दपूर्वक कार्य करते हुए चलना होगा। ['मन्दिर' २१ वर्ष, से]

(१०) भारत का भविष्य :

भविष्य में भारत की उन्नति के सम्बन्ध में स्वामी जी सर्वदा सचेष्ट थे। सन् १९५० ई. में योगी श्री अरविन्द के महासमाधि लेने के पश्चात्, रामचन्द्रपुर आश्रम में उन्हें अपनी श्रद्धांजली अर्पित करते हुए स्वामी जी ने कहा था–"भारत के स्वाधीनता आन्दोलन के प्रथम प्रवर्तक–कान्तिकारी युग के महान् कान्तिकारी–महान् तपस्वी– महान् साधक–वर्तमान युग के विश्ववरेण्य ऋषि अरविन्द–श्री भगवान के निर्देश से अविर्भूत हुए थे एवं 'उनका' ही कार्य सम्पूर्ण करने के लिये, कुछ दिनों के लिये उन्होंने इस जड़-जगत् से बिदा ग्रहण किया है। उन्नीसवीं शताब्दी के इस उज्ज्वल दिव्य प्रतिभा के द्वारा समग्र विश्व इतने दिनों तक प्रभावित रहा। श्री अरविन्द के आकस्मिक प्रयाण से समग्र भारत तथा विश्व शोकग्रस्त हो गया। परन्तु स्वतः प्रश्न उठ रहा है कि क्या हम वास्तविक रूप से श्री अरविन्द से विलग्न हो गए? जो साधना, जड़-सृष्टि के आवरण को भंग करते हुए, जड़-सृष्टि के ध्वंस स्तूप के ऊपर

नवीन दिव्य जगत्-सृष्टि के लिये, तत्पर था—जो साधना, विश्व के दुःख-दर्द, अत्याचार-अनाचार आदि को चूर्ण करते हुए समस्त सृष्टि के मध्य, चैतन्य के परिपूर्ण विकास को संभव करने के लिये प्रयासरत् था—उस आत्म-समाहित, आत्म-आनन्द में मग्न श्री अरविन्द का, क्या कभी महाप्रयाण हो सकता है? यदि तुम लोगों की वास्तविक दिव्यदृष्टि हो तो देखो! जड़-शरीर को त्यागकर ऋषि अरविन्द की ज्योतिर्मय सत्ता, आज समग्र विश्व मे कितनी अपार्थिव ज्योति विकीरण कर रही है। श्री अरविन्द ने अपनी दिव्य साधना के भीतर से, अपनी भावधारा के मध्य से, अपने को समग्र विश्व में फैला दिया है। अपनी अन्तर्दृष्टि से देखो—ऋषि अरविन्द का ज्योतिर्मय रूप तुम्हारे नेत्रों के समक्ष प्रकट होता हुआ दिखलाई पडेगा।''

''सामने एक प्रलयन्कर युग का आविर्भाव अवश्य होगा। जड़ जगत् के ऐश्वर्य में मदमत्त जाति-समुदाय, संग्राम की सूचना दे रहे हैं। जो अग्नि जल उठी है, वह धीरे-धीरे समग्र विश्व में व्याप्त होगी। भारतवर्ष केवल दर्शक के रूप में अपने को नहीं रख सकेगा। कान्ति की ज्वाला युक्त अग्निशिखा चारों तरफ व्याप्त हो उठेगी। उसके पश्चात् विश्व व्यापी ध्वंस लीला के मध्य होगा—इस जगत् का नवजन्म। उस नवजात विश्व को अध्यात्म भारत, ऋषियों का भारत, ब्रह्मज्ञों का भारत नवीन भावधारा में अभिषिक्त करते हुए, आध्यात्मवाद की नीव पर 'सत्य' के मंत्र में, दीक्षित करेगा।''

''विश्व के इस दुर्योगपूर्ण समय में, देवभूमि इस भारतवर्ष को नवीन रूप से गठन करने के लिये विदेही महान् साधक लोग विभिन्न लोकों में तपस्या में मग्न हैं। विभिन्न लोकों में महान् तपस्वी, सत्यद्रष्टा ब्रह्मज्ञ ऋषि, महर्षि संघ भारत के नवजन्म की प्रतीक्षा में योगमग्न हैं। एक ही समय में वे सब, भारत के विभिन्न स्थानों में एक साथ अवतीर्ण होंगे। ऋषि अरविन्द भी उनके साथ आविर्भूत होंगे—यह निश्चित है। इस शरीर में रहकर जितना क्षेत्र (आधार) प्रस्तुत करना सभव था, वे करके गए हैं।''

''हमलोग उनके शुभागमन के लिये प्रतीक्षा कर रहे हैं। किस तरह वे सब भारत के विभिन्न क्षेत्र में अवतीर्ण होकर धर्म राज्य की स्थापना करेंगे, उसे क्रमशः देखा जाएगा। हम भारतवर्ष के आवाल वृद्ध नर-नारी, उनकी अभ्यर्थना करने के लिये प्रस्तुत रहें।''

''आज इस आश्रम के प्राचीन पीपल वृक्ष की छाया में स्थिति आसन-पीठ में बैठकर उस ज्योतिर्मय रूप को मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। उन्हें हमारा प्रणाम करते हुए निवेदन कर रहा हूँ—''हे महान् भारत के महान् साधक! हे महर्षि!! तुमने विश्व के जड़ और चेतन—प्रति अणु-परमाणु की जो दिव्य एवं चैतन्यमय सत्ता में रूपान्तर की भविष्य-रूपरेखा, अपनी सत्यदृष्टि द्वारा अवलोकन की थी, ऋषि-संघ को लेकर जगत् के उस दिव्य रूप के प्रकाशमय महा-महोत्सव में आकर, तुम अपनी भविष्यवाणी की सार्थकता के मध्य, परिपूर्ण आनन्द प्राप्त करो।''

''सम्पूर्ण भारत, तुम लोगों के शुभागमन के पथ को, निहार रहा है—तुम सब अवतीर्ण हो।''

प्रश्नोत्तर : स्वामी जी के साथ प्रश्नोत्तर का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है—

(१) प्रश्न :- प्रातः एवं संध्या के समय लगभग एक घण्टा नाम एवं प्राणायाम करता हूँ। परन्तु एक आसन मे लगातार बैठना कष्ट-कर होता है। क्या विभिन्न प्रकार के आसन यथा पद्मासन, सिद्धासन आदि का अभ्यास कर सकते ह?

उत्तर : – प्रत्येक दिन एक ही प्रकार का आसन करते हुए साधना करना चाहिये। सहज सुखासन अथवा सिद्धासन जो तुम्हें अच्छा लगे, उस एक ही आसन में बैठकर नाम और प्राणायाम करना। सर्वदा श्वास-प्रश्वास में 'नाम' करने की चेष्टा करो—एक भी श्वास व्यर्थ न जाए। एक निर्दिष्ठ समय का रखना अच्छा है। साधना के आसन (अर्थात बैठने का तरीका) में परिवर्तन मत करना। जिस आसन में बैठोगे—उसी तरह बराबर बैठना।

(२) प्रश्न :— अन्य कार्य करते समय श्वास-प्रश्वास में 'नाम' बन्द हो जाता है, तब क्या करना चाहिए?

उत्तर :— कार्य करते समय मन में नाम-जप का अभ्यास करते-करते क्मशः 'नाम' अपने आप चलेगा। तब प्रयास करने की आवश्यकता भी नहीं रहेगी।

(३) प्रश्न :— निद्रा के बाद उठने पर ऐसा लगता है कि 'नाम' श्वास-प्रश्वास मे चल रहा है—ऐसा क्यों होता है?

उत्तर :— निद्रा के पश्चात् जागने पर 'नाम' यदि अपने-आप चले, तब समझना चाहिए कि निद्रित अवस्था में भी 'नाम' चल रहा था। 'नाम' सर्वदा निद्रा में, स्वप्न में एवं जागृत अवस्था में चलेगा।

(४) प्रश्न :— स्वप्न में गुरू दर्शन हुआ—क्या यह सत्य है?

उत्तर :— स्वप्न में गुरू दर्शन मिथ्या नहीं है। गुरू आवश्यकतानुसार विभिन्न रूप में एवं विभिन्न अवस्थाओं में दर्शन देते हैं।

(५) प्रश्न :— श्वास-प्रश्वास में 'नाम' करने पर अपने-आप कुम्भक क्यों होता है?

उत्तर :— 'नाम' करते-करते अपने-आप कुम्भक होगा। एकाग्र भावना से 'नाम' करने पर कुम्भक दीर्घ समय तक स्थाई होगा। इसका समय क्मशः बढ़ते-बढ़ते समाधि की अवस्था आती है।

(६) प्रश्न :— व्याकुल भावना से जब भगवान से प्रार्थना करता हूँ—रोता हूँ कि तुम मुझे दर्शन दो, उस समय श्वास-प्रश्वास में 'नाम' नहीं होता, तब क्या करें?

उत्तर :— व्याकुल अन्तःकरण से प्रार्थना ही तो श्रेष्ठ प्रार्थना है एवं मधुर साधन है। निश्वास बन्द होने पर भी समग्र नाम उस समय मन में होता रहता है। उस समय श्वास-प्रश्वास में 'नाम' का प्रश्न ही नहीं रहेगा।

(७) प्रश्न :– इस जीवन में, गृहस्थ में रहकर क्या भगवान् मिलेंगे?

उत्तरः– श्री भगवान् अवश्य मिलेंगे। सर्व रूप में 'उनका' दर्शन करना ही वास्तविक भगवत् दर्शन है। वे सर्वत्र, सर्व रूप में हैं–सब रूप ही उनका रूप है।

(८) प्रश्न :– समाधि का क्या अर्थ है?

उत्तर :– जब देह, मन, प्राण, बुद्धि, सब लय को प्राप्त होती हैं एवं एकमात्र भगवान् में मन स्थिर हो जाता है तब उस अवस्था को समाधि कहते हैं। उस समय बाह्यज्ञान नहीं रहता, केवल भगवान के स्वरूप का ज्ञान पूर्णतः रहता है।

(९) प्रश्न : गृहस्थ में रहकर क्या भगवत् प्राप्ति हो सकती है?

उत्तर :– अवश्य होगी । परन्तु एक कार्य करना होगा–यदि उचित रूप से वीर्यधारण एवं सत्य का पालन कर सको तो निश्चित भगवत् प्राप्ति होगी। अतीत की भूल-त्रुटियों की तरफ ध्यान मत दो। वर्तमान को, 'नाम' के द्वारा परिशुद्ध करते हुए भगवान के चरणों में अर्पण करो। नियमित साधना एवं सर्वदा श्वास-प्रश्वास में नाम-जप से वह होगा।

(१०) प्रश्न :– भगवत् दर्शन किस तरह होता है?

उत्तर :– प्रथम गुरू दर्शन होगा। उसके वाद कुलदेवता का दर्शन होगा–गुरू कुलदेवता में विलीन होंगे। इसके पश्चात् अन्य देव एवं देवियों का क्रमशः दर्शन होगा। सब परस्पर आपस में मिल जाएंगे । इसके पश्चात् भगवत् दर्शन होगा। उन्हें प्रणव मूर्ति में भी देखोगे, परन्तु वह, अक्षर के द्वारा जिस प्रकार ॐकार लिखा जाता है, उस प्रकार नहीं है–वह एक परम रमणीय रूप दर्शन है। कोई शिल्पी भगवान का रूप अंकित नहीं कर सकता। भगवान को कल्पना करते हुए देखने का प्रयास मत करो। वे स्वप्रकाश हैं–कृपापूर्वक अपने रमणीय रूप को लेकर वे दिखलाई देंगे। अपने प्रयास द्वारा कुछ भी नहीं होता–सम्पूर्ण उनकी कृपा के ऊपर निर्भर है। तुम केवल श्वास-प्रश्वास में 'नाम' करने का प्रयास करते जाओ–समय पर सब होगा।

(११) प्रश्न :– आपने एक ही आसन पर सर्वदा बैठने के लिये कहा है परन्तु एक घण्टे बाद बैठना कठिन हो जाता है। क्या करे ?

उत्तर–इस तरह बैठने का अभ्यास पहले तुम्हें नहीं था। इस कारण ऐसा होता है एवं पैर की हड्डियों व पेशियों में जोर पड़ने से दर्द होता है। बीच-बीच में उन स्थानों पर तेल से मालिश कर लेना। नियमित साधना करते रहने से फिर कष्ट नहीं होगा। पहले जितनी देर तक आराम से बैठ सकते है–वैठना। प्रत्येक दिन इसके साथ एक मिनट बढ़ाते रहने पर एक महिने में आधा घण्टा बढ़ जाएगा। इस तरह आसन में बैठने का समय भी बढ़ जाएगा और कष्ट भी नहीं होगा। धीरे-धीरे अभ्यास करते रहो, कमशः सब सहज हो जाएगा। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप की तरफ ज्यादा ध्यान देना। उससे समय पर सभी अवस्था प्राप्त हो जाएगी।

(१२) प्रश्न :– भगवान को व्याकुल होकर पुकारता हूँ परन्तु वे कहां हैं? उनका दर्शन क्यों नहीं मिलता?

उत्तर :–भगवान का 'नाम' करते-करते उनका दर्शन मिलता है। व्याकुल होकर एवं आर्तभावना से पुकारना होगा। परन्तु साधना पथ में चलना जब समाप्त होगा तभी उनका दर्शन होगा। मानलो, तुम यहां से बद्रीनाथ में बद्रीनारायण जी का दर्शन करने के लिये जा रहे हो। सर्वप्रथम, तुम्हें रास्ता तय कर अपनी शक्ति के हिसाब से अग्रसर होना पड़ेगा। जाने के अनेक पथ है यथा–पैदल, ट्रेन द्वारा, विमान द्वारा आदि विभिन्न उपाय हैं। श्री गुरु सहज पथ दिखला देते हैं एवं पथ में चलने के लिये आवश्यक खर्चा दे देते हैं। खर्चा लेकर श्रीगुरू निर्देशानुसार पथ में अग्रसर होना पड़ेगा । लक्ष्य रहेगा–बद्रीनारायण जी का दर्शन। पथ में चलते हुए अनेक प्रकार की बाधाएं आएंगी, अनेक प्रलोभन की वस्तुएं दिखलाई पड़ेगी, परन्तु किसी भी तरह से बद्ध होने से नहीं चलेगा। कुछ भी आए, तुम्हारे लक्ष्य भ्रष्ट होने से नहीं चलेगा। परन्तु रास्ते में थोड़ा सा अग्रसर होते ही यदि चिल्लाओ कि नारायण दर्शन दो। बद्रीनारायण जी दिखलाई नहीं दे रहे हैं। तो क्या वे दिखलाई पड़ेंगे? तुम्हें रास्ता पार करना ही पड़ेगा ।

जाते समय, मन में अत्यंत उत्साह, व्याकुलता एवं आर्तभावना चाहिये एवं श्रीगुरू प्रदत्त 'नाम' का अवलम्बन करते हुए, पथ में चलना समाप्त करना होगा। इस तरह जब बद्रीनारायण के मन्दिर में पहुँचकर अपनी आँखों के सामने नारायण जी का दर्शन करोगे, तब कृतार्थ हो जाओगे। उस समय, पथ में चलने का कष्ट सार्थक हुआ, ऐसा समझोगे।

श्रीगुरू प्रदर्शित पथ में चलो। वे तुम्हारे पथ प्रदर्शक हैं। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करते रहो, उचित समय पर भगवान का दर्शन मिलेगा। उन्हें सब प्रकार की भावना एवं सब रूपों के मध्य देखो। जगत् की सभी वस्तुओं में उनका दर्शन मिलेगा। उस समय किसी वृक्ष, मकान या किसी भी वस्तु की तरफ देखते हुए 'नाम' करने पर, उस वृक्ष या मकान में, उनका रूप प्रस्फुटित हो उठेगा। उन्हें देखकर धन्य हो जाओगे। निराश मत होना। श्वास-प्रश्वास में नाम करते रहो। समय पर सब होगा।

(१३) प्रश्न :- साधना करते हुए किसी दिन मन स्थिर होता है और किसी दिन बहुत प्रयास करने पर भी कुछ नहीं होता। ऐसा क्यों होता है?

उत्तर :– साधना पथ में चलते हुए कभी ऊँचे तो कभी नीचे पथ से अग्रसर होना पड़ेगा। इसी कारण इसे कठिन पथ कहते हैं। मानलो किसी पहाड़ पर चढ़ रहे हो। प्रथम चोटी पर पहुँच गए । इसे, बहुत उन्नति हुई समझकर, बहुत आनन्द हुआ। इसके बाद की चोटी, और ऊँची है। परन्तु पहले इस चोटी से उतरकर, फिर उस पर चढ़ना पड़ेगा। जब नीच उतरे तब यदि सोचने लगे कि मेरी अवनति हो रही है तो भगवान के निकट अपराधी माने जाओगे। क्योंकि ऊँचे पर्वत पर चढ़ने की यह पूर्व

अवस्था है। पहले पर्वत से नीचे न उतरकर तुम दूसरे ऊँचे पर्वत पर किस तरह चढ़ोगे?

'नाम' को पकड़े रहो। श्वास-प्रश्वास में नाम करो। इस तरह करते रहने पर तुम निश्चित रूप से उन्नति की ओर अग्रसर हो रहे हो। याद रखना, नीचे उतरना, उन्नति का ही सोपान है। परन्तु 'नाम' को अवलम्बन रखना पड़ेगा। श्री भगवान करूणामय हैं, वे हमारा मंगल करेंगे। इस साधना पथ में एक वार चलना आरम्भ करने पर उसे फिर पीछे नहीं होना पड़ता—वह अग्रसर होता रहता है।

(१४) प्रश्न :— भोजन, लोगों से मिलना, विभिन्न स्थानों का भ्रमण, इन सबका साधना में सरसता अथवा निरसता के साथ क्या किसी प्रकार का सम्बन्ध है? सर्वदा नाम-जप क्या संभव है।

उत्तर :— अवश्य। यह भोजन पर अधिक निर्भर है। प्राचीन ऋषि लोग, आहार के ऊपर विशेष ध्यान देने का निर्देश देते थे। परन्तु हमलोग इस पर दृढ़ता नहीं रख पाते। गृहस्थी के भीतर रहकर साधना करने पर कुछ अनियमों का होना स्वाभाविक है। परन्तु सात्विक आहार पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। ऑफिस, ट्रेन, बस, रास्ते में विभिन्न प्रकृति के लोगों के साथ मिलने-जुलने से एवं संसार के विरूद्ध-परिवेश के बीच रहने से, कभी-कभी मन विचलित हो सकता है। परन्तु इसे लेकर ज्यादा चिन्ता करना अनावश्यक है।

सर्वदा श्वास-प्रश्वास में नाम करते रहो। सब कुछ छूट जाएगा। श्वास-प्रश्वास में नाम करने पर, मन में कितनी शक्ति प्राप्त होती है सुनोगे? तुम लोग ऑफिस या गृहस्थी के भीतर कितना काम करते हो? मैं सारे दिन-रात में विभिन्न प्रकार के कार्यों के मध्य व्यस्त रहता हूँ परन्तु 'नाम' को कभी नहीं भूलता। 'नाम' सर्वदा श्वास-प्रश्वास में चलता रहता है। एक भी श्वास वृथा नहीं जाती—'नाम' अपने-आप चलता रहता है। एक दिन मैंने परीक्षा करके देखा कि विभिन्न कार्यों के भीतर रहते हुए भी 'नाम' का विस्मरण न हो। जैसे—(१) किसी स्थान पर भजन-कीर्तन चल रहा था। मैं भजन के ताल को ध्यान रखते हुए उसके शब्दों के अर्थ को समझकर याद रखा। बाद में भजन के शब्दों को अक्षरशः कहा था।

(२) प्रायः दो सौ पन्ने की पुस्तक के प्रूफ का संशोधन उस समय किया।

(३) धर्म पर, विभिन्न लोगों के प्रश्नों का उत्तर भी देता रहा।

(४) इसके साथ में नाम-जप करता रहा।

विभिन्न कार्यों के साथ-साथ 'नाम' भी चल रहा था। 'नाम' उचित रूप से हो रहा है कि नहीं, इसे जानने के लिये अपने पेट एवं हृदय की ओर कुछ लोगों को लगातार दृष्टि रखने के लिए कहा था। एक साथ विभिन्न प्रकार के कार्यों को करता हुआ, सब प्रकार के शब्दों को याद रखा था। बाद में मैंने सब कुछ ठीक-ठीक बतला

दिया था। सभी ने स्वीकार किया था कि श्वास-प्रश्वास में 'नाम' ठीक से हो रहा था, क्योंकि उन्होंने पेट एवं हृदय के स्पन्दन को सर्वदा एक विशेष प्रकार से होते हुए देखा था।

(१५) प्रश्न :– कभी-कभी 'नाम' जप करने पर आनन्द मिलता है परन्तु कई बार 'नाम' करने में उकताहट आती है—ऐसा क्यों होता है?

उत्तर :– पित्त के रोगी की दवा मिश्री है। मिश्री मीठी होने पर भी पित्त के रोगी को कड़वी लगती है । परन्तु क्रमशः मिश्री खाते-खाते पित्त का रोग अच्छा होता है एवं मिश्री भी मीठी लगती है। इसी तरह इस भव-व्याधि के लिये 'नाम' ही एक मात्र उपाय और औषधि है। प्राथमिक तौर पर अच्छा न लगने पर भी जबर्दस्ती 'नाम' करना चाहिये। 'नाम' करते हुए भव-व्याधि भी अच्छी होती है और 'नाम' भी मीठा लगता है। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में नाम करने पर, साधना की चरम अवस्था प्राप्त होती है। भगवान भी मिल जाते हैं।

कई बार, साधना पथ में चलते हुए मन कभी-कभी थक जाता है एवं वह कुछ विश्राम चाहता है। इस कारण थोड़े समय के लिये 'नाम' बन्द रहने के पश्चात् पूर्ण उद्यम से नाम चलता रहता है। जिस प्रकार से कोई पथिक, चलते हुए थक जाने पर किसी वृक्ष के नीचे थोड़ी देर विश्राम कर लेता है। इसके पश्चात् थकावट दूर होने पर वह पुनः नये उद्यम एवं उत्साह के साथ चलना प्रारम्भ करता है। जब तक लक्ष्य में न पहुँच जाए तब तक उसका चलना समाप्त नहीं होता। केवल बीच-बीच में थोड़ी देर विश्राम करते हुए अपनी थकान को दूर कर लेता है। इसी प्रकार साधक का ध्येय है—भगवान की प्राप्ति । साधक, साधना पथ में चलते हुए थक जाने पर थोड़ा विश्राम लेकर, पुनः चलता रहता है। इससे साधन पथ में अग्रसर होना बन्द नहीं होता। 'नाम' तो सर्वदा चलते रहेगा, उसका विराम या विश्राम नहीं है। जब तक साधक भगवान का दर्शन न कर ले, उसकी साधना चलती रहेगी। परन्तु रास्ते में चलते हुए किसी स्थान पर आसक्ति द्वारा आबद्ध होने पर (फँस जाने पर) फिर जीवन में भगवत् दर्शन नहीं मिलता।

लक्ष्य स्थिर कर नाम करते हुए चलो—इसी जीवन में सिद्धि प्राप्ति होगी।

(१६) प्रश्न :– कर्म, कितने दिनों तक करना होगा?

उत्तर—जब तक चित्तशुद्धि होकर वैराग्य का उदय न हो जाए उतने दिनों तक यत्नपूर्वक श्रद्धा सहित कर्म करते रहो। जितने दिनों तक 'शम' अर्थात् अन्तर्रेन्द्रियों का दमन, 'दम' अर्थात बाह्य इन्द्रियों का दमन, 'तितिक्षा' अर्थात शीत-उष्ण आदि द्वन्दों को सहना, 'वैराग्य' अर्थात इस लोक एवं परलोक के भोग की आकांक्षा का त्याग, 'सत्व' अर्थात अन्तःकरण की सत्वशुद्धि न हो जाए तब तक कर्तव्य कमा का पालन आवश्यक है। इसके पश्चात् आवश्यक नहीं है।

(१७) प्रश्न :– संन्यास की अवस्था कब प्राप्त होती है?

उत्तर :– कर्म समाप्त होने पर संन्यास की प्राप्ति होती है।

(१८) प्रश्न :– ब्रह्म प्राप्ति का उपाय क्या है?

उत्तर :– श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन। श्री गुरू ही ब्रह्म प्राप्ति के पथ के एकमात्र पथ प्रदर्शक हैं। जीवात्मा एवं परमात्मा की एकता ही ब्रह्म के साथ एकता है। जीव एवं ब्रह्म की एकता को–'असि' कहते हैं। 'तत्' अर्थात परमात्मा (शुद्ध 'मैं') अर्थात ब्रह्म, 'त्वं' पद का अर्थ देहाभिमानी जीव है। इस ब्रह्म एवं जीव की एकता ही 'असि' है। इसे ही 'तत्-त्वमसि' कहते हैं।

[इसे ही श्री रामकृष्ण देव ने पक्का 'मैं' एवं कच्चा 'मैं' कहा है। अर्थात सभी प्रकार के पाश (आसक्ति) से मुक्त को 'शिव' कहते हैं एवं देहात्म वोध से युक्त को 'जीव' कहते हैं। –लेखक]

(१९) प्रश्न :–सम्पद् एवं विपद् अर्थात विपत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर :– जो घटना 'सम्' अर्थात् सम्पूर्णतः श्रेष्ठतम वस्तु अर्थात 'ब्रह्म' की ओर 'पद' अर्थात गमन करे, उसे ही सम्पद् कहा जाता है और जो विपरीत दिशा में गमन करता है उसे 'विपद्' कहा जाता है। 'ब्रह्म' दर्शन ही सम्पद् है, उसके विपरीत ही 'विपद्' है। विपद् हमारा मित्र जैसा ही है, क्योंकि वह हमारे चित्त को भगवान की ओर ले जाता है–उसी तरफ ले जाने में सहायता करता है। गुणातीत अर्थात सत्व-रज-तम इन तीनों गुणों के अतीत होने पर फिर विपद् का डर नहीं रहता। देहात्म वोध नष्ट होने पर सुख और दुःख जनित् कोई भी कष्ट का अनुभव नहीं रहता। शारीरिक सुख या दुःख आने पर भी चित्त में विक्षोभ अर्थात चंचलता नहीं रहती।

भावार्थ :– विपद् भी सहायक है–इसका अर्थ है कि विपत्ति के समय निराश्रय एवं दीन भावना के आने पर मनुष्य ईश्वर को स्मरण करने में बाध्य हो जाता है एवं ईश्वर की कृपा प्राप्त करता है। महाभारत में माता कुन्ती इसी कारण भगवान श्री कृष्ण से प्रार्थना करती है कि "मैं सर्वदा विपत्तियों में पड़ती रहूँ।"क्योंकि विपत्ति के समय भगवान श्रीकृष्ण सर्वदा उनके साथ रहकर, प्रत्यक्ष रूप से सहायता करते थे।

(२०) प्रश्न :– कुछ सम्प्रदाय की साधनाओं में मांस, अंडे, प्याज, आदि तामसिक वस्तुओं का भोजन निषिद्ध नहीं है, परन्तु गोस्वामी जी प्रदत्त साधना में इन वस्तुओं का सेवन निषिद्ध क्यों माना जाता है?

उत्तर :– किसी धर्ममत की निन्दा मत करो। 'मधु' अच्छा एवं उपकारी खाद्य है एवं 'घी' भी उपकारी खाद्य है, इन्हें कोई खराव नहीं कहेगा। पर घी एवं मधु एक साथ यदि खाया जाए तो शरीर में विष जैसी किया होती है–इसे विरूद्ध भोजन माना जाता है।

मनुष्य की चिन्ता के अनुसार शरीर में एक-एक प्रकार के 'रस' का संचार होता है। रसगुल्ला की चिन्ता करने पर जीभ पर एक प्रकार की अनुभूति होगी एवं इमली की चिन्ता से अन्य प्रकार का अनुभव होगा। इसी तरह मनुष्य की चिन्ता के प्रभाव से शरीर में विभिन्न 'रस' उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए श्रीरामकृष्ण देव के सम्प्रदाय में जिस मन्त्र का ध्यान किया जाता है अथवा अन्य किसी तन्त्र मत के मंत्रों के ध्यान से, शरीर में जिस रस का संचार होता है –मांस, अंडे अथवा प्याज खाने पर शरीर में जो रस उत्पन्न होता है, उनमें कोई विरोध नहीं है अर्थात इन वस्तुओं के सेवन से विरूद्ध 'रस' की उत्पत्ति नहीं होती है। इसी कारण तन्त्र मत के अनुसार साधना करने पर मांस, अंडे अथवा प्याज खाने से कोई हानि नहीं होती है।

पर वैष्णव साधनाओं में मन्त्रों के जप एवं ध्यान के फलस्वरूप शरीर में जिस 'रस' का संचार होता है, वह मांस, अंडे, प्याज आदि भोजन द्वारा जिस 'रस' का संचार होता है उसके विपरीत धर्मी है। इन दोनों प्रकार के 'रस' के मिलन पर शरीर में जो विषकिया होती है, उसके प्रभाव से शरीर शीघ्र अस्वस्थ हो जाता है। इसी कारण वैष्णव मत की साधनाओं में शाकाहारी भोजन की व्यवस्था है।

गोसाँई जी की साधना में जिस किसी व्यक्ति के हाथ का बना अन्न अथवा जल ग्रहण निषेध है क्योंकि अन्न के साथ अन्न बनाने एवं परोसने वालों के गुण-दोष, भोजन करने वाले के भीतर अनिष्ट प्रभाव उत्पन्न करते हैं। किसी असत् व्यक्ति या दस्यु प्रवृत्ति के व्यक्ति का अन्न ग्रहन करने पर, अन्न ग्रहण करने वाले के भीतर, असत् या दस्यु प्रवृत्ति संकमित होती है। पर उस वस्तु को यदि मूल्य देकर क्य किया जाए तो उसका खराब गुण (स्पर्श-दोष) नष्ट हो जाता है।

कुछ लोग स्वामी विवेकानन्द जी का उदाहरण देते हुए मांस, अंडे, प्याज आदि तामसिक वस्तुओं का भोजन करते हैं। लेखक द्वारा संगृहीत निम्न विचार प्रस्तुत है–उल्लखनीय है कि 'आहार-मीमांसा' या 'खाद्याखाद्य-विचार' की व्याख्या करते हुए **स्वामी विवेकानन्द जी** ने कहा है–"हमारे शरीर और मन की शक्तियों का निर्माण करने वाली समग्र समस्त संजीवनी शक्तियां हमारे भोजन के भीतर ही रहती है। कुछ विशेष प्रकार के आहार हमारे मन में विशेष प्रकार के विकार उत्पन्न करते हैं। हम जिन दुःखों को भोग रह हैं, उनका बहुतेरा अंश हमें अपने खाए हुए भोजन द्वारा ही प्राप्त होता है। अधिक मात्रा में तथा दुष्पाच्य पदार्थ खा लेने के उपरान्त हम देखते हैं कि मन को काबु में रखना कठिन हो जाता है। उत्तेजक वस्तुओं यथा मांस आदि का परित्याग करना चाहिये, क्योंकि यह स्वभावतः अपवित्र वस्तु है। **मांस-भक्षण का अधिकार उन्हीं मनुष्यों को है जो बहुत कठिन परिश्रम करते हैं और भक्त होना नहीं चाहते। पर यदि आप भक्त होना चाहते हैं, तो आपको मांस, सभी उत्तेजक भोजन यथा प्याज, लहसून तथा सभी दुर्गन्धयुक्त पदाथो का त्याग करना चाहिये।"**

''प्रत्येक मनुष्य का अपना एक वातावरण (aura) होता है और जिस वस्तु को वह छुता है, उस वस्तु के साथ मानों उस मनुष्य की प्रकृति या आचरण का कुछ अंश, कुछ प्रभाव रह जाता है। अतः दुष्ट प्रकृति के मनुष्य या दुराचारी मनुष्य द्वारा बनाए भोजन तथा ऐसे मनुष्य के साथ बैठकर भोजन न करें।''

''इसके अतिरिक्त, मैल या धूल इत्यादि भोजन में न हो तथा किसी का उच्छिष्ट (जूठा) भोजन भी नहीं करना चाहिये। आहार में इन वर्जित वातों का त्याग कर देने से आहार की शुद्धि होती है। आहार की शुद्धि से मनःशुद्धि और मनःशुद्धि से परमात्मा का सतत और निरन्तर स्मरण होता है।''

'आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः।'

(दृष्टव्य: 'प्रेमयोग'—स्वामी विवेकानन्द, सोलहवां संस्करण, पृ० २-५)

अध्याय ३२ : स्वामी जी के प्रवचन

१–शरद् पूर्णिमा के अवसर पर (सन् १९५४ ई.)

यह आश्रम मेरे जीवन का कर्म स्थल, साधना स्थल एवं सिद्धि स्थल है। यहां के इस प्राचीन पीपल वृक्ष की तरह शान्त रहते हुए, सभी प्रकार के तूफान-वजाघात को सहन करते हुए, केवल सभी के स्नेह सम्पद् का मैं आहरण करना चाहता हूँ। इस वृक्ष ने मुझे कई प्रकार की शिक्षा, शक्ति एवं प्रेरणा दी है। इस वृक्ष के ऊपर कितना वज्राघात हुआ, इसकी शाखाओं को लोगों ने निर्ममतापूर्वक काटा है, आवश्यक-अनावश्यक रूप से पत्र एवं शाखाओं को इसके शरीर से कई बार वियुक्त किया गया, कितने पत्थर का आघात इसने सहन किया, परन्तु इस महास्थविर वृक्ष ने, निरव एवं निश्चल रहते हुए सभी को छाया प्रदान किया। इस वृक्ष ने, मेरे जीवन में शिक्षा गुरू का कार्य किया है।

मेरे गुरूदेव दरवेश जी ने यहां आकर इसे देखते ही कहा था–''यह मेरा कितना प्राचीन परिचित स्थान है।'' ऐसा कहकर उन्होंने इसका आलिंगन किया था। यह सब देखकर ऐसा लगा कि दो मित्र सैकड़ों वर्ष की स्मृति को लेकर आपस में गले मिल रहे हैं। दरवेश जी ने कहा था–''इस प्राचीन पीपल को देखो! कितने राजा-महाराजा, धनी-निर्धन, कितने साधक महात्मा, भक्त-ज्ञानी, तांत्रिक-योगी आदि इसके नीचे आए। इन सबके आगमन के समन्वय की ध्वनि इसके प्रत्येक शिराओं में है।'' इसके पश्चात् पंचमुंडी आसन में खड़े होकर उन्होंने घोषणा की–

''यहां से हरिनाम-संकीर्तन की जो ध्वनि उठेगी–वह सम्पूर्ण भारत में व्याप्त होगी। यह स्थान एक दिन तीर्थ स्थान बन जाएगा! मैं कह रहा हूँ कि इस स्थान पर सहस्त्र-सहस्त्र नर-नारी मुक्ति लाभ करने का मंत्र प्राप्त करेंगे!!''

दूसरी बार जब दरवेश जी को स्टेशन से संकीर्तन के साथ यहां लाया गया तब यह आसन वेदी पक्का बन गया था। उन्होंने कहा था–**''मेरा स्वप्न पूर्ण हो रहा है। यहां से एक दिन हरिनाम-संकीर्तन निकलेगा एवं वह संकीर्तन, जिस पथ से श्रीचैतन्य महाप्रभु नृत्य करते हुए गये थे उसी पथ का अनुसरण करेगा।''** उस समय भावमग्न दरवेश जी की नेत्रों से प्रेमाश्रु निकल रहा था।

छत्तीस वर्ष पूर्व, भारत की स्वाधीनता के लिये यहां प्रतिज्ञा मंत्र का पाठ करते हुए आश्रम की प्रतिष्ठा की गई थी। आज से लगभग चौदह वर्ष पूर्व, गुरूदेव ने आकर यहां आश्रम को नवजीवन प्रदान करते हुए इसकी पुनः प्रतिष्ठा की। दूसरी बार जब वे आए तब दो सप्ताह रहे। गहन रात्रि में वे पंचमुंडी आसन में बैठते थे। मैंने उस समय कई अशरीरी आत्माओं को उनके निकट देखा था।

इस आश्रम की प्रतिष्ठा के पश्चात् यहां के नियम-कानून के सम्बन्ध में कुछ लोगों की आलोचना के उत्तर में दरवेश जी ने कहा था–''**उसके लिए किसी प्रकार के नियम-कानून की आवश्यकता नहीं है। जो मिलेगा वही भोग निवेदन किया जाएगा। वह जब कर सकेगा तभी पूजा करेगा। बाहरी अनुष्ठान उसके लिये अनावश्यक है। उसके मन की पूजा चल रही है। उसे मैंने सभी प्रकार के विधि-निषेध से मुक्त रखा है। उसकी जैसी इच्छा होगी वैसा करेगा। उसके सभी दुःख समाप्त हो! मैं उसके सभी दुःखां को सहन करूँगा! मैं उसे सभी तरह से मुक्त रखना चाहूँगा!!**

दरवेश जी की उपरोक्त बात सुनकर जब मैं रोता हुआ उनके चरणो में गिर पड़ा तब उन्होंने कहा था–''**तुम्हारी गति सर्वत्र हो! तुम जो चाहोगे वही होगा!!जो संकल्प करोगे सिद्ध होगा!!! मैं सर्वदा तुम्हारे साथ रहूँगा!!!**''

''तुम अपने अश्रु द्वारा उनकी पूजा करो। अश्रु तुम्हारे जीवन का साथी हो! यह देखो–मेरे गुरूदेव वृक्ष के नीचे ज्योतिर्मय रूप लेकर बैठे हैं! वे हँस रहे हैं–तुम सभी को आशीर्वाद दे रहे हैं!!

''मेरे गुरूदेव सर्वदा सभी कर्मो में, सभी चिन्ता के मध्य एवं सभी रूपों में विराजित हैं! यह देखो–वे तुम सभी के भीतर विलीन हो गए!! मेरे इष्ट देवता तुम्हारे भीतर हैं। मेरा हार्दिक प्रणाम तुम सब ग्रहण करो! तुम सब मेरे गुरूदेव के अभिन्न रूप हो। तुम लोगों का शरीर मेरे गुरूदेव का मन्दिर है–तुम सबको प्रणाम करता हूँ!'

इस आश्रम का क्या उद्देश्य है? ऐसा प्रश्न कई लोग करते हैं। यहां का उद्देश्य है–हम सब यहां एक साथ भगवान का 'नाम' स्मरण करेंगे। हम गोसाँई जी के आदर्श का प्रचार करेंगे–उनके आदर्श की पूजा करेंगे। हमारा अपना कोई दल या सम्प्रदाय नहीं है। गोसाँई जी ने कहा है–''सभी सम्प्रदाय उनका सम्प्रदाय है, सभी दल उनका दल है। हम सभी के उत्सव में योगदान करेंगे एवं प्रसाद ग्रहण करेगे।''

मेरे प्रभु सर्वत्र हैं–अणु-परमाणु सभी उनका रूप है। सर्वत्र उनके प्रेम रूप की लीला चल रही है। हम सर्वत्र उनकी पूजा करेंगे। सभी को प्रणाम करेंगे। हमारे निकट संसार तुच्छ नहीं है। संसार भगवान का ही रूप है। संसार की सेवा भगवान् की सेवा है। सब कार्य उन्हीं का कार्य है। जो सृष्टिकर्त्ता हैं वे सृष्टि के बाहर नही हैं। तुम लोग संसार के भीतर रहते हुए उन्हें प्राप्त करोगे। संसार के कार्यों को 'उनका' कार्य है–ऐसा समझकर करो। संसार को 'उनका' संसार है–ऐसा समझकर, अपनी सेवा को अच्छी तरह पवित्र भावना से निवेदन करो। वे उसे अवश्य ग्रहण करेंगे।

मेरे गुरूदेव ने मुझे तुम लोगों की सेवा का भार दिये हैं। मैं गुरू नही हूँ–गुरू वे हैं। मैं दीन सेवक हूँ। तुम लोगों की सेवा द्वारा मैं उनकी सेवा कर रहा हूँ। मैं तुम लोगों को अपने सिर पर लेकर मन्दिर में ले जा रहा हूँ। जीवन में उत्थान-पतन रहेगा। पर्वत की चोटी में चढ़ने के लिये कई चढ़ाव-उतार पार करना होगा। हताश

एवं भय की भावना मत रखो। तुम सब अग्रसर होते रहो। तुम्हारे ह्रदय में शक्तिपूर्ण महामंत्र ध्वनित हो। सामने तुम्हारा लक्ष्य है! तुम आगे बढ़ो—तुम्हारे पथ में मैं अपने को बिछाकर रखूँगा, जिससे पत्थर-कंकड-काँटों से तुम्हारे शरीर को चोट न पहुँचे। मैं तुम्हारे पथ का मित्र हूँ—सेवक हूँ! मैं तुम्हारे जीवन-मृत्यु की यात्रा पथ में प्रतिदिन, प्रत्येक अवस्था में अभिन्न, सुह्रद एवं सेवक हूँ। मुझे तुम इसी प्रकार ग्रहण करना।

मेर पास असंख्य लोग आते हैं। मैं केवल एक बात सबसे कहता हूँ—**''ह्रदय खोलकर हँसो और सभी को अपार प्रेम से गले लगा लो।''**

मैं सभी को ह्रदय से लगा लेता हूँ। नर-नारी ज्ञान नहो रहता। इसी कारण अखिल विश्व की माताएं, इस सन्तान के लिये व्याकुल रहती हैं। मैं उनकी बातें सोचकर धन्य हो जाता हूँ। मेरे बाल्यजीवन, छात्रजीवन एवं कर्मजीवन के सम्बन्ध में जो लोग जानते हैं उन्हें मालूम है कि माताएं सभी दुःख कष्टो से मेरी रक्षा की हैं। सभी माताओं के भीतर मैं अपनी स्वर्गगता माँ का रूप ही देखता हूँ एवं उन्हें प्रणाम करता हूँ।

आश्रम के उद्देश्य के सम्बन्ध में कहते हुए मैं अन्य प्रसंग में आ गया। इस आश्रम का उद्देश्य है—सभी के भीतर 'उनका' दर्शन करना एवं सभी कार्यों के माध्यम से 'उनकी' ही सेवा करना । गोस्वामी प्रभु के मधुर असाम्प्रदायिकधर्म एवं उनके आदर्शों की पूजा ही हमारा कर्तव्य है। गोस्वामी जी के धर्म में संकीर्णता का स्थान नहीं है। इसी कारण यही धर्म एक दिन विश्व में सभी के धर्म के रूप में गृहीत होगा। सभी धर्म—सभी सम्प्रदाय के लोग इस महोत्सव में योगदान कर सकते हैं एवं मन्दिर में प्रसाद ग्रहण कर सकते हैं।

आज मैं उच्च कण्ठ से घोषणा कर रहा हूँ—**''ऐसा एक दिन आएगा जिस दिन मेरे गोसाँई जी का धर्म सभी लोग ग्रहण करेंगे।''**

मेरे जीवन में एक दिन मेरा देश ही मेरे लिये भगवान हो गया था। उस दिन से देश की सेवा, देश के मनुष्य की सेवा 'भगवान की सेवा' ज्ञान से मैंने किया। उस समय वृन्दावन के प्रेममय भगवान, कुरूक्षेत्र के पार्थसारथी के रूप में आविर्भूत हुए थे। मेरा चित्त संग्राम की उत्तेजना एवं उमंग से उस समय भर गया था। मेरा कान्तिकारी मन, जो नौ वर्ष की उम्र से तैयार हो रहा था—कमंशः वह हिंसायुक्त अर्थात सशस्त्र-संग्राम की ओर चला। इसके पश्चात् वह अहिंसा के मंत्र की उपासना करने लगा। राजनैतिक आन्दोलन का प्रवाह सत्य-प्रेम-अहिंसा के मंत्र के साथ इष्ट मंत्र के जप से मैंने अपने मन में 'साम्यावस्था' की प्राप्ति की। इसी कारण जब पुलिस ने मेरे ऊपर अत्याचार किया, उस समय मेरा मन कह उठा था—'इन्हें क्षमा करो—हे भगवान्, मेरे जीवन के बदले मेरे देश को निर्मल, पवित्र एवं स्वाधीन करो!' इस जमीन पर कितना संघर्ष आदि हुआ था, वहो आज तुम लोगों के स्नेह का अमृत पान कर रहा हूँ।

विश्व के अणु-परमाणु में जो भगवान हैं वे सुख-दुःख, आनन्द-अश्रु में, ब्राह्मण-शूद्र में, सब प्राणियों में, सर्व अवस्था में, सर्वत्र विराजमान हैं। कितनी बार मृत्यु का आनन्द पूर्वक स्वागत् किया, परन्तु 'उन्होंने' मुझे वापस कर दिया। मैंने मृत्यु के पश्चात् जो लोक हैं, उसे देखा है। गहन अन्धकार को पार करते हुए जो अमृत लोक है, उसका स्पर्श मुझे मिला है। उसे पाकर मैं कृतार्थ हो गया। जिस प्रेम ने मुझे पागल बना दिया, आज उसी प्रेम का प्रचार कार्य मेरा प्रमुख कार्य है। इस प्रेम के दाता गोसाँई जी हैं। मेरी केवल यही प्रार्थना है कि तुम लोग उन्हें मत भूलो–उनका 'नाम' लेते हुए सब कार्य करो। मैं अपने कर्म-जाल को संक्षिप्त करते हुए यथा शीघ्र वृन्दावन के पथ में अग्रसर होऊँगा।

आज चारों तरफ आश्रम बनते जा रहे हैं। परन्तु वह टिकेगा नही, यदि उसमें आश्रम की प्राणशक्ति अर्थात् आदर्श न रहे। आडम्बर हीनता एवं प्राणशक्ति का संचय ही आश्रम की रक्षा कर सकता है। हमारे प्रत्येक प्रतिष्ठान अहंकार, आडम्बर एवं अभिमान वर्जित होना चाहिये । मैं अपनी इच्छा केवल व्यक्त कर सकता हूँ–परिचालक वे ही हैं।

तुम्हारा लक्ष्य, प्रभु के आदर्श का पालन करना होना चाहिये। सभी प्रकार के कलह अशान्ति से दूर रहकर अपने कर्तव्य को सुन्दर रूप से पालन करते हुए तुम लोग शान्त-सुन्दर-द्वन्द्वातीत अवस्था को प्राप्त करो। 'नाम' के अवलम्बन से 'नामी' अर्थात इष्ट को प्राप्त करो। तुम्हारा संसार तुम्हारे साधन का क्षेत्र हो । यह आश्रम गृहस्थ साधक एवं संसार त्यागी साधुओं का मिलन क्षेत्र हो एवं इसका लाभ सभी श्रेणी के मनुष्य उठाएं।

सर्वदा याद रखना, जो जैसा कर्म करेगा उसे वैसा फल मिलेगा। दूसरों को छोटा करने में, दूसरों की आलोचना से क्या मिलेगा? मैं तुम सबसे अनुरोध करता हूँ–परनिन्दा एवं दूसरों की चर्चा को त्याग दो। सभी को प्रेम पूर्वक गले लगाओ–इसका अभ्यास करो। लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनी दृष्टि लक्ष्य की ओर सर्वदा रखना होगा। तुम्हारा मन प्राण सब एक लक्ष्य में नियोजित हो!

संसार के मध्य रहते हुए तुम साधना करते रहो। यदि तुम सरलता एवं सत्य का पालन करते रहो तो कोई भी प्रतिकूल शक्ति तुम्हारे यात्रा पथ को नही रोक सकेगी। जीवन के पथ में भूल-त्रुटि होना स्वाभाविक है, उसके लिये विचलित मत होना। तुम सभी कमशः आगे बढ़ रहे हो। धीरे-धीरे तुम्हारे कर्मों का क्षय एवं भोग की समाप्ति हो रही है। ऊँचे पर्वत में चढ़ने के समय उतार-चढ़ाव तो रहेगा। लक्ष्य में पहुँचने के लिये उत्थान-पतन आता रहेगा। भूल-त्रुटि, उत्थान-पतन की अभिज्ञता तुम्हारे अग्रगति में सहायक होगी। मैं सर्वदा साथ में हूँ।

जो 'नाम' तुमने प्राप्त किया है, जिस शक्ति को तुभने प्राप्त की है, पृथ्वी की ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो तुम्हारी इस शक्ति को रोक सके। अग्नि जल रही है, उसमें और लकड़ी डालो। विराट अग्नि सब कुछ जलाकर समाप्त कर देगी।

'मन्दिर' पत्रिका का सेवाभार मुझे गुरूदेव ने देकर कहा था—"मन्दिर पत्रिका जीवित रहने पर मैं भी जीवित रहूँगा—इसे याद रखना।" इसके लिये मैं आवश्यक प्रयास करते जा रहा हूँ। जबर्दस्ती किसी को इस पत्रिका का ग्राहक होना पड़ेगा, ऐसा नहीं है। उनकी जितने दिनो तक इसे चलाने की इच्छा है, वह चलती रहेगी। हमसे सेवा में त्रुटि न हो, इसका हमें केवल ध्यान रखना आवश्यक है।

मैं अपने कर्म जीवन के मित्र एवं सहयात्रियों को अपनी आन्तरिक श्रद्धा निवेदन कर रहा हूँ। उन्होंने मुझे श्रद्धा पूर्वक ग्रहण किया था। आज कर्मक्षेत्र से अवसर लेने पर भी उनके अनुरोध को न टालते हुए, जितना संभव है उनकी सेवा 'भगवत् सेवा' भावना से करता जा रहा हूँ।

मेरा कहना है कि कौन क्या बोलेगा अथवा सोचेगा, कौन श्रद्धा करेगा या अश्रद्धा करेगा—इसे लेकर मैं चिन्तित नहीं हूँ। मैं जिस सत्य को लेकर चल रहा हूँ, उसे ही लेकर चलता रहूँगा। मेरा आवाहन भी नहीं है विसर्जन भी नहीं है। मैंने जिनकी ओर देखकर यात्रा प्रारम्भ की है उनकी ओर देखते हुए पथ में चलूँगा।

तुम सब लोगों की जय हो! कल्याण हो!! विश्व कल्याण के भीतर से मेरे भगवान की पूजा-उत्सव वास्तविक रूप से सम्पादित हो !!!

----

२ – जन्मदिवस पर स्वामी जी का प्रवचन

दिनांक - ५ मार्च, १९६२ ई.

आज मेरी जन्म-तिथि है। मैंने सर्वत्र निषेध किया था कि मेरे जन्मदिन पर किसी प्रकार का उत्सवादि न किया जाए। आश्रम में भी उत्सव की पूर्व परिकल्पना नहीं थी। परन्तु अपने-आप सब आयोजित हो गया। शायद गुरूजी की यही इच्छा थी। इसी कारण इस तरह आयोजन अपने-आप हो गया।

दो कारणों से मैंने उत्सव बन्द करने के लिये कहा था। प्रथम–मैंने हिसाब जोड़कर देखा कि पांच वर्ष पूर्व विभिन्न स्थानों में मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति के जन्मतिथि के दिन केवल कोलकाता में सात सौ रूपये के फूल एवं पन्द्रह सौ रूपये पंडाल आदि में खर्च हुये। इतना रूपया किसी अच्छे कार्य मे खर्च करना उचित था। जिस देश में लोग आज भी अनाहार रहते हैं और आधा पेट भोजन करते हैं वहां इस तरह आडम्बर करते हुए व्यय करना–इसे मैं अपराध समझता हूँ। श्रद्धा-पूजा आन्तरिक होना चाहिये–बाह्य आडम्बर से शून्य होना चाहिये। उत्सव पालन करने के लिये कई बार कुछ गरीब लोगों के ऊपर दबाव भी पड़ता है। मैं ऐसा नही चाहता। किसी के द्वारा दो महिने लगातार यहां रूपया भेजने पर मैं उसे निषेध करता हूँ। तुम्हारे हृदय के साथ मेरे हृदय का आन्तरिक योग है। आज यहां केवल कुछ लोग ही आ सके। यहां से काफी दूर-दूर में, यहां तक कि विदेश में भी कई लोग रहते हैं। इस कारण सभी, यदि बाहर भूलकर, इस उत्सव को हृदय से पालन करें तो सभी मेरा सानिध्य उपलब्धि करेंगे। **मैं आज की बात कर रहा हूँ कि मेरे कुछ शिष्यगण एवं मेरे कुछ विशिष्ट गुरूभाई-बहिन सभी आज के दिन मेरी उपस्थिति अनुभव करेंगे एवं मेरा दर्शन पाएंगे। तुम लोगों के साथ मेरा योग बाहर का नहीं–हृदय का है। इस कारण हार्दिक उत्सव न होने से असली उत्सव नहीं होता।**

मैंने सभी लोगों से कहा है कि यदि तुम लोग मेरी वास्तविक सेवा करना चाहो तब मैंने जिन लोगों का सेवा-भार ग्रहण किया है उनकी सेवा करने का प्रयास करो। तब मैं सबसे अधिक आनन्दित होऊँगा। मैं तुम सबका भाई-बन्धु हूँ। तुम्हारे और मेरे बीच किसी प्रकार की दूरी मैं नहीं रखना चाहता हूँ। मेरा कार्य है–तुम लोगों की सेवा करना। मैं सेवक हूँ। यह सेवा कार्य ऊपर बैठकर नही हो सकता। गोसाँई जी ने कहा है–"सद्‌गुरू शिष्य नहीं करते, अपने इष्ट की प्रतिष्ठा करते हैं।" अतएव गुरू और शिष्य का वास्तविक सम्पर्क क्या है–अब समझ रहे हो? तब फिर गुरू पूजा की विधि क्यों प्रचलित है? गुरू ब्रह्म है–ब्रह्म का कोई रूप नहीं है। ब्रह्म सभी आधार में

विराजित हैं। परन्तु विशेष-विशेष आधार में ब्रह्म का विशेष प्रकाश देखा जाता है। जिस तरह अग्नि सर्वत्र है, परन्तु उस अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये लकड़ी और माचिस की आवश्यकता होती है। गुरू शक्ति–भगवत् शक्ति है। जिस प्रकार विद्युत, बल्ब का अवलम्बन लेकर जल उठती है, परन्तु बल्ब विद्युत नहीं है। अथवा जिस तार के माध्यम से विद्युत प्रवाहित होती है वह तार, विद्युत नहीं है। तब प्रश्न स्वाभाविक है कि फिर इतने प्रकार के गुरू क्यों हैं?

भगवान् एक हैं। भगवान् द्वारा तैयार इस विश्व की सेवा के लिये, अन्धकार को दूर करने के लिये विशेष-विशेष आधार उन्होंने उत्पन्न किया है। जहां जितनी शक्ति के प्रकाश की आवश्यकता है, वहां उस प्रकार की शक्ति का बल्ब लगा दिया जाता है। इस तरह का अन्तर आधार में है। जिस आधार के माध्यम से गुरू-शक्ति प्रकाशित होती है वही आधार गुरू रूप में पूजित होता है। जो शक्ति उस आधार के मध्य से, सभी के भीतर प्रकाशित होती है–वह भगवत् शक्ति है। रूपया एक व्यक्ति भेजता है–दूसरा व्यक्ति प्राप्त करता है। पोस्ट मास्टर, पोस्टमेन ये केवल वाहक हैं–मैं इसी तरह का एक पोस्टमेन हूँ।

श्रीश्री गोस्वामी जी के आदेश के बिना मैं किसी को दीक्षा नहीं देता। कई बार ऐसा हुआ कि कई दीक्षा प्रार्थियों को दीक्षा-गृह से बाहर निकाल दिया गया है। आधार यदि ग्रहण योग्य न हो तो वहां बीज नहीं लगाया जाता। बीज है, परन्तु कौन सा बीज है एवं जमीन की क्या योग्यता है–वह मुझे देखना पड़ता है। सभी का बीज एक नहीं है–आधार के हिसाब से बीज में विभिन्नता रहती है। कई बार देखा जाता है कि दीक्षा पाने पर भी अधोपतन होता है। इसका कारण है कि पूर्व संस्कार, दीक्षा लेने के साथ-साथ नष्ट नही होते। लकडी यदि शुष्क हो तो आग देने के साथ-साथ जल उठती है, परन्तु कच्ची लकड़ी धुंआ निकालते हुए जलती है एवं अन्त में जोर से जल उठती है। आधार के अनुसार व्यवस्था होती है। दीक्षा देते समय प्रतीज्ञा लेना पड़ता है–**''तुम्हारे जन्म-जन्मान्तरों के पाप-ताप को दूर करने का मैंने भार लिया।''** इस शपथ को लेने के भीतर एक रहस्य है। आधार के हिसाब से तामसिकता–राजसिकता–सात्विकता का तारतम्य (कम-ज्यादा) रहता है एवं इसी के अवलम्बन से प्रारब्ध क्षय कराना ही कार्य है। साधन प्रदान करने के साथ आग लगाने का कार्य प्रारम्भ होता है–प्रारब्ध क्षय होते रहता है। वह किस तरह आगे बढ़ रहा है उसे समझने नही दिया जाता। क्योंकि इसे समझने पर उसके भीतर अभिमान-अहंकार आता है एवं उसका पतन होता है। इस कारण साधक की कितनी अग्रगति हुई है उसे समझने नहीं दिया जाता। इसी तरह विपथगामी को लौटाकर लाया जाता है।

शिष्य के लिये गुरू ही ब्रह्म है–यह धारणा भूल नहीं है। गुरू ही ब्रह्म है–इसी तरह की भावना से भजन करना आवश्यक है। गुरू के भीतर जो शक्ति है वह ब्रह्म शक्ति है–भगवत् शक्ति है। आधार के हिसाब से इस शक्ति की किया होती है।

हम लोगों की साधना में नियमों का पालन करने के लिये कहा जाता है। इसका पालन करने पर और कुछ करना नहो पड़ता। इसी में आष्टांग-योग का कार्य हो जाता है। अन्य कोई योग की साधना नहीं करनी पड़ती। इसे मैंने अपने जीवन में उपलब्ध किया है। योग का अर्थ है–मिलन। हमारे शरीर में दो प्रकार की वायु है–एक, स्थिर है, आज्ञाचक्र मे उसका स्थान है। दूसरा, प्राणवायु है, जो ऊपर-नीचे आवागमन करता है–इसे लेकर जीवन है। प्राणवायु चंचल है। इस प्राणवायु का स्थिर वायु के साथ मिलन होने का नाम योग है। इसे ही परमात्मा के साथ जीवात्मा का मिलन कहा जाता है। यही योगशास्त्र में कहा गया है। 'नाम' जप करते-करते मन, नामी अर्थात इष्ट के साथ युक्त होता है एवं श्वास कम हो जाती है। श्वास बाहर में बारह अंगुली परिणाम में आती है। मन स्थिर होने पर श्वास और बाहर नहीं आती। नाम-साधना द्वारा यह संभव है। विधि-निषेध के पालन की आवश्यकता अत्यन्त जरूरी है। मन की एकाग्रता के लिये इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। शरीर को निरूद्वेग करने के लिये सात्विक आहार आवश्यक है । साधना के साथ भोजन का घनिष्ट सम्पर्क हैं। मांस खाने से कई प्रकार की विपत्ति आती है। हम मुँह से बात करते हैं–मुख लाउड्-स्पीकर की तरह है। चिन्ता करने के साथ-साथ शरीर के भीतर क्रिया होती है। हमारे शरीर के भीतर छः कमलों में 'अ' से विसर्ग (:) के मध्य सभी अक्षर हैं। विभिन्न अक्षर के उच्चारण द्वारा एक विभिन्न कम्पन की सृष्टि होती है एवं इस कम्पन के साथ-साथ रस का संचार होता है–यह सम्पूर्ण वैज्ञानिक है। मंत्र जप द्वारा भी शरीर मे रस संचारित होता है। यह 'रस' शरीर के प्रत्येक शिरा-उपशिराओं में क्रिया करता है। विरुद्ध भोजन करने पर शरीर में विरूद्ध रस संचार द्वारा विष क्रिया होती है। जिस तरह दूध और नमक एक साथ लेने पर कुष्ठ होता है। ऐसा भी देखा गया है कि साधना के नियमो का पालन नहीं करने पर कुष्ठ–क्षय-रोग (T.B.) तक हुआ है। फिर नियमों के पालन से पुनः शरीर स्वस्थ हो गया। ऋषियों ने जो नियमो का पालन किया वे वृथा नही है। वे सत्य-द्रष्टा थे। उन्होंने अपनी सत्य-दृष्टि द्वारा देखा था कि विभिन्न वृक्ष के पत्र-पुष्प द्वारा मनुष्य के रोगों को दूर किया जा सकता है। यह आज वैज्ञानिकों के लिये अनुसंधान का विषय है। तांत्रिकों की पंच-प्रकार की साधना–वह दूसरा है। वह केवल मद्य-मांस आदि लेकर नहीं है–मातृ-पूजा निष्काम भाव से करना आवश्यक है। मातृ-पूजा में पशुबलि दी जाती है। बकरा 'काम' का प्रतीक माना जाता है, इस कारण बकरे की बलि दी जाती है। प्राचीनकाल में बलि न देकर उसका उत्सर्ग करने के बाद उसे छोड़ दिया जाता था। इसके द्वारा स्पष्ट होता है कि 'भोग' अर्थात 'काम' भावना द्वारा आध्यात्मिक अवस्था की प्राप्ति नहीं हो सकती। जमीन में उचित रूप से खेती के लिये वर्षा के समय खेत के चारों ओर मेड़ बनाया जाता है जिससे जल रूका रहे–बाहर न निकल जाए। उसी प्रकार सत्व गुणों के द्वारा मनुष्य के शरीर के आधार को तैयार रखा जाता है।

विभिन्न प्रकार की प्रकृति मनुष्य की क्यों होती है? घर में पांच दर्पण मानलो रख दिया गया है। जिस दर्पण को सर्वदा साफ किया जाता है, उसमें चेहरा स्पष्ट देखा जा सकता है और जिसमें मैला पड़ जाता है उसमें चेहरा दिखलाई नहीं पड़ता। मनुष्य के शरीर और मन की भी इसी तरह की अवस्था है। हृदय में मैल अथवा आवरण पड़ जाता है, उसे साफ करना होगा। आवरण साफ न होने से ईश्वर की कृपा का अनुभव नहीं होगा। लक्ष्य स्थान में पहुँचना ही सिद्धि है। विधि-निषेध मानकर ही चलना होगा—इस विषय पर किसी प्रकार की बहानाबाजी नही चलेगी। आलसीपना, आध्यात्मिक उन्नति का लक्षण नहीं है। जड़ता दो प्रकार की होती है—एक, आलस्य-जनित जड़ता अर्थात मेरे द्वारा कुछ नहीं होगा—सब भगवान करेंगे। यह चिन्ता आलस्य-जनित है। इस प्रकार के विचार से नहीं चलेगा— Sincerely, (एकाग्र मन से) प्रयास करना होगा। दूसरी, एक आर प्रकार की जड़ता—काफी उच्च अवस्था में आती है।

प्रयास नहीं करने पर कुछ भी नहीं होगा। तुम्हारे अग्रसर न होने पर भी 'वे' हाथ पकड़कर तुम्हें ले जाएंगे—यह माँ के स्नेह की तरह होता है। माँ की दो सन्तानें हैं—एक सीधा है और दूसरा नटखट। परन्तु माँ का स्नेह दोनों पर समान है। माँ के मन मे इच्छा है कि दोनो पुत्र को जल्दी घर पर ले जाएं। नटखट लड़का घर जाना नहीं चाहता—यहां-वहां दौड़ता रहता है। परन्तु माँ दोनों पुत्रों को जब तक घर वापस नही ले आती है तब तक वह निश्चिंत नहो हो पाती। सद्‌गुरू भी इसी तरह हैं। सद्‌गुरू, लक्ष्य में ले जाने के लिये नटखट शिष्य के प्रति कठोर हो जाते हैं। इस प्रकार कठोरतापूर्वक ले जाते समय अनेक प्रकार के आघात अर्थात् रोग, शोक, दरिद्रता इत्यादि शिष्य को सहना पड़ता है। अच्छे चिकित्सक की तरह, शिष्य जब तक सम्पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हो जाता, सद्‌गुरू शिष्य के मंगल के लिये सचेष्ट रहते हैं। इसे ही सद्‌गुरू का कार्य या कर्तव्य कहा जाता है।

ऐसा भी देखा गया है कि दीक्षा के पहले कोई अच्छा है परन्तु दीक्षा पाने के साथ किसी-किसी का दुःख या षड्‌रिपु का अत्याचार बढ़ गया है एवं उसे अनेक कुकर्म करते देखा गया है। इसका कारण है—जिस तरह एलोपैथी दवाई लेने से रोग के मूल कारणों का विनाश नहीं होता है, वे दब जाते हैं । किन्तु होम्योपैथी दवाई लेने से कई बार रोग बढ़ जाता है। कारण—रोग के मुख्य कारणों का बहिर्प्रकाश होता है एवं उसके पश्चात् रोग निरामय हो जाता है। मनुष्य की प्रकृति बाह्यरूप से सत् रहने पर भी, काम या भोग की वासना मन के भीतर गुप्त रूप से रहती है। दीक्षा प्राप्त होते ही उसकी किया प्रारम्भ होती है। किसका प्रारब्ध किस प्रकार समाप्त हो जाए—यह हमें देखना पड़ता है। साधन मिलने पर मनुष्य का बाह्य आवरण खुल जाता है। दीक्षा लेने पर आत्मा का जागरण अर्थात शक्ति का जागरण होता है। यह शक्ति जागने पर स्वयं देखती है कि अभी तक यहां विभिन्न रिपु का राज्य चल रहा था।

उस रिपु को भगाने के लिये वह अपना कार्य शुरू करती है तब रिपु, अपना राज्य समाप्त होते देखकर, अपनी सम्पूर्ण शक्ति को एकत्रित कर इस नवीन शक्ति को बाधा देने का प्रयास करता है। परन्तु यह बाधा अस्थाई होती है। यदि नियमित नाम-साधना किया जाए तो धीरे-धीरे रिपु दमित होने लगते हैं। रिपु दमित होने पर फिर मित्र की तरह कार्य करते हैं। अग्नि एक बार प्रज्वलित कर देने पर वह फिर नहीं बुझती। सामयिक रूप से कुछ देर तक दबकर उससे धुंआ निकल सकता है, परन्तु यथा समय यह तीव्र रूप से जल उठती है।

आज अपने जन्मदिन पर मैं अपनी सन्तानों को आशीर्वाद देता हूँ कि जिससे सभी, साधना के जगत् में अग्रसर हो सकें। इस साधना को करते रहने पर पृथ्वी की कोई भी शक्ति किसी प्रकार की बाधा फिर नहीं दे सकती।

इसके पश्चात् ग्राम के युवकों से स्वामी जी ने कहा—मेरे जीवन के उनसठ (५९) वर्ष बीत गए। मन में ऐसा लगता है कि मैं वृद्ध नहीं हूँ—मैं पूर्व की तरह युवक हूँ। ग्राम के पास से मैंने विशेष सहानुभूति प्राप्त की। कई बार अभिमानवश ग्राम छोड़कर चला गया। परन्तु फिर इस जन्मभूमि के आकर्षण से यहां आना पड़ा। इसे मैं भूल नहीं सका । इस स्थान की यह साधना पीठ, ये पहाड़ मुझे आकर्षित करते रहे। परन्तु ग्राम के लिये मैं कुछ नहीं कर सका। यहां के प्रचलित स्कूलों में, प्रचलित शिक्षा पद्धति के विरूद्ध, नए तरीके से आवासिक विद्यालय के माध्यम से, सच्चे मानव तैयार करने की इच्छा थी। देश में यदि केवल पांच युवक भी सच्चे नागरिक बनते हैं तो देश की काफी उन्नति हो सकती है। परन्तु मेरी यह इच्छा पूर्ण होगी की नहीं—नहीं मालूम। क्योंकि आचार्य का जीवन दीर्घायु नहीं होता है। शिष्यों के अनाचार के लिये गुरू को भुगतना पड़ता है। विगत कुछ महिनों में मेरा दस किलोग्राम वजन घट गया है। परन्तु मैं अभी भी अभ्यासवश कार्यरत हूँ—यह शरीर गुरूदेव की असीम कृपा से चल रहा है। आज यदि ग्राम के युवक आगे बढ़ें, तो ग्राम की काफी उन्नति की जा सकती है। सहायता के लिये चिन्ता नहीं है, प्रयोजन होने पर विदेशों से भी सहायता मिल सकती है। केवल योग्य कर्मी अर्थात सेवक की आवश्यकता है।

ग्राम एवं माँ समान हैं। ग्राम को प्यार करने का अर्थ है माँ को प्यार करना। अर्थ का अभाव, ग्राम की उन्नति के लिये किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं कर सकता। **यदि आदर्श अथवा आकांक्षा उच्च-भावना युक्त हो तो अर्थ का अभाव कभी नहीं हो सकता।** बाहर के कई लोग इस ग्राम में आते हैं । ग्राम यदि आदर्श रूप से गठित हो तो वे भी इस ग्राम से काफी कुछ संग्रह कर ले जा सकते हैं।

उत्सव का अर्थ है—समवेत अर्थात एकत्रित रूप से सभी की ऊर्ध्वगति। अंग्रेजी में इसे Collective uplift कहा जाता है। ('संगठन' २५ वर्ष, से)

———————

३ – तारकेश्वर की एक सभा में स्वामी जी का प्रवचन

दिनांक - १२ नवम्बर, १९६७ ई.

आज इस सभा में मुझे कुछ बोलने के लिये, अनुरोध किया गया है। परन्तु धर्म की बात मैं क्या कहूँ? आर्य-ऋषियों ने कहा है, ''धर्म का तत्व गुफाओं में छिपा हुआ है एवं धर्म का पथ तलवार की धार पर चलने के समान दुर्गम है।'' मैं एक क्षुद्र सेवक हूँ, धर्म के सम्बन्ध में उपदेश देने की शक्ति मुझमें नहीं है। परन्तु धर्म के सम्बन्ध में कुछ चर्चा की जा सकती है।

वेद, उपनिषद्, अष्टादश पुराण, श्रीमद्भागवत् धर्म कथा से पूर्ण है। भारत के महान् साधकों ने विभिन्न रूप से सहज भाव से धर्म की बातें कही है। उससे हम अपने जीवन पथ में चलने की आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। धर्म के सम्बन्ध में विभिन्न लोगों का विभिन्न मत है। कोई देव-देवी की उपासना को धर्म मानता है, कोई निराकार ब्रह्म को तो कोई नाम-कीर्तन को धर्म मानता है, कोई सेवा को तो कोई दया को धर्म मानता है। कोई अहिंसा को परम धर्म मानता है तो कोई जीव मात्र से प्रेम को धर्म मानता है। इस तरह जगत् में विभिन्न सम्प्रदाय के विभिन्न मानव, कई प्रकार से उपासना करते हैं। कोई सत्य को तो कोई प्रेम-साधना को धर्म मानता है। **मैं 'मानवता' को ही धर्म मानता हूँ। कोई कुछ भी कहे, अन्तिम लक्ष्य है–अन्धकार को भेद करते हुए 'उस' ज्योतिर्मय पुरूष को प्राप्त करना।**

धर्म का मुख्य ध्येय है–असत्य से सत्य में, अंधकार से आलोक में, मृत्यु से अमृतत्व लाभ के पथ पर शुभयात्रा। प्रश्न आ सकता है कि फिर धर्म क्या है? मेरा विचार है, जो बोध या अनुभव हमें मानवता मे प्रतिष्ठित रखे, कभी पतन या अधोगति न होने दे एवं आध्यात्मिक जगत् के उच्चतम अवस्था के आरोहण में सहायता करे एवं हमें हमारे चरम लक्ष्य में ले जाए–ब्रह्म अनुभूति के माध्यम से हमें कृतार्थ करे, वही धर्म है। धर्म कोई साधारण वस्तु नहीं है। धर्म प्राप्ति के लिये प्राणपन साधना करनी पड़ती है। धर्म-साधना पाप, विकृति, पतन एवं दुष्कर्मों से हमारी रक्षा करता है। धर्म विवेक को जागृत रखता है एवं ज्ञानचक्षु या दिव्यदृष्टि को खोल देता है। सत्-असत्, कर्तव्य-अकर्तव्य, न्याय-अन्याय, हित-अहित, श्रेय-प्रेय, पाप-पुण्य आदि विचार को जागृत कर हमें सत्य के पथ में धर्म परिचालित करता है। सत्य के पथ पर न चलने से धर्म-साधना नहीं हो सकती । सत्य ही प्रेम एवं धर्म की नीव है। सत्य ही हमें सत्य-स्वरूप के पास ले जाता है । इसी कारण सत्य की उपासना धर्म की प्राप्ति एवं अन्तिम लक्ष्य में पहुँचाने का उपाय है।

ईश्वर प्राप्ति ही धर्म साधना का मूल उद्देश्य है। इसकी सभी देशों के ऋषि या महात्माओं ने घोषणा की है। भारत एवं अन्य देश के साधकों ने एक ही प्रार्थना की है–मेरे जीवन में तुम्हारी जय हो ! हमारी सभी सत्ता में, प्रति अंगों में, प्रत्येक कर्म में–चाहे वह उच्चतम हो या निम्नतम हो–सर्वदा तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो!! हम आत्मसमर्पण द्वारा, जिससे सर्वदा तुम्हारी पूजा-अर्चना सम्पन्न कर सकें–यही प्रार्थना है।

आर्य ऋषियों ने धर्म साधना के पक्ष में दस उपदेशों का पालन करने का निर्देश दिया है–(१) धैर्य, (२) क्षमा, (३) मनःसंयम, (४) चोरी न करना, (५) देह शुद्धि, (६) इन्द्रिय-निग्रह, (७) शास्त्र-ज्ञान, (८) ब्रह्म-विद्या, (९) सत्य का अनुसरण एवं (१०) अकाध।

शास्त्रो में चार आश्रमों का उल्लेख मिलता है–(१) ब्रह्मचर्य, (२) गृहस्थ, (३) वानप्रस्थ एवं (४) संन्यास।

ब्रह्मचर्य की नीव पर जो गृहस्थ आश्रम बनेगा उससे वानप्रस्थ एवं संन्यास की अवस्था कमशः प्राप्त होगी। आज इस पथ में चलने लायक योग्य यात्रियों का अभाव हो गया है। ब्रह्मचर्य की नीव पर प्रतिष्ठित न होने से गृहस्थ धर्म की पवित्रता आज नष्ट हो रही है। ऋषियों ने गृहस्थ आश्रम को श्रेष्ठ आश्रम कहा है। सत्यद्रष्टा ऋषियों ने गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए जो सम्पद् विश्व को प्रदान किया है, धर्म-साधना के पथ में शास्त्रोक्त विधि-निषेध का पालन करते हुए अपनी साधना की शक्ति द्वारा विश्व में जो ज्ञान का प्रकाश फैलाया है–आज हम अपने कृतकर्मों के फल से उन सबसे विच्युत हो गए हैं। पहले ही मैंने कहा है कि गृहस्थ आश्रम को ऋषियों ने श्रेष्ठ आश्रम कहा है। गृहस्थ आश्रम को भगवान् का आश्रम समझना एवं संसार को भगवान् का संसार, ऐसा समझने पर फिर चिन्ता क्या है? हम यदि सोच सकें कि हम भगवान् के सेवक या सेविका हैं एवं संसार में सबकी सेवा भगवान् की सेवा है, सब कर्म 'उन्हो' का कर्म है। अच्छा भी उनका है, बुरा भी उनका है। तब फिर संसार में बंधन कैसे रहेगा? जो सर्वत्र हैं, अणु-परमाणु मे हैं, वे संसार में भी हैं एवं संसार के सभी प्राणियों के भीतर भी हैं। संसार यदि उनका है एवं हम यदि अपने को उनका सेवक सोच सकें एवं अच्छी तरह संसार के सभी कर्तव्यों को सम्पन्न कर सकें तब और चिन्ता का कारण नहीं है। तब जीव मात्र की सेवा ही शिव जी की सेवा होगी–नारायण की सेवा होगी।

हमारे पूज्य ऋषियों ने धर्म-साधना के जिन विधि-निषेध को कहा है उनमें से कुछ मुख्य हैं–

(१) सत्य वचन – कार्य, वाक्य एवं चिन्ता द्वारा सत्य का अनुसरण करो।

(२) दया – सब जीवों के प्रति दया भावना रखो।

(३) गुरूजनों की श्रद्धा करो।

(४) संसार के सम्बन्धों में भगवत् सम्बन्ध स्थापन करो।

(५) विवाहित जीवन में शास्त्र अनुमोदित ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करने पर ब्रह्मचर्य की हानि नहीं होती।

(६) सभी धर्म के साधु-महात्माओं को सम्मान देना–साम्प्रदायिक मनोभाव (दलबन्दी) नहीं रखना चाहिये।

(७) सभी धर्म, सभी देवी-देवताओं की उपासना उसी एक भगवान् की उपासना है। भगवान्, भक्तों के आकांक्षित रूप में उन्हें दर्शन देते है। शाक्त, वैष्णव, शैव आदि विभिन्न सम्प्रदाय की उपासना के मध्य उसी 'एक' की ही उपासना हो रही है।

(८) परनिन्दा मत करो।

(९) किसी के उद्वेग, हानि अथवा मन में क्षोभ का कारण नहीं होना चाहिये। सभी को प्यार करना चाहिये। सभी के मध्य उस एक भगवान् का स्मरण करते हुए उन्हें प्रेम सहित गले लगाना।

(१०) अपने शरीर एवं मन को पवित्र रखना चाहिये।

(११) अपने-अपने धर्म की साधना को करना चाहिये, परन्तु दूसरे के धर्म के प्रति उपेक्षा, घृणा अथवा उसके प्रति तुच्छ भावना मत रखो।

इस तरह यदि हमारे ऋषियों के निर्देशो का हम पालन करते हुए चलें तब हम अवश्य धर्म के पथ में अग्रसर होंगे एवं अंधकार को पार करते हुए उस ज्योतिर्मय महान्पुरूष का दर्शन कर सकेंगे।

कई लोगों का विचार है कि भगवान् को प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। मेरा कहना है कि 'उन्हें' अवश्य प्रत्यक्ष किया जा सकता है। आर्य-ऋषियों ने उनका दर्शन किया है एवं उनके रूप का वर्णन किया है। साधना पथ में अग्रसर होने पर देखा जाएगा कि भेद कमशः दूर हो रहे हैं एवं विभिन्न रूप कमशः एक महाज्योति के समुद्र में विलीन हो रहे हैं। साधना पथ में कमशः अग्रसर होते हुए यह तत्व निश्चय पूर्वक उपलब्ध होगा कि सभी रूप उन्हों 'एक' का रूप है। मैंने जैसा समझा है, जितना अनुभव किया है–वही कह रहा हूँ।

अनेक प्रकार के विचार, दार्शनिक चिन्ता, गवेषणा, पाण्डित्य, शास्त्र अनुशीलन, प्रचार, यज्ञ आदि विविध बाह्य अनुष्ठान सम्पन्न करने से ही धर्म की प्राप्ति नहीं होगी, यदि उसमें भक्ति न हो। कर्म ज्ञान और योग तीनों पथों से भगवान् को प्राप्त किया, जा सकता है। परन्तु कर्म के साथ यदि भक्ति भावना न रहे, तब मनुष्य मशीन की तरह केवल दैनिक कर्मो को करता रहेगा। ज्ञान के साथ भक्ति भावना न रहने पर तुम बड़े पण्डित बन सकते हो, तर्क करते हुए अपना पाण्डित्य प्रकाश कर सकते हो, परन्तु तुम्हें भगवान की प्राप्ति नहीं होगी। कोरा पण्डित अथवा तर्क करने की बुद्धि

तुम्हें तुम्हारे लक्ष्य अर्थात् श्रेय दान नही कर सकेगी। इसी तरह योग-साधना के पथ में भक्ति भावना के न रहने से, वह योग, देह का व्यायाम अथवा हठयोग के शारीरिक व्यायाम जैसा हो जाएगा।

भक्ति की सहायता के बिना, भगवान् की प्राप्ति असंभव है। हमारे सभी कार्य, सभी चिन्ताओं में भगवत् चिन्ता एवं भगवत् भक्ति को साथी रखें। हम यदि सत्य पथ पर चलते हुए एवं भक्ति को अवलम्बन कर अग्रसर हो सकें तभी हम लक्ष्य में पहुँच सकेंगे। सत्य की नीव न रहने पर कुछ भी नहीं होगा। मिथ्या की नीव पर कुछ भी नहीं टिकेगा।

इसी कारण हे बन्धुगण! आइए, हम सब सत्य पर प्रतिष्ठित होकर, धर्म-साधना के पथ में शास्त्रोक्त विधि-निषेध को मानते हुए श्री गुरू निर्देशित पथ पर चलें। हमारी प्रतिज्ञा होगी–हम किसी भी प्रकार की बाधा मिलने पर भी पीछे नहीं हटेंगे। बाधाओं एवं विपत्तियों को तुच्छ करते हुए, सभी प्रकार की प्रतिकूल अवस्थाओं के भीतर से हम प्रभु के विजय पताका को लेकर, द्रुत गति से आनन्द लोक की ओर अग्रसर होंगे।

आज देश का दुर्दिन है। अत्याचार, अनाचार, दुर्नीति, ईर्षा, हिंसा, विद्वेष, दलबन्दी-भावना आदि से देश भर गया है। चारों तरफ अन्धकार है! पथ कौन दिखलाएगा? हमारे पथ प्रदर्शक हैं–भारत के साधक एवं धर्म गुरू लोग। परन्तु जब हम उनके भीतर भी दलबन्दी भावना, कलह, हिंसा एवं मठ, मन्दिर, आश्रमों के प्रख्यात् साधुओं के भीतर भी परस्पर झगड़ा–कोर्ट-कचहरी का मामला करते हुए देखते हैं, तब सोचते हैं कि अब क्या उपाय होगा? हम सब भगवान् के निकट व्याकुल प्रार्थना करते हैं–

''प्रत्येक युग में जब भी धर्म की ग्लानि हुई है, अधर्म का उत्थान हुआ है तब उस युग में 'उनका' आविर्भाव हुआ है एवं इस पुण्य भूमि की रक्षा हुई है। बन्धुगण! आज हम व्याकुल भावना से भगवान के निकट प्रार्थना कर रहे हैं–तुम आओ! तुम आओ!! तुम आओ!!! भारतवर्ष की रक्षा करो! सृष्टि को ग्लानि से मुक्त करो! तुम्हारी कृपा से सभी भारतवासी एवं जगत्वासी के भीतर 'मानवता बोध' जागृत हो!! भारतवर्ष समस्त जगत् को समान भातृत्व की भावना के प्रकाश द्वारा, सत्य की पूजा द्वारा, मानवता बोध के पथ में परिचालित करते हुए, उन्हें कृतार्थ करे एवं स्वयं धन्य हो!'

---

४ – विश्वरूप-दर्शन योग पर प्रवचन

स्वामी जी ने विश्वरूप-दर्शन योग (गीता का एकादश अध्याय) पर जो बंगला में प्रवचन दिया था, उसका सारांश यहां दिया जा रहा है–

हमलोग नित्य प्रातःकाल श्री गीता जी के विश्वरूप-दर्शन योग (एकादश अध्याय) का पाठ करते हैं। 'विश्वरूप-दर्शन योग' पाठ करने के पहले भगवान से प्रार्थना करते हैं–"हे प्रभो, हमलोग सबेरे उठकर तुम्हारे नाम का स्मरण कर संसार के कर्मों को प्रारम्भ करते हैं।"

जानामि धर्मं न च में प्रवृत्तिः
जानाम्य धर्मं न च में निवृत्तिः।
त्वया हृषिकेश हृदि स्थितेन
यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि।।

इसका भावार्थ है–"धर्म क्या है? यह मुझे मालूम है, परन्तु उसे करने की प्रवृत्ति मुझमें नहीं है। अधर्म का स्वरूप भी मुझे मालूम है, परन्तु उसे त्याग करने की शक्ति मुझमें नहीं है। हे हृषिकेश, हे इन्द्रियों के अधिपति प्रभु! तुम तो मेरे हृदय में ही हो, तुम मुझे जिस कार्य में नियुक्त करोगे, मैं वही कार्य कर सकूँगा।"

"मैं धर्म, अधर्म, पाप अथवा पुण्य कुछ नहीं जानता हूँ । यह संसार तुम्हारा है, मैं तुम्हारा एक सेवक हूँ। तुम मेरे द्वारा जो कार्य करा लोगे, मैं केवल उसे ही करूँगा। मेरा कुछ भी नहीं है। अच्छा-बुरा सब कुछ तुम्हारा ही है। मैं तुम्हारे पास आत्मसमर्पण करता हूँ। तुम जो कार्य कराओगे, उसे करते हुए ही मेरे दिन गुजर जाएंगे।"

प्रतिदिन सबेरे उठकर हम अपने कर्म क्षेत्र पर निकल पड़ते हैं। तुम तो हमारे नित्य सहचर हो। सब इन्द्रियगण हमें विश्व की सब अवस्थाओं के भीतर डाल देते हैं। दिनभर के कार्य से थककर, संध्या के समय हम वापस घर आते हैं और ईश्वर की सुखमय गोद में ही निद्रा पाते हैं। उस समय प्रार्थना करते हैं–

"प्रभु! सुबह तुम्हारा नाम लेकर मैं अपने यात्रा पथ पर निकला था। दिनभर इन्द्रियों के साहचर्य से विभिन्न कार्यों को कर, शाम के समय तुम्हारे पास लौट आता हूँ। मैंने दिनभर जो कुछ भी कार्य (पाप, पुण्य, कर्म, अकर्म आदि) किये हैं, उन सबको तुम्हारे चरणों में अर्पित करता हूँ। कृपया तुम, सब कुछ ग्रहण करो एवं अपनी शान्तिमय गोद में मुझे आश्रय दो।"

यही हम लोगों की सुबह एवं शाम की नित्य प्रार्थना है। विश्व में हम जो कुछ

भी देखते हैं, भला-बुरा सब उन्हीं प्रभु का रूप है। सभी के भीतर वे ही हैं ! हमलोग यदि इस विश्वरूप को न समझ सकें—यदि इस विश्वरूप का दर्शन न कर सकें, अर्थात मनुष्य-पशु में, जड़-चेतन में, वृक्ष-लताओं मे, हर वस्तु में अपने प्रभु को न देखें, तो हमें भगवत् दर्शन नहीं होगा। सब जगह उन्हें देखना होगा—सभी के भीतर 'उन्हें' देखना पड़ेगा—अणु-परमाणु के भीतर उन्हें देखना होगा। जिस समय सबके भीतर प्रभु दिखाई देंगे, तभी दर्शन पूर्ण होगा । उनके एक भी अंश को छोड़कर प्रभु का दर्शन सम्पूर्ण नहीं होगा ।

इसी कारण सुबह उठकर हमलोग इस 'विश्वरूप-दर्शन' योग नामक अध्याय का नित्य पाठ करते हैं। साथ ही मन में चिंता करते हैं एवं प्रार्थना करते हैं—''हे प्रभु, तुम्हारा यह विश्वरूप दर्शन मेरे लिए सार्थक हो। विश्व के सब रूपों के भीतर, हर कार्य के भीतर मैं केवल तुम्हारा दर्शन कर सकूँ। सब कार्यों में तुम्हारे ज्ञान से, तुम्हारी पूजा सम्पूर्ण कर सकूँ, यही तुम्हारे पास मेरी प्रार्थना है।''

इस प्रकार से सब कुछ उनके चरणों में अर्पण करने के बाद, हम निश्चिंत होकर कहते हैं—''प्रभु! मेरा अब कुछ भी नहीं रहा। कर्म भी तुम्हारा है, विश्वरूप भी तुम्हारा ही है। अतः विश्व के सब कर्मों के कर्त्ता तुम्ही हो, मेरा केवल सेवा करने का अधिकार है, कर्म करने का अधिकार है। तुमने तो कहा है— कर्म में ही तुम्हारा अधिकार हो, कर्मफल में नहीं।''

''मैंने इस कारण दिन भर के सारे कर्म-अकर्म का फल तुम्हारे चरणों में अर्पित किया है—इस कर्मफल के मालिक तुम हो, मैं नहीं। हे प्रभु! मैं निश्चिंत मन से, एकाग्र भाव से तुम्हारी ही सेवा कर सकूँ। 'सारे दिन के कर्म-यज्ञ के एकमात्र अधिपति तुम्हीं हो ' इस ज्ञान को रखकर सब कार्य सुंदर रूप से सम्पूर्ण कर सकूँ, यही मेरी एकमात्र प्रार्थना है।''

'' प्रथम खण्ड समाप्त ''

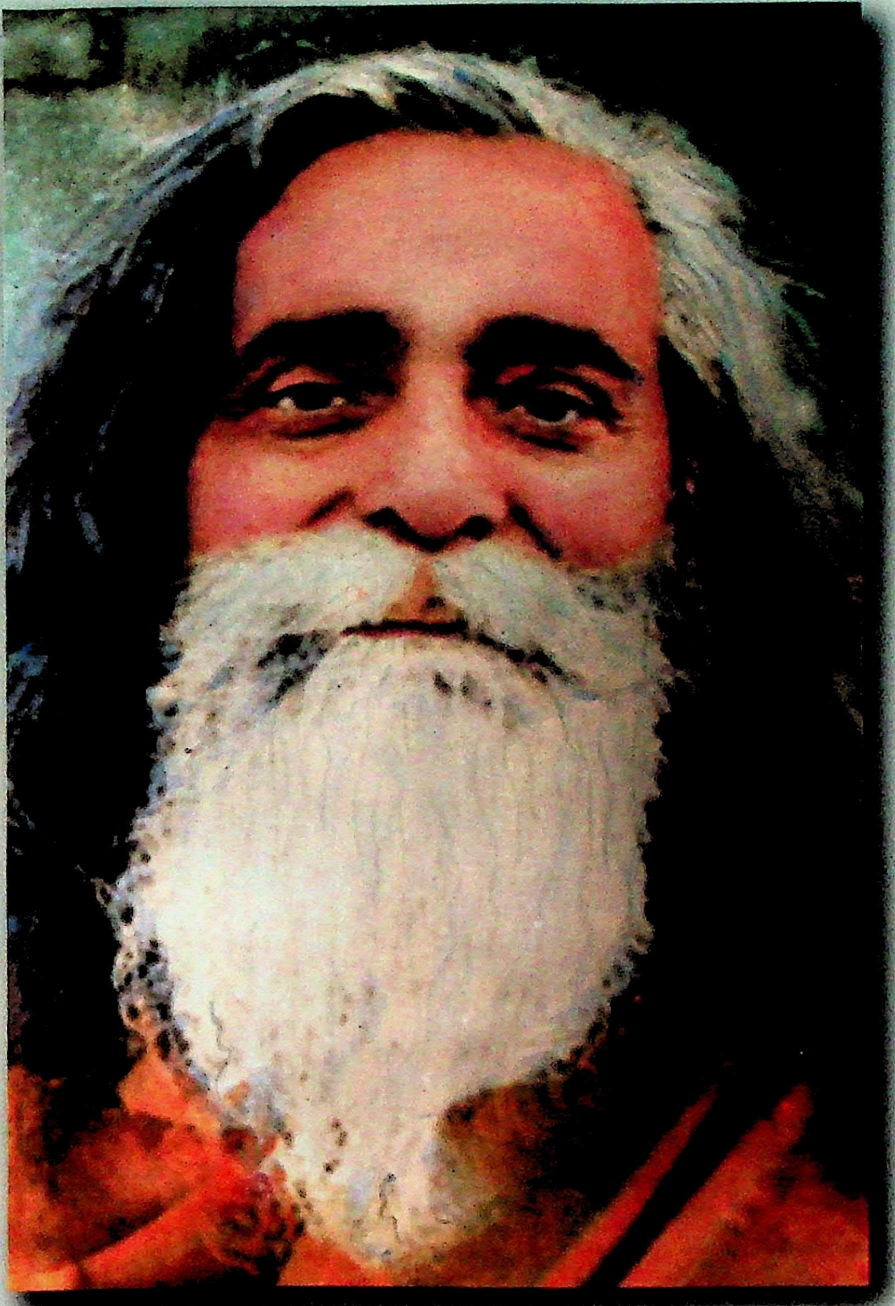

स्वामी असीमानन्द जी

॥ ॐ ॥

द्वितीय खण्ड

लेखक के संस्मरण

◆

सूची पत्र

प्रथम परिच्छेद	पृष्ठ ३	से	पृष्ठ १४
द्वितीय परिच्छेद	पृष्ठ १५	से	पृष्ठ २९
तृतीय परिच्छेद	पृष्ठ ३०	से	पृष्ठ ४५
चतुर्थ परिच्छेद	पृष्ठ ४६	से	पृष्ठ ६१
पंचम परिच्छेद	पृष्ठ ६२	से	पृष्ठ ८५
षष्ठ परिच्छेद	पृष्ठ ८६	से	पृष्ठ ९७
सप्तम परिच्छेद	पृष्ठ ९८	से	पृष्ठ ११०
अष्टम परिच्छेद	पृष्ठ १११	से	पृष्ठ १२४
नवम परिच्छेद	पृष्ठ १२५	से	पृष्ठ १३५
दशम परिच्छेद	पृष्ठ १३६	से	पृष्ठ १४३
एकादश परिच्छेद	पृष्ठ १४४	से	पृष्ठ १५१

प्रस्तावना

''**स्मृति कुसुमांजलि**'' नामक बंगला ग्रन्थ में लेखक के संस्मरण को सर्वप्रथम प्रकाशित किया गया था। उस ग्रन्थ से संशोधित अनुवाद यहां प्रस्तुत किया गया है।

संस्मरण लिपिबद्ध करने के पूर्व सर्वप्रथम प्रातः स्मरणीय गुरूदेव श्रीमत् स्वामी असीमानंद सरस्वती महाराज के उन अमृत वचनों का स्मरण करना उचित होगा जो हम लोगों से वे हमेशा कहा करते थे– ''मेरे सम्पर्क में आने के बाद तुम लोगों को जो भी अनुभव हो तथा मेरे साथ जो भी वार्तालाप हो वह सब लिखते जाना''। हमें बंगला भाषा का ज्ञान बहुत अच्छा नहीं है फिर भी उनके साथ सत्संग के समय जो भी बातचीत हुई उसे हम लिखते गये। ऐसा,यह सोचकर ही किया गया कि श्री गुरूदेव के निर्देशानुसार यह लिपिबद्ध की गयी वार्ता, भविष्य में हमारे लिये उपयोगी होगी। उस समय यह सोचा भी नही था कि किसी दिन इसे प्रकाशित कराने की अंतरप्रेरणा व सौभाग्य हमें प्राप्त होगा।

दिनांक ७ मई, १९९८ ई. को पूज्य श्री गुरू माँ (माता ठाकुरानी–श्रीमती शैलबाला देवी), महासमाधि में लीन हो गइ। उस समय लगभग ५०-६० गुरूभाई-बहन एवं भक्तगण रघुनाथपुर आश्रम में उपस्थित थे। पूज्य माँ के आकस्मिक देहावसान से हम सभी दिशाहीन से हो गये थे। उस समय नित्य–प्रतिदिन प्रातः एवं सायंकाल नाम-कीर्तन चल रहा था एवं रात्रि ८ से ९ बजे तक पुरी की श्रीमां मणि की कथा, पूज्य गुरूदेव के संबंध में विभिन्न प्रसंग, पूज्य गुरू मां की कथा एवं विभिन्न महात्माओं के प्रेरक प्रसंगों पर चर्चा होती रहती थी। उपस्थित भक्तगण जिस तरह से आग्रह पूर्वक इन कथाओं को सुनते थे, उसे देखकर हमें आश्चर्य होता था। यह सभी प्रसंग हम अपनी डायरी से पढ़कर सुनाया करते थे। श्रोतागण इन प्रसंगों को ग्रंथ रूप में प्रकाशित कराने के लिये विनम्र अनुरोध किया करते थे। इस प्रकार सभी का विशेष आग्रह देखकर इन प्रेरक प्रसंगों से संबंधित स्मृतियों को ग्रंथ रूप में प्रकाशित करने की प्रेरणा के फलस्वरूप हम इस कार्य के लिये उद्यत हुये। इस पुनीत कार्य की ओर अग्रसर होने पर कुछ भक्तों ने भी अपने व्यक्तिगत जीवन की प्रेरक घटनाओं का उल्लेख किया जिन्हें सुनकर लगा कि इन घटनाओं को भी प्रकाश में लाना महत्वपूर्ण होगा। इस कारण बंगला ग्रंथ को चार भागों में विभाजित करते हुए लिपिबद्ध किया गया था। **पर हिन्दी ग्रंथ में केवल प्रथम अध्याय का अनुवाद दिया गया है क्योंकि इस अध्याय में पूज्य गुरूदेव से सम्बन्धित घटनाएं अधिक है।**

इस अध्याय में दीक्षालाभ से पहले तथा दीक्षालाभ के बाद विभिन्न अवस्थाओं

में पूज्य गुरूदेव एवं अन्य महात्माओं द्वारा सत्संग के समय दिये गये निर्देशो का उल्लेख प्राप्त होगा। सन् १९६२ ई. से सन् १९६८ ई. तक श्री माँ मणि एवं श्री गुरूदेव से प्राप्त पत्र आदि भी इस अध्याय में शामिल किये गये हैं। **तारतम्य बनाये रखने के लिये हमारे व्यक्तिगत जीवन की कुछ घटनाओं का उल्लेख भी इस अध्याय में किया गया है। क्योंकि इन महत्वपूर्ण घटनाओं, प्राप्त उपदेशों एवं पत्रादि की भूमिका जाने बिना, ग्रंथ का मर्म समझना सहज नहीं होगा।**

बंगला ग्रंथ के द्वितीय अध्याय में पूज्य गुरू माँ से संबंधित कुछ चिरस्मरणीय घटनाएं, उनके साथ वार्तालाप के समय प्राप्त प्रश्नों के उत्तर जो लिपिबद्ध किये गये थे, उन्हें इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड के तीसवें अध्याय में दिया गया है।

श्रीश्रीगोस्वामी प्रभु के चरणों में सभी के लिये मंगल प्रार्थना करता हूँ। श्रीश्रीगुरूदेव की मंगलमय इच्छा पूर्ण हो।

''स्वामी अमलानंद सरस्वती''

प्रथम परिच्छेद

बात काफी पुरानी है। उस समय हम दोनों भाईयों का उपनयन संस्कार हो चुका था। हम दोनों यथासंभव संध्या एवं गायत्री जप किया करते थे। बड़े भैया उस समय शासकीय विद्यालय में शिक्षक थे। वह स्वयं भी बहुत साधना एवं भजन किया करते थे और हम लोगो के साथ भी विभिन्न साधुओं के संबंध में, जिनसे उनका परिचय था, प्रेरक घटनाओं का उल्लेख करते हुए धार्मिक चर्चा किया करते थे। उनके पास धार्मिक पुस्तकों का विशाल भंडार था। तब तक हम लोगों को बंगला का साधारण ज्ञान हो चुका था। हमने श्रीश्री रामकृष्ण देव, स्वामी विवेकानंद, भारत सेवाश्रम संघ से प्रकाशित ग्रंथ एवं श्री श्री सद्‌गुरू संग ग्रंथ का पाठ किया। उस समय बहुत सी बातें समझ में नहीं आती थी किंतु पढ़ना अच्छा लगता था इसलिए अध्ययन किया करते थे। यह सब ग्रंथ पढ़कर मन में प्रेरणा उत्पन्न हुई कि **जब तक चरित्र गठन एवं जीवन का लक्ष्य स्थिर नहीं हो जाता, किसी तरह भी शांति प्राप्त नहीं हो सकती।** अतः विभिन्न ग्रंथों में ब्रह्मचर्य आदि से सम्बन्धित नियमों को पढ़कर उसके अनुसार चलने की यथासंभव चेष्टा हमारे द्वारा आरंभ की गयी।

मैंने उस समय शासकीय विद्यालय में कक्षा नवमी में प्रवेश लिया था। आलोक ने मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करके रायगढ़ में पॉलिटेक्निक में प्रवेश लिया, उस समय मेरी आयु १४ वर्ष रही होगी तथा आलोक १७ वर्ष का था । मेरी पढ़ाई और भजन-साधना दोनों नियमपूर्वक चल रहे थे किंतु पालिटेक्निक के छात्रावास में प्रतिकूल परिवेश होने से आलोक को अपने इन कायो में अत्यधिक असुविधा का अनुभव हो रहा था। वहां न तो भजन-साधना हो पाती थी और न ही विद्या अध्ययन ही ठीक प्रकार से हो पाता था। इसलिये आलोक पढ़ाई छोड़कर रायपुर वापस आ गया तथा बी. कॉम. में प्रवेश ले लिया। पहले की तरह भजन-साधना तथा साथ में थोड़ा-थोड़ा हठयोग के आसन एवं प्राणायाम का अभ्यास भी हम लोगों द्वारा खूब उत्साह के साथ प्रारम्भ किया गया।

घर का परिवेश अनुकूल होने के कारण हम लोगों की भजन-साधना में कोई बाधा नहीं थी। बड़े भैया ने ज्योतिर्मठ के शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती महाराज से दीक्षा प्राप्त की थी। वे प्रायः उनके संबंध में गूढ़ चर्चायें किया करते थे। हमारी माताश्री काशी के प्रख्यात संत ''गंध बाबा'' श्रीमत् स्वामी विशुद्धानंद जी से दीक्षित थीं। गंध बाबा उस समय के महान् योगियों में से एक थे। उनके द्वारा हिमालय के ज्ञानगंज नामक स्थान पर प्राचीन योगीजन के निकट दीर्घकाल तक योग-शिक्षा ग्रहण की गई थी तथा उसके बाद उन्होंने अपने गुरूदेव के निर्देशानुसार अनेक

उपयुक्त एवं सक्षम व्यक्तियों को दीक्षित भी किया। गंध बाबा के अनन्यतम शिष्य डॉ. गोपीनाथ कविराज द्वारा लिखित ग्रंथों में गंध बाबा के संबंध में तथा उनकी साधना के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। बंगला ग्रंथ "भारतेर साधक" (भारत के महान् साधक) में भी गंध बाबा की जीवनी का उल्लेख है।

"श्रीमत् स्वामी प्रेमानंद भारती महाराज" पिताजी के गुरू थे। स्वामी प्रेमानंद भारती जी के संबंध में दुर्भाग्य से आज कोई साहित्य उपलब्ध नहीं है।

बारदी ग्राम, पूर्वी बंगाल के श्रीलोकनाथ ब्रह्मचारी के शिष्य स्वामी ब्रह्मानन्द भारती जी से स्वामी प्रेमानंद भारती दीक्षित थे। स्वामी प्रेमानन्द भारती जी का श्री श्रीरामकृष्ण देव, श्रीश्रीविजयकृष्ण गोस्वामी जी, श्री चरणदास बाबा जी तथा उस समय के अनेक महापुरूषो के साथ आंतरिक सम्पर्क था। श्री रामदास बाबा जी द्वारा प्रकाशित "चरित्र सुधा" ग्रंथ में तथा "श्रीश्रीसद्‌गुरू संग" में स्वामी प्रेमानंद जी के संबंध में उल्लेख मिलता है। स्वामी विवेकानंद जी जब अमेरिका से वापस आ गये उसके कुछ वर्षों पश्चात् स्वामी प्रेमानंद जी भगवत् प्रेरणा से अमेरिका गये एवं वहाँ भक्ति-धर्म का प्रचार किया। अमेरिका में श्रीराधाकृष्ण एवं श्रीचैतन्य महाप्रभु के मंदिर की सर्वप्रथम स्थापना उनके द्वारा ही की गयी थी। हमारे दादाजी (पिताजी के पिताजी) एवं पिताजी दोनों ही स्वामी प्रेमानंद भारती जी के शिष्य थे। दादाजी, देहांत के पहले अपने इकलौते पुत्र अर्थात हमारे पिताजी को स्वामी प्रेमानंद भारती जी के पास छोड़ गये थे। बाल्य अवस्था में ८ से १२ वर्ष की आयु तक पिताजी अपने गुरूदेव के पास ही रहे। सन् १९१३ ई. में अपने देहावसान के पूर्व स्वामी प्रेमानंद जी ने पिता जी को अपने अंतरंग मित्र श्री हेमेन्द्रनाथ के हाथों सौप दिया था। श्री हेमेन्द्र नाथ मित्र श्री श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी जी के शिष्य थे। वे मनोहर पुकुर रोड कोलकाता में रहते थे।

नियमित साधना करते हुये यह समझ में आ गया था कि **सद्‌गुरू से दीक्षा प्राप्त किये बिना कुछ भी संभव नहीं है।** अतः सद्‌गुरू की खोज में हमलोग छुट्‌टियों में पुरी पहुँचे। वहां अनेक आश्रमों में घूमते रहे किंतु मन में किसी प्रकार के आकर्षण का अनुभव नहीं हुआ।

रायपुर मे उस समय पधारे ब्रह्मचारी तेज चैतन्य जी (स्वामी आत्मानंद जी) से परिचय हुआ, जो श्री रामकृष्ण मिशन की स्थापना के उद्देश्य से वहां आये हुये थे। उनसे सिद्ध महात्माओं के संबंध में चर्चा करते हुए ज्ञात हुआ कि ऋषिकेश स्थित वशिष्ठ गुफा में एक उत्कृष्ट महात्मा साधनारत् ह। उनसे मिलने के लिये हमलोग ग्रीष्मकालीन अवकाश में ऋषिकेश की ओर निकल पड़े। कोलकाता, बनारस, लखनऊ होकर हमलोग हरिद्वार पहुँचे। यहाँ से ऋषिकेश आकर स्वामी शिवानंद

आश्रम में रूके। स्वामी शिवानंद जी से भेंट होने पर वशिष्ठ गुफा का रास्ता तो ज्ञात हो गया, साथ ही यह भी पता लगा कि जिन महात्मा से मिलने हमलोग आये ह, उनका कुछ दिन पूर्व ही देहावसान हो चुका है। महात्मा के दर्शन न हो पाने से हमारा मन खिन्न हो गया। कुछ दिन ऋषिकेश में भ्रमण करने केबाद हमलोग रायपुर वापस आ गये।

बी. कॉम. पास करने के बाद आलोक सी. ए. के अध्ययन के लिये कोलकाता गया। मैंने रायपुर में ही बी. एस. सी. मे प्रवेश ले लिया। मेरी पढ़ाई एवं नियमित साधना एक साथ चल रही थी। एक दिन जानकारी मिली कि स्थानीय कालीबाड़ी में एक विशेष तांत्रिक संप्रदाय के अवधूत पधारे हुये हैं। मैं उनके दर्शन करने कालीबाड़ी गया। वे वहाँ काफी देर तक प्रवचन करते रहे। उसके बाद उनके द्वारा यह भी बताया गया कि यदि किसी साधक को साधना संबंधी कोई जिज्ञासा है, तो वे उसका समाधान भी करेंगे। मैंने उनके ठहरने के स्थान की जानकारी प्राप्त की और दूसरे दिन सुबह उनके दर्शन करने वहां पहुँच गया। मुझे कुछ दिनों से आसन एवं प्राणायाम करते समय प्रायः मन में यह दुविधा रहती थी कि मैं जो कर रहा हूँ वह ठीक हो रहा है या नहीं? अतः अवधूत से मिलकर अपने संशय का निराकरण करने का निश्चय मैंने किया था। अवधूत उस समय वहाँ नहीं थे। उनके एक गुरूभाई मुझे वहाँ मिले। उनसे मैंने अपने संशय के बारे में जिज्ञासा प्रकट की। तब उनके द्वारा कहा गया कि पहले मुझे उनके संप्रदाय में दीक्षा लेनी पडेगी, तभी मेरे प्रश्न का उत्तर मिलेगा। वे मुझे दीक्षा के लिये बहुत देर तक समझाते रहे। तत्पश्चात् अपने सामने एक आसन पर बैठाकर उनके भ्रूमध्य में मुझे दृष्टि स्थिर रखने को कहा। मुझे लगा कि वे त्राटक के माध्यम से मुझे वशीभूत करने की चेष्टा कर रहे हैं। उनकी यह किया मुझे अच्छी नहीं लगी। मैंने उनके प्रभाव को निस्तेज करने के उद्देश्य से मन ही मन गायत्री मंत्र का जप प्रारम्भ कर दिया। लगभग डेढ घंटे बाद मैंने संयत होकर उनसे कहा–"अवधूत जी से मिलने कल फिर आ जाऊँगा, अभी मुझे जाने की अनुमति प्रदान करें।" दूसरे दिन अवधूत जी से मिलने जाऊँगा ऐसा निश्चय कर लिया था, किंतु उसी रात एक अदभुत स्वप्न देखा कि मैं एक पहाड़ के ऊपर स्थित देवी मंदिर के दर्शनार्थ जा रहा हूँ। पहाड़ के पास पहुँच कर देखता हूँ एक चौड़े रास्ते से बहुत लोग मंदिर के दर्शन को जा रहे हैं। मैं भी उसी रास्ते से जाऊँगा सोचकर कुछ दूर ही चला था कि एक व्यक्ति ने आकर कहा कि इस रास्ते से मत जाओ बहुत देर लगेगी। मेरे साथ आओ कम समय में ही मंदिर तक पहुँच जाओगे। वह व्यक्ति मुझे अपने साथ चलने के लिये अत्यंत आग्रह करने लगा। मैंने कुछ देर सोचने के बाद निश्चय किया कि जिस रास्ते से सभी लोग जा रहे हैं मैं भी उसी रास्ते से जाऊँगा और इस निश्चय के साथ मैं वही रारता पकड़कर आगे बढ़ गया तथा काफी चलने के बाद मंदिर पहुँच गया। मंदिर में देवी का दर्शन करके मुझे अत्यंत आनंद प्राप्त

हुआ। मंदिर से बाहर आकर ज्ञात हुआ कि पहाड़ पर चढते समय कुछ बदमाश लुटेरे यात्रियों को बहलाकर दूसरे रास्ते मे ले जाते हैं और उनका सब कुछ छीनकर हत्या तक कर देते हैं। भगवत् कृपा से मैं उनके साथ न जाने से मंदिर तक पहुँच पाया था। यह स्वप्न देखने के बाद मेरी नींद खुल गई।

स्वप्न के तात्पर्य पर विचार करने पर मुझे प्रतीत हुआ कि मैं जिस प्रकार साधना कर रहा हूँ उसी प्रकार करता रहूँगा। अवधूत या उनके गुरूभाईयों के निर्देशानुसार दीक्षा नहीं लूँगा। अतः दूसरे दिन मैं अवधूत के पास नही गया। करीब एक-डेढ़ वर्ष उपरांत ज्ञात हुआ कि मेरे कुछ परिचित व्यक्तियों को अवधूत के अनुसरण से अत्यंत हानि हुई है। मेरे एक परिचित व्यक्ति तो पागल ही हो गये तथा दूसरे उनके चंगुल से भागने में बडी मुश्किल से सफल हो सके। बाद में विभिन्न पत्रिकाओं मे इस विशेष तांत्रिक संप्रदाय के अवधूतों के दुष्कर्मों की अनेक कथायें भी प्रकाशित हुई। स्वप्न के माध्यम से भगवत् कृपा के द्वारा ही मेरी रक्षा हुई थी।

आलोक कोलकाता में मामा के पास रहता था । वहॉ प्रतिकूल परिवेश व आहार संबंधी परेशानियों के कारण ठीक से अध्ययन नहीं हो पा रहा था। वह उस समय प्रायः भारत सेवाश्रम, दक्षिणेश्वर, बेलूर मठ आदि स्थानों पर जाता था, परंतु मन शांत नही होता था। कोलकाता में ''महेश लायब्रेरी'' धर्मग्रंथों की बडी दुकान थी । वहाँ से वह अच्छी-अच्छी पुस्तक खरीदकर पढ़ा करता था। इसी समय माँ आनंदमयी, श्री सीतारामदास ओंकारनाथ जी एवं पुरी की पूज्य माँ मणि का पता उसे प्राप्त हुआ। मॉ आनंदमयी उस समय कोलकाता में नहीं थी। श्री सीतारामदास जी पुरी में मौन व्रत लेकर एकांत वास कर रहे थे। पूज्य माँ मणि द्वारा रचित श्री श्रीसद्गुरू उपदेशामृत, श्री वृन्दावन लीला आदि ग्रंथों के अध्ययन से विशेष प्रेरणा प्राप्त कर, आलोक कुछ दिन की छुट्टी लेकर रायपुर आया। वे सभी ग्रंथ भी वह साथ लाया था। उल्लेखनीय है कि वृन्दावन से प्रकाशित ''नव भक्तमाल'' नामक ग्रन्थ में माँ मणि के सम्बन्ध में विशेष वर्णन दिया गया है। माँ मणि द्वारा रचित विभिन्न ग्रंथों को पढ़कर ज्ञात हुआ कि वे दीक्षा नहीं देती हैं, किंतु श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी, श्री काठिया बाबा आदि सिद्ध महात्माओं के दर्शन उन्हें होते है और यदि कोई माँ मणि से कुछ प्रश्न करें तो वे इन महात्माओं से पूछकर उत्तर लिखकर भेज देती हैं। श्री गोपाल जी एवं श्रीमत् चैतन्य महाप्रभु की नित्य लीला के दर्शन उन्हें सर्वदा होते रहते हैं। उनके विभिन्न ग्रंथों को पढ़कर और मनन करके, हमने माँ मणि को पत्र लिखकर, चार प्रश्नों का उत्तर जानना चाहा। हमने उनसे अनुरोध किया कि वे कृपा करके श्री विजयकृष्ण गोरवामी जी से पूछकर इन प्रश्नों के उत्तर हमें लिखें। प्रश्न इस प्रकार थे :–

१. क्या हम लोगों को पूर्व-जन्म में सद्गुरू प्रदत्त साधना प्राप्त हुई थी?

२. क्या इस जन्म में सद्गुरू लाभ की आशा है?

३. इस जन्म में क्या किसी अध्यात्मिक अवस्था लाभ होने की संभावना है?

४. हमें इस समय क्या करना उचित है?

कुछ दिन उपरांत पूज्य माँ मणि का पत्र प्राप्त हुआ। जो इस प्रकार है :–

ब्रजधाम कुंडाईबेंट साही–पुरी
३० आषाढ़, ६१

परमस्नेहास्पदेषु,

तुम्हारा पत्र पाकर अत्यंत हर्षित हुई। तुम लोगों को श्री श्रीसद्गुरू उपदेशामृत पढ़कर जो आनंद प्राप्त हुआ एवं तुम लोग उसके अनुसार चलने की चेष्टा कर रहे हो, यह मेरे लिये अत्यंत प्रसन्नता का विषय है। श्रीश्री भगवान तुम लोगों का मंगल करें।

तुम लोगों के पत्र के उत्तर में गोसाँई जी ने जो कुछ कहा है, वह लिख रही हूँ। श्रीश्री गोसाँई जी ने कहा–

''माँ, आलोक को एवं अमल को मेरा आशीर्वाद देकर लिख दो कि उन लोगों को पूर्व-जन्म में सद्गुरू प्रदत्त साधन प्राप्त नहीं हुई थी, लेकिन कुलगुरू से दीक्षा प्राप्त हुई थी। इस जन्म में सद्गुरू लाभ होगा लेकिन विलंब से। इस समय दोनों भाई 'नाम-ब्रह्म' नाम का जप करें। उनके ऊपर महाप्रभु की असीम करूणा है। समय आने पर वे लोग कृपालाभ करेंगे। आहार संबंधी विधि-निषेध लिख देना। एक बार आ सकें तो मंगल होगा, सब बातें समझ सकेंगे।''

माँ मणि द्वारा लिखित पत्र में उल्लेखित 'नाम-ब्रह्म' एवं आहार संबंधी विधि-निषेध निम्न प्रकार है :–

१. नाम-ब्रह्म :-

''हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।''

२. आहार संबंधी विधि-निषेध :–

मांस, प्याज, लहसुन, अंडा, श्राद्ध का अन्न, मादक द्रव्य आदि का सेवन निषिद्ध है।

माँ मणि द्वारा पत्र में आगे लिखा गया था–''तुम लोगों को अन्य पुस्तकें मिली या नहीं, मालूम नहीं। एक सूची भेज रही हूँ, सुविधा अनुसार देख लेना। इन पुस्तकों में अनेकों प्रेरणात्मक प्रसंग हैं। शंकाओं के समाधान भी हैं। कुछ और जानना हो तो पत्र लिखना। श्रीश्री गोसाँई जी एवं श्री श्रीमाता ठाकुरानी जी का आशीर्वाद जानना। उनके श्री चरणों में तुम लोगों के लिये मंगलकामना करती हूँ। इति।

श्रीश्री सद्गुरूचरणाश्रिता–माँ मणि

श्री माँ मणि का पत्र पाकर हमें अत्यंत आनंद का अनुभव हुआ। हमने उन्हें अपनी वर्तमान अवस्था के संबंध में पुनः लिखा। आलोक ने, कोलकाता में जो असुविधायें हुई थी उनके लिए भी लिखा तथा मैंने यह भी लिखा कि अभिभावकों की आज्ञा के अनुसार, बी. एस. सी. उत्तीर्ण कर वकालत पढ़ने के बदले, एक हाईस्कूल में अध्यापन कार्य शुरू कर दिया है। कुछ दिन पश्चात् माँ मणि के दो पत्र प्राप्त हुये। पहला पत्र आलोक के लिये इस प्रकार था :–

पुरी ९. ८. ६२

बेटा आलोक,

तुम लोगों का पत्र मिले कई दिन हो गये हैं। अनेक उलझनों के कारण उत्तर देने से देरी हुई। तुम दोनों ही 'नाम-ब्रह्म' का जप कर रहे हो यह जानकर अत्यधिक आनंद हुआ। श्री भगवान तुम लोगों का मंगल करेंगे। समय आने पर तुम्हारी सभी मनोकामनायें पूर्ण होगी। तुम्हारे पत्र से मालूम हुआ कि तुम अभी कोलकाता में पढ रहे हो तथा खाने की उचित व्यवस्था नहीं है, प्याज आदि खाना पढ़ रहा है। लेकिन अन्य लोगों के घर पर जब कोई उपाय नहीं है तो क्या करोगे? समय आने पर भगवान ही सब व्यवस्था करेंगे। चिंता मत करो उनका स्मरण करते हुए सब कार्य करते रहो। पुरी आने की इच्छा है जानकर खुशी हुई। अभी और क्या लिखूँ । मन लगाकर अध्ययन करते रहो।

श्री श्रीगोसाँई जी एवं श्री श्रीमाता ठाकुरानी का आशीर्वाद एवं ''गोपाल'' का प्यार लेना। उनके, श्री चरणों में तुम लोगों के लिये मंगलकामना करती हूँ। इति।

श्री श्रीसद्‌गुरू चरणाश्रिता – माँ मणि

दूसरा पत्र जो मेरे लिये था, वह इस प्रकार है :–

पुरी ९. ८. ६२

परमस्नेहास्पदेषु,

बेटा अमल, तुम्हारा पत्र मिला। आनंदित हुई। तुम्हारी पढ़ाई के संबंध में ज्ञात हुआ। आत्मीय स्वजन, माता, पिता जो कहें वही करो। अभी छात्र अवस्था में पढ़ना-लिखना ही तपस्या है। साधना एवं भजन के लिये आगे बहुत समय मिलेगा। अभी नाम-ब्रह्म जप कर रहे हो, करते रहो। समय आने पर धर्म लाभ होगा। श्री श्रीगोसाँई जी ने अभी तुम्हारे बारे में कुछ नहीं कहा है। बाद में यदि कहेंगे तो बतलाऊँगी। संसार के संबंध में वे प्रायः कुछ नहीं बोलते हैं। तुम कोलकाता मे रहोगे या रायपुर में ? पत्र लिखते रहना । मैं ठीक हूँ।

श्री श्रीमत् चैतन्य महाप्रभु, श्री श्रीगोसाँई जी एवं श्री श्री माता ठाकुरानी का आशीर्वाद तथा ''गोपाल'' का प्यार लेना। उनके, श्रीचरणों में तुम लोगों के लिये मंगलकामना करती हूँ। इति।

श्री श्री सद्‌गुरूचरणाश्रिता,–गाँ मणि

माँ मणि ने प्रथम पत्र में लिखा था "एक बार आ सको तो मंगल होगा। अनेक बातें जान पाओगे।" यह पढकर माँ मणि से मिलने के लिये हमलोग व्याकुल हो गये तथा उनसे किस प्रकार मिला जाये उसके लिये उपाय करने लगे। हमने विचार किया कि आलोक की छुट्टियां समाप्त हो रही थी । अतः वह कोलकात्ता वापस जायेगा। कोलकाता जाते समय खड़गपुर में ब्रेकजर्नी करके, पुरी जाकर आलोक अकेले ही माँ मणि से मिल लेगा। इस प्रकार पुरी जाने के संबंध में रायपुर एवं कोलकाता दोनों ही स्थानों पर किसी को पता नहीं चलेगा और हम लोगों का काम भी बन जायेगा। हम लोगों ने अपनी माताश्री को माँ मणि के बारे में, उन्हें लिखे गये पत्र एवं उनके पत्रों तथा पुरी जाने की योजना आदि के संबंध में विस्तार से बता दिया। माताश्री ने प्रसन्न मन से अनुमति भी दे दी। घर पर और किसी को भी इस संबंध में कुछ नही बताया।

पिताजी रायपुर से ६० किलोमीटर दूर बलौदाबाजार में वकालत करते थे एवं वहीं रहते थे। वे समय-समय पर रायपुर आते रहते थे। जिस दिन आलोक को जाना था, उसी दिन पिताजी आने वाले थे। अतः यह सोचकर, कि कहीं किसी प्रकार का विघ्न पैदा न हो जाये हमलोग ट्रेन के निश्चित समय से कई घंटे पहले ही घर से निकल पड़े। आलोक को छोड़ने मैं भी उसके साथ स्टेशन गया।

पिताजी ने घर पहुँचते ही जब सुना कि आलोक कोलकाता जा रहा है तो वे कहने लगे कि "बहुत दिनों से मेरा गंगा स्नान नहीं हुआ है। इसलिये मैं भी आलोक के साथ कोलकाता हो आता हूँ ।" पिताजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था, इसलिये माँ ने उन्हें अभी कोलकाता न जाने के लिये कहा। किंतु वे नहीं माने और स्टेशन पहुँच गये। उस समय आलोक टिकिट लेने के लिये कतार में खड़ा हुआ था। पिताजी ने आलोक से कहा "मेरे लिये भी टिकिट ले लो"। विवश होकर आलोक ने दो टिकिट खरीद लिये। हम दोनों विचार करने लगे कि पिताजी के साथ जाने से आलोक का पुरी जाना एवं माँ मणि से मिलने का सुयोग संभव नहीं हो सकेगा। अतः हम पिताजी को कोलकाता न जाने के लिये अनेक प्रकार से समझाने लगे । किंतु वे गंगा स्नान के लिए कोलकाता जाने के निश्चय पर अडिग थे। हमलोग ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहे थे एवं मन ही मन श्री श्रीगोसाँई जी (श्री श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी जी) से यह प्रार्थना कर रहे थे कि ऐसा कुछ कीजिये, जिससे पिताजी का आलोक के साथ जाना न हो पाये और आलोक को माँ मणि से मिलने में कोई बाधा उत्पन्न न हो। उसी समय ज्ञात हुआ कि ट्रेन दो घंटे विलंब से आयेगी। हमलोग फिर से पिताजी को, न जाने के लिये जोर देकर समझाने लगे। वे कुछ क्षण सोचकर बोले "ठीक है अभी स्वास्थ्य ठीक नहीं है, कुछ दिनों बाद चला जाऊँगा"। मैं एक टिकिट वापस करके पिताजी को साथ लेकर घर लौट आया। मन में विचार आया कि गोसाँई जी ने अंतरात्मा की प्रार्थना सुन ली है।

आलोक खड़गपुर होकर पुरी चला गया। वहाँ पहले श्री जगन्नाथ देव के दर्शन करने के उपरांत माँ मणि से मिलने गया। माँ मणि कुंडाई बेट साही में एक छोटे से मकान में निवास करती थीं। सामने के कमरे में उस समय एक साधू रहते थे। उनसे माँ मणि के बारे में पूछने पर, उनके द्वारा मकान के अंदर जाने के लिये कहा गया। अंदर कमरे मे एक वृद्ध महिला बैठी थी। आलोक ने उनसे माँ मणि के बारे में पूछा। वे आलोक की ओर स्थिर दृष्टि से देखती रहीं। आलोक ने उनसे फिर कहा–"क्या आप ही माँ मणि हैं?" उनके हाँ कहने के साथ ही आलोक ने उन्हें प्रणाम किया। माँ मणि ने अत्यंत स्नेह के साथ आशीर्वाद देते हुये आलोक को पास ही खाट पर बैठने के लिये कहा । फिर वे बोली–"एकदम जाना पहचाना चेहरा है । लगता है, गोसाँई जी के पास थे।" आलोक ने पूछा–"हम लोगों की दीक्षा कब होगी? हमारे सद्‌गुरू कौन ह?" माँ मणि सांत्वना देते हुये बोली–"चिन्ता मत करो । तुम लोगों को सद्‌गुरू लाभ होगा। धैर्य रखकर नाम-ब्रह्म जप करते रहो। समय आने पर सद्‌गुरू लाभ होगा। आलोक ने कहा–"नाम-ब्रह्म दीर्घकाल जप करते रहने पर तब यह मालूम हो जायेगा कि हमारे सद्‌गुरू कौन हैं । तुम तो सब जानती हो। तुम कृपा कर हमें बतादो कि हम लोगों को दीक्षा कहाँ से मिलेगी।"

माँ मणि से बार-बार प्रार्थना करने पर वे बोली–"**तुम लोगों को दीक्षा देने का भार गोसाँई जी ने असीमानंद के ऊपर दिया है। वे ही तुम लोगों के सद्‌गुरू हैं। असीमानंद पुरूलिया जिले के रामचन्द्रपुर में निवास करते हैं । उनके अंदर गोसाँई जी की नित्यलीला चलती रहती है। तुमलोग उनसे दीक्षा प्राप्त करो । अभी वे कोलकाता में के. के. दास के यहां ठहरे हुये हैं। कोलकाता पहुँचते ही यदि प्रयास करोगे तो उनसे मिलना संभव हो सकता है।**" श्री के. के. दास का पता भी माँ मणि ने दिया। कोलकाता में मामा के घर पर खानपान संबंधी असुविधा के बारे में माँ मणि को बताने पर वे आलोक से बोलीं–"चिंता मत करो गोसाँई जी को सब बताओ, वे सब ठीक करवा देंगे।"

उस समय माँ मणि से मिलने कुछ अन्य लोग आ गये और माँ मणि को प्रणाम करके नीचे चटाई पर बैठ गये। उन्हें चटाई पर बैठते देख आलोक भी चटाई पर बैठ गया। लेकिन माँ मणि आलोक को बार-बार अपने पास बैठने के लिये कहती रही। आलोक ने माँ मणि द्वारा पूजित "गोपाल जी" को तथा वहां लगे अन्य चित्रों को देखकर प्रणाम किया। माँ मणि के साथ चर्चा करते समय उसका ध्यान अब तक इस ओर गया ही नहीं था। "गोपाल जी " माँ मणि के साथ नित्यलीला करते हैं । उनके साथ माँ मणि का वार्तालाप भी होता है।

माँ मणि के साथ बहुत देर तक चर्चा के उपरांत उनका आशीर्वाद लेकर आलोक वापस आ गया। उस समय पुरी के चटकगिरी आश्रम में श्री सीतारामदास

ओंकारनाथ जी, मौन व्रत लेकर एकांतवास कर रहे थे। आलोक उनसे मिलने के लिए वहां गया। उनके शिष्यगण ने बताया कि अभी उनका दर्शन होना संभव नहीं है, क्योंकि वे हमेशा ध्यानस्थ रहते हैं। बाहर नहीं आते। शिष्यगण की बात सुनकर आलोक वहीं, जहाँ नाम-कीर्तन हो रहा था, जाकर बैठ गया। उस समय यह स्थान अत्यन्त मनोरम एवं एकांतमय वातावरण वाला था। वर्तमान में यहाँ आसपास अनेक मकान निर्मित हो गये हैं। वहाँ कुछ समय बाद एक साधू आये और आलोक को बुलाकर अलग ले जाकर कहा–''इस समय बाबा के भोग के लिये उनके पास कुछ भोजन सामग्री रखी जाती है। ध्यान टूटने पर वे कभी-कभी थोड़ा बहुत ग्रहण करते हैं। अभी आप दूर से उनके दर्शन का लाभ ले सकते हैं। आलोक ने साधु के निर्देशानुसार जाकर कुछ दूर से देखा कि श्री ओंकारनाथ जी स्थिर भाव से समाधिस्थ बैठे हैं। दूर से ही उनको प्रणाम करके आलोक ने मन ही मन एक विशेष आकर्षण एवं आनंद का अनुभव किया।

पुरी से कोलकाता लौटने के एकदिन बाद आलोक श्री के. के. दास के यहाँ पहुँचे। वहां पता लगा कि स्वामी असीमानंद जी एकदिन पहले ही रामचन्द्रपुर आश्रम वापस चले गये हैं। माँ मणि के निर्देशानुसार यदि आलोक कोलकाता पहुँचते ही के. के. दास के यहां जाता तो स्वामी असीमानंद जी से मिलना संभव हो सकता था। स्वामी असीमानंद जी के दर्शन लाभ न होने से आलोक का मन खिन्न हो गया। उस दिन ''दास दा" (श्री के. के. दास) के साथ काफी देर तक बातचीत हुई। वे अत्यंत आंतरिक भाव से बात करते रहे। स्वामी असीमानंद जी के प्रभाव से उनके जीवन मे किस प्रकार परिवर्तन आया यह दास दा ने सहज भाव से बताया। स्वामी असीमानंद जी के संबंध मे अन्य चर्चा भी दास दा द्वारा की गयी। वे आलोक से बोले कि वह पहले रामचन्द्रपुर आश्रम पत्र लिखे एवं उसके बाद ही दीक्षा लेने वहां जाये। दास दा से बातें करके आलोक को बहुत अच्छा लगा। दास दा लंदन में सात-आठ वर्ष तक बैरिस्टर थे। बाद में कोलकाता आकर उन्होंने वकालत प्रारंभ की। उनका रहन-सहन एवं खानपान पाश्चात्य शैली का था। किंतु सौभाग्यवश उन्होंने अपनी पत्नी के साथ स्वामी असीमानंद जी से दीक्षा प्राप्त की तथा दीक्षा के उपरांत उनके जीवन में अद्भूत परिवर्तन हुआ। उनके घर साधु संतों का आवागमन सदैव ही होता रहता था और वे वकालत छोड़कर सादगीपूर्ण साधक-जीवन व्यतीत करने लगे थे।

आलोक को मामा के यहाँ बिलकुल अच्छा नही लग रहा था। इसलिये वह हमेशा गोसाँई जी से प्रार्थना करता था कि किसी प्रकार यहां से मुक्ति मिल जाये। कुछ दिनों बाद ही आलोक दृढ़ निश्चय कर पढ़ाई छोड़कर रायपुर वापस आ गया। इस प्रकार सद्गुरू की दीक्षा प्राप्त करने के पूर्व ही आलोक ने साधना के नियमों के

पालन के लिये सी. ए. की पढाई का परित्याग कर दिया था। **वास्तव में जब किसी वस्तु का सटीक मूल्यांकन हो जावे और मनुष्य का लक्ष्य निश्चित हो जावे तब उसकी प्राप्ति के लिये मनुष्य कुछ भी त्याग स्वीकार कर लेता है।** प्रारंभ में ऐसा लगा कि एक वर्ष का समय तथा कुछ धनराशि का अपव्यय हुआ है । किंतु निश्चित रूप से यह सब अच्छे के लिये ही हुआ था, क्योंकि आलोक यदि कोलकाता नहीं जाता तो मॉ मणि के बारे में शायद जानकारी नहीं मिल पाती। आलोक के अकस्मात् रायपुर वापस आ जाने पर पिता जी ने भी प्रसंन्नता प्रकट की। आलोक ने एम. ए. इतिहास में प्रवेश ले लिया एवं एक स्कूल में अध्यापन कार्य भी प्रारंभ कर दिया। रायपुर आने के बाद पुनः पहले जैसी साधना प्रारंभ हो गयी। कुछ दिन बाद हम लोगों ने माँ मणि को सब बातें विस्तार से लिखी। साथ ही मॉ मणि का उल्लेख करते हुये, कमशः अंग्रेजी एवं बंगला में दो पत्र स्वामी असीमानंद जी महाराज को रामचन्द्रपुर आश्रम के पते पर लिखे।

कुछ समय उपरांत मॉ मणि के पत्र प्राप्त हुये। उनका आलोक को लिखा पत्र इस प्रकार था--

पुरी १७. ९. ६२

परमस्नेहास्पदेषु,

बेटा आलोक, कुछ समय पूर्व तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ। स्वास्थ्य ठीक नहीं था एवं अन्य कारणों से उत्तर देने मे विलंब हुआ है।

तुम्हारा पत्र न पाकर चिंतित हो गई थी। तुम कहाँ पर हो यह मालूम न होने के कारण पत्र नहीं लिख सकी। अब तुम्हारा पत्र मिलने से सब समाचार प्राप्त हुये। इस कारण निश्चिंत हो गई हूँ।

तुमने एम. ए. गें प्रवेश लिया है ज्ञात हुआ। मन लगाकर अध्ययन करो जिससे अच्छी तरह परीक्षा पास कर सको । छात्र-जीवन में अध्ययन ही तपस्या है। अतः इस विषय में उपेक्षा करना ठीक नहीं है। जीवन बहुत लंबा है, साधन-भजन के लिये बहुत समय मिलेगा।

नाम-ब्रह्म जप करते हो, जानकर प्रसन्नता हुई। श्वास-प्रश्वास में जप मत करो। दीक्षा के बाद श्वास-प्रश्वास में जप करना गुरूदेव बतायेंगे। नाम-ब्रह्म मन ही मन, उच्च स्वर से, गान करके अथवा जैसे भी इच्छा हो करते रहना।

गायत्री, संध्या जिस प्रकार करना चाहिये उसी प्रकार ठीक से करना। नाम-जप व संध्या, जो अभी कर रहे हो वह ठीक चल रहा है। इसके संबंध में चिंता मत करना।

श्री असीमानंद जी को पत्र लिखा है यह जानकर प्रसन्नता हुई। वे अभी रामचन्द्रपुर में ही रहेंगें। क्योंकि दुर्गापूजा के समय वहाँ पूजा होती है। यदि

सुविधाजनक हो तो इसी अवसर पर रामचन्द्रपुर जाकर दीक्षा ले लेना। हो सकता है तब तक तुम्हें उनका पत्र भी मिल जायेगा। समय-समय पर पत्र लिखते रहना।

श्री श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्री श्रीगोसाँई जी एवं श्री श्रीमाता ठाकुरानी का आशीर्वाद एवं गोपाल का प्यार प्राप्त हो। उनके श्रीचरणों में तुम दोनों के लिये मंगल प्रार्थना करती हूँ। इति।

श्री श्रीसद्‌गुरू चरणाश्रिता,–माँ मणि।

अन्य पत्र जो मुझे संबोधित था इस प्रकार है :–

पुरी १७-९-६२

परमस्नेहास्पदेषु,

पुत्र अमल, तुम्हारा पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। आलोक के पत्र से तुम्ह सब ज्ञात हो गया होगा। दुर्गापूजा की छुट्टियों में तुमलोग रामचन्द्रपुर जाकर दीक्षा लोगे व यहाँ भी आओगे, यह जानकर आनंद प्राप्त हुआ। श्री श्रीगोसाँई जी तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करें।

श्री असीमानंद जी अभी रामचन्द्रपुर में ही रहेंगे। उनके यहाँ दुर्गापूजा के अवसर पर पूजा का आयोजन होता है। पहले से पत्र लिखकर ठहरने के लिये व्यवस्था कर लेना। कब मुलाकात होगी, जानने पर प्रसन्नता होगी और निश्चिंत भी हो जाऊँगी। स्वास्थ्य प्रायः ठीक नहीं रहता है।

श्री श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्री श्रीगोसाँई जी, श्री श्रीमाता ठाकुरानी का आशीर्वाद एवं गोपाल का प्यार प्राप्त हो। उनके श्रीचरणों में तुम लोगों के लिये मंगलकामना। इति।

श्री श्रीसद्‌गुरूचरणाश्रिता–माँ मणि।

माँ मणि का पत्र मिलने के कुछ दिन उपरांत रामचन्द्रपुर आश्रम से गुरूदेव के दो पत्र हमें प्राप्त हुये। पहला पत्र इस प्रकार था–

ॐ गुरू,

२०-९-६२

कल्याणवरेषु

बेटा, तुम्हारा पत्र मिला । तुम दोनों भाई पूजा के अवसर पर रामचन्द्रपुर आ जाओ। मिलने पर सब बातें होंगी। पत्र में लिखे पते पर जाकर श्री पाठक से मिलना। पता–श्री आर. एन. पाठक (पी. डब्ल्यू. डी) शांतिनगर, रायपुर।

मेरा आंतरिक आशीर्वाद।

स्नेहार्थी–असीमानंद।

रामचन्द्रपुर पहुँचने के लिये चकधरपुर उतरकर गोमो जाने वाली ट्रेन से

आद्रा आ जाना। आद्रा से आसनसोल जाने वाली ट्रेन में बैठकर चौथे स्टेशन "मुराडी" पर उतरना। मुराडी स्टेशन से आश्रम की दूरी एक मील है।

दूसरा पत्र इस प्रकार था–

22. 9. 62

My dear son,

Received your letter today. Come during the 'Puja'. I will stay at Ashram from 5th Oct. to 13th Oct. positively. My blessings to you and your brother. Meet Mr. R. N. Pathak at Shantinagar, Raipur.

Your's affectionately
Swami Ashimanand.

द्वितीय परिच्छेद

गुरूदेव के पत्र पाकर असीम आनंद की प्राप्ति हुई। गुरूदेव के आदेशानुसार हमलोग श्री पाठक से मिलने गये। वे हम लोगों से मिलकर अत्यधिक प्रसन्न हुये। हम लोगों का परिचय पाने के बाद उन्होंने कहा कि वे हमारे पिता जी को जानते हैं। उन्होंने अपना परिचय देते हुये बताया कि वे पी० डब्ल्यू० डी० में इंजीनियर हैं। बाद में श्री पाठक जी अपनी दीक्षा एवं स्वामी जी के संबंध में अनेक अलौकिक घटनाओं की चर्चा करते रहे। अंत मैं पाठक जी ने कहा कि दीक्षा लेने के पहले माता-पिता की अनुमति आवश्यक है। क्योंकि गोसाँई जी ने कहा है कि अभिभावकों की अनुमति के बिना दीक्षा नही होती। श्री पाठक ने इस कारण हमसे माता-पिता की अनुमति लेने के लिये कहा। हमने बताया कि माँ की अनुमति प्राप्त है किंतु पिताजी अभी रायपुर में नही हैं। इस पर पाठक जी ने कहा कि तुमलोग पिताजी से मिलकर उनकी अनुमति भी प्राप्त कर लो। मैं भी पूजा के पहले आश्रम जाऊँगा तथा तुम लोगों को साथ ले जाऊँगा।

दुर्गापूजा की छुट्टियां कुछ दिनों के बाद शुरू होंगी। इसलिये मुझे इस समय स्कूल से छुट्टी स्वीकृत नहीं हुई। अतः आलोक अकेले ही पिताजी से, दीक्षा की अनुमति लेने बलौदाबाजार गया। हमें उस समय दीक्षा के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं था। गुरूदेव ने भी हमें अनुमति के संबंध में कोई निर्देश नहीं दिया था। फिर भी हमने पाठक दा के कहे अनुसार पिताजी से अनुमति लेना उचित समझा।

पिताजी स्वामी प्रेमानंद भारती महाराज जी के शिष्य थे। वे वैष्णवों के समान तिलक लगाते थे तथा माला लेकर जप भी करते थे। पाठक दा ने स्वामी असीमानंद जी का एक चित्र एवं सरल गीता नामक एक पुस्तक भी दी थी, जिन्हें लेकर आलोक पिताजी से मिलने बलौदाबाजार गया।

पिताजी ने आलोक की बातें सुनी, फिर पाठक दा द्वारा दिये गये चित्र एवं पुस्तक को देखकर कहा–"दीक्षा लेना हो तो वैष्णव महात्मा से लेना चाहिये। मैं गोसाँई जी के संबंध में जानता हूँ। वे वैष्णव थे, वे तिलक एवं माला आदि धारण करते थे, लेकिन यह चित्र देखकर लगता है कि ये योगी हैं, क्योंकि इनके द्वारा माला व तिलक धारण नहीं किया गया है। तुमलोग धैर्य रखो । मैं तुम्हें दीक्षा के लिये वृन्दावन के एक बहुत अच्छे वैष्णव साधु के पास ले जाऊँगा। वे मेरे मित्र के गुरूदेव हैं तथा परमवैष्णव महात्मा हैं।

पिताजी की यह बात सुनकर आलोक ने विरक्त होकर कहा कि मैं किसी अन्य साधु या महात्मा से दीक्षा नहीं लूँगा। दीक्षा लूँगा तो केवल इन्हीं से, जिनका यह चित्र

है। पिताजी से आलोक ने यह भी कहा कि आप भी हमारे साथ चलिए, उन्हे देखकर आप को ज्ञात हो जायेगा कि वे वैष्णव हैं अथवा योगी। आलोक की बात सुनकर पिताजी ने कहा—देखो तुमलोग बच्चे हो। तुमलोग नही जानते कि योगियों के पास अष्टसिद्धियां होती है। वे किसी को भी वशीभूत कर सकते हैं। तुम्हारी मां ने भी एक योगी से दीक्षा लेकर भूल की है। फिर पिताजी ने कहा कि तुम मन ही मन गोसाँई जी से प्रार्थना करो, यदि वे दर्शन देकर अनुमति देते हैं, तो दीक्षा ले लो।

आलोक ने विचार किया कि हमारे पास साधना या तपस्या की ऐसी शक्ति नही है कि प्रार्थना करने पर श्री श्रीगोसाँई जी दर्शन देकर हमें निर्देश देंगे। अतः आलोक ने पिता जी से कहा— 'देखिये मैं तो कुछ भी समझ नहीं पा रहा हूँ। आपने वैष्णव महापुरूष से दीक्षा ली है, आप स्वयं अपने गुरूदेव से प्रार्थना करिये। यदि वे दीक्षा लेने से मना करेंगे, तो फिर हम दीक्षा नही लेंगे।' आलोक की बात सुनकर पिता जी निरूत्तर हो गये और उसके बाद उन्होंने हमें दीक्षा लेने की अनुमति दे दी। पिता जी ने, यह सुनकर कि हमलोग पाठक दा के साथ दीक्षा लेने जायेगे, कहा कि मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ। तुम उनके साथ जाकर दीक्षा लो। इस प्रकार काफी कठिनाईयों के पश्चात् पिताजी से अनुमति प्राप्त कर आलोक वापस आ गये।

हम लोगों ने मन ही मन निश्चय कर लिया कि दीक्षा लेने के उपरांत हमलोग घर वापस नहीं लौटेंगे। गुरूदेव यदि अनुमति देंगे तो उनके पास रहकर अन्यथा किसी निर्जन स्थान में रहकर भजन-साधना करेंगें। ''श्री श्रीसद्‌गुरू संग'' पढ़कर हम लोगों ने मन में निश्चय कर लिया था कि जिस प्रकार ब्रह्मचारी कुलदानंद हमेशा गोसाँई जी के साथ रहते थे ऐसा ही प्रयास हमलोग भी करेंगे।

५ अक्टूबर को हमलोग पाठक दा के साथ निकल पड़े। टाटानगर एवं आद्रा होकर दूसरे दिन हमलोग जब मुराडी स्टेशन पर उतरे उस समय रात्रि के लगभग आठ बजे होंगे। चारा ओर अंधकार था। स्टेशन पर भी बहुत ही कम प्रकाश था। केवल एक या दो मिट्टी के तेल से जलने वाले लेम्प प्लेटफार्म पर थे। स्टेशन से आश्रम की दूरी एक मील से कुछ कम है। बाहर रिक्शा आदि कुछ भी नहीं था। ऐसा लगा की अंधकार में सामान लेकर पैदल ही जाना होगा। स्टेशन से बाहर आकर हम लोगों ने देखा कि एक वृद्ध साधु खड़े हैं। पाठक दा ने हमसे कहा कि इनका नाम स्वामी भगवानदासजी है और वे दरवेश जी के शिष्य हैं। हम लोगो ने उन्हें प्रणाम किया। फिर हम सभी आश्रम की ओर चल पड़े। वर्षा होने से रास्ता खराब हो गया था। अंधकार के कारण कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। हमलोग अंदाज से ही आगे बढ़ रहे थे। कुछ दूर चलने के बाद एक ग्रामीण, लालटेन लेकर हमारे पास आया और उसने हम लोगों से कहा कि आपलोग क्या रामचन्द्रपुर आश्रम जायेंगे? मेरे साथ आईये मैं, आप लोगों को आश्रम पहुँचा दूँगा, क्योंकि मैं आश्रम के पास ही रहता हूँ।

हमलोग उसके साथ लालटेन के प्रकाश में चलने लगे। आश्रम पहुँचने पर वह, आश्रम के पास से दूसरी ओर चला गया। उसका कोई परिचय भी हमलोग प्राप्त नहीं कर सके थे। बाद में आश्रम में गुरूभाईयों से ज्ञात हुआ कि इस प्रकार का अनुभव पहले भी कई व्यक्तियो को हो चुका है। अंधकार में अनजाने रास्ते पर अचानक इस प्रकार की सहायता न मिलने की स्थिति में निःसन्देह ही हम लोगों को आश्रम पहुँचने में अत्यधिक असुविधा होती। पाठक दा ने कहा—''यह सब गुरूदेव की ही कृपा है।''

दुर्गापूजा की छुट्टियां शुरू हो गयी थी। आश्रम में दूर-दूर से शिष्य एवं भक्तगणों का आना प्रारंभ हो चुका था। पाठक दा एक जगह पर सामान रखकर, हम लोगों को श्रीगुरूदेव (स्वामी असीमानंद जी) से मिलवाने के लिये उनके आसन घर की ओर ले गये। वहाँ जाकर देखा कि एक विशाल वटवृक्ष चारों ओर फैला हुआ है। उसी वटवृक्ष के नीचे एक टीन की छत वाले अत्यंत साधारण कमरे में, एक वेदी के ऊपर बाघ के चमड़े के आसन पर गुरूदेव आसीन हैं। उनके सामने एक डेस्क है जिस पर एक लेम्प जल रहा है। हम लोगों ने गुरूदेव के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। हमारे प्रणाम करते ही वे तुरंत उठकर खड़े हो गये और हमें पास खींचकर हमारा आलिंगन किया। पाठक दा से कुछ बातें करने के बाद, गुरूजी ने एक सज्जन को बुलाकर हम लोगों के ठहरने की व्यवस्था करने के लिये कहा। वटवृक्ष के नीचे लेम्प के प्रकाश में गुरूदेव की सौम्य छबि देखकर ऐसा लगा जैसे हम किसी प्राचीन ऋषि के आश्रम में आ गये है। गुरूदेव ने हम लोगों से कहा— 'अभी तुमलोग खा पीकर विश्राम करो। अष्टमी के दिन प्रातःकाल तुम्हारी दीक्षा होगी।'

हम लोगों को आश्रम द्वारा संचालित स्कूल के एक कमरे में ठहराया गया। प्रातःकाल गीता-पाठ व संकीर्तन की आवाज से नींद खुल गई। शीघ्र ही तैयार होकर हमलोग भी कीर्तन में सम्मिलित हो गये। स्वामी निर्मलानंद जी कीर्तन कर रहे थे। उस समय कीर्तन के कारण आश्रम का वातावरण इतना मधुर बन गया था कि उसका वर्णन किया जाना संभव नहीं है। कीर्तन समाप्ति पर सभी गुरूदेव को प्रणाम करके अपने-अपने कांर्य में लग गये। हमलोग स्नान आदि से निवृत्त होकर गुरूदेव को प्रणाम कर उनके समीप बैठ गये एवं उनके आशीर्वचनों का लाभ लेने लगे।

महाअष्टमी के दिन सात अक्टूबर को प्रातःकाल लगभग ९ बजे गुरूदेव पंचमुंडी आसन वाले शिव मंदिर में आसीन हुये। यह स्थान प्राचीन सिद्धपीठ है। गुरूजी अर्थात स्वामी असीमानंद जी बचपन में इस स्थान पर आकर प्रायः बैठे रहते थे । यहां उन्हें दिव्य ज्योति व दिव्य ध्वनि आदि का अनुभव होता था। उनके गुरूदेव श्री दरवेश जी महाराज जब रामचन्द्रपुर आश्रम पधारे थे तब इस स्थान को देखते ही उन्होंने कहा था— ''इस स्थान पर मैं बहुत दिन रहा हूँ ऐसा लग रहा है। देखो इस पीपल वृक्ष के नीचे यज्ञकुंड तथा पंचमुंडी आसन है। इस यज्ञकुंड की अग्नि कभी

भी नहीं बुझती है। यहॉ कुंड मे अग्नि का आव्हान करने की आवश्यकता नही है।'' उनके निर्देशानुसार देखे जाने पर भूमि के नीचे यज्ञकुंड व पॅचमुंडी आरान प्राप्त हुआ तथा कुंड में भस्म के नीचे प्रज्वलित अग्नि प्राप्त हुई थी। हम लोगों को गुरूदेव ने हवन कुंड के सामने बैठने को कहा। हमारे साथ और दो युवकों की भी दीक्षा हुई। पूरा कमरा धूप के धुयें एवं सुगंध से भर गया। इसी पँचमुंडी आसन की वेदी पर गुरूदेव को सिद्धिलाभ हुआ था। कुछ क्षण तक गुरूदेव ध्यानस्थ रहे । उसके बाद उन्होने 'गुरूॐ-गुरूॐ' कहकर श्री गुरूजी का आव्हान शुरू किया। श्री गुरू को प्रणाम करने के पश्चात् श्री गुरूदेव आवेशित स्वर मे बोले–''**यहॉ पर गोसॉई जी, गुरूजी, ब्रह्मचारी कुलदानंद जी, श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव, बारदी के लोकनाथ ब्रह्मचारी जी आदि अनेक महात्मा उपस्थित हैं। तुमलोग बहुत भाग्यशाली हो। तुम लोगों के साथ दो अशरीरी आत्माओं की दीक्षा भी हो रही है। मैं तुम लोगों के जन्म-जन्मांन्तर के पाप-ताप सभी ग्रहण कर रहा हूँ एवं श्रीश्री गोसॉई जी के नाम की शपथ लेकर कहता हूं कि मैं तुम लोगों को सिर पर रखकर लक्ष्य तक पहुँचाऊँगा।**'' इस प्रकार भावावेग–आवेशित स्वर मे ही उन्होंने साधना के विधि-निषेध के संबंध में बताया, तत्पश्चात् दीक्षा मंत्र प्रदान किया। श्वास-प्रश्वास में किस प्रकार जप करना है, यह भी कई बार समझाया। तत्पश्चात् मुख एवं नाक से प्राणायाम की शिक्षा देकर कई बार यह किया करने के लिये कहा। हमे, दीक्षा मंत्र श्रवन करने के बाद, एक अद्भूत आनंद की अनुभूति हुई। मन मे विचार आया कि जीवन धन्य हो गया है। दीक्षा की इस प्रकिया मे लगभग आधे घंटे का समय लगा। दीक्षा देने के उपरांत गुरूदेव विश्राम करने चले गये और हमलोग अपने कमरे में वापस आ गये। उस समय वहां उपस्थित अनेक गुरूभाईयों से परिचय के साथ-साथ विभिन्न प्रसंगों पर चर्चायें भी हुई।

रामचन्द्रपुर आश्रम में उस समय प्रतिवर्ष शीतकाल में ऑख के आपरेशन होते थे। निर्धन व्यक्ति यहाँ निःशुल्क आपरेशन करवाने आया करते थे। उनमें से अनेक लोगों को गुरूदेव चश्में तथा लौटने का किराया भी दिया करते थे। वे इस स्थान पर बहुत समय से ऑख का एक स्थाई अस्पताल बनवाने के लिये प्रयासरत् थे। उसी वर्ष कुछ भूमि लेकर गुरूदेव ने वहां अस्पताल के लिये कार्य प्रारंभ कराया। कार्य की देख-रेख के लिये वे दिन में दो बार कार्य स्थल पर जाते और कई घंटों तक वहीं रहते थे। दीक्षा हो जाने के पश्चात् उस दिन जब गुरूदेव अस्पताल का कार्य देखने के लिये तालाब के किनारे गये तो हम लोगों ने देखा कि गुरूदेव एक स्थान पर अकेले खड़े ह। हमने पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। आलोक ने गुरूदेव से विनम्रतापूर्वक कहा कि हमें आप से कुछ निवेदन करना है। गुरूदेव ने अत्यंत स्नेह

के साथ कहा, "अवश्य, क्या कहना है कहो।" तब आलोक ने गुरूदेव से कहा, "हम लोगो ने निश्चय किया है कि अब हम घर वापस नहीं जायेंगे यहो रहकर भजन-साधना करेंगे।" गुरूदेव ने कहा–"ठीक है, तुम लोग अभी क्या कर रहे हो?" आलोक ने बताया कि अमल बी. एस. सी. करके एक विद्यालय में अध्यापन का कार्य कर रहा है और मैं एम. ए. कर रहा हूँ तथा साथ ही एक स्कूल में अंशकालिक अध्यापन भी कर रहा हूँ। इस पर गुरूदेव ने कहा–"जब एम. ए. मे प्रवेश ले लिया है तो पहले एम. ए. पास कर लो उसके बाद यहाँ आ जाना।" इस प्रकार आश्रम में रहने की अनुमति पाकर हमे अत्यंत आनंद हुआ।

उस समय आश्रम में गुरुभाईयों के मध्य परस्पर अत्यंत प्रेमभाव था। छोटे-बड़े का भेद नहीं था। वयोवृद्ध गुरुभाई भी हमारे समान कम उम्र के युवकों से बहुत स्नेह करते थे। हम उन्हे प्रणाम करते तो कई बार वे भी हमें प्रणाम करके आनंदित होते थे। वयोवृद्ध गुरुभाईयो के द्वारा इस प्रकार प्रणाम करने पर हम लोगों को आश्चर्य होता था। हमलोग कई बार इसके लिये मना भी करते थे, लेकिन वे प्रेम के वशीभूत होकर मानते ही नहीं थे। सभी गुरुभाईयों के साथ रहना, सत्संग करना, गुरूदेव के संबंध में अनेक अलौकिक घटनाओं की जानकारी प्राप्त करना, यही दिनचर्चा थी। यहाँ के वातावरण से, अत्यधिक आनंद का अनुभव हो रहा था। सभी में परस्पर प्रेम एवं मधुर व्यवहार के कारण आश्रम में स्वर्ग जैसी अनुभूति होती थी। आश्रम की आर्थिक स्थिति विशेष अच्छी नहीं थी। क्योंकि आश्रम की कोई निश्चित आय नहीं थी। आश्रम पूर्णरूप से आकाशवृत्ति पर चलता था। जब जो मिल जाता सब आनंद के साथ ग्रहण कर लेते थे। **आकाशवृत्ति का अर्थ है सम्पूर्ण रूप से भगवान की कृपा के ऊपर निर्भर रहकर अपना जीवन धारण करना। गोस्वामी जी स्वयं इस व्रत का पालन करते थे। उनके कुछ भाग्यवान गृहस्थ शिष्य लोग भी इस व्रत का पालन करते थे। इस व्रत के प्रमुख नियम हैं–**

(१) भगवान पर निर्भर रहना। जीविका के लिए नौकरी आदि अथवा अर्थ के विनिमय में कुछ भी कार्य नहीं करना।

(२) किसी से कुछ भी नहीं माँगना।

(३) अपना अभाव या आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा, किसी भी तरीके या कौशल से दूसरे को नहीं बताना।

(४) केवल वृद्ध, शिशु और रोगी के लिए आवश्यकतानुसार कर्ज ग्रहण किया जा सकता है।

आश्रम का खानपान अत्यंत साधारण था। मोटा चावल, प्रायः काशीफल (कद्दु) की सब्जी तथा दाल प्रतिदिन का आहार था। आश्रम में बिजली नहीं थी। शौच किया एवं स्नान के लिये भी कोई व्यवस्था नहीं थी। पास में जंगल एवं तालाब थे, वहीं

सब स्नान करने जाते थे। अनेक असुविधाओं के बावजूद आश्रम में आनंद की धारा प्रवाहित होती रहती थी तथा प्राणों में अपार आनंद का अनुभव होता था। आश्रम की इसी विशेषता के कारण वहाँ दूर-दूर से शिष्य एवं भक्तगण आने के लिये प्रयासरत् रहते थे। शारदीय दुर्गापूजा एवं गुरूदेव के जन्मोत्सव पर आश्रम मे बहुत अधिक संख्या मे लोगों का आना होता था। हमने वहां अनुभव किया कि गुरूदेव व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक व्यक्ति की खोज-खबर लेते और आवश्यक दिशा निर्देश देते थे। अनेक निर्धन गुरूभाई एवं भक्तलोगों को गुरूदेव गाडी-भाड़ा भी देते और उनसे आश्रम आने के लिये बार-बार अनुरोध करते थे।

गुरूदेव जब तक आसन वेदी पर बैठते, तब तक विभिन्न लोगों को पत्र लिखते रहते थे। उनके कमरे में प्रायः कुछ लोग बैठे ही रहते थे। लोगों द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर पत्र लिखते-लिखते ही उनकी जिज्ञासा का समाधान भी करते थे। गुरूदेव के पास उनके कमरे मे बैठते ही मन में अपने आप नाम-जप होने लगता था, जबकि अन्य समय चेष्टा करने पर भी नाम-जप नहीं हो पाता था। मन की ऐसी अवस्था देखकर हमेशा ही गुरूदेव के पास बैठने की प्रबल इच्छा रहती थी। कई बार ऐसा होता था कि मन में कोई जिज्ञासा उत्पन्न होती और उसके संबंध में गुरुदेव से प्रश्न पूछने के पूर्व ही वार्तालाप के माध्यम से अन्तर्यामी गुरूदेव उस प्रश्न का उत्तर दे देते थे।

आश्रम में आकर देखा कि जिस तरह श्री गोसाँई जी हमेशा आसन पर बैठे रहते थे तथा उनके पास हमेशा नाम, पाठ, कीर्तन आदि का सत्संग प्रवाह होता रहता था, गुरूदेव के साथ वैसा नहीं था। गुरूदेव ज्यादा समय सेवाकार्य में व्यतीत करते थे। वे कभी अस्पताल का कार्य देखते तो कभी तालाब के किनारे की मिट्टी कटवाकर ईंटे तैयार करवाते और कभी मजदूरों से मकान आदि बनवाने में व्यस्त रहते थे। कई बार उनके पास मजदूरों को भुगतान के लिये पैसे नहीं हुआ करते थे। आश्रम में खाने की कल क्या व्यवस्था होगी– इसका इंतजाम भी नहीं रहता था। तब गुरूदेव को देखकर लगता था कि वे साधारण व्यक्तियों के समान रूपयों के लिये चिंता भी कर रहे हैं। वे कभी-कभी कहते थे, 'रूपया नहीं है कल कैसे भोजन बनेगा? बाजार में बहुत उधारी हो गयी है। कैसे चुकायेंगे? इत्यादि।' किंतु बाद में हमलोग देखते कि किसी न किसी प्रकार से रूपयों की व्यवस्था हो जाती थी और सब काम भली-भांति सम्पन्न हो जाया करते थे। अन्य गुरूभाई इस विषय में विशेष चिंता करते हों, ऐसा प्रतीत नहीं होता था। कुछ गुरूभाईयों से बात करके यह ज्ञात हुआ कि गुरूभाई यह मानते थे कि, यह दिखाई देने वाला गुरूदेव का बाह्य रूप है, वे अपने असली रूप को प्रकट नहीं करना चाहते हैं और इसी कारण अपने को छिपाकर रखने के लिये वे इस तरह का साधारण व्यक्तियों जैसा आचरण करते हैं।

हमारी दीक्षा कुछ दिन पूर्व ही हुई थी। विभिन्न ग्रंथों को पढ़कर मन में यह

धारणा थी कि साधु लोग हमेशा भजन-साधना, नाम-जप, ग्रंथ पाठ, सत्संग तथा कीर्तन आदि में ही व्यरत रहते हैं किंतु यहाँ आश्रम में सब कुछ उस धारणा से अलग देखकर मन में विचार आया कि इस संबंध में गुरूदेव से अवश्य पूछेंगे । यदि ऐसा नहीं किया तो हमारा संशय दूर नहीं होगा।

प्रातःकाल गुरूदेव अपने कमरे में बैठे पत्र लिख रहे थे। हम लोगों ने वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया। गुरूदेव के कमरे में उस समय कोई नही था। पहले आलोक ने गुरूदेव से निवेदन किया कि हमारा एक संशय है। गुरूदेव ने कहा–''अच्छा कहो क्या कहना है?'' इस पर मैंने कहा कि आश्रम में आकर हम देख रहे है कि आप साधारण व्यक्तियों की तरह हमेशा किसी न किसी कार्य में व्यस्त रहते हैं। पूरे दिन मजदूरों के साथ रहकर कार्य देखते हैं। दिन-रात रूपये के बारे में चिंतन करते हैं, यह देखकर क्या हमारा आप पर विश्वास रह सकेगा? मेरा प्रश्न सुनकर गुरूदेव बहुत जोर से हँसे और उसके बाद उन्होंने स्नेहपूर्वक कहा, **''विश्वास क्यों नहीं रहेगा? नाम-जप करते रहो विश्वास, भक्ति सब होगी। वास्तविक बात क्या है तुम्हें मालूम है? मैं यदि सर्वदा कार्य में व्यस्त न रहूँ तो पूरे समय समाधि में रहूँगा और यह सब कार्य फिर नहीं हो पायेगा। मन समाधिस्थ न हो जाये इसलिये मैं हर समय किसी न किसी कार्य में व्यस्त रहता हूँ और इन कायो से बहुत से साधारण व्यक्तियों का उपकार भी हो जाता है।''**

गुरूदेव से यह जानकर हमलोग अवाक् रह गये। हमलोग अपने मन को नाम-जप में लगाने के लिये इतना प्रयास करते हैं किंतु मन चंचल होने से क्षण भर भी स्थिर नहीं होता, जिससे नाम-जप भी नही हो पाता और इसके ठीक विपरीत गुरूदेव यह सोचकर कि समाधि न हो जाये स्वयं को विभिन्न कार्यों में व्यरत रखते हुये मन को साधारण जगत् मे उतार कर रखते हैं। गुरूदेव के उत्तर से हमारे मन का संशय दूर हो गया था। इसके बाद फिर कभी गुरूदेव को इन कार्यों में व्यस्त देखकर संशय नहीं हुआ।

रामचन्द्रपुर आश्रम से लगभग २ किलोमीटर दूर कोटालडीह गांव है। श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु जब झाड़खंड जंगल से होकर दक्षिण भारत गये थे, तब यहां एक प्राचीन वटवृक्ष के नीचे उन्होंने विश्राम किया था। यहां एक छोटा सा मंदिर है। यह स्थान अत्यंत मनोरम है। उस समय आश्रम में लक्ष्मी पूजा के समय अखण्ड हरिनाम-संकीर्तन होता था। कीर्तन समाप्ति के पहले आश्रमवासी नगर-संकीर्तन करते हुये महाप्रभु के इस विश्राम स्थान पर आते थे। यहां दोपहर को महाप्रभु को भोग निवेदन करके, प्रसाद पाकर सन्ध्या के पूर्व वापस आश्रम आ जाते थे। हम लोगों ने पहली बार नगर-संकीर्तन में भाग लिया। आश्रम से बाहर कुछ दूर चलने के बाद ही गुरूदेव के शरीर में आनंद एवं कंपन आदि के लक्षण स्पष्ट परिलक्षित होने लगे।

उन्मनी अवस्था में वे समाधिमग्न हो गये। इसी अवस्था मे नाम के साथ नृत्य करते-करते वे आगे बढने लगे। कुछ लोग उनके शरीर को सहारा देकर चल रहे थे। उन्हें जरा भी देहभान नहीं था। यहाँ तक कि उनके वस्त्र भी ढीले होकर खुल गये थे। धीरे-धीरे महाप्रभु के स्थान तक पहुँचते-पहुँचते गुरुदेव गंभीर समाधि मे मग्न हो गये। नाम-संकीर्तन उच्च स्वर में यथारीति चल रहा था। चारों ओर अप्राकृत एक अद्भूत सुगंध फैल रही थी। जबकि कहीं भी सुगंध के लिये कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं था। गुरूदेव कुछ देर बाद स्वाभाविक अवस्था मे वापस आ गये। अब तक गांव के असंख्य लोग वहाँ पहुँच चुके थे और वे सभी गुरूदेव को प्रणाम कर रहे थे। आश्रम के सभी लोग संकीर्तन दल के साथ वहाँ आये हुये थे। गुरूदेव के निर्देशानुसार वहीं तत्काल कई चूल्हे जलाकर रसोई तैयार की जाने लगी। गुरूदेव स्वयं एक कढ़ाई में खिचडी पका रहे थे तथा आवश्यक निर्देश भी देते जा रहे थे। चैतन्य महाप्रभु को भोग लगाने के पश्चात् 'जय ध्वनि' के साथ प्रसाद वितरण प्रारंभ हुआ। गांव के लोग अपने घरों से दाल-चावल साथ में लाकर महोत्सव में आनद के साथ योगदान कर रहे थे। हमने देखा कि वहाँ असंख्य लोग प्रसाद पा रहे हैं । जो भी वहाँ पहुँच रहा है भोजन करके ही जा रहा है। कुछ दिन पहले गुरूदेव ने जो कहा था वह हमारे सामने घटित होता देखकर हमें अत्यधिक आनंद मिल रहा था। क्योंकि समाधि अवस्था एवं सेवाकर्म प्रायः एक साथ देखने मे नहीं मिलता। आजकल तो समाधिवान महात्माओं के दर्शन भी दुर्लभ है। हमने देखा कि गुरूदेव की समाधि अत्यंत सहज भाव से हुई थी तथा समाधिभंग के कुछ समय के पश्चात् ही वे स्वाभाविक रूप से कर्म में संलग्न हो गये।

इसी वर्ष आश्रम में एक सभा के समय गुरूदेव ने कहा कि उनकी इच्छा यहां एक स्थाई नेत्र-चिकित्सालय प्रारंभ करने की है। इससे निर्धन लोगों का कल्याण होगा। सभा में उस समय बहुत से विशिष्ट व्यक्ति उपस्थित थे। गुरूदेव की बात सुनकर सभा के मुख्य अतिथि ने कहा कि यह विचार अति उत्तम है किंतु स्वामी जी के समान निर्धन महात्मा के लिये स्थाई रूप से चिकित्सालय की व्यवस्था करना अत्यंत कठिन है। क्योंकि चिकित्सालय चलाने के लिये सबसे पहले एक बड़ी धन राशि की आवश्यकता होगी और यह राशि कहाँ से आयेगी? गुरूदेव ने तुरंत कहा–**''सत्कार्य में पैसे का अभाव नहीं होता। निस्वार्थ भाव से कार्य करने से अर्थ की वर्षा होती है।''** उन्होंने वहाँ उपस्थित लोगों से कहा कि नेत्रहीनों की सेवा के लिये स्व-इच्छा अनुसार आप लोग दान करें। निर्धन नेत्र-रोगियों का यहाँ निःशुल्क इलाज व आपरेशन किया जावेगा। उन्होंने सभी को आश्वस्त करते हुए कहा–**''इस सत्कार्य के लिये जो व्यक्ति जितना दान देगा उसे निश्चित रूप से उसका दस गुना प्राप्त होगा।''** गुरूदेव ने यह सब अत्यंत आवेश में कहा था। गुरूदेव के वचन सुनते ही उपस्थित व्यक्ति कुछ न कुछ रूपये दान करने के लिये उद्यत हो गये। गुरूबहनों ने अपने गहने तक

उतारकर दान देना शुरू कर दिया। देखते ही देखते लगभग १०,००० रूपये तथा कुछ गहने एकत्रित हो गये। मुख्य अतिथि ने अत्यंत आश्चर्यचकित होकर कहा—''मैंने देख लिया कि स्वामी जी को उनके शिष्य-भक्त बहुत श्रद्धा भक्ति करते हैं। यदि सभी लोग इस प्रकार सहायता करेंगे तो निश्चित रूप से नेत्र चिकित्सालय तैयार हो जावेगा।''

उस समय मैंने ५०/- रूपये तथा पाठक दा ने १००/- रूपये दान में दिये थे। हमलोग आपस में विनोद के तौर पर कहा करते थे कि मुझे ५००/- रूपये तथा पाठक दा को १०००/- रूपये वापस मिलेंगे। हमारे जीवन में गुरूदेव की वह भविष्यवाणी बड़े ही विचित्र ढंग से फलित हुई। रायपुर वापस लौटते ही पाठक दा के एक परिचित व्यक्ति अपने भवन निर्माण का कार्य, उनसे करवाने के लिये अनुरोध करने लगे। उनका अनुरोध देखकर पाठक दा ने स्वीकृति दे दी। पाठक दा निर्माण स्थल पर एक-दो बार ही गये, जिसके लिये उन्हें एक हजार से अधिक की राशि प्राप्त हुई। उस समय हजार रूपये की कीमत बहुत थी। मैं एक स्कूल में सहायक शिक्षक था तथा बी० एड० भी पास नहीं था। फिर भी मुझे अकस्मात् उच्चतर माध्यमिक परीक्षा की उत्तर पुस्तिकाये जांचने के लिये प्राप्त हो गई। सभी आश्चर्यचकित थे, क्योंकि बोर्ड की परीक्षा की उत्तर पुस्तिकायें प्रशिक्षित शिक्षकों को ही जांचने के लिये दी जाती थी। इस कार्य से मुझे भी पाँच सौ रूपये से अधिक की राशि प्राप्त हुई। इस तरह आश्रम में गुरूदेव की वाणी सत्य साबित हुई देखकर हमलोग आनंदित एवं विस्मित हुए।

हम लोगों के स्कूल की छुट्टियां कालीपूजा (दीपावली) तक थी। हमलोग कुछ दिन और आश्रम में रूके रहे, जबकि पाठक दा हम लोगों से पहले ही रायपुर लौट आये। आश्रम में गुरूदेव के साथ चर्चा के कुछ अंश यहां उद्धृत है—

प्रसंग (१) : आलोक—नित्यलीला का क्या अर्थ है?

गुरूदेव—**श्री वृंदावन में राधा-कृष्ण की जो लीलायें हुई थी वे आज भी चल रही है । इन्हें ही नित्यलीला कहते हैं। यह प्रश्न क्यों कर रहे हो?**

आलोक—माँ मणि ने हमें बताया है कि आपके माध्यम से गोसाँई जी की नित्यलीला हो रही है। इसका क्या अर्थ है?

गुरूदेव—''**देखो, वृंदावन में जो नित्यलीला होती है उसे केवल वही देख पाते हैं—जिनकी दृष्टि खुल गई है । ठीक उसी प्रकार गोसाँई जी जब किसी के माध्यम से अपना कोई कार्य करवाना चाहते हैं तो उसे उनकी नित्यलीला कहते हैं।**''

अमल—तो क्या वे जो कुछ भी करते हैं, जैसे उठना-बैठना आदि सब गोसाँई जी ही कर रहे हैं?

गुरूदेव—**हाँ, वे जो कुछ करते हैं सब गोसाँई जी ही कर रहे है । केवल आकृति (=रूप) मात्र का अंतर है।**

गुरूदेव के मुख से यह बात सुनकर हम लोगों के मन में एक अद्‌भूत भाव का संचार होने लगा। ऐसा लगा मानो हमलोग गोसाँई जी के पास ही बैठे हुये हैं। हम लोगों ने तुरंत उन्हें प्रणाम करके प्रेमभक्ति लाभ के लिये उनसे प्रार्थना किया। गुरूदेव ने अत्यंत स्नेह के साथ हमें आशीर्वाद देते हुये कहा–''चिंता मत करो। मन की चंचलता त्यागकर, नाम-जप करते जाओ। विश्वास एवं भक्ति सभी प्राप्त होगा।''

प्रसंग (२) : आलोक ने गुरूदेव से फिर पूछा–चौबीस घंटा नाम चलने से शरीर के ऊपर नाम उभर आता है, ऐसा 'श्री श्रीसद्‌गुरू संग' में पढा है। आपके शरीर पर भी क्या ऐसा नाम उभर आता है? इस पर गुरूदेव ने कहा–**हाँ, ऐसा होता है, हमें पास में बुलाकर उन्होंने अपने हाथ के पीछे की ओर ओंकार चिन्ह दिखलाया। ओंकार का वह चिन्ह गुरूदेव के हाथ पर स्पष्ट दिखाई दे रहा था।**

इसके बाद हम लोगों ने कई बार देखा कि उनके माथे पर ओंकार चिन्ह स्पष्ट रूप से दिखाई देता था। यह चिन्ह हमने श्री के. के. दास आदि गुरूभाईयो को भी दिखलाया। एकबार कमरे में अनेक लोग थे। उस समय हमने देखा कि ओंकार चिन्ह उनके माथे पर स्पष्ट दिखाई दे रहा है। वहां उपस्थित बहुत से लोगों ने ऐसा चिन्ह कभी नहीं देखा था । गुरूदेव के श्रीमुख से यह सुनकर सभी को विशेष आनंद की प्राप्ति होगी, ऐसा सोचकर सबके सामने ही हमने गुरूदेव से पूछा कि आपके माथे पर क्या ओंकार का चिन्ह दिख रहा है? गुरूदेव हम लोगों की बात सुनकर उपेक्षित भाव से बोले कि मुझे क्या मालूम क्या हो रहा है? तब हमारे द्वारा गुरूदेव से पूछा गया कि हमेशा नाम-जप करते रहने से ही क्या ऐसा होता है? हमारी बात सुनकर गुरूदेव ने हमारी ओर देखते हुये कहा–''**हाँ, हमेशा नाम-जप चलने से ऐसा होता है।**'' हमलोगों को लगा कि सबके सामने ऐसा प्रश्न करने से ही गुरूदेव ने असंतोष का भाव प्रदर्शित किया था।

प्रसंग (३) : आलोक ने गुरूदेव से पूछा–पँचमुंडी आसान पर क्या सभी लोग बैठ सकते हैं ?

गुरूदेव ने कहा–**गुरूदेव की अनुमति के विना उस पर बैठने से क्षति (=हानि) होती है। पँचमुंडी आसन-कक्ष में अन्य किसी भी स्थान पर बैठकर कोई भी नाम-जप कर सकता है।**

अमल–पँचमुंडी आसन पर बैठने से क्या होता है?

गुरूजी ने कहा–**पँचमुंडी आसन पर बैठने से एक विशेष कंपन-शक्ति मन और शरीर में संचारित होती है। साधक का शरीर और मन यदि उस शक्ति के वेग को धारण करने के लिये उपयुक्त न हो तो वह पागल हो जायेगा। इस कारण गुरू के निर्देश के बाद ही पँचमुंडी आसन पर बैठना उचित है। आसन-कक्ष में अन्य स्थान पर बैठकर तुम लोग नाम-जप कर सकते हो ।**

प्रसंग (४) : गुरूदेव के ऐसा कहने के बाद रात्रि के अंतिम प्रहर में जब भी सुविधा और इच्छा होती हमलोग आसन-घर में बैठकर नाम-जप करते थे। वहाँ बैठने से स्पष्ट प्रतीत होता था कि स्थान के प्रभाव से नाम-जप बहुत अच्छी तरह से चल रहा है। किंतु अन्य किसी प्रकार का अनुभव हम लोगों को वहाँ नहीं हुआ। लोगों ने बताया था कि उस स्थान पर सर्प रहता है, किंतु हमें वह कभी दिखाई नहीं दिया। जबकि कक्ष के बाहर साँप, बिच्छू इत्यादि प्रायः दिखते रहते थे। गुरूदेव से एक दिन हम लोगों ने पूछा– हमलोग रात्रि में आसन-कक्ष अथवा वट वृक्ष के नीचे जाते है। वहां जहरीले कीडा के काटने का डर है क्या?

गुरूदेव ने कहा–''तुम्ह जब भी इच्छा हो आसन-कक्ष में जाकर बैठ सकते हो। तुम्हें डरने की आवश्यकता नही है। इस स्थान पर तुम्हें कुछ भी नही होगा।''

प्रसंग (५) : गुरूदेव पत्र के माध्यम से अथवा प्रार्थना करने पर प्रायः कविता लिखकर देते थे। बंगला भाषा में उनकी कुछ कवितायें प्रकाशित भी हुई है। गुरूदेव उस समय प्रातःकाल गीता-पाठ एवं कीर्तन करते थे। एक दिन बंगला गीता लेकर हम उनके पास गये और उस पर कुछ लिखने के लिये उनसे प्रार्थना की। गुरूदेव ने गीता हाथ में लेकर क्षणभर विचार किया और फिर लिखना प्रारंभ कर दिया। उस समय मैं मन ही मन प्रार्थना कर रहा था कि गुरूदेव कोई कविता ही लिखें एवं जो हमारे भविष्य के संवंध में हो। जब उन्होंने गीता हमें वापस की तो उस पर बंगला में आशीर्वाद स्वरूप जो लिखा था–उसका हिंदी रूपांतरण इस प्रकार है–

''गीता की पावन शिक्षा से जीवन तुम्हारा,
सार्थक हो यही है मेरी प्रार्थना।
जीवन में मिले शांति, मिले नित्य प्रेम,
साथ ही मिले नित्यानंद अपार।
जयी हो संग्राम में पाओ नित्य धाम,
प्रभु कृपा से पूर्ण हो मनष्काम।

गुरूदेव के पास इस प्रकार की विभिन्न प्रार्थनायें लेकर लोग हमेशा आते रहते थे तथा उनका मंगलमय आशीर्वाद प्राप्तकर धन्य होते थे।

दुर्गापूजा की छुट्टियां समाप्त होने को आ गई थी। गुरूदेव के सत्संग में यह समय किस प्रकार आनंद से बीत गया पता ही नहीं चला। आश्रम में आने के बाद से हम लोगों ने वस्त्र धोने के लिये साबून का प्रयोग नहीं किया था। वस्त्रों को तालाब में धोकर सुखा लेते थे। यहाँ इन सारी बातों की तरफ हमारा कभी ध्यान ही नहीं गया। रायपुर लौटने के दो-चार दिन पूर्व अचानक एक दिन गुरूदेव ने स्वयं कहा कि तुम लोगों के कपड़े काफी गंदे हो गये हैं। उन्होंने एक व्यक्ति को बुलाकर कहा कि इनके वस्त्र साबून और सोडा से अच्छी तरह साफ कर दो। उस व्यक्ति ने गुरूदेव

के आदेशानुसार हमारे वस्त्र साफ कर दिये। शिष्यो के प्रति गुरूदेव का यह स्नेह देखकर हमलोग चकित थे। जिस दिन हमें रायपुर जाना था, गुरूदेव ने हमारे लिये रास्ते के भोजन की व्यवस्था भी करवा दी थी। इस प्रकार गुरूदेव का स्नेहपूर्ण सामान्य व्यवहार तथा उनकी कृपादृष्टि ने हम लोगों पर अद्भूत प्रभाव छोड़ा था।

रायपुर आने के बाद हमने यथासंभव भजन-साधना प्रारंभ कर दी। इसी समय दीक्षा लाभ के बाद माँ मणि को लिखे पत्र का उत्तर भी हमें प्राप्त हुआ। जो इस प्रकार था–

ब्रजधाम कुँडाई बेंट साही, पुरी
१२वाँ, कार्तिक

स्नेहास्पदेषु,

प्रिय आलोक, तुमने रामचन्द्रपुर से जो पत्र लिखा था उससे यह जानकर अत्यंत आनंद हुआ कि तुम दोनों भाईयों की दीक्षा हो गई है। तुम लोगों का एक नया जीवन शुरू हुआ है। नियमित साधना करते रहो, तब ज्ञात होगा कि इस साधना के अंदर कितनी शक्ति है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रारंभ से ही चेष्टा करते रहो। श्री श्रीगोसाँई जी की तुम लोगों पर अपार कृपा है।

तुम लोगों ने यहाँ आने के लिये लिखा था, मुझे भी यही अपेक्षा थी। किंतु इतना विलंब हो जाने से, यह सोचकर कि तुमलोग अब तक आश्रम से वापस रायपुर लौट गये होगे, यह पत्र रायपुर के लिये ही लिखा है। पत्रोत्तर देना।

श्री श्रीगोसाँई जी व श्री श्रीमाता ठाकुरानी का आशीर्वाद लेना। उनके श्रीचरणों में तुम लोगों के लिये मंगलकामना करती हूँ।

श्री श्री सद्गुरू चरणाश्रिता–माँ मणि

रायपुर से गुरूदेव को जो पत्र लिखा था, उसके उत्तर मे गुरूदेव ने हमें जो पत्र लिखा वह इस प्रकार है–

ॐ गुरू, २२-११-६२

परमकल्याणीय,

आलोक व अमल बेटा, तुम लोगों का पत्र मिला । तुमलोग नियमित प्राणायाम करना। पेट भरा रहने पर, भूखे रहने पर, पेशाब का वेग रहने पर, पेट गड़बड़ रहने पर, सिर दर्द, ज्वर अथवा छाती में पेरशानी रहने पर प्राणायाम मत करना।

तुम लोगों की बातें प्रतिदिन याद करता हूँ। तुम्हें मेरा हार्दिक स्नेह व आशीर्वाद प्राप्त हो। ठाकुर तुम लोगों के ऊपर कृपा करें और तुमलोग अपने चरम लक्ष्य की ओर दृढ़तापूर्वक अग्रसर होते रहो।

स्नेहार्थी–बाबा

एक अन्य पत्र भी गुरूदेव से प्राप्त हुआ जो इस प्रकार था–

१२-१२-६२

कल्याणवरेषु,

स्नेहमय बेटा, तुम दोनों भाईयों का पत्र मिला। इच्छा न होने पर भी नाम-जप करना। बैठकर नाम-जप करने का मन न होने पर, खड़े होकर अथवा चलते-फिरते नाम-जप करना।

प्राणायाम जैसे कर रहे हो उसी प्रकार करते जाओ। तुमलोग मेरे हृदय में बस गये हो। मैं तुम लोगों की याद करता रहता हूँ।

मेरा आंतरिक स्नेह व आशीर्वाद तुम्हें मिले। ठाकुर तुमलोगों को साधना की शक्ति दें—एकाग्रता दें! सभी आश्रमवासियों की ओर से स्नेह व प्यार भी तुम्हें मिले।

स्नेहार्थी—बाबा

एक अन्य पत्र के उत्तर में गुरूदेव ने हमें जो लिखा वह इस प्रकार था—

परमकल्याणवरेषु,

वेटा आलोक व अमल, तुम लोगों का पत्र मिला। तुमलोग अभी घर पर ही रहो। जितना संभव हो भजन-साधना करते रहो। समय आने पर तुम लोगों के आने की व्यवस्था करूँगा। जब भी कामभावना का आवेग आवे तब कामेन्द्रिय पर मन रखते हुए नाम-जप करना। २०-२५ मिनिट नाम-जप करते ही इंद्रियों की चंचलता समाप्त हो जावेगी। परीक्षा में जरूर वैठना। परीक्षा के बाद जैसा भी संभव होगा, करूँगा।

मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। नेत्र चिकित्सालय के कार्य के कारण अत्यधिक व्यस्त हूँ । रोगियों से आश्रम भरा हुआ है। इस वर्ष के हिसाब से ३१ मार्च को चिकत्सालय बंद हो जावेगा।

तुम लोगों को मेरा आशीर्वाद। चिंता मत करना, नाम-जप करते रहना। ठाकुर तुम लोगों की देह एवं मन को स्वस्थ रखें!

स्नेहार्थी—बाबा

रायपुर से माँ मणि को लिखे पत्र का उत्तर हमें प्राप्त हुआ जो इस प्रकार है:—

ब्रजधाम कुंडाई बेंट साही—पुरी
२५ फरवरी, ६३

परमस्नेहास्पदेषु,

बेटा आलोक, कुछ दिन पूर्व तुम लोगों का पत्र मिला । उत्तर देने में कई कारणों से विलंब हुआ। पत्र के द्वारा तुम लोगों के मन की अवस्था के बारे में ज्ञात हुआ। साधना पथ में अस्थिर होने से काम नहीं चलता। धैर्य धारण करते हुए अपेक्षा करना होगा। अभी तुम लोगों की उम्र अध्ययन करने की है, अध्ययन ही तुम लोगों की तपस्या है। अतः मन लगाकर अध्ययन करने की चेष्टा करना। अध्ययन पूरा होने पर किसी कर्म में नियुक्त होने के बाद भी भजन-साधना हो सकती है। यह सोचना

गलत है कि सबकुछ छोड़कर ही भजन-साधना संभव है। मन तो साथ में ही रहेगा एवं उसका प्रभाव रहेगा। मन में अच्छी-बुरी अनेक प्रकार की चिन्ता आती रहती है। यह सभी को होती है। नाम-जप करते-करते इनका प्रभाव समाप्त होगा। कर्म रहते यह सब समाप्त नहीं होती। मन में जो भी आये, आने दो उसमें और गंभीरतापूर्वक ध्यान देकर मन चंचल मत करो। मन को हमेशा नाम-जप की ओर ही केंद्रित करने का प्रयास करो। यह भी एक प्रकार का योग है। मन में कई अवस्थायें बीच-बीच में आती है और चली भी जाती है। कभी निराशा भी आती है और कभी उत्साह भी आता है। तुम लोगों की उम्र काफी कम है। साधना के लिये बहुत समय मिलेगा। साधना करते रहो परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। जब श्री श्रीगोसाँई जी ने तुम लोगों को स्वीकार कर लिया है तो समय आने पर वे ही सब ठीक कर लेंगे। तुम्हारे लिये क्या किया जाना आवश्यक है या किससे तुम्हारा मंगल होगा, वे सब जानते हैं। वे अपनी इच्छा के अनुसार परिचालित करते हैं। अपनी स्व-इच्छा से कुछ करने पर गलत हो सकता है। उनके ऊपर ही सब कुछ छोड़कर निर्भर करते हुए रहो।

और अधिक क्या लिखूँ? समय-समय पर यहां से प्रकाशित ग्रंथों का अध्ययन करते रहना और उनके अनुसार चलने की चेष्टा करना। धैर्य रखकर गुरूदेव का स्मरण करते हुए नाम-जप करते जाना। जितना अधिक हो सके नाम-जप करो। ज्यादा नहीं हो पाता है, यह सोचकर दु:खी मत होना। जब समय आयेगा वे स्वयं ही उस अवस्था में पहुँचा देंगे तब देखोगे कितना इसमें आनन्द है। पत्र लिखते रहना।

श्री श्री महाप्रभु, श्री श्री गोसाँई जी एवं श्री श्री माता ठाकुरानी तथा गोपाल का प्यार लेना। उनके श्री चरणों में तुम लोगों के लिये मंगलकामना करती हूँ। इति।

श्री श्री सद्‌गुरू चरणाश्रिता–माँ मणि

माँ मणि से दूसरा पत्र भी प्राप्त हुआ, जो इस प्रकार है–

पुरी २५-२-६३

परमस्नेहास्पदेषु,

बेटा अमल, तुम लोगों के पत्र से समाचार ज्ञात हुये और तुम्हारे मन की अवस्था भी मालूम हुई। इन सबसे मन खराब मत करो। आलोक को जो पत्र लिखा है, उसी से सब समझ में आ जायेगा। घर छोड़कर चले जाने से ठीक नहीं होगा घर बैठकर भी भगवान को पा सकते हो। वे स्वयं आकर दर्शन देते हैं। घर छोड़कर इधर-उधर भागते हुये उन्हें नहीं पकड़ा जा सकता और ऐसा करने से भजन-साधना भी नहीं हो पाती। एक स्थान पर स्थिर भाव से रहकर उनके नाम का जप करना होगा। बेटा! कुछ भी सोचने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने जब तुम्हें स्वीकार किया है तो वे ही सब ठीक करे लेंगे। धैर्य रखकर अपेक्षा करते हुए, उनके ऊपर निर्भर होकर,

केवल नाम-जप करते रहो। जब तक मन ठीक नहीं होगा, जहाँ भी जाओगे चंचलता वनी रहेगी। कभी-कभी कुछ दिन अच्छा लग सकता है, फिर कुछ समय वाद वही अवस्था वापस आयेगी। और अधिक क्या लिखे।

श्री श्री गोसाँई जी, श्री श्री श्रीमाता ठाकुरानी, श्री श्री चैतन्य महाप्रभु का आशीर्वाद तथा गोपाल का प्यार लेना। उनके श्री चरणों में तुम लोगों के लिये मंगलकामना करती हूँ। इति।

श्री श्री सदगुरुचरणाश्रिता–माँ मणि

तृतीय परिच्छेद

मई-जुन माह में स्कूल में ग्रीष्मकालीन अवकाश हो गया। अवकाश प्रारंभ होते ही हमलोग रामचन्द्रपुर आश्रम पहुँच गये। इस बार गुरूदेव ने हमे पँचमुंडी आसन कक्ष के पास ही एक कमरे में ठहरने की व्यवस्था करवा दी। हमारे लिये यह व्यवस्था अधिक सुविधाजनक थी। यहां से गुरूदेव का कमरा पास मे रहने से हमलोग गुरूदेव के पास अथवा आसन-कक्ष जहां भी इच्छा होती चले जाते थे। गुरूदेव अपने कमरे के पास स्थित आसन-वेदी पर प्रातःकाल एक घंटा ध्यान करते थे। कमरे का एक दरवाजा वे थोड़ा सा खुला रखते थे। गुरूदेव ने हमें इस अवधि मे कमरे में बैठने की अनुमति दे दी थी। जब गुरूदेव ध्यान करते उस समय वहां बैठने पर बहुत अच्छा लगता था। ध्यान के उपरांत गुरूदेव चाय पीकर गीता-पाठ तथा कीर्तन करते थे। इसके बाद वे अपने कमरे मे जाकर बैठते थे । हमलोग फिर उनके पास जाकर बैठ जाते। गुरूदेव के पास बैठने का सौभाग्य दोपहर को भी प्राप्त होता था। इस प्रकार हमलोग दिन का अधिकांश समय गुरूदेव के सानिध्य में ही व्यतीत करते और स्वयं को अत्यंत भाग्यशाली मानते थे। इसी समय हमने एक बार गुरूदेव से पूछा–गुरु के साथ रहने से अधिक कल्याण होता है अथवा दूर रहकर साधना करने से?

गुरूदेव ने उत्तर दिया–''**सबकी एक जैसी अवस्था नहीं होती । अनेक व्यक्तियों को गुरू के साथ रहने से, गुरू को साधारण कार्य करते देख, उनके प्रति संदेह हो जाता है और उनके मन में अविश्वास की भावना भी पैदा हो जाती है।**'' आलोक द्वारा यह पूछे जाने पर कि सर्वदा गुरू के साथ रहने से क्या अधिक कल्याण होता है?

गुरूदेव ने उत्तर दिया–''**गुरू के साथ रहने से साधना न करने पर भी स्वयं नित्य साधना हो जाती है। इस कारण कहा जा सकता है कि गुरू के साथ रहने से शिष्य का अधिक कल्याण होता है।**''

हमलोग इस बार आश्रम में लगभग डेढ़ माहिने तक रहे। ग्रीष्मकालीन अवकाश समाप्त होने पर हम वापस रायपुर आ गये।

गुरूदेव प्रायः प्रत्येक वर्ष झूलन पूर्णिमा (रक्षा-बन्धन) के दिन बनारस जाते थे और वहां दरवेश जी महाराज द्वारा प्रतिस्थापित श्री श्री विजयकृष्ण मठ के उत्सव में योगदान करते थे। वहाँ से वृन्दावन व दिल्ली होते हुये वे वापस आश्रम आ जाते थे। इस वर्ष हम लोगों ने विचार किया कि गुरूदेव के साथ हमलोग भी बनारस तथा वृंदावन जायेंगे। गुरूदेव से अनुमति लेने के लिये हमने उन्हें पत्र लिखा, जिसका

उत्तर गुरूदेव ने इस प्रकार दिया :–

ॐ गुरू १८-७-६३

कल्याणीय,

बेटा आलोक व अमल, तुम लोगों का पत्र मिला। मैं २७-२८ जुलाई तक वृन्दावन पहुँचूँगा। २२ को रामचन्द्रपुर से रवाना होकर मार्ग में झरिया, पटना, मुजफ्फरपुर,काशी व कानपुर रूकने की इच्छा है। इसलिए वृन्दावन पहुँचने में देर होगी। तुमलोग यदि वृंदावन आना चाहते हो तो काशी उत्सव में, जो १ अगस्त से ७ अगस्त तक है, शामिल होकर वृंदावन आ सकते हो या फिर सीधे वृंदावन भी पहुँच सकते हो।

एम. ए. पास कर लिया है, जानकर प्रसन्नता हुई। जीवन की सभी परीक्षाओं में सफलता मिले। इस हेतु मेरा आशोर्वाद सदा तुम लोगों के साथ है। एम. ओ. प्राप्त हुआ।

स्नेहार्थी–बाबा

गुरूदेव का पत्र मिलने के बाद हम लोगों ने बनारस जाने की तैयारी प्रारंभ कर दी। इसी समय माँ को अचानक टायफाइड हो गया। अतः आलोक नहीं जा सकेगा, म अकेला ही जाऊँगा ऐसा निश्चित किया। बनारस मठ इसके पहले कभी नहीं गया था। अतः चिंतित था। जाने के पूर्व एक दिन स्वप्न देखा–"मैं एक आश्रम में गया हूँ, वहाँ गोसाँई जी (श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी) का सुन्दर मंदिर है। मंदिर में दर्शन करके, सीढ़ियों से ऊपर की मंजिल पर पहुँचा। वहां एक बड़े कमरे में व्याघ्रासन पर दरवेश जी महाराज बैठे हैं। मैंने पास जाकर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने अत्यंत स्नेह से मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया, तभी स्वप्न टूट गया और नींद खुल गई।"

यथा समय बनारस पहुँचकर, मठ में आकर जो देखा उससे मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ क्योंकि जैसा स्वप्न में देखा था, ठीक वैसा ही मंदिर यहाँ था। ऊपर की मंजिल पर जाकर देखा कि दरवेश जी महाराज के कमरे में व्याघ्रासन बिछा हुआ है, जैसा कि स्वप्न में देखा था। केवल दरवेश जी वहाँ नहीं थे।

मठ पहुँचने पर पता लगा कि गुरूदेव वहाँ पहुँचे थे और अभी वृंदावन में है। मैंने, अष्ट प्रहर नाम-कीर्तन में योगदान देकर सारी रात गुजारी और दूसरे दिन वृंदावन के लिये रवाना हो गया। रास्ते में मुझे तेज बुखार हो गया। वृंदावन में गुरूदेव केशी घाट के पास एक मकान में ठहरे हुये थे। दास दा तथा अन्य कई भक्तगण भी उनके साथ आये हुये थे। वृंदावन पहुँचकर मेरा बुखार और बढ़ गया। मैं जब वहाँ पहुँचा, तब सभी लोग मंदिर दर्शन के लिए निकल रहे थे। मैं वृंदावन पहली बार आया था। इसलिये गुरूदेव से अनुमति लेकर मैं भी सबके साथ निकल पड़ा। गुरूदेव उस दिन मंदिर दर्शन के लिये नहीं गये। हमलोग ढाई घंटे तक मंदिरों के दर्शन

करने के उपरांत जब वापस लौटे उस समय तक मैं और अधिक अस्वस्थ हो गया। गुरूदेव ने मेरी ऐसी अवस्था देखकर अपने कमरे में ही मेरा बिस्तर लगाने को कहा। शाम को मैंने देखा कि गुरूदेव को भी बुखार आ गया है। उनके बुखार के सभी लक्षण उसी प्रकार थे जो मुझ में थे। हमारे गुरूभाई डा. सुधीरानंद हम लोगों को देखने आये। उन्होंने गुरूदेव को एवं मुझे स्वास्थ्य लाभ के लिये एक ही औषधि दी। तीसरे दिन गुरूदेव और मैं दोनों एक साथ स्वस्थ हो गये। मुझे लगा जैसे गुरूदेव ने मेरे ज्वर को स्वयं भुगत लिया है।

वृंदावन से गुरूदेव दिल्ली के लिये पहले ही रवाना हो गये। मैं अन्य गुरूभाईयों के साथ बाद में दिल्ली आया। दिल्ली में हम सबलोग काली-बाडी में रूके। यहाँ प्रतिदिन विभिन्न गुरूभाईयों के घर कीर्तन उत्सव का कम चलने लगा। एकदिन धीरेन्द्र दत्त जी के मकान पर गुरूदेव कीर्तन के लिये पधारे। कीर्तन में बैठने के थोड़ी देर बाद ही उनकी समाधि लग गई। लगभग डेढ़ घंटे तक उसी अवस्था में रहने के बाद वे स्वाभाविक अवस्था में आये।

मैंने रायपुर वापस जाने के लिये एक गुरूभाई को आरक्षण कराने के लिये रूपये दे दिये। मेरे पास केवल दो-चार रूपये ही शेष रहे। गुरूभाई ने साधारण श्रेणी में आरक्षण न मिलने पर, नागपुर तक ए. सी. चेयरकार की टिकिट खरीद ली। इस प्रकार मेरे पास आगे नागपुर से रायपुर जाने के लिये रूपये नहीं बचे। मैंने इस संबंध में गुरूदेव को कुछ नहीं बताया। मन में विचार किया कि यदि गुरूदेव स्वयं पूछेंगे तो कुछ रूपये उनसे माँग लूँगा अन्यथा जो भी होगा बाद मे देखा जायेगा।

उस दिन डा० श्रीमंत दास के मकान पर कीर्तन था। वहीं से दोपहर का प्रसाद ग्रहण करके मैं निकल पडूँगा, ऐसा सोचकर, काली-बाड़ी में अपना सामान तैयार कर लिया था। सबलोग कीर्तन के लिये निकल पड़े। गुरूदेव के साथ मैं और दो-एक अन्य लोग कीर्तन के लिये निकलने वाले थे। काली-बाड़ी से रवाना होने के पहले गुरूदेव ने अपना थैला लाने के लिये मुझसे कहा। उसमें से वे कुछ देर तक रूपये निकाल कर गिनते रहे और बीच-बीच में मेरी ओर भी देखते रहे। थोड़ी देर बाद बाक्स में रखने के लिये उन्होंने थैला मुझे दे दिया। तत्पश्चात् गुरूदेव के साथ हमलोग निकल पड़े।

डा० श्रीमंत् दास के यहां कीर्तन हुआ। उसी समय गुरूदेव समाधिस्थ हो गये। बहुत देर बाद उनकी स्वाभाविक अवस्था में आने पर सभी ने प्रसाद ग्रहण किया। ट्रेन का समय हो रहा था, अतः मैं गुरूदेव से बिदा लेने के लिये उन्हें प्रणाम करने गया। गुरूदेव ने एक व्यक्ति को बुलाकर मेरे लिये रास्ते के भोजन की व्यवस्था करने के लिये कहा। मैं उन्हें प्रणाम करके और आशीर्वाद लेकर जैसे ही कमरे से बाहर निकलने लगा। गुरूदेव ने बुलाकर पूछा कि तुम्हारे पास रायपुर जाने के लिये ट्रेन

का पूरा किराया तो है न? मैंने बताया नागपुर तक का टिकिट है। नागपुर से रायपुर जाने के लिये रूपये कुछ कम पड़गे। गुरूदेव ने डांटते हुये कहा कि पहले क्यो नहीं कहा? मैं तो साथ में रूपये नहीं लाया हूँ। काली-बाड़ी में ही रूपये रखकर आ गया हूँ। अब किसी और से रूपये लेने पड़ेंगे। गुरूदेव ने गुरूभाई मजुमदार दा को बुलाया और मुझसे पूछा कि कितने रूपये चाहिये? मैंने बताया १० रूपये कम है। गुरूदेव ने १० रूपये मजुमदार दा से मुझे दिला दिये और कहा कि रायपुर जाकर १० रूपये एम० ओ० कर देना।

गुरूदेव द्वारा इस प्रकार डांटा जाना और उनकी कृपा का आनंद वही अनुभव कर सकता है जिसने उसे पाया हो। इस यात्रा में मुझे गुरूदेव के साथ वृंदावन व दिल्ली घूमने एवं गुरूदेव को निकट से अनुभव करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मैंने माँ मणि को इस विषय के सविस्तार पत्र पुरी में लिखा। जिसके उत्तर में माँ मणि का जो पत्र प्राप्त हुआ वह इस प्रकार है :–

पुरी ७-९-६३

कल्याणवरेषु,

बेटा अमल, तुम्हारा पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। तुम असीमानंद के साथ वृंदावन व दिल्ली घूम आये हो यह जानकर और अधिक आनंद प्राप्त हुआ। सुविधानुसार सुबह शाम नाम-जप करते रहना। इसी से गुरू के सत्संग का आनंद प्राप्त होगा। समय होने पर गुरू के पास रहने को मिलेगा। अभी तुम लोगों का कर्म-जीवन चल रहा है। पिता-माता के अनुगत रहते हुए मन लगाकर कर्तव्य-कर्मों को करते रहो। कैसे हो? समय- समय पर पत्र अवश्य लिखते रहना। श्री श्री गोसाँई जी एवं माता ठाकुरानी का आशीर्वाद लेना। आलोक को एवं अन्य सभी को 'उनका' आशीर्वाद कहना। गोसाँई जी तुम लोगों का मंगल करें ! गोपाल का प्यार मिले। इति।

श्री श्रीसद्‌गुरूचरणाश्रिता–माँ मणि

इस वर्ष दुर्गापूजा के समय अक्टूबर-नवम्बर के अवकाश में आश्रम में लगभग एक माह से अधिक समय हम लोगों का रहना हुआ। इस अवधि में गुरूदेव के साथ जो चर्चायें हुई वे यहां उद्‌धृत है–

१. एक दिन शाम को गुरूदेव के पास बैठा था। गुरूभाई वासुदेव वहाँ आये और गुरूदेव से बोले– बाबा! मेरे माँ और पिताजी दोनों का देहांत हो गया है। मेरे बड़े भाई हैं, जो गृहस्थ हं। मेरी इच्छा है कि किसी निर्जन स्थान पर जाकर भजन-साधना करूँ। घर के लोग मेरे विवाह के लिये प्रयासरत् हैं। मेरे लिये, विवाह करना क्या उचित होगा? गुरूदेव ने उत्तर दिया–"**विवाह करके मरना है क्या? अभी तो ठीक हो, कोई दायित्व नहीं है। घर छोड़कर पहाड़ पर तपस्या करने से अनेक**

अनुभूतियां होंगी। जाओ किसी निर्जन स्थान पर जाकर साधना करो।''

वासुदेव, गुरूजी से मनवांछित आशीर्वाद पाकर बहुत आनंदित हुये। बाद में गुरूदेव ने उन्हें संन्यास भी प्रदान किया और उनका नाम स्वामी वासुदेवानंद सरस्वती रखा गया। वासुदेव के जाने के बाद हम लोगों ने गुरूदेव से कहा कि हमें भी इसी प्रकार निर्जन स्थान पर साधना करने की प्रवल इच्छा है। क्या हम लोगों को विवाह करना ही होगा? गुरूदेव हम लोगों का प्रश्न सुनकर कुछ देर हमारी ओर एकटक देखते रहे फिर उन्होंने कहा–''**विवाह करना ही पड़ेगा ऐसा कुछ नहीं है। विवाह करना न करना तुम लोगों की इच्छा पर निर्भर है। तुम लोगों को एक निश्चित समय की प्रतीक्षा करनी होगी। तव तुम्ह जो प्राप्त होना है, स्वयं ही मिल जायेगा। विवाह करने पर भी वह मिलेगा और न करने पर भी। किंतु यह समय पर ही मिलेगा।''** तब हम लोगों ने गुरूदेव से कहा कि तब हमलोग विवाह नहीं करेंगे। गुरूदेव ने कहा–''**यही ठीक है। मुझे देखो ना! सभी प्राप्त हुआ है, फिर भी एक न एक झमेला गृहस्थी में लगा ही रहता है।''**

आश्रम में जिन व्यक्तियों ने गुरूदेव के साथ सत्संग किया है वे गुरूदेव की इस बात का मर्म समझ सकते हैं। गुरूदेव ने बताया था–''**बहुत पहले महात्मा हंसवावा और तिब्वती बाबा ने मेरे संबंध में कई भविष्यवाणियाँ की थी, जो सभी मेरे जीवन में सत्य प्रमाणित हुई। भविष्यवाणियों में यह भी कहा गया था कि मुझे गृहस्थ होना पड़ेगा। गृहस्थ जीवन में कोई वाधा न होने पर भी शांति नही मिलेगी और बाद में संन्यासी होना पड़ेगा। यह भविष्यवाणी भी की गई थी कि मेरे सबसे घनिष्ट संबंधी ही मेरे गंभीर मनःताप का कारण बनेंगे।''** (द्रः चलारपथे ग्रथ से उद्धृत) इस प्रकार गुरूदेव से हमारे भविष्य में जीवनयापन के संबंध में पथ निर्देश पाकर हमलोग निश्चिंत हो गये।

२. हमारे एक गुरूभाई की पुत्री जिसे दीक्षा मिल गई थी, उसे ससुराल में साधना के नियमों के विरुद्ध निषिद्ध आहार ग्रहण करना पड़ता था। हमारे समक्ष एक दिन गुरूभाई ने इस संबंध में गुरूदेव से चर्चा की। गुरूदेव ने अपने विचार व्यक्त करते हुये कहा, ''**दीक्षा के नियम आदि मेरे बनाये हुये नहीं ह, इसमें कोई परिवर्तन मैं नही कर सकता। नियमा का पालन न करने से उसका परिणाम भुगतना ही पड़ेगा।''** आगे चलकर उनकी पुत्री को आहार संबंधी विधि-निषेध का पालन न कर सकने के कारण असाध्य रोग हो गया। कई और गुरूभाईयों को भी आहार के नियमों का पालन न करने से अत्यंत कष्ट उठाना पड़ा और बाद में जब उन्होंने नियम पालन शुरू किया तो उनके कष्ट कम हो गये।

गुरूदेव कहते थे–''**नियम आदि पालन न करने से शिष्य के साथ-साथ गुरू को भी कष्ट उठाना पड़ता है। क्योंकि शिष्य के भोग का दस आना अंश गुरू को भी**

भुगतना पड़ता है।'' इस प्रसंग पर श्री श्री गोसाँई जी ने किसी समय कहा था–''**मुझे यदि तुमलोग प्यार करो तो जिससे मैं कष्ट पाऊँ वैसा कार्य मत करो। तुम सब जो कष्ट पाते हो उसका दस आना भोग मुझे भुगतना पड़ता है एवं छः आना तुम लोगों को भुगतना पड़ता है''।** (मंदिर ४र्थ वर्ष)

आजकल कुछ लोग श्री श्री गोस्वामी जी की परम्परा में दीक्षा प्राप्त कर, दीक्षा प्रदान करना प्रारंभ कर दिये हैं। परन्तु आहार संबंधी नियमों का न तो वे स्वयं पालन करते हैं और न अपने शिष्यों को इस संबंध में उचित निर्देश देते हैं। जिससे वे पीड़ा के भागी होते हैं। शास्त्रों में आहार के संबंध में उल्लेख है कि ''आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः, सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः'' इसका भावार्थ है–सात्विक आहार से सात्विक भावना उत्पन्न होती है और तब सर्वदा ईश्वर का स्मरण (जप) होता रहता है।

दुर्गापूजा की छुट्टियां समाप्त होते ही हमलोग रायपुर वापस आ गये। वापस आने पर और अधिक उत्साह के साथ साधना में लग गये। लगभग एक माह पश्चात् अचानक गुरूदेव का एक पत्र प्राप्त हुआ। पत्र मे गुरूदेव ने आलोक के लिये एक विवाह संबंधी प्रस्ताव का उल्लेख करते हुये लिखा था, ''**इस विवाह से तुम्हारे धर्म लाभ में कोई व्यवधान नहीं होगा। गृहस्थ होना अधर्म नहीं है। श्री श्रीगोसाँई जी गृहस्थ थे। दरवेश जी ने भी विवाह किया था और मैंने भी चौदह वर्ष तक गृहस्थ जीवन व्यतीत किया है। विवाह की इच्छा यदि किंचित मात्र भी तुम्हारे अंदर हो, तो तुम विवाह कर लो। मेरा आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ है और रहेगा।''**

गुरूदेव की ओर से ऐसा पत्र पाकर आलोक एकदम हताश हो गया। क्योंकि इसके पूर्व, आश्रम मे गुरूदेव ने विवाह न करने के संबंध में हमारे विचारों को उचित बताया था। किंतु अचानक इस प्रकार का पत्र प्राप्त होने से हमलोग चकित हो गये। उस समय हमलोग सायंकाल दो-तीन मील घूमने जाते एवं निर्जन स्थान में बैठकर लगभग एक घंटा कीर्तन व साधना करते थे। उस दिन वहाँ जाकर हम लोगों ने गुरूदेव के पत्र को बार-बार पढ़ा और विचार किया कि गुरूदेव क्यों इस प्रकार की परीक्षा ले रहे हैं? गुरूदेव को पत्र के उत्तर में क्या लिखना उचित होगा? काफी विचार करने पर मन स्थिर करके जो पत्र गुरूदेव को लिखा वह संक्षेप में इस प्रकार था–''**तुम्हारा पत्र मिला। माँ मणि ने हमें बताया था कि तुम्हारे भीतर गोसाँई जी की नित्यलीला हो रही है और तुमने भी यह बात स्वीकार की है। यह जानने के बाद तुम्हारे निकट रहकर दुर्लभ सद्गुरू का संग करना उचित है अथवा तुच्छ स्त्री संग''?**

''हम लोगों का मन हमेशा चंचल है। विभिन्न प्रकार की अच्छी-बुरी बातें मन में आती रहती है। तुमने लिखा है कि बिन्दु मात्र इच्छा होने से विवाह करो। हमारी एकमात्र इच्छा तुम्हारा सत्संग में रहने की है और बाद में एकांत स्थान में साधना

करते हुये जीवन व्यतीत करने की है । फिर भी जैसा तुम्हारा आदेश होगा, हम वही करेंगे।''

उल्लेखनीय है कि इस पत्र के पहले हमलोग गुरूदेव को ''आप'' कहकर सम्बोधन करते थे। इस पत्र को लिखते समय उन्हे 'तुम' कहकर सम्बोधन किया। इसके पश्चात् से उन्हें सर्वदा 'तुम' कहकर सम्बोधन किया करते थे। इस पत्र के कुछ दिनों बाद गुरूदेव का पत्र प्राप्त हुआ। गुरूदेव ने लिखा था–

ॐ गुरू,

१३-१२-६३

परमकल्याणवरेषु,

स्नेहमय आलोक व अमल, तुम लोगों का पत्र मिला। पत्र पाकर अत्यधिक आनंद की अनुभूति हुई। तुम लोग अपनी इच्छा के विपरीत कुछ मत करना। मेरा हार्दिक आशीर्वाद सर्वदा तुम लोगों के साथ है और रहेगा। तुम लोगों की जय हो!

मैं कल मुजफ्फरपुर जा रहा हूँ। २७ को वापस आऊँगा। २ जनवरी से ३१ मार्च तक चिकित्सालय के कार्य में अत्यधिक व्यस्त रहूँगा ।

इस बार तुम लोगों ने आश्रम आकर बहुत आनंद दिया। बंग साहित्य सम्मेलन में यहाँ अपार जनसमागम हुआ था। सम्मेलन व प्रदर्शनी बहुत ही सुंदर ढंग से सम्पन्न हुई।

मेरा शरीर स्वस्थ नहीं है फिर भी अशक्त नहीं हूँ। चिंता का कोई कारण नहीं है। अपनी कुशलता के समाचार देते रहना।

स्नेहार्थी–बाबा

इस पत्र के कुछ दिन बाद गुरूदेव का एक और पत्र प्राप्त हुआ जिसमें लिखा था–

ॐ गुरू,

३०-१२-६३

स्नेहमय पुत्र,

तुम लोगों की बात याद आ रही है। मैं ८ दिसंबर को पुरी में था । वहाँ से मुजफ्फरपुर, दरभंगा, समस्तीपुर घूमते हुये कोलकाता पहुँचा। २५-२६ को गया में था और २८ की रात्रि को आश्रम आ गया हूँ।

आशा करता हूँ तुम लोगों का समाचार कुशल का है। मेरा स्नेह व आशीर्वाद लेना। आगामी १ जनवरी से नेत्र चिकित्सालय शुरू होगा। शेष कुशल-मंगल है। कुशलता के समाचार देते रहना।

स्नेहार्थी–बाबा

उपरोक्त दोनो पत्र प्राप्त होने के बाद हमने गुरूदेव को जो पत्र लिखा उसका उत्तर गुरूदेव द्वारा इस प्रकार दिया गया–

ॐ गुरू,

८-१-१९६४

कल्याणवरेषु,

स्नेहमय पुत्र अमल व आलोक , तुम लोगों का पत्र मिला। तुम लोगों का निवास मेरे ह्रदय में है। प्रयोजन होने व समय आने पर तुम्हें बुला लूँगा। तुमलोग बिलकुल निश्चिंत रहो।

मेरा शरीर स्वस्थ नहीं है, किसी तरह चल रहा है । चिकित्सालय शुरू हो गया है तथा ३१ मार्च तक चलेगा।

तुम सभी को मेरा स्नेह व आशीर्वाद प्राप्त हो। गुरूदेव तुम लोगों की मनोकामना अवश्य पूरी करेंगे।

स्नेहार्थी–बाबा

गुरूदेव के उपरोक्त पत्र लगातार प्राप्त होने पर एवं अंतिम पत्र में यह पढ़कर कि ठाकुर हम लोगों की मनोकामना अवश्य पूरी करेंगे, हमलोग निश्चिंत हो गये।

इसी समय पुरी से माँ मणि का पत्र भी प्राप्त हुआ।

श्री गुरवे नमः **१२ दिसम्बर, १९६३**

स्नेहास्पदेषु,

आलोक व अमल, तुम लोगों का पत्र पाकर खुशी हुई। स्वास्थ्य ठीक न होने से उत्तर देने में विलंब हुआ है। गत रविवार को असीमानंद आये थे। साथ में पांच महिलायें भी थी। यहाँ पाँच लोगों की दीक्षा सम्पन्न हुई। खुव आनंद आया। सोमवार को वे कटक होकर रामचन्द्रपुर प्रस्थान कर गये। परीक्षा के बाद यहाँ आओगे, यह जानकर प्रसन्नता हुई। जो भी जिज्ञासा हो, असीमानंद को बताओ। उनके आदेशानुसार ही चलते रहना। अब तुम्हारे लिये जो कुछ भी आवश्यक है, सब तुम्हारे गुरूदेव ही करेंगे–ऐसा गोसाँई जी ने कहा है।

गोसाँई जी व माता ठाकुरानी का आशीर्वाद लेना। समय-समय पर पत्र लिखते रहना। तुम लोगों के कल्याण के लिये प्रार्थना करती हूँ। तुम लोग दोनों समय आसन पर बैठकर नाम-जप करो। इति।

मंगलप्रार्थिनी–माँ मणि

उक्त पत्र से स्पष्ट हो गया कि श्री श्री गोसाँई जी ही, माँ मणि के माध्यम से, हमें गुरूदेव के निर्देशों का पालन करने का आदेश दे रहे ह।

दिसंबर के अंतिम सप्ताह में माँ को लेकर मैं कोलकाता गया। उसी समय बड़े मामा के साथ माँ को लेकर पुरी भी गया। पुरी में पहले मंदिर आदि के दर्शन किये

और शाम के समय हमलोग माँ मणि के पास पहुँचे। माँ मणि हम लोगो को देखकर बहुत प्रसन्न हुई और बोली कि 'तुमलोग आज आ रहे हो यह गोपाल जी ने पहले ही बता दिया था। मध्यान्ह के भोग का प्रसाद गोपाल जी के कहने से तुम लोगो के लिये रखा है।' हम लोगों ने प्रसाद ग्रहण किया। श्री श्रीगोपाल जी की कृपा से संबंधित कई प्रसंग माँ मणि ने हम लोगों को सुनाया। बड़े मामा गंध बाबा (स्वामी विशुद्धानंद परमहंस) के शिष्य थे। उनके विशेष आग्रह पर माँ मणि ने उन्हें अजपा-साधना पद्धति सिखलाई। चर्चा के समय माँ मणि ने मुझे आलोक कहकर संबोधित किया क्योंकि मैं पहली बार ही मॉ मणि के पास में गया था। मेरा नाम अमल है, यह मैंने माँ मणि को नहीं बताया। **कुछ देर बाद माँ मणि स्वयं बोलीं, अच्छा ! तुम्हारा नाम अमल है क्या? मैंने पूछा, क्यों क्या हुआ? तब माँ मणि ने कहा–''गोपाल जी हँस रहे ह और कह रहे हैं कि मैं सब भूल जाती हूँ और अमल को आलोक बोले जा रही हूँ।'' तब मैंने कहा कि जब मेरा नाम गोपाल जी ने बता ही दिया है, तब मैं और क्या कहूँ?**

यद्यपि माँ मणि पूरे समय हमसे चर्चा करती रही पर यह देखकर हम सभी आश्चर्यचकित थे कि माँ मणि के अंतर में पूरे समय लीला-दर्शन चल रहा है। पुरी से मैं कोलकाता होकर माँ के साथ रायपुर वापस आ गया। आलोक एम. ए. फाईनल की परीक्षा देकर इस वर्ष पहले ही रामचन्द्रपुर चला गया। मैं कुछ समय बाद, मई में वहां गया। आश्रम में आलोक ने एक गीता गुरूदेव को देकर उस पर कुछ लिखने का निवेदन किया। गुरूदेव ने उस पर आशीर्वाद देते हुये यह लिखा–(बंगला भाषा का अनुवाद)

गीता का मंत्र तुम्हारे जीवन में
नित्य ध्वनित हो।
त्याग के मंत्र तुम लोगों के
जीवन में सहायक हो।
कर्म, भक्ति और ज्ञान का मंत्र
एक साथ सदा चले।
दूर हो जाये लक्ष्य की
सभी दुस्तर बाधा।
तुम लोगों का साधक जीवन
सुन्दर और सार्थक हो।
परमानंद से पथ में चलो,
पथ ही तुम्हारा नवगृह हो।
आशीष है संग्राम में विजयी हो
सरलता पूर्वक।

श्रीनाम की कृपा के बल से
दुस्तर मरूस्थल को पार करो। –असीमानन्द

इस बार हम लोगों को गुरूदेव के साथ कान्तोड़, सोनामुखी बाँकुडा व कोलाघाट जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस परिकमा के समय की कुछ घटनाओं का उल्लेख नीचे दिया जा रहा है–

१. श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी के अनन्य शिष्य श्री श्री दरवेश जी महाराज ने कांतोड़ गांव में साधना के लिये एक छोटी सी कुटी तैयार की थी। यहां प्रतिवर्ष बुद्ध पूर्णिमा के पहले एक महोत्सव होता है। इस गांव के लगभग हर व्यक्ति ने दीक्षा ली है। गांव से आश्रम जाने के लिये कोई रास्ता नहो था। धान के खेतों से लोग आना-जाना करते थे। गुरूदेव जब पहली बार यहाँ आये थे उस समय सभी ग्रामवासियों को, सहयोग करके, आश्रम के लिये रास्ता तैयार करने हेतु कहा था। यह भी कहा गया था कि रास्ता तैयार करने का खर्च वे देंगे। किंतु जिनके खेतों से मार्ग बनना था, उन्होंने जमीन देने की केवल मौखिक स्वीकृति दी थी। अतः मार्ग तैयार नहीं हुआ। इस वर्ष फिर से गुरूदेव ने सभी को मार्ग की उपयोगिता बताते हुये मार्ग के लिये जमीन दान करने के लिये कहा। गुरूदेव ने सबके सामने मार्ग के लिये जमीन का नाप करवाकर दान-दाताओं से दस्तावेज तैयार करवाकर हस्ताक्षर ले लिये। जलपान का समय हो जाने पर, ग्रामवासियों ने गुरूदेव को बालभोग का प्रसाद ग्रहण करने का निवेदन किया। गुरूदेव ने कहा पहले रास्ता तैयार हो जाये, उसके बाद ही मैं जलपान करूँगा। ऐसा कहकर गुरूदेव ने रास्ते में मिट्टी डालने का कार्य प्रारंभ कर दिया। गुरूदेव के साथ आये सभी लोग इस कार्य में अपना योगदान देने लगे। यह देखकर सभी ग्रामवासी भी इस पुनीत कार्य में सहभागी हो गये। हमलोग भी उनके साथ कुछ देर मिट्टी डालते रहे, किंतु ऐसे कार्य के लिये अभ्यस्त न होने से, अधिक देर तक यह कार्य नहीं कर सके। हमने देखा कि गुरूदेव एक पेड़ के नीचे छाया में बैठे हैं। हमलोग भी हाथ-पैर धोकर उनके पास जाकर बैठे गये। गुरूदेव ने एक बार हमारी और देखा और फिर कहने लगे– ''देखो, यह रास्ता बन जाने से ग्रामवासियों को आश्रम आने-जाने में काफी सुविधा हो जायेगी। किंतु ग्रामवासियों के बीच सहयोग के अभाव से अभी तक रास्ते के लिये कुछ नहीं हो सका। मेरे यह कहने पर कि जब तक रास्ता नहीं बनेगा मैं कुछ खाऊँगा नहीं, सभी ग्रामवासी मिलकर कितनी लगन से मार्ग निर्माण का कार्य कर रहें हैं। जानते हो **असली बात क्या है? प्रत्येक व्यक्ति के अंदर कार्यशक्ति छिपी रहती है । कौशल से उसे अच्छे कार्य में लगाना चाहिए ।''**

हमने देखा कुछ ही घंटों में रास्ता बनकर तैयार हो गया। गुरूदेव ने सभी को मिठाई खिलाया। गुरूदेव चिकित्सालय, स्कूल, आदि जनकल्याण के कार्यों में किस

प्रकार लोगों को उत्साहित करते हैं, यह हमने प्रत्यक्ष अनुभव किया। गुरूदेव के इन सब कार्यों का उद्देश्य है कि लोगो को सत्कार्य में लगाकर उनके अंदर निस्वार्थ भाव पैदा करना।

वहॉ अष्टप्रहर नाम-कीर्तन समाप्त होने के बाद नगर-कीर्तन हुआ। नगर-कीर्तन के बाद सभी लोग आश्रम वापस आ गये और गुरूदेव के चारों तरफ से घेर कर कीर्तन करने लगे। हम कुछ लोगों ने गांव के युवकों को गुरूदेव के चरणों पर जल डालने के लिये कहा क्योंकि गुरूदेव के चरण मिट्टी से सने हुये थे। जल डालने से वहाँ कीचड़ हो गया। इसके बाद सभी ने एक दूसरे पर वही कीचड डालकर अद्भूत आनंद प्राप्त किया। गुरूदेव ने भी सभी के साथ इसका आनंद लिया।

गुरूदेव इसके बाद सभी को साथ लेकर शीलावती नदी में स्नान करने गये। नदी में पानी अधिक नहीं था । अतः सभी लोग गुरूदेव के सिर पर लोटे से पानी डालने लगे। श्री श्री दरवेश जी महाराज के शिष्य स्वामी योगानंद जी महाराज की जटांये बहुत बड़ी थी। वे जटाओ में पानी नहीं डालते थे, किंतु यहाँ उनकी जटाओं को भी लोगों ने पानी डालकर गीला किया और इसका भी खुब आनंद लिया। गुरूदेव के एक गुरूभाई बहुत गंभीर स्वभाव के थे। सब उनसे डरते थे, किंतु आज वे भी सबके साथ इस आनंद-कोडा में सम्मिलित होने से अपने आप को नहीं रोक पाये। गुरूदेव ने दो-तीन गुरूभाईयों को जल-कोड़ा के लिये प्रेरित किया। जिसमें पहले से खड़े हुये व्यक्ति के पीछे एक व्यक्ति झुककर खड़ा रहता, दूसरा व्यक्ति सामने से जाकर उसे अचानक धक्का देता था और इस तरह पहले व्यक्ति को नदी में अचानक उछलते हुए गिरता देखकर सभी लोग खूब आनंद लेते थे। हमसब करीब डेढ घंटे तक मौज-मस्ती के साथ जल-कोड़ा करते रहे। गुरूदेव ने गांव से मिठाई खरीदकर लाने के लिये कहा। गांव में केवल एक टोकरी गुड़ की बनी मिठाई ही मिली। गुरूदेव ने सबकों नदी में ही गुड़ की बनी मिठाई उछाल-उछाल कर देना प्रारंभ कर दिया। किंतु जब उन्होंने देखा कि अधिकांश मिठाई नदी में गिरकर बेकार हो रही है, तो वे सबको एक पंक्ति में खड़ा करक अपने हाथ से मिठाई बांटने लगे। हम सभी आश्चर्यचकित थे कि वहाँ उपस्थित सैकड़ों लोगों ने गुरूदेव से कई-कई बार मिठाई प्राप्त की, किंतु मिठाई कम नहीं पड़ी। इस प्रकार कांतोड़ आश्रम में इस उत्सव का हम सभी ने भरपूर आनन्द प्राप्त किया।

२. गुरूदेव के गुरूभाई स्वामी भगवानदास जी बाँकुड़ा जिले के छान्दाड़ नामक गांव में रहते थे। गुरूदेव हम सभी को लेकर वहाँ गये । क्योंकि उनके गुरूभाई की आंतरिक इच्छा थी, कि गुरूदेव उनके यहां पधारें। इसके बाद गुरूदेव सोनामुखी में पागल हरनाथ बाबा के श्री श्यामसुंदर मंदिर के दर्शन के लिये हम लोगों को ले गये। मंदिर में दर्शन के बाद गुरूदेव ने हमें बताया कि यहां की श्यामसुंदर जी की

मूर्ति और शांतिपुर में गोसाँई जी के मंदिर की श्यामसुंदर जी की मूर्ति एक समान है।

यहाँ से, बाँकुडा के श्री विजय योगाश्रम में मध्यान्ह प्रसाद ग्रहण करने के बाद गुरूदेव हम सबको लेकर अपने एक शिष्य पन्नालाल के यहाँ राईन गांव (कोलाघाट) पहुँचे। गाँव के लोगों ने बडे ही उदार भाव से हम सभी की आव-भगत की। उनकी सेवा देखकर हम सभी मुग्ध हो गये। एक दिन गुरूदेव हम सबको लेकर उपन्यासकार श्री शरतचन्द्र का मकान भी दिखाने ले गये।

३. वहाँ से लौटकर आश्रम आने पर, एक दिन हमने गुरूदेव से प्रार्थना किया कि जबतक तुम इस शरीर में हो, हमलोग तुम्हारे पास रहने की इच्छा करते हैं, इसके बाद किसी निर्जन स्थान पर जाकर साधना करना चाहते हैं। गुरूदेव ने आशीर्वाद देते हुये कहा कि तुम्हारी प्रार्थना पूरी होगी। उसी वर्ष श्री श्री गोसाँई जी के स्मरणोत्सव (पूण्य निर्वाण तिथि) पर हम २५-३० लोग, गुरूदेव के साथ आसनसोल होकर पुरी गये। रास्ते में विभिन्न स्टेशनों पर गुरूदेव के दर्शन लाभ के लिये बहुत से लोग तरह-तरह की खाद्य सामग्री लेकर पहुँचते थे, क्योंकि लोगों को गुरूदेव की इस यात्रा की खबर मिल गयी थी। गुरूदेव सभी को ट्रेन की खिड़की से मिठाई, फल आदि बांटते रहते थे। गुरूदेव के हाथ से कुछ न कुछ प्राप्त करने की भक्तों के अंदर लालसा देखते ही बनती थी। गुरूदेव इस प्रकार सभी पर कृपा कर रहे थे। रात्रि लगभग तीन बजे ट्रेन पुरी पहुँची। गुरूदेव ने पहले ही सबको अपना-अपना सामान लेकर समुद्र के किनारे स्थित 'अक्षय-धाम' पहुँचने का निर्देश दे दिया था। गुरुदेव ने सबकी टिकिट अपने पास रखी और सभी को प्लेटफार्म से बाहर निकलने के लिये कहा। हम सभी लोगों के साथ भीड़ में पाँच दूसरे लोग भी बाहर निकल गये। जब गुरूदेव ने चेकर को टिकिट दी तो चेकर ने टिकिट गिनने के बाद पाँच टिकिट और देने के लिए कहा। गुरूदेव ने उसे शांत भाव से समझाने का प्रयास किया कि हमारे साथ जितने लोग है उन सभी के ये टिकिट हैं । किंतु चेकर मानने के लिये तैयार नहीं था। वह पाँच टिकिट का किराया और जुर्माना देने के लिये कह रहा था। गुरूदेव के साथ चेकर का ऐसा व्यवहार देखकर प्लेटफार्म से बाहर निकल चुके कई गुरूभाई उत्तेजित होकर चेकर के साथ तर्क करने लगे। तभी दास दा और कई बुर्जुग लोग स्टेशन मास्टर के पास गये और उन्हें गुरूदेव का तथा अपना परिचय देकर चेकर के व्यवहार के संबंध में बताया। स्टेशन मास्टर ने तुरंत वहाँ पहुँचकर टिकिट चेकर को डांटा और गुरूदेव से क्षमा याचना की। इस प्रकार इस अद्‌भूत घटना के साथ सारा विवाद समाप्त हो गया।

प्लेटफार्म से बाहर निकलकर हम सभी को वहाँ खड़ा देखकर, गुरूदेव ने डांटते हुये कहा– तुम सबलोग यहाँ क्यों खड़े हो। चेकर ने मुझे रोका था मैं उसे समझा बुझाकर आ जाता। इस प्रकार गुरूदेव विरक्ति प्रदर्शित करते हुये एक रिक्शे

में बैठकर आगे चल दिये और बोले, 'मैं जा रहा हूँ, तुम लोगों को जैसा करना हो करो।' गुरूदेव के रिक्शे के रवाना होते ही हमलोग भी रिक्शे लेकर उनके पीछे-पीछे 'अक्षय-धाम' पहुँच गये।

अक्षय-धाम समुद्र के समीप स्थित एक मनोरम स्थान है। यहाँ से गुरूदेव एवं उनके शिष्य तथा भक्तगण रिक्शा लेकर पुरी के विभिन्न दर्शनीय स्थलों पर जाते थे। हमलोग गुरूदेव के साथ ही रहने की आकांक्षा से प्रायः उनके साथ-साथ रिक्शा में ही जाते थे। एक दिन माँ मणि के यहाँ गुरूदेव के गीतापाठ का कार्यकम निश्चित हुआ। हमलोग पहले ही रिक्शा करके माँ मणि के यहाँ पहुँच गये। वहाँ जिस कमरे में कीर्तन होना था, वह आकार में बहुत छोटा था। इसलिये उस कमरे मे गुरूदेव के साथ दो-चार लोगों के बैठने की व्यवस्था ही हो पाई। हमलोग पहले पहुँच गये थे, इसलिये कमरे में बैठने का स्थान मिल गया। गीतापाठ तथा कीर्तन के बाद, बाल-भोग का प्रसाद ग्रहण करके हम सभी गुरूदेव के साथ श्री श्री गोसाँई जी के समाधि मंदिर में गये। मठ मे कीर्तन शुरू होते ही गुरूदेव की समाधि लग गई। उस दिन लगभग ३ घंटे व्यतीत हो जाने के बाद भी गुरूदेव की समाधि भंग नही हुई। समाधि मंदिर में भोग के समय भी गुरूदेव समाधि अवस्था मे ही अंदर बैठे हुये थे। उनके साथ उस समय स्वामी हरानंद जी भी थे। शेष सभी लोग बाहर आ गये थे। भोग बाहर आ जाने के लगभग आधा घंटे बाद गुरूदेव स्वाभाविक अवस्था मे आये। इतने लंबे समय तक गुरूदेव की समाधि हमने पहले कभी नहीं देखी थी। उस दिन मंदिर में श्री श्री गोसाँई जी द्वारा प्रसाद ग्रहण करने के स्पष्ट संकेत तथा आसन पर उनके पैरों के चिन्ह देखकर हम सभी बहुत आनंदित और भावविभोर हो गये थे।

मठ में प्रसाद ग्रहण करके हम सभी अक्षय धाम वापस आ गये। उस दिन बात-बात में गुरूदेव ने हम लोगों से कहा—**तुमलोग हमेशा रिक्शे से विभिन्न स्थानों पर दर्शन करने जाते हो। पुरी एक पुण्य तीर्थ स्थान है। यहां जितना पैदल चलोगे, उतना कल्याण होगा। इसके बाद से हम सबने पैदल घूमना शुरू कर दिया। श्री श्री गोसाँई जी की जीवनी में उल्लेख है कि पुरी में समुद्र स्नान, रज तथा महाप्रसाद की असीम महत्ता है।**

एक दिन गुरूदेव सभी को लेकर चटकगिरी के श्री सीतारामदास ओंकार नाथ जी के आश्रम में पहुँचे। उस समय वे वहाँ नहीं थे। उनके शिष्यगण गुरूदेव पर बहुत श्रद्धा रखते थे। उनके आग्रह करने पर गुरूदेव श्री नाममंदिर में गये। यहाँ पर बहुत दिनों से अखंड श्रीनाम-कीर्तन चल रहा था। गुरूदेव वहाँ बैठते ही समाधिस्थ हो गये। हमलोग उनके पास ही थे। हमने देखा कि उनके शरीर व हाथों पर 'हरे कृष्ण' नाम स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है। शरीर को उँगली या किसी वस्तु से दबाने पर जैसा निशान उभरता है, उसी तरह गुरूदेव के शरीर पर 'हरे कृष्ण' नाम उभर आया

था। हम लोगों ने दास दा एवं कई लोगों को गुरूदेव के शरीर पर उभरे नाम को दिखलाया। लगभग आधे घंटे बाद, कुछ लोग गुरूदेव को उठाकर बाहर के कमरे में ले आये। तत्पश्चात् गुरुदेव स्वाभाविक अवस्था में आ गये। हम लोगों ने इसके पहले गुरूदेव के शरीर पर ओंकार चिन्ह देखा था। किंतु इस बार 'हरे कृष्ण' नाम के दर्शन किये। हम सभी गुरूभाईयो को गुरूदेव के शरीर पर उभरे नाम देखकर अद्भुत आनंद की प्राप्ति हुई। इस घटना से हम सभी ने स्वयं को भाग्यशाली माना।

'श्री श्री सद्गुरूसंग ' में उल्लेख है कि गोसाँई जी एक बार यमुनातट पर भ्रमण कर रहे थे। उस समय वहाँ उन्हें एक नामांकित हड्डी प्राप्त हुई। श्री गोसाँई जी ने वृंदावन के कतिपय प्रसिद्ध वैष्णव महात्माओं को वह हड्डी दिखलाई। सभी महात्माओं ने बताया कि यह हड्डी नामजप में सिद्ध किसी पहुँचे हुये वैष्णव महात्मा की है। श्रद्धा-पूर्वक सभी ने मिलकर उस हड्डी को ले जाकर फिर से यमुनाजी की पवित्र रेत मे समाधिस्थ कर दिया। सदा नाम स्मरण करने वाले या अजपा-जप में सिद्ध महात्माओं में इस तरह के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

श्री श्री गोसाँई जी के शरीर में इस तरह मंत्रों की अभिव्यक्ति दिखलाई पड़ती थी। इस सम्बन्ध में पूछने पर उन्होंने कहा था–''जब साधक के श्वास-प्रश्वास में चौबीसों घंटे स्वाभाविक रूप से 'नाम क्रिया' चलती है, उस समय नाम के प्रभाव से शरीर कमशः नाममय हो जाता है। साधक की शिरा-उपशिरा में, रक्त कणिकाओंमें तथा शरीर की त्वचा आदि में 'नाम' व्याप्त हो जाता है। यहाँ तक कि शरीर के ऊपर भी 'नाम' की अभिव्यक्ति होती रहती है। अजपा-साधन की सिद्धी उसी समय होती है।''

एक दिन अक्षय-धाम में गीता-पाठ व कीर्तन का आयोजन हुआ। उस दिन भी गुरूदेव बहुत समय तक समाधि में रहे। इस तरह इस बार गुरूदेव के साथ पुरी आकर उनको कई बार समाधिस्थ देखने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुरूदेव हम सभी को लेकर कोलकाता आ गये। आलोक यहां से रायपुर चला गया। मैं कुछ दिन और गुरूदेव के साथ ही रहा।

कोलकाता प्रवास के समय गुरूदेव लगभग २०-२५ गुरूभाईयो के साथ, श्रीमत् स्वामी परमानंद सरस्वती द्वारा स्थापित 'श्री श्री विजयकृष्ण साधन आश्रम' में गये। स्वामी जी ने हमारे गुरुदेव को देखकर साष्टांग प्रणाम किया। गुरूदेव ने भी उन्हें उसी तरह प्रणाम करने के बाद उनका आलिंगन किया। स्वामी जी ने सभी को आश्रम का अवलोकन कराया । आश्रम का परिवेश बहुत ही मनोरम था। वहाँ प्रसाद ग्रहण करने के बाद हमलोग वापस आ गये। एकदिन हमसब गुरूदेव के साथ हिंद मोटर्स, उत्तरपाड़ा, श्रीरामपुर आदि स्थानों पर भी गुरूभाईयों के पास गये।

कोलकाता से मैं गुरूदेव के साथ रामचन्द्रपुर आश्रम आ गया। यहाँ दो चार दिन रूकने के बाद रायपुर वापस आया, क्योंकि छुट्टियां समाप्त होने वाली थी।

रायपुर आने के बाद मैंने एक पत्र माँ मणि को लिखा, जिसके जवाब में माँ मणि ने हमें लिखा–

पुरी, ३-९-६४

प्रिय,

आलोक व अमल, तुम्हारा पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। जो दीक्षा तुम लोगों ने पाया है, उससे निश्चित ही प्रेम-भक्ति प्राप्त होगी। तुम लोगों को कभी भी अंहकार नहीं होगा। गुरू के आदेशानुसार चलने से उनकी कृपा प्राप्ति होगी। श्रीश्री गोसाँई जी एवं श्री श्री माता ठाकुरानी तुम्हें आशीर्वाद दे रहे हैं। माता-पिता की आज्ञा अनुसार चलना। अभी तुम लोगों का कर्म-जीवन है। धर्म-पथ पर चलते हुये कर्म करना। मेरा स्वास्थ्य बहुत खराब चल रहा है। प्रायः अस्वस्थ रहती हूँ। पत्र लिखते रहना। तुम्हारा पत्र मिलने पर प्रसन्नता होती है। श्री श्री ठाकुर का आशीर्वाद तथा श्री श्री गोपाल का प्यार लेना तथा सभी तक पहुँचाना। इति।

शुभाकांक्षी–माँ मणि।

रायपुर वापस आने के बाद हम लोगों की भजन-साधना और अधिक गति से चलने लगी। घर में मन नहीं लगता था। आलोक ने एम० ए० पास कर लिया था। हम लोगों ने विचार किया कि गुरूदेव को विस्तार से पत्र लिखें। इसी समय मुझे बी. एड. करने का योग प्राप्त हुआ, किंतु सोचा कि बी० एड० के अध्ययन में एक वर्ष तथा उसके बाद अनिवार्य रूप से दो वर्ष का शिक्षण कार्य करने से, तीन वर्ष का समय नष्ट हो जायेगा। अतः अपना बी० एड० का फार्म मैंने अन्य शिक्षक को दे दिया। बाद में जब घर में इस संबंध में सबको पता लगा तो मामा जी को कोलकाता सूचना दी गई। मामा जी ने कोलकाता में दास दा के यहाँ गुरूदेव से मिलकर उन्हें बताया कि मैं बी. एड. नहीं कर रहा हूँ। हम लोगों ने भी गुरूदेव को विस्तार सहित पत्र लिखा। कुछ दिनों बाद गुरूदेव का यह पत्र आया–

अगस्त, ६४

कल्याणवरेषु,

प्रिय आलोक व अमल, तुम लोगों का पत्र मिला। तुम दोनों को बी० एड० पास करना ही होगा। अतः बी० एड० पास करो। बाद में क्या होगा–उसकी व्यवस्था किसी और के हाथ में नहीं है, मेरे ही हाथ में है तथा वह व्यवस्था मैं ही करूँगा।

दुर्गापूजा के समय दोनों भाई यहाँ आना। मिलने पर सविस्तार चर्चा होगी।

आशीर्वादक-बाबा

गुरूदेव का पत्र पाकर हमें लगा कि पहले तो गुरूदेव ने कहा था कि आलोक एम० ए० पास कर ले उसके बाद वे हमें बुला लेंगे। अब वे मुझे बी० एड० पास करने के लिये कह रहे है अर्थात और तीन साल नष्ट होंगे। बी० एड० का फार्म जमा करने

की अंतिम तिथि निकल चुकी थी, इस कारण बी० एड० पढ़ना संभव नहीं हो पाया। हमने मन ही मन तय किया की दुर्गापूजा के अवसर पर जब आश्रम जायेंगे तो वहां से फिर वापस घर नहीं लौटेंगे। पहले गुरूदेव से प्रार्थना करेंगे। यदि अनुमति नहीं मिली तो घर वापस न जाकर किसी निर्जन स्थान में रहते हुये भजन-साधना करेंगे। ऐसा निश्चय करके हमलोग दुर्गापूजा के अवसर पर आश्रम पहुँचे।

चतुर्थ परिच्छेद

इस वर्ष आश्रम आने के बाद किसी से भी मिलना अच्छा नही लग रहा था। इसके पूर्व गुरूभाईयों से मिलने पर प्रसन्नता होती थी, परंतु इस बार यह भाव उत्पन्न नहीं होता था। मन ही मन हमेशा यही प्रार्थना चलती रहती थी कि गुरूदेव किसी तरह घर से बाहर निकलवा दें और फिर घर वापस न जाना पड़े।

इस वर्ष दुर्गापूजा के समय आश्रम में बड़े पैमाने पर जन-समागम हुआ। काली पूजा के पश्चात् गुरूदेव ने नवद्वीप धाम की पदयात्रा हेतु कार्यकम तय किया। सभी लोग पदयात्रा में हिस्सा लेने के लिये उत्साह के साथ तैयारियां कर रहे थे। किंतु हम दोनों को उस समय कुछ भी अच्छा नही लग रहा था। हमने एक समय गुरूदेव से प्रार्थना की थी, कि वे हमें हमेशा अपने साथ रखे । किंतु इस बार आश्रम आने के बाद विचार करके देखा कि आश्रम में रहकर भी सदा गुरूदेव के निकट नहीं रह सकते। आश्रम में किसी न किसी कार्य का दायित्व सेवकों पर रहता था और गुरूदेव भी प्रायः आश्रम से दूर, भ्रमण पर चले जाते थे। गुरूदेव की अनुपस्थिति में आश्रम प्राणहीन लगता था। उस समय आश्रम में विभिन्न विचारों के लोगों के साथ रहने से, भजन-साधना की अपेक्षा परनिंदा, परचर्चा आदि की संभावना ज्यादा रहती थी। हमने सोचा हमारा मन अभी चंचल है। आश्रम में गुरूदेव के न रहने पर प्रतिकूल परिवेश में मन की चंचलता और अधिक बढ़ जायेगी। मन में यही विचार चलते रहे।

पूजा के बाद आश्रम खाली हो गया। उसी समय गुरूदेव के पास एकदिन हम लोग गये एवं मैंने कहा–हमारी प्रार्थना थी कि तुम जब तक देह में हो, हमलोग तुम्हारे साथ ही रहेंगे तथा बाद में किसी निर्जन स्थान पर जाकर साधना करेंगे। हमारी यह प्रार्थना पूर्ण होने का तुमने आशीर्वाद भी दिया था। किंतु अब हमारे मन में विचार आता है कि आश्रम का जैसा परिवेश है, उसमें यहाँ स्थायी तौर पर रहना संभव नहीं होगा। अतः हमलोग अपनी प्रार्थना में कुछ परिवर्तन करना चाहते ह। गुरूदेव हमारी बातें को सुनकर हँसते हुये कहा– अच्छा, बताओ तुमलोग क्या चाहते हो? हमने कहा–''हमलोग किसी निर्जन स्थान में रहकर भजन-साधना करना चाहते हैं और बीच-बीच में तुम्हारे पास रहकर सत्संग भी करना चाहते हैं। हमारी यह प्रार्थना क्या पूर्ण होगी?'' गुरूदेव ने प्रसन्न होकर कहा–**''ठीक है, ऐसा ही होगा। तुम लोगों की छुट्टियाँ कितने दिन की है? '' आलोक ने बताया–''हमलोग इस बार निश्चय करके आये हैं कि घर वापस नहीं जायेंगे। किसी निर्जन स्थान पर जाकर साधना करेंगे।''**

हम लोगों को भय था कि गुरूदेव हमारी बात सुनकर नाराज होंगे क्योंकि इसके पहले उनके द्वारा बी. एड. पास करने के लिये लिखा गया था। हमें आश्चर्य हुआ कि गुरूदेव ने हमारी बात ध्यान से सुनी और कहा–"अच्छा ठीक है, कहाँ रहने का विचार है?" मैंने कहा–"हम लोगों के लिये जो स्थान उपयुक्त हो तुम बतलाओ।"

गुरूदेव ने कहा–"हरिद्वार ठीक रहेगा। आत्मानंद (हमारे गुरूभाई) हरिद्वार में भोलागिरि आश्रम में है। तुमलोग वहाँ चले जाओ। लेकिन वहाँ अभी जाना चाहोगे या नवद्वीप पदयात्रा के बाद जाओगे?" इस पर आलोक ने कहा– पदयात्रा में हमलोग कभी नहीं गये हैं । इसलिये तुम्हारे साथ पदयात्रा में जायेंगे, ऐसी इच्छा है।

गुरूदेव ने फिर पूछा की तुम लोगों की छुट्टियां कितने दिन तक है। आलोक ने कहा छुट्टियां ८ नवम्बर तक है। किंतु अब हमलोग घर नहो जायेंगे, निश्चित है।

गुरूदेव ने कहा–"ठीक है, आत्मानंद नवद्वीप पदयात्रा के लिये आ रहा है। पदयात्रा के बाद तुमलोग उसके साथ हरिद्वार चले जाना।"

गुरूदेव से घर छोड़ने की सहज रूप से अनुमति प्राप्त होने पर हम लोगों को अपार आनंद प्राप्त हुआ। एक-दो दिन बाद मन में विचार आया कि नवद्वीप यात्रा में बहुत लोग रहेंगे। इस कारण रास्ते में नियम पालन करना संभव नहीं होगा, जिसके कारण शरीर भी अस्वस्थ हो सकता है। मन में अभी निर्जन स्थान में जाकर साधना करने का जो तीव्र भाव उत्पन्न हुआ है वह विभिन्न प्रकार के लोगों के साथ रहने से समाप्त हो सकता है। गुरूदेव ने जब निर्जन स्थान में साधना करने की अनुमति दे दी है, तब तत्काल ही हरिद्वार चले जाना ठीक होगा। ऐसा सोचकर हमलोग गुरूदेव के पास आकर बैठ गये। उस समय मन ही मन केवल यही प्रार्थना चल रही थी कि 'गुरूदेव किसी तरह हमें खींच लें, जिससे घर वापस जाना न पड़े।' गुरूदेव उस समय पत्र लिख रहे थे। हमारी ओर देखकर उन्होंने कहा– तुम लोगों ने क्या तय किया? आलोक ने कहा हम लोगों ने तय कर लिया है कि हम नवद्वीप पदयात्रा में सम्मिलित नही होंगे। इसके पहले ही यहाँ से हरिद्वार चले जायेंगे। हम लोगों की बात सुनकर गुरूदेव नें कई तरह की बात करते हुये अंत में कहा–**"तपस्या के लिये तो बहुत से स्थान हैं–देवघर में त्रिकूट पहाड़ भी निर्जन स्थान है । यदि तुमलोग चाहो तो मुराडि स्टेशन के पास जो काली मंदिर है, वहां भी तुम्हारे भजन-साधना की व्यवस्था की जा सकती है। असली बात यह है कि लक्ष्य स्थिर करके भजन-साधना करनी होगी और यदि लक्ष्य स्थिर हो जाये तो घर पर रहकर भी भजन-साधना की जा सकती है।"** मैंने तुरंत कहा–"अब हमलोग घर नहीं जायेंगे। हम लोगों की साधना के लिये जो भी स्थान तुम उपयुक्त समझो, हमें बता दो। हमलोग वहीं रहेंगे।" तब गुरूदेव ने कहा–**"जैसा निर्जन स्थान तुमलोग चाहते हो उस तरह का स्थान ऋषिकेश ही हो सकता है। वहाँ पर काली कमली का अन्नक्षेत्र**

हमेशा चलता है। वे लोग साधुओं के खाने की व्यवस्था करते हैं।''

दिनांक २६ अक्टूबर, १९६४ ई. को हमलोग गुरूदेव के पास बैठे थे। मन में वही प्रार्थना चल रही थी। गुरूदेव से कुछ भी कहने का साहस नही कर पा रहे थे और स्वयं को अत्यन्त असहाय अनुभव कर रहे थे। अकस्मात् गुरूदेव ने स्वयं ही पूछा–''तुम लोगों ने कब जाना तय किया है। नवद्वीप पदयात्रा के पहले या बाद में?''

आलोक ने कहा–''जैसा तुम कहोगे हमलोग वैसा ही करेंगें।''

गुरूदेव ने कहा–''नहीं, यह तुम लोगों की इच्छा पर निर्भर है।'' तब आलोक ने कह दिया कि हमलोग नवद्वीप पदयात्रा के पहले ही जाना चाहते हैं।

गुरूदेव ने कहा–''**ठीक है, हरिद्वार जाकर पहले आत्मानंद से मिलो फिर ऋषिकेश जाना। वहां काली कमली आश्रम में साधुओं के रहने के लिये अनेक कुटियाँ है। अन्नक्षेत्र से भोजन की व्यवस्था भी है। अभी जाने से आत्मानंद से मुलाकात भी हो जावेगी। तुमलोग चाहो तो आज ही निकल सकते हो।''**

गुरूदेव ने थोड़ी देर बाद पूछा–किस ट्रेन से जाओगे? मैंने कहा कि हमारे पास रेल्वे की समय-सारणी नही है, अतः ट्रेन का समय हम लोगो को मालूम नहीं है। हम लोगों की बात सुनकर गुरूदेव ने समय-सारणी निकालकर देखते हुये बताया कि आसनसोल जाकर, वहाँ से मध्यरात्रि में दून एक्सप्रेस से जा सकते हो।

हम लोगों ने यह सोचकर कि शाम की ट्रेन से आसनसोल चले जायेंगे, अपने कमरे में आकर सामान जमाना शुरू कर दिया। इस बार आश्रम आने के बाद हमारे पास जो थोड़े से रूपये थे, उसे हमने खर्च कर दिया था। घर से निकलने के बाद, हमने अपने पास कुछ भी न रखना और केवल भगवान की कृपा पर निर्भर होकर रहना है, यह तय कर लिया था। सामान समेटते समय हमलोग यह विचार कर चिंतित हो गये कि गुरूदेव ट्रेन से जाने के लिये कह रहे हैं और हमारे पास किराये के लिये पैसे नहीं हैं। हमने विचार किया कि पैसे न होने संबंधी बात हमें गुरूदेव से बता देनी चाहिये थी। क्योंकि रूपये के बिना ट्रेन में जाना संभव नहीं है। गुरूदेव को, रूपये न होने संबंधी बात बताने पुनः गुरूदेव के पास पहुँचे। गुरूदेव के कमरे में पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके हम बैठ गये। गुरूदेव ने पूछा–''क्या हुआ? क्या तुमलोग कुछ कहना चाहते हो?'' आलोक ने कहा–''हमारे पास रूपये नहीं है।''

गुरूदेव ने कहा–''**तब कैसे जाओगे? पूजा के समय तुम लोगों ने क्यों नहीं बताया। उस समय यहाँ अनेक लोग आये थे, जिनसे कहकर गाड़ी-भाड़े की व्यवस्था कराई जा सकती थी। अब सब चले गये हैं। मैं कहाँ से रूपये लाऊँ? दुकान वाले को भी बहुत रूपये देना है। थोड़ी देर रूककर फिर गुरूदेव ने कहा कि एक काम किया जा सकता है, अभी तुमलोग नवद्वीप चलो वहाँ से लौटकर रायपुर चल जाओ।**

रायपुर से रूपये लेकर शिवरात्रि उत्सव के समय यहाँ वापस आकर, यहाँ से हरिद्वार चले जाना।'' इस पर मैंने कहा– हम लोग अब रायपुर जाना ही नहीं चाहते हैं।

गुरूदेव ने कहा–**''फिर क्या करें? (थोड़ा रूक कर) एक काम करो, अभी नवद्वीप यात्रा तक आश्रम में रूको। पदयात्रा के समय भक्तगण आयेंगे। उनसे रूपये लेकर तुम लोगों के हरिद्वार जाने की व्यवस्था हो जायेगी।''**

गुरूदेव की यह बात सुनकर हमलोग चुप हो गये। उस दिन फिर जाना टल गया।

दूसरे दिन सुबह स्नान आदि से निवृत्त होकर हमलोग प्रतिदिन की तरह पहाड़ के किनारे गये और आपस में विचार करते हुये इस नतीजे पर पहुँचे कि **'गुरूदेव निश्चित रूप से हम लोगों की परीक्षा ले रहे हैं। पिछले वर्ष जनसभा में गुरूदेव ने कहा था कि सत्कार्य में रूपया का अभाव नहीं होता। यदि मैं चाहूँ तो रूपयों की वर्षा हो जायेगी। किंतु अब वे ट्रेन के सामान्य भाड़े की व्यवस्था करने में भी असमर्थता बता रहे हैं। बहुत देर तक विचार मंथन करने के उपरांत हमलोग अपनी भूल समझ गये। हमने सोचा कि हमने घर बार छोड़कर साधु बनने का निश्चय कर लिया है। निर्जन में तपस्या करने के लिये जाना चाहते हैं और गाड़ी-भाड़े की चिंता कर रहे हैं। हम लोगों ने निश्चित किया कि भगवान की कृपा पर निर्भर होकर पैदल निकलना ही उचित होगा। यदि रास्ते में ट्रेन-भाड़े की व्यवस्था हो जावेगी तो ठीक है, अन्यथा पैदल ही आगे बढ़ते जायेंगे।** उसी समय हमलोग गुरूदेव के पास आकर उन्हें प्रणाम कर बैठ गये। कमरे में दो लोग और बैठे थे। गुरूदेव उस समय पत्र लिख रहे थे। हमलोग गुरूदेव से कुछ भी कह नहीं पा रहे थे। थोड़ी देर में गुरूदेव ने जब हमारी ओर देखा तो आलोक ने उनसे कहा– हमलोग आज ही हरिद्वार के लिये निकलेंगे। गुरूदेव ने कहा– ठीक है। अभी तो कोई ट्रेन नहीं है। तब मैंने कहा– हमलोग पैदल ही हरिद्वार जायेंगे ऐसा निश्चय किया है। गुरूदेव ने पूछा– कहाँ होते हुये जाओंगे? हम ने बताया कि यहाँ से रेल लाईन के साथ-साथ आसनसोल पहुँचेंगे और वहाँ से जी० टी० रोड से जाकर हरिद्वार की तरफ निकल पड़ेंगे। तब गुरूदेव ने कहा– ऐसा न करते हुये एक काम करो, यहाँ से रघुनाथपुर चले जाओ। वहाँ से चेलियामा होकर आगे जाने पर जी० टी० रोड मिल जायेगा। इस तरह जाने से यात्रा की दूरी कम हो जायेगी। उस समय हम लोगों को यह भी मालूम नहीं था कि रघुनाथपुर एवं चेलियामा कहां है? किंतु गुरूदेव की बात सुनकर हमलोग तुरंत उठ खड़े हुये और उनके पास जाकर, जाने के उद्देश्य से उन्हें प्रणाम किया। हमें अचानक प्रणाम करते देखकर वे चकित से हो गये और बोले–क्या हुआ ? आलोक ने कहा– हमलोग इसी समय निकल रहे हैं।

गुरूदेव ने डांटते हुये कहा–**''तुम लोगों को बहुत जल्दी हो रही है! यह ठीक**

नहीं है। यहाँ से हरिद्वार १२०० मील है और तुम लोग पैदल जाना चाहते हो। यह कैसी भावुकता है? चुपचाप बैठ जाओ । तुमलोग अपने बारे में क्या चिंता करते हो? मैं तुम लोगों के बारे में तुमसे ज्यादा चिंतित हूँ ?''

गुरूदेव की डांट खाकर हमलोग पुनः अपनी जगह पर बैठ गये और मन ही मन प्रार्थना करनें लगे कि गुरूदेव कुछ ऐसा करो कि अब घर वापस न लौटना पड़े।

हमने देखा कि गुरूदेव ने पत्र लिखना बंद करके एक बार तीक्ष्ण दृष्टि से हम लोगों को देखा और फिर ध्यानस्थ हो गये। कुछ क्षण बाद वे स्वाभाविक रूप से पुनः पत्र लिखने लगे। कमरे में उस समय केवल एक-दो गुरूभाई-बहिन ही थे। वे हमें इस तरह की भावुकता त्याग करने एवं भावावेश में आकर कोई कार्य न करने के लिये समझा रहे थे। हमने उनकी किसी भी बात का उत्तर नहो दिया, क्योंकि हम जानते थे कि ये लोग हमारे मन की अवस्था नहीं समझ सकते और हम यह भी जानते थे कि एकमात्र गुरूदेव ही हमारे मन की अवस्था जानते हैं और जो कुछ भी करना है, वे ही करेंगे। कुछ पत्र लिखने के बाद गुरूदेव ने आलोक को पास बुलाया व डेस्क के नीचे के दराज से २० रूपये निकाल कर आलोक को दिये। आलोक ने देखा कि डेस्क के नीचे बहुत सारे रूपये रखे हैं। गुरूदेव ने २० रूपये के साथ ३ पत्र भी आलोक को दिये। गुरूदेव ने हमसे कहा कि सबसे पहले एक पत्र झरिया के श्री शरत चकवर्ती के पास जाकर उन्हें देना। यह पत्र पाकर श्री शरद चकवर्ती हम लोगों को बनारस जाने की टिकिट की व्यवस्था कर देंगे। बनारस जाकर हमें 'श्री श्री विजयकृष्ण मठ' में ठहरने के लिये गुरूदेव ने कहा और यह भी कहा कि वहां गुरूभाई नलिनी मुखर्जी से मिलकर उन्हें दूसरा पत्र देना। वे कानपुर तक जाने की व्यवस्था कर देंगे। कानपुर जाकर दरवेश जी के शिष्य श्री ब्रजेन सरकार से मिलकर उन्हें तीसरा पत्र देने के लिये गुरूदेव ने कहा, जो हमारे लिये हरिद्वार जाने की व्यवस्था करेंगे। इस प्रकार गुरूदेव ने हम लोगों की हरिद्वार जाने की सारी व्यवस्था कर दी। इसे देखकर हमारे मन को जो आनंद प्राप्त हुआ, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। हमें लगा कि कृपामय गुरूदेव ने आज हमें संसार के बंधन से मुक्त कर दिया है। हम लोगों ने गुरूदेव को अत्यंत भक्तिभाव से प्रणाम किया। गुरूदेव ने भी अत्यधिक स्नेह के साथ हमें आशीर्वाद देते हुये कहा कि किसी बात की चिंता न करना। ऋषिकेश में साधुओं के रहने व खाने की व्यवस्था आसानी से हो जाती है। तभी मैंने अचानक एक प्रशन गुरूजी से किया– "वहाँ जाकर हमलोग क्या करेंगे?" मैं पूछना तो चाहता था कि वहाँ जाकर हमें कैसे रहना होगा। किंतु आनंद के अतिरेक के कारण यह पूछा बैठा कि वहाँ क्या करेंगे। गुरूदेव ने मेरा प्रश्न सुनकर बड़े स्नेह के साथ कहा–**''वहाँ जाकर सदा भजन-साधना में रत रहना, वहाँ और क्या करना है!''** तब मैंने फिर पूछा–हमलोग यह जानना चाहते है कि क्या वहाँ हमें स्वपाक

आहार ग्रहण करना होगा? गुरूदेव ने कहा–''**वहाँ जाकर खाना बनाते रहोगे तो भजन-साधना कब करोगे। वहां अन्नक्षेत्र में दाल-रोटी भिक्षा में मिलेगी। तुमलोग यही लेकर हमेशा साधना करने की चेष्टा करना। हरिद्वार जाकर अपने कपड़े गेरूवे रंग में रंग लेना, क्योंकि वहा गेरूवे कपड़े वालों को सहज ही भिक्षा मिलती है।**''

इसप्रकार गुरूदेव ने हमारे लिये स्वयं चिंता करते हुये हमारी सभी प्रकार की व्यवस्था कर दी। हमलोग २९ अक्टूबर, १९६४ ई. को आसनसोल होते हुये झरिया पहुँचे और श्री शरद काका (दरवेश जी के शिष्य) के घर जाकर उन्हें गुरूदेव का पत्र दिया। शरद काका ने बड़े स्नेह से हमें कुछ दिन अपने यहां रोकने के लिये आग्रह किया। किंतु हमारा हरिद्वार शीघ्र पहुँचने का आग्रह देखकर उन्होंने हमारे बनारस जाने की तत्काल व्यवस्था कर दी। श्री दीपेन्द्र भट्टाचार्य (गुरूभाई) उस समय वहीं थे। वे भी माँ मणि की कृपा से ही गुरूदेव के सम्पर्क में आये थे। हम लोगों से भी उनका बहुत पहले से ही अंतरंग संबंध था। वे हमारे साथ धनबाद स्टेशन तक आये और टिकिट खरीदकर हमें ट्रेन मे बैठाकर वापस चले गये।

हमलोग रात करीब साढ़े दस बजे बनारस पहुँचे। सोनारपुरा रोड और हरिश्चंद्र घाट रोड के मोड़ के पास ही श्री श्री विजयकृष्ण मठ है। हमलोग सीधे मठ पहुँचे। मठ के सेवक ने बहुत रात हो जाने से मठ का दरवाजा नहीं खोला। विवश होकर हमलोग दशाश्वमेध घाट आये और रास्ते के किनारे एक बरामदे में खाली स्थान पर कंबल बिछाकर रात गुजारी। मन ही मन श्री श्री गोसाँई जी व दरवेश जी पर क्रोध भी आया कि उनका नाम लेकर ही हम लोगों ने घर छोड़ा है और उन्हीं के नाम पर स्थापित मठ में हमें आश्रय नहीं मिला। सुबह गंगास्नान करके श्री विश्वनाथ जी, श्री अन्नपूर्णा जी व श्री गणेश जी आदि के दर्शन करते हुये हम फिर से मठ पहुँचे। क्योंकि श्री नलिनी मुकर्जी के घर जाना था जिनका पता वहीं से मिलता। उस समय मठ के महंत स्वामी नारायण दास जी थे। हमसे रात्रि के व्यवहार की जानकारी मिलने पर महंत जी ने उस सेवक को बुलाया जिसके पास मठ के मुख्यद्वार की चाबी थी। महंत जी ने उसे काफी डांटा और हमसे क्षमा मांगने के लिये उसे कहा। सेवक भी दरवेश जी के शिष्य थे। हमारे सामने एक वृद्ध को हमारे कारण इस तरह डांटखाते देखकर हमारा मन खिन्न हो गया। मन में लगा कि श्री श्री गोसाँई जी के ऊपर क्रोध आने के कारण ही यह अप्रिय घटना घटी है। हमने महंत जी से श्री नलिनी बाबू का पता मालूम किया और उनसे मिलने चले गये। नलिनी बाबू ने हमारे कानपुर जाने की व्यवस्था कर दी।

कानपुर में श्री ब्रजेन सरकार (श्री दरवेश जी के शिष्य) के यहां हमलोग पहुँचे। हमारे पहुँचने के पहले ही वहाँ गुरूदेव का पत्र पहुँच चुका था। ब्रजेन काका ने वह पत्र हमें दिखाया। गुरूदेव ने पत्र में लिखा था–''**तीव्र वैराग्यवान मेरे दो शिष्य**

तपस्या करने हिमालय जा रहे ह । कानपुर में मेरे सभी शिष्यगण के साथ इनका परिचय करवाना और सब मिलकर इनके हरिद्वार जाने की व्यवस्था करवा देना।'' ब्रजेन काका ने गुरूदेव का पत्र पाकर सबको खबर दे दी थी। कानपुर में हमलोग दो दिन रूके। यहां ज्ञात हुआ कि बिठूर में श्री सीतारामदास ओंकारनाथ जी पधार रहे हैं। हम लोगो ने उनके दर्शन किये एवं उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। उन्होंने हर्षपूर्वक हमारी बातें सुनी और मध्यान्ह प्रसाद ग्रहण करने के लिये कहा। इस प्रकार अचानक हम लोगों को उनका दर्शन व आशीर्वाद प्राप्त हुआ, जिससे हमें बहुत आनंद आया।

कानपुर से लखनऊ होकर हमलोग हरिद्वार पहुँचे। यहाँ पर भोलागिरि धर्मशाला मे ठहर गये। यहाँ आकर मालूम हुआ कि आत्मानंद जी (गुरूभाई) कुछ दिन पहले ही रामचन्द्रपुर चले गये हैं। यहाँ हम लोगों ने गुरूदेव के निर्देशानुसार अपने लिये वस्त्र गेरूवे रंग में रंग लिये। पाँच नवंबर को हमलोग हरिद्वार से लक्ष्मण झूला, ऋषिकेश आ गये। यही गंगा के किनारे अपने श्वेत वस्त्र बदलकर गेरूवे वस्त्र धारण कर लिये और फिर हमलोग स्वर्गाश्रम पहुँच गये। हमने सुना था कि स्वर्गाश्रम के पास नीलकंठ पहाड़ पर गुरूदेव ने पूर्वजन्म में तपस्या की थी। उस समय स्वर्गाश्रम एकदम निर्जन स्थान था। वहां कोई दुकान या मकान नही थे। कुछ मंदिर, आश्रम, गीताभवन और साधुओं के रहने के लिये कुटियां बनी हुई थी। वहाँ काली कमली बाबा का अन्नक्षेत्र था। जहाँ साधुओं के लिये भोजन की व्यवस्था हो जाती थी। काली कमली ट्रस्ट के प्रबंधक से हमलोग मिले व अपना उद्देश्य बताया। उन्होंने कहा कि अभी तो यहां कोई कुटिया खाली नहीं है । फिर भी अतिथि होने के कारण, हमारे तीन दिन ठहरने के लिये एक कमरे और अन्नक्षेत्र में भिक्षा की व्यवस्था प्रबंधक ने कर दी। यहाँ रहने की स्थाई व्यवस्था न होने से हमलोग चिंताग्रस्त हो गये।

शाम को एक वृद्ध साधु से मुलाकात हुई। उन्होंने हमारा परिचय प्राप्त किया। हमने उन्हें परिचय देते हुये ऋषिकेश आने का उद्देश्य बताया। तब उन्होंने कहा कि लक्ष्मणझूला से ८-१० किलोमीटर दूर 'ब्रह्मपुरी' नामक एक निर्जन स्थान है। उन्होंने वहाँ अपने एक परिचित साधु का नाम बताकर उनसे मिलने के लिये कहा। इस प्रकार हमलोग साधु के अकस्मात् मिलने व उनके सहयोग से आनंदित हो गये। दूसरे दिन लक्ष्मणझूला से बद्रीनाथ जाने वाले रास्ते पर लगभग १० किलोमीटर पैदल चलने के बाद हमलोग ब्रह्मपुरी पहुँच गये। गंगा के किनारे यह स्थान बड़ा ही मनोरम है। यहाँ साधुओं के रहने के लिये १०-१५ कुटियां है तथा श्री नारायण जी का एक मंदिर भी है। यहाँ लगभग ३०-४० साधुओं के लिये अन्नक्षेत्र भी है। हमलोग वहाँ पहुँचकर ऋषिकेश वाले साधु के परिचित व्यक्ति से मिले। उन्होंने हमें एक कमरा दिखाया और कहा– 'अभी यही एक कमरा खाली है। आपलोग यहाँ रह सकते हैं।' हमने कमरे के

अंदर देखा कि एक सुन्दर एवं पक्का कमरा है, जिसमे दो खाट बिछी हुई है। कमरे में एक खिड़की व एक दरवाजा हैं। खाट पर बैठकर खिड़की व दरवाजे से पवित्र गंगा के दर्शन होते हैं । इतना मनोरम स्थान पाकर हम प्रसन्न हो गये। नारायण मंदिर से हमारे प्रसाद की व्यवस्था भी हो गयी। हमे ऐसा लग रहा था कि जैसे गुरूदेव ने पहले से ही हमारे लिये सब व्यवस्था कर रखी है। हम यहां आकर रहने लगे। मंदिर के अन्नक्षेत्र से एक बार भोजन मिलता था। हमलोग प्रतिदिन छः रोटी और उसी अनुपात में दाल ले आते। तीन रोटी और दाल मध्यान्ह मे, डेढ़ रोटी शाम को और बाकी डेढ़ रोटी दूसरे दिन सुबह गंगाजल के साथ ग्रहण करते थे। यहाँ ठंड बहुत अधिक थी। गरम वस्त्रों के नामपर हमारे पास केवल दो कंबल थे। हमलोग रात्रि के प्रथम प्रहर में सो लेते थे। क्योंकि अर्धरात्रि से ठंड बढ़ने के कारण नींद नहीं आती थी। अतः बाध्य होकर शेष रात्रि नाम-जप करते हुये व्यतीत करते थे। मन में आता था कि तपस्या करने के लिये साधु इसीलिये हिमालय पर रहते हैं। यहाँ का ठंडा व निर्जन परिवेश भजन-साधना के लिये साधक को बाध्य कर देता है। क्योंकि यहाँ सदा नाम लेकर पड़े रहने के अलावा अन्य कोई कार्य भी नही है।

लगभग दो महिने तक भजन-साधना अच्छी तरह होती रही। इसके बाद लगा कि नाम-जप अब ठीक प्रकार से नहीं हो पा रहा है। श्वास-प्रश्वास की ओर मन स्थिर नहीं हो पाता था। अतः लगातार चेष्टा करनी पड़ती थी। इस प्रकार स्वयं की चेष्टा से कुछ न हो पाने पर, स्वयं को असहाय अनुभव करते हुये हमने पुनः गुरूदेव से व्याकुल होकर प्रार्थना करना प्रारंभ किया। अपने आप प्रार्थना होने लगी कि 'आप हमें देख रहे हैं, स्वयं की चेष्टा से कुछ नहीं हो पा रहा है। हमें जो कुछ करना चाहिये, उसे आप ही करवायें।' उसके बाद ऐसा अनुभव हुआ कि 'जो करना है, वह गुरूदेव ही करवा रहे हैं।' मन में स्वतः प्रार्थना आने लगी कि 'तुम सब कर रहे हो'। इस तरह जब प्रतिपल मन के भाव परिवर्तित हो रहे थे तब एक दिन ऐसा लगा जैसे अंदर से कोई कह रहा है कि **''तुम कर रहे हो! तुम कर रहे हो!! क्या सोचते हो? जो कुछ करना है, वह मैं ही कर रहा हूँ।''** यह भाव आते ही हमारे अहं का अस्तित्व मिट सा गया और अनुभव हुआ कि हम स्वयं दृष्टा या साक्षी हैं।

उसी समय मन में प्रश्न पैदा हुआ कि तुम कौन हो? मन से ही उत्तर प्राप्त हुआ कि 'मैं गुरू हूँ।' फिर प्रश्न हुआ कि दर्शन क्यों नही होते? उत्तर मिला–**'वृन्दावन जाकर राधाकुंड या अन्य स्थान पर धरना देकर पड़े रहो। सब कुछ हो जावेगा।'**

दिनरात इसी तरह से विभिन्न प्रश्न मन में आते और उनका उत्तर भी प्राप्त होता। कभी-कभी यह भी लगता कि यह सब क्या हो रहा है? क्या यह सभी केवल मन की कल्पना है? यह भी लगता कि कहीं हम लोगों का दिमाग तो खराब नहो

हो गया है? रात को नीद नही आती थी। नाम-जप हो रहा है या नहीं, यह भी समझ में नही आता था। दिनरात केवल प्रश्न और उत्तर ही मन में आते रहते थे। यह आश्चर्यजनक लगा कि दोनों की मानसिक अवस्था एक ही तरह थी।

गुरूदेव को मन की इस अवस्था के संबंध में हमने पत्र लिखकर पूछा कि इस स्थिति में हम क्या करें? १८ जनवरी को पत्र पोस्ट करने हम लक्ष्मणझूला आये। मन से प्राप्त निर्देशानुसार हमने पहले शिवानंद आश्रम के अध्यक्ष और उसके बाद परमार्थ निकेतन के महंत से मिलकर अपनी इस अवस्था के बारे मे उन्हें बताया। उन्होंने हमारी बात सुनकर कहा कि गुरूदेव को पत्र लिखो और उनके निर्देशानुसार चलो। परमार्थ निकेतन के महंत ने हमें रात्रि के समय अपने आश्रम में रूकने के लिये कहा। उन्होंने हमें वहाँ के प्रबन्धक से मिलकर अपने कमरे एवं भोजन की व्यवस्था करने के लिये कहा। उस समय बहुत तेज ठंड थी। हमारे पास कंबल भी नहीं थे। हमलोग सोच ही रहे थे कि प्रबंधक से मिलें, तभी अंदर से निर्देश प्राप्त हुआ कि 'तुम्हें किसी से भी कुछ नहीं मांगना है। सब व्यवस्था अपने आप ही होगी।' हम लोगों ने सोचा कि चलो अच्छा हुआ 'अब परीक्षा हो जायेगी कि जो निर्देश अंतर से प्राप्त होते ह, वे सही हैं या नहीं?' आश्रम के अंदर एक निर्जन स्थान देखकर हमलोग बैठ गये। उस समय अंधेरा हो गया था और ठंड भी बहुत अधिक थी। आश्रम में संध्या आरती आदि शुरू हो गयी थी, किंतु हम वहीं बैठे रहे। आरती के बाद एक सज्जन हमारे पास अचानक आये और हमें ठंड में बैठा देखकर भोजन के लिये ले गये। भोजन के बाद वे हमें अपने साथ एक कमरे में ले गये। वहाँ कंबल आदि की व्यवस्था भी उन्होंने कर दी। इस प्रकार बिना मांगे ही सारी व्यवस्था हो गयी। उस रात को भी फिर नींद नहीं आयी। केवल प्रश्न और उत्तर में ही रात्रि व्यतीत हो गई। इस बार प्रश्न और उत्तर के माध्यम से वहाँ के महंत के संबंध में बहुत से निर्देश प्राप्त हुये और यह भी ज्ञात हुआ कि वे आध्यात्मिक किस अवस्था में हैं। प्रातःकाल प्राप्त निर्देशों के अनुसार हमलोग बहुत देर तक गंगा किनारे चहल-कदमी करके वापस आये। उस समय ठंड की जरा भी अनुभूति नहीं हुई, जबकि हमारे पास उस समय गर्म कपड़े नहीं थे। रात्रि में प्राप्त निर्देशों के अनुसार हम महंत से मिले और उन्हें उनके संबंध में प्राप्त निर्देश को बतलाया। महंत ने हमारी बातें पूरे मनोयोग से सुनी और गुरूदेव के रामचन्द्रपुर स्थित आश्रम का पता भी लिख लिया ।

इसके बाद हम ब्रह्मपुरी वापस लौट आये। कुछ दिनों बाद हमारी अस्थिरता और बढ़ गयी। जो निर्देश हमें अंतर से प्राप्त होते थे। उसमें भी व्यवधान पैदा होने लगा। इस कारण मन में विश्वास एवं अविश्वास का द्वंद प्रारंभ हो गया। प्राप्त निर्देश के अनुसार हम वहां दो अन्य साधुओं से मिले। उन्होंने बताया कि सब ठीक है। गुरूदेव

के निर्देशानुसार चलो। गुरूदेव का पत्र प्राप्त न होने से हम लोगो की अस्थिरता और बढ़ गई। अब ब्रह्मपुरी मे और रूकने की इच्छा समाप्त हो गई थी। क्योंकि उस समय हमारे मन में यह विचार आ रहा था कि यदि वास्तव में यह हमारी कोई विशेष अवस्था है और प्राप्त निर्देश सही है तो हमें वृंदावन में राधा कुंड पहुँचना चाहिये। और यदि निर्देश मन का भ्रम मात्र है, तब भी गुरूदेव से बिना मिले हमारा संशय दूर नहीं होगा। यही सब सोचकर हमलोग ब्रह्मपुरी से पैदल ही वृंदावन के लिये निकल पड़े। हम लोगों ने दिल्ली होकर वृंदावन जाना निश्चित किया। गुरूदेव को सब बातों से अवगत कराते हुये उन्हे दिल्ली पत्रोत्तर देने के लिये लिखा। इस प्रकार लगभग १७० मील का सफर पैदल चलकर हमलोग दिल्ली आ गये। रास्ते में प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बिना मांगे ही भोजन एवं ठहरने की व्यवस्था होती गई। इस समय अंतर से प्राप्त निर्देश अधिकांशतः सत्य हो रहे थे।

इससे पहले मैं केवल एक बार दिल्ली आया था। यहाँ के रास्तों एवं स्थानों के बारे मे कुछ भी याद नहीं था। प्राप्त निर्देशों के अनुसार पहले बिड़ला धर्मशाला में ठहरे और उसके बाद हम लोगो ने मजूमदार दा का मकान खोज निकाला। वे हमारे गुरूभाई थे और हमें बहुत स्नेह करते थे। हमने उनसे मिलकर उन्हें सारी बातें बताई। गुरूदेव का पत्र तब तक नही आया था। उन्होंने और हमने पुनः गुरूदेव को पत्र लिखकर जानना चाहा कि अब हमें क्या करना उचित होगा? इसी समय दिल्ली में एक गुरूभाई के माध्यम से हमारी जानकारी, हमारे घर रायपुर पहुँच गयी। हमलोग कुछ दिन तक गुरूदेव के पत्र की प्रतीक्षा करते हुये मजुमदार दा के घर पर ही रहे। इसी समय रायपुर से, रायपुर आने के आग्रह का पत्र एवं मार्ग व्यय प्राप्त हुआ। जिस दिन रायपुर से टी. एम. ओ. प्राप्त हुआ। उसी दिन रामचन्द्रपुर आश्रम से गुरूदेव का टेलीग्राम आया। जो इस प्रकार था–

"Send Alok and Amal immediately Ashram".

हमने रायपुर पत्र लिखकर सूचित किया कि हमलोग रामचन्द्रपुर आश्रम जाने के बाद रायपुर पहुँचेंगे और तभी सबसे मिलेंगे। दिल्ली में धीरेन काका, नरेश काका आदि साधकों से मुलाकात हुई। धीरेन काका ने हमें बताया कि उन्हें भी ऐसे ही अंतरआत्मा की आवाज सुनाई पड़ती है। उन्होंने हमें बताया कि एक दिन पूर्व उन्हें रात्रि में यह आवाज सुनाई दी कि तुम लोगों के साथ जो भी घटित हो रहा है वह सब ठीक ही है। अंततः हमलोग गुरूदेव से मिलने रामचन्द्रपुर आश्रम पहुँच गये।

आश्रम में प्रवेश करते ही दूर से देखा कि गुरूदेव, आश्रम के मुख्य द्वार पर ही खड़े हैं। हमने पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और तत्काल यह प्रश्न भी किया कि हम लोगों के साथ जो घटित हो रहा है वह सही है या मन का भ्रम है? गुरूदेव ने उत्तर दिया–**''तुम लोगों के ऋषिकेश से लिखे पत्र का उत्तर मैंने दिया था। तुम लोगों**

को वहीं रहकर उत्तर की प्रतीक्षा करना उचित था। खैर, तुम लोगों के साथ सब ठीक चल रहा है। जो भी घटित हो रहा है वह सब लिखकर रखना।''

हमलोगों ने फिर प्रश्न किया कि हमें हर समय ऐसा प्रतीत होता है कि हम जो कुछ भी कर रहे हैं वह हम नहीं, बल्कि तुम ही कर रहे हो। ब्रह्मपुरी से दिल्ली तक पैदल आते समय मार्ग में शुचि-अशुचि का ध्यान नहीं रखा जा सका। जूठा आदि भी खाना पड़ा। इस समय साधना के नियम आदि का पालन भी हमलोग नहीं कर सके। यह सब ठीक है या गलत? गुरूदेव ने जोर देते हुये कहा–''**कह तो दिया, सब ठीक है। सब लिखते जाना। ऐसी अवस्था ही आवश्यक है।**''

आश्रम में कुछ दिन पहले माघ पूर्णिमा पर गुरूदेव ने पाँच व्यक्तियों को संन्यास दिया था। जिनके नाम इस प्रकार हैं–(१) स्वामी सबुद्धानंद (२) स्वामी शंकरानंद (३) स्वामी विनयानंद (४) स्वामी वासुदेवानंद और (५) स्वामी चिदानंद।

शाम के समय हमलोग गुरूदेव के पास बैठे थे। अचानक उन्होंने हमसे कहा कि तुम्हारे पिताजी अभी कोलकाता मे हैं। कुछ दिन पहले मैं कोलकाता गया था उस समय वे मुझसे मिलने आये थे। तुम्हारे पिताजी से मैंने तुम लोगों के संन्यास की अनुमति ले ली है। तुम लोग यदि चाहो तो आगामी शिवरात्रि को तुम्हें संन्यास दिया जा सकता है।

गुरूदेव की बात सुनकर आलोक ने कहा कि यदि आप स्वयं हमे संन्यास देना चाहते है तो हम संन्यास लेने के लिये तैयार हैं। गुरूदेव ने फिर कहा कि संन्यास लेने का एक नियम यह है कि जिसे संन्यास लेना है, वह संन्यास लेने के लिये गुरू से याचना करे। इस पर मैंने कहा कि तब फिर हमलोग अभी संन्यास नही लेंगे।

हम लोगों ने विचार किया कि यदि हमलोग स्वयं संन्यास के लिये याचना करेंगे तो नियम पालन करने का दायित्व हमारे ऊपर रहेगा और यदि गुरूदेव स्वयं अपनी ओर से संन्यास देंगे, तो यह दायित्व उन पर रहेगा, जैसा कि दीक्षा देने के समय अन्य शिष्यों का दायित्व उन्होंने अपने ऊपर लिया था। वैसे भी ऋषिकेश से यहां आश्रम पहुँचने तक मन में जो निर्भरता का भाव ऊत्पन्न हुआ था उसकी तुलना में संन्यास की आवश्यकता कही अधिक है, यह उस समय हम नहीं समझ पा रहे थे।

'गुरूदेव संन्यास देना चाहते हैं और हमलोग संन्यास नही ले रहे है,' यह बात आश्रम में सभी को मालूम हो गयी। हमारे कई गुरू भाई एवं विशेषकर संन्यासी गुरूभाई हमें संन्यास लेने के लिये समझाने लगे। स्वामी आत्मानंद जी ने तो यहां तक कहा कि गुरूदेव से संन्यास की याचना करने पर भी वे सहजता से संन्यास देने के लिये तैयार नहीं होते हैं और जब वे स्वयं तुमसे लेने के लिये कह रहे है तब इसका आशय यही है कि वे चाहते है कि तुम लोग संन्यास ले लो। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो वे कभी भी तुम्हें संन्यास लेने के लिये प्रेरित न करते। संन्यास लेने के लिये इस

हेतु गुरूदेव से प्रार्थना करनी ही पड़ती है। ऐसा नियम सनातन काल से चला आ रहा है। इसीलिये गुरूदेव ने तुम लोगों से संन्यास के लिये याचना करने हेतु कहा है। तुम लोग यह सुअवसर नष्ट न करो........इत्यादि।

आश्रम के अनेक लोगों द्वारा बार-बार समझाने व आग्रह करने के कारण हमलोग इच्छा न होते हुये भी संन्यास लेने के लिये पुनः तैयार हो गये। आत्मानंद जी हम लोगों को गुरूदेव के पास ले गये और हम लोगों के संन्यास लेने के लिये तैयार होने की बात उनसे कहीं। तब गुरूदेव ने हम लोगों से पूछा कि क्या तुम लोग संन्यास लेने के लिये याचना करने हेतु तैयार हो? हमारे हां कहने पर उन्होंने आत्मानंद जी को संन्यास के लिये आवश्यक सामग्री जुटाने के निर्देश दिये और हम लोगों से कहा कि कल सुबह से मौन रखना एवं उपवास करना। शाम को दूध और फल ग्रहण कर सकते हो।

दूसरे दिन सुबह से ही हमलोग मौन धारण किये थे। उपवास का भी पालन कर रहे थे। करीब दो घंटे बाद हमारे मन में पहले कि तरह अनेकों प्रकार के प्रश्न आना प्रारंभ हो गये। जैसे कि संन्यास लेने से क्या होगा? श्री श्री गोसाँई जी का कहना है कि नियमपूर्वक साधना करने से सभी को संन्यास की अवस्था प्राप्त हो जाती है। यदि स्वयं के ऊपर दायित्व लेकर उसका पालन न कर सके तब मन में अपराध बोध रहेगा आदि। अंत मे हमने निश्चय किया कि हमलोग अभी संन्यास नहीं लेंगे। अतः गुरूदेव के पास जाकर हमलोगों ने कहा कि हमने अभी संन्यास न लेना तय किया है। तुम हमलोगों को संन्यास के लिये पालन करने योग्य नियम बता देना, हमलोग तदअनुसार चलने की चेष्टा करेंगे। गुरूदेव हम लोगों की बात सुनकर कहने लगे कि ठीक है, तुम लोगों के लिये अभी यही ठीक रहेगा।

हमलोग गुरूदेव के पास से वापस आ गये। तब हमारे पास एक गुरूबहन आकर कहने लगी कि मुझे मालूम था कि तुम्हारा संन्यास अभी नहीं होगा। गुरूदेव ने रात में ही मुझसे कहा था कि इनके संन्यास में अभी देरी है। इनका संन्यास अभी नही होगा। गुरूबहन ने यह भी बताया कि ऋषिकेश से हमारे पत्र का उत्तर गुरूदेव ने उनसे ही लिखवाया था। गुरूबहन को पत्र की सारी बात तो याद नही थी लेकिन उन्होंने बताया कि पत्र में लिखा था कि तुम लोगों के साथ जो भी घटित हो रहा है वह सब ठीक है। तुम लोगों के लिये गुरूदेव ने आसन में स्थिर भाव से बैठने के लिये भी पत्र में लिखवाया था। गुरूदेव ने वह भी बताया था कि यह पत्र तुम लोगों को नहीं मिल पायेगा। क्योंकि पत्र पहुँचने के पहले ही तुम लोग ऋषिकेश छोड़ दोगे।

गुरूबहन से उक्त बातें सुनकर हमें प्रतीत हुआ कि गुरूदेव की प्रेरणा के अनुसार ही हमलोग चल रहे हैं। जो भी हो, हमारे संन्यास न लेने से हमारे कई गुरूभाई निराश हो गये। श्री के. के. दास हम लोगों से बहुत स्नेह करते थे। उन्होंने

हमें बताया कि इस बार जब गुरूदेव उनके यहाँ कोलकाता आये थे तभी तुम्हारे पिताजी भी गुरूदेव से मिलने आये थे। वे गुरूदेव से बहुत देर तक बातें करते रहे। अंत में गुरूदेव ने तुम्हारे पिताजी से कहा कि ''**तुम्हारे पुत्र संन्यास लेने के लिये अत्यंत व्याकुल हैं। उन्होंने जाने के बाद से आज तक मुझे कोई पत्र नहीं लिखा है, किंतु वे संन्यास के लिये निश्चित रूप से मुझसे कभी न कभी मिलेंगे। इसलिये यदि आप उनके संन्यास के लिये अनुमति दे दें, तो वे घर जाकर आपसे मिलने में नहीं डरेंगे। मैं भी उनसे मुलाकात होने पर उन्हें बता दूँगा कि तुम्हारे पिताजी ने संन्यास की अनुमति दे दी है। तुम लोग कभी-कभी घर जाकर उनसे मिल लिया करो। अब तुम्हें कोई भय नहीं है।**'' पिताजी से गुरूदेव ने यह भी कहा था कि यदि आप संन्यास की अनुमति नहीं देंगे तो आपके पुत्र, भय के कारण आपसे नहीं मिलेंगे। गुरूदेव की बातें सुनने के पश्चात् अंततः पिताजी ने तुम लोगों के संन्यास की अनुमति दे दी। गुरूदेव ने उस समय पिताजी से यह भी कहा था कि ''**आपके पुत्र सही मार्ग पर हैं। हम लोगों ने संसार में सांसारिक रहकर क्या पाया है? यदि वे संन्यास लेकर तपस्या एवं जप करते हुये शांति प्राप्त करना चाहें, तो उसमें बाधक बनने से कोई लाभ नहीं है। उनके संन्यास लेने से सभी का कल्याण ही होगा।**'' दास दा से सभी बातें सुनकर हमलोग अत्यधिक आनंदित हुये।

शिवरात्रि उत्सव समाप्त होने के बाद एक दिन हम लोगों ने गुरूदेव से पुनः पूछा कि ऋषिकेश मे हमें जो अनुभव हुये, उनका आशय क्या है? क्या वे सही मार्ग का संकेत देते हैं?

गुरूदेव ने कहा–''**मैंने बता तो दिया है सब ठीक था इन्हें लिखकर रखो। यही अवस्था इस मार्ग में आवश्यक है।**''आलोक ने गुरूदेव से फिर पूछा कि यहाँ आने के बाद से हम लोगों को अब अंतरमन से कोई निर्देश प्राप्त नहीं हो रहे हैं, क्या हमारी यह अवस्था समाप्त हो गयी है?

गुरूदेव ने कहा–''**तुम लोगों का अभी कुछ कर्म बाकी है उसकी समाप्ति के बाद पुनः वही अवस्था प्राप्त हो जायेगी। नष्ट कुछ भी नहीं हुआ है। कर्म शेष रहने के कारण सामयिक अंतराल पैदा हुआ है। नियमित साधना करते रहो। फिर से वही अवस्था स्थाई रूप से प्राप्त हो जावेगी।**'' मैंने गुरूदेव से पूछा कि हमें लगता है कि सब कुछ तुम ही कर रहे हैं। क्या यह सही है? गुरूदेव ने बताया–''**यह ठीक है।**'' मैंने पूछा कि हमें मन से जो प्रेरणा मिलती है, हमारे लिये क्या वही करते जाना उचित है? गुरूदेव ने कहा–''**हाँ, वही करते जाओ।**'' आलोक ने पूछा कि हम लोगों ने विचार किया है कि इस बार वृंदावन जाकर रहेंगे। तब गुरूदेव ने कहा–''**अभी तुम्हारे पिताजी कोलकाता में हैं। पहले उनसे जाकर मिलो। उसके बाद रायपुर जाकर माँ से भी मुलाकात करो, तब वृंदावन जाना। वे अब तुम लोगों को घर में रहने**

के लिये बाध्य नहीं करेंगे।'' आलोक ने गुरूदेव से कहा– हम लोगों की इच्छा एक बार माँ मणि से भी मिलने की हैं। तब गुरूदेव ने कहा– **कोलकाता से रायपुर जाते समय, पुरी जाकर माँ मणि से भी मिल सकते हो।**

आठ मार्च को हमलोग दास दा के साथ कोलकाता आ गये । वहाँ मामा लोगों से मिलने पर पता लगा कि पिताजी अभी चूँचड़ा में हैं। हमलोग दास दा व पानूदा के साथ पिताजी से मिलने पहुँचे। हमलोग उन्हें प्रणाम करके उनके पास बैठ गये। पिताजी ने हम दोनों के हाथ अपने हाथ में ले लिया और चुपचाप बैठे रहे। उनकी आँखो से उस समय अश्रुपात होने लगा। यह दृश्य देखकर दास दा, पानू दा तथा मामा लोगों की भी यही दशा हो गयी। किंतु गुरूदेव के प्रभाव से हमारे मन मे किसी तरह का विकार नहीं आया। पिताजी हम लोगो को आशीर्वाद देते हुये कहा–**''तुम लोग भाग्यशाली हो। जरा भी भय मत करो, क्योंकि तुम्हारा मार्ग सही है। हमलोग तुम्हारे मार्ग में बाधक नहीं बनेंगे। तुम लोग समय-समय पर अपनी कुशलता के समाचार देते रहना। अभी रायपुर जाकर तुम लोग अपनी माँ से मिल लो और उसके बाद गुरूदेव जैसा निर्देश दें वैसा करो''।** हम लोगों ने बताया कि गुरूदेव ने भी हमें यही निर्देश दिया है कि हमलोग यहाँ से पुरी होकर माँ मणि का दर्शन करते हुये रायपुर जायेंगे और रायपुर में माँ से मिलकर, वृंदावन चले जायेंगे। इस प्रकार पिता जी से आशीर्वाद लेकर हमलोग शाम को वापस कोलकाता आ गये।

कोलकाता से पुरी आकर हम माँ मणि से मिले और उन्हें सभी बातें बताई। वे हमारी बात सुनकर बोलीं–**''नाम-जप करते रहो। साधना करते समय अनेक प्रकार की अवस्थाएं प्राप्त होती है। धीरे-धीरे सब ज्ञात हो जावेगा। कल दोपहर को तुम लोग यहीं गोपाल जी का प्रसाद ग्रहण करना। रात्रि में यदि गोसाँई जी कुछ निर्देश देंगे, तो कल बताऊँगी।''**

माँ मणि को प्रणाम करके हमलोग श्री श्रीजगन्नाथ देव मंदिर एवं अन्य मंदिरों के दर्शन करने के उपरांत, उस दिन गोसाँई जी के समाधि आश्रम में रूके। दूसरे दिन निश्चित समय पर माँ मणि के पास पहुँचे। विगत रात्रि में श्री श्री गोसाँई जी ने माँ मणि को हमारे संबंध में जो निर्देश दिये थे वे माँ मणि ने हमें पढ़कर सुनाया। निर्देश इस प्रकार थे :–

३० फाल्गुन, १४ मार्च, ६५

गोसाँई जी ने कहा है कि ''आलोक एवं अमल को मेरा आशीर्वाद देकर कहो कि वे अपनी माँ से अनुमति लेकर श्री श्री वृंदावन धाम दर्शन के लिये जायें और निर्जन में रहकर भजन करें। वहाँ सदा सखियों के अनुगत होकर श्री श्री राधारानी की कृपा याचना करें और नाम-जप करते हुये रहें । गौड़ीय वैष्णवों से सम्पर्क न रखें। ब्रज-माईयों को दूर से प्रणाम करें। उनके आचार-व्यवहार को ग्रहण नहीं करें। अत्यंत

सावधान रहने की आवश्यकता है। स्त्रियों से हर समय दूर रहें। उन्हें मातृभाव से प्रणाम करें और उनके पास न जावें। उनसे किसी प्रकार का संबंध भी नहीं रखें। इस प्रकार ठीक तरह से चलने पर श्री श्री राधारानी की कृपा प्राप्त कर उनका जीवन धन्य हो जाएगा। श्रीश्री राधारानी कृपा करके जितने दिन उन्हें व्रज में रखे उतने दिन वे वहीं रहें और बाद में असीमानंद जहां रहने के लिए निर्देश दें उनके आदेशानुसार वहां रहें।''

''साधना पथ में माता-पिता का आशीर्वाद विशेष कल्याणप्रद होता है। माता-पिता प्रत्यक्ष देवता हैं। उनकी सेवा करना संतान का प्रथम कर्तव्य है। हमलोग आशीर्वाद करते हैं उनका कल्याण हो।''

हम लोगों ने श्री श्री गोसाँई जी के निर्देश श्रवण करने के उपरांत माँ मणि से प्रश्न किया कि निर्देश में यह कहा गया है कि 'सखियों के अनुगत होकर श्री श्री राधारानी की कृपा याचना करना', इसका अर्थ हमलोग नहीं समझ सके हैं। हमें इसका अर्थ बतायें।

माँ मणि ने कहा– **''देखो बेटा, म यह सब कुछ भी नहीं जानती थी । जो कुछ भी करवाना है, वे ही करवा रहे ह। नाम-जप करते रहो। गुरू के निर्देशानुसार साधना करो। समय आने पर वे ही अवस्थाओं को खोल देंगे। उस समय देखना कितना आनंद आयेगा स्वयं के प्रयास से हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं।''**

मध्यान्ह में माँ मणि ने श्री श्री गोपाल जी को भोग लगाया। पहले माँ मणि और उनके पीछे हमलोग कमरे से बाहर आ गये। आलोक ने कमरे का दरवाजा बंद कर दिया। कमरे के बाहर हमलोग माँ मणि के पास बैठ गये। लगभग २० मिनिट बाद माँ मणि ने जब दरवाजा खोलने के लिये कहा, तब हमलोग दरवाजा खोलकर कमरे में पहले आये, तो देखा कि आसन पर श्री श्री गोपाल जी के पैरा के छोटे-छोटे चिन्ह स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। भोग की थाली से भी प्रसाद ग्रहण करने के बिलकुल स्पष्ट चिन्ह देखने को मिले। इस प्रकार के चिन्ह, इतने स्पष्ट और पास से हम लोगों ने पहले कभी नहीं देखे थे।

प्रसाद ग्रहण करने के बाद माँ मणि से हमने बहुत सी बातें की। उन्होंने आशीर्वाद देते हुये कहा–**चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। गुरू के निर्देशानुसार साधना करते रहो। तुम लोगों की प्रार्थना इसी जन्म में पूर्ण होगी।**

हम लोग शाम को रायपुर जाने वाली ट्रेन से रवाना होने के लिये माँ मणि को प्रणाम कर वहां से निकल पड़े। माँ मणि उस समय काफी अस्वस्थ थीं । हमारे द्वारा मना करने पर भी वे दीवाल के सहारे बाहर द्वार तक आयीं और जब तक हमारा रिक्शा उनकी आँखों से ओझल नहीं हो गया, तब तक वे स्नेह भरी दृष्टि से हमें निहारते हुये, द्वार पर ही खड़ी रहो । हम उनकी वह कृपा दृष्टि और आशीर्वाद

पाकर धन्य हो गये। तब हमें नहीं मालूम था कि माँ मणि से हमारी यह अंतिम मुलाकात है।

रायपुर आकर हमलोग माँ के पास छः-सात दिन रूके। माँ ने कभी भी हमारी साधना में कोई बाधा उत्पन्न नही की। उन्होंने बड़े आनंद के साथ पूछा कि अभी तक हम कहाँ और कैसे थे? सब सुनने के बाद कहा कि समय-समय पर पत्र लिखकर हमें समाचार देते रहना।

हम लोगों के घर छोड़कर चले जाने के बाद रायपुर से पिताजी ने एक पत्र गुरूदेव को लिखा था जिसके उत्तर में गुरूदेव ने पिताजी को जो पत्र लिखा था वह इस प्रकार था :–

१०. १२. ६४

ॐ गुरू,

परम कल्याणवरेषु,

आपका पत्र मिला। आलोक व अमल पूजा के समय आये थे। संन्यास के लिये विचार विमर्श करते समय मैंने उनसे कहा था कि माता, पिता की अनुमति के बिना संन्यास देना संभव नहीं है। इससे संन्तुष्ट न होकर वे यहाँ से चले गये। मैंने उनसे पूजा की छुट्टियों में यहीं रूकने तथा मेरे साथ नवद्वीप चलने के लिये कहा था किंतु वे इसमें सहमत नहीं हुये। वे यहां से झरिया गये। बाद में झरिया से काशी और काशी से कानपुर गये। कानपुर से जाकर संभवतः दिल्ली रूकेंगे। उन्होंने यहाँ से जाने के बाद आज तक कोई पत्र नहीं भेजा है कानपुर में वे जहाँ रूके थे वहाँ से ज्ञात हुआ है। उनके लिये मुझे चिंता है। उनके इस प्रकार चले जाने से मैं भी दुःखी हूँ। उनके धर्म-जीवन का दायित्व जब मैंने अपने ऊपर लिया है तब धीरे-धीरे यथासमय सब हो जायेगा। लेकिन वे संन्यास के लिये इतने व्याकुल थे कि उन्हें मेरी बात ठीक नहीं लगी। गुरूदेव उनका कल्याण करें। आप लोगों की आंतरिक व्यथा को मै समझ रहा हूँ व अनुभव भी कर रहा हूँ। मै अपने अंतर की संवेदना प्रेषित करता हूँ।

स्नेहार्थी–असीमानंद

पंचम परिच्छेद

रायपुर से हम २४ मार्च को वृंदावन धाम आ गये। पहले हमलोग धीर-समीर कुंज में ठहरे। उस समय वहां स्वामी परमानंद जी, श्री श्री जमुनामाई जी के शिष्य, रहते थे। वृंदावन के प्रमुख मंदिरों के दर्शन करने के पश्चात् हमने राधाकुंड एवं गोवर्धन गिरिराज के दर्शन भी किये। उस समय गोवर्धन गिरि के पास एक गुफा में एक वैष्णव महात्मा रहते थे। हमे ज्ञात हुआ कि वे दीर्घकाल से इसी गुफा में हैं। वे केवल एक बार प्रातः स्नानादि के लिये गुफा से बाहर निकलते है और शेष पूरे समय गुफा के अंदर ही रहते थे। भक्तगण शाम को उनके भोजन के लिये कुछ रख आते थे। वे कभी-कभी भोजन ग्रहण करते थे अन्यथा भोजन वैसा ही रखा रहता था। हमें भी उनके दर्शन करने की इच्छा हुई। आश्रम के एक साधु ने वह गुफा दिखाकर हमसे कहा कि महात्मा जी अधिकांशतः इसी गुफा में रहते हैं। वे कब बाहर आयेंगे यह निश्चित नहीं है। हमलोग गुफा के पास जाकर प्रणाम करने के बाद एक वृक्ष के नीचे बैठकर नाम-जप करने लगे। वहाँ का परिवेश पूरी तरह शांत था। १०-१५ मिनिट बाद अचानक एक वृद्ध वैष्णव साधु गुफा से निकलकर हमारे पास आये और तुलसी एवं मिश्री का प्रसाद हमारे हाथ में देकर तुरंत गुफा के अंदर चले गये। यह सब इतनी जल्दी हुआ कि हम न तो उन्हें प्रणाम कर सके और न ही उनसे कोई बात हो पाई। बाद में पता लगा कि ये वही वैष्णव महात्मा थे, जिनके दर्शन के लिये हमलोग वहाँ गये थे। आश्रम के साधुओं ने बताया कि 'महात्मा जी के दर्शन सहज नहीं है। आप लोग भाग्यशाली हैं, इसी कारण उन्होंने आप लोगों को दर्शन दिया।' हमें महात्मा के इस प्रकार दर्शन प्राप्त करने से अपार आनंद हुआ।

ऋषिकेश में रहते समय मन में जो तीव्र भाव आता था वैसी अवस्था अब नहीं रही। हमलोग वृंदावन वापस आ गये। वृंदावन में उस समय साधुओं के लिये भिक्षा या मधुकरी सहज नहीं थी। दरवेश जी के शिष्य मंगलदास जी उस समय वृंदावन में थे। उन्होंने बताया कि स्वयं भोजन बनाये बिना यहां रहना संभव नहीं है। कुछ दिन अन्न क्षेत्र में मधुकरी करने पर मालूम हुआ कि अधिकांश भजन-साधना में रत साधु ब्रज के गांव में रहते हैं, और जो साधु यहा रहते हैं वे बीच-बीच में गांव में जाकर भिक्षान्न ले आते है और स्वयं पका कर खाते हैं। अन्न क्षेत्र में भिक्षा की व्यवस्था अच्छी नहीं थी।

हमने गुरूदेव को इन बातों से अवगत कराते हुये पत्र लिखा। कुछ समय बाद गुरूदेव का पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें लिखा था :-

२-४-६५

ॐ गुरू,

स्नेहास्पदेषु,

बेटा, तुम लोगों का पत्र प्राप्त हुआ। मधुकरी के अलावा वहाँ कोई और उपाय नहीं है। जहाँ-जहाँ साधुओं के भोजन की व्यवस्था है वहाँ जाकर पता करो और अपनी व्यवस्था करो। किसी मंदिर में प्रसाद पाने के लिये अथवा स्वयं भोजन बनाने के लिये धन की आवश्यकता है, जो तुम लोगों के पास नहीं है। घर से बाहर निकलने पर ईश्वर की कृपा पर ही निर्भर रहना होगा। वे जैसी भी व्यवस्था करें, उसे ही यथेष्ट मानकर भजन-साधना में दिन व्यतीत करना होगा। शरीर रक्षा के लिये जितना खाद्य आवश्यक हो उतना ही ग्रहण करना। वहाँ यदि भिक्षा के लिये असुविधा हो तो जहां भिक्षा सहज मिल सके, वहां जाकर रह सकते हो। कहने का आशय यह है कि तुम्हारे लिये साधना ही महत्वपूर्ण है।

मेरा रक्तचाप १२० से भी अधिक है। रक्त शर्करा १५६ हो गयी है। इसलियें अभी कहीं भी बाहर नहीं जाऊँगा। वर्षा होने पर रक्षाबन्धन के समय काशी होकर वृंदाबन जाऊँगा। आशीर्वाद करता हूँ कि श्री श्री भगवान के ऊँपर तुम दोनों की निर्भरता की वृद्धि हो। वहां सभी भक्तजनों के चरणों में मेरा प्रणाम।

स्नेहार्थी—बाबा

भगवान के ऊपर निर्भर रहकर भजन-साधना करने के लिये गुरूदेव ने लिखा था। अतः हम लोगो ने निश्चय किया कि अब किसी भी आश्रम में नहीं रहेंगे। भिक्षा के लिये भी नहीं निकलेंगे। केवल नाम-जप करते हुये किसी भी स्थान षर पड़े रहेंगे। भोजन के लिये यदि बिना मांगे व्यवस्था होगी तो खायेंगे। नहीं तो नाम-जप करते रहेंगे। देखते हैं गुरूदेव क्या करते हैं?

हमारे पास कुछ रूपये थे खर्च कर दिया। पहले दिन वृंदावन परिकमा मार्ग पर एक पेड़ के नीचे आश्रय लिया था। उस दिन सुबह केवल थोड़ा चिवड़ा खाया था। शाम होने को थी, एक वैष्णव साधू हमें देखकर, हमारे पास आये और बातें करते हुये पास में ही स्थित, उनके आश्रम 'श्याम कुटीर' में रहने के लिये आग्रह करने लगे। वहां पेड़ के नीचे अच्छा चबूतरा था। रात्रि,में हमलोग यहीं रूके। रात्रि में भोजन के लिये कोई व्यवस्था नही हुई। वहाँ लोगों के आपसी वार्तालाप से पता लगा कि वे लोग हमें बंगलादेश से भागकर आया हुआ शरणार्थी मानकर, कह रहे हैं कि ये साधू नहीं है। खाने की नहीं मिलने पर खुद ही भाग ज़ायेंगे।

हमलोग दूसरे दिन भी उसी स्थान पर पड़े रहे। मध्यान्ह में मठ के महन्त स्वयं हमारे पास आये और हम लोगों को प्रणाम करके बहुत आग्रह के साथ ले गये तथा हमें प्रसाद दिया। बाद में वे हमें अपने कमरे में भी ले गये और हमारा परिचय प्राप्त करने के उद्देश्य से पूछताछ करने लगे। हमने उन्हें बताया कि भगवान का नाम लेकर

पड़े है। वे जो व्यवस्था करेंगे, उसी में हम खुश हैं। महंत हमारी बात सुनकर कहने लगे कि हमने विगत रात्रि आप लोगों को भोजन के लिये नहीं पूछा, उसके लिये क्षमा प्रार्थना करते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि वे हमारे रहने एवं भोजन की व्यवस्था अपने आश्रम में ही कर देंगें। किंतु हमने उनसे निवेदन किया कि आपको हमारा परिचय मिल गया है। अतः अब हम यहाँ नहीं रूकेंगे। किसी अन्य स्थान पर जायेंगे।

वहां से निकलकर रास्ते में एक निर्जन स्थान पर हनुमान जी का खाली मंदिर देखकर हमलोग रात्रि में वहीं रूक गये। रात्रि लगभग आठ बजे मंदिर के पुजारी आरती के लिये वहाँ आये। उन्होंने आरती के बाद हमें प्रसाद दिया। दूसरे दिन 'धीर-समीर कुंज' में उत्सव था। हम पहले से ही वहाँ आमंत्रित थे। मध्यान्ह वहाँ प्रसाद ग्रहण कर रात्रि में केशीघाट के निकट एक निर्जन स्थान पर ठहर गये। वहाँ घाट के दोनों और यात्रियों के विश्राम के लिये व्यवस्था थी। किंतु वर्तमान की तरह उस समय वहाँ अधिक भीड़ नही थी। दूसरे दिन हम सुबह से ही नाम-जप में बैठे थे। वृंदावन आने के बाद हमने सुना था कि यहाँ एक महापुरूष रहते हैं। उन्हें सब मौनी बाबा या जज बाबा कहते हैं । वे हमेशा वृंदावन के रास्ते पर या परिकमा पथ पर भ्रमण करते रहते हैं। कभी भी किसी मंदिर के अंदर नही जाते। मंदिर के बाहर धूल मे लोटते हैं और प्रणाम करके चले जाते हैं। इसी भाव से वे वृंदावन में काफी समय से हैं। दास दा से सुना था कि जब गुरूदेव वृंदावन पदयात्रा में आये थे तब उनके साथ मौनी बाबा का साक्षात्कार हुआ था तथा गुरूदेव ने बताया था कि मौनी बाबा पहुंचे हुये महात्मा हैं। इस कारण हमलोग वृंदावन आने के बाद से ही मौनी बाबा के दर्शन प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे किंतु अभी तक उनका दर्शन नहीं हो पाया था।

सुबह से हमलोग केशी घाट पर नाम-जप कर रहे थे। लगभग बारह बजे एक साधु हमें देखकर हमारे पास आये और हाथ से इशारा करके हमसे पूछा कि हमें भोजन प्राप्त हुआ है या नहीं। हम लोगों ने उत्तर में आकाश की ओर इशारा कर दिया। वे हमें वहीं प्रतीक्षा करने के लिये हाथ से संकेत करते हुये चले गये। थोड़ी देर बाद एक पंडा थाली में पराठा, सब्जी, हलुवा तथा अचार आदि ढ़ककर ले आये और हमें ग्रहण करने के लिये कहा। हमारे द्वारा यह पूछने पर कि यह सब किसने भेजा है? वे बहुत ही भक्ति भाव से हमें प्रणाम करते हुये बोले कि मौनी बाबा ने उन्हें जो निर्देश दिया है वे उसी का पालन कर रहें हैं। हम लोगों ने प्रश्न किया कि क्या वे ही जज बाबा हैं? तो उन्होंने बताया कि हां, वे एक सिद्ध महात्मा है तथा इसी भाव में दीर्घकाल से यहाँ हैं । वृंदावन आने के बाद से जिन मौनी बाबा के दर्शनों की हमें लालसा थी, उनकी इस प्रकार कृपा प्राप्त कर हमलोग धन्य हो गये थे। हमें कल्पना भी नहीं थी कि बिना मांगे ही उनकी कृपा हमें प्राप्त होगी। हमें यह सोचकर

बहुत दुःख हुआ कि जिन महात्मा के दर्शन हम करना चाहते थे तथा जब वे हमें दर्शन देने आये तो हम जानकारी के आभाव में उन्हें प्रणाम भी नहीं कर सके और न ही उन्हें बैठने के लिये कह सके। फिर भी हम इस तरह मौनी बाबा का दर्शन प्राप्त कर अपने आप को परम भाग्यवान अनुभव कर रहे थे।

मौनी बाबा द्वारा भेजे गये पंडे ने हमें भोजनोपरांत थाली धोने के लिये मना किया था। उन्होने कहा था कि वे जूठी थाली ले जाने की व्यवस्था करेंगे। किंतु हमने भोजन करने के बाद थाली धोकर रख दी। कुछ देर बाद पंडे की पुत्री आकर थाली ले गई। शाम को घाट पर स्थित हनुमान जी के मंदिर के पूजारी ने आकर हमसे पूछा कि हमारे रात्रि के भोजन की क्या व्यवस्था हुई है? वे यह जानकर कि कोई व्यवस्था नहीं है, हमें कुछ रोटियां नमक व मिर्च लाकर दे गये। ब्रज धाम में रोटियां चार-पाँच प्रकार के अनाज के आटे को गूंथ कर हाथ से बनाई जाती हैं। इन्हें टिक्कड़ भी कहते हैं।

रात्रि में जब हम यमुना किनारे बैठे रोटी खा रहे थे तब हमने अचानक देखा कि मौनी बाबा हमारी ओर आ रहे हैं। उन्हें देखकर हम आदर भाव से उठ खड़े हुये और उनसे बैठने का अनुरोध किया। मौनी बाबा ने इशारे से हमें पहले भोजन कर लेने के लिये कहा और स्वयं सीढ़ी पर पद्मासन में बैठ गये। हम लोगों ने शीघ्र ही भोजन समाप्त किया और उनके पास आकर उन्हें प्रणाम किया तथा एक कंबल बिछाकर उस पर बैठने का उनसे अनुरोध किया। वे हाथ के इशारे से बोले कि इसकी आवश्यकता नहा है। तब हमलोग उनके पास ही बैठ गये। चाँदनी रात में यमुना के किनारे निर्जन घाट पर मौनी बाबा के सानिध्य में जिस आनंद एवं शांति का अनुभव हुआ वह–अकल्पनीय है। हम लोगों ने उनका पूर्व परिचय प्राप्त करना चाहा क्योंकि बहुत से लोगों से सुना था कि वे पहले जज थे। उन्होंने कुछ इशारे से और बीच-बीच में अपने गले से निःसृत अस्फट स्वर में, अपनी पूर्व कथा बताई जो इस प्रकार थी–

मौनी बाबा ने बताया कि उनका पूर्वाश्रम पूर्वी बंगाल में किसी स्थान पर था। अल्प आयु में ही श्वास की तकलीफ के कारण वे हांफते रहते थे। धीरे-धीरे उनका शरीर इतना दुर्बल हो गया था कि घर के सभी लोगों ने उनके जीवित रहने की आशा छोड़ दी थी। डाक्टरों ने भी स्पष्ट कर दिया था कि दमा रोग की चिकित्सा संभव नहीं है क्योंकि यह एक असाध्य रोग है। उस समय उनके गांव के पास एक सिद्ध महात्मा रहते थे। वे प्रायः पागलों जैसा व्यवहार करते थे। यदि कोई उनके पास जाने की चेष्टा करता तो वे उसे पत्थर मारते थे। लेकिन यदि वे कुछ कह देते तो वही घटित हो जाता था। इसलिये गांव के आसपास के लोग प्रायः उनके पास अपनी समस्या लेकर आते रहते थे किंतु उनके पास जाने का साहस नही हो पाता था। यदि वे स्वयं अपनी

ओर से किसी भी समस्या के संबंध में कुछ कह देते तो वह सत्य हो जाता था। इस प्रकार वाणी-सिद्ध महात्मा के रूप मे उनकी ख्याति थी। मौनी बाबा ने हम लोगो को आगे बताया कि जब सभी ने मेरे जीवन की आशा छोड दी तब मैंने अपनी माँ के निर्देशानुसार गांव के बाहर रहने वाले इन महात्मा जी के पास जाना प्रारंभ कर दिया। मैं रोज सुबह उनके पास आ जाता और उनसे थोडी दूर बैठा रहता। मध्यान्ह में मैं घर वापस आता। इसी तरह कई महिनों तक यह कम चलता रहा। एकदिन महात्मा जी ने मुझे पास बुलाया। उरा समय वहां और कोई नहीं था। दमे के कारण मैं ठीक से चल भी नही पाता था। धीरे-धीरे उनके पास गया। उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर झटके से खड़ा किया और कहा जाओ आज से ठीक हो जाओगे। उन्होंने मुझे दौड़ने के लिये कहा। मैंने आश्चर्यचकित होकर अनुभव किया कि मेरा शरीर पूर्णतः स्वस्थ हो गया है। मैंने उन्हें प्रणाम करते हुये निवेदन किया कि महाराज मैं तो मर ही गया था। आपने मुझे नया जीवन दान दिया है। अब आप मुझे अपने साथ ही रखे। महात्मा ने मुझे एक नाम-जप करने के लिये दिया और आशीर्वाद देते हुये कहा कि समय आने पर सब हो जायेगा। इस घटना के कुछ दिनों बाद ही महात्मा कहीं दूसरी जगह चले गये फिर उनसे कभी भेंट नहीं हो सकी।

उक्त घटना के बाद ललित साधू नाम के एक महात्मा के दर्शन हुये। वे दीर्घ काल से पद्मासन पर ही बैठे रहते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि उनके दोनो पांव आपस में चिपक गये हैं । कोई यदि कुछ खाने के लिये दे देता तो खा लेते थे। लघु शंका आदि के लिये भी वे नहीं उठते थे। उनकी भी मुझ पर विशेष कृपा थी। कुछ समय बाद मन में वैराग्य आने से मैं घर छोड़कर वृदांवन आ गया। तभी से वृंदावन में हूँ। उस समय वृदांवन में यमुना किनारे एक अच्छे महात्मा ने मुझे दीक्षित किया। तभी से लगभग १२ वर्ष हो गये हैं मौन व्रत धारण कर भगवान के ऊपर निर्भर होकर यहां पड़ा हुआ हूँ।

हमने उनसे पूछा आप लंबे समय से इसी भाव में हैं, आपको श्रीकृष्ण भगवान के दर्शन हुये हैं? प्रश्न सुनकर पहले वे थोड़ा मुसकराये फिर इशारे से बताया कि यदि तुम लोग उनका दर्शन करना चाहते हो तो तुम दोनों पहले अलग हो जाओ और तुम्हारे पास जो भी सामान है उसे यमुना में फेंक दो तथा उन्हीं के ऊपर निर्भर होकर दर्शन की आशा में पड़े रहो। तब निश्चित रूप से उनके दर्शन हो जायेंगे।

इस प्रकार उस रात मौनी बाबा से देर तक बातें होती रही। उन्होंने हमें आशीर्वाद दिया और फिर वे परिकमा पथ पर निकल गये। हम लोगों ने अनुभव किया कि ऋषिकेश में हमें जैसे निर्देश अंतर्मन से प्राप्त हुये थे वैसे ही निर्देश हमें मौनी बाबा ने भी दिये। किंतु उस समय हमारे मन की अवस्था पूर्व की भांति नहीं थी । अतः हम लोग श्रीकृष्ण दर्शन के लिये मौनी बाबा के बताये अनुसार वहाँ पड़े नही रह सके।

इस तरह वृंदावन में कुछ समय तक हमलोग रहे। यहीं, एक दिन निम्बार्क संप्रदाय के एक साधू के भी दर्शन हुये। उन्होंने आठ वर्ष की आयु में ही घर छोड़कर दीक्षा ले ली थी। बाद में उनके गुरू ने उन्हें अपने आसन पर आसीन करके महंत बना दिया। उस समय उनकी उम्र ११० वर्ष रही होगी। उन्होंने हमें कुछ फल भी दिये।

पुरातन काठिया बाबा आश्रम के पास एक वृद्ध बंगाली वैष्णव महात्मा के बारे मे जानकारी मिली। एक दिन हमलोग उनके दर्शन करने पहुँचे। उस समय वे स्नान करके दो बड़ी बाल्टियों में पानी लेकर आ रहे थे। हम उनको प्रणाम करते इससे पहले ही उन्होंने हमको प्रणाम किया और हमारा परिचय पूछा। अपना परिचय देते हुये हम लोगों ने बताया कि हमलोग श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी जी की परम्परा में दीक्षित हैं। तब उन्होंने कहा कि उनका निवास ढाका के पास एक गांव में था। उनके घर के कुछ लोगों ने भी गोसाँई जी से दीक्षा ली थी। वे स्वयं भी गोसाँई जी से दीक्षा लेना चाहते थे लेकिन गोसाँई जी ने उन्हें दीक्षा नहीं दी और कहा कि समय आने पर तुम्हें सद्‌गुरू प्राप्त होंगे। उन्होंने बताया कि ढाका जाकर अंतिम धूलट उत्सव में उन्होंने गोसाँई जी को देखा था। भजन संकीर्तन में गोसाँई जी की जटा खड़ी हो गयी थी यह घटना उन्हें आज भी याद है। हमें इन महात्मा के जब दर्शन हुये उस समय उनकी उम्र ११० वर्ष से अधिक की थी। वे हमें अपनी कुटिया में ले गये और प्रसाद दिया। यहाँ उल्लेखनीय है कि ढाका में फरवरी, १८९६ ई. में श्री श्री गोसाँई जी ने श्री अद्वैत महाप्रभु तथा श्री नित्यानंद महाप्रभु की जन्म-तिथि के उपलक्ष्य में अपने गैण्डारिया आश्रम में सात दिन का धूलट महोत्सव का आयोजन किया था। इसका उल्लेख गोसाँई जी के जीवनी ग्रंथों में मिलता है। उस समय भावमग्न नृत्य-रत गोस्वामी जी की जटायें अपने आप खड़ी हो गयी थी। इस दृश्य का प्रत्यक्ष दर्शन करने वाले उन प्राचीन महात्मा का दर्शन पाकर हमलोग धन्य हो गये।

हमने दास दा से सुना था कि वृंदावन में 'माता कृष्णा सत्संग' में डा. बाँकेबिहारी नाम के एक बहुत उत्कृष्ट साधक हैं। उनकी शिष्या का नाम माता कृष्णा है। गुरूदेव, वृंदावन पदयात्रा के समय उनके आश्रम में आये थे और यहां कीर्तन के समय समाधिस्थ हो गये थे। गुरूदेव द्वारा लिखित पुस्तक ''चलार पथे'' के अंग्रेजी अनुवाद " Way Back Home " (वे बेक होम) में इसका उल्लेख मिलता है। गुरूदेव के वृंदावन प्रवास के समय ये लोग, उन्हें अपने आश्रम में प्रायः ले जाते थे। हमलोग एक दिन उनसे मिलने उनक आश्रम में गये। उस समय आश्रम का दरवाजा बंद था। दरवाजे पर आवाज करने पर एक महिला ने बाहर आकर बताया कि अभी वे लोग भजन कर रहे हैं। महिला ने हमें शाम चार बजे आने के लिये कहा। हमलोग पुनः चार बजे आश्रम पहुँचकर डा० बाँकेबिहारी जी से मिले। वे हमारा परिचय प्राप्त कर बहुत खुश हुये। वहाँ यह भी ज्ञात हुआ कि जिन भद्रमहिला ने हमें चार बजे आने

के लिये कहा था वे ही माता कृष्णा हैं। हमें उनसे मालूम हुआ कि आश्रम में अनेक सिद्ध महात्मा पंधार चुके हैं। डा० बाँकेबिहारी हमें अपने कमरे में ले गये। हमने उनसे जानना चाहा कि वे कौन सी साधना करते हैं? उत्तर में उन्होंने एक बड़ी सी तुलसी माला दिखाते हुये कहा कि इस माला से मैं हमेशा तारक-ब्रह्म नाम, (हरे कृष्ण) का जाप करने की चेष्टा करता हूँ। पहले हमलोग कई घंटे भजन-कीर्तन भी करते थे, किंतु भीड़ अधिक बढ़ जाने पर हमारी भजन-साधना में विघ्न पैदा होने लगे। इसलिये आजकल भजन-कीर्तन कम कर दिया है। शाम को इसी समय एक-डेढ घंटा केवल दर्शनार्थियों से भेंट करते हैं। शेष समय साधनारत् रहते हैं। हमने उनसे पूछा कि 'श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन किस प्रकार होते हैं?' उन्होंने बताया कि महापुरूषों से सुना है तथा शास्त्रों में भी पढ़ा है कि जब मनुष्य के मन में संसार के प्रति तीव्र वितृष्णा हो जाती है। संसार की कोई वस्तु उसे आनंद नहीं दे पाती। साधक केवल श्रीकृष्ण का दर्शन ही चाहता है और व्याकुल होकर खाना-पीना भूलकर यमुना किनारे उनके दर्शन के लिये, कृपा प्रार्थी होकर यहां-वहां भटकता है, उस समय श्रीकृष्ण भगवान् दर्शन देते हैं। हमने फिर पूछा कि 'दर्शन की यह व्याकुलता कैसे प्राप्त हो सकती हैं?' इसके लिये तपस्या व भजन-साधना की आवश्यकता है, उन्होंने बताया । हमने उनसे यह भी पूछा कि 'क्या आपको उनके दर्शन हुये हैं?' उन्होंने कहा–''अभी तक नहीं मिला है। लेकिन कुछ निर्देश अवश्य प्राप्त हुये हैं। कुछ सिद्ध महात्माओं के आशीर्वाद से मन में यह विश्वास हो गया है कि वृंदावन धाम में इसी जन्म में उनकी कृपा से दर्शन प्राप्त हो जायेंगे।''

हमने उन्हें मौनी बाबा से भेंट होने तथा उनके साथ हुये वार्तालाप की जानकारी दी। वे बहुत ध्यान से हमारी बातें सुनते रहे फिर उन्होंने कहा कि हमने उनसे मिलने का कई बार प्रयास किया किंतु उन्होंने हमसे कोई बात नहीं की। आप लोग भाग्यवान है। उनके साथ जो चर्चा हुई है उसे लिखकर रखना आवश्यक है। उन्होंने हमसे यह भी कहा कि मौनी बाबा ने श्रीकृष्ण दर्शन के लिये धरना देकर पड़े रहने की जो बात कही है, वह आप लोग मत करिये। क्योंकि मौनी बाबा कठोर साधक हैं, वे सब कर सकते हैं। इस तरह बहुत देर तक उनसे चर्चा होती रही। माता कृष्णा ने हमसे भोजन के संबंध में पूछा। हमारे यह बताने पर कि सुबह फलाहार किया था। माता कृष्णा ने गुरू की अनुमति लेकर हमारे लिये तत्काल भोजन तैयार किया और अत्यंत आग्रह के साथ हमें भोजन कराया। डा० बाँकेबिहारी जी ने स्वयं भोजन परोसा एवं बहुत ही स्नेह भावना से खिलाया। उनसे मिलकर हम लोगों को बहुत आनंद प्राप्त हुआ।

इस तरह हमने कुछ समय तक अलग-अलग स्थानों पर घुमकर देखा कि गुरूदेव की इच्छा से प्रतिदिन भोजन की ठीक-ठीक व्यवस्था हो ही जाती है,

लेकिन साधना में या नाम-जप में मन नही लग रहा है। अतः हमारा यहां रहना ठीक है या नहीं एवं हमारे लिये अब क्या करना उचित है? यह जानने के लिये हमने गुरूदेव को पत्र लिखा। कुछ दिनों बाद उनका यह पत्र प्राप्त हुआ–

ॐ गुरू, **२१-४-६५**

परम कल्याणवरेषु,

बेटा, तुम लोगों का पत्र मिला। तुम लोग पत्र मिलते ही काशी मठ के लिये रवाना हो जाना। मार्ग व्यय परमानंद जी से ले लेना। तुम लोगों के यहाँ पहुँचते ही महंत जी यह राशि एम. ओ. कर देंगे। मेरा अगला निर्देश प्राप्त होने तक मठ में ही रहना। मठ का कार्य महंत महाराज के निर्देशानुसार करते रहना। भजन-साधना के लिये पर्याप्त समय मिलेगा। प्रतिदिन प्रातः गंगा स्नान अवश्य करना। वहां पहुँचने पर तुम लोगों की दिनचर्या निर्दिष्ट की जायेगी। मेरा आंतरिक स्नेह व आशीर्वाद ग्रहण करो। भगवान तुम्हारा कल्याण करेंगे।

स्नेहार्थी–बाबा

गुरूदेव का पत्र पाकर हम बनारस में श्री श्री विजयकृष्ण मठ पहुँच गये। उस समय मठ के महंत श्री दरवेश जी महाराज के शिष्य श्री नारायण दास जी थे। वे पहले कालना में डाक्टर थे। दीक्षा के बाद उनके जीवन में परिवर्तन प्रारंभ हुआ। बाद में वे संसार त्यागकर संन्यासी-जीवन में प्रवेश कर गये और मठ के महंत बने। उनके समान अच्छे साधक बहुत ही कम देखने को मिलते हैं। उनका मधुर व्यवहार अतुलनीय था। श्री दरवेश महाराज द्वारा उनको लिखे कुछ पत्र 'दरवेश दर्शन' नामक ग्रंथ में प्रकाशित हुये हैं। अपने गुरूदेव पर उनकी निर्भरता अद्‌भूत थी।

इसके पूर्व हमलोग कभी भी मठ या आश्रम में कर्मी के रूप में नहीं रहे थे। हमने विचार किया कि मठ में रहने से कुछ न कुछ सेवाकार्य का दायित्व लेना होगा। बाजार एवं हिसाब आदि के कार्य को छोड़कर अन्य कोई भी कार्य करने के लिये मानसिक रूप से तैयार होकर, हमलोग महंत जी के पास गये। महंत जी ने हमारी बात सुनकर मंदिर के कीर्तन व पाठ का दायित्व हमें सौंप दिया और कहा तुम्हारे गुरूदेव को मैं पत्र लिखूँगा, उसके बाद वे जैसा निर्देश देंगे, वैसा करना। उस समय मठ में पूजा का दायित्व स्वामी संबुद्धानंद जी के पास था। महंत जी ने गुरूदेव को पत्र में लिखा कि मठ में कर्मियों की आवश्यकता है किंतु इन लोगों का जैसा भाव है उससे लगता है कि इनके लिये निर्जन में तपस्या करना उचित होगा। कुछ दिनों बाद गुरूदेव के दो पत्र आये। उन्होंने महंत जी को लिखा–

ॐ गुरू, ३०-४-६५

प्रिय भ्राता,

तुम्हारा पत्र मिला। आशा करता हूँ कि संजय (संबुद्धानंद) काशीधाम पहुँच गया है। आलोक व अमल के पहुँचने का समाचार प्राप्त हुआ। उन लोगों को भी पत्र लिख रहा हूँ। मठ में तपस्वियों का रहना गौरव की बात है। फिर भी उनसे कुछ कार्य करवाते रहना। उन्हें बहुत सुबह दोपहर तथा संध्या में गंगा स्नान करने के लिये कहना। मैं शीघ्र ही आऊँगा और कार्य की व्यवस्था करूँगा। अभी कुछ दिन मंदिर की सफाई का कार्य करने के लिये भी उनसे कहना।

संभवतः मैं जून में आऊँगा क्योंकि कांतोड़ एवं पूरी उत्सव में जाना होगा। मेरा स्नेह व प्रेमालिंगन।

स्नेहार्थी—दादा

गुरूदेव ने हमें जो पत्र लिखा था, वह इस प्रकार था—

ॐ गुरू, ६-५-६५

कल्याणवरेषु,

प्रिय आलोक व अमल, तुम लोगों के पहुँचने की सूचना महंत महाराज के पत्र से प्राप्त हो गयी है। २४ घंटे के समय के हिस्से कर लेना। इसमें से रात्रि में छः घंटे निद्रा के लिये रखना। निंद्रा के इस समय को भी धीरे-धीरे कम करते हुये दो घंटे तक ले जाना। छः घंटे निंद्रा के लिये निकालने के बाद भी जो १८ घंटे शेष रहेंगे उनमें तीन बार स्नान आदि में अधिक से अधिक तीन घंटे लगेंगे फिर भी १५ घंटे शेष रह जायेंगे। १५ घंटे भजन में लगाना आसान नहीं है। अतः सुबह तथा संध्याकीर्तन में जो समय लगेगा उसके बाद भी कई घंटे मठ में सेवाकार्य करना। महंत महाराज जो कहें वह करते रहना। विगत एक मई को पुरूलिया से लौटते समय ट्रेन की खिड़की से हाथ की अंगुली में चोट लग गयी है, इसलिये इस माह काशी आना संभव नहीं है। जून में आऊँगा । मेरा आशीर्वाद लेना।

आशीर्वादक—बाबा

गुरूदेव के निर्देशानुसार हमने मठ के कार्य में योगदान प्रारंभ कर दिया। प्रतिदिन तीन बार गंगा स्नान एवं एक निश्चित समय तक मठ का कार्य करते-करते मन में विचार आया कि क्या हमलोग मठ के बंधन में बंध गये हैं? अतः हमने इसे गुरूदेव एवं माँ मणि को पत्र में लिखा। जिस पर गुरूदेव का जो पत्र आया वह इस प्रकार है—

ॐ गुरू, १३-५-६५

कल्याणवरेषु,

बेटा, तुम लोगों का पत्र मिला। मठ का सेवाकार्य बंधन नहीं है। यह बहुत बड़ी

साधना है। अगस्त के अंत तक काशी में रूको। मैं उत्सव के समय काशी आऊँगा। उस समय सविस्तार चर्चा होगी। किसी भी एक स्थान पर लंबे समय तक रहते हुए भजन-साधना करनी होगी। यहाँ-वहाँ भटकने से काम नहीं चलेगा। मठ में महंत जी जो सेवा कार्य सौपें उसे करना। इसके बाद शेष समय में गंगा किनारे बैठकर साधना कर सकते हो। अपने कमरे में बैठकर भी साधना की जा सकती है। साधना करना ही होगा। मन को बाहर से खींचकर अंतर्मुखी बनाना होगा। अभी काशी में ही रहो। बाद में आवश्यक व्यवस्था करेंगे।

स्नेहार्थी—बाबा

पुरी से माँ मणि का भी पत्र प्राप्त हुआ। माँ मणि ने लिखा—

श्री हरि, पूरी, ६-७-६५

स्नेहास्पदेषु,

आलोक व अमल, तुम लोगों का पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। तुमने काशी जाकर बहुत अच्छा किया। सर्वदा गुरू के आदेशानुसार ही व्यवहार करने की चेष्टा करना। असीमानंद जो कहते हैं उसी के अनुसार चलने से ही तुम्हें वांछित लाभ प्राप्त होगा। किसी प्रकार की चिंता मत करों। समय-समय पर पत्र लिखकर अपने समाचारों से अवगत कराते रहना। श्री मंगलचांद शीघ्र ही काशी आयेंगे, तब तुम लोगों को कोई परेशानी नहीं रहेगी। श्री श्री गोसाँई जी व माता ठकुरानी का आशीर्वाद तथा श्रीश्री गोपाल जी का प्यार लेना। मेरा शरीर बहुत अस्वस्थ है। श्री श्री गोसाँई जी के चरणों में प्रार्थना करती हूँ कि तुम लोगों को प्रेम-भक्ति का लाभ हो। इति।

मंगलाकांक्षी—माँ मणि

गुरूदेव का पत्र पाकर बड़े ही उत्साह के साथ कार्य प्रारंभ कर दिया, लेकिन कुछ दिनों बाद उत्साह फिर कम होने लगा। किसी तरह भी कार्य में मन नहीं लगता था। हमने गुरूदेव को इस भाव से अवगत कराते हुये उन्हें पुनः पत्र लिखा। जिसके उत्तर में इस बार गुरूदेव ने लिखा—

ॐ गुरू, २१-५-६५

कल्याणवरेषु,

पुत्र तुम लोगों का पत्र मिला। एक स्थान पर लंबे समय तक रहकर साधना करनी होगी। तुम लोगों का मन सर्वदा चंचल रहता है। इस प्रकार करने पर कुछ भी लाभ नहीं होगा। यह सोचकर कि अच्छा नहीं लग रहा है इसलिए स्थान त्याग करेंगे, यह उचित नहीं है। मेरे आदेश को अच्छा न लगने पर भी, उसका पालन करना होगा, अन्यथा अपना रास्ता तुम्हें स्वयं खोजना पड़ेगा।

तुम लोग अभी काशी में ही रूको । उत्सव के समय में मैं काशी आऊँगा, उस समय मैं तुम लोगों से इस विषय में चर्चा करूँगा। यह विचार मन में न आने देना कि मैंने तुम्हें वहा मठ का कार्य करने के लिये भेजा है। मैंने तुम्हें तुम्हारे कल्याण के लिये ही वहाँ भेजा है।

मेरा आशीर्वाद है कि तुम लोगों का मन स्थिर हो। मन को स्थिर करने का प्रयास करो । हमेशा यही प्रयास होना चाहिये कि लंबे समय तक एक स्थान पर रहकर आसन में बैठकर भजन कर सको । भाव प्रवणता छोड़नी होगी। काशी में रहकर ही भजन साधना करो ।

स्नेहार्थी–बाबा

गुरूदेव का यह पत्र पाकर हम लोगों के मन की अस्थिरता और बढ़ गयी। पिछली बार रामचन्द्रपुर आश्रम छोड़ने के पहले हम लोगों ने गुरूदेव से पूछा था कि आजकल हमारे मन में जो प्रेरणा आती है, क्या हम उसी के अनुसार करते जायें। तब गुरूदेव ने कहा था कि हाँ, वैसा ही करते रहो। किंतु गुरूदेव ने पत्र में हमें बार-बार काशी रूकने के लिये लिखा है जबकि हमारा मन यहां बिलकुल नही लग रहा है।

हमने निश्चय किया कि एक बार गुरूदेव से मिलकर उन्हें सब बातें स्पष्ट रूप से बतायेंगे और फिर वे जैसा कहेंगे हम वैसा ही करेंगे । उस समय हमारे मन की अवस्था बड़ी ही विचित्र हो गयी थी। गुरूदेव का ऐसा पत्र पाकर कि "मेरा आदेश, अच्छा न लगने पर भी उसका पालन करना होगा अन्यथा अपना रास्ता खुद खोजना पड़ेगा", हम लोग काशी छोड़कर रामचन्द्रपुर आश्रम जाने के लिये तैयार हो गये और इस हेतु महंत जी से भी सविस्तार चर्चा की। महंत जी ने भी हमें अभी न जाने के लिये समझाया। लेकिन हमलोग काशी में नहीं रूक सके। मठ से हठात् ही हमलोग निकल पड़े। उस समय हमारे पास एक पैसा भी नहीं था। पैदल ही जायेंगे, यही सोचकर मठ से निकले थे। जाते समय महंत जी एवं संबुद्धानंद जी ने हमें दो-दो रूपये दिये। बनारस मठ का नियम है कि महंत जी अपने पास कोई रकम अपने नाम पर नहीं रख सकते।

मठ से थोड़ी दूर पैदल चलने के बाद ही हमें यह लगने लगा कि इस प्रचंड गर्मी में पदयात्रा संभव नहीं है। हमने विचार किया कि निरीक्षक एवं गार्ड को बताकर ट्रेन में चढ़ जायेंगे, उसके बाद जो होगा देखेंगे। सामने एक रिक्शा मिल गया। उसमें बैठकर हमलोग स्टेशन आ गये। वहाँ पहुँचते ही पता लगा कि मुगलसराय जाने वाली लोकल ट्रेन रवाना होने को है। हमलोग शीघ्र ही इस ट्रेन में चढ़ गये। बिना टिकिट के हमारी यह पहली यात्रा थी। ट्रेन में अधिक भीड़ नहीं थी। थोड़ी देर बाद टिकिट चेकर ने आकर हमसे टिकिट मांगा। मैंने बताया कि हमें एक विशेष प्रयोजन

से आसनसोल जाना पड़ रहा है। हमारे पास ये थोड़े से रूपये और कंबल छोड़कर कुछ भी नहीं है। आप यदि चाहे तो यह सब ले सकते हैं। हमारी बात सुनकर चेकर ने बताया कि यह ट्रेन मुगलसराय तक जायेगी। वहाँ से दूसरी ट्रेन मिलेगी। इतना कहकर चेकर आगे चले गये। मुगलसराय पहुँचकर ज्ञात हुआ कि हावड़ा जाने वाली जनता एक्सप्रेस रवाना होने वाली है। हमने ट्रेन के गार्ड से बात की। उन्होंने कहा कि ट्रेन मे दो चेकर हैं, आप उन्हें बताकर ट्रेन में चढ़ सकते हैं। सामने ही एक चेकर को देखकर हमने उन्हें अपना प्रयोजन बताया और उनकी अनुमति से हम ट्रेन में चढ गये। ट्रेन में बहुत भीड़ थी। बहुत ही मुश्किल से हमलोग ट्रेन में प्रवेश कर सके। दो बिहारी बधुंओं ने हमें प्रणाम किया और हमें अपनी सीट पर बैठने का आग्रह करने लगे। हमलोग बैठने के लिये राजी नहीं हो रहे थे और वे हमें बैठाने के लिये जिद कर रहे थे। बाध्य होकर हमें सीट पर बैठना पड़ा । मन का उद्वेग और बढ़ गया था। पटना आने पर हम ट्रेन से उतर गये। क्योंकि उस समय हमारे कई गुरूभाई पटना मे रहते थे और उनका कई बार घर आने का आग्रह था। हमने यह विचारकर कि बाबलू दा (गुरूभाई) के घर जायेंगे । किंतु उनका पूरा नाम व सही पता हमें मालूम नहीं था । केवल यह जानकारी थी कि वे हाईकोर्ट में काम करते हैं तथा पानी की टंकी के पास उनका मकान है।

स्टेशन से बाहर निकलकर, एक रिक्शा करके पानी की टंकी के पास पहुँचकर हमने रिक्शा छोड़ दिया। रिक्शा भाड़ा देने के बाद हमारे पास, बचे पैसे भी समाप्त हो गये। पूछताछ करने पर, हमें बाबलू दा का मकान मिल गया। किंतु वे उस समय वहां नही थे। पता चला कि वे पुरी गये हुये हैं। उनकी माँ ने हमारे लिये रिक्शा करवा दिया जिससे हमलोग डा. फणी घोष के यहाँ चले गये। उन्होंने हमें आग्रह करके अपने घर में एक दिन रोका और दूसरे दिन टिकिट बनाकर हमें ट्रेन में बैठा दिया।

इस प्रकार रास्ते में विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों से गुजरते हुये अंततः हमलोग गुरूदेव के पास आश्रम पहुँच गये। गुरूदेव को प्रणाम करके जैसे ही हम उनके पास बैठे, विरक्ति प्रगट करते हुये उन्होंने कहा– तुम लोग मठ छोड़कर क्यों आये? मेरे पत्र की प्रतीक्षा तो करते? आलोक ने कहा– पिछली बार जब हमलोग यहाँ से जा रहे थे तब तुमने हमसे कहा था कि मन में जैसी प्रेरणा आए, उसी के अनुसार चलना। हमें काशी मठ में रूकने की प्रेरणा नहीं मिल रही थी। लेकिन तुम चिट्ठी में हमें मठ में रूकने के लिये बारम्बार लिख रहे थे, इसलिये हमलोग तुम्हारे पास यह जानने आये है कि हमारे लिये अब क्या करना उचित है? यह सुनकर गुरूदेव ने हमें डांटते हुये कहा–**''मैं गुरू हूँ। मैं तुम लोगों को निर्देश दे रहा हूँ कि मठ में ही रहना होगा, लेकिन तुम लोग अपने मन से जो समझ में आ रहा है वह**

कर रहे हो। इस तरह मनमाने ढंग से चलने और भावुकता में वहने से कुछ भी उपलब्ध नहीं होगा। I warn you, whatever you have gained, you shall loose it all !

(भावार्थ—मैं तुम लोगों को सावधान कर देता हूँ कि इस तरह चलने पर तुम्हें जो कुछ भी प्राप्त हुआ है सब नष्ट हो जाएगा!)

मैं तुम लोगों को सावधान कर रहा हूँ! तुम लोगों को उत्सव पर्यन्त काशी मठ में ही रहना होगा!! उत्सव में मैं काशी जाऊँगा, उसी समय आवश्यकतानुसार व्यवस्था करूँगा।''

गुरूदेव एक-दो दिन बाद पूरी चले गये और हमें दुलाल दा (उनके पूर्वाश्रम के बड़े पुत्र) से यात्रा व्यय लेकर काशी जाने का निर्देश दे गये। दुलाल दा के पास उस समय रूपये नही थे, इसलिये हम कई दिन तक आश्रम मे ही रूके रहे। कुछ दिन बाद गुरूदेव ने पुरी से पत्र लिखा—

ॐ गुरू, **३०-६-६५**

परम स्नेहास्पदेषु,

प्रिय आलोक व अमल, पत्र पाकर तुम लोग तुरंत काशी रवाना हो जाना। दुलाल से रास्ते का खर्च तथा ट्रेन भाड़ा ले लेना। ११ बजे की लोकल ट्रेन से आसनसोल जाकर सियालदह-पठानकोट पकड़ लेना, वह बनारस केंट रात्रि को लगभग बारह बजे पहुँच जायेगी। रात को स्टेशन पर ही रूकना और सुबह मठ चले जाना।

आशीर्वाद देता हूँ— मन स्थिर हो ! आसन स्थिर हो! नियमित साधना करो।

आशीर्वादक—बाबा

गुरूदेव का पत्र पाकर हमलोग दुलाल दा से मार्ग व्यय लेकर काशी मठ चले आये। यहां सेवाकार्य में योगदान करने लगे। **इस घटना से हमें यह ज्ञान अवश्य हो गया कि चाहे जितनी भी अंतर्प्रेरणा या निर्देश क्यों न मिले, गुरूदेव के निर्देशानुसार कार्य न करने से मानसिक अशांति और कष्ट भुगतने ही होंगे । कई साधकों से इस संबंध में बात करने पर पता लगा कि साधकों के सामने मन की ऐसी अवस्था आती ही है। ठाकुर श्री रामकृष्ण देव की यह उक्ति इस संबंध में स्मरणीय है—''सभी कहते है कि मेरी घड़ी ठीक चल रही है, लेकिन समय-समय पर सूर्य के साथ अपनी घड़ी मिला लेनी चाहिये।'' गुरूदेव से मिलकर उनसे निर्देश प्राप्तकर हमारे मन का संशय दूर हो गया।**

मठ आने के कुछ दिनों बाद हमने माँ मणि को पत्र लिखा, जिसका उत्तर इस प्रकार प्राप्त हुआ—

श्री श्री गुरवेः नमः,
पुरीधाम,

स्नेहास्पदेषु,
१२ श्रावण, बुधवार

आलोक व अमल, तुम लोगों का पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। तुम लोगों की प्रार्थना श्री श्री गोसाँई जी को पहुँचा दी है। उन्होंने कहा है कि जिस दिन पूरे २४ घंटे श्वास-प्रश्वास में नाम-जप चलेगा, एक श्वास भी व्यर्थ नहीं जायेगी, उस दिन 'प्रेम-भक्ति' प्राप्त होगी। सर्वदा नाम करने की चेष्टा करना। श्री गुरू की कृपा से सब संभव है । 'गुरूकृपा हि केवलम्।' मेरा शरीर ठीक नहीं है। पत्र देते रहना। गोसाँई जी तुम लोगों का कल्याण करें और उनकी कृपा से तुम्हारा जीवन धन्य हो। इति।

शुभाकांक्षी—माँ मणि

एक दिन हमें खबर मिली कि श्री श्री माँ आनंदमयी अपने बनारस आश्रम में पधारी हैं । हमने उनकी पुस्तकें पढ़ी थी और उनसे मिलने की प्रबल इच्छा हमारे अंदर थी। १५ जुलाई, ६५ की शाम को हम उनसे मिलने उनके आश्रम पहुँचे। काफी अंतराल के बाद वे आश्रम आई थी इसलिये उनके दर्शन के लिये बहुत लोग वहाँ पहुँचे थे। हमने विचार किया कि संध्या आरती के पहले ही हमें मठ वापस लौटना है। लेकिन यहाँ लाईन में जाकर दर्शन करने से बहुत समय लगेगा। अतः आश्रम के एक साधु को हमने बताया कि हमलोग श्री विजयकृष्ण मठ से आये है और माँ से मिलना चाहते हैं, क्या आप उन्हें खबर कर सकते हैं? साधु ने हमें रूकने के लिये कहा। कुछ देर बाद वे लौट कर आये और हमें माँ आनंदमयी के कमरे में ऊपर ले गये। माँ खाट पर बैठी थीं । पास ही एक कुर्सी पर एक वृद्धा संन्यासिनी भी बैठी थीं। अन्य एक-दो लोग भी वहां बैठे थे, जिन्हें माँ ने बाहर जाने के लिये कहा और दरवाजा बंद करने के लिये भी कहा। हमने उनके पैर छूकर प्रणाम किया। उन्होंने कहा कि तुम लोग साधु ब्रह्मचारी हो। पैर छूकर प्रणाम मत करो। हमने कहा, आप माँ है, आपको इस प्रकार प्रणाम क्यों न करें? हमारी बात सुनकर वे हँसने लगीं। हम बहुत देर तक उनके साथ चर्चा करते रहे। हमने उनसे पूछा कि हमारे ऊपर गुरूकृपा कब होगी? माँ ने बताया कि गुरूकृपा तो तुम्हें प्राप्त हो चुकी है। हमने फिर पूछा कि हमलोग तो कुछ भी नहीं समझ पा रहें हैं? माँ यह सुनकर खुब हँसी, फिर बोली **''सब ठीक चल रहा है—समय आने पर सब समझ जाओगे ।''** उसके बाद माँ ने हमारा परिचय पूछा। उनके पास लगभग आधे घंटे से कुछ अधिक समय तक हम रहे। अचानक हमारे मन में विचार आया कि बाहर अनेक भक्त माँ के दर्शन के लिये प्रतीक्षारत् है, अतः और देर करना ठीक नही है। हमने पुनः उनके चरण छूकर प्रणाम किया और चलने के लिये अनुमति मांगी। उन्होंने कहा कि पैर मत छूओ, मैं तुम लोगों के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देती हूँ। ऐसा कहकर, माँ ने हम दोनों के सिर

पर लगभग एक-डेढ़ मिनिट तक हाथ रखकर, आशीर्वाद दिया।

माँ आनंदमयी के पास से मठ आते तक हमने अनुभव किया कि नाम-जप स्वतः चल रहा है तथा मन में एक प्रकार की जो शुष्कता आ गई थी, वह अब नही है। इस तरह १५-२० दिन तक ऐसा लगता रहा कि नाम-जप अपने आप निरंतर चल रहा है। पुस्तकों में पढ़ा था कि सिद्ध महात्माओं के सत्संग तथा आशीर्वाद से नाम-जप अपने आप सहज एवं सरलता से चलता है। माँ आनंदमयी के पास जाने पर इसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ।

एक दिन हमें ज्ञात हुआ कि श्रीमत् ब्रह्मचारी मोहनानंद जी महाराज दून एक्सप्रेस से बनारस होते हुये जा रहे हैं। हम उनके दर्शन लाभ के लिये बनारस स्टेशन पहुँचे। वहाँ बहुत भीड़ थी हम लोगों ने दूर से ही उनका दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया। वे ट्रेन के कोच के द्वार पर खड़े थे। हमें देखकर उन्होने हमें अपने पास बुलाया। ऐसा करने पर भीड़ के बीच से उनके पास तक जाने का रास्ता अपने आप बन गया। हमने उनके पास जाकर अच्छी तरह से उनका दर्शन कर उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने हमें पहले फूलों की माला पहना दी और उसके बाद हमारे माथे पर भभूति का टीका लगाया। उन्होंने हमें फल और मिठाई भी दी। लगभग दो-तीन मिनिट तक हमसे बातें भी की। इस घटना के लगभग १५ वर्ष बाद कोलकाता में डोवर लेन में उनसे फिर भेंट हुई। हमने उन्हे बताया कि एक बार आपके दर्शन पहले भी हो चुके हैं। इस पर उन्होने कहा–"हाँ, याद है, बनारस में मिलना हुआ था।" हमें आश्चर्य हुआ कि १५ वर्ष की लंबी अवधि के बाद भी उन्होंने हमे देखते ही पहचान लिया। उन्होंने हमें आशीर्वाद देकर प्रसाद दिया।

इस बार मठ आने के बाद हमने दो पत्र गुरूदेव को रामचन्द्रपुर आश्रम लिखे। पत्रों की विषय वस्तु संक्षेप में इस प्रकार थी–

प्रथम पत्र–

मठ में स्थापित गोसाँई जी की मूर्ति की सेवा-पूजा कर रहा हूँ। ऐसा लगता है कि पत्थर की सेवा-पूजा कर रहा हूँ। इस तरह सेवा-पूजा से क्या होगा? भजन-साधना किस प्रकार की भावना के साथ करना चाहिये?...इत्यादि।

द्वितीय पत्र–

आत्मसमर्पण का क्या अर्थ है। संपूर्ण निर्भरता किसे कहते है और यह अवस्था किस प्रकार प्राप्त हो सकती है?...इत्यादि। गुरूदेव ने इन पत्रों के उत्तर में दो पत्र लिखे। पहला पत्र इस प्रकार था–

ॐ गुरू, २६-६-६५

कल्याणवरेषु,

बेटा, तुम्हारा पत्र मिला। तुम लोग जिस पीठ स्थान में हो वहाँ वहुत से व्यक्तियों को श्री गोस्वामी प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है। यह लाभ मुझे भी प्राप्त हुआ है। मैंने और नंददुलाल ने, नंददुलाल की दीक्षा के दिन श्री श्री गुरूदेव (श्री दरवेश जी महाराज) के साथ, श्री श्री गोस्वामी प्रभु और श्रीश्री योगमाया देवी का प्रत्यक्ष दर्शन किये हैं।

नाम जप करते रहो। सभी कार्य ठाकुर की सेवा जानकर करो। सभी वे हैं। वे सर्वमय हैं। उनका प्रकाश सर्वत्र अनुभव करो।

स्वयं को दीन, असहाय जानकर उनके चरणों में पूर्ण समर्पित हो जाओ। तुम लोग ठीक जगह पर हो, वहीं रहो। यहीं तुम लोगों को सिद्धि प्राप्त होगी। मठवासियों के साथ रहकर, व्यर्थ आलोचना, परनिंदा-चर्चा में मत पड़ना। मठ की सेवा के साथ-साथ भजन-साधना करते रहो । सभी पर श्रद्धा रखना। यथा संभव नीरवता का अवलंबन करना। जिससे चित्त हमेशा उनका आविर्भाव अनुभव कर सके।

आशीर्वादक—बाबा

पुनश्च:

संत मिलारेपा की जीवनी महतं महाराज के नाम से रजिस्टर्ड डाक से भेजी है।

गुरूदेव का द्वितीय पत्र इस प्रकार था—

ॐ गुरू, २१-७-६५

कल्याणवरेषु,

बेटा, तुम लोगों का पत्र मिला। गुरू के ऊपर निर्भर रहना आवश्यक है। गुरू जो भी कहें उसका पालन बिना विचार किये, करना होगा। कोई प्रश्न या कोई तर्क नहीं चलेगा। आत्मसमर्पण करते ही निर्भरता की भावना अपने आप आ जायेगी। भजन-साधना नियमित रूप से करो । नियम आदि का पालन करते रहो। जो कहता हूँ, करते जाओ। बाकी सब मेरा दायित्व है।

गुरूदेव तुम लोगों का मंगल करें। निरापद में रहकर भिक्षा की चिंता के बिना, भजन-साधना के लिये तुम लोगों को पवित्र पीठस्थान प्राप्त हुआ है । वहां रहकर गोसाँई जी की सेवा करके कृतार्थ हो जाओ।

मेरा काशी आना निश्चित है यदि अस्वस्थ न रहा तो। अभी रक्तचाप २००-८० है। निर्देश होने पर तो आना ही होगा। स्वास्थ्य उसमें बाधक नहीं है।

मेरा आशीर्वाद है कि तुम लोगों को जीवन के चरम व परम लक्ष्य की प्राप्ति हो।

आशीर्वादक-बाबा

नित्य तीन बार गंगा स्नान व मठ के सेवाकार्य में कई माह व्यतीत हो गये। झूलन पूर्णिमा (रक्षाबंधन) का अवसर आ गया। गुरूदेव निर्दिष्ट तिथि को पधार गये और पांडे धर्मशाला में ठहरे। हमलोग संबुद्धानंद जी के साथ उनसे मिलने गये। मन में भय था, क्योंकि गुरूदेव के किसी भी निर्देश का पालन हमलोग ठीक प्रकार से नहीं कर सके थे। गुरूदेव को प्रणाम करते ही उन्होंने हम तीनों को देखकर कहा–तुम **लोगों की आंतरिक व बाह्य उन्नति देखकर मैं बहुत संतुष्ट हूँ। मुझे अनुभव हो रहा है कि तुम लोग बिलकुल ठीक हो।**

संबुद्धानंद ने कहा–''आप जो भी उन्नति देखिए मैं तो अपने गुरू आश्रम रामचन्द्रपुर जाना चाहता हूँ।'' गुरूदेव ने उन्हें और कुछ महिने यहीं रूकने के लिये कहा। फिर गुरूदेव ने हमसे पूछा कि तुम लोग क्या करोगे? कहाँ रहोगे ? क्या विचार किया है? हमने उत्तर दिया कि हमलोग मठ या आश्रम में नहीं रह सकेंगें। हमलोग तुम्हारे आसपास ही किसी जगह रहना चाहते हैं। अभी पंचकोट पहाड़ पर रहेंगे। गुरूदेव ने कहा– ठीक है जाने से पहले मंहत जी को सूचित कर देना।

दरवेश जी महाराज के शिष्य डा. प्रभात भौमिक गुरूदेव से मिलने आये। कुछ दिन पहले उन्होंने हमसे कहा था कि तुम लोग भाग्यशाली हो सद्गुरू की कृपा तुम्हें प्राप्त है। असीमानंद दादा ने जब दीक्षा दी है तो सब ठीक हो जायेगा। तुम लोग नियमित साधना करते जाओ। समय पर सब कुछ ठीक हो जायेगा। हमने उनसे प्रश्न किया था कि यदि समय आने पर स्वतः सब ठीक होना है तो भजन-साधना और नियम आदि की क्या आवश्यकता है? वे उस समय हमारे प्रश्न का उचित उत्तर नहीं दे सके थे। आज गुरूदेव के पास हमें बैठा देखकर, उन्होंने गुरूदेव से हमारा प्रश्न पूछा। गुरूदेव ने कहा–''**समय आने पर सब हो जायेगा यह ठीक है, लेकिन जो लोग नियमित साधना करेंगे और नियमों का पालन करेंगे, उनका प्रारब्ध थोड़े-थोड़े भोगों द्वारा ही समाप्त हो जावेगा। मन में उद्वेग और अशांति कम रहेगी। जो लोग निर्देशानुसार नहीं चलेंगे, उन्हें शारीरिक व मानसिक पीड़ा अधिक भोगनी होगी।**''

इसी तरह के प्रश्न के उत्तर में एक बार गुरूदेव ने रामचन्द्रपुर आश्रम में कहा था कि ''**मान लो मैंने तुम लोगों से कहा कि मुराडी स्टेशन जाकर अमुक कार्य करके आओ। उस समय वर्षा हो रही है, खुब आंधी तूफान है। मैं तुम लोगों को इनसे बचने के लिये रेनकोट और छाता लेकर जाने के लिये कहता हूँ। तुम लोग मेरी बात नहीं मानते और कहने लगे कि हमें यह सब नहीं चाहिये। हम इसी प्रकार चले जायेंगे।**

तुम लोग स्टेशन चले जाते हो और काम करके भी वापस आते हो, लेकिन रास्ते में, आदेश न मानने से वर्षा और तूफान का कष्ट तो तुम्हें सहना ही पड़ेगा। मेरी बात मानकर यदि रेनकोट, छाता आदि साथ में रखते तो रास्ते में इतना कष्ट नहीं होता। ठीक इसी प्रकार साधना के नियम आदि मानकर, गुरू के आदेशानुसार चलने से साधना पथ में क्लेश नहीं होता और इसी कारण गुरू के निर्देशों का महत्व है। इसी कारण साधना के विधि एवं निषेध आदि बतलाये जाते हैं। इनका पालन करने से मन में साम्य भावना रहती है।''

गुरूदेव से उक्त चर्चा के बाद हमें नियम आदि मानने की प्रयोजनीयता समझ में आ गई। उत्सव के बाद गुरूदेव वृंदावन चले गये। महंत जी को सूचित कर हमलोग भी निकल पड़े। हमारे पास एक पैसा भी नहीं था। पैदल जाने के लिये ही निश्चय किया था किंतु उसी समय स्वामी निर्मलानंद जी एवं नलिनी दा ने हमें मार्ग व्यय दिया। जिससे हमलोग रामचन्द्रपुर आश्रम पहुँच गये। रामचन्द्रपुर आश्रम आने के बाद, एक दिन हमलोग पंचकोट पहाड़ पर भी भ्रमण करने गये। कुछ दिन बाद गुरूदेव वापस आये। उन्होंने हमसे पूछा कि तुम लोग तो पहाड़ पर जाने वाले थे क्या हुआ? आलोक ने बताया कि हाँ, हमलोग वहीं जायेंगे। गुरूदेव ने पूछा–क्या वहाँ जाकर देख आये हो कि वहाँ रहने की क्या व्यवस्था है? मैंने बताया कि हमलोग वहाँ गये थे। वहाँ एक शिव मंदिर है। गुरूदेव ने पूछा कि मंदिर में कपाट है? मैंने बताया–नहीं। इस पर गुरूदेव डांटते हुये बोले–''**फिर वहाँ कैसे रहोगे? वहाँ पहाड़ पर बड़े-बड़े सर्प हैं। कभी-कभी शेर भी आता है। तुम लोगों में भावुकता बहुत अधिक है।**

आलोक ने कहा कि वृंदावन में विभिन्न स्थानों पर रहकर अनुभव हुआ है कि किसी भी एक स्थान पर लगातार रहने से भोजन की ठीक व्यवस्था हो जाती है। तो क्या उसी तरह गोसाँई जी के दर्शन के लिये किसी भी एक स्थान पर यदि लगातार पड़े रहें तो उनके दर्शन हो सकते हैं?

गुरूदेव ने कहा– मन की ऐसी अवस्था आने पर वे स्वयं व्यवस्था करेंगे। आलोक ने फिर पूछा– क्या भजन-साधना करने के लिये इसीलिये कहा जाता है जिससे संपूर्ण समर्पण की भावना पैदा हो?

गुरूदेव ने कहा–"हाँ"।

मैंने कहा– हमलोग इसी भावना के साथ किसी स्थान पर पड़े रहना चाहते हैं। तब गुरूदेव ने कहा–यह सब करने के लिये तुम्हें हिमालय की ओर जाना ही अच्छा होगा । क्योंकि इस तरफ लोगों की भीड़ ज्यादा है। यहां हर समय विषय-वासनाओं का धुंआ उठता रहता है। फिर गुरूदेव ने पूछा कि तुम लोगों ने रघुनाथपुर की गुफा देखी है? आलोक कहा– नहीं देखी।

गुरूदेव ने कहा– तुम लोग एक काम करो। चिदानंद के साथ पहले रघुनाथपुर

में भुवन के घर जाओ । वहाँ से फिर गुफा देखकर वापस आओ। यदि गुफा ठीक लगे, तो तुम लोग वहाँ भी रह सकते हो।

दूसरे दिन हमलोग चिदानंद के साथ भुवुन दा के घर गये और रात्रि में वहीं रूके। वे पेशे से डाक्टर थे तथा अपने सद्व्यवहार के कारण वहाँ बहुत लोकप्रिय थे। वे गरीब लोगों से कोई शुल्क नहीं लेते थे तथा उनकी औषधि एवं पथ्य की व्यवस्था भी वे स्वयं करते थे। रघुनाथपुर के पास नंदबाड़ा गांव के निकट जयचंडी पहाड़ है। वहां पहाड़ पर एक गुफा में उड़ीसा क एक प्राचीन योगी बाबा ने लंबे समय तक योग साधना की थी। तभी से इस गुफा का नाम 'योगी गुफा' हो गया। गुफा के निकट स्थित ग्राम में गुरूदेव के अनेक भक्तों एवं शिष्यों के मकान हैं। उस समय 'योगी गुफा' में योगी बाबा के शिष्य एक संथाल साधु रहते थे। हमलोग इस गुफा में १५-२० दिन रहे। उसके बाद फिर यह स्थान अच्छा नहीं लगा। फिर यह विचार किया कि हरिद्वार या ऋषिकेश जायेंगे। हमलोग गुरूदेव के पास गये और उन्हें इस संबंध में बताया। गुरूदेव ने कहा कि तपस्या की दृष्टि से हिमालय उपयुक्त स्थान है। तुम लोग वहीं जाकर साधना करो।

दुर्गा पूजा के लिये अभी कुछ समय बाकी था। गुरूदेव ने पूजा तक हमें आश्रम में ही रूकने के लिये कहा। इस प्रकार हमलोग आश्रम में ही रूक गये। यहाँ हमलोग अधिक से अधिक समय गुरूदेव के पास ही रहने की चेष्टा करते थे। आश्रम से कहीं जाने तथा आश्रम वापस आने पर हमलोग हमेशा गुरू माँ को भी प्रणाम करते थे। उनसे कुछ अधिक बातचीत नहीं होती थी। गुरूदेव के महाप्रयाण के पश्चात् ही गुरूमाँ के पास हम लोगों का आना-जाना अधिक होने लगा। अभी जहां समाधि मंदिर है, उस समय गुरूदेव वहाँ अपने आसन वेदी पर बैठकर, प्रातःकाल लगभग एक घंटा ध्यान करते थे। हम लोगों को भी उन्होंने उस समय कमरे में बैठने की अनुमति दे दी थी। कमरे के दरवाजे आधे खुले रहते थे। हमलोग यथा समय कमरे में घुसकर दरवाजा पूर्व की तरह बंद करके बैठ जाते थे। उस समय मन मे एक अद्भूत शांति एवं आंनद का अनुभव होता था। नाम-जप अपने आप ही होता रहता था। लगभग एक घंटे बाद गुरूदेव चाय लेते थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि हमें भी चाय प्रसाद स्वरूप प्राप्त हो जाती थी। इसके पश्चात् गुरूदेव मंदिर में जाकर गीता पाठ एवं प्रातः-कीर्तन करते और फिर अपने कमरे में आकर पत्र आदि लिखते थे। उस समय भी हमलोग जाकर उनके पास ही बैठते थे। प्रातः आठ बजे वे जलपान करने के बाद चिकित्सालय का कार्य देखने निकल जाते और हमलोग जलपान करने के बाद स्नान के लिये पहाड़ के किनारे चले जाते थे। स्नान आदि से निवृत्त होकर पहाड़ के समीप किसी निर्जन स्थान पर लगभग ग्यारह बजे तक रहते थे। गुरूदेव अपने कमरे में जब वापस आ जाते, तब हमलोग भी वहाँ पहुँच जाते थे। मध्यान्ह

भोजन के पहले तक हमलोग गुरूदेव के पास ही रहते थे। उसके पश्चात मध्यान्ह में कुछ देर विश्राम करने के बाद हम लोग अपने कमरे में साधना करते थे। गुरूदेव तीन बजे कुछ देर के लिये फिर काम देखने चले जाते थे। उनके लौटने पर हम लोग फिर उनके पास जाकर बैठते और प्रायः रात्रि नौ बजे तक वहीं रहते थे। आश्रम के किसी भी कार्य, संध्या कीर्तन या आरती आदि में हमलोग कोई योगदान नहीं करते थे। गुरूदेव भी हम लोगों से कुछ भी करने को नहीं कहते थे। इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत होने पर आश्रमवासियों ने गुरूदेव से शिकायत की। तब गुरूदेव ने हम लोगों से कहा कि संध्या आरती के समय तुम लोग मंदिर में रहा करो और उसके बाद यहाँ आया करो । हम लोगों ने ऐसा ही करना शुरू कर दिया। आरती एवं स्त्रोत पाठ जैसे ही समाप्त होता, हमलोग गुरूदेव के पास आ जाते।

दिन व्यतीत होते गये और दुर्गा पूजा का समय आ गया। छुट्टियां प्रारंभ होने से विभिन्न स्थानों से शिष्य एवं भक्तों का आश्रम में आना शुरू हो गया। एकदिन हम लोग स्नान आदि से निवृत्त होकर अपने कमरे में जल्दी ही आ गये। तभी एक संन्यासी गुरूभाई आकर हमसे कहा, ''आज बहुत लोग अचानक आ गये हैं और भोजन पकाने का तेल कम है। स्टेशन के पास की दुकान से जाकर तेल खरीदकर ले आओ । आश्रम में इस समय ऐसा कोई नही है जिससे तेल मंगाया जा सके।'' उस समय आश्रम के पास कोई दुकान नही थी। हमलोग स्टेशन के पास की दुकान जाने के लिये राजी नहीं हुये। संन्यासी गुरूभाई नाराज हो गये और बोले कि यदि तुम लोग नही जाओगे तो मैं जाकर गुरूदेव को बता दूँगा। हम लोगों का विचार था कि इतनी छोटी बात गुरूभाई, गुरूदेव को नहीं बतायेंगे। अतः हमने उनसे कहा कि ठीक है तुम जाकर गुरूदेव को बता दो कि हमलोग तेल लेने नहीं जायेंगे। गुरूभाई उत्तेजित होकर बोले–''ठीक है मैं अभी जाकर उनसे बता देता हूँ।'' उनके जाने के थोड़ी देर बाद ही गुरूदेव की तेज आवाज सुनाई दी। गुरूदेव बहुत जोर से, लगभग चिल्लाते हुये कह रहे थे कि जो आश्रम में रहेंगे और काम नहीं करेंगे, उन्हें आश्रम से निकाल बाहर करो। गुरूदेव यह कहते हुये हमारे कमरे की ओर ही आ रहे थे। गुरूदेव ने आगे कहा कि ''जो भी आश्रम में रहेंगे, उन्हें काम करना ही पड़ेगा।'' वे पूछ रहे थे कि हमलोग कौन से कमरे में हैं?

गुरूदेव का यह रूप तथा उनकी उत्तेजित आवाज सुनकर हम समझ गये थे कि हमारी शिकायत उनके पास तक पहुँच गयी है। गुरूदेव की आने की आहट हमारे कमरे के समीप आती सुनाई पड़ी। हमने और कोई उपाय न देखकर दरवाजे की सांकल खोल दी और एक धूपबत्ती जलाकर आसन पर बैठ गये। गुरूदेव ने कमरे के पास पहुँचकर दरवाजे को धक्का दिया। दरवाजा खुल गया। वे कमरे में बिछी दोनों खाटों के बीच आकर खड़े हो गये। उस छोटे से कमरे में दोनों खाटों के बीच

में बहुत कम जगह थी। इतनी जगह भी नही थी कि हमलोग उतरकर नीचे खड़े हो सकें। गुरूदेव ने दरवाजा बंद करके बड़े ही सहज एवं शांत भाव से हमसे कहा–**'देखो आश्रम में सभी की निगाह तुम लोगों पर है। कुछ न कुछ काम कर दिया करो, जैसे भोजन के समय पत्तल, नमक, पानी परोसना आदि, समझ गये।'**

हमारे द्वारा हॉ बोलने के साथ ही, वे कमरे से बाहर निकल गये और दरवाजा पूर्ववत् बंद कर दिया। फिर तीव्र स्वर मे बोलने लगे, ''आश्रम मे बैठे-बैठे खाना और कोई काम न करना–ऐसा नहीं चलेगा। आत्मानंद! ऐसे आलसी लोगों को आश्रम से बाहर कर दो.......इत्यादि।'' इस तरह बोलते-बोलते गुरुदेव अपने कमरे में चले गये।

दो एक मिनिट में ही अकस्मात् यह घटना इस तरह घट गई कि गुरूदेव जब हमारे कमरे में आये तब न तो हम उठकर खड़े हो पाये और न ही उन्हें प्रणाम कर सके। गुरुदेव संकीर्ण जगह में खाटों के बीच खडे थे और हमारे पास खाट से उतरने का उपाय नहीं था। बाध्य होकर हमलोग उस समय खाट पर ही बैठे रहे। जो भी हो हमलोग गुरूदेव का बाह्य शासन एवं आन्तरिक स्नेह देखकर आवाक् एवं मुग्ध हो गये थे। उसके पूर्व हमने कभी गुरूदेव का ऐसा द्वैत भाव नही देखा था।

थोड़ी देर पश्चात् एक सज्जन आकर, हमें एक पत्र दे गये। रायपुर से माँ ने पूजा के अवसर पर विशेष रूप से आने के लिये पत्र लिखा था। हमने विचार किया कि आश्रम में गुरूदेव के साथ जो शांति एवं आनंद का अनुभव हो रहा है वह अब आगे प्राप्त नहीं होगा, क्योंकि अब यहाँ लोग, काम के नाम पर हमे तंग करेंगे। आश्रम में रहने का जो आकर्षण था वह कम हो गया। हमलोगों ने पत्र ले जाकर गुरुदेव को दिया और कहा कि रायपुर से माँ का पत्र आया है, हमलोग क्या करें?

गुरूदेव ने पत्र पढ़कर कहा कि आश्रम में पूजा व उत्सव तुम लोग पहले भी कई बार देख चुके हो। पूजा के अवसर पर यदि तुम लोग रायपुर पहुँचते हो तो इससे तुम्हारी माँ को बहुत आनंद एवं सुख की प्राप्ति होगी। अतः तुम लोग रायपुर चले जाओ । आलोक ने कहा कि हमारे पास यात्रा व्यय नहीं है। यदि तुम कोलकाता तक का किराया दे दो तो वहां से आगे किराये की व्यवस्था करके हमलोग रायपुर चले जायेंगे। गुरूदेव ने कोलकाता तक का किराया देकर कहा कि तुम लोग मध्यान्ह का प्रसाद लेकर आज ही चले जाओ । कोलकाता में रूकना नहीं और पूजा पर ही रायपुर पहुँच जाना। देर मत करना। पूजा की अवधि समाप्त होने के बाद हरिद्वार चले जाना।

गुरूदेव का आशीर्वाद लेकर हमलोग रायपुर आ गये। माँ उस समय काली-बाड़ी में पूजा करने गई थी। पूजा करते समय उनका मन हमारे लिये अकस्मात् ही बेचैन हो गया। उन्होंने वहां मन-ही-मन गुरूदेव से प्रार्थना किया कि यदि आप

वास्तव में मन की बात समझ सकते हैं, तो पूजा के अवसर पर दोनों पुत्रों को घर भेज दो। अंजलि प्रदान करने के बाद घर आकर जब माँ ने हम दोनों को देखा तो बहुत आनंदित हुई और बोली कि वास्तव में तुम्हारे गुरूदेव अंतर्यामी है। मैंने तुम्हारे आने की प्रार्थना उनसे की थी। उन्होंने मेरी प्रार्थना सुन ली। हम लोगों ने भी माँ को बताया कि गुरूदेव ने हमसे कोलकाता मे न रूकने एवं रायपुर पहुँचने में देरी न करने के लिये विशेष रूप से कहा था।

रायपुर कुछ दिन रूकने के बाद हमलोग भोपाल आ गये। हमारी दीदी उस समय वहाँ रहती थी। हम लोगों के घर छोड़कर चले जाने के बाद से उनका मन बहुत व्यथित था। हमने उन्हें माँ मणि के कुछ ग्रंथ पढ़ने एवं नामब्रह्म का जप करने के लिये कहा था। इस बार हम लोगों के वहां पहुँचने पर दीदी से ज्ञात हुआ कि इस बीच उन्हें एक स्वप्न दिखा था कि एक कमरे मे श्री श्री गोसाँई जी और गुरूदेव बैठे हुये हैं। गुरूदेव ने दीदी को जप करने के लिये एक मंत्र दिया। मंत्र सुनने के बाद ही उनकी नींद खुल गई और मंत्र विस्मृत हो गया। मंत्र विस्मृत होने से उन्हें बहुत कष्ट हुआ। कुछ देर बाद उन्हें नींद में पुनः स्वप्न में वही मंत्र सुनाई दिया। दीदी ने स्वप्न के संबंध में जब हमें बताया तो हमने उन्हें इस सम्बन्ध मे गुरूदेव को पत्र लिखने के लिये कहा। जिसके उत्तर मे गुरूदेव ने दीदी को लिखा था–

ॐ गुरू, **२४-१०-६५**

कल्याणी सुप्ति,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम सबको दशहरे पर आशीर्वाद। तुमने स्वप्न में जो मंत्र पाया है अभी उसी का जप करना। बाद में शुभ अवसर आने पर तुम्हारी दीक्षा होगी। जो नाम स्वप्न में मिला है, उसे लिखकर भेजना। यदि कुछ त्रुटि होगी तो सुधारकर भेज देंगे।

आलोक व अमल यहाँ-वहाँ न घुमे तथा हरिद्वार जाकर स्थिर होकर रहें। उनको यह बता देना।

तुम सभी को मेरा आशीर्वाद। तुम्हारी दीक्षा यथासमय होगी। इति।

आशीर्वादक–बाबा

इस पत्र को पाने के बाद ज। मंत्र दीदी को स्वप्न में मिला था उसे गुरूदेव को लिखकर भेजा गया। गुरूदेव ने मंत्र में सामान्य संशोधन करके तथा किस प्रकार उसका श्वास-प्रश्वास में जप करना है, बताते हुये, दूसरा पत्र लिखा और निर्देश दिया कि मंत्र का जाप हमेशा मन ही मन करते रहना। शुचि-अशुचि, पवित्र-अपवित्र, सभी अवस्थाओं में जप करना। इस प्रसंग में दीदी से संबंधित गुरूदेव के पत्र एवं घटनाओं का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। गुरूदेव के पत्र की प्राप्ति के कुछ महिनों

बाद जब पिताजी की मृत्यु का समाचार दीदी को मिला, तब उन्होंने गुरूदेव को पत्र लिखा था। उस पत्र के उत्तर में गुरूदेव ने दीदी को लिखा–

ॐ गुरू, **१५-१०-६६**

परमकल्याणी,

स्नेहमयी सुप्ति, तुम्हारा पत्र मिला। श्री श्री गोसाँई जी ने तुम्हारे लिये जो मंत्र बताया था। वहीं मैंने तुम्हें दिया है। उसी का जप करना तुम्हारे पिताजी की उर्ध्वगति के लिये आगामी सप्तमी को मैं प्रार्थना करूँगा। वे परलोक में शांति व आंनद से हैं। पितृ-लोक में हैं। तुम्हें मेरा आशीर्वाद। तुम्हारे मन को गुरूदेव शांति प्रदान करें। शोक मत करना।

आशीर्वादक–बाबा

दीदी जहाँ रहती थी वहां पड़ोस की कई लड़कियां, दीदी से गोसाँई जी के बारे में सुनकर जप करने के लिये उनसे मंत्र बताने का आग्रह करने लगी। दीदी ने गुरुदेव को सभी बातें विस्तार से लिखी। इस पत्र के उत्तर में गुरूदेव ने लिखा

ॐ गुरू, ५-४-६७

परमकल्याणी,

स्नेहमयी सुप्ति, तुम्हारा पत्र मिला। सभी जगह ईष्ट नाम-जप करते हुये प्रणाम करो । आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हें साधना पथ में आनंद लाभ हो।

आलोक व अमल का संन्यास हो गया है। वे ठीक हैं तथा आंनदपूर्वक हैं। यहाँ से १० किलोमीटर दूर एक गुफा में अन्य साधु और गुरू-भाईयों के साथ हैं।

जिन लड़कियों ने मंत्र के संबंध में जानना चाहा है, वे 'नाम ब्रह्म' का जप कर सकती हैं। आशीर्वाद भेज रहा हूँ। रायपुर से पत्र आया है वहाँ सब कुशल है।

स्नेहार्थी–बाबा

दीदी की बड़ी पुत्री बेबी को बचपन से ही विभिन्न स्वप्न दिखते थे। दीदी ने गुरुदेव को पत्र लिखकर यह सब बताया। तब गुरूदेव ने दीदी को पत्र लिखा जो इस प्रकार है–

ॐ गुरू, २९-९-६७

स्नेहमयी सुप्ति,

तुम्हारा पत्र मिला, आलोकानंद व अमलानंद का कोई पत्र नहीं मिला है। वे सेतु-बंध रामेश्वर और द्वारिका धाम घूमकर यहां वापस आयेंगे।

तुम्हारी पुत्री के बारे में जानकारी मिली। राधाकृष्ण व अन्य देवी-देवताओं के स्वप्न देखना अच्छा लक्षण है।

मंत्र का उच्चारण मुख से न हो ऐसी चेष्टा करना। मंत्र का जाप हमेशा मन ही मन करते रहना।

पुरी जाओ तो आश्रम अवश्य आना। मेरा आशीर्वाद।

स्नेहार्थी—बाबा

दीदी के पास गुरूदेव के उपरोक्त पांच पत्र थे। दीदी का गुरूदेव से जीवन पर्यन्त मिलना नहीं हो सका। एक बार हमने गुरूदेव से पूछा था कि दीदी ने स्वप्न में दीक्षा ली है और तुमने दीदी को श्वास-प्रश्वास में जप करने के लिये मंत्र लिखकर भेजा है, तो क्या वास्तव में उनकी दीक्षा हो गयी। हमारे प्रश्न के उत्तर में गुरूदेव ने कहा—**दीक्षा नहीं हुई है, लेकिन फिर भी कुछ शक्ति दी गयी है। समय आने पर उनकी दीक्षा प्राप्त हो जायेगी।**

गुरूदेव की महा समाधि के बाद दीदी जब रघुनाथपुर आई, तब श्री श्री गुरू माँ से उनकी तथा उनके बच्चों की दीक्षा एक साथ हुई। दीक्षा के समय श्री श्री गुरू माँ के पास दीदी एवं उनकी पुत्री बेबी को श्री श्री गोसाँई जी एवं गुरूदेव के दर्शन भी हुये थे। गुरूदेव ने पत्र में जो मंत्र लिखकर दीदी को भेजा था, वही मंत्र गुरू माँ ने दीदी को दिया जबकि दीदी ने गुरूदेव से स्वप्न में प्राप्त मंत्र के बारे में गुरूमाँ को कुछ भी नहीं बताया था।

षष्ठ परिच्छेद

हमलोग भोपाल कुछ दिन रूकने के बाद दिल्ली होते हुये हरिद्वार आ गये। ऋषिकेश से बद्रीनाथ के रास्ते पर स्थित ब्रह्मपुरी नामक स्थान, जहाँ हमलोग पहले भी ठहरे थे, वहीं पर हमलोग पहुँचे। यहाँ अक्टूबर से ही काफी ठंड पड़ने लगती है। यहाँ आकर हमने नियमित साधना प्रारंभ कर दी। साधना में बैठते ही मन में केवल एक ही बात आती रहती थी कि जब तक देह, मन एवं प्राण उनके चरणों मे समर्पित नहीं होंगे, साधना करने से कुछ भी नही होगा। हमने विचार किया कि इसके लिये हिमालय की किसी जगह पर हठपूर्वक पड़े रहना पड़ेगा। ब्रह्मपुरी मे हमने कुछ समय तक नियमित साधना का प्रयास किया, लेकिन साधना में मन स्थिर नहीं हुआ। पास में कुछ रूपये थे, अतः हम ऋषिकेश आ गये और रूद्रप्रयाग की टिकिट लेकर हिमालय के किसी स्थान पर जाने के लिये निकल पड़े।

देवप्रयाग वहाँ से लगभग ५० किलोमीटर दूर है। यहाँ पहुँचते-पहुँचते हमारा स्वास्थ्य इतना खराब हो गया कि बाध्य होकर हमें रूद्रप्रयाग के प्रवास का विचार त्याग देना पड़ा। हमलोग देवप्रयाग में ही गंगा किनारे बैठकर बहुत देर विचार करते रहे और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पूर्ण समर्पण की मानसिकता अभी हमारी नहीं है। गुरूदेव ने पत्र में लिखा था कि गुरू जो भी कहें उस पर विचार किये बिना, उसका पालन करना चाहिये और इस प्रकार गुरू के प्रति पूर्ण समर्पण से उन पर निर्भरता अपने आप आ जायेगी। विचार या उपाय करने से समर्पण का भाव पैदा नहीं हो सकता। स्थिर भावना से नियमित साधना किये बिना कुछ भी संभव नहीं है। माँ मणि ने भी कहा था कि कोई कुछ भी नहीं कर सकता है, समय आने पर वे स्वयं सब करवा लेंगे। देवप्रयाग में इस प्रकार विचार-मंथन के पश्चात् हमलोग ब्रह्मपुरी वापस आ गये और नियमित साधना का प्रयास शुरू किया। इस बार हमें अनुभव हुआ कि मन की चंचलता कम हुई है। हमने गुरूदेव को पत्र लिखा जिसका जवाब इस प्रकार प्राप्त हुआ :–

ॐ गुरू, **२३-११-६५**

स्नेहास्पदेषु,

बेटा तुम लोगों का पत्र मिला। तुम निर्विघ्न भजन-साधना में लगे रहो एवं आनंद की प्राप्ति करो, यही प्रार्थना है। मेरा स्वास्थ वैसा ही है। तुम लोग अपनी कुशलता के समाचार देते रहना। मैं हमेशा तुम लोगों के पास हूँ। अप्रेल के बाद उस तरफ आऊँगा, तब तुम लोगों से मिलूँगा।

आशीर्वादक—बाबा

लगभग एक माह पश्चात्, जिस मंदिर से हम लोगों के भोजन की व्यवस्था हुई थी, वहाँ बाहर के साधुओं को भोजन देना बंद कर दिया गया। ब्रह्मपुरी बहुत ही निर्जन स्थान है। वहाँ भोजन की कोई अन्य व्यवस्था नही थी। हमलोग स्वर्गाश्रम आ गये। वहाँ पहले काली कंबली ट्रस्ट गये, क्योंकि वहाँ बाहर से आये परिव्राजक साधुओं को तीन दिन तक खाने एवं ठहरने की व्यवस्था हो जाती है। उस समय उनका नियम था कि जो साधु वहाँ कुटिया में ठहरना चाहते हैं, उन्हें ५००० देने पर तभी उनके भोजन एवं रहने की व्यवस्था ट्रस्ट की ओर से होती है। जब तक साधु चाहे वहाँ रह सकते हैं। उन्हें ट्रस्ट से भोजन प्राप्त होगा। उनके चले जाने पर, वही कमरा अन्य साधु को ५००० रूपये लेकर दे दिया जाता था। इस तरह यद्यपि भक्त लोग साधुओ के रहने के लिये कमरे बना कर देते थे एवं साधुओं के लिये आटा, चावल आदि भोजन देते थे। किंतु ट्रस्ट के लोग उसका व्यापार करते थे। हमने वहां अनुभव किया कि साधारण साधुओं के लिये कोई व्यवस्था नहीं है। गीता भवन आदि स्थान, यद्यपि शीतकाल में खाली पडे रहते हैं फिर भी वहाँ अपने परिचितों को छोडकर अन्य किसी को ठहरने नहीं दिया जाता था। दो-चार जगह घूम-फिर कर देखा सभी जगह प्रायः एक समान स्थिति थी। बाहर से वहाँ पहुंचे दर्शनार्थियों से साधुओं के नाम पर पैसा लिया जाता है, लेकिन साधुओं के लिये कोई व्यवस्था नहीं की जाती थी। जिन साधूओं के पास अर्थबल होता, उन्हीं के लिये ठहरने एवं खाने की व्यवस्था होती थी। किसी भी स्थान पर ठहरने की व्यवस्था न होते देख, हम लोगों ने लक्ष्मण झूले के नीचे, एक घाट पर आश्रय लिया। शीतकाल होने से वहाँ बहुत अधिक ठंड थी। शाम को एक साधु हमारे पास आये और हमसे चर्चा करने लगे। उन्होंने यहाँ एक धर्मशाला के बारे में बताया। जहाँ प्रतिदिन भिखारियों को भोजन दिया जाता था। साधु ने हमसे कहा कि सर्दी का मौसम है, घाट पर खुले में रहना ठीक नहीं है। उन्होंने हमारे लिये वहीं एक छोटे बद्रीनारायण मंदिर में ठहरने की व्यवस्था कर दी और दिन में एक बार उन्हीं के अन्न क्षेत्र से भोजन की व्यवस्था भी करवा दी। वे भिखारियों को भोजन देने के पहले हमें भोजन दे देते थे। इस तरह लगभग एक माह व्यतीत हो गया। एक दिन हमलोग शंकराचार्य नगर में श्री महेश योगी से मिलने गये। उन्होंने हमारे ठहरने एवं भोजन की व्यवस्था के बारे में भी पूछा। फिर कहा– 'इस तरह रहने से तो तुम लोगों का स्वास्थ्य खराब हो जायेगा। इस प्रकार की कठिन साधना करके अधिक समय तक यहां रहना संभव नहीं है। तुम लोग हमारे यहाँ आ जाओ । तुम्हें भावातीत ध्यान Transcendental Meditation की कुछ महिने का प्रशिक्षण देकर मैं तुम लोगों को अमेरिका भेज दूँगा। वहाँ तुम लोग ध्यान की शिक्षा देना।'

हमने उनसे निवेदन किया कि हम लोगों को जो दीक्षा मिली है उस पर

हमारा पूर्ण विश्वास है इसे छोड़कर अन्य किसी साधना की हमें कोई इच्छा नहीं है।

हमने उनसे पूछा कि आपके बतलाये ध्यान के माध्यम से क्या मीराबाई, तुलसीदास या सूरदास जी की तरह भगवत् दर्शन प्राप्त हो सकते हैं? इस पर महेश योगी जी ने कहा–''**नहीं, वह तो बहुत उच्च अवस्था की बात है। मैं तो सहज ध्यान-शिक्षा को स्कूल एवं महाविद्यालयों में प्रसारित करना चाहता हूँ। यह ध्यान करने से छात्रों का जीवन संयमित हो जावेगा। ध्यान का आनंद पाकर उनकी उच्छृंखलता उद्दंडता कम हो जायेगी। विदेशों में कई विश्वविद्यालयों में हमने ध्यान-शिक्षा के पाठयकम प्रारंभ कर दिये हैं। विदेश में लोग ध्यान की आवश्यकता को समझ चुके हैं और उसका लाभ भी प्राप्त कर रहे हैं।**''

श्री महेशयोगी जी के साथ हमारा वार्तालाप बहुत देर तक चलता रहा। उन्होंने साधक लोंगो के लिये जो कुटीर बनाये थे, वे भी हमें दिखलाये। उनका व्यवहार बहुत अच्छा था एवं उनका उद्देश्य भी महान् है,.इसमें संदेह नहीं है। मध्यान्ह में अपने साथ भोजन के लिये उन्होंने हमसे आग्रह किया, किंतु उस दिन हमलोग भोजन कर चुके थे, अतः उनका अनुरोध हमें विनम्रतापूर्वक अस्वीकार करना पड़ा। श्री महेश योगी जी, जगत्गुरू शंकराचार्य श्रीमत् स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती जी के शिष्य हैं। उनका यह परिचय पाकर हमने उन्हे बताया कि हमारे बड़े भाई भी इस प्रकार आपके गुरूभाई हैं। यह जानकर वे अत्यंत प्रसन्न हुये और हमसे बोले कि 'तुम लोग विचार कर लो तथा जब भी आना चाहो हमारे यहां आ सकते हो।' हमारी साधना से उनकी साधना का उद्धेश्य भिन्न है। अतः हम उनके अनुरोध को स्वीकार नही कर सके। किंतु उनसे मिलकर बहुत आनंद आया। हमने विचार किया कि गुरूदेव की यह कैसी अद्भूत परीक्षा है कि एक ओर तो ठहरने की कोई व्यवस्था नहीं, खाने के लिये कुष्ठ रोगियों एवं भिखारियों के अन्न क्षेत्र से एक समय का भोजन प्राप्त होता है और दूसरी ओर ठहरने के लिये एवं भोजन के लिये राजसिक व्यवस्था है। यहां तक कि विदेश जाने के लिये अवसर भी मिल रहा है। इस समय हमने गुरूदेव को जो पत्र लिखा था, उसका उत्तर इस प्रकार प्राप्त हुआ–

ॐ गुरू, **९-१२-६५**

कल्याणवरेषु,

बेटा, तुम लोगों का पत्र मिला। मैं कल ही दिल्ली जा रहा हूँ। १३ को कानपुर तथा उसके बाद काशी, मुजफ्फरपुर, पटना, तथा गया जाऊँगा और २७ को आश्रम वापस लौटूँगा। जनवरी से मार्च के अंत तक आश्रम में ही रहूँगा।

तुम लोगों को मेरा आशीर्वाद। सभी दुःख एवं कष्टों का अतिकम करके, परमानंद की प्राप्ति के लिये, साधना में अटल रहो। मैं हमेशा साथ हूँ।

आशीर्वादक–बाबा

कुछ दिनों के बाद ऋषिकेश में साधुओं के एक अन्न क्षेत्र से शाम के भोजन की व्यवस्था भी हो गई। इस प्रकार सुबह भिखारियों के अन्न क्षेत्र से तथा शाम को ऋषिकेश के अन्न क्षेत्र से खाने की व्यवस्था कछ दिनों तक चली। इसके बाद ऋषिकेश में एक दिन एक साधु के अत्यंत आग्रह के कारण वहाँ भोजन एवं रहने की अचानक व्यवस्था भी हो गई। उस समय इस अनचाही व्यव़स्था के संबंध में हमने गुरूदेव को पत्र लिखा। उत्तर में गुरूदेव का पत्र इस प्रकार प्राप्त हुआ–

ॐ गुरू, **८-१-६६**

कल्याण वरेषु,

तुम्हारा पत्र मिला । तुम लोगों की व्यवस्था गुरूदेव ने की है। उनके ऊपर निर्भर रहने पर तुम्हें कछ कष्ट नहीं होगा। नाम का जप करो । हमेशा नाम-जप करते रहो। सब व्यवस्था अपने आप होती जायेगी। नाम तुम लोगों पर कृपा करें। संग्राम में विजयी हो और साधना में सिद्ध हो।

आशीर्वादक–बाबा

उस समय ऋषिकेश मे साधुओं के लिये कई अन्न क्षेत्र चलते थे। लगभग २००० साधुओं को एक समय का भोजन वहाँ प्राप्त होता था। अन्नक्षेत्र में चार रोटी और दाल एक साधु को दी जाती थी। ऋषिकेश में अनेक ऐसे आश्रम है जहां रहने के लिये कुटिया या कमरा मिल जाता है। भोजन की व्यवस्था अन्न क्षेत्र से करनी पड़ती है। गुरूदेव के जन्मदिन पर हमने उन्हें एक पत्र लिखा था। जिसका उत्तर गुरूदेव ने इस प्रकार दिया :-

ॐ गुरू, **१६-२-६६**

परम कल्याण वरेषु,

स्नेहमय अमल व आलोक, तुम लोगों का स्नेहपूर्ण पत्र प्राप्त हुआ। तुम लोगों का आधार उत्तम है। मन को स्थिर करो । मन स्थिर न होने से उस पर स्थिर प्रतिबिंब कैसे बनेगा? मन स्थिर करके नाम जप करने का प्रयास करो । एक निर्दिष्ट स्थान में बैठकर तपस्या करते रहो तुम्हें निश्चित रूप से प्रत्यक्ष दर्शन मिलेंगे। आँख में यदि कचरा पड़ जाये या ''केट्रेक्ट '' (मोतियाबिंद) हो जाये अथवा अन्य किसी कारण से दृष्टि कमजोर हो जाये तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता है।

साधना करते हुये स्थूल देह के नेत्र बंद होकर अंदर के नेत्र खुल जायेंगे और तभी ज्ञान चक्षुओं से दर्शन लाभ प्रारम्भ होगा।

चिंता मत करना, पवित्र हिमगिरी पर रहकर साधना में व्यस्त रहो। देह बुद्धि को विस्मृत कर दो। मैं हमेशा साथ हूँ। मेरा आंतरिक आशीर्वाद तुम्हें प्राप्त हो।

आशीर्वादक–बाबा

गुरूदेव का पत्र प्राप्त कर हमने उन्हें फिर एक पत्र लिखा, जिसका उत्तर इस प्रकार प्राप्त हुआ–

ॐ गुरू, **२५-२-६६**

परम कल्याण वरेषु,

स्नेहमय आलोक व अमल, तुम लोगों का पत्र मिला। मन स्थिर रखकर वहीं भजन-साधना करो। मैं संभवतः वहाँ मई में आऊँगा, तब भेंट होगी।

तुम लोगों की याद प्रतिदिन करता हूँ। तुम्हारी साधना सिद्ध हो। सब कुछ भूलकर, केवल उनका नाम जपते हुये, पड़े रहो। कुशलता के समाचार अवश्य देते रहना।

स्नेहार्थी—बाबा

हम लोग ऋषिकेश में कुछ दिन एक आश्रम में रहे, फिर गंगा किनारे पुरानी झाड़ी में भी लगभग एक माह रहे। उसके बाद एक साधू ने हमें एक कमरा ठहरने के लिये दिया। वे २-३ माह के लिये तीर्थ-भ्रमण को निकल रहे थे, इस कारण हमसे वहां रूकने के लिये अनुरोध किया था। यहां हम लोग लगभग ५-६ महीने रहे। उस समय हमारे संन्यासी गुरूभाई स्वामी शंकरानंद, संबुद्धानंद व ब्रह्मानंद कुंभ दर्शन के बाद वृंदावन गये और वहां से ऋषिकेश आकर हमारे पास रूके। वे कुछ दिन हमारे साथ ही रहे फिर उनकी अलग रहने की व्यवस्था हो गयी। वे वहाँ लगभग १-१½ माह तक रहे। उसी समय कोलकाता से श्री के. के. दास एवं सुबोध दा (गुरूभाई) बद्री-केदारनाथ दर्शन के लिये वहाँ पहुँचे। दास दा ने हमें पहले ही पत्र से सूचना दे दी थी और यह भी लिखा था कि वे हमें भी बद्री-केदारनाथ दर्शन के लिये ले जायेंगे। दास दा के ऋषिकेश पहुँचने के पूर्व ही हमें गुरूदेव का एक पत्र मिला जिसमें उन्होंने लिखा था—

ॐ गुरू, **७-५-६६**

परम कल्याणीय,

तुम लोगों का पत्र मिला। ठाकुर तुम सभी का मन स्थिर करें। आसन स्थिर हो। आसन में निष्ठा उत्पन्न हो। शुद्धा भक्ति प्राप्त हो। तुम सब भाईयों को मेरा आशीर्वाद। मैं ठीक हूँ। कुशलता के समाचार देते रहना। के. के. दास आदि १३ मई को निकलकर संभवतः १५ मई को ऋषिकेश पहुँचेंगे।

स्नेहार्थी—बाबा

हम सब लोग दास दा के साथ पहले बद्रीनाथ के लिये निकले एवं जोशी मठ तक बस से यात्रा की । उसके बाद लगभग २८ मील पैदल चलकर हम लोग बद्रीनाथ पहुँचे। पदयात्रा के समय, मार्ग का दृश्य बहुत ही मनोरम था। बद्रीनाथ जी के दर्शन करके हमें बहुत अच्छा लगा। इस कारण हम दोनों वहीं रूक गये। शेष सभी लोग वहां दर्शन करके दास दा के साथ केदारनाथ के लिये रवाना हो गये। दास दा हमें ऋषिकेश लौटने का किराया दे गये थे।

बद्रीनाथ मे उस समय अधिक भीड़ नहीं थी। काली कंबली ट्रस्ट की ओर से वहाँ भी साधुओं के ठहरने के लिये कुटियाँ बनी हुई है। भोजन के लिये भी अन्न क्षेत्र की व्यवस्था है। हमें अलकनंदा नदी के किनारे एक कुटिया मिल गई। स्थान बहुत सुन्दर था किंतु भीषण ठंड के कारण मन में विचार आया कि यहाँ यदि आग व चाय की व्यवस्था हो जाये, तो बहुत सुविधा हो जाएगी। दास दा हमें बस का किराया तो दे गये थे, परन्तु यदि हम उसे खर्च करते हैं तो वापिस जाने में असुविधा होगी। इसलिये हम वह रूपया खर्च नहीं करना चाहते थे। दूसरे दिन सुबह हम लोग शौच-स्नान आदि के लिये बाहर निकले। आलोक जिस तरफ गया था, वहाँ उसने देखा कि १० रूपये के दो नोट नीचे पड़े हैं। इतनी सुबह वहाँ किसी का आना संभव नही था। दोनों नोट काफी कुहरा होने के बावजूद गीले नहीं हुये थे। जो भी हो गुरूदेव का दान समझकर आलोक ने दोनों नोट उठा लिया। ये दो नोट पाकर हमें काफी सुविधा हो गयी, क्योंकि इनसे आग और चाय की व्यवस्था हो गयी थी। बद्रीनाथ में हम लोग १० दिन रहे । उन दिनों वहाँ 'मौनी बाबा' नाम के एक साधु पहाड़ के गुफा में हर समय रहते थे। शीतकाल में भी जब चारों ओर सब कुछ बर्फ से ढक जाता था, तब भी वे वहाँ केवल चाय पीकर एवं उबले आलू खाकर रहा करते थे। हम लोग उनके दर्शन करने के लिये भी गये। उन्होंने हमें थोड़ी सी चाय पत्ती दी और आशीर्वाद भी दिया। स्थानीय लोगों से मालूम हुआ कि वे वहाँ लगभग ४० वर्षो से रह रहे थे।

१० दिन की ठंड में ही हमारा स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। तब हम लोगों ने ऋषिकेश वापस लौटने का विचार किया। हम लोग जब बस स्टेंड पहुँचे तो पता चला कि जोशी मठ तक का मार्ग भूस्खलन के कारण बंद है और इसलिये कई दिन तक मार्ग पर बस चलने की संभावना नहीं है। अतः हम लोग जोशी मठ तक पैदल ही आ गये और जोशी मठ से बस द्वारा ऋषिकेश वापस पहुँचे। ऋषिकेश पहुँचकर ज्ञात हुआ कि दास दा आदि सभी लोग रामचन्द्रपुर आश्रम वापस लौट गये हैं। केदारनाथ जाते समय रास्ते में ब्रह्मानंद अस्वस्थ हो गये थे और इस कारण उन्हें वही रूकना पड़ा था। बाद में वे पैदल ऋषिकेश लौट कर आये। ऋषिकेश मे अन्न क्षेत्र का भोजन खाकर वे और भी दुर्बल हो गये। उस समय किसी के पास भी रूपये नहीं थे। अंत में वे दून एक्सप्रेस से, बिना टिकिट ही रामचन्द्रपुर चले गये। शंकरानंद भी केदारनाथ से लौटने के बाद अत्यधिक दुर्बल हो गये थे। यहाँ तक कि उन्हें कमजोरी के कारण चक्कर आने लगे थे। इसी हालत में वे ऋषिकेश से कानपुर लौट गये। इसी समय हमने गुरूदेव को एक पत्र लिखा जिसके उत्तर में गुरूदेव ने हमें जो पत्र भेजा वह इस प्रकार था–

ॐ गुरू, २६-६-६६

परम कल्याण वरेषु,

तुम लोगों का पत्र मिला। ज्येष्ठ महीने की ''मंदिर'' पत्रिका भेज रहा हूँ। तुम लोग मन स्थिर रखो और भजन-साधना करते रहो।

मेरा शरीर काफी अस्वस्थ है लेकिन तुम चिंता करके परेशान मत होना। ब्रह्मानंद कहाँ है?

तुम लोगा का मंगल हो। अपनी कुशलता के समाचार देते रहना। तुम्हारी माँ (श्री गुरू माँ) अस्वस्थ है तथा संभवतः कोलकाता में मेडिकल कालेज हास्पिटल में भर्ती है। बूढ़ा (नित्यदुलाल स्वामीजी के पुत्र) माँ की देखभाल कर रहा है। मुझे कोई विशेष जानकारी नहीं है। शेष कुशल।

स्नेहार्थी-बाबा

गुरूदेव को हमने पत्र में यहां के सब समाचार लिखे। उसका जबाब इस प्रकार प्राप्त हुआ–

कल्याण वरेषु, ११-६-६६

तुम लोगों का पत्र मिला। ब्रह्मानंद वापस आश्रम आ गया है। उसे कान्तोड़ (दरवेश जी महाराज द्वारा स्थापित भजन आश्रम) भेज दिया है। वह अब ठीक है। मैं भी ठीक हूँ। गुरूदेव तुम लोगों का मंगल करें।

आशीर्वादक–बाबा

बद्रीनाथ से वापस ऋषिकेश आने पर हमारी भजन-साधना पूर्ववत चलने लगी। इस समय माँ मणि को भी हमने एक पत्र लिखा था। उसका उत्तर भी माँ मणि से प्राप्त हुआ। माँ मणि का, हम लोगों के लिये लिखा गया यह अंतिम पत्र था :

ब्रजधाम, पुरी २०-६-६६

स्नेहास्पदेषु,

बेटा, आलोक व अमल, तुम लोगों का पत्र यथा समय मिल गया था। तुम लोग बद्रीनाथ गये थे, जानकर प्रसन्नता हुई। नाम का आश्रय लेकर गुरू के आदेश का पालन करते जाओ। किसी बात का भय मत करो। श्री श्री गोसाँई जी तुम लोगों की हमेशा रक्षा कर रहे हैं। धैर्य व विश्वास के साथ साधना पथ पर बढ़ते रहो। कृपा लाभ होगा। मुझे, गोसाँई जी की कृपा प्राप्त करने और संपूर्ण रूप से उन्हें प्राप्त करने में, ३६ वर्ष धैर्य धारण करना पड़ा। यह बात हमेशा ध्यान में रखना। निराश होकर हतोत्साहित मत होना। मेरा स्वास्थ्य बहुत खराब है। तुम्हारे यहाँ के स्वामी परमेश्वरानंद जी तुम लोगों का परिचय देकर मेरे पास आये थे। उनके ठहरने की व्यवस्था श्री श्री

गोसाँई जी के समाधि आश्रम में कर दी है। उनसे तुम लोगों की कुशलता एवं विशेष कर यह जानकर कि, तुम लोग पूरी निष्ठा के साथ साधना कर रहे हो, असीम आंनद प्राप्त हुआ।

श्री श्री गोसाँई जी एवं श्रीश्री माता ठकुरानी का आशीर्वाद तथा गोपाल का प्यार।

नित्य मंगलाकांक्षी—माँ मणि।

बद्रीनाथ से लौटने के बाद मेरा स्वास्थ्य कुछ खराब हो गया था। वर्षा ऋतु में यहाँ का पानी हर किसी के स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं होता। अतः पेट की गड़बड़ी शुरू हो गई। धीरे-धीरे ज्वर एवं पेट के रोग से मैं अधिक अस्वस्थ हो गया। इस हालत मे अन्न क्षेत्र का भोजन खाकर पेट और अधिक खराब हो गया। तब एक साधु ने मार्ग व्यय दिया, जिससे हम लोग ऋषिकेश से हरिद्वार आकर श्री भोलागिरि आश्रम में ठहर गये। वहाँ दूसरे दिन मैं श्री रामकृष्ण मिशन हास्पिटल में भर्ती हो गया। इस समय आलोक ने गुरूदेव को पत्र लिखा, जिसका उत्तर हमें इस प्रकार प्राप्त हुआ—

ॐ गुरू, **२३-७-६६**

परम कल्याण वरेषु,

बेटा, तुम लोगों का पत्र मिला। समाचार जानकर चिंता हो गई है। वहाँ यदि तुम लोगों का स्वास्थ्य ठीक न रहे तो वापस आ जाना। यदि तुम लोगों की इच्छा हो, तो रायपुर जाकर स्वास्थ्य लाभ करने के उपरांत, आश्रम आ सकते हो। यदि ऐसी इच्छा न हो तो सीधे भी आश्रम आ सकते हो।

मैं २७-२८ अगस्त को काशी पहुँचूँगा। यदि तुम लोग चाहो तो काशी आकर आश्रम लौट सकते हो। मैं २-३ सितंबर को दिल्ली पहुँचूँगा। वहाँ से आश्रम वापस जाऊँगा। तुम्हें जैसी सुविधा हो और शरीर जिस प्रकार अनुमति दे, वैसा करना। तुम्हारे पुराने पते पर 'मंदिर' पत्रिका भेजी थी। तुम कुछ दिनों तक भोलानंदगिरि महाराज के आश्रम में ही रहो। अमल के स्वस्थ हो जाने पर तुम अपने कार्यक्रम से अवगत कराना।

मेरा आशीर्वाद है शीघ्र आरोग्य लाभ करो। आश्रम में नियमित रूप से अपने समाचार देते रहना।

स्नेहार्थी—बाबा

गुरूदेव का पत्र मिलते ही अनुभव हुआ कि शरीर काफी स्वस्थ हो गया है। स्वस्थ होते ही हम लोग वापस ऋषिकेश पहुँच गये और वहां से गुरूदेव को पत्र लिखा पत्रोत्तर में गुरूदेव ने लिखा—

ॐ गुरू, **१-८-६६**

परम कल्याण वरेषु,

पत्र मिला। हिमालय ही साधना के लिये श्रेष्ठ स्थान है। तुम लोग अस्वस्थ हो गये थे इसलिये वापस आने के लिये लिखा था। यदि पूर्ण स्वस्थ हो गये हो, तो वहीं रहकर भजन-साधना करो। तुम लोगों ने संन्यास नहीं लिया है इसलिये यदि इच्छा हो, तो वर्ष में एक बार माता-पिता से मिलने जा सकते हो।

आशीर्वाद देता हूँ कि मन एकाग्र व अंतर्मुखी हो।

आशीर्वादक—बाबा

इसी समय श्री श्री सीताराम दास ओंकारनाथ जी ने ऋषिकेश में गंगा के तट पर आश्रम की स्थापना की। हमारे साथ उनका पूर्व परिचय था। उस समय हम लोग जहां रहते थे वहाँ से यह आश्रम काफी पास था। एक दिन हम लोग उनसे मिलने गये। हमने देखा कि स्थान बहुत मनोरम है और वहाँ पूरे समय अंखड तारक ब्रम्ह (हरेकृष्ण) नाम संकीर्तन चल रहा है। उस समय वहाँ अधिक भीड न होने से, उनके पास बैठने एवं उनसे बातचीत करने का पर्याप्त सुअवसर प्राप्त हुआ। वे यह जानकर काफी प्रसन्न हुये कि हम लोग अभी ऋषिकेश में ही है। उन्होंने कहा कि अपनी भजन-साधना के समय को छोड़कर, जब इच्छा हो, किसी भी समय यहाँ आ जाना।

हम लोग प्राय: उनके पास जाकर बैठा करते थे। उसी समय दिनांक १९ अगस्त, ६६ को शाम के समय उनके साथ बहुत चर्चा हुई। पहले हमने उन्हें प्रणाम करके कहा कि आप आशीर्वाद दीजिये जिससे गुरू भक्ति प्राप्त हो एवं नाम-जप में रूचि पैदा हो। वे बहुत प्रसन्न हुये और हमें आशीर्वाद भी दिया। मैंने उनसे पूछा कि माँ मणि कि पुस्तक में आपका एक पत्र छपा है, जिसमे आपने गोसाँई जी के दर्शन प्राप्त करने के लिये प्रार्थना की थी। क्या आपको गोसाँई जीं के दर्शन हुये?

उन्होंने कहा—''**नहीं, अभी तक नहीं हुये किंतु अब मन में कोई लालसा भी नहो है। हो सकता है मेरा ह्रदय शुष्क व कठोर समझ कर गोसाँई जी दर्शन नहीं दे रहे हैं। ऐसा कहकर वे हँसने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा कि माँ मणि की लिखी सब बातों पर मुझे पूर्ण विश्वास है। मैं उन की सभी बातों को सत्य मानता हूँ। उनका प्रत्येक उपदेश मेरे ह्रदय में अंकित है। असीमानंद जी के साथ मेरा हर समय आंतरिक संबंध है। वर्णाश्रम के संबंध में वे थोड़े उदार हैं। विभिन्न प्रसंगों के संबंध में चर्चा करते हुये उन्होंने कहा— मेरे गुरूदेव ने निर्देश दिया है कि वर्णाश्रम धर्म की पुन: प्रतिष्ठा एवं नाम का प्रचार ही मेरा प्रमुख कार्य है। उनके निर्देशानुसार ही मैंने यह कार्य प्रारंभ किया। गुरूदेव के देह त्याग के उपरांत मुझे ऐसा अनुभव होने लगा था कि अब मन में पहले जैसा उत्साह नहीं रहा है। अंत में पुरी जाकर मैंने काष्ठ मौन व्रत लेकर दिन रात भगवत् दर्शन एवं उनसे निर्देश प्राप्ति के लिये व्याकुल भाव**

से प्रार्थना प्रारम्भ की। एक दिन श्री श्री जगन्नाथ देव ने दर्शन दिये और कहा कि 'जाओ, जाकर नाम प्रचार करो एवं वर्णाश्रम धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिये प्रयास करो।' तब से वही कर रहा हूँ। इसका परिणाम क्या होगा? वर्णाश्रम धर्म स्थिर रहेगा या नहीं? यह विचार करने का अधिकार मुझे नहीं है। मैं उनके निर्देशानुसार काम कर रहा हूँ। श्री गुरूदेव जिसको जैसा आदेश दें, उसक लिए वही करना उचित है। उन्होंने बताया कि जब दिल्ली में गौ हत्या के विरोध में देश भर से साधुगण एकत्रित हुये थे और असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया था, उस समय करपात्री जी महाराज ने मुझसे इस आंदोलन में सकिय योगदान के लिये कहा था। मैंने उनसे कहा कि, गौ हत्या बंद होना अन्यंत आवश्यक है, इस पुण्य कार्य में मेरा पूर्ण समर्थन है। किंतु आंदोलन में मेरा सकिय योगदान संभव नहीं है। क्योंकि गुरूदेव ने मुझे वर्णाश्रम धर्म की पुनः प्रतिष्ठा एवं नाम प्रचार का प्रयास करने का आदेश दिया है। मैं गौ हत्या बंद होने के लिये भगवान से नित्य प्रार्थना करूँगा तथा हमारे यहाँ से प्रकाशित पत्रिकाओं में भी गौ हत्या बंद करने के लिये निवेदन करूँगा। ऐसा कहकर वे हमसे बोले कि अच्छा बताओ तो, मैंने ठीक किया कि नहीं? मेरे गुरूदेव का निर्देश पालन मेरे लिए सर्वोपरि है।

श्री श्री ओकारनाथ जी हमें यह सभी बातें इतने अंतरंग भाव से बता रहे थे जैसे हम लोग उनके मित्र हों। उन्होंने बताया कि करपात्री जी से भेंट होने के बाद वे नित्य प्रार्थना में गौ हत्या बंद करने के लिये प्रार्थना करने लगे।

करपात्री जी के संबंध में उन्होंने प्रसंगवश बताया कि एक दिन करपात्री जी ने कहा कि बंगाली लोग तारकब्रह्म नाम का उच्चारण शुद्ध नहीं करते। वे कृष्ण को कृष्णो और राम को रामो कहते हैं। तब मैंने उनसे कहा कि हिंदी भाषी भी राम और कृष्ण का उच्चारण गलत करते हैं। ये लोग राम न कहकर राम् कहते हैं। राम नाम के उच्चारण में 'म्' पूर्ण रूप से उच्चारित होना चाहिये अर्थात (म् + अ = म)। बंगाली लोग पूर्ण उच्चारण करने के बाद उसके साथ ओकार का योग करके रामो बोलते हैं। करपात्री जी मेरी बात सुनकर बोले कि आप ठीक कह रहे हैं हिंदी भाषी भी राम का उच्चारण अशुद्ध करते हैं।

एक दिन सीताराम दास जी ने अपने गुरूदेव के पुत्र एवं अपने स्वयं के पुत्र श्री रघुनाथ से हमारा परिचय कराया। एक दिन वर्णाश्रम के संबंध में कथा प्रसंग में उन्होंने कहा—**देखो, वर्ण व आश्रम को लेकर व्यक्तिगत रूप से मेरा कोई संस्कार नहीं है। गायत्री मंत्र के ॐकार उच्चारण करने के साथ ही समाधि लग जाती है। तर्पण और तिलक करने के लिये चेष्टा करते ही हाथ का जल हाथ में रह जाता है और शरीर समाधिस्थ हो जाता है। शरीर अपने वश में नही रहता। ऐसी स्थिति में वर्ण या**

आश्रम का पालन करना संभव है क्या? किंतु गुरूदेव का निर्देश है इसलिये उसकी पुनः प्रतिष्ठा की चेष्टा कर रहा हूँ।

हम लोग जब भी उनके पास जाते, वे लौटते समय हमें फल आदि देते थे। एक दिन हम उन्हें बिना बताये ही वापस आ गये। दूसरे दिन आश्रम पहुँचते ही उनके शिष्यों ने हमें बताया कि कल आप लोग बिना बताये चले गये। गुरूदेव रात को हम लोगों को डांट रहे थे कि हम लोगो ने आपको फल और प्रसाद क्यों नही दिया। आप लोग आज से दया करके जब भी वापस जाय, हमें बता दिया करें।

एक दिन दोपहर को उन्होंने अपने आश्रम में ही हमें प्रसाद लेने के लिये कहा। हम लोग यथासमय आश्रम पहुँच गये। बहुत दिनो बाद उस दिन उन्होंने अच्छी तरह गंगा स्नान किया इसलिये मध्यान्ह प्रसाद ग्रहण करते-करते लगभग दो बजं गये। हमें देखकर वे बहुत व्यग्र हो उठे और अपने कमरे में ही अपने पास बैठाकर हमें भोजन देने के लिये शिष्यों को उन्होंने कहा। हमारे साथ उन्होने भी भोजन किया। प्रसाद ग्रहण करने के बाद वे बार-बार कह रहे थे कि आज मैंने तुम लोगो को भोजन के लिये बहुत देर करवा दी जिससे तुम लोगों की भजन-साधना का समय भी नष्ट हुआ।

हमने उन्हे बार-बार निवेदन किया कि हमारी भजन-साधना में कोई क्षति नहीं हुई है हम लोग आपके पास बैठकर नाम कीर्तन सुन रहे हैं। यह भी साधना है।

एक दिन हम उनके पास बैठे थे, उसी समय उनके पास श्रीरामकृष्ण मिशन के एक साधू आये। चर्चा के समय उन्होंने प्रश्न किया कि वर्तमान समय में ब्रह्मचर्य के नियम ठीक से पालन करना क्या संभव है और क्या इन नियमो का पालन करने से ऊर्ध्वरेता अवस्था प्राप्त की जा सकती है?

श्री ओंकारनाथ जी उनकी बात सुनकर उत्तेजित हो उठे एवं उन्होंने कहा—शास्त्र में जो लिखा है वह सब सत्य है। मैं अपने जीवन में परिक्षित सत्य कह रहा हूँ। आज भी ब्रह्मचर्य के नियम पालन करने से वही अवस्था प्राप्त की जा सकती है! अवश्य की जा सकती है!!

कुछ रूकने के बाद कामिनी-कांचन त्याग एवं लोगसंग अर्थात परनिन्दा, परचर्चा आदि त्याग के संबंध में उन्होंने विशेष रूप से कहा। उसके बाद उन्होंने आहार के विधि-निषेध के पालन पर भी विशेष ध्यान देने के लिये कहा। उन्होंने अंत में कहा कि सात्विक, निवेदित एवं परिमित आहार करने पर उसका अनुकूल प्रभाव शरीर एवं मन पर निश्चित रूप से पड़ता है।

ऋषिकेश में मेरा स्वास्थ्य ठीक न होने पर हमने गुरूदेव से मिलने के लिये पुनः पत्र लिखा जिसके उत्तर में गुरूदेव ने लिखा—

ॐ गुरू, **१३-८-६६**

परम कल्याण वरेषु,

वेटा, तुम लोगों का पत्र मिला। मैं संभवतः ३ सितबर को दिल्ली पहुँचूँगा और के. सी. मजुमदार के घर ठहरूँगा।

मेरा शरीर ठीक नहीं है। यदि स्वास्थ्य अधिक खराब हुआ तो हो सकता है, जाना स्थगित हो जाये। किंतु अभी तक तो जाने का विचार है।

तुम लोगों का मेरा स्नेह व आशीर्वाद, के. के. मजूमदार के घर भेंट होगी।

आशीर्वादक–बाबा

गुरूदेव का पत्र प्राप्त करते ही हम लोगों ने निश्चय कर लिया कि हम लोग दिल्ली में गुरूदेव से भेंट करने के बाद ही रायपुर जायेंगे। उस समय अज्ञात कारण से रायपुर जाने के लिये मन अचानक थोड़ा व्यग्र हो गया था। हमने रायपुर आने की खबर भी भेज दी थी और रायपुर से कुछ दिनों बाद ही मार्ग व्यय के लिये राशि भी प्राप्त हो गयी थी। हमने श्री श्री ओंकारनाथ जी से भेंट करके उन्हें भी गुरूदेव के दिल्ली आगमन की सूचना दी और बताया कि हम लोग उनसे मिलने दिल्ली जा रहे हैं। तब उन्होंने कहा कि तुम लोग अपने गुरूदेव से मेरी ओर से हाथ जोड़ कर प्रार्थना करना कि वे कृपा करके ऋषिकेश पधारें और मुझे दर्शन दें। उन्होंने हमसे यह भी पूछा कि हमारे पास मार्ग व्यय है या नहीं। उन्होंने हमसे बिना टिकिट यात्रा न करने के लिये भी कहा। हमने उन्हे बताया कि मार्ग व्यय रायपुर से आ गया है। हमारी बात सुनकर उन्होंने अपने एक दिल्ली वासी शिष्य को बुलाकर कहा कि स्वामी असीमानंद जी दिल्ली आ रहे हैं, उनका पता इन लोगों से ले लो तथा दिल्ली में स्वामी असीमानंद जी से भेंट कर ऋषिकेश आने के लिये अनुरोध करना।

ऋषिकेश में हम लोग श्री श्री ओंकारनाथ जी का सानिध्य पाकर अत्यंत उपकृत हुये। हम उनका आशीर्वाद लेकर २९ अगस्त को दिल्ली मजूमदार दा के घर पहुँच गये।

सप्तम परिच्छेद

गुरूदेव निर्धारित तिथि को दिल्ली पहुँच गये। हमने उन्हें श्री श्री ओंकारनाथ जी के संबंध में बताया। गुरूदेव ने कहा कि कुछ दिनों बाद यहाँ से मैं हरिद्वार जाऊँगा तब ऋषिकेश जाकर उनसे भेंट करूँगा।

गुरूदेव से बातचीत के समय उन्होंने हमसे यथाशीघ्र रायपुर चले जाने के लिये कहा। हमने उनसे निवेदन किया कि रायपुर जाते समय भोपाल मे दीदी के पास जाकर वहां कुछ दिन रूककर, हम लोग रायपुर जाने का विचार रखते हैं। तब गुरूदेव ने कहा कि भोपाल केवल एक रात रूककर सीधे रायपुर चले जाना और वहाँ से आकर रामचन्द्रपुर आश्रम में मुझसे मिलना।

गुरूदेव के निर्देशानुसार भोपाल में एक रात रूककर हम लोग रायपुर पहुँच गये। वहाँ जाकर पता चला कि पिताजी मृत्यु शय्या पर पड़े हुये हैं। हमें लगा कि गुरूदेव ने इसलिये सीधे रायपुर जाने का निर्देश दिया था। पिताजी के बारे में ज्ञात हुआ कि उन्होंने लगभग २०-२२ दिनों से स्वेच्छा से अनाहार रहते हुये देह त्यागने का संकल्प लिया है। हमने पिताजी से कहा कि तुम्हारे शरीर में कोई रोग नही है, फिर अनाहार रहकर आत्महत्या (suicide) क्यों करना चाहते हो ? शास्त्रों में आत्महत्या को महापाप कहा गया है। तुम भागवत, गीता आदि का पाठ करते हो फिर भी इस तरह आत्महत्या क्यों कर रहे हो?

हमारी बात ध्यान से सुनने के बाद पिंताजी ने कहा–**तुम लोग गलत समझ रहे हो। मैं सुसाईड (आत्महत्या) नहीं कर रहा हूँ। कामना एवं वासना पूर्ण न होने पर लोग सुसाईड करते हैं। मेरी तो सभी कामनायें पूर्ण हो चुकी है। उम्र बढ़ रही है और शरीर कमशः दुर्बल व अशक्त होता जा रहा है। मैं ईश्वर का नाम लेकर, संपूर्ण समर्पण करते हुये, पड़ा हुआ हूँ। शास्त्रों में इस तरह के देह त्याग के अनेकों दृष्टांत हैं। इसे प्रायोपवेशन द्वारा देह त्याग करना कहते हैं।**

हमने पिताजी को तरह-तरह से समझाने का बहुत प्रयास किया किंतु वे अपने संकल्प पर अटल रहे। अंत में कोई उपाय न सूझने पर डाक्टर को बुलवाया गया। उन्होंने पिताजी की हालत देखकर तुरंत अस्पताल ले चलने के लिये कहा। अस्पताल ले जाने के बाद भी पिताजी ने आहार ग्रहण नहीं किया जबकि इसके लिये डाक्टरों ने बहुत प्रयास किये। अंत में नाक के माध्यम से दूध एवं ग्लुकोस सेलाईन (Glucose saline) देने का प्रयास किया गया। रक्त भी चढ़ाया गया किंतु जीवन के प्रति उनकी इच्छा नष्ट हो जाने से उन्हें आरोग्य नहीं किया जा सका।

पिताजी के पास अस्पताल में रात को एक दिन मैं रहता था और दूसरे दिन रात को आलोक। उस समय माँ एवं बहिनों को पास आने के लिये पिताजी ने मना कर दिया था। वे कहते थे इनके पास आने से मुझे फिर से मोह पैदा हो सकता है। दिन के समय उनके पास अन्य भाई रहा करते थे।

एक दिन पिताजी ने हम लोगों को आशीर्वाद देते हुये कहा—**तुम लोग ठीक रास्ते पर हो। मैंने भी स्वयं इस मार्ग पर जाने का प्रयास किया था लेकिन संभव नहीं हो सका। तुम लोगों के घर छोड़कर चले जाने के बाद मुझे दुःख अवश्य हुआ था क्योंकि तब मैं मोहग्रस्त था। अब मुझे किसी के प्रति कोई मोह नहीं है। मैं तुम लोगों को आशीर्वाद देता हूँ कि जिससे तुम लोग अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सको!**

१० अक्टूबर की रात्रि को आलोक पिताजी के पास था। रात्रि लगभग १२ बजे पिताजी ने आलोक से पीने के लिये पानी मांगा। पिताजी को पानी पिलाने के थोड़ी देर बाद आलोक ने देखा क़ि पिताजी की आँखें खुली हुई है, लेकिन शरीर में स्पन्दन नहीं है। उसने तुरंत डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने उन्हें देखने के बाद बताया कि कुछ क्षण पूर्व ही आपके पिताजी ने देह का त्याग कर दिया है। हमें पिताजी के देह त्याग का सही समय ज्ञात नहीं हो सका।

हमने गुरूदेव को सभी बातें विस्तार से लिखी और यह भी लिखा कि उनके देह त्याग का सही समय हमें पता नहीं चल सका है। पिताजी की आत्मा को गोसाँई जी की सद्गुरू प्रदत्त साधना की प्राप्ति के लिये हमने गुरूदेव से प्रार्थना की। कुछ दिनों बाद आश्रम से गुरूदेव का पत्र प्राप्त हुआ। उन्होंने लिखा था कि—

ॐ गुरू, **१५-१०-६६**

कल्याण वरेषु,

स्नेहमय पुत्र, तुम लोगों का पत्र मिला। तुम्हारे पिताजी की याद करके ही मैंने तुम लोगों को रायपुर जाने के लिये कहा था। तुम लोगों के परम पूज्य पितृदेव ने १० अक्टूबर को रात्रि १२.३० बजे देह त्याग किया है। उनकी पवित्र आत्मा इस समय पितृ लोक में अवस्थित हैं। तुम लोगों की प्रार्थना के अनुसार श्री श्री गोसाँई जी उन्हें अवश्य ग्रहण करेंगे। उनकी एक तस्वीर भेज दो। तुम्हारे मामा यदि तस्वीर का ब्लाक बनाकर उनकी संक्षिप्त जीवनी के साथ भेज दें तो अग्रहायण मास के मंदिर (आश्रम से प्रकाशित मासिक पत्रिका) में उसे प्रकाशित कराया जा सकेगा।

तुम लोगों का पत्र पाकर मेरे अंदर भी पितृ वियोग की व्यथा पुनः जागृत हो गयी। जन्म-मृत्यु किसी की भी इच्छा के अधीन नहीं है। उनका काल पूर्ण हो चुका था। भोग समाप्त हो गये थे, अतः वे चले गये। हम सभी इसी प्रकार कर्म समाप्त होने पर चले जायेंगे। शोक मत करना। शोक करने से परलोकगत आत्मा के

ऊर्ध्वलोक गमन में बाधा पड़ती है। प्रार्थना करना कि वे अतिशीघ्र पितृ लोक से स्वर्ग लोक उपनीत हो सकें।

तुम्हारे पितृदेव मुक्त पुरूष थे। उन्हें सांसारिक बंधनों ने आवद्ध कर लिया था। अब वे इन बंधनों से मुक्त हो गये हैं। मैं उनके ऊर्ध्वलोक गमन में सहायता करूँगा। उनकी पारलौकिक क्रिया ठीक प्रकार से सम्पन्न हो। आगामी १९ व २० अक्टूबर को पारलौकिक कृत्य होंगे। उस दिन सप्तमी तिथि है।

मेरा शरीर स्वस्थ नही है। दिल्ली जाने के बाद मैं अस्वस्थ हो गया था। हरिद्वार में और अधिक अस्वस्थता का अनुभव हुआ। वहाँ से सीधा काशी आया और काशी से पटना -मुजफ्फरपुर होते हुये झरिया, पुरूलिया, पुरी और कोलकाता होकर १२ अक्टूबर की रात्रि को आश्रम पहुँचा हूँ। १० तारीख को मैं झरिया में था। उस समय तुम लोगों की मुझे बार-बार याद आ रही थी, जिसके बारे में मैंने सभी लोगों को बताया भी था। उस दिन हमारे पास बहुत से लोग रात को एक बजे तक थे।

तुम लोग मेरी संवेदना एवं समप्राणता ग्रहण करो । माँ को सांत्वना देने के लिये मेरे पास शब्द नहीं है। तुम लोगों के मन को शांति प्राप्त हो।

स्नेहार्थी–बाबा

पिताजी का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

पिताजी का नाम धीरेन्द्रकृष्ण मुखोपाध्याय था। उनके परदादा जीवन के उत्तरार्ध में संन्यास लेकर बेलूड़ में गंगा किनारे स्वनिर्मित एक छोटे से आश्रम मे रहते थे। उनके पुत्र की कोई संतान नही थी, अतः उन्होंने माघ महिने की पूर्णिमा को अपने पुत्र से एक यज्ञ करवाया। उसके बाद की माघ पूर्णिमा को पिताजी का जन्म हुआ। पिताजी के पिताजी ने श्रीमत् स्वामी प्रेमानंद भारती जी से दीक्षा ली थी। पिताजी को बचपन में ही मातृ वियोग का कष्ट झेलना पड़ा। पिताजी जब ८-९ वर्ष के थे तब उनके पिताजी को स्माल पाक्स (small pox) हो गया।उन दिनों यह बीमारी अत्यधिक घातक थी। यह बीमारी होने पर लोग जीवित नहीं बच पाते थे। पिताजी के कोई अन्य रिस्तेदार न होने के कारण, उन्होंने मृत्यु के पूर्व ही अपने पुत्र का भार, गुरूदेव श्रीमत् प्रेमानंद भारती जी को सौंप दिया था। श्री भारती जी पिताजी को बहुत स्नेह करते थे। उन्होंने पिताजी की पढ़ाई-लिखाई की व्यवस्था की और उन्हें दीक्षा भी दी। १४-१५ वर्ष की आयु में पिताजी ने मेट्रिक पास किया। तभी श्री भारती जी गंभीर रूप से बीमार हो गये। मृत्यु के पहले उन्होंने अपने अंतरंग मित्र एवं गोसाँई जी के शिष्य श्री हेमेन्द्रनाथ मित्र को, पिताजी का दायित्व सौंप दिया। श्री मित्र जी ने बड़े ही स्नेह के साथ पुत्रवत् पिताजी का लालन-पालन किया और उनके अध्ययन की व्यवस्था की। उस समय गोस्वामी प्रभु के शिष्यों का समागम स्थल, मनोहर पुकुर रोड पर स्थित 'बागान बाड़ी' के नाम से प्रसिद्ध था। उस समय यहां गोसाँई जी के

मंदिर में प्रायः उत्सव आदि हुआ करते थे तथा गोसाँई जी के शिष्य यहाँ आते रहते थे। पिताजी ने अपनी कम उम्र में ही उन लोगों को देखा। हेमेन्द्रनाथ मित्र के पुत्र, पिताजी को दादा कहकर संबोधित करते थे तथा पिताजी पर उन्हें बहुत श्रद्धा थी। श्री मित्र जी उस समय कोलकाता के विख्यात वकील थे। वे पिताजी को लॉ पास कराने के बाद अपने साथ ही रखना चाहते थे। पिताजी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से लॉ प्रीवियस की परीक्षा उत्तीर्ण की। अचानक श्री मित्र जी बहुत अस्वस्थ हो गये। अतः पिताजी अध्ययन छोड़कर उनके पास वापस आ गये। कुछ दिनों बाद श्री मित्र जी का देहांत हो गया और पिताजी एक बार पुनः निराश्रित हो गये। श्री मित्र जी के पुत्रों ने पिताजी को अपने पास रखने का बहुत प्रयास किया लेकिन पिताजी फिर वहां नहीं रूके क्योंकि श्री मित्र जी के देहांत के बाद पिताजी का मन 'बागान बाड़ी' में नहीं लगा।

पिताजी अध्ययन छोड़कर कटक आ गये और आजीविका के लिये कुछ काम करने लगे। यहां हरिसभा एवं विभिन्न स्थानों पर कीर्तन आदि में वे प्रायः योगदान किया करते थे। उसी समय एक वृद्ध सज्जन से पिताजी का परिचय हुआ। उन्होंने पिताजी का पूरा परिचय प्राप्त करने के बाद अपनी एक मात्र कन्या के विवाह का प्रस्ताव पिताजी के समक्ष रखा। पिताजी ने उनसे कहा कि अभी विवाह करने की उनकी इच्छा बिलकुल नही है। तब वे बोले कि ठीक है अभी न सही, जब कभी भी विवाह की इच्छा हो उस समय इस वृद्ध ब्राह्मण के प्रस्ताव पर गौर करना। पिताजी ने उन्हें वचन दे दिया। पिताजी के मन में विचार आया कि मैं अभी मुक्त हूँ। अकारण संसार के बंधन में बंधने से मुझे क्या लाभ होगा? साधु-संन्यासियों के समान जीवन व्यतीत करना ही उचित होगा। किंतु यहां रहने से वे सज्जन बार-बार विवाह के लिये परेशान करेंगे, यह सोचकर पिताजी अपना काम काज छोड़कर, मध्य प्रदेश में नर्मदा किनारे आकर बस गये और साधुओं के समान जीवन यापन करने लगे। नर्मदा किनारे स्थित होंशागाबाद एक प्रमुख तीर्थ स्थान है। अनेक जगह घूमने के बाद पिताजी यहां एक हनुमान जी के मंदिर में रहने लगे। इस प्रकार भजन-साधना करते हुये लगभग डेढ़ वर्ष बीत गया।

एक दिन जब वे मंदिर में बैठे थे उन्होंने देखा कि उनके एक मित्र, जो उनके साथ लॉ पढ़ते थे, अपने परिवार के साथ वहाँ तीर्थ दर्शन के लिये आये हैं। पिताजी को साधू वेश में देखकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने पिताजी को बहुत समझाया और कहा कि इस तरह जीवन नष्ट करने से कोई लाभ नहीं है। तब पिताजी ने उन्हें बताया कि मेरा आत्मीय स्वजन कोई भी नहीं है इसलिये मैं व्यर्थ में संसार के बंधन में नहीं बंधना चाहता। मैंने तय कर लिया है कि इसी प्रकार सारा जीवन व्यतीत करूँगा। पिताजी के मित्र ने कहा कि वे एक माह बाद फिर यहाँ आयेंगे तब तक आप

और सोच-विचार कर लें। उन्होंने यह भी कहा कि मैं आपके भाई के समान हूँ, अतः आप मेरे साथ ही रहें।

मित्र के चले जाने के बाद पिताजी के मन में विचार प्रारंभ हुआ। वे नर्मदा किनारे विभिन्न स्थानों पर घूमते रहते थे। एक दिन घूमते-घूमते शाम को एक गृहस्थ के यहां अतिथि रूप में पहुँचे। बंगाली गृहस्थ, पिताजी को ब्राह्मण एवं अतिथि जानकर बहुत खुश हुये और उन्होंने पिताजी के रात्रि भोजन की व्यवस्था की। इस बीच पिताजी को ऐसा लगा कि घर में कोई अस्वस्थ है क्योंकि बीच-बीच में किसी के कराहने की आवाज उन्हें सुनाई दे रही थी। पिताजी ने इस संबंध में गृहस्थ से जानना चाहा किंतु उन्होंने कहा कि आप अतिथि हैं, आपकी सेवा करने के बाद ही म आपको सब बतलाऊँगा। कृपया अभी कुछ न पूछें।

गृहस्थ ने पिताजी को परम् आदर एवं श्रद्धा के साथ विभिन्न प्रकार के व्यंजन परोसते हुये भोजन कराया। भोजन करने के बाद पिताजी ने उनसे फिर वही प्रश्न किया। तब उन्होंने कहा– ''हम पति-पत्नी यहां रहते हैं। हमारी कोई संतान नही है। पत्नी को टायफायड हुआ है और लगभग २०-२५ दिन से वह बीमार है। मेरी पत्नी मृत्यु शय्या पर है। उसकी अंतिम इच्छा एवं अनुरोध था कि वह ब्राह्मण अतिथि के लिये स्वयं भोजन बनाकर उन्हें भोजन कराये। इसी समय भगवान ने आपको हमारे यहाँ अतिथि के रूप में भेजा है। मैंने पत्नी के इस पुण्य कार्य में बाधक बनना ठीक नहीं समझा। उन्होंने स्नान आदि करके शुद्ध होकर आपके लिये भोजन बनाया है। आपने हमारा आतिथ्य स्वीकार करके मेरी पत्नी की इच्छा को पूर्ण किया है। हम आपके आभारी हैं।''

गृहस्थ की बातें सुनकर पिताजी स्तब्ध हो गये। उन्होंने कहा कि हम साधु लोग साधारणतः स्वयं ही भोजन बनाकर ग्रहण करते हैं। आप भोजन बनाने के लिये मुझे कह सकते थे। आपने भोजन बनाने के लियें अपनी अस्वस्थ पत्नी को कष्ट दिया–क्या यह उचित है? गृहस्थ ने कहा– **हम लोग गृहस्थ हैं। अतिथि की सेवा हमारा परम धर्म है। मेरी पत्नी मृत्यु शय्या पर है और कुछ दिनों में ही वह देह त्याग देगी। मैंने केवल उसकी इच्छा एवं अनुरोध को पूर्ण करने की चेष्टा की है।**

पिताजी फिर और कुछ नही कह सके। उन्होंने रात्रि में वहीं विश्राम किया, और दूसरे दिन वहाँ से निकल गये। इस घटना ने उनके मन में विशेष परिवर्तन उत्पन्न किया। उन्होंने विचार किया कि पिछले कई वर्षों में उन्हें साधू-संन्यासियों के साथ रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ है किन्तु अब तक उन्होंने ऐसा कोई भी साधु नहीं देखा जिनमें, उस गृहस्थ की तरह, अपने जीवन का उत्सर्ग करके किसी के लिये निस्वार्थ सेवा की भावना हो। बल्कि सामान्य वस्तुओं एवं विषय-सम्पत्ति के लिये कई बार साधुओं के बीच लड़ाई-झगड़ा, मार-पीट, यहाँ तक कि मुकद्मे बाजी, करते हुए

भी उन्होंने देखा था। अतः उन्हें लगा कि इस तरह के साधारण साधू-जीवन से तो उस गृहस्थ की तरह, निस्वार्थ भाव से गृहस्थ-जीवन बिताना निःसंदेह श्रेष्ठ है। ऐसा निस्वार्थ भाव, उच्च आध्यात्मिक अवस्था का लक्षण है, उसमें संदेह नहीं।

एक माह बाद पिताजी क मित्र वापस आये और उन्हें अपने साथ ले जाने के लिये आग्रह करने लगे। अंत में पिताजी ने उनसे कहा कि मैं किसी पर बोझ नहीं बनना चाहता हूँ। तब मित्र ने कहा कि अभी आप हमारे साथ हमारे घर में रहते हुये मेरे बच्चों को पढ़ाकर, अपना खर्च चलायेंगे। बाद में कानून की डिग्री पास करने के बाद, आप जहाँ चाहे वहां विधि व्यवसाय कर सकते हैं। हमें कोई असुविधा नहो होगी।

पिताजी उनके साथ नागपुर आ गये व कानून की पढ़ाई पूरी की। बाद में रायपुर जिले के बलौदा बाजार मे उन्होंने वकालत प्रारंभ की। कुछ दिनों में ही उनका कार्य भली भांति चलने लगा। अब उनके मित्रों ने उन्हें बार-बार गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के लिये अनुरोध किया। पिताजी ने उनसे कहा कि वे विवाह के लिये असहमत नहीं है लेकिन कटक के एक वृद्ध ब्राह्मण सज्जन को उन्होंने वचन दिया है कि जब भी विवाह करने की इच्छा होगी, उन्हें सूचित करेंगे। मित्रगण बोले कि इतने दिनों तक क्या वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे? उनकी कन्या का विवाह हो चुका होगा। चाहो तो पता लगा लो। कटक में पता लगाने पर मालूम हुआ कि वे सज्जन बहुत दिन पूर्व कटक छोड़कर चले गये हैं और वर्तमान में कहां हैं, किसी को नहीं मालूम। इसके बाद मित्रों के साथ विवाह के लिये लड़की देखने, पिताजी कोलकाता आये। जिस मकान में वे ठहरे थे वहां सुबह स्नान आदि से निवृत्त होकर, पिताजी छत पर कपड़े सुखाने गये और उसके बाद नीचे आ गये। थोड़ी देर बाद ही एक वृद्ध व्यक्ति ने दरवाजे पर आकर आवाज दी। पिताजी ने दरवाजा खोला तो वे यह देखकर अवाक हो गये कि सामने वही व्यक्ति खड़े हैं जिन्होंने अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव,उनके सामने रखा था। पिताजी को देखकर वे बोले कि कटक में इसी ब्राह्मण को तुमने वचन दिया था, क्या तुम्हें याद है ? उन्होंने बताया कि वे पास के मकान में ही रह रहे हैं। छत पर बैठकर संध्या करते समय ही उनकी निगाह पिताजी पर पड़ गई थी। पिताजी ने उनसे कहा–'कटक में आपकी काफी खोज की लेकिन आपके बारे में कोई भी नही बता सका। मेरे मित्र मुझे विवाह के लिये लड़की देखने हेतु कोलकाता लेकर आये हैं। अच्छा ही हुआ कि सबसे पहले आप से भेंट हो गयी। शायद ईश्वर की भी यही इच्छा है। मुझे कोई आपत्ति नहीं है।'

पिताजी ने अपने मित्रों से भी पूरी बात विस्तारपूर्वक कही। उनमें से कुछ मित्रों ने पिताजी को किसी अच्छी एवं सम्पन्न लड़की से विवाह के लिये समझाने का प्रयास किया। किंतु पिताजी अपने विचारों पर दृढ़ थे। उन्होंने कहा कि मैंने इन गरीब वृद्ध सज्जन को वचन दिया है इसलिये मैं विवाह इनकी कन्या से ही करूँगा। इसके बाद

किसी ने कोई आपत्ति नहीं की। बाद में पिताजी का विवाह विधिवत् उन्हीं के यहाँ हुआ। यहाँ यह उल्लेख करना उचित है कि ये वृद्ध सज्जन काशी के विख्यात संत, गंधबाबा श्रीमत् स्वामी विशुद्धानंद परमहंस देव के शिष्य थे। उनके परिवार के अनेक लोग गंधबाबा के आश्रित थे। जब पिताजी कटक से काम छोड़कर चले गये थे, तब इन वृद्ध सज्जन को अपनी कन्या के विवाह की बहुत चिंता हुई और वे अपने गुरूदेव गंधबाबा के पास गये तथा उन्हें सविस्तार इस संबंध मे बताया। गंधबाबा ने उसी समय उनसे कह दिया था कि जिस लड़के से तुम्हारी बात हुई है, उसी से तुम्हारी कन्या का विवाह होगा, तुम निश्चिंत रहो। उसके बाद वे कन्या के विवाह के लिये निश्चिंत हो गये और उन्होंने अपनी कन्या के विवाह के लिये और कहीं कोई प्रयास नहीं किया।

विवाह के बाद लगभग ३७ वर्ष तक वकालत करने के पश्चात् पिताजी ने अवकाश ग्रहण किया। अंत में कई वर्ष उन्होंने ईश्वर चिन्तन में व्यतीत किये। उनका संपूर्ण जीवन भगवत् आश्रित था। जीवन के उत्तरार्ध मे उन्हें प्रायः बाल गोपाल एवं देवी के दर्शन होते थे और उनकी वाणी भी सुनाई देती थी। उस समय उनके अंदर संपूर्ण अनासक्ति का भाव प्रगट हो गया था। हम लोग छः भाई व दो बहन थे।

गुरूदेव के आशीर्वाद से पिताजी के पारलौकिक कृत्य ठीक प्रकार से सम्पन्न हो गये। लगभग डेढ़ माह पश्चात् हम लोग गुरूदेव के पास रामचन्द्रपुर आश्रम आ गये। पिताजी का चित्र हम लोग लेकर आये थे, गुरूदेव ने उनकी आत्मा को यथासमय दीक्षा दी। गुरूदेव ने इसी तरह बहुत से अशरीरी आत्माओं को गोसाँई जी के निर्देशानुसार दीक्षा दी थी। उसी समय काशी के श्री विजयकृष्णमठ के मंदिर में सेवा पूजा के लिये लोगों को अभाव हो गया। गुरूदेव ने हमसे कहा कि ऋषिकेश में तुम लोगों का स्वास्थ्य बार-बार खराब हो जाता है, अतः यदि तुम लोग चाहो तो काशी मठ में रह सकते हो। मठ में सेवा कार्य के अलावा शेष समय में भजन-साधना कर सकते हो।

हम लोगों ने गुरूदेव से कहा कि मठ में भजन-साधना के लिये अलग कमरा नहीं है, जिससे साधना में असुविधा होती है। जब कभी भी हम साधना के लिये बैठते हैं, उसी समय अन्य व्यक्तियों के वहां आ जाने से साधना संभव नही हो पाती। मठ में हमेशा लोग आते जाते रहते हैं। गुरूदेव ने कहा कि मठ में अलग कमरा है ही नहीं। अतः अलग से व्यवस्था कैसे संभव हो सकती है ? मैंने कहा कि मठ की तीसरी मंजिल के कमरे में यदि पर्दा लगाकर उसके दो भाग कर दिये जायें तो वहाँ सुविधा हो सकती है। गुरूदेव इसके लिये सहमत हो गये। वे बोले कि तुम लोग शरत् के पास झरिया चले जाओ, मैं पत्र दे रहा हूँ। शरत् तुम लोगों के लिये यह व्यवस्था कर देंगे और काशी जाने का इंतजाम भी कर देंगे। गुरूदेव के निर्देशानुसार हम लोग झरिया

आ गये। शरत् काका (हमारे गुरूदेव के गुरूभाई श्री शरत् चंद्र चकवर्ती को हम सब शरत् काका संबोधित करते थे) ने पर्दा तैयार करवा दिया। उस समय मठ के अध्यक्ष श्री क्षितीश चंद्र चट्टोपाध्याय धनबाद में थे। उनसे शरत् काका ने बात की । उन्होंने कहा कि अभी मठ मैं एक अन्य व्यक्ति महत्वपूर्ण हैं। मैं उनसे पहले बात करूँगा और उनका मत जानने के बाद ही आप को इस संबंध में बता सकूँगा। तब आप इन लोगों को भेज देना। यदि ये लोग मठ में रहें तो बहुत ही अच्छा होगा ।

इसी समय शरत् काका के यहाँ स्वामी निर्मलानंद जी एवं स्वामी चिदानंद जी का आगमन हुआ। शरत् काका ने हमें वहीं रूककर प्रतीक्षा करने के लिये कहा। उन्होंने यह कहा कि कुछ दिनों बाद तुम्हारे गुरूदेव झरिया आयेंगे। उसी समय सब तय हो जावेगा। हम लोग झरिया रूक गये। यहाँ स्वामी निर्मलानंद जी से वह प्रसंग भी जानने को मिला कि किस प्रकार उनके जीवन में गुरूदेव की कृपा से परिवर्तन आया था। बाद में उन्होंने 'असीमानंदेर पथे' नामक बंगला ग्रंथ में उन घटनाओं को प्रकाशित किया था।

कुछ दिन बाद गुरूदेव झरिया पधारे। उस समय श्री क्षितीश चन्द्र भी शरत् काका के यहाँ आये थे। उन्होंने हम लोगों के संबंध में काशी से प्राप्त पत्र गुरूदेव को दिखाया जिसमें मठ की देख-रेख करने वाले विशिष्ट व्यक्ति ने लिखा था कि 'वे लोग कितनी भजन-साधना करेंगे मालूम है। इस तरह की पृथक व्यवस्था करना यहां संभव नहीं हैं।' गुरूदेव ने पत्र पढ़कर असंतोष व्यक्त करते हुये कहा कि 'मेरे शिष्य भजन-साधना करते हैं या सोते रहते हैं, यह देखना मेरा दायित्व है। वह सब मैं देखूँगा। यह उनका देखने का कर्तव्य नहीं है।' गुरूदेव ने हमें मठ जाने के लिये मना कर दिया एवं 'बाथान बाड़ी' गांव जाने के लिये कहा और बताया कि वहाँ पर आश्रम की कुछ भूमि है। यह स्थान पँचकोट बांध के पास है। स्वामी चिदानंद जी यहां पर साधना कुटीर बनाकर कुछ दिन रहे थे। यहाँ प्रतिवर्ष रास पूर्णिमा पर अखंड श्रीनाम कीर्तन एवं नर-नारायण सेवा होती है। गुरूदेव ने बताया कि इस वर्ष वे एवं श्री माँ आश्रम से वहाँ आयेंगे। गुरूदेव ने हमें चिदानंद जी के साथ वहाँ जाने के लिये कहा। हम लोग वहाँ चले आये। कुछ दिनों बाद रासपूर्णिमा पर गुरूदेव के साथ उत्सव में श्री माँ के पधारने से सभी को उत्सव में बहुत आनंद आया। नजदीक के गावों में गुरूदेव के अनेक भक्त एवं शिष्य थे। उत्सव के बाद स्वामी चिदानंद जी को स्वामी निर्मलानंद जी संबलपुर ले गये। इस समय स्वामी निर्मलानंद जी ने कीर्तन के माध्यम से रामचन्द्रपुर नेत्र चिकित्सालय के लिये उड़ीसा में काफी धन एकत्र किया था।

बाथान बाड़ी गांव के श्री दरवेश जी महाराज के शिष्य श्री रामकिंकर मिश्र से हमारा परिचय हुआ। कम आयु से ही वे गुरूदेव के निर्देशानुसार आश्रम के विभिन्न सेवा कायो में संलग्न थे। उनसे गुरूदेव के विप्लवी जीवन की अनेक घटनायें जानने

को मिली। 'मंदिर' पत्रिका में ये सभी घटनायें प्रकाशित हुई है। उनमें से केवल एक घटना का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

उस समय अंग्रेजों के साथ कान्तिकारी लोगों का संघर्ष चल रहा था। अन्नदाकुमार (स्वामी असीमानन्दजी) को भी पकड़कर जेल भेजा गया। समाचार पत्र में उनको जेल ले जाने का सचित्र समाचार प्रकाशित हुआ था। इसे पढ़कर सभी लोग बहुत चिन्तित हो गये। अनेक स्थानों में इसे लेकर हड़ताल की गई। उस समय चिरकुंडा (धनवाद) के पास एक स्थान पर नागा साधओं का एक समूह परिव्राजन करते हुए रूका हुआ था। रामकिकर बाबू अपने मित्रों सहित नागा साधओं के महन्त को अन्नदाकुमार का चित्र दिखलाकर पूछा कि सुनने में आ रहा है कि अंग्रेज शासक वर्ग इन कान्तिकारी नेताओं को जेल में जहर देकर मारने की योजना बना रहे हैं। इनका क्या होगा?

नागा महन्तजी ने चित्र को थोड़ी देर देखने के पश्चात् कहा–''**घबड़ाओ मत। यह जिसकी तस्वीर है, वे तो महान् योगी हैं। उनको कोई आग में जला नहीं सकता, पानी में डूबा नहीं सकता और न इनकी अभी मृत्यु होगी। तुम लोग अपने घर चले जाओ। उसे कुछ नहीं होगा।**''

वास्तव में अन्नदाकुमार को कुछ भी नहीं हुआ एवं बाद में वे महान् योगी बने।

बाथान बाड़ी आश्रम में पानी का बहुत अभाव था। गर्मी शुरू होने के पहले से ही, आश्रम से कुछ दूर स्थित संथालों के घरों से पीने का पानी लाना पडता था। बाद में तो तालाब आदि भी सूख गये थे, किंकर काका बोले कि कुछ दिनों बाद लगभग दो किलोमीटर दूर स्थित पंचकोट डेम जाकर स्नान आदि करना होगा। यहाँ आते समय गुरूदेव ने कहा था– 'आश्रम से गांव काफी दूर है। इस कारण नित्य भिक्षा संभव नही होगी। एक दिन भिक्षा के लिये बाहर जाना। जाति वर्ण का ध्यान न रखकर सबसे स्थूल भिक्षा ले आना और जब तक वह समाप्त न हो जाये तब तक भिक्षा के लिये मत जाना।' हम लोग यहाँ एक बार भिक्षा के लिये निकले थे। फिर भिक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ी, क्योंकि गांव के कुछ भक्त लोग आश्रम आकर चावल आदि दे जाते थे। लगभग दो माह बीत गये। हमने अनुभव किया कि पीने एवं स्नान आदि का पानी कमशः कम होता जा रहा है, अतः अब यहाँ रहना संभव नही है। गुरूदेव को यह सब बताने के लिये हम लोग किंकर काका के साथ रघुनाथपुर होते हुये आश्रम पहुँचे। आश्रम पहुँचकर ज्ञात हुआ कि दिनांक २२-१२-१९६६ ई. को श्री श्री माँ मणि ने पुरी में महाप्रयाण कर दिया है। उनकी कृपा व आशीर्वाद पाकर हम लोग धन्य हुये हैं। माँ मणि का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

माँ मणि का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है–

श्री माँ मणि का नाम था—सरोजनी मित्र। वर्द्धमान के गलसी नामक ग्राम में, बंगला सन् १२९० (सन १८८३ ई.) २६वां चैत्र में उनका जन्म हुआ। दस वर्ष की उम्र में उनका विवाह हो गया। तीस वर्ष की उम्र में उन्होंने सद्गुरू श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी के शिष्य, श्री जगद्बन्धु मैत्र से दीक्षा प्राप्त की। सन् १९४१ ई. में पति के निधन के पश्चात् निःसंतान माँ मणि, अपनी साधना में तल्लीन हो गईं। उस समय उन्हें विभिन्न कठिन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा। परन्तु हर अवस्था में उन्हें श्री गोसाँई जी का निर्देश मिलता रहा।

विभिन्न अवस्थाओं को पार करते हुए सन् १९४९ ई. में, भगवत् निर्देश प्राप्त कर वे वृन्दावन धाम आ गईं। यहां 'धीर-समीर-कुंज' में रहने की व्यवस्था हो गई। यहां पर वे श्री श्री गोपाल जी का एक चित्रपट लाकर, उनकी सेवा-पूजा करने लगो और सर्वदा नामजप मे तल्लीन रहती थीं। उस समय श्री श्री गोसाँई जी की कृपा से, उनके समक्ष ''अप्राकृतिक वृन्दावन लीला'' प्रकट हुई। इस सम्बन्ध में माँ मणि ने कहा था—''उस समय गोसाँई जी की कृपा से 'ब्रज लीला दर्शन' का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रत्येक दिन आसन में बैठने पर, लीला दर्शन एवं बातचीत होती थी। इन सब अप्राकृतिक लीला का दर्शन कर, जो आनन्द मिलता था, उसे भाषा में व्यक्त करना संभव नहीं है। गोसाँई जी की अहैतुकी कृपा प्राप्त कर धन्य हो गई हूँ। इस प्रकार दीक्षा प्राप्ति के लगभग ३६ वर्ष बाद गोसाँई जी ने मेरी यह अवस्था खोल दी। श्री वृन्दावन में प्रातः तीन बजे से आठ-नौ बजे तक तथा संध्या प्रायः चार बजे से आठ-नौ बजे तक आसन में बैठी रहती थी। उस समय गोसाँई जी, श्री राधाकृष्ण लीला की दिव्य लीला का दर्शन करवाते थे। विभिन्न उपदेश एवं जो बातचीत होती थी, उसे वे लिखकर रखने के लिये कहते थे। उसके पश्चात् आज तक जहां भी रही हूँ—इस तरह नित्य लीला का दर्शन होते रहता है। रात्रि दस बजे के पश्चात् सारी रात नित्य लीला में विभोर रहती हूँ।''

माँ मणि ने अपने दर्शन एवं अनुभवों को बंगला भाषा में, गोसाँई जी के निर्देशानुसार प्रकाशित की हैं। उनके प्रमुख ग्रन्थ इस प्रकार हैं—

(१) श्री श्री वृन्दावन लीला, (२) श्री श्री सद्गुरू उपदेशामृत (तीन खण्ड एवं परिशिष्ट खण्ड में) (३) श्री श्री पुरुषोत्तम लीला (४) ऋषि वाणी (५) सार संग्रह माधुरिमा (६) श्री श्री सद्गुरू अमरवाणी (त्रिवेणी सह) (७) जीवन गाथा।

माँ मणि पुरी में ही रहती थो। उस समय के प्रसिद्ध अनेक महात्मा इनके पास आया करते थे। २२ दिसम्वर, १९६६ को पुरी में ही उन्होंने महाप्रयाण किया।

वृन्दावन से प्रकाशित 'नव भक्त माल' नामक ग्रन्थ में,माँ मणि के सम्बन्ध में विवरण हिन्दी भाषा में मिलता हैं।

इसी समय एक दिन माँ मणि के कुछ भक्त श्री विभुपद कीर्ति के साथ

आश्रम आये। श्री विभुपद, बंगला भाषा मे कई महात्माओं की जीवनी लिखकर बहुत प्रसिद्ध हो गये थे। उन्होंने माँ मणि के निर्देशानुसार श्री गुरूदेव से दीक्षा प्राप्त की थी। आश्रम के मंदिर में उस दिन संध्या के समय कीर्तन एवं भजन का आयोजन किया गया। वहां माँ मणि के लिये भी एक आसन रखा गया था। कुछ भाग्यवान भक्तों ने उस दिन वहां माँ मणि की उपस्थिति अनुभव की। बाद में गुरूदेव ने भी बताया कि आज कीर्तन में माँ मणि उपस्थित थी।

हम लोगों ने गुरूदेव को बाथानबाड़ी आश्रम की असुविधाओं से अवगत कराया। गुरूदेव ने हमारी बातें सुनकर कहा–**देखो साधु जीवन कष्ट का जीवन है। असुविधा एवं समस्त बाधाओं का अतिक्मण करते हुये ही भजन-साधना करना पड़ता है। हम लोग जब पहले रामचन्द्रपुर आश्रम आये थे, उस समय यहाँ पर कुआँ नहीं था। दूर नाले से तुम्हारी गुरू माँ पीने का पानी लाती थी। तुम लोग साधू होकर भी थोड़ा सा कष्ट नहीं सह पाते हो?**

आलोक ने कहा–यदि तुम कहोगे तो हम लोग वहाँ जाकर कष्ट सहते हुये पड़े रहेंगे। हम लोग वहां की असुविधाओं से तुम्हें अवगत कराने आये हैं।

तब गुरूदेव ने कहा– **कष्ट सहते हुये पड़े रहना आवश्यक नही है। कष्ट सहना तुम लोगों का उद्देश्य नहीं है। असली उद्देश्य तो भजन-साधना करना है। जहाँ रहकर तुम लोगों को भजन-साधना की सुविधा हो वहीं रहो। किंतु एक स्थान निश्चित कर लो और वहां स्थाई रूप से रहकर भजन-साधना करो । उन्होंने पूछा कि तुम लोगों ने क्या कोई और स्थान रहने के लिये निश्चित किया है?**

मैंने बताया कि इस बार यहाँ आते समय हम लोग रघुनाथपुर गये थे। वहाँ गुरूभाईयों ने हमें योगी गुफा में रहने के लिये कहा है। गुरूदेव ने बताया कि रघुनाथपुर में बहुत से गुरूभाई रहते हैं, इस कारण क्या वहाँ रहना चाहते हो? आलोक ने कहा–नहीं, रघुनाथपुर में रहने से आश्रम आना जाना इच्छा अनुसार हो सकेगा, यह लाभ अवश्य है। क्योंकि दूर रहने से कोई शंका या समस्या होने पर तुम से सम्पर्क करना मुश्किल होता है। हम लोग तुम्हारे आसपास ही रहना चाहते हैं, बाद में निर्जन स्थान में जाकर साधना करेंगे।

गुरूदेव ने पूछा–योगी गुफा में रहने की व्यवस्था क्या है?

आलोक ने कहा– वहां योगी बाबा के एक शिष्य रहते हैं। वहीं सामने एक छोटी सी गुफा है। बाथानबाड़ी जाते समय तुमने हमसे कहा था कि तुम हमारे लिये दो कमरे बनवा दोगे। यदि तुम ये कमरे योगी गुफा के निकट ही बनवा दो तो बहुत सुविधा हो जायेगी।

गुरूदेव ने कहा– **बाथान बाड़ी में भूमि आश्रम की है। योगी गुफा के पास हमारी भूमि नहीं है। दूसरे की भूमि पर कमरे बनाने से लाभ नहीं होगा। दो दिन बाद**

ही उसे छोड़ना पड़ेगा।

आलोक ने कहा कि तब हम लोग अलग-अलग रहेंगे, एक स्थान पर दोनों एक साथ नहीं रहेंगे।

गुरूदेव ने कहा–''अलग-अलग क्यों रहोगे? साधु लोग क्या एक साथ नहीं रहते।''

मैंने पूछा कि कृपया यह बताओ कि हम लोगों के लिये एक साथ रहना ठीक है या अलग-अलग रहना?

गुरूदेव ने कहा–तुम लोगों के लिये एक साथ रहना ही अधिक हितकर होगा। एक निर्दिष्ट स्थान पर ही भजन-साधना करनी होगी।

आलोक ने कहा–हम लोग ऐसी स्थिति में नही हैं कि स्थान का निर्णय खुद कर सकें। कभी यह लगता है कि इस स्थान पर रहें, फिर लगता है कि यहाँ नहीं रहें। अब तुम हमें बताओ कि कहां रहने से हमारा मंगल होगा?

गुरूदेव ने कहा–तुम्हें एक ही स्थान पर रहकर भजन-साधना करनी पड़ेगी। तुम लोगों की आत्मा बहुत पवित्र एवं शुद्ध है किंतु थोड़ी चंचलता है, इसीलिये तुम लोग कष्ट सहन नहीं कर पाते। थोड़ी भी असुविधा होने पर तुम लोग स्थान छोड़कर अन्यत्र जाने का विचार करने लगते हो–तुम लोगों में यही कमी है। साधु-जीवन में असुविधायें आती रहती है । उन्हें सहन करना ही होगा। असुविधाओं के कारण स्थान त्याग करना उचित नहीं है। निश्चित ही यह तुम लोगों का दोष नही है। तुम लोग ऐसी परिस्थितियों में रहे हो कि तुम्हें कभी भी कोई असुविधा या कष्ट नहीं सहना पड़ा। इसीलिये तुम लोग पूरा प्रयास करने के बाद भी कष्ट सहन नहीं कर पाते हो। परन्तु साधु-जीवन कष्टों से होकर ही व्यतीत करना होता है। इसीलिये यह बहुत कठिन है। तुम्हें सभी अवस्थाओं को सहन करते हुये साधना करनी होगी। एक स्थान पर स्थिर रहना होगा–जो भी असुविधायें आये उसे सहन करना होगा। पूरे दिन के समय को अलग-अलग काया के हिसाब से बांट लो। साधना के समय के अलावा शेष समय पाठ, कीर्तन आदि करना होगा। क्योंकि पूरे समय लगातार साधनारत् रहना संभव नहीं है। नियमित साधना करते रहने से मन स्थिर हो जाता है। वर्तमान समय में साधुओं के लिये केवल निर्जन में रहना काफी नहीं है। उन्हें लोगों के बीच भी आना होगा–लोगों से बातचीत करते हुये, उन्हें अच्छी शिक्षा व उपदेश देना होगा। कुछ समय तक निर्जन में साधना करने के बाद लोकालय में वापस आकर अपनी परीक्षा लेनी होगी कि लोकसंग से मन विचलित तो नहीं होता। मन में चंचलता का बोध होने पर पुनः निर्जन में जाकर साधना करनी होगी। इस तरह अपने मन की परीक्षा लेते रहना होगा। मन तैयार हो जाने के पश्चात् लोगों के मध्य रहने से फिर कोई क्षति की आशंका नहीं रहती। तुम लोग इच्छा करके कष्ट सहन करने के लिये प्रयास

कर रहे हो अथवा साधना कर रहे हो। मुझे अपने जीवन में इच्छापूर्वक कुछ करना नहीं पड़ा। अपने स्वयं के जीवन में मुझे ऐसी परिस्थितियों में रहना पड़ा कि मुझे बाध्य होकर कष्ट सहना पड़ा या कठिन साधना करनी पड़ी''।

गुरूदेव की यह बात सुनकर हमने उनसे प्रार्थना की कि हमारा मन हमेशा चंचल रहता है। तुम हमें जैसा करने का निर्देश देते हो, वैसा हम लोग नहीं कर पाते। यहाँ तक कि कई बार उसके विपरीत आचरण करने की इच्छा होती है। हमारी यह प्रार्थना है कि हमें ऐसी अवस्था में तुम डाल दो कि हम तुम्हारे निर्देशों का पूर्ण रूपेण पालन करने को बाध्य हो जायें। हमने यह भी पूछा कि क्या हमारी यह प्रार्थना पूरी होगी?

यह कहकर हम लोगों ने गुरूदेव को प्रणाम किया। गुरूदेव ने बड़े ही स्नेह के साथ हमारे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुये कहा–''**चिंता मत करो। सब ठीक हो जायेगा। तुम लोगों की प्रार्थना अवश्य पूर्ण होगी।**''

इस प्रकार बहुत देर तक वार्तालाप के पश्चात् गुरूदेव ने हमें रघुनाथपुर में जयचंडी पहाड़ पर स्थित 'योगी गुफा' में रहने का निर्देश दिया। यहाँ रहते हुये हम लोग प्रायः गुरूदेव के पास आ जाते थे तथा उनका सत्संग और आशीर्वाद प्राप्त करते रहते थे। यह स्थान रामचन्द्रपुर आश्रम से लगभग बीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। गुरूदेव भी कभी-कभी रघुनाथपुर आते थे।

अष्टम परिच्छेद

कुछ दिन रघुनाथपुर स्थित 'योगी गुफा' में रहने के बाद हमें प्रतीत हुआ कि लोगों के समीप वास करने से अनुष्ठानिक संन्यास की आवश्यकता है। निर्जन स्थान में संन्यास लिये बिना भी अपनी साधना एकांत में की जा सकती है। किंतु लोगों के बीच रहकर यदि संन्यास न लिया तो जावे कमशः पृथकत्व बोध कम हो जाता है।

गृहस्थ लोग भी साधारणतः संन्यासियों के साथ कुछ अलगाव रखकर ही व्यवहार करते हैं। साधुओं के लिये अपनी साधना के हित में यह नितांत आवश्यक है।

एकदिन हमने आश्रम जाकर गुरूदेव से संन्यास के लिये प्रार्थना की। गुरूदेव ने कहा–**''मैंने तो तुम लोगों को पहले ही कह दिया है कि तुम लोगों के संन्यास लेने के लिये प्रार्थी होने पर ही मैं तुम्हें संन्यास दूँगा। यदि तुम लोगों की यह प्रार्थना है, तो ठीक है, मेरे जन्म दिन शिवरात्रि पर तुम लोगों का संन्यास हो जायेगा।''**

हम लोगों ने संन्यास के लिये आवश्यक सामग्री गुरूदेव से पूछ ली। हमें मालूम हुआ कि पहले की कोई भी वस्तु , यहाँ तक कि वस्त्र आदि भी संन्यास के समय उपयोग में नहीं लाये जायेंगे। गुरूदेव से हमने पूछा कि कंबल का आसन भी क्या नया लाना होगा?

गुरूदेव ने कहा–**''नहीं, नये आसन की आवश्यकता नहीं है जो है वही चल जायेगा।''**

आलोक ने गुरूदेव से पूछा कि हमने ऐसा सुना है कि संन्यास के पहले 'गया' जाकर श्राद्ध कर्म आदि करना पड़ता है?

गुरूदेव ने कहा– **''हाँ, नियम तो ऐसा ही है।''(थोड़ा रूककर) फिर उन्होंने कहा कि ''तुम लोगों को गया जाने की आवश्यकता नहीं है जो कुछ करना है मैं यहीं करवा दूँगा।''**

गुरूदेव के निर्देशानुसार शिवरात्रि से दो दिन पूर्व दंड, कमंडल, हवन के लिये घी व नये वस्त्र आदि लेकर हम लोग आश्रम पहुँच गये। संन्यास के नियम के अनुसार सबसे पहले हमने गुरूदेव से संन्यास की अनुमति के लिये प्रार्थना की। गुरूदेव आवश्यक श्लोक पढ़ते गये और हम उनके साथ प्रार्थना दोहराते गये। इस प्रकार उन्होंने अनुमति प्रदान की और दूसरे दिन सुबह से, मौन व्रत रखकर उपवास करने के लिये कहा। उस दिन उन्होंने हमें संध्या के बाद दूध व फल का सामान्य आहार लेने के लिये कहा। हम उस दिन ज्यादातर पंचमुंडी आसन कक्ष में ही रहे । रात्रि

विश्राम भी वहो किया। प्रातः ४ बजे स्नान आदि करने के बाद मुण्डन हुआ। हमने उसके बाद फिर से स्नान किया। गुरूदेव इस बीच स्नान आदि करके तालाब के किनारे आये। उन्होंने हमसे, कमर तक जल में खडे रहने को कहा और फिर तर्पण के मंत्र पढ़कर हमसे तीन अंजलि जल पितृ-पुरूषों के लिये अर्पित करने को कहा। हमने गुरूदेव का अनुसरण किया। इसके बाद हम लोग पंचमुंडी आसन कक्ष मे आये। गुरूदेव ने हवन कुंड के सामने अपने आसन पर बैठकर हवन कुंड की अग्नि को प्रज्वलित किया। उस समय कक्ष में केवल स्वामी संबुद्धानंद जी थे। कई गुरूभाई एवं बहनों ने कक्ष में रहने को अनुमति चाही थी जो गुरूदेव ने नहीं दी। शास्त्रविधि के अनुसार विरजा-हवन सम्पन्न हुआ। शिखासूत्र (जनेऊ) लेकर उन्होंने स्वयं ही मंत्रोच्चार करके हवन कुंड में डाल दिया। इसके पश्चात् संन्यास के विधि-निषेध आदि बतलाये। इस प्रकिया के समय गुरूदेव का इस तरह गंभीर स्वर से मंत्र उच्चारण एवं उनकी दिव्य उज्वल आभा इसके पहले हमने कभी नहीं देखी थी।

दीक्षा देते समय गुरूदेव ने कहा था कि **''मैंने तुम लोगों के जन्म-जन्मांतर के पाप-ताप ग्रहण कर लिये हैं। मैं भगवान की शपथ लेकर कहता हूँ कि तुम लोगों को तुम्हारे लक्ष्य तक पहुँचा दूँगा।''**

अब संन्यास लेते समय गुरूदेव ने कहा– **''आज से तुम लोगों के पूर्व आश्रम का नाम, माता-पिता, वंश, आत्मीय–स्वजन सभी विस्मृत हो। मैं ही तुम लोगों का माता-पिता हूँ तथा तीनों लोक तुम्हारे अपने देश हैं। सर्वदा यह ध्यान में रखना कि कभी भी कोई कुछ भी दे या सहायता करे वह मेरी इच्छा से कर रहा है अथवा दे रहा है। मेरी इच्छा के बिना एक पैसा भी देने की क्षमता किसी में नहीं है। इसलिये किसी के अनुग्रह की आशा से, कभी भी आत्मविक्रय मत होना। अयाचित भाव से यदि कोई कुछ प्रदान करता है तो उसे भगवान का दान समझना। अभिमान करके लौटाना नहीं।''** फिर उन्होंने कहा कि **''एक वर्ष के अंदर चारों धाम घूम लेना।''** संन्यास के उपरांत हम लोगों का नाम स्वामी आलोकानंद सरस्वती एवं स्वामी अमलानंद सरस्वती हो गया।

संन्यास के बाद गुरूदेव ने कहा कि **तुम लोग मंदिर में जाकर बैठना। किसी के घर जाकर भिक्षा मांगने की आवश्यकता नहीं है। जिसे भिक्षा देने की इच्छा होगी वह स्वयं ही आकर भिक्षा देगा।** इसके बाद गुरूदेव अपने कमरे में चले गये और इस प्रकार ९ मार्च, १९६७ ई. को शिवरात्रि के दिन हम लोगों का संन्यास आश्रम में प्रवेश हो गया।

संबुद्धानंद जी ने बताया कि जब उन लोगों को गुरूदेव ने संन्यास दिया था तब वे लोग सबसे पहले श्री गुरूमाँ के पास गये थे। उसके बाद कुछ गुरूभाईयों के घर से भिक्षा ग्रहण की थी। तुम लोग भी गुरू माँ से पहली भिक्षा ग्रहण करने के बाद

मंदिर में जाकर बैठो। हम लोगों ने वैसा ही किया। गुरूमाँ क पास जाकर प्रणाम किया। उन्होंने हमें आशीर्वाद के साथ प्रथम भिक्षा प्रदान की और मध्यान्ह में उनके पास आकर प्रसाद ग्रहण करने को कहा। गुरू माँ का आशीर्वाद लेकर हम लोग मंदिर में आकर बैठ गये। यहां हमें पहले स्वामी स्वरूपानंद जी (शांति निकेतन की संज्ञा माँ) ने भिक्षा दी। लगभग आधा घंटा बैठने के बाद जो कुछ भिक्षा में मिला, श्री गुरू माँ को सौंप कर हम लोग अपने कमरे में वापस आ गये।

संन्यास हो जाने के बाद शरीर एवं मन में विशेष परिवर्तन का अनुभव हुआ। गुरूदेव की कृपा से उनसे संन्यास पाकर हम लोग धन्य हो गये।

हमने सुना था कि श्री श्री गोसाँई जी द्वारा प्रदत्त साधना में पृथक संन्यास लेने की आवश्यकता नहीं है। यह साधना नियमित रूप से करने से अपने आप ही व्यक्ति को संन्यास की अवस्था लाभ हो जाती है। परंतु श्री श्री गोसाँई जी, श्री श्री दरवेश जी एवं श्री श्री गुरूदेव ने स्वयं संन्यास लिया था एवं कई लोगों को संन्यास दिया भी था । गोसाँई जी की साधना जिन लोगों को प्राप्त हुई है उन्हें अधिक से अधिक तीन जन्म ही लेना पड़ेगा।

गोसाँई जी ने कहा है–''जिन्हें भी यह साधन प्राप्त हुआ है, वे सब चैतन्य महाप्रभु के समय थे। उस समय जिन्हें यह शक्ति प्राप्त नहीं हुई थी, उन्हें इस बार प्रदान की गई।''

''इस शक्ति को प्राप्त करने पर अधिक से अधिक तीन जन्मों में अवश्य साधक मुक्त होगा।''

[–श्री श्री विजयमंगल (बंगला ग्रन्थ)]

अपने कर्मों के अनुसार, किसी को एक जन्म में, किसी को दो जन्म में और किसी को अधिक से अधिक तीन जन्म में इस संसार बंधन से मुक्ति प्राप्त हो जायेगी। गुरूदेव से संन्यास प्राप्त करने में क्या विशेषता हो सकती है? इस प्रश्न का समाधान करने के लिये संन्यास होने के कुछ दिनों बाद, हमने गुरूदेव से यह प्रश्न पूछा कि जिन्हें आपसे संन्यास प्राप्त हुआ है उनका क्या यही अंतिम जन्म है? क्या उनका और जन्म नहीं होगा? गुरूदेव हमारा प्रश्न सुनकर कुछ क्षण तक स्थिर रहे, तत्पश्चात् उन्होंने कहा–**''जिन्हें मुझसे संन्यास मिला है, उनका और जन्म नहीं होगा। लेकिन फिर भी कोई गर्हित कार्य करने पर पुनः जन्म लेना पड़ सकता है।''**

हम लोग इसके पश्चात् जयचंडी पहाड़ की योगी गुफा में वापस आ गये और साधना प्रारंभ कर दी। यहां रहने से हम लोग प्रायः आश्रम जाते रहते थे। गुरूदेव यदि किसी प्रयोजनवश रघुनाथपुर आते तो उनके दर्शन हो जाते थे। विभिन्न समय में गुरूदेव से हुई चर्चा का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। जो प्रश्न और उत्तर के रूप में है–

प्रश्नः ऋषिकेश में कई साधुओं का कहना है कि अन्न क्षेत्र से जो भिक्षा प्राप्त होती है वह शुद्ध नहीं होती क्योंकि धनाढ्य लोग असत् कार्यों से अर्जित धन, अन्न क्षेत्र में दान करते हैं और यही कारण है कि अन्न क्षेत्र से प्राप्त भोजन करने से, साधना में विभिन्न प्रकार के विघ्न उत्पन्न होते हैं। कुछ साधु अन्न क्षेत्र से भिक्षा प्राप्त न करके गृहस्थों के घर से मधुकरी भिक्षा ग्रहण करते हैं क्या यह बात सही है?

उत्तर :—नहीं। मैं इसमें कोई दोष नहीं देखता। भिक्षा के अलावा साधुओं के लिये और क्या उपाय है। यह बात हमेशा याद रखना कि साधुओं के लिये भिक्षान्न हर समय पवित्र है।''

प्रश्न :— कभी-कभी किसी गृहस्थ के यहां से मधुकरी ग्रहण करते समय प्रतीत होता है कि वे प्याज आदि का सेवन करते है एवं उनके यहां की सभी खाद्य सामग्री स्पर्शदोष से दूषित है। वे अपने घर प्याज आदि के प्रयोग से भोजन आदि पकाते है। उनके यहां से मधुकरी करते समय स्पर्शदोषयुक्त भिक्षा क्या अपवित्र हो जाती है?

उत्तर :— नहीं, भिक्षान्न हर समय पवित्र है। जिस प्रकार किसी दुकान से खाद्य पदार्थ खरीदकर खाने से स्पर्शदोष नहीं माना जाता, उसी प्रकार भिक्षान्न में भी कोई दोष नहीं होता। फिर भी साधना में निषिद्ध वस्तु, नहीं खाना चाहिये।

प्रश्न :—अमावस्या व पूर्णिमा का पालन किस प्रकार करना चाहिये?

उत्तर :—इसका पालन एकादशी के समान ही करना चाहिये। अमावस्या व पूर्णिमा को अन्न या चावल की कोई वस्तु भोजन में ग्रहण नहीं करना चाहिये।''

प्रश्न :—एल्यूमिनियम के बर्तन में भोजन पकाना और भोजन ग्रहण करना क्या निषिद्ध है?

उत्तर :— नहीं है। इनेमल की कलई वाले एवं काँसे के बर्तनों में भोजन करना निषिद्ध है। एक समय अन्य प्रसंग पर चर्चा के समय गुरूदेव ने कहा था कि कांसे के बर्तन से रोग संकमण होता है एवं तांबे के बर्तन का प्रयोग स्नान घर या शौचालय में होने से वे अशुद्ध हो जाते हैं।''

प्रश्न :—संन्यास का नियम है कि दो समय से अधिक भोजन करना उचित नहीं है। इसका क्या कारण है?

उत्तर :—''साधुओं को संन्यास के बाद बारह वर्ष तक एक दिन में केवल दो समय ही भोजन करना उचित है। इसके उपरांत कोई नियम नहीं है। तुम लोग भी दो बार भोजन ले सकते हो।''

प्रश्न :—रात्रि को चिवड़ा खाया जा सकता है क्या?

उत्तर :—हाँ, खा सकते हो। सामान्यतः दिन में चावल एवं रात को भोजन में रोटी लेना ठीक होता है।''

प्रश्न :—संन्यास के नियम में है कि किसी को प्रणाम न करें। उम्र में बड़े गुरु-

भाई एवं गुरू काका आदि को प्रणाम करना क्या उचित है?

उत्तर :–गुरूभाईयों को प्रणाम मत करो। वृद्ध गुरू काका लोगों को यदि इच्छा हो तो प्रणाम कर सकते हो।''

प्रश्न :–यदि कोई पैर छूकर प्रणाम करें तो क्या ऐसा करने देना उचित है?

उत्तर :–''यदि कोई ऐसा करता है तो क्या कर सकते हैं? मुझे भी सब पैर छूकर प्रणाम करते हैं, फिर भी जहां तक संभव हो, इसे टालना चाहिये।''

प्रश्न :–तिलक करते समय विभिन्न मंत्रों का उच्चारण न करते हुये क्या केवल इष्ट मंत्र का जप किया जा सकता है?

उत्तर :–''जो कुछ भी करना हो। इष्ट मंत्र के साथ ही करना चाहिये। इष्ट मंत्र द्वारा सभी प्रकार की पूजा की जा सकती है।

प्रश्न :–अष्टप्रहर नाम-कीर्तन का क्या प्रभाव होता है?

उत्तर :–'नाम' में अपार शक्ति है। नाम-कीर्तन करने से कीर्तन कर्ता एवं श्रोता दोनों में ही सात्विक भाव जागृत हो जाता है।

प्रश्न :–आसन में बैठकर नाम-जप करना अधिक अच्छा है अथवा नाम-कीर्तन करना?

उत्तर :–आसन में बैठकर नाम करने से स्वयं का कल्याण होता है, किंतु आसन में बैठकर हमेशा नाम जप नहीं किया जा सकता, इसलिये पाठ एवं नाम-कीर्तन का महत्व है। इससे सभी का कल्याण होता है।

प्रश्न :–योगी गुफा में नाम-कीर्तन करते समय पहले कुछ व्यक्ति ही आते थे। आज कल अनेक व्यक्ति आने लगे हैं। इससे हमारी साधना में क्या कोई व्यवधान होगा?

उत्तर :–नहीं, इससे कोई क्षति नहीं होगी। जितने अधिक लोग आयेंगे उतना ही अच्छा है। सभी का मंगल होगा।

प्रश्न :–सुना है कि नाम-कीर्तन में महान् आत्मायें सम्मिलित होती हैं। साधारण व्यक्ति उनकी उपस्थिति किस प्रकार अनुभव कर सकते हैं?

उत्तर :–संकीर्तन करते समय जब अनुभव हो कि कीर्तन खूब भाव से हो रहा है। सभी के मन में आनंद का अतिरेक है और सभी कीर्तन में आनंद से भाव विभोर हो गये हैं, तब वहाँ महापुरूषों की उपस्थिति समझना चाहिये।

प्रश्न :–तुलसी आदि की माला क्या हर समय धारण करना उचित है?

उत्तर :–साधना करते समय माला धारण करना उचित है, अन्य समय इसकी आवश्यकता नही है।

प्रश्न :–तुलसी माला का क्या प्रभाव होता है?

उत्तर:–शरीर शीतल रहता है एवं सात्विक भाव जागृत होते हैं। जो लोग

तुलसी माला धारण करते हैं उन्हें संपूर्ण निरामिष आहार ही ग्रहण करना चाहिये।

प्रश्न :—पदांगुष्ठ दृष्टि क्या हर समय रखना चाहिये? कीर्तन आदि करते समय इससे असुविधा होती है?

उत्तर :—नहीं। मार्ग पर चलते समय पदांगुष्ठ दृष्टि रखना चाहिये।

प्रश्नः—हम लोग किसी प्रकार का शारीरिक श्रम नहीं करते हैं। क्या हमें कुछ शारीरिक परिश्रम अथवा आसन आदि करना चाहिये?

उत्तर :—नहीं, आवश्यकता नहो है। एक सौ आठ बार मुख व नाक से प्राणायाम करने के बाद शरीर में कोई रोग नहीं रहता। प्राणायाम पांच, आठ, दस, इस प्रकार धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये। एक बैठक में कुछ देर नाम-जप, उसके बाद प्राणायाम, फिर कुछ देर नाम-जप और फिर प्राणायाम इसी प्रकार क्रम रखना उचित है।

प्रश्न :— यदि कोई भोजन बनाकर दे तो वह ग्रहण करना चाहिये या नहीं?

उत्तर :—**भोजन ग्रहण कर सकते हो। लेकिन भोजन तैयार करने वाले का भाव शुद्ध है या नहीं तथा वह नियम आदि मानता है अथवा नहीं यह अवश्य देख लेना चाहिये। साथ ही भोजन करने से पहले उसमें तुलसी-पत्र डालकर प्रभू को निवेदन करने के उपरांत ही भोजन करना चाहिये।**

प्रश्न :—हरिलूट (कीर्तन के समय वितरित किये जाने वाले बतासे) के समय कोई-कोई चावल की खीर लाते है क्या वह देना उचित है?

उत्तरः—नहीं। हरिलूट में बतासा वितरित करना ही उचित है। चावल की वस्तु देना उचित नहीं है। इसमें तुलसी देने की भी आवश्यकता नहीं है।

गुरूदेव ने हम लोगों से एक दिन पूछा कि भोपाल में तुम्हारी जो बहिन रहती है वे कैसी हैं?

यहां यह उल्लेखनीय है कि भोपाल में हमारी जो बहिन रहती थी उसे स्वप्न में गुरूदेव से मंत्र प्राप्त हुआ था। बाद में गुरूदेव ने उनके स्वप्न को सत्य बताते हुये स्वप्न में प्राप्त मंत्र में संशोधन करके उसे भेजा था तथा यह भी बताया था कि श्वास-प्रश्वास में किस प्रकार जप करना है।

गुरूदेव से बहिन के बारे में प्रश्न सुनकर आलोकानंद ने गुरूदेव को बताया कि तुमने जो मंत्र उसे लिखकर भेजा था, वह उसी का जप करती है। उसे प्रायः स्वप्न में महापुरूषों के दर्शन होते हैं। हमारी माता श्री ने भी गोसाँई जी को स्वप्न में देखा है। छोटे भाईयों ने भी कुछ इसी प्रकार के स्वप्न देखें हैं। इस प्रकार के स्वप्न क्या पूर्व जन्म के संस्कारों के परिणाम स्वरूप दिखते हैं? गुरूदेव ने उत्तर दिया—हाँ।

आलोकनंद ने गुरूदेव से फिर पूछा—क्या हमारी बहिन की दीक्षा हो गयी है?

क्योकि तुमने पत्र में उसे नाम जप श्वास-प्रश्वास में किस प्रकार करना चाहिये लिखकर भेजा था।

गुरूदेव ने उत्तर दिया—नहीं, दीक्षा नहीं हुई है। कुछ शक्ति संचारित की गई है।

मैंने फिर पूछा—क्या उसे अनुष्ठान पूर्वक पुनःदीक्षा प्राप्त करना होगा।

गुरूदेव ने कहा—**हां, समय आने पर उसकी दीक्षा होगी।**

आलोकानंद ने अन्य भाईयों की दीक्षा के संबंध में भी गुरूदेव से प्रश्न किया कि क्या हमारे अन्य भाईयो को भी दीक्षा मिलेगी?

इसपर गुरूदेव ने कहा—**हाँ । उन्हें भी समय आने पर दीक्षा मिलेगी।**

गुरूदेव ने यह बातें १९६७ ईस्वी में कहीं थी।

हमारे सबसे छोटे भाई अमित की दीक्षा गुरूदेव से १७ जून, १९६७ ई. को हुई थी। गुरूदेव के शरीर छोड़ने के पश्चात् भोपाल वाली दीदी, उनके लड़के-लड़कियों एवं असीम की दीक्षा गुरूमाँ से हुई। हमारे मझले भाई, उनकी धर्म पत्नी एवं बच्चों ने भी गुरू माँ से दीक्षा ली।

योगी गुफा में रहते समय हम लोग एक दिन मे दो बार भोजन करते थे। प्रथम बार प्रातः ९ बजे एवं दूसरी बार शाम को ४ बजे। बीच में चाय या अन्य कोई पदार्थ नही लेते थे। इसी समय एक बार गुरूदेव ने अकस्मात् हमारे लिये कुछ नियम लिखकर गुरूभाई के द्वारा हमें भेजे। जो इस प्रकार है :—

परम कल्याणवरेषु,

स्नेहमय अमलानंद एवं आलोकानंद, तुम लोगों के लिये निम्नलिखित निर्देश भेज रहा हूँ :—

१. किसी के भी हाथ का बना भोजन नहीं करना।

२. उत्सव के अवसर पर व उत्सव के पश्चात् भगवान का प्रसाद ग्रहण कर सकते हो।

३. भिक्षान्न में चावल, दाल, आटा इत्यादि ग्रहण करना।

४. भिक्षान्न में पका हुआ उसना चावल ले सकते हो किंतु सादा अरवा चावल के लिये प्रयास करना।

५. दिन में एक साथ सब चावल-सब्जी आदि मिलाकर पका लेना।

६. रात में सब्जी-रोटी ग्रहण कर सकते हो।

७. अकारण घर-घर भ्रमण मत करना।

८. यथासंभव बातें कम करना।

९. कीर्तन व पाठ में योग देना। अर्थात कीर्तन व पाठ कर सकते हो।

१०. सप्ताह में एक दिन मौन व्रत रखना।

११.मौन व्रत के समय भोजन पूर्ववत् ग्रहण करना।

१२. नित्य प्रातः तीन बेल पत्र चबाकर खाना। (नोट-एक बेल पत्र में तीन पत्तियाँ रहती हैं)

१३. प्रतिदिन संध्या सात बजे मैं तुम लोगों के विषय में चिंता करूँगा। उस समय आसन में बैठना।

–असीमानंद

गुरूदेव के उक्त निर्देश पाकर हमारे मन में विशेष उत्साह एवं आनंद का अनुभव हुआ। हम उनके निर्देशानुसार कई महिनों तक भजन-साधना करते रहे। उस वर्ष पुरुलिया जिले में कम वर्षा के कारण सर्वत्र भीषण अकाल हुआ। रामचन्द्रपुर आश्रम में गुरूदेव ने लंगर (सदावर्त) प्रारम्भ किया। जहां रोज लगभग २००० व्यक्ति भोजन प्राप्त करते थे। रघुनाथपुर से हम लोगो को गुरूदेव ने सदावर्त के लिये धन एकत्र करने की सूचना भेजी। केवल १०० रूपया एवं कुछ चावल ही हम लोग एकत्र कर सके। इसके बाद गुरूदेव ने सदावर्त में योगदान करने के लिये हम लोगों को रामचन्द्रपुर बुलवाया। इसके पहले हम लोगों ने रामचन्द्रपुर आश्रम में कभी भी कोई दायित्वपूर्ण कार्य का भार अपने ऊपर नहीं लिया था। इसलिये हम चिंतित हो गये। हम लोग गुरूदेव के निर्देशानुसार आश्रम पहुँच गये। वहाँ गुरूदेव को प्रणाम करने के बाद उनसे आदेश चाहा। गुरूदेव ने कहा कि मैंने सदावर्त चलाने का दायित्व साधुओं को दिया है। वहाँ आत्मानंद के पास जाकर उनके निर्देशानुसार कार्य करो।

हम लोग आत्मानंद जी (गुरूदेव के शिष्य) के पास आये। वहां देखा कि सभी संन्यासी गुरूभाई अलग-अलग कार्य का दायित्व लेकर उत्साहपूर्वक कार्य कर रहे हैं। आत्मानंद जी ने हम लोगों को प्रतिदिन प्रातः आठ बजे तक एक क्विंटल सब्जी (आलू, कुम्हड़ा आदि) काटने एवं भोजन परोसे जाने के समय व्यक्तियों के कार्ड चेक करने का दायित्व सौंपा। हम लोग चिंतित थे कि इतनी सब्जी निश्चित समय के पहले किस प्रकार काट सकेंगे। उसी समय पानू दा (गुरूभाई पन्ना लाल मुखोपाध्याय)हमारे पास आये। हमने उन्हें अपनी चिंता का कारण बताया। पानू दा ने हमसे कहा कि चिंता मत करो, मैं तुम लोगों के साथ हूँ। इसके अलावा आश्रम एवं गांव की अनेक महिलायें भी आकर इस कार्य में सहायता करेंगी। पानू दा बहुत ही कर्मठ थे। उत्सव आदि के अवसरों पर वे अन्यंत उत्साह के साथ, उन्हें सौंपे गये कार्य संपादित करते थे। उनकी बात सुनकर हम निश्चिंत हो गये। दूसरे दिन हमने देखा कि हमें कुछ भी नहीं करना पड़ा। आश्रम एवं गांव की महिलाओं ने पानू दा के निर्देशानुसार सब्जियां काट दी। हम लोग भोजन परोसे जाने के समय केवल कार्ड चेक करते रहे। दो दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गये।

तीसरे दिन गांव के छोटे-छोटे लड़के-लड़कियां, वृद्धजन एवं बीमार, बहुत से

लोग भोजन देने के समय के पहले ही आकर, धूप में बैठे थे। आश्रम में बहुत से बाँस एवं त्रिपाल रखे हुये थे। लोगों को धूप में बैठा देखकर उनके कष्ट को अनुभव करके, आत्मानंद जी से हमने कहा कि यहाँ बाँस एवं त्रिपाल आदि रखे हुये हैं। यदि एक बड़ी छावनी बना दी जाये तो इन लागों को धूप क कष्ट से बचाया जा सकता है। आत्मानंद जी ने कहा कि त्रिपाल लगाने से जो छावनी होगी उसमें कितने लोग बैठ पायेंगे? सभी के लिये छावनी बनाना संभव नहीं है। तब मैंने उनसे कहा कि जो लोग पहले आये हुये हैं, वे उसमें बैठ सकेंगे। उन्हें भोजन परोसने वाले धूप से बचेंगे। वे लोग भोजन लेने के बाद, जब चले जायेंगे, तब अन्य लोग यहां आकर बैठे सकेंगे। आत्मानंद जी हमारी बात सुनकर कुछ कोधित होते हुये बोले कि यह सब करना यहां संभव नहीं है और इससे कोई विशेष सुविधा भी नहीं होगी।

भोजन परोसते समय हमने देखा कि भोजन परोसने वाले गर्म खिचड़ी की बाल्टी लेकर परोसते हुये आगे बढ़ते हैं और बाल्टी खाली होने पर पुनः वापस आकर दूसरी बाल्टी ले जाते हैं। इस प्रकिया में समय भी अधिक लग रहा है और परोसने वाले को परोशानी भी हो रही है। अतः मैंने आत्मानंद जी से कहा कि ऋषिकेश में अन्न क्षेत्र में प्रतिदिन लगभग २००० साधुओं को भोजन का वितरण होता है। वहाँ भोजन सामग्री एक जगह रखकर, दिया जाता है। भोजन प्राप्त करने वाले पंक्तिबद्ध होकर भोजन प्राप्त करते हैं और आगे बढ़ते जाते हैं। इसी प्रकार व्यवस्था यहाँ भी करने से सुविधा होगी। आत्मानंद जी ने उपेक्षा पूर्वक कहा कि यहाँ गांव के लोग, लाईन-वाईन कुछ नहीं समझते। यह यहाँ संभव नहीं है। यह करने से और भी गड़बड़ी एवं असुविधा हो जावेगी।

आत्मानंद जी की बात सुनकर मैंने और आगे कोई सुझाव नहीं दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल गुरूदेव सदावर्त की व्यवस्था देखने आये। उन्होंने आत्मानंद जी को बुलाकर कहा कि यहाँ पर त्रिपाल आदि पड़े हुये हैं। इनसे बड़ी छावनी करवा दो, लोग धूप में कष्ट पा रहे हैं। गुरूदेव के निर्देश देने पर तत्काल गांव क लोगों की सहायता लेकर छावनी तैयार कर दी गयी, जिससे सभी को सुविधा हो गयी। दूसरे दिन भोजन परोसने के समय पहले से छावनी में जो लोग आकर बैठे थे, उन्हें भोजन परोसना प्रारंभ किया गया। आत्मानंद जी ने थोड़ी देर बाद आकर कहा कि पहले यहां भोजन परोसना क्यों शुरू कर दिया है, जो लोग धूप में बैठे हैं, उन्हें भोजन का वितरण पहले करो । मैंने उन्हें समझाने का प्रयास कि जो लोग पहले से आ चुके हैं, वे ही छावनी में बैठे हैं । अतः इन्हें ही पहले भोजन वितरित करना सुविधाजनक होगा। इनके भोजन लेकर जाने के बाद, जो लोग धूप में बैठे हैं, वे यहां आ जायेंगे। इससे परोसने वालों को भी धूप में नहीं जाना पड़ेगा।

आत्मानंद जी यह बात सुनकर नाराज हो गये और बोले कि यदि भोजन

परोसना चाहते हो तो धूप में जाकर परोसो, नही तो अपने कमरे मे जाकर सो जाओ।

इस बार आश्रम आने से पहले, हम लोगो ने तय कर लिया था कि आश्रम में जो काम हमारे लिये करना संभव नहीं होगा, उसे हम लोग पहले से ही स्पष्ट कह देंगे कि यह काम हमसे नहीं हो सकेगा। क्योकि आश्रम मे प्रायः काम करने वाले लोग काम भी करते हैं और बाद में एक दूसरे की निंदा भी करते हैं। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि हमें नोकर समझ रखा है, जैसी मर्जी होती है काम कराते हैं। अतः आत्मानंद जी की बात सुनकर मैंने उनसे निवेदन किया कि मैं अनावश्यक रूप से धूप में जाकर भोजन वितरित नहीं कर सकूँगा। ऐसा कहकर मैं अपने कमरे में चला आया। आलोकानंद एवं कुछ अन्य लोग छावनी में पहले से ही भोजन वितरित करना शुरू कर चुके थे, इसलिये आत्मानंद जी ने उन्हें कुछ नहीं कहा।

दूसरे दिन प्रातःकाल दुलाल दा (गुरूदेव के बड़े पुत्र) ने हम लोगों को बुलावाया। हम लोग उनके पास कार्यालय कक्ष में गये। उन्होंने कहा कि रघुनाथपुर से एक बोरी गेहूं लेकर आना है। तुम लोग यहाँ से सुभाष रोड (लगभग चार किलोमीटर) चले जाओ। वहां से रघुनाथपुर के लिये बस मिल जायेगी। गेहूं लेकर शाम को चार बजे आने वाली ट्रेन से वापस आ जाना। हम लोगों ने कहा कि हमारे लिये रघुनाथपुर जाना संभव नहीं है और यह कहकर हम लोग वापस अपने क़मरे में आ गये। कमरे में आकर विचार किया कि यह बात गुरूदेव को पता लग जायेगी और गुरूदेव नाराज होंगे। अतः हमें अब आश्रम में स्थान नहीं मिलेगा, यह सोचकर हम लोगों ने अपने कंबल आदि सामान झोले में डालकर तैयारी कर ली।

इसी बीच एक व्यक्ति ने आकर बताया कि गुरूदेव ने तुम लोगों को बुलाया है। हम लोग गुरूदेव के पास गये। जैसे ही हमने गुरूदेव को प्रणाम किया, उन्होंने उत्तेजित स्वर से कहा–तुम लोगों ने दुलाल से कहा है कि रघुनाथपुर नहीं जा सकोगे? इस पर आलोकानंद ने कहा– 'हां, हम लोगों ने ऐसा कहा है।' गुरूदेव बड़े ही गुस्से में धमकाते हुये बोले– 'नहीं जाओगे, ऐसा क्यों कहा?' गुरूदेव का इस तरह उग्ररूप देखकर आलोकानंद ने विनम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि आपने हम लोगों से आत्मानंद जी के निर्देशानुसार कार्य करने के लिये कहा है, इसलिये हमने दुलालदा को रघुनाथपुर न जाने की बात कही थी। यह सुनते ही गुरूदेव मुझे गुस्से में, धमकाते हुये कहा–"तुमने भी तो आत्मानंद की बात नहीं मानी। तुमने क्यों कहा था कि धूप में भोजन वितरण नहीं करोगे?"

हमें आश्चर्य हो रहा था कि साधारण सी बात भी गुरूदेव किस प्रकार जान गये। उनकी बात सुनकर हम डर गये। मैंने उत्तर दिया–"हां आत्मानंद जी को मैंने यह बात कही है, क्योंकि कई महिनों से हम लोग गुफा में रह रहे हैं। बाहर नहीं जाते हैं, इसलिये धूप में ज्यादा देर रहने से कष्ट होता है। दुलाल दा को भी इसीलिये

रघुनाथपुर न जाने की बात कही है।

गुरूदेव ने मेरी बात सुनकर इस बार बहुत गुस्से में एवं ऊंचे स्वर में डांटते हुये कहा–''**मैं अस्वस्थ हूँ, इसलिये स्वयं सब काम नहीं कर सकता हूँ। दुलाल एवं आत्मानंद को मैंने दायित्व सौंपे हैं। उनकी बात न मानकर (Directly) प्रत्यक्ष रूप से तुम लोगों ने मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है। तुम लोग अब यहाँ नहीं रूक सकते। इसी क्षण आश्रम छोड़कर चले जाओ । मैं तुम लोगों का मुँह भी नहीं देखना चाहता।**''......इत्यादि।

जिन लोगों ने गुरूदेव की डांट खाई है या उन्हें डांटते हुये देखा है, वे ही इस घटना को समझ सकते हैं। गुरूदेव के क्रुद्ध होने पर उस समय उनके पास जाने का साहस किसी में नहीं था। उस समय उनसे कुछ भी कहना उनके कोध को बढ़ाता, इसलिये उनसे कुछ भी कहना कठिन था। हम लोगों ने इसके पूर्व गुरूदेव का ऐसा रूप कभी नहीं देखा था। हमें अनुभव हुआ कि गुरूदेव का यह रौद्र रूप देखकर भी हमारे मन में अधिक भय नही है क्योंकि गुरूदेव से जो स्नेह एवं कृपा हमें प्राप्त हुई थी, उसकी तुलना में यह रूप मन पर विशेष प्रभाव नहीं डाल सका।

अभी तक हम लोग खड़े हुये थे। अब हम लोग बैठ गये। हमने निश्चय किया कि हम लोग आश्रम से गुरूदेव के शांत होने के बाद ही जायेंगे। गुरूदेव ने हमें बैठता हुआ देखकर फिर उच्च स्वर में कहा–''**तुम लोग यहाँ से उठो और जहाँ जाना है चले जाओ। तुम लोगों के यहाँ बैठने से मेरे काम में व्यवधान होगा**''।

१९६२ ई. में जब हमारी दीक्षा हुई थी, उस समय गुरूदेव आसन वेदी (समाधि मंदिर के पास) पर बैठकर पत्र लिखा करते थे एवं वहीं उपदेश आदि दिया करते थे तथा वर्तमान में जहाँ समाधि मन्दिर है, उसी कमरे में वे रहते थे। अपने अंतिम समय के लगभग दो वर्ष पूर्व से गुरूदेव ने उक्त आसन वेदी का कुछ विशेष कारणों से उपयोग नहीं किया। इस समय वे दरवेश जी महाराज के मंदिर के पास, तमाल वृक्ष के पीछे स्थित बरामदे में कुर्सी पर बैठकर टेबिल पर पत्र आदि लेखन कार्य करते थे। यहां कई टेबिल कुर्सियां रखी हुई थी। दर्शनार्थी इसी स्थान पर आकर गुरूदेव से भेंट करते थे। गुरूदेव वहीं एक कमरे में रात्रि को भी रहते थे। इसी कमरे में उन्होंने महासमाधि ली थी।

गुरूदेव टेबिल के पास अपनी कुर्सी पर बैठे हुये थे और हम लोग उनसे कुछ हठकर जमीन पर बैठे हुये थे। गुरूदेव ने हमें बैठा देखकर हमसे चले जाने को कहा। हम लोग फिर भी वहाँ बैठे रहे क्योंकि उनको छोड़कर हम कहाँ जा सकते थे? हमारे मन की अवस्था उसी प्रकार थी जिस प्रकार बच्चे अपने माता-पिता की डांट व मार खाकर भी उनसे ही लिपटे रहते हैं।

थोड़ी देर बाद मैंने गुरूदेव से कहा कि मेरा एक प्रश्न है कि हमारे मन में

इस तरह का प्रतिवाद करने का भाव क्यों उत्पन्न होता है?

गुरूदेव ने डांटते हुये कहा–**यह भाव तुम्हारे मन में क्यों आ रहा है मैं क्या जानू? थोड़ी देर बाद वे फिर बोले तुम लोगों को अंहकार हो गया है। तुम लोग पढ़-लिख लिये हो इसलिये न तो किसी की बात सुनना चाहते हो, न ही कोई छोटा कार्य करना चाहते हो। उन्होंने कहा कि जो कर्मयोग के साधक हैं उन्हें अपना निर्धारित कार्य फौजी आदेश के समान करना होगा। उन्हें जो भी निर्देश दिया जावेगा, बिना प्रतिवाद के उन्हें वही करना होगा। दिन भर खाना नहीं खाया। शरीर अस्वस्थ है। विभिन्न कायो से शरीर में थकान हो गयी है फिर भी आदेश मिलता है कि १० मील दूर जाकर काम करके आना है, उसे उसी समय निकलना होगा। किसी तरह का बहाना या प्रतिवाद नहीं चलेगा। कर्म के लिये सहर्ष मृत्यु का वरण भी करना पड़ता है। इसी तरह का निर्देश पालन करते हुये कर्म करना ही ''कर्मयोग'' कहलाता है। ईश्वर की प्राप्ति इसी प्रकार के मनोयोग के साथ कर्म करने से होती है अन्यथा ईश्वर की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।**

गुरूदेव की बात सुनकर आलोकानंद ने निवेदन किया कि कर्म की यह परिभाषा हम लोग नहीं जानते थे। हम सोचते थे कि जो कार्य करना अच्छा लगे, वही कार्य अच्छे ढंग से करना चाहिये तथा जो कार्य अच्छा न लगे अथवा करना संभव न हो तो स्पष्ट रूप से बता देना ठीक है कि यह काम हम नहीं कर सकते। हमने गुरूदेव से निवेदन किया कि हमें एक अवसर और दिया जाये। गुरूदेव डांटते हुये बोले–''**नो चांस (No chance)! तुम लोगों को आश्रम में रखने से सभी लोग प्रतिवाद करना प्रारंभ कर देंगे और कार्य से विमुख हो जायेंगे। परिणामस्वरूप आश्रम में उच्छृंखलता का माहैाल बन जायेगा।**

कुछ देर रूक कर मैंने गुरूदेव से पूछा–हमारे अंदर का यह भाव किस प्रकार दूर होगा? गुरूदेव ने इस बार शांत भाव से उत्तर दिया–''**तुम्हें अभी और अधिक भजन-साधना करनी होगी। हमेशा नाम-जप करते रहना पड़ेगा तथा छोटे से छोटा काम भी करना होगा।''**

लगभग एक घंटे से अधिक समय तक हम लोग गुरूदेव के पास बैठे रहे। दोपहर के १२ बज गये । प्रमीला दीदी (गुरूदेव की शिष्या) जिन्होंने दीर्घकाल तक गुरूदेव की सेवा करने का सुअवसर प्राप्त किया था, ने आकर गुरूदेव से कहा कि भोजन का समय हो गया है। गुरूदेव अपने कमरे के अंदर बाथरूम में चले गये। कुछ देर बाद वे हाथ पैर धोकर बाहर आये। हमने विचार किया कि दोपहर के भोजन के पश्चात् गुरूदेव लगभग तीन बजे तक विश्राम करेंगे, इसलिये हम लोग कमरे के भीतर, उनक पास गये और निवेदन किया कि ''हमसे जो भी अपराध हुआ है, वह सब क्षमा करो।''

हमारी यह बात सुनकर गुरूदेव ने हमारे कंधे पर हाथ रखते हुये सहास्य कहा– **''क्षमा! सब क्षमा!! मेरे पास तुम लोगों का कोई अपराध नहीं है। चिंता मत करो, तुम लोगों के लिये अभी गुफा में रहना ही अच्छा होगा, समझे? समय-समय पर यहां जिस प्रकार आते रहते थे वैसे ही आते रहना –और दो-चार दिन यहां रहकर फिर वापस जाकर साधना करना।''**

हमने गुरूदेव को प्रणाम किया। उन्होंने अत्यंत स्नेह के साथ आशीर्वाद देते हुये पूछा कि तुम लोगों के पास गाड़ी-भाड़ा है अथवा नहीं। हमसे यह जानकर कि हमारे पास गाड़ी भाड़ा नहीं है, उन्होंने हमें गाड़ी भाड़ा दिया। इस प्रकार हम लोग गुरूदेव से आशीर्वाद लेकर पुनः योगी गुफा आ गये और पूर्ववत साधना प्रारंभ कर दी। यहां आकर हमारे मन में पहले की तरह का मुक्तभाव आ गया। क्योंकि आश्रम के कार्य में योगदान देते समय हमें अनुभव होता था कि हम लोग किसी बंधन में बंध गये हैं।

हम लोग प्रायः आश्रम जाते थे। एक दिन हमने गुरूदेव से पूछा कि आपने हमें संन्यास के समय कहा था कि एक वर्ष के अंदर चारों धाम कर लेना–हम क्या करें? गुरूदेव ने हमारी बात सुनकर कहा– **''हाँ, जितनी शीघ्र संभव हो सके चारों धाम घूम आओ। जो तीर्थ संन्यास लेने के पहले देख आये हो, वहां जाने की आवश्यकता नही है।''** आलोकानंद ने पूछा कि हम लोग पुरी एवं बद्रीनाथ पहले जा चुके हैं। अन्य धाम हम क्या पैदल जायें? गुरूदेव ने कहा–**नहीं, आजकल पैदल जाना संभव नहीं है, तुम लोग ट्रेन से जाना।**

तब मैंने गुरूदेव से कहा कि हमारे पास ट्रेन का किराया नहीं है। हम लोग ट्रेन से किस प्रकार जायें?

गुरूदेव ने कहा–भिक्षा करो। जो कुछ भी मिले, वही लेकर निकल पड़ना। आवश्यकता होने पर फिर भिक्षा कर लेना।

हम लोगों ने रघुनाथपुर आकर गुरूदेव को एक पत्र लिखा एवं स्थानीय कुछ गुरूभाईयों एवं भक्तों के घर जाकर चार धाम जाने के लिये भिक्षा का निवेदन किया। कुछ दिन पहले हम लोगों ने सदावर्त के लिये, इसी प्रकार धन एकत्रित किया था। उस समय केवल १०० रू. प्राप्त हुये थे। किंतु इस बार केवल कुछ घर भिक्षा मांगने पर ही २०० रूपये से अधिक राशि प्राप्त हो गयी।

कुछ दिन बाद गुरूदेव को लिखे पत्र का उत्तर प्राप्त हुआ, जो इस प्रकार है–

ॐ गुरू, **७-८-६७**

परम कल्याणवरेषु,

स्नेहमय आलोक व अमल, तुम लोगों का पत्र मिला। तुम्हारी जिज्ञासाओं का

समाधान निम्नानुसार है:–

१. किसी धाम में कितने दिन रहना चाहिये, इसका कोई नियम नहीं है। फिर भी तीर्थ में कम से कम तीन रात्रि का वास अवश्य करना।

२. मार्ग में स्वपाक भोजन संभव नहीं है। भिक्षा में जो मिल जाये ग्रहण कर लेना, किंतु वह निश्चित ही निरामिष होना चाहिये।

३. पूर्वाश्रम यदि मार्ग में हो तो माँ से मिलने में कोई बाधा नहीं है।

४. तुम्हारी साधना के जो नियम है उन्हीं का पालना करना। किसी गृहस्थ के घर तीन रात्रि से अधिक आतिथ्य स्वीकार नहीं करना।

म १८ अगस्त को बनारस एक्सप्रेस से काशी जाऊँगा। अच्छा होगा यदि रामेश्वरम और द्वारका यथाशीघ्र दर्शन कर आओ। आशीर्वाद करता हूँ कि तुम लोगों का कल्याण हो। तपस्या सार्थक हो और साधना में सिद्धी लाभ प्राप्त करो।

आशीर्वादक–बाबा

नवम परिच्छेद

१० अगस्त, १९६७ इ० को योगी गुफा से हम लोग आश्रम आये। श्री गुरूमाँ को प्रणाम करके, उन्हें बताया कि हम लोग चारों धाम दर्शन करने जा रहे हैं। श्री गुरूमाँ ने आशीर्वाद दिया और १० रूपये भी हमें दिये। गुरूदेव भी दूसरे दिन कोलकाता जा रहे थे। हम लोग उन्हीं के साथ निकल पड़े और यह तय किया कि कोलकाता से पहले रामेश्वरम जायेंगे। आश्रम से हमारे गुरूभाई अनंत दा अपने गृहनगर धात्रीग्राम लौट रहे थे। उन्होंने हमसे कहा कि वे कोलकाता के पास स्थित शांतिपुर एवं नवद्वीप धाम के दर्शन भी करा देंगे। हम लोगों ने इन स्थानों का दर्शन लाभ इसके पहले प्राप्त नहीं किया था। इस कारण हम लोग गुरूदेव से अनुमति लेकर, अनंत दा के साथ पहले धात्रीग्राम आये। नवद्वीप में उस समय अशांति पूर्ण वातावरण था। इसलिये उन्होंने हमें शांतिपुर के दर्शन करा दिये। हम लोग वहाँ से सीधे कोलकाता आकर, दास दा के घर पहुँच गये। गुरूदेव भी कोलकाता में यहीं रूके थे।

गुरूदेव ने वहाँ सबको, हमारे आने के पहले ही, यह बात बता दी थी कि हमलोग यहाँ आ रहे है और चारों तीर्थ दर्शन के लिये निकले हैं। यहाँ पर कुछ लोगों ने बिना मांगे ही हमें रूपये दे दिये। हम लोगों ने यहाँ भिक्षा नहीं की। लगभग तीन सौ रूपये मिल गये। उस समय कोलकाता से चेन्नाई (मद्रास) होकर रामेश्वरम तक जाने का किराया ५५ रूपये था तथा आरक्षण शुल्क केवल २५ नये पैसे था। चूंकि हम लोग जगन्नाथ पुरी पहले जा चुके थे इसलिये हम लोग कोलकाता से सीधे चेन्नाई (मद्रास) गये। वहाँ से तंजौर एवं त्रिची (श्रीरंगम्) देखकर, हमलोग रामेश्वरम धाम पहुँचे। यहाँ हम लोग दशनामी संन्यासियों के एक मठ में तीन रात्रि रूके। हमें यहाँ दर्शन, बहुत अच्छी तरह सुविधा पूर्वक हो गये । यहाँ से मदुरई में मीनाक्षी देवी के दर्शन करके कन्याकुमारी आ गये और लौटते समय अरूणाचलम (महर्षि रमण आश्रम) होकर हमलोग तिरूपति पहुँच गये। वहाँ से, श्री कालहस्ती के दर्शन करके वाल्टेयर होते हुये रायपुर आ गये । दक्षिण भारत में हमलोग अधिकांश स्थानों पर चिवड़ा व फल ही ग्रहण करते थे क्योंकि वहाँ भोजन की बहुत असुविधा थी। वहाँ भोजन में सभी जगह प्याज का उपयोग होता है।

रायपुर हम लोगों का पूर्वाश्रम है। हम लोग द्वारका धाम दर्शन करने जा रहे थे, अतः माँ ने भी हमारे साथ वहाँ जाने की इच्छा व्यक्त की। वे बोली कि 'पुरी एवं रामेश्वरम मैं जा चुकी हूँ। द्वारका धाम बाद में कौन ले जायेगा? यदि तुम लोग अभी मुझे साथ ले चलो तो अच्छा होगा।' माँ की इच्छा अनुसार हम लोग उन्हें साथ लेकर

निकल पड़े। पहले भोपाल में दीदी के यहाँ गये। वहाँ से उज्जैन, डाकोरजी, अहमदाबाद, जूनागढ़, सोमनाथ (प्रभाष) आदि दर्शन करते हुये, हम लोग द्वारका धाम में तोताद्रि मठ में पहुँचे। यहाँ हम लोग तीन रात्रि रूके। इसी बीच एक दिन भेट द्वारका भी गये। द्वारका से अजमेर होकर पुष्कर आ गये ।

पुष्कर आकर ज्ञात हुआ कि श्री सीताराम दास ओंकारनाथ जी यहाँ एक नया आश्रम बनवा रहे हैं और इसी सिलसिले में वे अभी यहीं हैं। पुष्कर के प्रमुख मंदिरों के दर्शन करके हम लोग श्री ओंकारनाथ जी से मिलने गये। वे हमारे साथ माँ को देखकर बहुत प्रसन्न हुये। उन्होंने हमें उस दिन आश्रम में ही दोपहर का प्रसाद ग्रहण करने के लिये कहा। हम लोग उनके पास बैठे हुये थे। माँ ने उन्हें बताया कि जब वे आसन पर बैठकर नाम-जप करती हैं तब कुछ देर नाम-जप करने के बाद ही उनके शरीर में विभिन्न प्रकार की कियायें अपने आप शुरू हो जाती हैं। श्री ओंकारनाथ जी ने कहा–**'भय की कोई बात नहीं है। श्री गुरू कृपा से शक्ति जागरण हो रहा है। नाम-जप करते जाओ।'** हमारी माँ काशी के महात्मा गंध बाबा से दीक्षित थीं।

हमें वहाँ पहले बाल्यभोग का प्रसाद दिया गया । माँ को महिलाओं के कमरे में ले जाकर प्रसाद दिया गया। उस समय ओंकारनाथ जी हमारे पास बैठे हुये थे। माँ को शिष्याओं ने ओंकारनाथ जी का प्रसाद दिया। माँ हाथ में प्रसाद लेकर सोचने लगी कि अब क्या करना उचित है? हमने देखा कि अचानक, ओंकारनाथ जी महिलाओं के कमरे की तरफ गये और थोड़ी देर बाद वापस आकर अपने आसन पर बैठ गये। बाद में माँ से पता चला कि जब वे प्रसाद हाथ में लेकर सोच रही थी कि प्रसाद ग्रहण करें या नहीं? उसी समय ओंकारनाथ जी अचानक वहां उपस्थित हुये एवं शिष्याओं से पूछने लगे कि माँ को किसका प्रसाद दिया है। जब उन्हें यह पता लगा कि शिष्याओं ने माँ को उनका प्रसाद दिया है, तो वे बहुत नाराज हुयें। उन्होंने शिष्याओं से कहा– **'तुम लोग क्या जानते नहीं हो कि इनकी साधना में अपने गुरू के प्रसाद के अलावा अन्य किसी का प्रसाद ग्रहण करना निषेध है। माँ को विग्रह का प्रसाद लाकर दो।'** इसके बाद उन्होंने माँ से, वह प्रसाद रखकर हाथ धोने के लिये कहा। तब माँ को विग्रह का प्रसाद लाकर दिया गया।

मध्यान्ह में माँ एवं हम लोगों को, एक ही स्थान पर प्रसाद ग्रहण करने के लिये उन्होंने कहा। वे स्वयं वहाँ खड़े होकर भोजन की व्यवस्था कराने लगे। उनको इस तरह खड़े देखकर, हमने उनसे अनुरोध किया कि आपको इस तरह कष्ट नहीं करना चाहिये। हम लोग प्रसाद ग्रहण करके आपके पास आते हैं। आपके इस तरह खड़े रहने से हम लोगों को प्रसाद ग्रहण करने में संकोच होता है। हमारी यह बात सुनकर, वे हँसते हुये जाकर अपने आसन पर बैठ गये। थोड़ी देर बाद फिर यह देखने वापस आ गये कि भोजन ठीक से हो रहा है अथवा नहीं। जब हमलोगों का भोजन

पूरा हो गया तब उन्होंने हमें पत्तल फेंकने से मना किया। हम लोगों ने फिर भी पास में ही एक स्थान पर पत्तल फेंक दी। वापस आकर देखा कि इस बीच एक शिष्या ने आकर उस स्थान को, जहाँ हम भोजन ग्रहण कर रहे थे, साफ करके चली गयी। श्री ओंकारनाथ जी भी उस समय वहीं खड़े हुये थे। शिष्या के जाने के बाद, वह स्थान देखकर उन्होंने कहा– 'देख रहे हो, ये लोग कोई भी काम ठीक से नहीं करते हैं।' ऐसा कहते हुये उन्होंने स्वयं एक लोटे में जल लेकर उस स्थान को ठीक से साफ करना शुरू कर दिया। हम लोगों के हाथ उस समय तक नहीं धुले थे। हम इस प्रकार उन्हें जूठा स्थान साफ करते देखकर अवाक् रह गये। हमने जोर से आवाज देकर एक शिष्य को बुलाया इस पर एक साधु दौड़ते हुये आये और उनसे लोटा लेकर जूठा स्थान साफ करने लगे।

इस घटना के उल्लेख का उद्देश्य यही है कि महापुरूष हर छोटे से छोटे कार्य को किस गंभीरता से लेते हैं, यह समझना साधारण लोगों की बुद्धि से परे है। महापुरूषों की दृष्टि में कोई भी कार्य छोटा अथवा सामान्य नही होता। इस प्रकार ओंकारनाथ जी का आशीर्वाद लेकर हम लोग धर्मशाला वापस आ गये।

श्री सीताराम दास जी से संबंधित कुछ अन्य प्रसंग भी उल्लेखनीय है :–

एक बार दूर्गा पूजा के समय कोलकाता पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि श्री सीताराम दास ओंकारनाथ जी, बालटिकुरी (हावड़ा) सदानंद मठ में पधारे है। हम लोग ३ अक्टूबर, १९६८ को उनसे मिलने गये। हमारे साथ हमारे एक मामा, गुरूभाई वासुदेवानंद एवं पानू दा भी थे। दिन के लगभग १० बजे हम लोग वहाँ पहुँचे। उस समय वे वहां नही थे। वे थोड़ी देर बाद वहाँ आये। बहुत भीड़ थी, इसलिये वे जब गाड़ी से उतरकर अंदर आने लगे, तभी हमलोगों ने उन्हे साष्टांग प्रणाम किया। वे हमें देखकर बहुत प्रसन्न हुये और पूछा कि कब आये हो? आज यहीं प्रसाद पाकर मुझसे मिलने के बाद जाना। यह कहकर वे दूसंरे ऊँचे स्थान पर, जो उनके बैठने के लिये बनाया गया था, उस ओर चले गये। उसी समय पानू दा ने भी उन्हें प्रणाम करने का प्रयास किया किंतु उन्होंने मना किया। इसका कारण यह था कि यदि सभी लोग इस तरह रास्ते में उन्हें प्रणाम करते रहेंगे तो अव्यवस्था हो जायेगी। पानू दा के मन में थोड़ी निराशा हुई कि उन्हें प्रणाम करने से मना कर दिया गया। इसके बाद दर्शनार्थी पंक्तिबद्ध होकर उन्हें प्रणाम करने लगे। हमलोग उस समय नाम मंदिर में जाकर बैठ गये।

वहीं एक साधु आकर हमें बाल्यभोग का प्रसाद दे गये। उस समय वहाँ अखंड 'तारक ब्रह्म' नाम का कीर्तन चल रहा था। लगभग एक बज गया हमने देखा कि प्रसाद ग्रहण करने के लिये लोग कई स्थानों पर पंक्तिबद्ध बैठ गये हैं। हमलोग यहाँ पहली बार आये थे। हमें यहाँ की व्यवस्था का ज्ञान नहीं था। अतः हमलोग नाम मंदिर में ही बैठे रहे।

लगभग डेढ़ बजे एक साधु हमारे पास अचानक आये और हमें बुलाकर रसोईघर के एक कोने में आसन पर बैठने के लिये कहा। वे हमें भोजन परोस रहे थे। हमने भोजन ग्रहण करना प्रारम्भ ही किया था कि रसोई घर के दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी और दरवाजा खोला गया। हमने देखा कि श्री सीताराम दास जी स्वयं वहाँ आ गये। वे हमारे पास आकर हाथ जोड़कर कहने लगे– ''**क्षमा करना, मैं तुम लोगों के बारे में भूल ही गया था। जैसे ही मैंने भोजन शुरू किया, मुझे तुम लोगों की याद आई। तब मैंने तुम लोगों के भोजन के लिये कहा। तुम लोग हमारे अतिथि हो। ऐसी भूल मुझसे होती नहीं है, किन्तु आज इस भूल के लिये मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।**''

हमलोग उनकी इस विनम्रता को देखकर मुग्ध हो गये। हमने कहा कि आपने पहले भोजन कर लिया है, इससे क्या फर्क पड़ता है। हम लोग प्रसाद ग्रहण कर रहे हैं। आप इस तरह मत कहिये अन्यथा हम लोग प्रसाद ग्रहण नही कर सकेंगे। हमारी बात सुनकर वे हँसने लगे और वहीं खडे रहकर साधुओं को निर्देश देने लगे कि वे हमें अच्छे से भोजन करायें। हमने उनसे फिर अनुरोध किया कि आप इस प्रकार यहाँ खड़े न रहे, विश्राम करें। हमारी बात सुनकर, वे विश्राम करने चले गये और जाते जाते कह गये कि मुझसे मिल कर ही जाना। हम लोग प्रसाद ग्रहण करने के बाद उनसे मिलने गये। पानूदा एवं मामा जी, श्री सीताराम दास जी को प्रारंम्भ में प्रणाम नही कर सके थे क्योंकि उन्होंने पानू दा को प्रणाम करने से मना कर दिया था। यहाँ विभिन्न स्थानों पर लिखा था कि जो लोग मांसाहारी हैं, वे स्पर्श प्रणाम न करें। मामा यह सब चीजें खाते थे इसलिये उन्होंने उनको पास जाकर प्रणाम नही किया। हम लोग जब उनके कमरे में गये तब वे एक खाट पर विश्राम की अवस्था में लेटे हुये थे। उनके पैरों पर चादर थी। वे पानू दा को देखकर हँसते हुये बोले तुम्हें प्रणाम करने के लिये मना किया था। मन में बहुत कष्ट हुआ होगा। अब तुम लोग प्रणाम करो। यह कहकर उन्होंने पैर के ऊपर से चादर हटा ली। पानू दा व हम सभी ने अच्छी तरह से उनके चरण स्पर्श कर उन्हें प्रणाम किया। हम सभी के माथे पर हाथ रखकर श्री सीताराम दास जी ने आशीर्वाद दिया। उस समय मामा ने अपने शरीर में एक विशेष शक्ति किया का अनुभव किया। बाद में मामा ने उनसे 'नाम' भी प्राप्त किया। यह नाम (मंत्र) जप करने के कुछ वषो बाद हमारी गुरू माँ से वे सद्‌गुरूदत्त दीक्षा लेकर धन्य हुये।

हमें एवं स्वामी वासुदेवानंद को उन्होंने माथे पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुये कहा–**मैं तुम लोगों को आशीर्वाद करता हूँ कि तुम लोग ब्रह्मज्ञान लाभ करो, ब्रह्मानंद में स्थिति प्राप्त करो और तुम्हें गुरूकृपा का लाभ हो। गुरूदेव ने तुमको जो निर्देश दिये हैं, हमेशा उसी के अनुसार चलते रहने का प्रयास करते रहो।**

हमारे हाथ में कुछ ग्रंथ देखकर श्री सीताराम दास जी ने हमसे पूछा कि क्या

इन सब ग्रंथों के दाम तुमसे लिये गये हैं। हमने कहा– हाँ, हमने इनकी कीमत दी है, क्यों इससे क्या हुआ? उन्होंने एक साधु को बुलाकर नाराजगी व्यक्त करते हुये कहा– **तुम लोगों ने साधु से ग्रंथों की कीमत क्यों ली? इसी समय इनको पैसे वापस करो।** साधु ने हम लोगों को पैसे लौटा दिये। हमारे अनुरोध पर, श्री सीताराम दास जी ने हमारे पास की एक अपनी तस्वीर पर हस्ताक्षर भी किये।

इस तरह उनके दर्शन व आशीर्वाद पाकर हम धन्य हुये। महात्माओं के संग किये बिना यह समझना कठिन है कि वे सभी कार्या में किस तरह तत्पर रहते हैं एवं वे कार्यों को किस गंभीरता से लेते हैं। लोक शिक्षा की दृष्टि से कई बार उनका आचरण, साधारण लोगों के लिये समझ से परे होता है जबकि उनकी सभी के प्रति समदृष्टि रहती है।

२. हमलोग उस समय जहरगढ़ (सीतारामपुर) में रहते थे। गुरूदेव के देह त्याग के पहले, हमारे छोटे भाई अमित ने उनसे दीक्षा प्राप्त की थी। कुछ दिन भजन-साधना करने के बाद वह भी घर छोड़कर चले जाने के उद्देश्य से, हमारे पास आया। हमने उसकी बात सुनकर कहा कि 'घर छोड़ने के बाद ईश्वर के ऊपर निर्भर रहकर चलना होगा। कोई आश्रम या मठ देखकर साधु होना ठीक नही है। यदि कोई सिद्ध महापुरूष कहे कि इस पथ पर तुम अग्रसर हो सकोगे तो बहुत अच्छा होगा।' इस समय श्री गुरू माँ आश्रम में नही थी, कोलकाता गई थी। अमित हमलोगों के पास ही था। हमें ज्ञात हुआ कि श्री सीताराम दास जी, पानागढ़ के पास 'सोवाई आश्रम' मे आये हुये हैं एवं कुछ दिन यहीं रूकेंगे। हम लोग अमित को लेकर उनसे मिलने जाने का विचार किया। उसी रात्रि के अंतिम प्रहर में जब मैं आसन पर बैठकर नाम-जप कर रहा था तब मैंने देखा कि श्री सीताराम जी सामने खड़े हुये प्रसन्न दृष्टि से मुझे देख रहे हैं। कुछ क्षण बाद ही वे ओझल हो गये। दूसरे दिन सुबह २७ मई, १९६९ को हमलोग ट्रेन द्वारा सीतारामपुर से पानागढ़ गये और वहाँ से लगभग पाँच-छः किलोमीटर पैदल चलकर 'सोवाई आश्रम' पहुँचे। वहाँ पहुँचकर, हमलोग श्री सीताराम दास जी से मिलने गये। वे एक कमरे में आसन पर बैठकर कुछ लिख रहे थे। हम उनको प्रणाम करके, उनके पास ही बैठ गये। उन्होंने एक शिष्य को हमारे लिये आसन देने के लिये कहा। शिष्य आसन लेने चले गये। किंतु उन्हें आने में देर होती देख वे कुछ नाराज हुये और स्वयं जिस आसन पर बैठे थे उसे हटाकर जमीन पर ही बैठने लगे। हमने उनके पास जाकर उनका हाथ पकड़कर ऐसा करने से रोका। उन्होंने कहा–**तुम लोगों को आसन देने के लिये कहा था ये लोग आसन नहीं लाये। फिर मैं कैसे आसन पर बैठ सकता हूँ?** मैंने जल्दी से जाकर एक साधु को बताया, साधु तुरंत हम लोगों के लिये एक कम्बल ले आये और बिछा दिया। हमलोग उस पर बैठ गये। कुछ देर तक हमलोग श्री सीताराम दास जी से विभिन्न प्रसंगों पर

चर्चा करते रहे। बाद में हमने उनसे कहा कि हम आपके पास एक समस्या लेकर आये हैं। अमित की ओर देखकर हमने कहा कि यह हमारा छोटा भाई है। यह घर छोड़कर निकलना चाहता है। हमारे गुरूदेव देह त्याग चुके हैं, इसलिये हम इसे लेकर आपके पास आये हैं। आप बतायें कि क्या यह भजन-साधना में सारा जीवन बिता सकेगा? क्योंकि घर छोड़ना तो सहज है, लेकिन सारा जीवन भजन-साधना में व्यतीत करना आसान नही है।

हमारी बात सुनकर श्री सीताराम दास जी गंम्भीर भाव से अमित की ओर देखते रहे। फिर उन्होंने अमित को आलिंगनबद्ध करके स्नेहपूर्वक पीठ ठोककर उसे आशीर्वाद देते हुये कहा–''**यह अवश्य कर सकेगा। शंका की कोई बात नही है।**'' उस समय उनके कमरे में दो-तीन लोग और थे। उनके चले जाने के बाद मैंने श्री सीताराम दास जी से पूछा कि आज रात्रि के अंतिम प्रहर मे मैंने आपको देखा था। क्या सचमुच आपने मुझे दर्शन दिये? मेरी बात सुनकर उन्होंने कहा–'**तुम्हें जो दर्शन हुये, वह सत्य है। किसी-किसी को इस प्रकार दर्शन प्राप्त होते हैं। किंतु मैं तो कहता हूँ कि सीताराम इस बारे में कुछ नहीं जानता'। ऐसा कहकर वे हँसने लगे।**

उस दिन एकादशी थी। रात्रि लगभग ११ बजे प्रसाद प्राप्त हुआ। प्रसाद ग्रहण कर, हम लोग विश्राम करने चले गये। रात्रि में घंटे की आवाज सुनकर, हमने उठकर देखा कि रात्रि क ३ बजे है। श्री सीताराम दास जी स्वयं घंटा बजा रहे हैं। वहाँ अखंड श्री नाम-कीर्तन चल रहा था। प्रत्येक प्रहर में पारी-पारी से एक-एक कीर्तन-मंडली कीर्तन कर रही थी। कीर्तन-मंडली को सूचित करने के लिये ही घंटा बजाया जा रहा था। हमलोगों ने विचार किया कि इसी समय श्री सीताराम दास जी को प्रणाम करके प्रातःकाल ही यहाँ से रवाना हो जायेंगे। हमने उनके पास जाकर प्रणाम किया और उन्हें बताया कि थोड़ी देर बाद हमलोग चले जायेंगे। उन्होंने कहा कि तुम लोगों को एक बात बताना है। तुम लोग थोड़ा रूको, मैं अभी आ रहा हूँ। हम उनकी प्रतीक्षा करने लगे। थोड़ी देर बाद वे आये और बाहर एक चौकी पर बैठ गये। हमलोग भी उनके पास ही बैठ गये।

वे सती मदालसा की कथा हमें बताने लगे। उन्होंने कहा–सती मदालसा एक ब्रह्मज्ञा रानी थी। वे अपने बच्चों को बचपन से ही ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देती थी। बच्चे बचपन से ही माँ से ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर, थोड़े बड़े होने पर, संसार त्याग कर तपस्या करने चले गये। इस प्रकार दो पुत्रों के साधु हो जाने से राजा ने दुःखी होकर रानी से कहा कि तुम्हारी शिक्षा से सभी पुत्र साधु होते जा रहे है और यदि इसी तरह चलता रहा तो मेरे बाद राज्य का उत्तराधिकारी कौन होगा? राजा ने कहा कि इस बार छोटे पुत्र को मैं शिक्षा दूँगा और उसे अपनी इच्छा अनुसार, राज्य कार्य के लिये तैयार करूँगा। राजा की बात सुनकर रानी ने सहमति दे दी। राजा ने अपने छोटे

पुत्र को स्वयं शिक्षित किया और यथासमय उसे सिंहासन पर आसीन कर रानी के साथ वानप्रस्थ लेकर वे तपस्या के लिये निकल पड़े। जाते समय रानी ने छोटे पुत्र को एक डिब्बी देते हुये कहा कि मैंने तुम्हें कोई शिक्षा नहीं दी इसलिये तुम्हें बताना चाहती हूँ कि यदि तुम पर कभी विपत्ति पड़े तथा मन अशांत हो जाये, तो इस डिब्बी को खोलकर देखना। इसमें मैंने तुम्हारे लिये शांति के उपाय लिखें हैं। रानी ने वह डिब्बी उसे दे दी। पुत्र ने डिब्बी संम्भालकर रख ली। छोटा लड़का राजा होने के बाद, सत्ता क मद के मतवाला हो गया।

उसके बड़े भाई, जो संसार त्यागकर तपस्या करने चले गये थे, उन्हें जब अपने छोटे भाई के सम्बंध में जानकारी मिली तो वे, उसे इससे मुक्त कराने के लिये चिंता करने लगे। विचार करने के बाद, वे अपने भाई के पास गये और उसे समझाते हुये कहा कि 'हम तुम्हारे बड़े भाई हैं। हमारे रहते हुये तुम्हें राज सिंहासन पर बैठने का अधिकार नहो है। तुम सभी राज्य कार्य हमें सौंप दो।' छोटे भाई ने कहा कि 'आप लोग तपस्या करने चले गये थे, इसलिये पिताजी वानप्रस्थ के लिये जाते समय मुझे राज्य का भार सौंप गये हैं। मैं यह आपको वापस नहीं करूँगा।'

अंत में दोनों तपस्वी भाईयों ने काशी के राजा से सहयोग लेते हुये उनकी सहायता से छोटे भाई को पदच्युत करने के लिये, उस पर आकमण किया। युद्ध कई दिनों तक चलता रहा। अंत में छोटा भाई हार गया और किसी प्रकार प्राण बचाकर जंगल की ओर भागने की योजना करने लगा। तभी उसे माँ के दिये हुये उपहार की याद आई। उसने माँ की दी हुई डिब्बी को खोलकर देखा। उसमें लिखा था–

''शांति लाभ के उपाय''

१. सर्वसंग त्यागकर निसंग रहो–न कर सको तो साधु संग करो।

२. सर्व कामना का त्याग करो-न कर सको तो सत्संग की कामना करो।

३. सर्व आसक्ति त्यागकर, एक मात्र भगवान् के प्रति आकर्षण रखो।

छोटे पुत्र ने माँ का उपदेश पढ़कर सोचा कि वास्तव में विषय भोग में शांति नहीं है । शांति केवल त्याग में ही है। इस प्रकार उसे वैराग्य हो गया। वह सिंहासन त्यागकर, बड़े भाईयों से क्षमा याचना करने के उपरांत तपस्या के लिये निकल पड़ा। बड़े भाईयों ने भी अपना प्रयोजन पूर्ण हो जाने के बाद, राज्य का समस्त भार काशी के राजा को सौप दिया और स्वयं तपस्या करने चले गये। यह घटना देख सुनकर काशी के राजा को भी वैराग्य हो गया और वे भी वानप्रस्थ लेकर, अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठाकर, तपस्या करने चले गये।

इस प्रकार श्री सीताराम दास जी हमें बहुत देर तक सती मदालसा की कथा सुनाते रहे। उनकी कथा सुनते-सुनते हमलोग, कुछ अन्यमनस्क से हो गये। कथा समाप्त होने के बाद वे हमसे बोले कि कथा का भाव समझ में आया? कथा से यह

शिक्षा मिलती है कि बडे भाईयों का कर्तव्य है कि वह छोटे भाई को विषयबद्ध न होने दें। बड़े भाईयों को चाहिये कि वे अपनी तरह ही छोटे भाई को घर से बाहर खींचकर तपस्या करने के लिये भेज दें।

हम लोग सीताराम दास जी की बात सुनकर विस्मित हो गये। यह कथा उन्होंने हमारे लिये ही कही थी, किंतु हम प्रारम्भ मे समझ नहीं सके। इसके बाद श्रीसीतारामदास जी से आशीर्वाद लेकर हम लोग सीतारामपुर (जहरगढ़) वापस आ गये।

३. सीतारामपुर (जहरगढ़) में हमलोग लगभग चार वर्ष (१९६८-७२) रहे। इस समय सीतारामपुर के पास बेलरूई नामक एक गांव में, श्री सीताराम दास जी एक आश्रम की स्थापना के लिये आये। हमलोगों ने इस अवसर पर उन्हें जहरगढ़ के मंदिर में लाने का विचार किया और इस हेतु प्रातः हमलोग उनसे मिलने गये। वहाँ बहुत भीड़ थी। किसी प्रकार उनसे मुलाकात कर, हमलोगों ने उन्हें जहरगढ़ आने के लिये निवेदन किया। उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार करते हुये कहा कि आज यहाँ पर शाम तक कार्यकम पूरा हो जायेगा। उसके बाद यहाँ से शाम सात बजे के बाद आसनसोल जाते समय तुम लोगों के यहाँ आऊँगा। उन्होंने अपने प्रमुख शिष्य तारक जी को बुलाकर, अपने विचारों से अवगत कराया । श्री तारक जी ने पहले तो असहमति प्रकट की पर अंत में श्री सीताराम दास जी की इच्छा के अनुरूप सीतारामपुर चलने के लिये सहमत हो गये और हमसे संध्या के समय आने के लिये कहा। उस समय हम लोग वहाँ से वापस जहरगढ आ गये तथा आसपास कई स्थानों में श्री सीताराम दास जी के आगमन की सूचना भेज दी। संध्या को यहाँ अखंड कीर्तन प्रारम्भ कर, हमलोग उन्हें लाने के लिये बेलरूई गये। वहाँ पहुँचते ही, तारक जी ने हमसे कहा कि आज यहाँ का कार्यकम समाप्त होने में काफी विलम्ब हो जायेगा, इस कारण आज गुरूदेव का जहरगढ़ जाना संभव नहीं होगा। उनकी बात सुनकर, हमने पुनः श्री सीताराम दास जी से भेंट करके, उनसे जहरगढ़ चलने के लिये प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि मैं तुम लोगों को पहले ही कह चुका हूँ कि यहाँ का कार्यकम समाप्त होने पर तुम्हारे यहाँ अवश्य आऊँगा। किंतु थोड़ी देर हो जायेगी। उन्होंने तारक जी को बुलाकर फिर से अपने विचार बताये। तारक जी ने वहाँ से बाहर निकलकर हमें गाड़ी ले आने के लिये कहा। हमने उनसे कहा कि सीताराम बाबा तो आसनसोल गाड़ी से ही जायेंगे, उसमें क्या बैठने की व्यवस्था नहीं हो सकेगी? तब वे बोले कि बाबा की गाड़ी में आप दोनों में से किसी एक के बैठने की व्यवस्था हो सकेगी। तब आलोकानंद अपने किसी परिचित व्यक्ति की गाड़ी से जहरगढ़ पहले ही चले गये और म सीताराम दास जी को साथ लेकर लगभग रात्रि के आठ बजे जहरगढ़ आश्रम पहुँचा। वे वहाँ जाकर पहले मंदिर में पहुँचे एवं हरिलूट का भोग दिवेदन किया फिर

बाहर मंदिर के बरामदे में, आसन पर बैठ गये। वहाँ एकत्रित सभी भक्तों ने उन्हें प्रणाम किया। वे वहाँ लगभग आधा घंटे रहे और फिर आसनसोल के लिये प्रस्थान कर गये।

उनके चले जाने के बाद ज्ञात हुआ कि संध्या सात बजे वहाँ नाम-कीर्तन चल रहा था, उस समय अचानक किसी भक्त ने अवलोकन किया कि श्री सीताराम दास जी के लिये निर्दिष्ट आसन पर चरणों के स्पष्ट चिन्ह प्रकट हुये हैं। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने इस चिन्ह को प्रत्यक्ष देखा था। इस प्रकार संध्या के समय लगभग सात बजे, जिस समय श्री सीताराम दास जी का जहरगढ़ आने का विचार था, ठीक उसी समय सूक्ष्म शरीर में उन्होंने अपनी उपस्थिति यहाँ प्रकटकर दी थी। इस प्रकार श्री सीताराम दास जी की कृपा दृष्टि एवं आशीर्वाद हमें हमेशा प्राप्त होता रहा। श्री सीताराम दास जी का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है–

श्री सीताराम दास ओंकारनाथ जी का परिचय :–

पश्चिम बंगाल के हुगली जिला के अन्तर्गत डूमरदह नामक स्थान में श्री प्राणहरि चट्टोपाध्याय एवं श्रीमती माल्यवती देवी नामक एक सात्विक दम्पति रहते थे। इनके द्वितीय पुत्र थे श्री प्रबोध चन्द्र। बंगला सन् १२९८, ६ फाल्गुन कृष्णा पंचमी तिथि में इन्होंने जन्मग्रहण किया था।

बचपन से विभिन्न दर्शन आदि प्राप्तकर वे समाधिमग्न हो जाते थे। इस अवस्था में नाम-कीर्तन सुनाने पर वे स्वाभाविक अवस्था में आ जाते थे। इनकी शिक्षा एवं दीक्षा गुरू थे श्री दाशरथि स्मृतिभूषण। इन्होंने इनका नाम 'सीताराम दास' रखा। श्री गुरू निर्देशानुसार थोड़ी साधना से ही इन्हें शिवजी का दर्शन मिला। श्री गुरूजी के निर्देश से उन्हें गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना पड़ा था। उनकी पत्नी का नाम था सिद्धेश्वरी देवी।

गृहस्थ जीवन में भी उनकी साधना एक ही प्रकार चलती रही। अपने दर्शन एवं अनुभव के बारे में वे गुरूदेव को सब बताते थे। इनके अनुभव को सुनकर गुरूदेव स्तंभित हो गये। एक दिन शिष्य को उन्होंने इष्ट दर्शन करवाने के लिये कहा। गुरूदेव, गुरू पत्नी, सीताराम दास एवं उनकी पत्नी ये चारों एक कमरे में एकत्रित हुए। शिष्य की प्रार्थना करने पर, गुरूदेव एवं सभी लोगों ने अपने इष्ट देव का दर्शन पाया एवं धन्य हुए। श्री गुरूदेव ने शिष्य को, भावविभोर होकर एक श्लोक लिखकर दिया–

(भावार्थ)–''तुम मेरे कौन हो–गुरू या शिष्य–मुझे नही पता। पर यह जानता हूँ कि मैं तुम्हारा हूँ एवं तुम मेरे हो। यदि गुरू हो, तो मैं तुम्हारा शिष्य हूँ–शरण ले रहा हूँ–कृपा करके उद्धार करो और यदि मैं तुम्हारा गुरू हूँ तब तुम कहो कि तुम कौन हो, तुम्हारा स्वरूप क्या है एवं कौन से उपादन द्वारा तुम गठित हो?''

इस तरह क गुरू एवं शिष्य के दृष्टान्त दिखलाई नहो पड़ते। शिष्य सीताराम

दास, श्री गुरूदेव के निर्देश के अनुसार शास्त्र, वर्णाश्रम धर्म एवं नाम प्रचार कार्य में अग्रसर हुये। गुरूदेव के महाप्रयाण के पश्चात् भगवत् निर्देश की प्राप्ति के लिए वे पुरी धाम में दीर्घकाल मौनव्रत लेकर साधना में डूब गये। उस समय श्री श्री जगन्नाथ जी ने उन्हें नाम-कीर्तन प्रचार करने का निर्देश दिया। बंगला सन् १३४३ से व्यापक रूप से बंगाल, बिहार, उड़िसा आदि विभिन्न स्थानों में असंख्य नाम प्रचार केन्द्र स्थापित हुए। विभिन्न शास्त्र ग्रन्थ एवं पत्रिका के माध्यम से इन्होंने सनातन धर्म का प्रचार कार्य किया। इनकी त्याग, तपस्या एवं तपस्वी मूर्ति के आकर्षण से विभिन्न स्थानों से असंख्य नर-नारी इनका आश्रय प्राप्त कर धन्य हुए।

विगत् बंगला सन् १३८१, १९ अग्रहायण उन्होंने महाप्रयाण किया। वे सभी को तारक ब्रह्म– हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।।

इस मंत्र का जप एवं संकीर्तन करने के लिये कहते थे। (समाप्त)

पुष्कर से आगरा होकर हमलोग वृंदावन आ गये। यहाँ मालूम हुआ कि माँ आनंदमयी अभी वृंदावन में हैं। हमलोग शाम को उनके दर्शन के लिये गये। उस समय उनके आश्रम में पाठ चल रहा था और बहुत भीड़ थी। हमलोग काफी दूर से ही उनके दर्शन कर सके, किंतु उन्होंने हमें देखकर अपने पास बुला लिया। पहले जब काशी में उनसे भेंट हुई थी तब तक हम लोगों का संन्यास नही हुआ था। वे हमारे रंगीन कपड़े देखकर कहने लगीं कि रंगीन कपड़े पहनकर अच्छा लग रहा है न? फिर हँसने लगीं। हमने उन्हें प्रणाम करके कहा कि हमारी माँ आपसे कुछ निवेदन करना चाहती हैं। माँ आनंदमयी ने वहां उपस्थित सभी लोगों से कुछ दूर जाने के लिये कहा और माँ को पास बुलाया। माँ ने आसन पर बैठने से, अपने आप आसन, मुद्रा, आदि जो अवस्थाएं होती थी, उसके बारे में उन्हें बताया। आनन्दमयी माँ बोली–''**चिन्ता मत करो, जो हो रहा है, सब ठीक है। शक्ति जाग्रत होने से ऐसा होता है। नाम-जप करते जाओ।**'' हमने विचार किया कि यही बात ओंकारनाथ जी ने भी कही थी। इस प्रकार लगा कि महापुरूषों की बातें, अदभुत रूप से, एक समान होती है।

वृन्दावन से दिल्ली होकर हमलोग हरिद्वार आ गए। हरिद्वार से काशी आ गए। काशी में गंधबाबा के शिष्य, महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज से मुलाकात हुई। हमारे साथ उनका पहले से परिचय था, माँ का परिचय प्राप्तकर वे अत्यन्त आनन्दित हुए (माँ भी गंधबाबा की शिष्या थीं) एवं काफी देर तक गंध बाबा के सम्बन्ध में चर्चा होती रही।

काशी में एक दिन, श्री सन्तदास काठिया बाबा की शिष्या श्री शोभा माँ के पास गए। पूर्व में, कुछ व्यक्तिगत् प्रश्न हमने माँ आनन्दमयी, माँ मणि, ओंकारनाथ जी, श्री गुरूदेव से तथा श्री गुरू माँ से किये थे। इस बार काशी में, शोभा माँ से भी

वही प्रश्न किया तो शोभा माँ ने भी उन प्रश्नों का उत्तर, एक समान ही दिया। इस पर, मैंने श्री शोभा माँ से कहा कि आप सभी महापुरूष, प्रश्नों का एक समान ही उत्तर देते हैं, यह कैसे होता है? श्री शोभा माँ ने कहा–''देखो बेटा, उत्तर तो एक ही जगह से आ रहा है।''

इसके बाद हमलोग काशी से कोलकाता आये। माँ यहाँ से वापस रायपुर पहुँच गइ। हम बद्रीनाथ पहले जा चुके थे इसलिये पुनः वहाँ नहीं गये। इस प्रकार गुरूदेव की इच्छा से हमलोगों के, चारों धाम के दर्शन पूर्ण हो गये। द्वारिका धाम जाते समय, माँ के साथ रहने के कारण हमलोगों को भोजन व अन्य खर्च के लिये कोई चिंता नहीं करनी पड़ी। तीर्थ भ्रमण में लगभग दो हजार रूपये से अधिक खर्च हुये। जब कि तीर्थ यात्रा प्रारम्भ करने के पहले, हमारे पास खर्च की कोई व्यवस्था नही थी।

दशम परिच्छेद

तीर्थ भ्रमण करने के बाद, हम लोगों ने फिर रघुनाथपुर आकर, योगी गुफा में साधना प्ररम्भ कर दी। इसी समय गुरूदेव को कुछ जिज्ञासा प्रकट करते हुये पत्र लिखा था, जिसके उत्तर में गुरूदेव ने लिखा–

ॐ गुरू, **१७-१२-६७**

कल्याण वरेषु,

स्नेहमय आलोक व अमल । तुमलोगों का पत्र प्राप्त हुआ। तुमलोग कीर्तन के बाद ही आसन में बैठना। सात बजे तक कीर्तन होने के बाद नौ बजे से आसन में बैठना। रात्रि ३ बजे से ४-३० तक एवं प्रातः ६-३० से ८-३० बजे तक साधना में बैठते हो यह ठीक है।

स्थानीय लोगों के घर नाम-कीर्तन के लिये जा सकते हो। वहाँ ठाकुर को भोग लगाकर, निवेदित अन्न ग्रहण करने में बाधा नही है। अन्न का अर्थ प्रसाद। चाय, गर्म दूध पीने की मनाही नही है, किंतु तुलसी डालकर ग्रहण करना। आसन के लिये मृग चर्म का उपयोग कर सकते हो। व्याघ्र चर्म का उपयोग अभी मत करना। साधारणतः जैसे आसन पर बैठते हो, उसी प्रकार मृग चर्म पर भी बैठना। आसन का शीर्ष भाग बाँयी तरफ रखना। अर्थात् मृग चर्म में सिर वाला हिस्सा बाँयी तरफ होना चाहिये। तर्पण में तीन अंजली जल देना। पाठ के लिये, श्री श्री गोसाँई जी के उपदेश प्रवचन श्री श्री सद्‌गुरूसंग, श्री श्री विजयकृष्ण लीलामृत, श्री श्री चैतन्य चरित्रामृत, श्री श्रीमत् भागवत रामायण, महाभारत, श्री श्री रामकृष्ण कथामृत तथा उपनिषदों का प्रयोग कर सकते हो।

साधना प्रतिदिन नियमित समय पर करना और अभी योगी गुफा में ही रहना। बाद में आवश्यक व्यवस्था करूँगा।

मेरा हार्दिक आर्शीवाद ग्रहण करो। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो।

मैं ठीक हूँ। बीस को कोलकाता जाऊँगा और बाईस को कोलकाता से हैदराबाद जाऊँगा। दो जनवरी को वापस लौटूँगा। आशीर्वादक–बाबा

इस वर्ष (१९६८ ई.) माघ पूर्णिमा में मुक्ताई चण्डी पहाड़ (रूपनारायणपुर) पर २४ प्रहर (तीन दिन) का अखण्ड श्री नाम-कीर्तन था। उसमें गुरूदेद आये थे। इस पहाड़ पर हमारे संन्यासी गुरू भ्राता स्वामी वासुदेवानंद सरस्वती रहते हैं। यह स्थान रूपनारायणपुर से लगभग चार किलोमीटर की दूरी पर स्थित है और पास ही सामडी कोलयारी है। इस वर्ष गुरूदेव के यहाँ पहुँचने से एवं स्थानीय गुरूभाई एवं

भक्तो के सहयोग से, यहाँ रहने व भोजन की बहुत अच्छी व्यवस्था हो गई थी। उत्सव के कुछ दिन पहले ही हमलोग भी वहाँ पहुँच गये थे।

उत्सव के समय पहाड़ के ऊपर एक बड़ी छावनी करके लगभग ४० स्त्री-पुरूषों की दीक्षा भी सम्पन्न हुई। दीक्षा के समय, हमने वहाँ अचानक एक कुत्ते को छावनी में प्रवेश करते देखा। हमने उसे छावनी में प्रवेश करने से नहीं रोका। दीक्षा होने के बाद हमने देखा कि कुत्ता बाहर आकर, एक पेड़ के नीचे चुपचाप लेट गया। बाद में गुरूदेव से, इस सम्बंध में पूछने पर उन्होंने कहा—**कुत्ते की दीक्षा हो गयी है और वह अब ज्यादा दिन इस शरीर में नहीं रहेगा। वह शीघ ही पशु योनी से मुक्त हो जायेगा। कुत्ते ने सचमुच ही डेढ़ माह के अंदर प्राण त्याग दिया।**

मुक्ताई चण्डी पहाड़ के उत्सव के बाद गुरूदेव वापस आश्रम आ गये। इसवर्ष आश्रम में श्री श्री दरवेश जी महाराज की मूर्ति प्रतिष्ठा के समय महोत्सव हुआ।

इस वर्ष गुरूदेव गर्मियों में, केदारनाथ एवं बद्रीनाथ दर्शन के लिये गये थे। उसी समय हमारा छोटा भाई अमित गुरूदेव से दीक्षा लेने के लिये हमारे पास, योगी गुफा आया। लगभग एक माह उपरांत गुरूदेव के लौटने पर, हमलोग आश्रम गये और गुरूदेव से अमित की दीक्षा के लिये निवेदन किया। गुरूदेव का शरीर इस समय बहुत अस्वस्थ था, अतः उन्होंने कुछ दिन रूकने के लिये कहा। दो-एक दिन बाद हमलोग प्रातः गुरूदेव के पास उनके कमरे में गये। गुरूदेव ने स्वयं ही कहा कि अमित को दीक्षा अभी दे देता हूँ। गुरूदेव ने हमसे धूप जलाने एवं कमरे का दरवाजा बंद करने के लिये कहा और इस तरह १७ जून, १९६८ ई० को गुरूदेव ने अमित को दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के बाद अमित की प्रार्थना पर गुरूदेव ने 'ब्रह्मचर्य की अभिज्ञता' नामक बंगला ग्रंथ में एक छोटी सी कविता लिखी जो इस प्रकार है—

भावार्थः जीवन हो शांति मधुर पुण्य प्रेम भरा
सार्थक हो सेवा से जननी वसुंधरा।
ब्रह्मचर्य जीवन का सार उसकी रक्षा करो
ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठा हो एवं जीवन सुंदर हो।
आशीष है जीवन पथ पर, हो तुम्हारी जय।
जीवन की ग्लानि-मलिनता का हो जाये क्षय।

आशीर्वादक—असीमानंद

जयचण्डी पहाड़ पर योगी गुफा में हमलोगों के निवास की अवधि में गुरूदेव यहाँ पाँच बार आये थे। प्रथम बार, **२९ दिसंबर, ६७** को आकर केवल कुछ देर रूके। द्वितीय बार **दो जनवरी, ६८ को** अष्ट प्रहर नाम-कीर्तन में गुरूदेव आश्रम के लगभग १५-२० लोगों के साथ आये थे। इस उत्सव के समय गुरू परम्परा के विभिन्न चित्र सजाये गये थे। इन्हीके साथ गुरूदेव का एक चित्र, फूलमाला पहनाकर अलग से

रखा गया था। गुरूदेव के गुरूभाई वरदा काका भी उस समय आये थे। वे हमें अलग ले जाकर बोले कि तुम लोगों ने गुरूदेव के देह में रहते हुये ही उनके चित्र पर फूलमाला पहनाकर गलती की है। यह उचित नहीं है। हमने उनसे कुछ नहीं कहा। उत्सव के बाद आश्रम में जाकर हमने गुरूदेव से पूछा कि उत्सव के समय हमने आपके चित्र पर फूलमाला पहनाई थी, क्या यह गलत हुआ ?

गुरूदेव ने कहा–नहीं, इसमें मैं कोई गलती नहीं देखता। गुरूदेव के देह में रहने तक उनके चित्र पर तुलसी नहीं चढ़ाना चाहिये। फूल की माला चढ़ाई जा सकती है।

योगी गुफा में उत्सव के सम्बंध में गुरूदेव ने कहा– ''**यहाँ एक जनवरी को उत्सव करने से बहुत अच्छा होगा क्योंकि इस समय आवश्यक सभी वस्तुयें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो जाती है। पहाड़ पर पौष मास में, इस तरह का उत्सव होने से सभी को बहुत आनंद आयेगा और हम सब लोग भी आश्रम से यहाँ आ सकेंगे।**'' यहाँ से लौटते समय गुरूदेव पहाड़ के पीछे एक तांत्रिक साधु के यहाँ भी, उनके अनुरोध करने पर, गये थे।

गुरूदेव योगी गुफा में तीसरी बार, **तीन मार्च, ६८** को आये। वे किसी कार्यवश रघुनाथपुर आये हुये थे। रघुनाथपुर जाते एवं वहाँ से लौटते समय, स्टेशन के रास्ते में यह गुफा होने से वे दो बार योगी गुफा आये।

चौथी बार, **७ अप्रेल, ६८** को भी गुरूदेव रामनवमी उत्सव के समय यहाँ आये। एवं कई घंटे यहाँ रहे।

पाँचवी बार, **२ जुलाई, १९६८ ई०** को गुरूदेव हमारे एक गुरूभाई के विवाह के कार्यकम में, उन्हें आशीर्वाद देने के लिये रघुनाथपुर आये थे। वहाँ से वापस जाते समय, स्टेशन जाने के रास्ते में योगी गुफा के सामने एक मकान में पधारे थे और हमें अपने आने की सूचना भेजी थी। हमने वहाँ जाकर उन्हे प्रणाम किया। उन्होंने कहा– तुमलोगों ने जहरगढ़ देखा है? यह स्थान बहुत निर्जन है। जैसा निर्जन स्थान तुमलोग चाहते हो, ठीक वैसा ही है। वहाँ तुम लोगों को अच्छा लगेगा। मैं स्वयं जाकर वह स्थान देख आया हूँ। मैं तुमलोग के पास गुफा तक अवश्य आता किंतु सीने में दर्द के कारण, गुफा के लिये ऊपर नहीं चढ़ सका। मैं तुम लोगों से मिलने के लिये ही इस बार यहाँ आया हूँ।

इस प्रकार गुरूदेव के अचानक हमारे पास आने से हमें अत्यधिक आनंद प्राप्त हुआ। गुरूदेव के आने की खबर प्राप्त होते ही, आसपास से गुरूभाई एवं भक्तगण भी उनके दर्शन करने क लिये आ गये। सभी लोग उनके हाथ से प्रसाद पाना चाहते थे। हमारे पास एक हार्लिक्स की शीशी में कुछ बतासे थे। हमने ये बतासे एक थाली में डालकर गुरूदेव को प्रसाद वितरित करने के लिये दे दिये। गुरूदेव ने उपस्थित

लोगों को बतासे देना शुरू कर दिया। बतासे थोड़े से थे। कई गुरूभाईयों ने दो-तीन बार उनके हाथ से बतासे लिये किंतु बतासे कम नहीं पड़े। गुरूदेव सबको प्रसाद एवं आशीर्वाद देने के बाद जयचण्डी पहाड़ रेल्वे स्टेशन चले गये। हमलोग चकित थे कि इतने थोडे से बतासे गुरूदेव ने इतने अधिक लोगों में कैसे बांटे?

हम लोग योगी गुफा में लगभग डेढ वर्ष तक रहे। अंतिम दिनों में यहाँ बहुत भीड होनी शुरू हो गई थी, इसलिये हमने गुरूदेव को एक पत्र लिखा कि यहाँ बस्ती पास होने से हमारी साधना में बहुत विघ्न होता है। अतः हम लोग किसी और निर्जन स्थान में रहना चाहते हैं। उस समय गुरूदेव अचानक योगी गुफा में आये एवं हम लोगों को जहरगढ़ देख आने के लिये कहा। उस समय गुरूदेव ने हमारे एक पत्र के उत्तर में लिखा था–

ॐ गुरू, २८-६-६८

कल्याण वरेषु,

तुम लोगों का पत्र मिला। तुम लोग गुरू पूर्णिमा के समय यहाँ आना। उस समय आवश्यक व्यवस्था करूँगा।

साधुओं के लिये संन्यास के बाद १२ वर्ष तक, एक स्थान पर अधिक समय न रूकना ही अच्छा है। केवल गुरू के स्थान पर ही अधिक समय तक रहा जा सकता है। इसीलिये बहुत सोचने के बाद तुम लोगों को काशी मठ में रहने के लिये पहले कहा था।

खैर, जो भी हो, आगे जैसी व्यवस्था संभव होगी करूँगा।

आशीर्वादक–बाबा

गुरूदेव का हमें प्रेषित यह अंतिम पत्र था।

आश्रम जाकर अधिकांश समय हम लोग गुरूदेव के पास ही बैठने का प्रयास करते थे। विभिन्न समय में प्रसंगवश उनसे जो चर्चा होती थी, वह यहाँ प्रस्तुत हैः–

१. एक दिन रामचन्दपुर आश्रम के सम्बंध में बात करते हुये, गुरुदेव ने कहा कि यह स्थान महाश्मशान है। यहाँ पचँमुडी सिद्ध आसन है। यहाँ साधक भजन-साधना कर अतिशीघ्र साधना में उन्नति लाभ प्राप्तकर सकेंगे। यहाँ गृहस्थ लोग यदि घर-गृहस्थी बसाने की चेष्टा करेंगे तो उन्हें विभिन्न प्रकार की अशांति होगी और उनका संसार छिन्न-भिन्न हो जायेगा।

२. एक समय किसी के द्वारा यह प्रश्न करने पर कि भविष्य में आकाश-वृत्ति पर आश्रम किस प्रकार चलेगा? गुरूदेव ने कहा था कि आश्रम या मठ स्थाई वस्तुयें हैं। ये कभी भी आकाश वृत्ति पर नहीं चल सकते। आश्रम के परिचालक या साधक लोग यदि स्वयं यह व्रत पालन करें तभी आश्रम आकाश-वृत्ति पर चल सकेगा। अन्यथा विभिन्न प्रकार की विसंगतियाँ दिखेंगी। निस्वार्थ भाव से कर्म करने से धन की वर्षा

होगी। कभी भी कोई अभाव नही रहेगा। किंतु ईश्वर की कृपा के ऊपर ही निर्भर रहना होगा। इस प्रसंग के सम्बंध में यह उल्लेख करना भी उचित होगा कि श्री श्री गोसाँई जी ने यह व्रत उनके कुछ गृहस्थ शिष्यों को भी दिया था। इस व्रत के प्रमुख नियम इस प्रकार है–

(१) अर्थोपार्जन के लिये चेष्टा नहीं करना।

(२) किसी से भी कुछ (अर्थ, खाद्‌य या परिधेय वस्त्र आदि) नहीं मांगना।

(३) अपने किसी भी प्रकार के अभाव को, किसी से न कहना।

(४) स्वेच्छा से यदि कोई कुछ प्रदान करे तो उसे भगवान् का दान समझकर ग्रहण करना, अभिमान पूर्वक उसे नहीं लौटाना।

३. गुरूदेव ने एक दिन कहा कि साधुओं के लिये पहले निर्जन स्थान में साधना करना उचित है। फिर कुछ समय तक इस प्रकार साधना करने के बाद, लोकालय में आकर मन की परीक्षा करना उचित है। यदि लगे कि मन की चंचलता अभी गई नहीं है, तब फिर से निर्जन में जाकर साधना करना उचित है। इस प्रकार स्वयं की परीक्षा के बाद मन चंचल न होने पर, स्थाई रूप से लोकालय में रहना उचित है।

४. गुरूदेव के अंतिम समय में चिकित्सालय, स्कूल एवं आश्रम के कार्यों के कारण, उन्हें बहुत अधिक श्रम करना पड़ता था और उनका शरीर धीरे-धीरे अस्वस्थ होता जा रहा था। इसी समय एक दिन उन्होने कहा–

इस अस्वस्थ शरीर को लेकर मैं और कार्य नहीं कर सकता। तुम लोग, यदि मुझे इन सभी कार्यों के दायित्व से मुक्त कर सको तो मैं और भी १० वर्ष तक तुम लोगों के साथ रह सकूँगा। (द्रष्टव्य–'मंदिर' २६ वर्ष, अष्टम संख्या) उन्होंने कहा कि आश्रम का दायित्व मेरे संन्यासी शिष्यगण ले लें एवं अस्पताल स्कूल आदि सेवा कार्यों का दायित्व दुलाल (बड़ा पुत्र) ले ले तो अच्छा रहेगा। इस प्रकार भारमुक्त होने पर, तुम लोग मुझे अपने पास १० वर्ष और पा सकोगे। गुरूदेव की यह बात सुनने के बाद संन्यासी शिष्यों ने विचार किया कि यदि गुरूदेव अभी १० वर्ष और हम लोगों के साथ रहें तो इससे बड़ा लाभ और क्या हो सकता है । स्वामी हरानंद जी, स्वामी आत्मानंद जी एवं स्वामी निर्मलानंद जी जो उस समय के प्रमुख संन्यासीगण थे, उन्होंने कहा–''आश्रम का दायित्व वे अपने ऊपर लेने को तैयार हैं, लेकिन जितने दिन गुरूदेव देह में हैं उतने दिन उन्हें आश्रम का अध्यक्ष रहना होगा तथा उनके देह त्याग के बाद आश्रम के अंश में ही, उनकी समाधि मंदिर का निर्माण किया जायेगा। इस आश्रम में हम लोग उनके आकर्षण के कारण ही हैं । इसलिये उन्हें छोड़कर, आश्रम के बारे में हम विचार भी नहीं कर सकते। यदि ये दो प्रार्थनायें गुरूदेव पूर्ण करें, तो हमलोग आश्रम का दायित्व लेने के लिये तैयार हैं।''

संन्यासियों से विचार-विमश के बाद गुरूदेव अन्य लोगों से भी सलाह ली। आश्रम का भार संन्यासियों को देने के बारे में, कुछ विशिष्ट लोगों ने विभिन्न प्रकार की आपत्तियां प्रकट की। अंत में गुरूदेव ने अपने निर्णय में परिवर्तन किया और वे आश्रम का दायित्व संन्यासियों को नहीं सौप पाये। उस समय उन्होंने संन्यासियों से कहा–**तुम लोग चिंता मत करो। मैं हमेशा तुम लोगों के साथ रहूँगा। जहाँ भी तुम लोग कीर्तन, उत्सव आदि करोगे वहाँ किसी प्रकार का कोई अभाव नही रहेगा।''**

इस घटना के लगभग एक-डेढ़ वर्ष के अंदर गुरूदेव ने अपना शरीर त्याग दिया। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उन्होंने हम सबको एक सुअवसर दिया था जिसका लाभ हमलोग दुर्भाग्यवश प्राप्त नहीं कर सके।

५. उपरोक्त घटना के कुछ दिन पश्चात् एक दिन हमलोग गुरूदेव के पास बैठे हुये थे, अचानक उन्होंने कहा–मैं अस्पताल, स्कूल आदि की झंझटों में बहुत अधिक उलझ गया हूँ। उस समय बहुत से लोग यह दायित्व लेंगे ऐसा कह रहे थे, लेकिन अब इन लोगों का कहीं कोई पता नहीं है। मुझे अनुभव हो रहा है कि साधु-संन्यासियों को, इन कायो की जिम्मेदारी लेना ठीक नही है। तुम लोग कभी भी इन सब कार्यों की झंझट में मत पड़ना । तुम लोग अभी ठीक हो, इसी प्रकार रहना और गांव-गांव में श्री श्री गोसाँई जी के नाम का प्रचार प्रसार करना। यदि कर सको तो कुछ होमियोपैथिक औषधियां अपने पास रखना एवं निर्धन लोगों को आवश्यकतानुसार देना। इन सब झमेलों में साधुओं का न पड़ना ही ठीक है।

गुरूदेव ने इसी समय प्रसंगवश कहा था–देखों तुम लोग साधु हो, अपना घर द्वार छोड़कर निकल पड़े हो। तुम लोगों का इस आश्रम के प्रति कोई मोह आसक्ति या लगाव नहीं है। जरा भी असुविधा होने पर ही तुम लोग यह स्थान त्याग कर अन्यत्र जा सकते हो। लेकिन दुलाल (पुत्र) गृहस्थ है। उसका इस स्थान के प्रति एक विशेष आकर्षण व लगाव है। पिता द्वारा तैयार किये गये इस आश्रम की रक्षा करने के लिये वह भरपूर प्रयास करेगा। थोड़ी बहुत असुविधा होने पर भी, कभी भी आश्रम का दायित्व छोड़कर अन्यत्र नही जायेगा। इसीलिये मैंने दुलाल को आश्रम का दायित्व सौपना तय किया है।

गुरूदेव ने हमलोगों के साथ विभिन्न प्रसंगों के सम्बंध में जो चर्चायें की, केवल उनका उल्लेख यहाँ किया गया है।

एक दिन हमलोग गुरूदेव के पास बैठे थे। मैंने प्रश्न किया कि प्रेम-भक्ति का अर्थ क्या है?

गुरूदेव ने कहा–**''भगवत् दर्शन पाने के लिये जब साधक व्याकुल हो जाये और भगवत् कृपा से साधक को उनके दर्शन हो जाये, इसी एकांत व्याकुल भाव को प्रेम-भक्ति कहते हैं।**

हमने प्रश्न किया कि युक्तयोगी का क्या अर्थ है ?

गुरूदेव ने उत्तर दिया–''**प्रेम-भक्ति प्राप्त करने के बाद जब भगवान के साथ युक्त हो जाता है, तब उसे युक्तयोगी कहा जाता है।**'

हमारा अगला प्रश्न था कि भगवत् लीला-दर्शन कब होता है?

गुरूदेव ने कहा–''**युक्तयोगी होने के बाद, साधक जब भगवान की जिस लीला का दर्शन करना चाहता है, उसे वही लीला का दर्शन प्राप्त हो जाता है।**''

गुरूदेव के सम्बंध में उनके लीला-दर्शन की एक कथा यहॉ प्रस्तुत है :–

गुरूदेव ने एक बार, प्रसंगवश हमें बताया कि एक समय काशी में वे एक सम्मेलन में गये थे। वहाँ एक पादरी वक्ता ने कहा कि जब काईस्ट को सूली पर चढ़ाया गया, उस समय कष्ट से उनके नेत्रों में अश्रु बहने लगे तथा उन्होंने कहा कि "हे पिता ! ये लोग क्या कर रहे हैं, इन्हें नही मालूम! तुम इन लोगों को क्षमा करना!!" सभा समाप्त होने पर गुरूदेव उक्त वक्ता के समीप गये और उनसे कहा कि जिस प्रकार आपने काईस्ट के मृत्यु (Crucifixion) की व्याख्या की वह उचित नहीं है, क्योंकि हमारे हिन्दू शास्त्रों में उल्लेख है कि महापुरूषों को कभी भी शोक, मोह या कष्ट का अनुभव नहीं होता है। वक्ता ने बताया कि मैंने बाईबल बहुत बार पढ़ी है । जैसा आप बता रहे है, वैसी व्याख्या बाईबल में कही नहीं है।

रात में गुरूदेव ने देखा कि जिस कमरे में वे रूके हुये हैं, वहाँ सूली पर चढे हुये काईस्ट (Christ के Crucifixion) का एक चित्र लगा हुआ है। गुरूदेव ने आसन पर बैठकर ध्यान करते हुये, मन ही मन काईस्ट की लीला का दर्शन करने की प्रार्थना की। कुछ समय बाद ही उनके समक्ष काईस्ट की लीला प्रकट हो गयी। गुरूदेव ने बताया कि मैंने काईस्ट की सम्पूर्ण लीला का दर्शन किया तथा अंत में देखा कि जब उन्हें कास (Crucifixion) पर लटकाया गया, तब वास्तव में उनकी आँखों से आँसू टपक रहे थे। गुरूदेव ने बताया कि ऐसा देखकर, उनके मन में प्रश्न आया कि काईस्ट की आँख में से अश्रु क्यों गिर रहे हैं? अंतरमन से उत्तर प्राप्त हुआ कि **ये अश्रु शोक के नहीं हैं, बल्कि प्रेमाश्रु हैं। उनकी आँखों से, साधारण जीव के प्रति करूणा के कारण अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। शरीर के कष्ट से नहीं।**

दूसरे दिन गुरूदेव उन वक्ता महाशय से जाकर मिले और उन्हें बताया कि मुझे जो अनुभव हुआ है, उसके अनुसार काईस्ट की आँखों से बहने वाले अश्रु, साधारण जीवों के प्रति करूणा के कारण हैं। वे अश्रु शरीर के कष्ट के कारण नहीं हैं। वक्ता ने यह सुनकर गुरूदेव से कहा कि निःसंदेह आपकी व्याख्या अद्भुत है। पर बाईबल में ऐसी व्याख्या नहीं है।

उपरोक्त घटना को, गुरूदेव से सुनने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था। **तत्वज्ञानी या तत्वदर्शी महात्माओं के लिये, कोई भी तत्व अदृश्य नहीं रहता।**

सनातन हिन्दू धर्म की व्यापकता गुरूदेव की इस लीला दर्शन से प्रकट होती है। गुरूदेव यद्यपि श्री श्री गोस्वामी जी की वैष्णव साधना में दीक्षित थे, परन्तु वे पँचमुंडी आसन में बैठा करते थे। आश्रम में शिव तथा राधाकृष्ण प्रतिष्ठित हैं। यहाँ दुर्गा पूजा, काली पूजा, सरस्वती एवं लक्ष्मी पूजा विधिवत् सम्पन्न की जाती है। गुरूदेव कहते थे कि साधना में अग्रसर होने पर सब प्रकार का मतभेद स्वतः दूर हो जाता है। सत्य एक ही है, उसकी प्राप्ति के पथ अनेक हैं। गीता के विश्वरूप दर्शन के सम्बंध में प्रवचन देते हुये गुरूदेव ने कहा था कि ''हे प्रभु, तुम्हारा यह विश्वरूप दर्शन मेरे लिये सार्थक हो। विश्व के प्रत्येक कार्य एवं प्रत्येक स्वरूप के अंदर, मैं आपका दर्शन कर सकूँ। सभी कायो में आपकी सेवा ज्ञान से, आपकी पूजा समाप्त कर सकूँ, यही मेरी प्रार्थना है।'' प्रथम खण्ड में गुरूदेव के प्रवचन का अध्ययन करने पर, विश्वरूप दर्शन की उपरोक्त भावना, संपूर्ण रूप से प्रकट होती देखी जा सकती है।

हूँ। आज तक तुम लोगों ने जो कुछ अनियम-अनाचार किया है, वह सब मैं ग्रहण करता हूँ। आज के बाद तुम लोग नवीन उद्दीपना के साथ भजन-साधना में अग्रसर हो जाओ।

सहज एवं सरल भाव से चलने का प्रयास करना। व्यक्ति के जो संस्कार हैं, वे सहज ही नष्ट नहीं होते। नियमित साधना करने से तथा एकांत भाव से प्रयास करने पर ही धीरे-धीरे सब संस्कार चले जाते हैं।

श्री श्री गोसाँई जी ने कहा है नियमित साधना करने से सांप की कैंचुली के समान, सारे संस्कार छूट जाते हैं। इस साधना में अनुष्ठानिक संन्यास की आवश्यकता नहीं ह। नियम पालन करने से ही अपने आप संन्यास अवस्था की प्राप्ति हो जायेगी।

तुम लोग सभी नियमादि का पालन करो, नियमित साधन करो, धीरे-धीरे सब लाभ होगा। सभी, जैसा बताया गया है, नियमित प्राणायाम करना। उन्होंने हाथ पकड़ा है, निश्चित ही वे ले जाएंगे। लेकिन फिर भी किसी तरह का प्रमाद या प्रवंचना करने से पथ में क्लेश पाना होगा।

दृष्टांत देते हुये गुरुदेव ने, 'सद्गुरु के दायित्व एवं शिष्य के कर्तव्य' के सम्बंध में बताया—किसी गाँव में मेला लगा हुआ था। दूर के गाँव से एक माँ अपने दो बच्चों को साथ लेकर मेला देखने आयी थी। छोटा पुत्र चंचल और हठी था। वह मेले में नई वस्तु देखते ही उसे खरीदने के लिये जिद करता। माँ ने कई बार, उसे चाही गई वस्तुयें खरीदकर दी। इस प्रकार वे लोग पूरे दिन मेला घूमते रहे। संध्या का समय करीब आते देख, माँ ने बच्चों से कहा कि संध्या होने वाली है, अब हमें घर लौटना चाहिये। बड़ा पुत्र माँ की बात मानकर घर लौटने के लिये तैयार हो गया, लेकिन छोटा पुत्र किसी भी प्रकार घर वापस जाने के लिये तैयार नही हो रहा था। वह अभी और भी वस्तुयें खरीदने के लिये हठ कर रहा था। माँ अभी तक छोटे पुत्र की इच्छा पूरी कर रही थी, लेकिन अब वह कठोर हो गई। वह छोटे पुत्र का हाथ पकड़कर, उसे गाँव के रास्ते पर खींचकर ले जाने लगी। पथरीले रास्ते पर, इस तरह घसीटे जाने से छोटे पुत्र के शरीर में कई जगह चोट लग गई, तब भी माँ कठोर भाव से, उसका हाथ पकड़कर घर की ओर ले चली। घर पहुँचने पर उसने छोटे पुत्र के घावों को धोकर औषधि का लेप किया और उसकी आवश्यक सेवा की।

सद्गुरू ने जिसका दायित्व (भार) लिया है, वह यदि गुरूदेव के निर्देशानुसार चलता है, तो महिला के बड़े पुत्र की तरह लक्ष्य में सहज ही पहुँच जाएगा। किन्तु जो सद्गुरू के निर्देशानुसार नही चलेंगे, तो सद्गुरू उनका त्याग नहीं करेंगे—उन्हें, महिला के छोटे पुत्र की तरह लक्ष्य की ओर खींचकर ले जाएंगे। उन्हें साधना-पथ में रोग-शोक, अविश्वास आदि विभिन्न प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक क्लेश प्राप्त होंगे। इस प्रकार विभिन्न अवस्थाओं को पार करने के बाद, सद्गुरू अन्त में शिष्य

को चरम लक्ष्य के ओर ले जाऐंगे।

तुम सभी लोग नियमित साधना करो। 'मैं नहीं कर पा रहा हूँ', 'समय नहीं मिलता' इस प्रकार बहाना करने से नहीं चलेगा। साधना करने का अर्थ ही, पथ पर चलना है । कई लोग कहते है कि 'गुरू सब करेंगे।' ठीक है मैं सब कर दूँगा। लेकिन जैसा मैंने कहा है, उस तरह चलने से मार्ग में क्लेश नहीं पाना पड़ेगा, अन्यथा कष्ट भुगतना पड़ेगा। गुरू पर श्रद्धा का अर्थ है–गुरू के निर्देशानुसार चलने का प्रयास करना।

नाम-जप करने पर, फिर अन्य किसी बाह्य पूजा या अनुष्ठान आदि की आवश्यकता नहीं रहती। गुरू भगवान् हैं! गुरू गोसाँई जी हैं!! मेरे भीतर से जो कार्य कर रहे हैं–मेरे भीतर जो हैं उन्हीं की, मैंने तुम लोगों के अन्दर प्रतिष्ठा की है। मेरे इष्ट तुम लोगों के भीतर विराजमान हैं, इसलिये नियमों का पालन न करने से, उनका अपमान होगा। नियमानुसार साधना नहीं करने से गुरूशक्ति का अपमान करने का अपराध होता है।

तुम लोग मुझे प्रतिदिन दोनों समय आधे घंटे का समय दो। आसन पर बैठकर साधना में, एक भी दिन का अवकाश मत करो। नियमित साधना करने से मेरी सहायता होगी।

तुम लोगों की साधना श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना है। श्वास की ओर ध्यान देने से, मन अपने आप शांत एवं स्थिर हो जायेगा।

मेरा आशीर्वाद जहाँ भी रहो, जैसे भी रहो, सर्वदा रहेगा। तुम सभी लोगों का जीवन मधुर एवं आनंद मय हो! भगवान गोसाँई जी तुम लोगों के अंदर प्रकाशित हो!!'' (प्रवचन समाप्त)

सभी ने गुरूदेव को प्रणाम किया। उस दिन गुरूदेव का यह मार्मिक और दिशा निर्देशक प्रवचन सुनकर तथा उनके करूणामय स्वरूप का दर्शन करके, हम सभी धन्य हो गये।

मध्यान्ह प्रसाद ग्रहण करने के बाद सभी को वापस लौटना था, इसलिये उस दिन गुरूदेव ने विश्राम नहीं किया। पूरे समय सबसे मिलजुलकर चर्चा करते रहे और आशीर्वाद देते रहे।

शाम को लगभग तीन बजे उन्होंने वासुदेवानंद को बुलवाया और जहरगढ़ के सम्बंध में जानकारी प्राप्त की। वे हमें जहरगढ़ (सीतारामपुर) भेजना चाहते हैं, यह बात उन्होंने सभी गुरूभाईयों को बतलाई।

गुरूदेव की बात सुनकर रघुनाथपुरवासी गुरूभाईयों ने गुरूदेव से अनुरोध किया कि वे हमलोगों को अन्यत्र न भेजें। सभी के बार-बार अनुरोध करने पर गुरूदेव ने हमलोगों को बुलवाया। हमलोग उनके पास जाकर प्रणाम करके बैठ गये।

हैं? हमने उनसे कहा कि अपने नाम पर रजिस्ट्री न करवाकर, तुम्हारे नाम पर रजिस्ट्री करवाना ठीक होगा।

गुरूदेव ने कहा–"**क्यों, तुम्हें अपने नाम से रजिस्ट्री कराने में क्या असुविधा है? मैं जमीन लेकर क्या करूँगा? और अधिक आश्रम बनाने से क्या होगा? मैं और कितने दिन हूँ? मेरे बाद फिर कौन कर (Tax) चुकाएगा?**'

मैंने कहा–हम अपने नाम पर रजिस्ट्री नही कराएंगे और उन लोगों से कह देंगे कि हम दुर्गा पूजा तक यहां रहेंगे, इसके बाद अन्यत्र चले जाएंगे।

गुरूदेव ने कहा–"**ठीक है, ऐसा ही करो। (थोड़ा रूककर) एक काम करो, अभी वहीं रहो। बाद में जैसा आवश्यक होगा, व्यवस्था की जायेगी।**"

इसी समय प्रमीला दीदी वहाँ आकर गुरूदेव से बोली कि कुछ संदेश (मिठाई) रखे हैं, मैं देना भूल गई थी, आप खा लीजिये। गुरूदेव ने कहा–"ठीक है, ले आओ।"संदेश की कटोरी आते ही गुरूदेव ने एक संदेश का थोड़ा सा अंश स्वयं लेकर, कटोरी हमलोगों को देकर कहा–"**तुम लोग प्रसाद ग्रहण करो।**" संदेश काफी मात्रा में थे। वहाँ और कई लोग भी बैठे हुए थे। गुरूदेव के हाथ से इस प्रकार अकस्मात् प्रसाद पाकर हम लोग धन्य हो गए।

थोड़ी देर बाद गुरूदेव के लिये चाय लाई गई। उन्होंने हम लोगों के लिये भी चाय लाने को कहा। चाय पीने के बाद जब हम लोग गिलास धोने के लिये जाने लगे तो उन्होंने अचानक कहा–'**तुम लोग गिलास यहीं रख दो और यहीं पर हाथ धो लो।**' इस प्रकार उस दिन गुरूदेव ने हम लोगों के प्रति अपूर्व स्नेह प्रदर्शित किया।

मैंने उनसे पूछा कि क्या दुर्गापूजा के समय हमलोग अपना सामान लेकर यहाँ आ जाएंगे?

गुरूदेव ने कहा–"**नहीं पहले मुझे पत्र लिखना।**" फिर मैंने कहा कि हम लोग जहरगढ़ में कीर्तन आदि नहीं करते हैं।

गुरूदेव ने कहा–"**क्यों नहीं करते? हर समय साधना नही की जा सकती। साधना के समय को छोड़कर, शेष समय में कीर्तन एवं पाठ आदि कर सकते हो।**"

आलोकानंद ने कहा कि हमारा हारमोनियम आदि रघुनाथपुर में रखा है। अतः फिर रघुनाथपुर जाना होगा।

गुरूदेव ने कहा–"**ठीक है, यहाँ से रघुनाथपुर जाकर फिर जहरगढ़ चले जाना। तुम्हारे पास वस्त्र एवं कम्बल आदि है कि नहीं?**"

हमारे द्वारा हाँ कहने पर वे गाड़ी-भाड़ा के लिए पूछने लगे। हमने कहा गाड़ी भाड़ा आदि सब हमारे पास है। तब वे निश्चित हो गए।

गुरूदेव द्वारा इस प्रकार विशेष पूछताछ से हमारे मन में प्रश्न उठा कि वे इस बार इतनी अधिक खोज खबर क्यों ले रहे हैं? क्योंकि इसके पहले, हमने उन्हें इस

प्रकार पूछते नहीं देखा था।

हमलोग गुरूदेव का आशीर्वाद लेकर, रघुनाथपुर होते हुए जहरगढ़ आ गए। ठीक पन्द्रह दिन पश्चात् गुरूदेव ने शरीर त्याग दिया। गुरूदेव के साथ हमारा यह अन्तिम साक्षात्कार था। गुरूदेव ने श्रावण की २८ वीं तिथि, बंगला सन् १३७५ (१३ अगस्त, १९६८ ई.) को रात्रि साढ़े ग्यारह बजे महासमाधि ली। रामचन्द्रपुर में, उनकी 'अन्तिम इच्छा' अनुसार निर्दिष्ट स्थान पर, उनके शरीर को समाधिस्थ किया गया।

अब वहाँ 'समाधि मन्दिर' का निर्माण किया गया है। उनके द्वारा स्थापित नेत्र चिकित्सालय, स्कूल, छात्रावास आदि सेवाकार्य, आज दिनों-दिन ब़ढ़ते जा रहा है।

जहरगढ़ में हमलोग चार वर्ष रहे। इस बीच वहाँ कई बार डकैती हुई। अन्तिम बार, जब १९७२ ई. में डकैती हुई, तब हमलोगों ने वह स्थान छोड़ दिया। रघुनाथपुरवासी भक्तों के आग्रह को देखकर, 'जयचण्डी पहाड़' रेलवे स्टेशन के पास रघुनाथपुर मे, ''श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ'' नाम से आश्रम की स्थापना की गई। सन् १९७५ मे आश्रम बन गया। यह स्थान रघुनाथपुर शहर से बाहर एकांत में है।

इस प्रकार गुरूदेव की इच्छानुसार, उनके महासमाधि लेने के सात व़र्ष पश्चात् यह आश्रम स्थापित हुआ।

जय गुरूदेव

पूज्य स्वामी जी के साथ अमलानन्द एवं आलोकानन्द

मेरे पंचभौतिक शरीर का लय हो जाने पर भी, मेरी आत्मा जैसे पहले थी, अब भी वैसी ही है और बाद में भी वैसी ही रहेगी। विश्व की आत्मा के साथ मेरा अभिन्न योग है। सबकी सेवा के लिये मैंने बार-बार जन्म ग्रहण किया है एवं पुनः जन्म ग्रहण करूँगा। मैं शपथ लेकर कहता हूँ , जिनकी सेवा का भार मेरे ऊपर अर्पित है, उनके चरम एवं परम श्रेय लाभ न होते तक, मैं विश्वस्त सेवक की भांति सबकी सेवा करता रहूँगा। इसके लिये पुनः-पुनः जन्म ग्रहण करूँगा और सबको सिर पर रखकर प्रभु के चरणों में पहुँचाऊँगा।

—असीमानन्द

श्री श्री विजयकृष्ण भक्त संघ
स्टेशन रोड, पोस्ट : रघुनाथपुर
जिला : पुरुलिया (प०बंगाल)
पिन कोड – ७३२१३३